श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत
मत्स्यपुराणम्
मूल तथा भाषानुवाद
भूमिका
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
उत्तरभागः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१८५
****

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत

मत्स्यपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भूमिका
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल

उत्तरभागः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

अध्याय | पृष्ठांक

उत्तरभाग

अध्याय		पृष्ठांक

❖❖❖

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत

मत्स्यपुराणम्

उत्तरभागः

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

तारक विजय प्राप्ति

सूत उवाच

तमालोक्य पलायन्तं विभ्रष्टध्वजकार्मुकम्। हरिं देवः सहस्राक्षो मेने भग्नं दुराहवे।।१।।

सूतजी कहते हैं–हे ऋषिवृन्द! ध्वजा तथा धनुष आदि से विहीन होकर युद्धभूमि से इस प्रकार भागते हुए भगवान् विष्णु को देख कर सहस्रनेत्र इन्द्र ने उस महायुद्ध में अपनी पराजय स्वीकार ली।।१।।

दैत्यांश्च मुदितान्दृष्ट्वा कर्तव्यं नाध्यगच्छत।
अथायान्निकटे विष्णोः सुरेशः पाकशासनः।।२।।

उवाच चैनं मधुरं प्रोत्साहपरिबृंहकम्। किमेभिः क्रीडसे देवदानवैर्दुष्टमानसैः।।३।।

विजय के मद में हर्षित दैत्यों एवं दानवों को देख कर वे कुछ सोच नहीं सके कि 'इस समय क्या करना चाहिए?' तब पाकशासन इन्द्र विष्णु भगवान् के निकट आये और उत्साह प्रदान करने वाले मधुर वाक्यों द्वारा उनसे इस प्रकार कहने लगे–'देव! इन क्षुद्र दुष्टचित्त असुरों से क्यों खिलवाड़ कर रहे हैं?।।२-३।।

दुर्जनैर्लब्धरन्ध्रस्य पुरुषस्य कुतः क्रियाः। शक्तेनोपेक्षितो नीचो मन्यते बलमात्मनः।।४।।

तस्मान्न नीचं मतिमान्दुर्गहीनं हि संत्यजेत्। अथाग्रेसरसम्पत्त्या रथिनो जयमाप्नुयुः।।५।।

जिसके भेद को दुर्जन लोग जान जाते हैं, ऐसे सज्जन मनुष्य की क्रिया भला क्यों कर सफल हो सकती है? बलवान् द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया नीच पुरुष अपने पराक्रम को अधिक मानने लगता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि दुर्गहीन ऐसे नीच शत्रु को कभी न छोड़ें। समर्थ! रथी लोग युद्ध भूमि में आगे चलने वालों की शक्ति से जय प्राप्त करते हैं।।४-५।।

कस्ते सखाऽभवच्चाग्रे हिरण्याक्षवधे विभो। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशाली मदोद्धतः॥६॥
त्वां प्राप्यापश्यदसुरो विषमं स्मृतिविभ्रमम्। पूर्वेऽप्यतिबला ये च दैत्येन्द्राः सुरविद्विषः॥७॥
विनाशमागताः प्राप्य शलभा इव पावकम्। युगे युगे च दैत्यानां त्वमेवान्तकरो हरे॥८॥
तथैवाद्येह मग्नानां भव विष्णो सुराश्रयः। एवमुक्तस्ततो विष्णुर्व्यवर्धत महाभुजः॥९॥
ऋद्ध्या परमया युक्ता सर्वभूताश्रयोऽरिहा। अथोवाच सहस्राक्षं कालक्षममधोक्षजः॥१०॥

पूर्वकाल में हिरण्याक्ष वध के अवसर पर कौन आपका मित्र हुआ था? भयानक महायुद्ध में फँसे हुए देवताओं के आप अवलंबन हैं।' इन्द्र के ऐसा कहने पर दीर्घबाहु भगवान् विष्णु ने अपनी भुजाओं को बढ़ाया। उस अवसर पर परम कान्ति से युक्त, दैत्यविनाशी, सम्पूर्ण जीवों के आश्रयभूत वे भगवान् विष्णु, जिनके स्वरूप का साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा नहीं होता, समयानुसार उपर्युक्त बातें इन्द्र से बोले॥६-१०॥

दैत्येन्द्राः स्वैर्वधोपायैः शक्या हन्तुं हि नान्यतः।
दुर्जयस्तारको दैत्यो मुक्त्वा सप्तदिनं शिशुम्॥११॥

वे दैत्याधिपति अपने द्वारा प्राप्त किये गये वध के उपायों द्वारा ही विनष्ट हो सकते हैं। दूसरे किसी उपाय से इनका विनाश होना सम्भव नहीं है। वह तारक दैत्य तो दुर्जेय ही है। सात दिन के बालक को छोड़ कर वह किसी दूसरे से पराजित नहीं किया जा सकता॥११॥

कश्चित्स्त्रीवध्यतां प्राप्तो वधेऽन्यस्य कुमारिका।
जम्भस्तु वध्यतां प्राप्तो दानवः क्रूरविक्रमः॥१२॥
तस्माद्वीर्येण दिव्येन जहि जम्भं जगद्वरम्।
अवध्यः सर्वभूतानां त्वां विना स तु दानवः॥१३॥
मया गुप्तो रणे जम्भं जगत्कण्टकमुद्धर।

इनमें कोई तो स्त्री द्वारा मारा जा सकता है और किसी के वध के लिए कुमारी कन्या की आवश्यकता है। परम पराक्रमी जम्भ नामक दैत्य मारा जा सकता है, अतः उस जगत् को संतापित करने वाले जम्भ को तुम अपने दिव्य अस्त्रों द्वारा विनष्ट करो। तुम्हारे बिना वह असुर संसार के समस्त जीवों से भी नहीं मारा जा सकता। रणभूमि में मुझसे रक्षित रह कर जगत् के कंटक स्वरूप उस जंभ को तुम उखाड़ दो॥१२-१३.५॥

तद्वैकुण्ठवचः श्रुत्वा सहस्राक्षोऽमरारिहा॥१४॥
समादिशत्सुरान्सर्वान्सैन्यस्य रचनां प्रति। यत्सारं सर्वलोकेषु वीर्यस्य तपसोऽपि च॥१५॥
तदेकादश रुद्रांस्तु चकाराग्रेसरान्हरिः। व्यालभोगाङ्गसंनद्धा बलिनो नीलकंधराः॥१६॥
चन्द्रखण्डनृमुण्डालीमण्डितोरुशिखण्डिनः। शूलज्वालावलिप्ताङ्ग भुजमण्डलभैरवाः॥१७॥
पिङ्गोत्तुजटाजूटाः सिंहचर्मानुषङ्गिणः। कपालीशादयो रुद्रा विद्रावितमहासुराः॥१८॥

भगवान् विष्णु के इस वचन को सुन कर दैत्यों के शत्रु सहस्राक्ष इन्द्र ने सभी देवताओं को सैन्य संगठित करने के लिए पुनः आदेश किया और उस समय सम्पूर्ण लोकों के पराक्रम तथा तपस्या के सारभूत जो ग्यारह रुद्रगण थे, वे भगवान् विष्णु द्वारा सेना के अग्रभाग में विनियुक्त किये गये। बलवान् नीले कण्ठ वाले विकराल सर्पों के फणों को अंगों पर लटकाये हुए, मस्तक पर बाल चन्द्रमा, गले में मनुष्य के मुण्डों की माला एवं वक्षःस्थल पर मयूर पिच्छ से शोभायमान, त्रिशूल की चमकती हुई ज्वाला से युक्त अंगों वाले, अति भयानक भुजामण्डल सम्पन्न, पीले वर्ण की उत्तुंग जटाजूटों से सुसज्जित तथा सिंह का चर्म पहने हुए कपाली तथा ईश आदि रुद्रगण, जो मय के असुरों को दूर भगा रहे थे, उस देव सेना के अग्रभाग में नियुक्त किये गये।।१४-१८।।

कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजेशः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो ध्रुवस्तथा।।१९।।

एत एकादशानन्तबला रुद्राः प्रभाविणः। पालयन्तो बलस्याग्रे दारयन्तश्च दानवान्।।२०।।
आप्याययन्तस्त्रिदशान्गर्जन्त इव चाम्बुदाः। हिमाचलाभे महति काञ्चनाम्बुरुहस्त्रजि।।२१।।
प्रचलच्चामरे हेमघण्टासङ्घातमण्डिते। ऐरावते चतुर्दन्ते मातङ्गेऽचलसंस्थिते।।२२।।
महामदजलस्त्रावे कामरूपे शतक्रतुः। तस्थौ हिमगिरेः शृङ्गे भानुमानिव दीप्तिमान्।।२३।।

कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजेश, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड तथा ध्रुव– ये ग्यारह महाबलवान् प्रभावशाली रुद्र हैं। ये सभी देवसेना की रक्षा तथा दानवों का विनाश करते हुए एवं समस्त सुरलोक निवासियों को सन्तुष्ट करते हुए मेघ के समान गरज रहे थे। हिमाचल के समान श्वेत एवं सुवर्ण के समान सुन्दर वर्ण वाले कमल की माला से सुसज्जित, चलते हुए चामर तथा सुवर्ण की अनेक घण्टाओं से सुशोभित शब्द करने वाले चतुर्दन्त ऐरावत गज पर जो विशालता में पर्वत के समान था, जिसके गण्डस्थल से मद का जल चू रहा था, जो इच्छानुरूप अनेक प्रकार का स्वरूप धारण करने वाला था, सहस्त्रकेतु इन्द्र आरूढ़ होकर इस प्रकार शोभित हुए, जैसे हिमवान् पर्वत के शिखर पर किरणमाली भगवान् भास्कर उदित हुए हों।।१९-२३।।

तस्यारक्षत्पदं सव्यं मारुतोऽमितविक्रमः। जुगोपापरमग्निस्तु ज्वालापूरितदिङ्मुखः।।२४।।

पृष्ठरक्षोऽभवद्विष्णुः ससैन्यस्य शतक्रतोः।
आदित्या वसवो विश्वे मरुतश्चाश्विनावपि।।२५।।

गन्धर्वा राक्षसा यक्षाः सकिंनरमहोरगाः। नानाविधायुधाश्चित्रा दधाना हेमभूषणाः।।२६।।

कोटिशः कोटिशः कृत्वा वृन्दं चिह्नोपलक्षितम्।
विश्रामयन्तः स्वां कीर्तिं बन्दिवृन्दपुरःसराः।।
चेरुर्दैत्यवधे हृष्टाः सहेन्द्राः सुरजातयः।।२७।।

उन इन्द्र के बाएँ पाद की रक्षा अमित पराक्रमशाली पवन कर रहे थे तथा दूसरे पैर की रक्षा

अग्नि देव कर रहे थे, जिनकी विकराल ज्वालाओं से सारी दिशाएँ पूर्ण हो रही थीं। सैन्य समेत इन्द्र के पृष्ठ भाग के रक्षक भगवान् विष्णु हुए। आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मरुतगण तथा दोनों अश्विनीकुमार– ये सब देवतागण तथा गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर, महासर्प आदि देवताओं की जातियाँ विविध प्रकार के विचित्र हथियारों को धारण कर सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत हो, अपने-अपने विशेष चिह्नों से चिह्नित हो, एक-एक करोड़ का यूथ बना कर, अपनी-अपनी कीर्तियों को अग्रसर बंदियों के समूहों द्वारा सुनते हुए, उस संग्राम भूमि में दैत्यों के वध होने से अति प्रसन्न हो इन्द्र के साथ-साथ घूम रही थीं।।२४-२७।।

शतक्रतोरमरनिकायपालिता पताकिनी गजशतवाजिनादिता।
सितोन्नत ध्वजपटकोटिमण्डिता बभूव सा दितिसुतशोकवर्धिनी।।२८।।

आयान्तीमवलोक्याथ सुरसेनां गजासुरः। गजरूपी महाम्भोदसङ्घातो भाति भैरवः।।२९।।
परश्वधायुधो दैत्यो दंशितोष्ठकसम्पुटः। ममर्द च रणे देवांश्चिक्षेपान्यान् करेण तु।।३०।।

देवताओं के समूहों द्वारा अभिरक्षित सैकड़ों हाथियों तथा घोड़ों के समूहों से संयुक्त करोड़ों की संख्या में श्वेत रंग के छाते, ध्वजा एवं पताकाओं से सुशोभित वह इन्द्र की सेना दैत्यों के शोक को बढ़ाती हुई आगे जा रही थी। इस प्रकार रणभूमि में समुपस्थित दैत्यों की विशाल सेना देख कर गज नामक असुर ने हस्ती का रूप धारण कर लिया और बादलों के समूहों की भाँति भीषण स्वरूप में वह दिखाई पड़ने लगा। उस दैत्य ने कर में फावड़ा लेकर अति क्रोध से अपने ओठों को चबाते हुए रणभूमि में कितने देवताओं का मर्दन कर दिया और कितनों को कर से उठा-उठा कर फेंक दिया।।२८-३०।।

परान्परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः। तस्य पातयतः सेनां यक्षगन्धर्वकिन्नराः।।३१।।

मुमुचुः संहताः सर्वे चित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम्।
पाशान्परश्वधांश्चक्रान्भिन्दिपालान्समुद् गरान्।।३२।।
कुन्तान्प्रासानसींस्तीक्ष्णान्मुद्गरांश्चापि दुःसहान्।
तान्सर्वान्सोऽग्रसद्दैत्यः कवलानिव यूथपः।।३३।।

भयानक पराक्रमशाली उस दैत्येन्द्र ने कुछ देवताओं को परशु द्वारा काट डाला। इस प्रकार सेना का विनाश करते हुए उसकें ऊपर यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरों ने मिल कर अनेक प्रकार के विचित्र प्रभाव वाले शस्त्रास्त्रों की विपुल वर्षा की। पाश, फावड़ा, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्गर, अति तीक्ष्ण छोटे भाले, बड़े भाले तथा दुःसह्य मुद्गरों को उन लोगों ने उस राक्षस के ऊपर फेंका। किन्तु उनके इन शस्त्रास्त्रों को वह दैत्यराज इस प्रकार निगल गया, जैसे यूथ का स्वामी गजराज घास के ग्रासों को उदरस्थ कर लेता है।।३१-३३।।

कोपास्फालितदीर्घाग्रकरास्फोटेन पातयन्। विचचार रणे देवान्दुष्प्रेक्ष्ये गजदानवः।।३४।।

यस्मिन्यस्मिन्निपतति सुरवृन्दे गजासुरः।
तस्मिन्स्तस्मिन्महाशब्दो हाहाकारकृतोऽभवत्॥३५॥

क्रोध से हिलते हुए अपने विशाल कर की चोटों से कितने देवताओं को पृथ्वी पर गिराते हुए वह गज नामक दैत्य उस कठिन युद्ध में विचरण करने लगा। जिस-जिस देवताओं के समूहों में गजासुर प्रवेश करता था, उस-उस में घोर हाहाकार मच जाता था।।३४-३५।।

अथ विद्रवमाणं तद् बलं प्रेक्ष्य समन्ततः। रुद्राः परस्परं प्रोचुरहङ्कारोत्थितार्चिषः॥३६॥
भो भो गृह्णीत दैत्येन्द्रं मर्दतैनं हताश्रयम्। कर्षतैनं शितैः शूलैर्भञ्जतैनं च मर्मसु॥३७॥

इस प्रकार चारों ओर से देवताओं की सेना को भागते हुए देख कर रुद्रगण परस्पर अहंकार से पूर्ण होकर चिल्लाने लगे-'अरे अरे! पकड़ते जाओ इस दैत्येन्द्र को। इस मृत्यु के मुख में गये हुए को मींज डालो। तीक्ष्ण धार वाले शूलों से इसको पकड़ कर खींच लो। इसके मर्मस्थलों में कठोर आघात करो।।३६-३७।।

कपाली वाक्यमाकर्ण्य शूलं शितशिखामुखम्।
संमार्ज्य वामहस्तेन संरम्भविवृतेक्षणः।३८॥

अधावद् भृकुटीवक्रो दैत्येन्द्राभिमुखो रणे। दृढेन मुष्टिबन्धेन शूलं विष्टभ्य निर्मलम्॥३९॥

ऐसी बातें सुन कर कपाली नामक प्रथम रुद्र क्रोध से विस्तृत नेत्र हो तीक्ष्ण धार वाले शूल को बाएँ हाथ में लेकर भृकुटी को कुटिल कर रणभूमि में उस दैत्येन्द्र के सम्मुख दौड़े। वहाँ जाकर दृढ़ मुट्ठी में इस निर्मल शूल को थाम कर कपाली ने गजासुर के गण्डस्थल पर कठोर आघात किया।।३८-३९।।

जघान कुम्भदेशे तु कपाली गजदानवम्। ततो दशापि ते रुद्रा निर्मलायोमयै रणे॥४०॥
जघ्नः शूलैश्च दैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे। स्रुतशोणितरन्ध्रस्तु शितशूल मुखार्दितः।४१॥

बभौ कृष्णच्छविर्दैत्यःशरदीवामलं सरः।
प्रोत्फुल्लारुण नीलाब्जसङ्घातः सर्वतोदिशम्॥४२॥

तदनन्तर शेष दस रुद्रों ने भी अपने निर्मल लोहे से बने हुए शूलों से उस पर्वत के समान विशाल शरीर दैत्येन्द्र के ऊपर कठोर आघात किया। उस तीक्ष्ण शूल से आहत होकर छिद्रों से पर्वत के समान विशाल शरीर दैत्येन्द्र के ऊपर कठोर आघात किया। उस तीक्ष्ण शूल से आहत होकर छिद्रों से रक्त को चुवाता हुआ वह कृष्ण शरीर दैत्यराज इस प्रकार शोभित हुआ, जैसे शरद् ऋतु के निर्मल सरोवर में चारों ओर से नीले और लाल वर्ण वाले कमलों के पुष्पसमूह खिले हुए हों।।४०-४२।।

भस्मशुभ्रतनुच्छायै रुद्रैर्हसैरिवाऽऽवृतः। उपस्थितार्तिर्दैत्योऽथ प्रचलत्कर्णपल्लवः॥४३॥

शम्भुंबिभेद दशनेर्नाभिदेशे गजासुरः।
दृष्ट्वा सक्तं तु रुद्राभ्यां नव रुद्रास्ततोऽद् भुतम्॥४४॥

ततक्षुर्विविधैः शस्त्रैः शरीरममरद्विषः। निर्भया बलिनो युद्धे रणभूमौ व्यवस्थिताः॥४५॥

उस समय वह शरीर के चारों ओर से हंसों के समूह की भाँति भस्म के समान शुभ्र कान्ति वाले रुद्रगणों से घिरा हुआ था। इस प्रकार चारों ओर से कठिनाइयों में फँसे हुए गजासुर ने जिसके कानों के दोनों पल्लव हिल रहे थे, अपने दाँतों से शम्भु के नाभि प्रदेश में कठोर प्रहार किया। दोनों रुद्रों से युद्ध करते हुए गजासुर को देख शेष नव रुद्रों ने अपने विचित्र प्रकार के अस्त्रों से उस देवशत्रु के ऊपर क्रूर आघात किया। वे परम बलवान् रुद्रगण युद्ध में निर्भय तथा रणभूमि में व्यवस्थित चित्त होकर युद्ध कर रहे थे।।४३-४५।।

मृतं महिषमासाद्य वने गोमायवो यथा। कपालिनं परित्यज्य गतश्चासुरपुङ्गवः॥४६॥
वेगेन कुपितो दैत्यो नव रुद्रानुपाद्रवत्। ममर्द चरणाघातैर्दन्तैश्चापि करेण च॥४७॥

गजासुर के ऊपर आघात करते हुए वे रुद्रगण इस प्रकार दिखाई पड़ रहे थे, जैसे वन में मरे हुए महिष को प्राप्त कर शृगालों के समूह जुट पड़े हों। तदनन्तर असुरनायक गज ने कपाली को छोड़ कर दूसरी ओर प्रस्थान किया। आगे कुपित होकर वेग से उसने अन्य नवों रुद्रों पर आक्रमण किया और उनको अपने पैरों की चोटों, दाँतों और चपेटों से खूब मर्दित किया।।४६-४७।।

स तैस्तुमुलयुद्धेन श्रममासादितो यदा। तदा कपाली जग्राह करं तस्यामरद्विषः॥४८॥
भ्रामयामास वेगेन ह्यतीव च गजासुरम्। दृष्ट्वा श्रमातुरं दैत्यं किञ्चित्स्फुरितजीवितम्॥४९॥
निरुत्साहं रणे तस्मिन्गतयुद्धोत्सवोद्यमम्। ततः पतत एवास्य चर्म चोत्कृत्य भैरवम्॥५०॥
स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघं चकाराम्बरमात्मनः।

इस प्रकार रुद्रों के साथ युद्ध करते हुए दैत्य जब बहुत थक गया, तब कपाली नामक रुद्र ने उस देवशत्रु के कर को पकड़ लिया और अतिशय वेग से उसको खूब घुमाया। घुमाते समय अति श्रम के कारण व्याकुल हो जाने पर जब उन्होंने देखा कि कुछ प्राण शेष रह गया है और युद्ध करने की अभिलाषा बीत चुकी है, तब जोर से पटक दिया और गिरते ही उसके कठोर चर्म को उसके चारों ओर से रक्त चूने वाले शरीर से निकाल कर अपना परिधान बना लिया।।४८-५०.५।।

दृष्ट्वा विनिहतं दैत्यं दानवेन्द्रा महाबलाः॥५१॥
वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जग्मुर्निपेतुश्च सहस्रशः। दृष्ट्वा कपालिनो रूपं गजचर्माम्बरावृतम्॥५२॥
दिक्षु भूमौ तमेवोग्रं रुद्रं दैत्या व्यलोकयन्।

इस प्रकार मारे गये उस दैत्येन्द्र को देख कर अन्य महाबलवान् दैत्यगण भय के मारे त्रस्त हो गये और सहस्रों की संख्या में भाग गये। कितने रणभूमि छोड़ कर धीरे से खिस गये और कितने वहीं गिर पड़े। उस समय सभी दैत्यगण गज के चर्म से आवेष्टित कपाली रुद्र के भयंकर रूप को देख कर पृथ्वीमण्डल में तथा सभी दिशाओं में सर्वत्र रुद्र ही रुद्र देखने लगे।।५१-५२.५।।

एवं विलुलिते तस्मिन्दानवेन्द्रे महाबले॥५३॥

द्विपाधिरूढो दैत्येन्द्रो हतदुन्दुभिना ततः। कल्पान्ताम्बुधरामेण दुर्धरेणापि दानवः॥५४॥
निमिरभ्यपतत्तूर्णं सुरसैन्यानि लोडयन्।
यां यां निमिगजो याति दिशं तां तां सवाहनाः॥५५॥
संत्यज्य दुद्रुवुर्देवा भयार्तास्त्यक्तहेतयः। गन्धेन सुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्य हस्तिनः॥५६॥

इस प्रकार उस दैत्येन्द्र गजासुर का निधन हो जाने पर हाथी पर सवार होकर दैत्यराज निमि महाप्रलयकालीन मेघों के विकराल स्वरों के समान अति दुर्धर्ष शब्दों वाली दुन्दुभि को बजवा कर अत्यन्त शीघ्रता से देवताओं की सेना को व्याकुल करता हुआ युद्धभूमि में अग्रसर हुआ। जिस-जिस दिशा में उस निमि दैत्य का हाथी जाता था, उस-उस दिशा से देवगण अति भयभीत हो हथियार छोड़ कर वाहन समेत भाग जाते थे। असुर के उस हाथी के मद की सुगन्धि से देवताओं के हाथी भी भाग गये।।५३-५६।।

पलायितेषु सैन्येषु सुराणां पाकशासनः। तस्थौ दिक्पालकैः सार्धमष्टभिः केशवेन च॥५७॥
सम्प्राप्तो निमिमातङ्गो यावच्छक्रगजं प्रति।
तावच्छ्रक्रगजो यातो मुक्त्वा नादं स भैरवम्॥५८॥

देवताओं की सेना के भाग जाने पर केवल पाकशासन इन्द्र आठों दिक्पालों तथा भगवान् केशव के साथ युद्धभूमि में अवस्थित शेष रह गये। अन्त में दैत्येन्द्र निमि का हाथी जिस समय इन्द्र के हाथी के सम्मुख आया, उस समय इन्द्र का हाथी भी भयंकर शब्द करते हुए भागने लगा।।५७-५८।।

ध्रियमाणोऽपि यत्नेन स रणे नैव तिष्ठति। पलायिते गजे तस्मिन्नारूढः पाकशासनः॥५९॥
विपरीतमुखोऽयुध्यद्दानवेन्द्रबलं प्रति। शतक्रतुस्तु वज्रेण निमिं वक्षस्यताडयत्॥६०॥
गदया दन्तिनश्चास्य गण्डदेशेऽहनद्दृढम्।

इन्द्र द्वारा प्रयत्नपूर्वक रोके जाने पर भी वह रणभूमि में तनिक भी नहीं रुक सका। तब उस भागते हुए गजराज पर आरूढ़ होकर पाकशासन उल्टा मुख करके दानवों की सेना की ओर अभिमुख हो युद्ध करने लगे। उस समय देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से निमि के वक्षःस्थल पर घोर प्रहार किया और गदा से उसके गज पर भी भीषण प्रहार किया। किन्तु उनकी कोई भी परवाह न कर निर्भय पौरुषशाली निमि ने अपने मुद्गर से ऐरावत पर घोर आघात किया।।५९-६०.५।।

तत्प्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः॥६१॥
ऐरावणं कटीदेशे मुद्गरेणाभ्यताडयत्। स हतो मुद्गरेणाथ शक्रकुञ्जर आहवे॥६२॥
जगाम पश्चाच्चरणैर्धरणीं भूधराकृतिः। लाघवात्क्षिप्रमुत्थाय ततोऽमरमहागजः॥६३॥
रणादपससर्पाऽऽशु भीषितो निमिहस्तिना। ततो वायुर्ववौ रूक्षो बहुशर्करपांसुलः॥६४॥

युद्धभूमि में दैत्य के मुद्गर द्वारा आहत देवराज का हाथी अपने पिछले पैरों से पृथ्वी पर पहाड़

की भाँति गिर पड़ा। किन्तु अमर गजराज ऐरावत पुनः लाघवपूर्वक शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ और फिर निमि के हाथी से भयभीत होकर तुरन्त रण से भागना प्रारम्भ किया। उसी समय प्रचुर परिमाण में छोटे-छोटे कंकड़ और धूलि के कणों से युक्त तीक्ष्ण वायु जोरों से बहने लगी।।६१-६४।।

सम्मुखो निमिमातङ्गो जवनाचलकम्पनः। सुतरक्तो बभौ शैलो धनधातुह्रदो यथा।।६५।।

तदनन्तर रणभूमि से ऐरावत के भागने पर भी इन्द्र के सम्मुख युद्ध में पर्वत के समान अचल निमि का वह हाथी फिर दिखाई पड़ा। उस समय रक्त के प्रवाह से गेरु के सरोवर से सुशोभित पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था।।६५।।

धनेशोऽपि गदां गुर्वीं तस्य दानवहस्तिनः। चिक्षेप वेगाद्दैत्येन्द्रो निपपातास्य मूर्धनि।।६६।।
गजो गदानिपातेन स तेन परिमूर्च्छितः। दन्तैर्भित्त्वा धरां वेगात्पपाताचलसन्निभः।।६७।।

तब धनपति कुबेर ने अपनी बड़ी भारी गदा को उठा कर बड़े वेग से उस दैत्य के हाथी के ऊपर प्रहार किया, जिससे उसके मस्तक से दैत्येन्द्र निमि नीचे गिर पड़ा और वह गजराज उस गदा की भीषण चोट से बिल्कुल मूर्च्छित हो गया। उस समय अपने दाँतों से पृथ्वी को विदारित कर एक गिरिराज की भाँति वह नीचे गिरा था।।६६-६७।।

पतिते तु गजे तस्मिन्सिंहनादो महानभूत्। सर्वतः सुरसैन्यानां गजबृंहितबृंहितैः।।६८।।
ह्रेषारवेण चाश्वानां गुणास्फोटैश्च धन्विनाम्।
गजं तं निहतं दृष्ट्वा निमिं चापि पराङ्मुखम्।।६९।।
श्रुत्वा च सिंहनादं च सुराणामतिकोपनः।
जम्भो जज्वाल कोपेन पीताज्य इव पावकः।।७०।।

उस गज के गिर जाने पर चारों ओर से देवताओं की सेना में हाथियों के दहाड़ने से, घोड़ों के हिनहिनाने से, धनुर्धारियों के प्रत्यञ्चा बजाने से महान् भीषण नाद होने लगा। तब उस गज को मरा हुआ तथा निमि को युद्ध से विमुख होते देख और उधर देवताओं की सेना में इतना घोर शब्द होते सुन अत्यन्त क्रोधी जम्भ नामक असुर इतना क्रुद्ध हुआ, जैसे घी डालने से अग्नि प्रवृद्ध होता है।।६८-७०।।

स सुरान्कोपरक्ताक्षो धनुष्यारोप्य सायकम्।
तिष्ठतेत्यब्रवीत्तावत्सारथिं चाप्यचोदयत्।।७१।।
वेगेन चलतस्तस्य तद्रथस्याभवद्द्युतिः। यथाऽऽदित्यसहस्रस्याभ्युदितस्योदयाचले।।७२।।

क्रोध से लाल नेत्र वाले उस असुर ने अपने धनुष पर तीक्ष्ण बाणों का संधान कर देवताओं से कहा–'खड़े हो जाओ।' और यह कहने के बाद सारथी को युद्धभूमि में चलने के लिए उसने प्रेरित किया। वेग से चलते हुए उस महाअसुर एवं उसके रथ की ऐसी शोभा हुई, जैसे उदयाचल पर उदित सहस्रों सूर्यों की तथा उनके रथों की शोभा होती हो।।७१-७२।।

पताकिना रथेनाऽऽजौ किङ्किणीजालमालिना। शशिशुभ्रातपत्रेण स तेन स्यन्दनेन तु॥७३॥
घट्टयन् सुरसैन्यानां हृदयं समदृश्यत। तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्याहितसायकः॥७४॥
शतक्रतुरदीनात्मा दृढमाधत्त कार्मुकम्। बाणं च तैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्मगम्॥७५॥

किंकिणी के समूहों की माला से सुशोभित पताका संयुक्त, चन्द्रमा के समान श्वेत शुभ्र छत्र से अलंकृत सुन्दर रथ पर आरूढ़ देवताओं के सैनिकों के हृदयों को विलोड़ित करता हुआ वह सम्मुख दिखाई पड़ा। रणभूमि में सम्मुख आये हुए उस दैत्यराज को देख कर अपने धनुष पर इन्द्र ने निर्भय होकर एक तैलधौत अर्धचन्द्राकार लक्ष्य पर न चूकने वाले बाण को चढ़ाया।।७३-७५।।

तेनास्य सशरं चापं रणे चिच्छेद वृत्रहा। क्षिप्रं संत्यज्य तच्चापं जम्भो दानवनन्दनः॥७६॥
अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्भारसाधनम्। शरांश्चाऽऽशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान्॥७७॥

वृत्र के शत्रु इन्द्र ने अपने उस अर्धचन्द्राकार बाण से उस दैत्य के बाण सहित धनुष को काट दिया। दैत्यराज जम्भ ने शीघ्र ही उस धनुष को छोड़ कर वेगपूर्वक एक दूसरा भार सहन करने में सशक्त धनुष धारण किया और उस पर तैलधौत कभी विफल न होने वाले सर्पों के समान विकराल कई बाणों का संधान किया।।७६-७७।।

शक्रं विव्याध दशभिर्जत्रुदेशे तु पत्रिभिः।
हृदये च त्रिभिश्चापि द्वाभ्यां च स्कन्धयोर्द्वयोः॥७८॥
शक्रोऽपि दानवेन्द्राय बाणजालमपीदृशम्।
अप्राप्तान्दानवेन्द्रस्तु शराञ्छक्रभुजेरितान्॥७९॥
चिच्छेद दशधाऽऽकाशे शरैरग्निशिखोपमैः।

उन बाणों में दस बाणों द्वारा उसने इन्द्र की कुक्षि में आघात किया और तीन बाणों से हृदय में तथा दो बाणों से दोनों कंधों में प्रहार किया। इन्द्र ने भी उस दैत्यराज जम्भ के लिए ऐसे ही प्रभावशाली बाणों को छोड़ा। किन्तु इन्द्र द्वारा छोड़े गये बाणों को अपने समीप पहुँचने के पहिले ही उसने अपने अग्नि की ज्वाला के समान भीषण बाणों से आकाश में ही दस खण्डों में परिणत कर दिया।।७८-७९.५।।

ततस्तु शरजालेन देवेन्द्रो दानवेश्वरम्॥८०॥
आच्छादयत् यत्नेन वर्षास्विव घनैर्नभः।

तब देवराज इन्द्र ने अति प्रयत्न करके अपने बाण समूहों द्वारा जम्भ को इस प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे वर्षाकाल में मेघों से नभमण्डल आच्छादित हो जाता है। तदनन्तर दैत्यराज जम्भ ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा इस प्रकार इन्द्र के बाणों को निष्फल कर दिया, जैसे प्रचण्ड वायु बादलों के समूहों को दिशाओं के मुखों पर से छिन्न-भिन्न कर देती है।।८०-८१.५।।

दैत्योऽपि बाणजालं तद्व्यधमत्सायकैः शितैः॥८१॥
यदा वायुर्घनाटोपं परिवार्य दिशो मुखे। शक्रोऽथ क्रोधसंरम्भान्न विशेषयते यदा॥८२॥

दानवेन्द्रं तदा चक्रे गन्धर्वास्त्रं महाद्भुतम्। तदुत्थतेजसा व्याप्तमभूद्गमनगोचरम्।।८३।।

इस प्रकार क्रोध के वेग में जब इन्द्र उस दैत्यराज की कोई विशेष हानि नहीं कर सके, तब उन्होंने अत्यन्त अद्भुत गन्धर्वास्त्र का प्रयोग किया। उसके उठे हुए तेज से अनेक प्रकार के तोरण आदि से सुसज्जित गन्धर्व नगरों से, जिनके अत्यन्त अद्भुत आकार थे और जो चारों ओर से अस्त्रों की वृष्टि कर रहे थे, आकाश मण्डल एकदम व्याप्त गोचर होने लगा।।८२-८३।।

गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः। मुञ्चद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिं समन्ततः।।८४।।
अथास्त्रवृष्ट्या दैत्यानां हन्यमाना महाचमूः। जम्भं शरणमागच्छदप्रमेयपराक्रमम्।।८५।।
व्याकुलोऽपि स्वयं दैत्यः सहस्राक्षास्त्रपीडितः।
स्मरन्साधुसमाचारं भीतत्राणपरोऽभवत्।।८६।।

उन अस्त्रों की वृष्टि से मारी जाती हुई दैत्यों की महती सेना अनुपम पराक्रमशाली जम्भ की शरण में आई। उस समय सहस्रनेत्र इन्द्र द्वारा स्वयं पीड़ित तथा व्याकुलित हृदय दैत्य अपने मंगलमय समाचारों को स्मरण करता हुआ भयभीत होकर आने वाले उन सैनिकों का शरणदाता बना।।८४-८६।।

अथास्त्रं मौसलं नाम मुमोच दितिनन्दनः। ततोऽयोमुसलैः सर्वमभवत्पूरितं जगत्।।८७।।
एकप्रहारकरणैरप्रधृष्यैः समन्ततः। गन्धर्वनगरं तेषु गन्धर्वास्त्रविनिर्मितम्।।८८।।
गान्धर्वमस्त्रं सन्धाय सुरसैन्येषु चापरम्। एकैकेन प्रहारेण गजानश्वान्महारथान्।।८९।।
रथाश्वान्सोऽहनत्क्षिप्रं शतशोऽथ सहस्रशः।

दिति के पुत्र उस जम्भासुर ने तब मौसल नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे समस्त जगत् लौहमय मुसलों से व्याप्त हो गया। एक-एक पर प्रहार करने वाले उन परम शक्तिशाली मुसलों से गन्धर्वास्त्र द्वारा बनाये गये गन्धर्व नगर भी जब छिप गये, तब दैत्य ने एक-दूसरे गान्धर्व नामक अस्त्र को देवताओं की सेना पर छोड़ा। जिसके एक-एक प्रहार से हाथी, घोड़े, महारथी, रथ, उनके अश्वों की सैकड़ों और सहस्रों की संख्या को उसने अति शीघ्रता से विनष्ट कर दिया।।८७-८९.५।।

ततः सुराधिपस्त्वाष्ट्रमस्त्रं च समुदीरयत्।।९०।।
संध्यमाने ततस्त्वाष्ट्रे निश्चेरुः पावकार्चिषः।
ततो यन्त्रमयान्दिव्यानायुधान्द्रष्प्रधर्षिणः।।९१।।
तैर्यन्त्रैरभवद्बद्धमन्तरिक्षे वितानकम्। वितानकेन तेनाथ प्रशमं मौसले गते।।९२।।

तब सुराधिपति इन्द्र ने अपने त्वाष्ट्र नामक अस्त्र का प्रयोग किया। त्वाष्ट्र अस्त्र के संधान किये जाने पर रणभूमि में अग्नि की भीषण लपटें उठने लगीं। तदनन्तर यंत्रों से युक्त कभी विफल न होने वाले दिव्य अस्त्रों का प्रयोग भी उसने किया, उन यन्त्रों से आकाश में वितान (मण्डप) की तरह आवरण छा उठा। उस वितान के मुसल अस्त्र का प्रभाव शान्त हो गया।।९०-९२।।

शैलास्त्रं मुमुचे जम्भो यन्त्रसङ्घाततताडनम्। व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततो वर्षमवर्तत॥९३॥

उसके शान्त हो जाने से जम्भासुर ने यंत्रों के समूहों को नष्ट करने वाले शैलास्त्र का अभिसंधान किया, जिससे व्याम (दोनों हाथों को फैलाने से जितना अन्तर होता है, उसे व्याम कहते हैं) जितने बड़े पत्थरों की वृष्टि होने लगी॥९३॥

त्वाष्ट्रस्य निर्मितान्याशु यन्त्राणि तदनन्तरम्। तेनोपलनिपातेन गतानि तिलशस्ततः॥९४॥
यन्त्राणि तिलशः कृत्वा शैलास्त्रं परमूर्धसु। निपपाततिवेगेनादारयत्पृथिवीं ततः॥९५॥

तब त्वाष्ट्र अस्त्र द्वारा उत्पन्न यन्त्रों के समूह पत्थरों की वृष्टि से काट कर तिल रूप में परिणत कर दिये गये। इस प्रकार वे शैलास्त्र यन्त्रों को तिलशः काट कर शत्रुओं के ऊपर अति वेग से पृथ्वी को विदारित करते हुए भीषण रूप में गिरने लगे॥९४-९५॥

ततो वज्रास्त्रमकरोत्सहस्त्राक्षः पुरन्दरः। तदोपलमहावर्षं व्यशीर्यत समन्ततः॥९६॥

तदनन्तर सहस्त्र नेत्रों वाले इन्द्र ने वज्रास्त्र का अभिसंधान किया, जिससे पत्थरों की वर्षा चारों ओर से छिन्न-भिन्न हो गयी॥९६॥

ततः प्रशान्ते शैलास्त्रे जम्भो भूधरसन्निभः। ऐषीकमस्त्रमकरोदभीतोऽतिपराक्रमः॥९७॥

शैलास्त्र के शान्त हो जाने पर पर्वत के समान विशाल आकृति वाले अति पराक्रमी जम्भासुर ने निर्भय होकर ऐषीक नामक अस्त्र का प्रयोग किया॥९७॥

ऐषीकेणागमन्नाशं वज्रास्त्रं शक्रवल्लभम्। विजृम्भत्यथ चैषीके परमास्त्रेऽतिदुर्धरे॥९८॥
जज्वलुर्देवसैन्यानि सस्यन्दनगजानि तु। दह्यमानैष्वनीकेषु तेजसा सुरसत्तमः॥९९॥
आग्नेयमस्त्रमकरोद्बलवान् पाकशासनः। तेनास्त्रेण तदस्त्रं च बभ्रंशे तदनन्तरम्॥१००॥

उस ऐषीक अस्त्र से इन्द्र का प्यारा वज्रास्त्र विनष्ट हो गया। अत्यन्त प्रभावशाली तथा उत्तम ऐषीक अस्त्र के प्रयोग करने पर रथों तथा हाथियों के समेत देवताओं की सेना जलने लगी। इस प्रकार जलती हुई अपनी सेना को देख कर देवश्रेष्ठ पाकशासन इन्द्र ने अति तेज़ से अपने आग्नेय नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जिसके प्रभाव से वह अस्त्र प्रभावहीन कर दिया गया॥९८-१००॥

तस्मिन्प्रतिहते चास्त्रे पावकास्त्रं व्यजृम्भत।
जज्वाल कायं जम्भस्य सरथं च ससारथिम्॥१०१॥
ततः प्रतिहतः सोऽथ दैत्येन्द्रः प्रतिभानवान्।
वारुणास्त्रं मुमोचाथ शमनं पावकार्चिषाम्॥१०२॥

उस अस्त्र के विनष्ट हो जाने पर इन्द्र का पावकास्त्र प्रज्वलित हुआ, जिससे रथ और सारथी सहित जम्भासुर का सारा शरीर जलने लगा। उस अस्त्र से प्रतिहत होने पर प्रभावशाली जम्भ ने अग्नि की लपटों को शान्त करने वाले वारुणास्त्र का प्रयोग किया॥१०१-१०२॥

ततो जलधरैर्व्योम स्फुरद्विद्युल्लताकुलैः। गम्भीरमुरजध्वानैरापूरितमिवाम्बरम्॥१०३॥
करीन्द्रकरतुल्याभिर्जलधाराभिरम्बरात्। पतन्तीभिर्जगत्सर्वं क्षणेनाऽऽपूरितं बभौ॥१०४॥

जिससे वेगपूर्वक कड़कती हुई बिजली की लताओं से संयुक्त गम्भीर मृदंग की भाँति ध्वनि करने वाले बादलों से समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया। उस समय आकाश से गिरती हुई हाथी के शुण्डदण्ड की भाँति मोटी जलधाराओं से समस्ता जगत् पूरित होकर शोभित होने लगा॥१०३-१०४॥

शान्तमाग्नेयमस्त्रं तत्प्रविलोक्य सुराधिपः। वायव्यमस्त्रमकरोन्मेघसङ्घातनाशनम्॥१०५॥

इस अस्त्र के प्रभाव से आग्नेय अस्त्र एकदम शान्त हो गया। सुराधिप इन्द्र ने अपने अस्त्र को शान्त हुआ देख मेघों के समूहों को नाश करने वाले वायव्य नामक अस्त्र का प्रयोग किया॥१०५॥

वायव्यास्त्रबलेनाथ निर्धूते मेघमण्डले। बभूव विमलं व्योम नीलोत्पलदलप्रभम्॥१०६॥
वायुना चातिघोरेण कम्पितास्ते तु दानवाः।
न शेकुस्तत्र ते स्थातुं रणेऽतिबलिनोऽपि ये॥१०७॥
तदा जम्भोऽभवच्छैलो दशयोजनविस्तृतः। मारुतप्रतिघातार्थं दानवानां भयापहः॥१०८॥
मुक्तानानायुधोदग्रतेजोभिज्वलितद्रुमः।

वायव्यास्त्र के प्रभाव से मेघमण्डल के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण व्योम मण्डल नीचे कमल के दल के समान निर्मल हो गया। अति प्रचण्ड वायु के द्वारा कँपाये गये असुरवृन्द युद्ध भूमि में अति बलवान् होकर भी जब थम नहीं सके, तब जंभासुर स्वयं उस प्रचण्ड वायु को रोकने के लिये दस योजन में विस्तृत पहाड़ के रूप में हो गया, जिस पर अनेक प्रकार के छोड़े गये हथियारों के उद्दण्ड तेज से वृक्षों की पंक्तियाँ प्रकाशमान हो रही थीं॥१०६-१०८.५॥

ततः प्रशमिते वायौ दैत्येन्द्रे पर्वताकृतौ॥१०९॥
महाशनीं वज्रमयीं मुमोचाऽऽशु शतक्रतुः।
तयाऽशन्या पतितया दैत्यस्याचलरूपिणः॥११०॥
कन्दराणि व्यशीर्यन्त समन्तान्निर्झराणि तु।
ततः सा दानवेन्द्रस्य शैलमाया न्यवर्तत॥१११॥

इस प्रकार दैत्येन्द्र जंभ को पर्वताकार होने पर जब वायु शान्त हो गयी, तब शतक्रतु इन्द्र ने वज्रमयी अतिघोर अशनि (बिजली) उस शत्रु सेना पर फेंकी। गिरी हुई बिजली से उस पर्वत रूपधारी दैत्येन्द्र की सारी कन्दरायें छिन्न-भिन्न हो गयीं। चारों ओर से बहने वाले झरने विनष्ट हो गये, इस प्रकार उसकी वह पर्वत रचना की माया समाप्त हो गई॥१०९-१११॥

निवृत्तशैलमायोऽथ दानवेन्द्रो मदोत्कटः। बभूव कुञ्जरो भीमो महाशैलसमाकृतिः॥११२॥

स ममर्द सुरानीकं दन्तैश्चाप्यहनत्सुरान्।
बभञ्ज पृष्ठतः कांश्चित्करेणाऽऽवेष्ट्य दानवः॥११३॥

शैलमाया के निवृत्त हो जाने पर मदोन्मत्त दैत्येन्द्र एक महाभीषण महान् गिरि के समान विकराल हाथी के रूप में परिणत हो गया। उसने पैरों से देवताओं की सेना का मर्दन करना प्रारम्भ किया और दाँतों से कितने देवताओं का संहार कर दिया। कितनों की पीठ अपने शुण्ड में लपेट कर तोड़ दी।।११२-११३।।

ततः क्षपयतस्तस्य सुरसैन्यानि वृत्रहा। अस्त्रं त्रैलोक्यदुर्धर्षं नारसिंहं मुमोच ह॥११४॥
ततः सिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसा। कृष्णदंष्ट्राट्टहासानि क्रकचाभनखानि च॥११५॥

देवसेना का विनाश करते हुए उस दैत्येन्द्र को देख कर वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र ने त्रैलोक्य को कम्पित करने वाले नरसिंह नामक अस्त्र का अभिसंधान किया। मन्त्र के प्रभाव से रणभूमि में काले रंग की दाढ़ों से भीषण अट्टहास करने वाले, आरे के समान विकराल नखों वाले सहस्रों सिंह विचरने लगे।।११४-११५।।

तैर्विपाटितगात्रोऽसौ गजमायां व्यपोथयत्।
ततश्चाऽऽशीविषो घोरोऽभवत्फणशताकुलः॥११६॥
विषनिःश्वासनिर्दग्धं सुरसैन्यं महारथः। ततोऽस्त्रं गारुडं चक्रे शक्रश्चारुभुजस्तदा॥११७॥

उन सिंहों द्वारा फाड़े जाने पर उस असुर ने अपनी गज की वह माया छोड़ दी और फिर सौ फणों से युक्त अति भयानक सर्प का स्वरूप ग्रहण किया। उस महावीर ने अपनी विषैली श्वासों से देवताओं की सेना को विशेष रूप से जला दिया। तब सुन्दर भुजाओं वाले इन्द्र ने अपने गरुड़ नामक अस्त्र का प्रयोग किया।।११६-११७।।

ततो गरुत्मतस्तस्मात्सहस्राणि विनिर्ययुः।
तैर्गरुत्मद्भिरासाद्य जम्भो भुजगरूपवान्॥११८॥
कृतस्तु खण्डशो दैत्यः साऽस्य माया व्यनश्यत।
प्रनष्टायां तु मायायां ततो जम्भो महासुरः॥११९॥
चकार रूपमतुलं चन्द्रादित्यपथानुगम्। विवृत्तवदनो ग्रस्तुमियेष सुरपुङ्गवान्॥१२०॥

उस अस्त्र से सहस्रों गरुड़ निकल पड़े। युद्धभूमि में उन गरुड़ों ने जब भुजंग रूपधारी जम्भासुर को पकड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिये, तब उस दैत्य की वह माया भी विनष्ट हो गई। माया के विनष्ट हो जाने पर महान् पराक्रमी जंभासुर ने अपना चन्द्रमा तथा सूर्य के मार्ग में भ्रमण करने वाला एक अनुपम रूप बनाया और मुँह फैला कर देवताओं के स्वामियों को निगल लेने की क्रूर चेष्टा की।।११८-१२०।।

ततोऽस्य विविशुर्वक्त्रं समहारथकुञ्जरा। सुरसेनाऽविशद्भीमं पातालोत्तानतालुकम्॥१२१॥

सैन्येषु ग्रस्यमानेषु दानवेन बलीयसा। शक्रो दैन्यं सामापन्नः श्रान्तबाहुः सवाहनः॥१२२॥

पाताल लोक तक तालु फैलाये हुए उस दानव के अति भयानक मुख में महारथियों एवं हाथियों के समेत देवताओं की सेना प्रविष्ट होने लगी। इस प्रकार उस महाबलवान् दैत्य द्वारा सेना के निगल लेने पर देवराज इन्द्र वाहन समेत अति दीनहीन दशा को पहुँच गये। उनके बाहु परिश्रम से क्लान्त हो गये॥१२१-१२२॥

कर्तव्यतां नाध्यगच्छत्प्रोवाचेदं जनार्दनम्। किमनन्तरमत्रास्ति कर्तव्यस्यावशेषितम्॥१२३॥
यदाश्रित्य घटामोऽस्य दानवस्य युयुत्सवः। ततो हरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः॥१२४॥

उस समय क्या करना चाहिए, इसका विचार उनके मन में नहीं आ रहा था, तब उन्होंने भगवान् जनार्दन से यह बात कही–'हे भगवन्! इसके बाद अब हमें क्या करने के लिए शेष रहा? जिसके करने से इस दैत्य के साथ युद्ध में हम लोग विजयी हो सकते हैं।' इन्द्र की ऐसी बातें सुन उदारचेता विष्णु ने कहा॥१२३-१२४॥

न सांप्रतं रणस्त्याज्यस्त्वया कातरभैरवः। वर्धस्वाऽऽशु महामायां पुरन्दर रिपुं प्रति॥१२५॥
भयैष लक्षितो दैत्योऽधिष्ठितः प्राप्तपौरुषः।
मा शक्र मोहमागच्छ क्षिप्रमस्त्रं स्मर प्रभो॥१२६॥

पुरन्दर! इस समय भयभीत होकर इस भयानक युद्ध को तुम्हें छोड़ना नहीं चाहिए। शीघ्र ही शत्रु के विनाश के लिए तुम भी अपनी महामाया का विस्तार करो। समर्थ इन्द्र! यह पराक्रमी दैत्य मेरा जाना हुआ है। अज्ञात में मत फँसो, शीघ्र ही दूसरे अस्त्र का स्मरण (प्रयोग) करो॥१२५-१२६॥

ततः शक्रः प्रकुपितो दानवं प्रति देवराट्। नारायणास्त्रं प्रयतो मुमोचासुरवक्षसि॥१२७॥
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योऽग्रसत्क्षणात्।
त्रीणि लक्षाणि गन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसान्॥१२८॥
ततो नारायणास्त्रं तत्पपातासुरवक्षसि। महास्त्रभिन्नहृदयः सुस्राव रुधिरं च सः॥१२९॥
रणागारमिवोद्गारं तत्याजासुरनन्दनः। तदस्त्रतेजसा तस्य रूपं दैत्यस्य नाशितम्॥१३०॥

हरि की ऐसी बातें सुन देवराज इन्द्र ने अति क्रुद्ध होकर उस दानव के संहारार्थ एकाग्रचित्त हो अपने नारायण नामक अस्त्र का अभिसंधान किया और उससे दैत्य की छाती पर कठोर प्रहार किया। किन्तु इन्द्र के बाण न छोड़ने तक ही वह भयानक दैत्यराज अपना भीषण मुख फैला कर क्षण भर में ही गन्धर्व, किन्नर, सर्प एवं राक्षसों की तीन लाख सेना को निगल चुका था। इसी बीच वह नारायणास्त्र उस असुर के वक्षःस्थल में जा लगा। उस महान् प्रभावशाली अस्त्र से घायल होकर भिन्नहृदय वह असुरराज रक्त गिराने लगा, जिससे उस असुरनन्दन ने उद्गार (वमन) की क्रिया से अपने उदर में स्थित उन निगले गये वीरों को बाहर निकाल कर एक रणागार ही उपस्थित कर दिया। उस अस्त्र के प्रभाव से दैत्य का वह रूप विनष्ट हो गया॥१२७-१३०॥

ततश्चान्तर्दधे दैत्यो वियत्यनुपलक्षितः।
गगनस्थः स दैत्येन्द्रः शस्त्रासनमतीन्द्रियम्॥१३१॥
मुमोच सुरसैन्यानां संहारे कारणं परम्।
प्रासान्परश्वधांश्चक्रान्बाणान्वज्रान्समुद्गरान्॥१३२॥
कुठारान्सह खड्गैश्च भिन्दिपालानयोगुडान्।
ववर्ष दानवो रौद्रो ह्यबन्ध्यानक्षयानपि॥१३३॥

उसके बाद ही वह आकाशमार्ग में अन्तर्हित होकर आँखों से ओझल हो गया। आकाशमण्डल में अवस्थित उस दैत्येन्द्र ने आँखों से दिखाई पड़ने वाले उन अस्त्र-शस्त्रों से देवताओं की सेना पर प्रहार करना प्रारम्भ किया, जो उस संहार कार्य में प्रमुख कारण थे। भाले, फावड़े, चक्र, बाण, मुद्गर, वज्र, तलवार, कुठार, भिंदिपाल और लोहे की बनी हुई श्रृङ्खलाओं या फन्दों को जो कभी विफल एवं नष्ट नहीं हो सकते थे, उस भयानक आकृति वाले असुर ने देवताओं की सेना पर बरसाया॥१३१-१३३॥

तैरस्त्रैर्दानवैर्मुक्तैर्देवानीकेषु भीषणैः। बाहुभिर्धरणिः पूर्णा शिरोभिश्च सकुण्डलैः॥१३४॥
उरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैर्वाऽचलोपमैः। भग्नेषादण्डचक्राक्षे रथैः सारथिभिः सह॥१३५॥
दुःसञ्चाराऽभवत्पृथ्वी मांसशोणितकर्दमा। रुधिरौघह्रदावर्ता शवराशिशिलोच्चयैः॥१३६॥

अति भयानक दैत्यों द्वारा बरसाये गये उन अस्त्रों से कटे हुए हाथों एवं कुण्डल समेत मस्तकों तथा हाथी के शुण्ड के समान वीरों की विशाल जंघाओं से सारा पृथ्वीतल पट गया। पर्वत के समान विशाल आकृति वाले हाथियों तथा सारथी समेत चक्का-धुरी आदि से विहीन रथों से आकीर्ण होने के कारण मांस तथा रक्त से एकदम कीचड़ के रूप में सनी हुई, रक्त के तालाबों में उठने वाली लहरों से युक्त एवं पर्वत शिखर के समान विशाल वीरों के शव-समूहों के आकीर्ण पृथ्वी उस समय चलने योग्य नहीं रह गई थी॥१३४-१३६॥

कबन्धनृत्यसंकुले स्त्रवद्वसास्त्रकर्दमे जगत्त्रयोपसंहृतौ समे समस्तदेहिनाम्।
श्रृगालगृध्रवायसाः परं प्रमोदमादधुः क्वचिद्विकृष्टलोचनः शवस्य रौति वायसः॥१३७॥

कटे हुए मस्तक वाले कबन्धों के नृत्य से व्याप्त, घायल शरीरों से निकलते हुए मांस तथा रक्त के कीचड़ से युक्त, त्रैलोक्य के सभी देहधारियों के विनाश के कारण उस युद्धभूमि में गृध्र, श्रृगाल तथा कौए अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। कहीं पर शव से आँखों को खींचा हुआ कौआ ऊँचे स्वर से बोल रहा था॥१३७॥

विकृष्टपीवरान्त्रकाःप्रयान्ति जम्बुकाःक्वचित्। क्वचित्स्थितोऽतिभीषणःशवचञ्चुचर्वितोबकः।
मृतस्य मांसमाहरञ्छ्वजातयश्च संस्थिताः।
क्वचिद् वृकोगजासृजं पपौ निलीयतान्त्रतः॥१३८॥

कहीं पर श्रृगालों के समूह शव की भारी अँतड़ी खींचते हुए चले जा रहे थे, कहीं पर अपनी चोंचों से मांस को चबाता हुआ अति विकराल बगुला बैठा हुआ था। कहीं पर कुत्ते की जाति वाले गीदड़ आदि मरे हुए वीर के शरीर से मांस ले जाते हुए दिखाई पड़ रहे थे। कहीं पर कोई एक गीदड़ हाथी के रक्त को उसकी अँतड़ी फाड़ कर पी रहा था।।१३८।।

क्वचित्तुरङ्गमण्डली विकृष्यते स्वजातिभिः क्वचित्पिशाचजातकः प्रपीतशोणितासवैः।
स्वकामिनीयुतैर्द्रुतं प्रमोदमत्तसम्भ्रमै-र्ममैतदानयाऽऽननं खुरोऽयमस्तु मे प्रियः।।१३९।।

कहीं पर मरे हुए घोड़ों के समूह कुत्तों के समूहों से इधर-उधर खींच कर लाये जा रहे थे। रक्तरूप मदिरा भरपूर पान करने वाले पिशाचों के समुदाय कहीं पर अपनी स्त्रियों के साथ अति प्रमोद में उन्मत्त होकर शीघ्रतापूर्वक इधर-उधर घूम रहे थे। एक पिशाच की पत्नी कह रही थी-'हे प्रिय! वह दिखाई पड़ने वाले खुर (पैर) मुझे भला मालूम हो रहा है, अतः उसे मेरे लिये तुम ला दो।।१३९।।

करोऽयमब्जसन्निभो ममास्तु कर्णपूरकः सरोषमीक्षतेऽपरा वपां विना प्रियं तदा।
परा प्रिया ह्यवाप यद् भृतोष्णशोणितासवं विकृष्य शवचर्म तत्प्रबद्धसान्द्रपल्लवम्।।१४०।।

वह दिखाई पड़ने वाला कमल के समान सुन्दर हाथ मेरे कानों का भूषण होगा।' एक दूसरी पिशाचिनी उस समय अपने पति के सन्निकट न रहने के कारण शव की चर्बी को अमर्ष के साथ देख रही थी। कोई दूसरी पिशाचिनी घने पल्लवों के शीतल पत्तों के दोनों में शव के मृदु चर्म को फाड़ कर गरम-गरम मदिरा की भाँति रक्त को अपने हाथों से अपने पति को पिला रही थी।।१४०।।

चकार यक्षकामिनी तरुं कुठारपाटितं गजस्य दन्तमात्मजं प्रगृह्य कुम्भसम्पुटम्।(?)
विपाट्य मौक्तिकं परं प्रियप्रसादमिच्छते समांसशोणितासवं पपुश्च यक्षराक्षसाः।।१४१।।

कोई यक्ष की कामिनी जिस प्रकार वृक्ष कुठार से काटा जाता है, उसी प्रकार हाथी के दाँतों को लेकर उसके गण्डस्थल को चीर कर उसके श्रेष्ठ गजमुक्ता को लेकर उसी के द्वारा अपने प्रियतम को प्रसन्न करने की अभिलाषा कर रही थी। उस समय यक्ष तथा राक्षसगण मांस समेत रक्त का मदिरा के समान यथेच्छ पान कर रहे थे।।१४१।।

मृताश्वकेशवासितं रसं प्रगृह्य पाणिना प्रियाविमुक्तजीवितंसमानयासृगासवम्।
न पथ्यतां प्रयाति मे गतं श्मशानगोचरं नरस्य तज्जहात्यसौ प्रशस्य किन्नराननम्।।१४२।।

एक पिशाच की स्त्री मरे हुए अश्व के रक्त को, जो उसके बालों से दुर्गन्ध युक्त हो रहा था, अपने हाथों में लेकर कह रही थी-'मेरे लिए किसी दूसरे शीघ्र ही मरे हुए जीव का रक्त लाओ, श्मशान में दिखाई पड़ने वाले ये पुराने मरे हुए जीव हमारे लिए पथ्य नहीं हो सकते।' ऐसा कह कर उसने मनुष्य के शव को छोड़ दिया और किन्नर के मुख की प्रशंसा की।।१४२।।

स नाग एष नो भयं दधाति मुक्तजीवितो न दानवस्य शक्यते मया तदेकयाऽऽननम्।
इति प्रियाय वल्लभा वदन्ति यक्षयोषितः परे कपालपाणयः पिशाचयक्षराक्षसाः।।१४३।।

वदन्ति देहि देहि मे ममातिभक्ष्यचारिणः परेऽवतीर्य शोणितापगासु धौतमूर्तया।
पितृन् प्रतर्प्य देवताः समर्चयन्ति चाऽऽमिषैर्गजोडुपे सुसंस्थितास्तरन्ति शोणितं ह्रदम्।।१४४।।

'वह दिखाई पड़ने वाला हाथी यद्यपि मर चुका है, पर फिर भी हम लोगों को भय दे रहा है। दानव का मुख मैं अकेली ही नहीं खा सकती'–यक्षों की स्त्रियाँ इस प्रकार की बातें अपने पतियों से कर रही थीं। दूसरे कुछ पिशाच यक्ष तथा राक्षसगण अपने हाथों में खप्पर लेकर कह रहे थे, 'अरे अति भोजन करने वाले! मुझको भी कुछ दो।' कुछ अन्य पिशाचगण रक्त की नदियों में खूब नहा कर अपने देवताओं तथा पितरों का मांसों से तर्पण कर रहे थे और छोटी नौका या घन्नाई की भाँति तैरते हुए हाथियों के कटे हुए शरीरों पर स्थित होकर रक्त के सरोवरों में तैर रहे थे।।१४३-१४४।।

इति प्रगाढसङ्कटे सुरासुरें सुसङ्गरे। भयं समुज्झ्य दुर्जया भटाः स्फुटन्ति मानिनः।।१४५।।

ततः शक्रो धनेशश्च वरुणः पवनोऽनलः।
यमोऽपि निर्ऋतिश्चापि दिव्यास्त्राणि महाबलाः।।१४६।।

इस प्रकार अति सङ्कटापन्न उस देवासुर संग्राम में मानी तथा दुर्जय वीरगण भय छोड़ कर पुनः युद्ध करने लगे। महाबलवान् इन्द्र, धनपति कुबेर, वरुण, पवन, अग्नि, यमराज, निर्ऋति आदि वीर देवगण दिव्य अस्त्रों को लेकर आकाश मार्ग में दानवों को लक्ष्य करके प्रहार करने लगे। किन्तु देवताओं के वे सभी अस्त्र, जो दैत्यों को लक्ष्य करके छोड़े गये थे, व्यर्थ हो गये।।१४५-१४६।।

आकाशे मुमुचुः सर्वे दानवानभिसन्ध्य ते।
अस्त्राणि व्यर्थतां जग्मुर्देवानां दानवान्प्रति।।१४७।।
संरम्भेणाप्ययुध्यन्त संहतास्तुमुलेन चं।
गतिं न विविदुश्चापि श्रान्ता दैत्यस्य देवताः।।१४८।।

वे लोग अति क्रोधाकुल होकर एकत्र हुए और तुमुल ध्वनि कर युद्ध करते-करते थक-से गये, परन्तु दैत्यों की गति का उन्हें पता भी नहीं लगा। दैत्यों के अस्त्रों से घायल अंगों वाले वे देवगण उस समय यह नहीं विचार कर पाते थे कि अब क्या किया जाय? इस प्रकार वे आपस में शीत से व्याकुलित गौ की भाँति अवसन्न-से हो गये।।१४७-१४८।।

दैत्यास्त्रभिन्नसर्वाङ्गां ह्यकिञ्चित्करतां गताः।
परस्परं व्यलीयन्त गावः शीतार्दिता इव।।१४९।।

तदवस्थान्हरिर्दृष्ट्वा देवाञ्छक्रमुवाच ह। ब्रह्मास्त्रं स्मर देवेन्द्र यस्यावध्यो न विद्यते।।
विष्णुना चोदितः शक्रः सस्मारास्त्रं महौजसम्।।१५०।।

देवताओं की ऐसी दशा देख कर विष्णु भगवान् ने इन्द्र से कहा–'देवेन्द्र! अब तुम उस ब्रह्मास्त्र का स्मरण करो, जिसके द्वारा कोई भी अवध्य नहीं है।' विष्णु के ऐसा कहने पर इन्द्र ने अपने महातेजस्वी ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया।।१४९-१५०।।

सम्पूजितं नित्यमरातिनाशनं समाहितं बाणममित्रघातने।
धनुष्यजय्ये विनियोज्य बुद्धिमानभूत्ततो मन्त्रसमाधिमानसः॥१५१॥
स मन्त्रमुच्चार्य यतान्तराशयो वधाय दैत्यस्य धियाऽभिसंधय तु।
विकृष्य कर्णान्तमकुण्ठदीधितिं मुमोच वीक्ष्याम्बरमार्गमुन्मुखः॥१५२॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् इन्द्र नित्य शत्रुओं को विनष्ट करने वाले मन्त्र द्वारा भलीभाँति सुपूजित अभिमन्त्रित उस ब्रह्मास्त्र को अपने शत्रु के विनाश कार्य में अपने अजेय धनुष पर आरोपित कर मन्त्रोच्चारण करते हुए समाधि में लीन-से हो गये। इन्द्रियों को वश में कर उन्होंने दैत्य का वध करने की नीयत से उक्त बाण का अभिसंधान किया और प्रत्यञ्चा को कर्ण पर्यन्त खींच कर उस परम तेजस्वी बाण को, जिसकी लपटें चारों ओर फैल रही थीं, ऊपर आकाश मण्डल की ओर मुख करके छोड़ दिया॥१५१-१५२॥

अथासुरः प्रेक्ष्य महास्त्रमाहितं विहाय मायामवनौ व्यतिष्ठत।
प्रवेपमानेन मुखेन शुष्यता बलेन गात्रेण च सम्भ्रमाकुलः॥१५३॥

जब असुर ने ब्रह्मास्त्र को छोड़ते हुए देखा तो अपनी सारी माया छोड़ कर वह पृथ्वी पर चुपचाप बैठ गया और काँपते एवं सूखे हुए मुख, बल तथा शरीर से एकदम व्याकुल हो गया॥१५३॥

ततस्तु तस्यास्त्रवराभिमन्त्रितः शरोऽर्धचन्द्रप्रतिमो महारणे।
पुरन्दरस्यासनबन्धुतां गतो नवार्कबिम्बं वपुषा विडम्बयन्॥१५४॥

उस महारण में इन्द्र द्वारा छोड़ा गया मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित वह बाण अर्धचन्द्र के आकार में परिणत हो गया। इन्द्र के शरासन से छूटते ही वह अपने अनुपम तेज से नवीन सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करता हुआ लक्ष्य पर जा गिरा॥१५४॥

किरीटकोटिस्फुटकान्तिसङ्कटं सुगन्धिनानाकुसुमाधिवासितम्।
प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्धजं पपात जम्भस्य शिरः सकुण्डलम्॥१५५॥
तस्मिन्विनिहते जम्भे दानवेन्द्राः पराङ्मुखाः।
ततस्ते भग्नसङ्कल्पाः प्रययुर्यत्र तारकः॥१५६॥

उस बाण के छूटने से किरीट की मणियों की कान्ति के पुञ्जों से आकीर्ण अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य एवं पुष्पों से सुवासित, अति परिमाण में धुएँ से घिरी हुई अग्नि के समान केशों से संयुक्त जम्भासुर का सिर कुण्डल समेत रणभूमि में आ गिरा। इस प्रकार जम्भासुर के मारे जाने पर सभी दैत्यगण रण से विमुख होकर भाग गये और अपने-अपने सङ्कल्पों को छोड़ कर वहाँ गये, जहाँ पर स्वयं तारकासुर विद्यमान था॥१५५-१५६॥

तांस्तु त्रस्तान्समालोक्य श्रुत्वा रोषमगात्परम्।
स जम्भदानवेन्द्रं तु सुरै रणमुखे हतम्॥१५७॥

सावलेपं ससंरम्भं सगर्वं सपराक्रमम्। साविष्कारमनाकारं तारको भावमाविशत्।।१५८।।

तारकासुर अपने सैनिकों को अति भयभीत देख कर तथा सेनापति दानवेन्द्र जम्भ को रणभूमि में देवताओं द्वारा मारा गया सुन कर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और अत्यन्त गर्व, क्रोध, पराक्रम तथा आविष्कार से संयुक्त एवं बिना किसी रूपरेखा के विचित्र मनोभावों में प्राप्त हुआ अर्थात् इन सब कारणों से उसकी एक विचित्र दशा हो गई।।१५७-१५८।।

स जैत्रं रथमास्थाय सहस्त्रेण गरुत्मताम्। संरम्भाद्दानवेन्द्रस्तु सुरै रणमुखे गतः।।१५९।।
सर्वायुधपरिष्कारः सर्वास्त्रपरिरक्षितः। त्रैलोक्यऋद्धिसम्पन्नः सुविस्तृतमहाननः।।१६०।।

तब सौ गरुड़ के समान वेगशाली रथ पर आरूढ़ होकर दैत्येन्द्र तारकासुर ने अति क्रोध से युद्धभूमि में प्रस्थान किया। उस समय वह सभी प्रकार के हथियारों से संयुक्त था। सभी प्रकार के अस्त्रों से सुरक्षित था। त्रैलोक्य के समस्त ऐश्वर्यों से सुसम्पन्न था। उसका विस्तृत एवं महान् मुख शोभायमान हो रहा था।।१५९-१६०।।

रणायाभ्यपतत्तूर्णं सैन्येन महता वृतः। जम्भास्त्रक्षतसर्वाङ्ग त्यक्त्वैरावतदन्तिनम्।।१६१।।
सज्जं मातलिना गुप्तं रथमिन्द्रस्य तेजसा। तप्तहेमपरिष्कारं महारत्नसमन्वितम्।।१६२।।
चतुर्योजनविस्तीर्णं सिद्धसङ्घपरिष्कृतम्। गन्धर्वकिन्नरोद्गीतमप्सरोनृत्यसंकुलम्।।१६३।।
सर्वायुधमसम्बाधं विचित्ररचनोज्ज्वलम् तं रथं देवराजस्य परिवार्य समन्ततः।।१६४।।

इस प्रकार बहुत विशाल सेना से चारों ओर घिर कर वह शीघ्र ही युद्ध के लिए नीचे उतर आया। उसने जम्भासुर के अस्त्रों से समस्त अङ्गों में अति घायल, ऐरावत हाथी को छोड़ कर उस रथ को चारों ओर से घेर लिया, जो इन्द्र के तेज से मातलि द्वारा रक्षित था, तपाये हुए सुन्दर सुवर्ण के आभूषणों से आभूषित था, बहुमूल्य रत्नों से जटित था, चार योजन में विस्तृत था, सिद्धों के समूहों से संयुक्त था, गन्धर्व एवं किन्नरों के सुन्दर गीतों से गुञ्जित था, अप्सराओं के नृत्यों से संकुलित था, सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से भरा हुआ था और विचित्र उज्ज्वल रंग का था।।१६१-१६४।।

दंशिता लोकपालास्तु तस्थुः सगरुडध्वजाः।
ततश्चचाल वसुधा ततो रूक्षो मरुद् ववौ।।१६५।।
ततोऽम्बुधय उद्भूतास्ततो नष्टा रविप्रभा।
ततस्तमः समुद्भूतं तं नातोऽदृश्यन्त तारकाः।।१६६।।

उसी बीच में गरुड़वाहन भगवान् विष्णु के समेत सभी लोकपाल भी घिरे हुए थे। उस समय समस्त पृथ्वी चलने लगी, प्रचण्ड वायु बहने लगी, समुद्रगण उछलने लगे, सूर्य की कान्ति मलिन हो गई। समस्त संसार में अन्धकार छा गया। आकाश में तारागण नहीं दिखाई पड़ने लगे। अस्त्रों के समूह प्रकाशित होने लगे। दोनों ओर की सेना भय से काँपने लगीं। एक ओर से दैत्यराज तारक तथा दूसरी ओर से देवताओं का समूह था।।१६५-१६६।।

ततो जज्वलुरस्त्राणि ततोऽकम्पत वाहिनी। एकतस्तारको दैत्यः सुरसङ्घस्तु चैकतः॥१६७॥
लोकावसादमेकत्र जगत्पालनमेकतः। चराचराणि भूतानि सुरासुरविभेदतः॥१६८॥

एक ओर समस्त लोकों का क्लेश था और दूसरी ओर जगत् का पालन था। इस प्रकार सुर और असुर के भेद से समस्त चराचर जीव वहाँ पर इकट्ठे हुए थे॥१६७-१६८॥

तद्विधाऽप्येकतां यातं ददृशुः प्रेक्षका इव। यद्वस्तु किञ्चिल्लोकेषु त्रिषु सत्तास्वरूपकम्।
तत्तत्रादृश्यदखिलं खिलीभूतविभूतिकम्॥१६९॥

अस्त्राणि तेजांसि धनानि धैर्यं सेनाबलं वीर्यपराक्रमौ च।
सत्त्वौजसां तन्निकरं बभूव सुरासुराणां तपसो बलेन॥१७०॥

वे दो भागों में विभक्त होने पर भी दर्शकों की भाँति एक समूह में दिखाई पड़ रहे थे। तीनों लोकों में जितनी वस्तुएँ अपनी सत्ता में उपस्थित थीं, वे सभी अपनी विभूति को प्रकाशित करती हुई वहाँ दिखाई पड़ रही थीं। देवताओं तथा दानवों की तपस्या के माहात्म्य से उस युद्धभूमि में अस्त्र, तेज, धन, धैर्य, सैन्यबल, साहस, पराक्रम—ये सभी सत्त्व एवं तेज के समूह के रूप में दिखाई पड़ रहे थे॥१६९-१७०॥

अथाभिमुखमायान्तं नवभिर्नतपर्वभिः। बाणैरनलकल्पाग्रैर्बिभिदुस्तारकं हृदि॥१७१॥
स तानचिन्त्य दैत्येन्द्रः सुरवाणान्गतान्हृदि। नवभिर्नवभिर्वाणैः सुरान्विव्याध दानवः॥१७२॥
जगद्धरणसम्भूतैः शल्यैरिव पुरःसरैः। ततोऽच्छिन्नं शरव्रातं संग्रामे मुमुचुः सुराः॥१७३॥

सम्मुख आते हुए देख कर तारकासुर के हृदय में इन्द्र ने तिरछे नौ बाणों से प्रहार किया, जिनके अग्रभाग अग्नि की भाँति विकराल एवं दाहक थे। दैत्येन्द्र ने इन्द्र के उन नौ बाणों की, जो उसकी छाती पर लगे हुए थे, कोई भी परवाह न की और अपने नौ-नौ बाणों से एक-एक देवताओं पर प्रहार किया। उसके वे बाण समस्त संसार का विनाश कर देने में समर्थ थे और अग्रभाग में अति सूक्ष्म कील की भाँति नुकीले थे। तब देवताओं ने भी युद्ध में घनघोर बाणों की वृष्टि की॥१७१-१७३॥

अनन्तरं च कान्तानामश्रुपातमिवानिशम्। तदप्राप्तं वियत्येव नाशयामास दानवः॥१७४॥
शिरैर्यथा कुचरितैः प्रख्यातं परमागतम्। सुनिर्मलं क्रमायातं कुपुत्रः स्वं महाकुलम्॥१७५॥

आगे भी स्त्रियों के अजस्र प्रवाहित होने वाले अश्रुप्रवाह की भाँति वे निरन्तर वृष्टि करते ही रहे, किन्तु दानव उन्हें अपने पास पहुँचने के पूर्व ही इस प्रकार नष्ट कर देता, जैसे कुपुत्र अपने दुश्चरित्रों से परम पवित्र परम्परागत निर्मल सुप्रतिष्ठा से युक्त अपने उच्च एवं विस्तृत परिवार का विनाश कर देता है॥१७४-१७५॥

ततो निवार्य तद्बाणजालं सुरभुजेरितम्। बाणैर्व्योम दिशः पृथ्वीं पूरयामास दानवः॥१७६॥

इस प्रकार अपने बाणों से उस असुरेन्द्र ने देवताओं द्वारा फेंके गये उन बाणों के जालों को छिन्न-भिन्न कर पृथ्वी तथा दिशाओं को आकीर्ण कर दिया॥१७६॥

चिच्छेद पुङ्खदेशेषु स्वके स्थाने च लाघवात्।
बाणजालैः सुतीक्ष्णाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः॥१७७॥
कर्णान्तकृष्टैर्विमलैः सुवर्णरजतोज्ज्वलैः। शास्त्रार्थैः संशयप्राप्तान्यथार्थान्वै विकल्पितैः॥१७८॥

अपने स्थान पर आये हुए देवताओं के बाणों के मूल भागों को उसने अपने उन बाणों के समूह से, जिनके अग्रभाग अति तीक्ष्ण थे, जिनके पीछे उड़ने के लिए कंक और बर्हि की पूंछें लगी हुई थीं, कान के समीप तक हाथ लाकर पराक्रमपूर्वक खींच कर लक्ष्य पर छोड़े गये थे, सुवर्ण तथा चाँदी के समान उज्ज्वल वर्ण के थे, इस प्रकार काट दिया, जैसे विकल्प पूर्ण शास्त्रार्थों द्वारा संशय में पड़े हुए सिद्धान्त या तत्त्व॥१७७-१७८॥

ततः शतेन बाणानां शक्रं विव्याध दानवः।
नारायणं च सप्तत्या नवत्या च हुताशनम्॥१७९॥
दशभिर्मारुतं मूर्ध्नि यमं दशभिरेव च। धनदं चैव सप्तत्या वरुणं च तथाऽष्टभिः॥१८०॥

तदनन्तर दानव ने अपने सौ बाणों द्वारा इन्द्र पर भीषण प्रहार किया। उसने नारायण पर सत्तर बाणों से, अग्नि पर नब्बे बाणों से, वायु के सिर पर दस बाणों से, यमराज पर दस बाणों से, धनाध्यक्ष कुबेर पर सत्तर बाणों से, वरुण पर आठ बाणों से भीषण प्रहार किया॥१७९-१८०॥

विंशत्या निर्ऋतिं दैत्यः पुनश्चाष्टाभिरेव च।
विव्याध पुनरेकैकं दशभिर्दशभिः शरैः॥१८१॥

दैत्यराज ने बीस बाणों से तथा फिर दुबारा आठ बाणों से निर्ऋति पर आघात किया। फिर एक-एक देवताओं पर उसने दस-दस बाणों द्वारा कठोर प्रहार किया॥१८१॥

तथा च मातलिं दैत्यो विव्याध त्रिभिराशुगैः।
गरुडं दशभिश्चैव स विव्याध पतत्रिभिः॥१८२॥
पुनश्च दैत्यो देवानां तिलशो नतपर्वभिः। चकार वर्मजातानि चिच्छेद च धनूंषि तु॥
ततो विकवचा देवा विधनुष्काः शरैः कृताः॥१८३॥

फिर दैत्य ने तीन शीघ्रगामी बाणों से मालति पर आघात किया और दस बाणों से गरुड़ को घायल किया। फिर उसने अपने तिरछे बाणों से देवताओं के कवच एवं धनुष को तिलवत् काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, जिससे देवता लोग कवच, धनुष तथा बाणों से एकदम हीन कर दिये गये॥१८२-१८३॥

अथान्यानि चापानि तस्मिन्सरोषा रणे लोकपाला गृहीत्वा समन्तात्।
शरैरक्षयैर्दानवेन्द्रं ततक्षुस्तदा दानवोऽमर्षसंरक्तनेत्रः॥१८४॥
शरानग्निकल्पान्ववर्षामराणां ततो बाणमादाय कल्पानलाभम्।
जघानोरसि क्षिप्रमिन्द्रं सुबाहुं महेन्द्रोऽव्यकम्पद्रथोपस्थ एव॥१८५॥

तब उस महायुद्ध में लोकपाल तथा देवतागण अतिशय क्रुद्ध होकर दूसरे-दूसरे धनुष धारण कर चारों ओर से फिर आ गये और अपने-अपने अक्षय बाणों द्वारा दैत्येन्द्र को आहत करने लगे, जिससे अति क्रोधयुक्त हो लाल-लाल नेत्र किये हुए दैत्येन्द्र ने अग्नि के समान भीषण एवं विकराल बाणों की वृष्टि देवताओं पर पुनः की। अमर्ष से अति लाल नेत्र हो दैत्येन्द्र ने भी देवताओं पर अग्नि के समान विकराल बाणों की विपुल वृष्टि की और शीघ्र ही महाप्रलयकालीन अग्नि की भाँति एक विकराल बाण लेकर सुन्दर भुजाओं वाले इन्द्र के वक्षःस्थल पर घोर प्रहार किया, जिससे अतिशय व्याकुल होकर देवराज इन्द्र भी अपने रथ पर बैठे हुए काँपने लगे॥१८४-१८५॥

विलोक्यान्तरिक्षे सहस्त्रार्कबिम्बं पुनर्दानवो विष्णुमुद्भूतवीर्यम्।
शराभ्यां जघानांसमूले सलीलं ततः केशवस्यापतच्छार्ङ्गमग्रे॥१८६॥

असुर ने आकाशमण्डल में सहस्त्रों सूर्य की भाँति परम प्रतापी विष्णु भगवान् को देख कर क्रीडा समेत दो बाणों से उनके कंधे के मूल भाग में प्रहार किया, जिससे केशव का शार्ङ्ग धनुष उनके आगे गिर पड़ा॥१८६॥

ततस्तारकः प्रेतनाथं पृषत्कैर्वसुं तस्य सव्ये स्मरन्क्षुद्रभावम्।
शरैरग्निकल्पैर्जलेशस्य कायं रणेऽशोषयद्दुर्जयो दैत्यराजः॥१८७॥

तदनन्तर दैत्यराज उस तारकासुर ने अनेक बाणों से प्रेतों के स्वामी यमराज को तथा उनके बायें भाग में बैठे हुए वसु को एकदम तुच्छ मानते हुए विधिवत् आहत किया। फिर अग्नि के समान विकराल बाणों से जलस्वामी वरुण के शरीर को बेध कर उसने उन्हें सुखा दिया॥१८७॥

शरैरग्निकल्पैश्चकाराऽऽशु दैत्यस्तथा राक्षसान्भीतभीतान्दिशासु।
पृषत्कैश्च रूक्षैर्विकारप्रयुक्तं चकारानिलं लीलयैवासुरेशः॥१८८॥

फिर शीघ्र ही अपने अग्नि के समान बाणों से राक्षसों को दसों दिशाओं में अति भयभीत कर दिया। इस प्रकार असुरस्वामी उस तारकासुर ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा लीला करते हुए वायु को भी विह्वल कर दिया॥१८८॥

क्षणाल्लब्धचित्ताः स्वयं विष्णुशक्रानलाद्याः सुसंहत्य तीक्ष्णैः पृषत्कैः।
प्रचक्रुः प्रचण्डेन दैत्येन सार्धं महासङ्गरं सङ्गरग्रासकल्पम्॥१८९॥

थोड़ी देर बाद चेतनता प्राप्त कर स्वयं विष्णु भगवान्, इन्द्र, अग्नि आदि देवतागण अति तीक्ष्ण बाणों को एकत्र कर उस प्रचण्ड तारक दैत्य के साथ विष के ग्रास के समान भयदायी अति घोर संग्राम करने लगे॥१८९॥

अथाऽऽनम्य चापं हरिस्तीक्ष्णबाणैर्हनत्सारथिं दैत्यराजस्य हृद्यम्।
ध्वजं धूमकेतुः किरीटं महेन्द्रो धनेशो धनुः काञ्चनानद्धपृष्ठम्॥
यमो बाहुदण्डं रथाङ्गानि वायुर्निशाचारिणामीश्वरस्यापि वर्म॥१९०॥

और उस समय हरि ने अपने धनुष की डोर को खींच कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा दैत्यराज तारक के सारथी को मार गिराया तथा साथ ही उसके वक्षःस्थल में भी कठोर प्रहार किया। अग्नि ने उसके रथ की ध्वजा को, महेन्द्र ने किरीट को, धनाध्यक्ष कुबेर ने सुवर्ण जटित पृष्ठ भाग वाले धनुष को, यमराज ने बाहुदण्ड को, वायु ने रथ के अवयवों को और राक्षसों के स्वामी निर्ऋति ने कवच को काट गिराया।।१९०।।

दृष्ट्वा तद्युद्धममरैरकृत्रिमपराक्रमम्। दैत्यनाथः कृतं संख्ये स्वबाहुयुगबान्धवः।।१९१।।
मुमोच मुद्‌गरं भीमं सहस्राक्षाय सङ्गरे। दृष्ट्वा मुद्‌गरमायान्तमनिवार्यमथाम्बरे।।१९२।।
रथादाप्लुत्य धरणीमगमत्पाकशासनः। मुद्‌गरोऽपि रथोपस्थे पपात परुषस्वनः।।१९३।।
स रथं चूर्णयामास न ममार च मातलिः।

तब दैत्यनाथ तारक ने युद्ध में देवताओं के इस महान् एवं सत्य पराक्रम को देख कर अपने दोनों उग्र भुजदण्डों की सहायता से रणभूमि में सहस्रनेत्र इन्द्र को मारने के लिए एक भयानक मुद्‌गर छोड़ा। आकाशमार्ग से आते हुए कभी विफल न होने वाले उस भीषण मुद्‌गर को देख कर पाकशासन इन्द्र रथ से कूद कर पृथ्वी पर आ गये। उधर मुद्‌गर घोर शब्द करता हुआ रथ के जुए पर गिरा, जिससे रथ तो चूर्ण हो गया, किन्तु उसी पर स्थित सारथि मातलि नहीं मरा।।१९१-१९३.५।।

गृहीत्वा पट्टिशं दैत्यो जघानोरसि केशवम्।।१९४।।
स्कन्धे गरुत्मतः सोऽपि निषसाद विचेतनः।
खड्गेन राक्षसेन्द्रस्य निचकर्त च वाहनम्।।१९५।।

फिर दैत्य ने बरछी लेकर केशव पर प्रहार किया, जिससे अचेत होकर वे गरुड़ के कन्धों पर दुबक गये। तदनन्तर तलवार से उसने अपने राक्षसराज निर्ऋति के वाहन को काट डाला।।१९४-१९५।।

यमं च पातयामास भूमौ दैत्यो भुशुण्डिना।
वह्निं च भिन्दिपालेन ताडयामास मूर्धनि।।१९६।।

भुशुण्डि से उस दैत्य ने यमराज को वाहन पर से नीचे गिरा दिया। भिंदिपाल लेकर अग्नि के सिर पर कठोर आघात किया।।१९६।।

वायुं च दोर्भ्यामुत्क्षिप्य पातयामास भूतले।
धनेशं च धनुष्कोट्या कुट्टयामास कोपनः।।१९७।।

वायु को अपनी दोनों बाहुओं से झकझोड़ कर पृथ्वी तल पर पटक दिया। अति क्रुद्ध होकर धनुष के छोर से धनाधिपति कुबेर को खूब पीटा।।१९७।।

ततो देवनिकायानामेकैकं समरे ततः। जघानास्त्रैरसंख्येयैर्दैत्येन्द्रोऽमितविक्रमः।।१९८।।

फिर देवताओं के समूहों में से एक-एक पर उस अमित विक्रमशाली असुरेन्द्र ने असंख्य अस्त्रों द्वारा घोर प्रहार किया।।१९८।।

लब्धसंज्ञः क्षणाद्विष्णुश्चक्रं जग्राह दुर्धरम्। दानवेन्द्रवसासिक्तं पिशिताशनकोन्मुखम्॥१९९॥
मुमोच दानवेन्द्रस्य दृढं वक्षसि केशवः। पपात चक्रं दैत्यस्य हृदये भास्करद्युति॥२००॥
व्यशीर्यत ततः काये नीलोत्पलमिवाश्मनि।

क्षण भर में फिर चेतनता प्राप्त कर सर्वप्रथम विष्णु भगवान् ने अपने दुर्धर्ष चक्र से, जो उसके मांस तथा रक्त से सिंचित था और मांसाहार करने वाले दैत्यों की ओर सदा उन्मुख रहता था, उस दैत्येन्द्र की छाती में घोर प्रहार किया। सूर्य के समान जाज्वल्यमान दैत्येन्द्र की छाती में वह चक्र जाकर गिरा और उसके शरीर में टकरा कर वह इस प्रकार टूट-फूट गया, जैसे पत्थर पर गिर कर नीले कमल का फूल छिन्न-भिन्न हो जाता है।।१९९-२००.५।।

ततो वज्रं महेन्द्रस्तु प्रमुमोचार्चितं चिरम्॥२०१॥
यस्मिञ्जयाशा शक्रस्य दानवेन्द्ररणे त्वभूत। तारकस्य सुसंप्राप्य शरीरं शौर्यशालिनः॥२०२॥
व्यशीर्यत विकीर्णार्चिः शतधा खण्डतां गतम्।

तदनन्तर महेन्द्र ने अपने चिरकाल से पूजित वज्र को, जिससे उनको इस दानवेन्द्र के युद्ध में विजय की पूरी आशा थी, छोड़ा; किन्तु शौर्यशाली तारकासुर के शरीर को प्राप्त कर वह प्रकाशमान वज्र भी सैकड़ों छोटे-छोटे टुकड़ों में परिणत हो गया और एकदम बेकाम हो गया।।२०१-२०२.५।।

विनाशमगमन्मुक्तं वायुनाऽसुरवक्षसि॥२०३॥
ज्वलितं ज्वलनाभासमङ्कुशं कुलिशं यथा। विनाशमागतं दृष्ट्वा वायुश्चाङ्कुशमाहवे॥२०४॥
रुष्टः शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम्। चिक्षेप दानवेन्द्राय पञ्चयोजनविस्तृतम्॥२०५॥
महीधरं तमायान्तं दैत्यः स्मितमुखस्तदा। जग्राह वामहस्तेन बालकन्दुकलीलया॥२०६॥

तब वायु ने असुर के वक्षःस्थल पर अतिशय तेज से अग्नि के समान जलते हुए वज्र के समान प्रभावकारी अपने अंकुश को छोड़ा, किन्तु वह भी एकदम नष्ट हो गया। इस प्रकार तेजस्वी अंकुश को रणभूमि में नष्ट हुआ देख वायु ने पाँच योजन में फैले हुए पुष्पित वृक्षों तथा विशाल कन्दराओं से सुशोभित एक बहुत बड़े पर्वत को उठा कर उसके ऊपर फेंका। उस विशाल पर्वत को आते देख कर दैत्य ने हँसते हुए क्रीडा में गेंद पकड़ने के समान बाएँ हाथ से पकड़ लिया और अलग फेंक दिया।।२०३-२०६।।

ततो दण्डं समुद्यम्य कृतान्तः क्रोधमूर्च्छितः।
दैत्येन्द्रं मूर्ध्नि चिक्षेप भ्राम्यवेगेन दुर्जयः॥२०७॥

तब क्रोध से मूर्च्छित होकर दुर्जय कृतान्त ने अपने कालदण्ड को उठाया और घुमा कर वेग से दैत्येन्द्र के सिर पर कठोर आघात किया।।२०७।।

सोऽसुरस्यापतन्मूर्ध्नि दैत्यस्तं च नं बुद्धवान्।
कल्पान्तदहनालोकमजय्यां ज्वलनस्ततः॥२०८॥

शक्तिं चिक्षेप दुर्धर्षां दानवेन्द्राय संयुगे। नवा शिरीषमालेव साऽस्य वक्ष्यस्यराजत॥२०९॥

किन्तु सिर पर गिरने पर भी दैत्येन्द्र ने उस डण्डे की कोई परवाह न की। तब अग्नि ने महाप्रलयकालीन अग्नि के समान भीषण आलोकमयी अजेय अपनी परम दुर्द्धर्ष शक्ति युद्ध में उस असुरेन्द्र के ऊपर छोड़ी, किन्तु वह शक्ति भी उसके वक्षःस्थल पर नवीन शिरीष के फूलों की माला की भाँति शोभित होकर रह गयी॥२०८-२०९॥

ततः खड्गं समाकृष्य कोषादाकाशनिर्मलम्।
भासितासितदिग्भागं लोकपालोऽपि निर्ऋतिः॥२१०॥
चिक्षेप दानवेन्द्राय तस्य मूर्ध्नि पपात च।
पतितश्चागमत्खड्गः स शीघ्रं शतखण्डताम्॥२११॥

तब लोकपाल निर्ऋति ने कोश (म्यान) से आकाश के समान नीलेवर्ण वाली सभी दिशाओं में एक चमक पैदा करती हुई तलवार को खींचकर उसके सिर पर कठोर आघात किया, किन्तु वह तलवार भी सौ टुकड़ों में परिणत हो गई॥२१०-२११॥

जलेशस्तूग्रदुर्धर्षं विषपावकभैरवम्। मुमोच पाशं दैत्यस्य भुजबन्धाभिलाषुकः॥२१२॥
स दैत्यभुजमासाद्य सर्पः सद्यो व्यपद्यत। स्फुटितक्रकचक्रूरदशनालिर्महाहनुः॥२१३॥

तब जल के स्वामी वरुण विष की अग्नि से बुझाये गये भीषण एवं अति दुर्द्धर्ष सर्पपाश को उस दैत्येन्द्र की भुजाओं को बाँध लेने की अभिलाषा से छोड़ा, किन्तु वह पाश भी उसकी भुजाओं पर पहुँचकर चूर्णवत् हो गया। उसकी आरे के समान विशाल दाढ़ें एवं क्रूर दाँत चूर-चूर होकर नष्ट हो गये॥२१२-२१३॥

ततोऽश्विनौ समरुतः ससाध्याः समहोरगाः। यक्षराक्षसगन्धर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः॥२१४॥
जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे सम्भूय सुमहाबलाः। न चास्त्राण्यस्य सज्जन्ति गात्रे वज्राचलोपमे॥२१५॥

तब महाबलवान् दोनों अश्विनीकुमार मरुत् तथा साध्यों के समूह एवं महासर्पगण तथा यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि अनेक प्रकार के दिव्य शस्त्रास्त्रों को हाथ में लेकर, युद्ध में उस दैत्यराज के ऊपर एक साथ आघात करने लगे; किन्तु वज्र के पर्वत के समान उस दैत्य के शरीर में वे समवेत होकर भी कुछ प्रभाव नहीं दिखा सके॥२१४-२१५॥

ततो रथादवप्लुत्य तारको दानवाधिपः। जघान कोटिशो देवान्करपार्ष्णिभिरेव च॥२१६॥
हतशेषाणि सैन्यानि देवानां विप्रदुद्रुवुः। दिशो भीतानि संत्यज्य रणोपकरणानि तु॥२१७॥

इस प्रकार एक साथ प्रहार करते हुये समस्त देवताओं वाफ़ देखकर असुरेन्द्र तारक ने रथ से नीचे उतरकर अपने हाथों तथा पैरों से करोड़ों देवताओं का संहार करना प्रारम्भ किया। जिससे मारने से बचे हुये देवताओं के सैनिकगण दसों दिशाओं में भयभीत होकर रण-सामग्रियों को छोड़-छोड़कर भागने लगे॥२१६-२१७॥

लोकपालांस्ततो दैत्यो बबन्धेन्द्रमुखान्रणे। सकेशवान्दृढैः पाशैः पशुमारः पशूनिव॥२१८॥
स भूयो रथमास्थाय जगाम स्वकमालयम्। सिद्धगन्धर्वसङ्घुष्टविपुलाचलमस्तकम्॥२१९॥

उधर दैत्येन्द्र ने युद्ध में इन्द्र आदि प्रमुख लोकपालों को भगवान् विष्णु समेत इस प्रकार बाँध लिया, जैसे कसाई पशुओं को बाँधता है। देवताओं को बाँधकर वह रथ पर आरूढ़ हो अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया, जो एक विशाल पर्वत के शिखर पर अवस्थित था। उस समय सिद्ध, गन्धर्व आदि उच्चस्वर में उसके यश का गान कर रहे थे।।२१८-२१९।।

स्तूयमानो दितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः। त्रैलोक्यलक्ष्मीस्तद्देशे प्राविशत्स्वपुरं यथा॥२२०॥
निषसादाऽऽसने पद्मरागरत्नविनिर्मिते। ततः किन्नरगन्धर्वनागनारीविनोदितैः॥
क्षणं विदोद्यमानस्तु प्रचलन्मणिकुण्डलः॥२२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे तारकजयलाभो नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५३।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७८०३।।

दिति के पुत्र दैत्यगण उसकी स्तुति कर रहे थे। अप्सराएँ नृत्य आदि से मनोरंजन कर रही थीं। उस समय ऐसा विदित हो रहा था, मानो त्रैलोक्य की लक्ष्मी अपने निवास स्थान में प्रविष्ट हो रही हों। वहाँ पहुँचकर दैत्य पद्मराग मणि के बने हुये सिंहासन पर शोभायमान हुआ। उस समय किन्नरों, गन्धर्वों एवं नागों की सुन्दर स्त्रियाँ उसका मनोविनोद करने लगीं। विनोद करते हुए उस दैत्य की मुकुट की मणियाँ तथा कुण्डल झूलते हुये सुप्रकाशित हो रहे थे।।२२०-२२१।।

।।एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।।१५३।।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मा की प्रसन्नता और तारक वध का उपाय वर्णन

सूत उवाच

प्रादुरासीत्प्रतीहारः शुभ्रनीलाम्बुजाम्बरः। स जानुभ्यां महीं गत्वा पिहितास्यः स्वपाणिना॥१॥
उवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम्। दैत्येन्द्रमर्कवृन्दानां बिभ्रतं भास्वरं वपुः॥२॥

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! देवताओं को जीतकर दैत्येन्द्र तारक अपनी नगरी में वापस आया और सिंहासनाधिरूढ़ हुआ। कुछ समय बाद स्वच्छ नीले रंग के रेशमी वस्त्रों को धारण किये हुए उसका द्वारपाल दरबार में उपस्थित हुआ और अपने घुटनों को पृथ्वी पर टेककर दोनों हाथों से मुँह

को छिपाकर अल्प अक्षरों वाले स्पष्ट तथा मृदु शब्दों में अनेक सूर्य के समान तेजोमय शरीर धारण करने वाले उस दैत्येन्द्र तारक से इस प्रकार निवेदन किया।।१-२।।

कालनेमिः सुरान्बद्धांश्चाऽऽदाय द्वारि तिष्ठति।
स विज्ञापयति स्थेयं क्व बन्दिभिरिति प्रभो।।३।।
तन्निशम्याब्रवीद्दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम्। यथेष्टं स्थीयतामेभिर्गृहं मे भुवनत्रयम्।।४।।

'महाराज' दैत्यश्रेष्ठ कालनेमि देवताओं को बाँधकर द्वार पर लाकर खड़ा हुआ है और पूछ रहा है कि इन बन्दियों को कहाँ रखा जाय?' द्वारपाल की ऐसी बातें सुन दैत्य ने कहा-'अरे उनकी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ रखें। मेरा तो तीनों भुवन पर अधिकार है।।३-४।।

केवलं पाशबन्धेन विमुक्तैरविलम्बितम्। एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा।।५।।
जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम्। निवेदितास्ते शक्राद्याः शिरोभिर्धरणिं गताः।।
तुष्टुवुः स्पष्टवर्णार्थैर्वचोभिः कमलासनम्।।६।।

केवल पाश के बन्धनों से उन्हें शीघ्र ही मुक्त कर दिया जाय।' ऐसा कर देने पर देवतागण अति दुःखी चित्त से कमलयोनि ब्रह्मा की शरण में उन्हें देखने के लिए गये और वहाँ जाकर उन इन्द्र आदि देवगणों ने अपने ऊपर बीती हुई तमाम बातों को उनसे निवेदित करने का विचार किया। वहाँ जाकर वे अपने-अपने सिरों को पृथ्वी पर टेककर बैठ गये। फिर सबों ने स्पष्ट वर्णों तथा अर्थों वाले वाक्यों से कमलासन भगवान् ब्रह्मा की इस प्रकार स्तुति की।।५-६।।

देवा ऊचुः

त्वमोंकारोऽस्यङ्कुराय प्रसूतो विश्वस्याऽऽत्माऽनन्तभेदस्य पूर्वम्।
सम्भूतस्यानन्तरं सत्त्वमूर्ते संहारेच्छोस्ते नमो रुद्रमूर्ते।।७।।

'हे विश्वात्मन्! इस अनन्त भेद वाले विश्व के तुम मूल कारण तथा उत्पत्ति के निमित्त एवं आकार स्वरूप हो। तुम्हारा पूर्वकालीन ओंकार स्वरूप ही इस जगत् वृक्ष का अंकुर हो। हे सत्यमूर्ति! रचना के पीछे तुम्हीं सत्त्वरूप होकर उसका पालन करते हो, और हे रुद्रमूर्ते! संहार के अवसर पर तुम्हीं भयानक रूप धारण कर सबका संहार करते हो, ऐसे त्रिगुण स्वरूप आपको हम लोग नमस्कार करते हैं।।७।।

व्यक्तिं नीत्वा त्वं वपुः स्वं महिम्ना तस्मादण्डात्स्वाभिधानादचिन्त्यः।
द्यावापृथ्व्योरूर्ध्वखण्डावराभ्यां ह्यण्डादस्मात्त्वं विभागं करोषि।।८।।
व्यक्तं मेरौ यज्जनायुस्तवाभूदेवं विद्वस्त्वत्प्रणीतश्चकास्ति।
व्यक्तं देवाजन्मनः शाश्वतस्य द्यौस्ते मूर्धा लोचने चन्द्रसूर्यौ।।९।।
व्यालाः केशाः श्रोत्ररन्ध्रा दिशस्ते पादौ भूमिर्नाभिरन्ध्रे समुद्राः।
मायाकारः कारणं त्वं प्रसिद्धो वेदैः शान्तो ज्योतिषा त्वं हि युक्तः।।१०।।

तुम अपनी महिमा से अपने शरीर को अण्ड रूप में परिणत करके उस अण्ड के ऊपर और नीचे दो विभाग कर पृथ्वी और स्वर्ग की रचना करते हो। तुम अचिन्त्य हो। मेरु पर्वत पर आपने जो देवादि प्राणियों की आयु सीमा निर्धारित की थी, वही आप द्वारा निर्मितविधान अभी भी प्रचलित है; यह हम स्पष्ट रूप से जानते हैं। हे देव! तुम अजन्मा एवं सनातन हो, स्वर्ग तुम्हारा मस्तक है, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं; सर्प तुम्हारे केश हैं, दिशाएँ कान हैं, पृथ्वी चरण है, समुद्र नाभि है। तुम्हीं माया के रचने वाले तथा समस्त जगत् के आदि कारण हो। वेद-समूह तुम्हें शान्त और ज्योति से विमुक्त कहते हैं।।८-१०।।

वेदार्थेषु त्वां विवृणवन्ति बुद्ध्वा हृत्पद्मान्तः सन्निविष्टं पुराणम्।
त्वामात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति सांख्यैर्यास्ताः सप्त सूक्ष्माः प्रणीताः।।११।।
तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता तस्यां तस्यां गीयसे वै त्वमन्तम्।
दृष्ट्वा मूर्तिं स्थूलसूक्ष्मां चकार देवैर्भावाः कारणैः कैश्चिदुक्ताः।।१२।।

बुद्धिमान् लोग वेदों के अर्थों से तुम्हें भलीभाँति जानकर हृदय कमल में विराजित पुराणपुरुष कहकर निश्चित करते हैं। सांख्य एवं योग के जानने वाले तुम्हें आत्मा कहकर मानते हैं। सात सूक्ष्म पदार्थ कहे गये हैं, एवं उनके कारण स्वरूप आठवाँ पदार्थ तम है, इस प्रकार आठ पदार्थ-उनके यहाँ-जो माने गये हैं, उनसबों में तुम विद्यमान माने गये हो। यही नहीं, तुम उससे भी परे माने गये हो। आदिकाल में तुमने किसी अज्ञात कारणवश अपनी मूर्ति को स्थूल तथा सूक्ष्म रूप में विविध पदार्थों में परिणत किया गया था।।११-१२।।

सम्भूतास्ते त्वत्त एवाऽऽदिसर्गे भूयस्तां तां वासनां तेऽभ्युपेयुः।
त्वत्सङ्कल्पेनान्तमायाऽतिगूढः कालो मेयो ध्वस्तसंख्याविकल्पः।।१३।।
भावाभावव्यक्तिसंहारहेतुस्त्वं सोऽनन्तस्तस्य कर्तासि चाऽऽत्मन्।
येऽन्ये सूक्ष्माः सन्ति तेभ्योऽभिगीतः स्थूला भावाश्चाऽऽवृतारश्च तेषाम्।।१४।।
तेभ्यः स्थूलैस्तैः पुराणैः प्रतीतो भूतं भव्यं चैवमुद्भूतिभाजाम्।
भावे भावे भावितं त्वा युनक्ति युक्तं युक्तं व्यक्तिभावान्निरस्य।
इत्थं देवो भक्तिभाजां शरण्यास्त्राता गोप्ता नो भवानन्तमूर्तिः।।१५।।

देवादि जितने शरीरी हैं-वे सभी तुमसे उद्भूत हुए हैं और तुम्हारे सङ्कल्प के अनुरूप ही उन लोगों की वैसी-वैसी वासनाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। हे देव! तुम अनन्तमाया द्वारा निगूढ़ हो, एवं कल्पित संख्याओं से भी अतीत हो। काल स्वरूप हो। आत्मास्वरूप धारण करने वाले भगवन्! तुम्हीं इस जगत् के सदसत् जितने पदार्थ हैं, सबके विनाश के कारण हो। अनन्त रूप धारणकर उनसबों के तुम्हीं करने वाले भी हो। संसार में जो कुछ भी सूक्ष्म तथा उनकी उपेक्षा स्थूल पदार्थ विद्यमान हैं, तथा अन्य जो कुछ पदार्थ उन स्थूल पदार्थों को भी आवृत (ढंकने वाले) करने वाले हैं, तुम उनसबों से स्थूल हो।

सनातन हो। भूत-भव्य-सबकुछ हो। तुम अपने सङ्कल्प द्वारा प्रत्येक पदार्थों में अनुप्रविष्ट होकर व्यक्त होते हो, एवं उन-उन पदार्थों से निर्गत भी होते हो। इस प्रकार सभी व्यक्त भावों का निरसन करके भी तुम अवस्थित हो। तुम अनन्त मूर्ति धारण करने वाले हो, तुम्हारा स्वभाव ही यह है। तुम अपने भक्त जनों को शरण देने वाले, त्राण करने वाले तथा रक्षक-सबकुछ हो।'।।१३-१५।।

विरेमुरमराः स्तुत्वा ब्रह्माणमविकारिणम्। तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थसम्प्राप्तिप्रार्थनास्ततः।।१६।।
एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसादं परमं गतः। अमरान्वरदेनाऽऽह वामहस्तेन निर्दिशन्।।१७।।

देवगण इस प्रकार अविकारी ब्रह्मा की प्रार्थना करके एकदम चुप हो गये और मन में इष्ट प्रयोजन की सफलता के लिए प्रार्थना करने लगे। देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् ब्रह्मा अत्यधिक प्रसन्न हुये और वर देने वाले अपने बायें हाथ से निर्देश-सा करते हुए देवताओं से इस प्रकार बोले।।१६-१७।।

ब्रह्मोवाच

नारी याऽभर्तृकाऽकस्मात्तनुस्ते त्यक्तभूषणा। न राजते तथा शक्र म्लानवक्त्रशिरोरुहा।।१८।।

ब्रह्मा बोले-इन्द्र! बिना किसी कारण से इस मलीन मुख तथा सूखे हुये केशों से तुम्हारा शरीर आभूषण आदि को छोड़ने वाली पति विहीन स्त्री की भाँति दिखाई पड़ रहा है।।१८।।

हुताशनविमुक्तोऽपि न धूमेन विराजसे। भस्मनेव प्रतिच्छन्नो दग्धदावश्चिरोषितः।।१९।।

हुताशन! (अग्नि) धुएँ से रहित होकर भी तुम इस समय शोभित नहीं हो रहे हो, इतने मलिन दिखाई पड़ रहे हो, मानो चिरकाल से बुझे हुये हो तथा राख की ढेर से छिपे हुये हो।।१९।।

यमाऽऽमयमये नैव शरीरे त्वं विराजसे। दण्डस्याऽऽलम्बनेनेव ह्यकृच्छ्रस्तु पदे पदे।।२०।।

यमराज! इस रुग्ण दिखाई पड़ने वाले शरीर में इस समय तुम शोभित नहीं हो रहे हो, मालूम हो रहा है कि रोग के कारण तुम एक पग भी चलने में असमर्थ होकर इस कालदण्ड के सहारे चले आ रहे हो।।२०।।

रजनीचरनाथोऽपि किं भीत इव भाषसे। राक्षसेन्द्र क्षताराते त्वमरातिक्षतो यथा।।२१।।

यह निशिचरों का स्वामी (निऋति) भी डरा हुआ-सा बातें कर रहा है। राक्षसेन्द्र! शत्रुओं के विनाशक! इस समय तुम शत्रु द्वारा ताड़ित से दिखाई पड़ रहे हों।।२१।।

तनुस्ते वरुणोच्छुष्का परीतस्येव वह्निना। विमुक्तरुधिरं पाशं फणिभिः प्रविलोकयन्।।२२।।

वरुण! तुम्हारा शरीर चारों ओर अग्नि से जले हुये की भाँति सूखा हुआ-सा है। सर्पों द्वारा तुम्हारे पाश में रक्त उगला गया दिखाई पड़ रहा है।।२२।।

वायो भवान्विचेतस्कस्त्वं स्निग्धैरिव निर्जितः।
किं त्वं बिभेषि धनद संन्यस्यैव कुबेरताम्।।२३।।

वायु! स्नेही जनों से पराजित किये हुये की भाँति विचेत-से तुम दिखाई पड़ रहे हो। धनाध्यक्ष कुबेर! तुम अपनी धीरता छोड़कर क्यों इतने भयभीत-से दिखाई पड़ रहे हो।।२३।।

रुद्रास्त्रिशूलिनः सन्तो वदध्वं बहुशूलताम्। भवन्तः केन तत्क्षिप्तं तेजस्तु भवतामपि।।२४।।

रुद्रगण! आप लोग तो त्रिशूल धारण करने वाले थे, बताइये तो सही कि आपकी वह त्रिशूल धारण करने की क्षमता क्या हो गई? आप लोगों के तेज को भला किसने हर लिया?।।२४।।

अकिञ्चित्करतां यातः करस्ते न विभासते। अलं नीलोत्पलाभेन चक्रेण मधुसूदन।।२५।।

मधुसूदन! इस समय अकर्मण्यता पर पहुँचा हुआ आप का यह हाथ शोभित नहीं हो रहा है, नीले कमल के समान दिखाई पड़ने वाले आपके इस सुदर्शन चक्र की यह कैसी शोचनीय दशा हो गई है?।।२५।।

किं त्वयाऽनुदरालीनभुवनप्रविलोकनम्। क्रियते स्तिमिताक्षेण भवता विश्वतोमुख।।२६।।

चारों ओर मुखों से सुशोभित! आँखें बन्द कर इस समय आप अपने उदर में विराजमान भुवनों को क्यों देख रहे हैं?।।२६।।

एवमुक्ताः सुरास्तेन ब्रह्मणा ब्रह्ममूर्तिना। वाचां प्रधानभूतत्वान्मारुतं तमचोदयन्।।२७।।
अथ विष्णुमुखैर्देवैः श्वसनः प्रतिबोधितः। चतुर्मुखं तदा प्राह चराचरगुरुं विभुम्।।२८।।

भगवान् ब्रह्मा के ऐसा पूछने पर सब देवताओं ने ऐसे अवसर पर बोलने की कला में निपुण होने के कारण वायुदेव को प्रेरित किया। तब विष्णु आदि प्रमुख देवताओं के सिखलाने पर वायु चराचर जगत् के उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा से इस प्रकार बोले-।।२७-२८।।

न तु वेत्सि चराचरभूतगतं भवभावमतीव महानुच्छ्रितः प्रभवः।
पुनरर्थिवचोऽभिविस्तृत　　श्रवणोपमकौतुकभावकृतः।।२९।।
त्वमनन्त करोषि जगद्भवतां सचराचरगर्भविभिन्नगुणाम्।
अमरासुरमेतदशेषमपि त्वयि तुल्यमहो जनकोऽसि यतः।।३०।।

'अनन्त! आप समस्त चराचर जगत् के प्राणियों के मनोभावों को न जानते हो-ऐसा हो ही नहीं सकता। आप समस्त संसार के भावों को जानने वाले हैं, महान् हैं, सर्वोपरि हैं, समस्त जगत् के उत्पत्तिकर्ता हैं। किन्तु याचक के अभिलाषा के विस्तृत वाक्य को सुनने के लिए आप कुतूहल का भाव रखते हैं। आप चराचर जगत् के समस्त भिन्न-भिन्न गुणों व स्वभावों वाले प्राणियों को उत्पन्न करते हैं। यद्यपि समस्त देवगण तथा असुरगण आपकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि आप तो सभी के जनक हैं।।२९-३०।।

पितुरस्ति तथाऽपि मनोविकृतिः सगुणो विगुणो बलवानबलः।
भवतो वरलाभनिवृत्तभयः कुलिशाङ्गसुतो दितिजोऽतिबलः।।३१।।

सचराचरनिर्मथने किमिति कितवस्तु कृतो विहितो भवता।
किल देव त्वया स्थितये जगतां महदद्भुतचित्रविचित्रगुणाः॥३२॥
अपि तुष्टिकृतः श्रुतकामफला विहिता द्विजनायक देवगणाः।
अपि नाकमभूत्किल यज्ञभुजां भवतो विनियोगवशात्सततम्॥३३॥

तथापि पिता के मन में भी अपने पुत्रों के बलवान्, निर्बल, सगुण तथा निर्गुण होने का अन्तर रहता ही है। आपके वरदान को प्राप्तकर भय से निवृत्त हो वज्रांग का पुत्र महाबलवान् तारक नामक असुर इस समय जगत् के चराचर जीवों का घोर विनाश कर रहा है, उस नीच को आपने इस प्रकार समर्थ कर दिया है। हे द्विजनायक! यह सर्व प्रसिद्ध बात है कि आपने जगत् की स्थिति एवं पालन के लिए अत्यद्भुत चरित्रवाले, विचित्र गुणवान्, सन्तुष्ट करने वाले, समस्त मनोरथों को देने वाले देवताओं की रचना की थी और आप ही के आदेशानुसार सर्वदा से स्वर्ग उन यज्ञभोक्ता देवताओं के वश में रहता आया है।।३१-३३।।

अपहृत्य विमानगणं स कृतो दितिजेन महामरुभूमिसमः।
कृतवानसि सर्वगुणातिशयं यमशेषमहीधरराजतया॥३४॥
सममिङ्गितभावविधिः स गिरिर्गगनेन सदोच्छ्रयतां हि गतः।
अधिवासविहारविधावुचितो दितिजेन पविक्षतशृङ्गतटः॥३५॥
परिलुण्ठितरत्नगुहानिवहो बहुदैत्यसमाश्रयतां गमितः।
सुरराज स तस्य भयेन गतं व्यदधादशरीर इतोऽपि वृथा॥३६॥

किन्तु उस दैत्य ने देवताओं के सब विमानों को छीनकर स्वर्ग को महामरुस्थल की भाँति उजाड़ बना दिया है। जिस हिमवान् पर्वत को अपने संसार के पर्वतों का राजा होने के कारण सभी प्रकार के गुणों से समन्वित किया था, और जो आकाशमण्डल तक ऊँचा था, वह दैत्य के कठोर वज्र से शिखरों तथा सुन्दर तटों के तोड़ देने से अब उसके निवास एवं विहार की क्रीडाओं के अनुकूल बना लिया गया है। उसकी गुफाओं के समस्त रत्नसमूह चुरा लिये गये, और वह अब अनेक दैत्य-समूहों का निवासस्थान बन गया है। हे देवताओं के स्वामी। इतना ही नहीं, वह हमलोगों का प्रियपर्वतराज उस दैत्य के भय से इससे बढ़कर भी नीच कामों को शरीर से हीन होकर भी कर रहा है अर्थात् बुरे से बुरे उपयोग में लाया जा रहा है।।३४-३६।।

उपयोग्यतया विवृतं सुचिरं विमलद्युतिपूरितदिग्वदनम्।
भवतैव विनिर्मितमादियुगे सुरहेतिसमूहमनुत्थमिदम्॥
दितिजस्य शरीरमवाप्य गतं शतधा मतिभेदमिवाल्पमनाः॥३७॥
आसारधूलिध्वस्ताङ्गा द्वारस्थाः स्मः कदर्थिनः।
लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेण वयं तस्यामरद्विषः॥३८॥

इससे अधिक दुर्दशा मैं देवताओं की और क्या कहूँ? हम लोगों के उपयोग के लिए अति रुचिर, विशाल तथा अपनी निर्मल कान्ति से दिशाओं को व्याप्त करने वाले आदिम युग में बनाये गये, जो शस्त्रास्त्रों के ये समूह थे, वे भी उस दैत्येन्द्र के शरीर को छूकर अल्प बुद्धि वाले मनुष्य के मन की भाँति सैकड़ों टुकड़ों में चूर-चूर हो गये। कीचड़ और धूल से धूसरित अंग वाले हमलोग निष्प्रयोजन उसके द्वार पर बलात् बिठाये गये थे। इतना ही नहीं, बड़ी कठिनाई से उस दैत्यराज के दरबार में हम लोगों का प्रवेश हुआ था।।३७-३८।।

सभायाममरा देव निकृष्टेऽप्युपवेशिताः। वेत्रहस्तैरजल्पन्तस्ततोऽपहसितास्तु तैः।।३९।।
महार्थाः सिद्धसर्वार्था भवन्तः स्वल्पभाषिणः। चाटुयुक्तमथो कर्म ह्यमरा बहु भाषत।।४०।।
सभयं दैत्यसिंहस्य सशक्रस्य तु संस्थिताः। वदतेति च दैत्यस्य प्रेष्यैर्विहसिता बहु।।४१।।

देव! हम सभी देवगण उसके दरबार में निकृष्ट आसनों पर बैठाये गये थे, और चुपचाप रहने पर भी साथ में वेत धारण किये हुए उसके भृत्यों द्वारा व्यङ्ग्य बातें कह-कहकर हँसने गये थे। बहुत बड़े हो, सभी मनोरथों को सिद्धि प्राप्त करने वाले हो, इसीलिए इस समय स्वल्प बोलने वाले को हो। देवताओं ने दैत्यभृत्यों को ऐसी व्यंग्यपूर्ण वाणो का उत्तर चाटुकारी भरी बातों से दिया। 'हे देवगण! अब यहाँ तुम लोगों को बहुत बोलना चाहिये, चुप क्यों हो? इन्द्र समेत तुम लोग देखो, दैत्यराज के दरबार में कितने सुन्दर आसन पर बिठाये गये हो?' इस प्रकार उस दैत्य के अनुचरों ने हम लोगों का अपमानपूर्ण उपहास किया था।।३९-४१।।

ऋतवो मूर्तिमन्तस्तमुपासन्ते ह्यहर्निशम्। कृतापराधसंत्रासं न त्यजन्ति कदाचन।।४२।।
तन्त्रीत्रयलयोपेतं सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः। सुरागमुपधा नित्यं गीयते तस्य वेशमसु।।४३।।
हन्ताकृतोपकरणैर्मित्राणि गुरुलाघवैः। शरणागतसंत्यागी त्यक्तसत्यपरिश्रयः।।४४।।
इति निःशेषमथवा निःशेषं वै न शक्यते। तस्याविनयमाख्यातुं स्त्रष्टा तत्र परायणम्।।४५।।
इत्युक्तः स्वात्मभूर्देवः सुरैर्दैत्यविचेष्टितम्। सुरानुवाच भगवांस्ततः स्मितमुखाम्बुजः।।४६।।

छहों ऋतुएँ मूर्ति धारणकर रात-दिन उसकी सेवा करती हैं। कभी कोई अपराध न हो जाय? इस भय से उसको कभी नहीं छोड़ती। सिद्ध, गन्धर्व तथा किन्नरगण वीणा हाथ में लेकर तीनों लयों एवं सुन्दर रागों से उसके भवन में नित्य गान करते है और कुछ भी पुरस्कार नहीं पाते। वह दैत्य अपनी प्रशंसा करने वाले भिक्षुकों को भी भीख नहीं देता, (?...) एवं मित्रों में कौन बड़ा है, कौन छोटा है- इसका कुछ भी विचार नहीं करता। शरण में आए हुए का वह त्याग करता है। सत्य का तो उसने व्यवहार छोड़ दिया है। यही सब उसकी बुराइयाँ आपसे कहनी हैं। अथवा वे इतनी अधिक हैं कि कहकर समाप्त नहीं की जा सकती, उससे स्त्रष्टा ही रक्षा कर सकता है। देवताओं से प्रवक्ता वायु द्वारा इस प्रकार दैत्य की कृतियों के कहे जाने पर कमल के समान मुख वाले आत्मभू भगवान् ब्रह्मा मुस्कराते हुए बोले।।४२-४६।।

ब्रह्मोवाच

अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः।
यस्य वध्यः स नाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान्॥४७॥

मया स वरदानेन च्छन्दयित्वा निवारितः। तपसः सांप्रतं राजा त्रैलोक्यदहनात्मकात्॥४८॥

ब्रह्माजी कहते हैं-देववृन्द! वह तारक दैत्य देवताओं तथा असुरों-दोनों जातियों से भी नहीं मारा जा सकता। जिसके हाथ से वह मारा जायगा, अभी उस पुरुष की उत्पत्ति ही त्रिभुवन में नहीं हुई है। वह दैत्यराज तारकासुर त्रैलोक्य को जला देने वाली अपनी अनुपम तपस्या के माहात्म्य से वरदान देकर मेरे द्वारा इस समय रक्षित है॥४७-४८॥

स च वव्रे वधं शिशुतः सप्तवासरात्। स सप्तदिवसो बालः शङ्कराद्यो भविष्यति॥४९॥

तारकस्य निहन्ता स भास्कराभो भविष्यति।
सांप्रतं चाप्यपत्नीकः शङ्करो भगवान्प्रभुः॥५०॥

यच्चाहमुक्तवान्यस्या ह्युत्तानकरता सदा। उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु॥५१॥

उसने सात दिन के बालक से अपनी मृत्यु का वरदान माँगा है। भगवान् शंकर से उत्पन्न होने वाले सूर्य के समान परमतेजस्वी उस सात दिन के बालक से ही तारकासुर की मृत्यु होगी। किन्तु इस समय भी तो भगवान् शंकर अपत्नीक हैं। मैंने पूर्वकाल में जिस देवी के हाथ को ऊपर रहने की बात की थी, वह देवी हिमालय की कन्यारूप में उत्पन्न होगी। उनका हाथ वरदान देने के लिए सर्वदा ऊपर उठा रहेगा॥४९-५१॥

हिमाचलस्य दुहिता सा तु देवी भविष्यति।
तस्याः सकाशाद्यः सर्वस्त्वरण्यां पावको यथा॥५२॥
जनयिष्यति तं प्राप्य तारकोऽभिभविष्यति।
मयाऽप्युपायः स कृतो यथैवं हि भविष्यति॥५३॥

शेषश्चाप्यस्य विभवो विनश्येत्तदनन्तरम्। स्तोककालं प्रतीक्षध्वं निर्विशङ्केन चेतसा॥५४॥

उसी देवी से भगवान् शर्व (महादेव) अरणी के संयोग से अग्नि की भाँति जिस पुत्र को उत्पन्न करेंगे, उसी को युद्ध भूमि में प्राप्त कर वह तारकासुर पराजित होगा। मैं भी वैसा ही उपाय करूँगा, जिससे यह सब हो। उसके बाद असुर का अवशेष प्रभाव भी नष्ट हो जायगा। अतः आप लोग निःशंक होकर थोड़े दिन की और प्रतीक्षा करें॥५२-५४॥

इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलजन्मना। जग्मुस्तं प्रणिपत्येशं यथायोगं दिवौकसः॥५५॥
ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः। निशां सस्मार भगवान्स्वतनोः पूर्वसम्भवाम्॥५६॥

ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम्।
तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम्॥५७॥

साक्षात् कमलयोनि ब्रह्मा के ऐसा कहने पर देवतागण यथायोग्य उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने निवास स्थान को चले गये। देवताओं के चले जाने पर लोकपितामह ब्रह्मा ने अपने शरीर से पूर्वकाल में उत्पन्न होने वाली निशा का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवती निशा ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित हुईं। एकान्त में उपस्थित विभावरी (रात्रि) को देख ब्रह्मा बोले-।।५५-५७।।

ब्रह्मोवाच

विभावरि महत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम्।
तत्कर्तव्यं त्वया देवि शृणु कार्यस्य निश्चयम्।।५८।।
तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरकेतुरनिर्जितः। तस्याभावाय भगवाञ्जनयिष्यति चेश्वरः।।५९।।
सुतं स भविता तस्य तारकस्यान्तकारकः। शङ्करस्याभवत्पत्नी सती दक्षसुता तु या।।६०।।
सा मृता कुपिता देवी कस्मिंश्चित्कारणान्तरे।
भविता हिमशैलस्य दुहिता लोकभाविनी।।६१।।

ब्रह्माजी कहते हैं-विभावरि! इस समय देवताओं का एक बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हो गया है, देवि! अब उस कार्य में तुम्हें जो निश्चय ही करना होगा, उसे सुनो! तारक नामक दैत्य देवताओं का परमशत्रु है। वह संसार में किसी से भी नहीं जीता जा सकता, उसके विनाश करने के लिए भगवान् शंकर एक पुत्र उत्पन्न करेंगे। वही पुत्र उस तारकासुर का घातक होगा। शंकर की पूर्व पत्नी दक्ष की पुत्री सती जो थीं, वह विशेष कारणवश कुपित होकर अपना शरीर त्याग कर चुकी हैं। लोक को पवित्र करने वाली वह देवी हिमालय की पुत्री के रूप में उत्पन्न होंगी।।५८-६१।।

विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम्। तपस्यन्हिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते।।६२।।
प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म कञ्चित्कालं निवत्स्यति।
तयोः सुतप्ततपसोर्भविता यो महाबलः।।६३।।
स भविष्यति दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः।
जातमात्रा तु सा देवी स्वल्पसंज्ञा च भामिनी।।६४।।
विरहोत्कण्ठिता गाढं हरसङ्गमलालसा। तयोः सुतप्ततपसोः संयोगः स्याच्छुभानने।।६५।।

सती की अविद्यमानता में शंकर विरहाकुल हो समस्त जगत् को शून्य मानकर सिद्धों द्वारा सेवित हिमालय की कन्दरा में तपस्या करें और इस प्रकार सती के पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करते हुए कुछ कालतक निवास करेंगे। उन परम तपस्या करने वाले दम्पत्ति से जो महाबलवान् पुत्र होगा, वही उस तारक दैत्य का विनाशक होगा। हिमाचल की पुत्री वह देवी उत्पन्न होने के थोड़े दिनों के बाद जब थोड़ा होश सँभाल लेंगी, तभी से विरह से अति उत्कण्ठित हो महादेव के समागम की लालसा से युक्त होंगी। हे सुन्दर मुख वाली! इस प्रकार परम तपः साधना में लीन उन दम्पति के पारस्परिक संयोग संघटित होंगे।।६२-६५।।

ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वल्पो वाक्कलहो भवेत्।
ततोऽपि संशयो भूयस्तारकं प्रति दृश्यते॥६६॥
तयोः संयुक्तयोस्तस्मात्सुरतासक्तिकारणे।
विघ्नस्त्वया विधातव्यो यथा ताभ्यां तथा शृणु॥६७॥
गर्भस्थाने च तन्मातुः स्वेन रूपेण रञ्जय। ततो विहाय शर्वस्तां विश्रान्तो नर्मपूर्वकम्॥६८॥
भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुपिता सती। प्रयास्यति तपश्चर्तुं तत्तस्मात्तपसे पुनः॥६९॥
जनयिष्यति यं शर्वादमितद्युतिमण्डितम्। स भविष्यति हन्ता वै सुरारीणामसंशयम्॥७०॥

उस समय उन दोनों में थोड़ी-सी बातचीत के बीच ही वैमनस्य भी उपस्थित हो जायगा। उस समय भी तारकासुर की मृत्यु के लिए बहुत अधिक संशय उपस्थित होता दिखाई पड़ेगा। अतः उन दोनों के समागम के समय ठीक सुरत की आसक्ति के अवसर पर तुम्हें जिस प्रकार विघ्न उपस्थित करना होगा उसे सुन लो। उसकी माता मेनका के गर्भ के स्थान उदर में तुम प्रवेश करो और अपने रूप से उस संतति को रंग दो, जिससे उक्त समागम के समय भगवान् शर्व विश्राम के अवसर पर परिहास ही परिहास में उसकी भर्त्सना करेंगे। जिससे वह देवी उसी समय वन को तपस्या करने के लिए पुनः चली जायँगी और इस प्रकार तपस्या कर पुनः वापिस आने पर संयोग होगा और उसी संयोग से शिवजी अनुपम कान्तिमान जिस पुत्र की उत्पत्ति करेंगे, वही निःसन्देह देवताओं के शत्रुओं का विनाशक होगा॥६६-७०॥

त्वयाऽपि दानवा देवि हन्तव्या लोकदुर्जयाः।
यावच्च न सती देहसङ्क्रान्तगुणसञ्चया॥७१॥
तत्सङ्गमेन तावत्त्वं दैत्यान्हन्तुं न शक्ष्यसे। एवं कृते तपस्तप्त्वा सृष्टिसंहारकारिणी॥७२॥
समाप्तनियमा देवी यदा चोमा भविष्यति। तदा स्वमेव तद्रूपं शैलजा प्रतिपत्स्यते॥७३॥

देवि! इन दुर्जय दैत्यों का संहार तो तुम्हें भी करना चाहिये, किन्तु जबतक तुम्हारे शरीर के रंग से मिलकर तुम्हारे गुणों से युक्त सती देवी पृथ्वीतल पर अवतीर्ण नहीं होंगी, तबतक उसके समागम से (?) तुम दैत्यों का संहार करने में समर्थ नहीं हो सकती। तुम्हारे ऐसा करने पर सृष्टि का संहार करने वाली वह देवी पुनः तपस्या करके अपने नियमों को समाप्त करेंगी और जब उमा नाम से विख्यात हो जायँगी, तब वह हिमालय की पुत्री पुनः अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर लेंगी॥७१-७३॥

तनुस्तवापि सहजा सैकाऽनंशा भविष्यति। रूपांशेन तु संयुक्ता त्वमुमायां भविष्यसि॥७४॥
एकाऽनंशेति लोकस्त्वां वरदे पूजयिष्यति। भेदैर्वहुविधाकारैः सर्वगा कामसाधिनी॥७५॥

रूप और अंश द्वारा उमा से संक्रान्त होने के कारण तुम्हारी एकानंशा नाम से प्रसिद्धि होगी। हे वरदे! इस कारण लोग एकानंशा नाम से तुम्हारी पूजा भी करेंगे। तुम अपने अनेक प्रकार के भेदों से सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाली तथा सर्वगामिनी होगी॥७४-७५॥

ओंकारवक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः।
आक्रान्तिरूर्जिताकारा राजभिश्च महाभुजैः।।७६।।
त्वं भूरिति विशां माता शूद्रैः शैवीति पूजिता।
क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्या दया नियमिनामिति।।७७।।

ब्रह्मवादी लोग तुम्हें ओंकारवक्त्रा गायत्री तथा बलशाली राजा लोग उर्जिता आक्रान्ति के नाम से तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम पृथ्वीरूप से वैश्यों की माता होगी तथा शूद्रगणों से शैवी कहकर पूजित होगी। मुनियों के मत में तुम अक्षोभ्या क्षान्ति (अटल क्षमा) रहोगी, नियम की साधना करने वालों के लिए तुम दया रूप से स्थित होगी।।७६-७७।।

त्वं महोपायसन्दोहा नीतिर्नयविसर्पिणाम्।
परिच्छित्तिस्त्वमर्थानां त्वमीहा प्राणिहृच्छया।।७८।।
त्वं मुक्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम्।
त्वं च कीर्तिमतां कीर्तिस्त्वं मूर्तिः सर्वदेहिनाम्।।७९।।
रतिस्त्वं रक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृष्टदर्शिनाम्।
त्वं कान्तिः कृतभूषाणां त्वं शान्तिर्दुखकर्मणाम्।।८०।।

तुम नीति में निपुण व्यक्तियों के लिए श्रेष्ठ उपायों का समूह हो, अर्थों की साधना के लिए तुम साधन रूप हो, तुम समस्त प्राणियों के हृदय में शयन करने वाली इच्छा हो। तुम समस्त जीवधारियों की मुक्ति हो। तुम समस्त शरीरधारियों की गति हो एवं कीर्तिमान् पुरुषों की कीर्ति हो। तुम समस्त देहधारियोंकी मूर्ति हो। अनुरागीपुरुषों के लिए तुम रति स्वरूप हो, प्रसन्नता को प्राप्त करने वाले पुरुषों के लिए तुम प्रीति रूप हो। आभूषण से सुसज्जित होने वालों के लिए तुम शोभा स्वरूप हों, दुःखी पुरुषों के लिए तुम शान्ति रूप हो।।७८-८०।।

त्वं भ्रान्तिः सर्वबोधानां त्वं गतिः क्रतुयाजिनाम्।
जलधीनां महाबेला त्वं च लीला विलासिनाम्।।८१।।
सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकपालिनी।
त्वं कालरात्रिर्निःशेषभुवनावलिनाशिनी।।८२।।
प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वं विभावरी। इत्यनेकविधैर्देवि रूपैर्लोके त्वमर्चिता।।८३।।

सब ज्ञान रखने वालों व जीवों की तुम भ्रान्ति हो, यज्ञादि का अनुष्ठान करने वालों की तुम गति हो, समुद्रों में तुम महातरङ्ग हो, विलासियों की तुम लीला हो, समस्त पदार्थों की तुम उत्पत्ति करने वाली हो, लोकपालिनी हो, समस्त जगत् की स्थिति हो। तुम कालरात्रि हो, सम्पूर्ण भुवनों के समूहों का नाश करने वाली हो। प्रिय के कण्ठ पकड़ने में अनुभूत होने वाले आनन्द की तुम देने वाली विभावरी (रात्रि) हो। देवि! इस प्रकार तुम अनेक स्वरूपों में लोगों द्वारा पूजित होगी।।८१-८३।।

ये त्वां स्तोष्यन्ति वरदे पूजयिष्यन्ति वाऽपि ये।
ते सर्वकामानाप्स्यन्ति नियता नात्र संशयः॥८४॥
इत्युक्ता तु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः।
जगाम त्वरिता तूर्णं गृहं हिमगिरेः परम्॥८५॥

हे वरदायिनि! जो इन्द्रियों को वश में रख तुम्हें सन्तुष्ट करेंगे अथवा तुम्हारा पूजन करेंगे, वे सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करेंगे-इसमें संशय नहीं।' ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर विभावरी ने हाथ जोड़कर 'अच्छा, ऐसा ही करूँगी, जैसा आप कह रहे हैं' ऐसा कहा और वहाँ से शीघ्रता के साथ हिमालय के सर्वश्रेष्ठ भवन की ओर प्रस्थान किया॥८४-८५॥

तत्राऽऽसीनां महाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रयाम्। ददर्शमेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम्॥८६॥
किञ्चिच्छयाममुखोदग्रस्तनभारावनामिताम्। महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम्॥८७॥
उद्वहत्कनकोन्नद्धजीवरक्षामहोरगाम्। मणिदीपगणज्योतिर्महालोकप्रकाशिते॥८८॥

वहाँ पहुँचकर सर्वश्रेष्ठ अटारी पर रत्नजटित दीवाल के सहारे कुछ पीले वर्ण की कमल की कान्ति के समान मुख वाली मेना को विभावरी ने देखा। मेना का सुन्दर मुख सुन्दर कमल के समान शोभायमान था, शरीर की शोभा थोड़े पाण्डु वर्ण की थी, विशाल स्तनों के भार से, जिसके मुखभाग पर कुछ श्यामलता थी, वह झुकी हुई थीं। वह अतिश्रेष्ठ प्रभावशाली औषधियों से पूर्ण, मन्त्रराज से अभिमन्त्रित, सुवर्ण से खचित जीवरक्षा कवच से संयुक्त सर्प की आकार वाली माला से सुशोभित थीं। उनका वह सुन्दर भवन मणियों की किरणों की माला से सुप्रकाशित हो रहा था॥८६-८८॥

प्रकीर्णबहुसिद्धार्थे मनोजपरिवारके। शुचिन्यंशुकसंछन्नभूशय्यास्तरणोज्ज्वले॥८९॥
धूपामोदमनोरम्ये सर्जगन्धोपयोगिके। ततः क्रमेण दिवसे गते दूरं विभावरी॥९०॥
व्यजृम्भत सुखोदर्के ततो मेनामहागृहे। प्रसुप्तप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारिके॥९१॥
स्फुटालोके शशभृति भ्रान्तिरात्रिविहङ्गमे। रजनीचरभूतानां सङ्घैरावृतचत्वरे॥९२॥
गाढकण्ठग्रहालग्नसुभगेष्टजने ततः। किञ्चिदाकुलतां प्राप्ते मेनानेत्राम्बुजद्वये॥९३॥

उसमें स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार की सिद्धार्थ महौषधियाँ थीं, एवं उज्ज्वल रेशमी सुन्दर स्वच्छ वस्त्र भू-शैय्या के ऊपर बिछाया गया था। सुन्दर धूप की सुगन्धि हो रही थी, जो सर्ज की सुगन्धि से मनोज्ञ थी। तदनन्तर विभावरी धीरे-धीरे मेना के उस सुखमय महल में अपना प्रसार करने लगी। धीरे-धीरे दिन के बीत जाने पर पुरुषगण कुछ सोने-से लगे। शैय्या की रचना की गई। चन्द्रमा पूर्णरूप से प्रकाशित हो गया। रात्रि में चलने वाले पक्षीगण इधर-उधर घूमने लगे। रजनीचरों और भूतों के समूह चौराहों पर घूमने लगे, रसिक तथा सुन्दर पुरुष अपनी-अपनी प्रियतमा स्त्रियों के साथ निर्भय आलिङ्गन करते हुए क्रीड़ा करने लगे। उस समय मेना के भी दोनों नेत्र कमल नींद से कुछ व्याकुलित-से हो गये॥८९-९३॥

आविवेश मुखे रात्रिः सुचिरस्फुटसङ्गमा। जन्मदाया जगन्मातुः क्रमेण जठरान्तरे॥९४॥
आविवेशान्तरं जन्म मन्यमाना क्षपा तु वै। अरञ्जयच्छविं देव्या गुहारण्ये विभावरी॥९५॥
ततो जगत्पतिप्राणहेतुर्हिमगिरिप्रिया। ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे व्यसूयत गुहारणिम्॥९६॥

ठीक उसी समय, समय पाकर वह रात्रि उस जगन्माता पार्वती की माता मेना के मुख में स्पष्ट रूप में प्रविष्ट हो गई और धीरे-धीरे सारे उदर में उसने स्थान प्राप्त किया। गुफा और जंगल की भयानक रात्रि के समान अपने काले रूप से पार्वती को रंग दिया। यथासमय जगत्पति शङ्कर की प्राणप्रिया तथा स्वामिकार्तिकेय की जननी पार्वती को मेना ने शुभ ब्राह्म मुहूर्त में उत्पन्न किया॥९४-९६॥

तस्यां तु जायमानायां जन्तवः स्थाणुजङ्गमाः।
अभवन्सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः॥९७॥

नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत्। अभवत्क्रूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम्॥९८॥

ज्योतिषामपि तेजस्त्वमभवत्सुरतोन्नता।
वनाश्रिताश्चौषधयः स्वादुवन्ति फलानि च॥९९॥
गन्धवन्ति च माल्यानि विमलं च नभोऽभवत्।
मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहरा॥१००॥
तेन चोद्भूतफलितपरिपाकगुणोज्ज्वलाः।
अभवत्पृथिवी देवी शालिमालाकुलाऽपि च॥१०१॥
तपांसि दीर्घचीर्णानि मुनीनां भावितात्मनाम्।
तस्मिन्गतानि साफल्यं काले निर्मलचेतसाम्॥१०२॥
विस्मृतानि च शस्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे।
प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदा पुण्यतमोऽभवत्॥१०३॥

जिस समय पार्वती का जन्म हुआ सभी चराचर जीव अति प्रसन्न हुए। नरक के निवासियों को भी स्वर्गीय सुखों का अनुभव हुआ। क्रूर तथा नृशंस जीव-जन्तु भी शान्त प्रकृति वाले बन गये। तारागणों का तेज बहुत अधिक हो गया। देवताओं को प्रतिष्ठा उन्नत हो गई। वन की औषधियाँ सुस्वादु तथा फल वाली हो गई। पुष्पों के समूह अति सुगन्धित हो गये मनोहारिणी प्रिय, शीतल, मन्द, सुगन्ध और अनुकूल वायु बहने लगी। आकाश निर्मल हो गया। दिशाएँ मनोविमुग्धकारिणी हो गयीं। पार्वती के अमित प्रभाव से सारी वसुधा खेती अन्न और फूलों से लद-सी गई। फल पकने लगे। उस क्षण निर्मल चित्त वाले मुनियों की बहुत दिनों की, की हुई तपस्या मानों सफल हो गई। उन्हें बहुत दिनों से भूले हुए शास्त्र पुनः याद पड़ने लगे। बड़े-बड़े तीर्थों के माहात्म्य उस समय अति पुण्यदायी हो गये॥९७-१०३॥

अन्तरिक्षे सुराश्चाऽऽसन्विमानेषु सहस्रशः। समहेन्द्रहरिब्रह्मवायुवह्निपुरोगमाः॥१०४॥
पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तु हिमभूधरे। जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥१०५॥

उस समय आकाशमण्डल में सहस्रों देवतागण इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, वायु, अग्नि आदि को आगे कर विमानों पर बैठे हुए दिखाई पड़ने लगे, और ऊपर से हिमवान् पर्वत के ऊपर पुष्पों की वृष्टि करने लगे। बड़े-बड़े गन्धर्व यूथबद्ध होकर गान करने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं।?१०४-१०५।।

मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तो महाबलाः। तस्मिन्महोत्सवे प्राप्ते दिव्यप्रभृतपाणयः॥१०६॥

सरितः सागराश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः।
हिमशैलोऽभवल्लोके तथा सर्वैश्चराचरैः॥१०७॥
सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च स श्रेयांश्चाचलोत्तमः।
अनुभूयोत्सवं देवा जग्मुः स्वानालयान्मुदा॥१०८॥

सुमेरु आदि बड़े-बड़े विशाल पर्वत मूर्ति धारणकर हिमाचल की सेवा के लिए वहाँ आ गये। इसी प्रकार सभी नदियाँ तथा समुद्रादि भी शरीर धारणकर हिमाचल के घर पहुँच गये। उस समय हिमाचल पर्वत सभी चराचर जीवों से आकीर्ण हो गया, सभी लोगों के सेवन करने योग्य, यात्रा करने योग्य तथा मङ्गल का स्वरूप हो गया। उस पर्वतराज का पुण्य दर्शन कर तथा उत्सव का आनन्द लूटकर समस्त देवगण अपने-अपने स्थानों को वापिस लौटे।।१०६-१०८।।

देवगन्धर्वनागेन्द्रशैलशीलावनीगुणैः। हिमशैलसुता देवी स्वयम्पूर्विकया ततः॥१०९॥
क्रमेण वृद्धिमानीता लक्ष्मीवानलसैर्बुद्धैः। क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रयम्॥११०॥
अजयद्भूषयच्चापि निःसाधारैर्नगात्मजा। एतस्मिन्नन्तरे शक्रो नारदं देवसंमतम्॥१११॥
देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनसत्वरम्। स्मृतिं शक्रस्य विज्ञाय जातां तु भगवांस्तदा॥११२॥

तदुपरान्त हिमालय पुत्री पार्वती उद्योगी पुरुष की लक्ष्मी की भाँति दिनानुदिन बढ़ती हुई अपने-देवता, गन्धर्व, नगेन्द्र, पर्वत एवं पृथ्वी इन सबके शील तथा स्वभाव से संयुक्त-सौन्दर्य सौभाग्य तथा बुद्धि से तीनों लोक को पराजित करती हुई सुशोभित हुयीं। इसी अवसर पर देवराज इन्द्र ने देवताओं के कार्यों को सिद्ध करने में प्रवीण नारद का स्मरण किया। इन्द्र द्वारा स्मरण किये जाने पर भगवान् नारद अति प्रसन्नचित्त हो महेन्द्र के निवास स्थान पर तुरन्त आये।।१०९-११२।।

आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम्।
तं स दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात्॥११३॥

यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः। शक्रप्रणीतां तां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि॥११४॥
नारदः कुशलं देवमपृच्छत्पाकशासनम्। पृष्टे च कुशले शक्रः प्रावोच वचनं प्रभुः॥११५॥

सहस्रनेत्र इन्द्र ने आते हुए नारद को देखकर अपने सिंहासन से उठकर यथायोग्य पाद्यअर्घ्य

आदि पूजा की सामग्रियों से सत्कृत किया। इन्द्र द्वारा प्रदत्त पूजा को यथाविधि ग्रहण कर नारद ने इन्द्र से कुशल-मङ्गल पूछा। नारद के पूछने पर इन्द्र इस प्रकार बोले-।।११३-११५।।

इन्द्र उवाच

कुशलस्याङ्कुरे तावत्सम्भूते भुवनत्रये।
तत्फलोद्भवसम्पत्तौ त्वं भवातन्द्रितो मुने॥११६॥
वेत्सि चैतत्समस्तं त्वं तथाऽपि परिचोदकः।
निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने॥११७॥
तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात्पिनाकिना।
शीघ्रं तदुद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम्॥११८॥

इन्द्र ने कहा-मुनिवर्य! त्रिभुवन के कल्याण रूप अंकुर के उत्पन्न हो जाने पर उसके फल एवं उद्भव की सम्पत्ति के लिए आप आलस्य छोड़कर तैयार हो जायँ। यद्यपि आप सभी बातें जानते हैं, हमें कुछ भी आपसे कहना नहीं है; तथापि कामना करने वाला पुरुष अपनी अभिलाषा अपने मित्रों से निवेदित करके परमसन्तुष्ट हो जाते हैं। सो कहना यह रहा कि हिमाचल की दुहिता पार्वती देवी जिस प्रकार से पिनाकधारी शिव के साथ समागम करें, वैसा उपाय हमारे पक्ष वालों की ओर से आप करें।।११६-११८।।

अवगम्यार्थमखिलं तत आमन्त्र्य नारदः। शक्रं जगाम भगवान्हिमशैलनिवेशनम्॥११९॥
तत्र द्वारे स विप्रेन्द्रश्चित्रवैत्रलताकुले। वन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः॥१२०॥
सह प्रविश्य भवनं भुवो भूषणतां गतम्।

इन्द्र की सब बातों को सुनकर तथा आगे वाले कार्य में सम्मति लेकर नारद हिमाचल के पास पहुँचे। विविध प्रकार की बेतों की लता से आवेष्टित हिमवान् के द्वार पर ब्रह्मर्षि नारद जब पहुँचे तो घर से निकलकर हिमवान् ने समागत नारद को प्रणाम किया और अपने साथ लेकर वह घर में प्रविष्ट हुआ। उसका वह भवन समस्त भूमण्डल का आभूषण था।।११९-१२०.५।।

निवेदिते स्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते॥१२१॥
महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः। यथार्हं चार्घ्यपाद्यं च शैलस्तस्मै न्यवेदयत्॥१२२॥
मुनिस्तु प्रतिजग्राह तमर्घं विधिवत्तदा। गृहीतार्घं मुनिवरमपृच्छच्छ्लक्ष्णया गिरा॥१२३॥
कुशलं तपसः शैलः शनैः फुल्लाननाम्बुजः। मुनिरप्यद्रिराजानमपृच्छत्कुशलं तदा॥१२४॥

वहाँ पहुँचकर हिमवान् द्वारा प्रदत्त सुवर्ण के सिंहासन पर अमित कान्तिमान् नारद विराजमान हुए। हिमवान् ने मुनिवर नारद की उपयुक्त अर्घ्य पाद्यादि उपचारों द्वारा विधिवत् पूजा की। मुनिवर ने उनकी पूजा को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। पूजा आदि ग्रहण कर लेने के बाद मीठी वाणी में मुस्कराते

हुए सुन्दर मुखकमल से हिमवान् ने मुनिवर की कुशल वार्ता पूछी और मुनि ने भी पर्वतराज से उनका कुशल समाचार पूछा।।१२१-१२४।।

नारद उवाच

अहोऽवतारिताः सर्वे सन्निवेशे महागिरे।
पृथुक्त्वं मनसा तुल्यं कन्दराणां तथाऽचल।।१२५।।
गुरुत्वं ते गुणौघानां स्थावरादतिरिच्यते।
प्रसन्नता च तोयस्य मनसोऽप्यधिका च ते।।१२६।।
न लक्षयामः शैलेन्द्र शिष्यते कन्दरोदरात्।
न च लक्ष्मीस्तथा स्वर्गे कुत्राधिकतया स्थिता।।१२७।।

इसके पश्चात् नारद ने कहा-पर्वतराज! तुमने अपने इस आश्रय स्थल में पृथ्वी के समस्त गुणों को उतार लिया है। अचल! तुम्हारी कन्दराओं की गहराई मन के समान अगम्य है, तुम्हारे गुणों के समूहों का गाम्भीर्य अन्य स्थावरों से कहीं अधिक है। तुम्हारे भीतर बहने वाले जल की निर्मलता मन से भी अधिक स्वच्छ है। शैलेन्द्र! मैं ऐसी कोई भी वस्तु नहीं देख रहा हूँ, जो तुम्हारी कन्दराओं में विद्यमान न हों। स्वर्ग में भी कहीं पर वैसी लक्ष्मी (शोभा) नहीं है, जो तुम्हारे यहाँ से अधिक हो।।१२५-१२७।।

नानातपोभिहर्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभैः। पावनैः पावितो नित्यं त्वत्कन्दरसमाश्रितैः।।१२८।।
अवमत्य विमानानि स्वर्गवासविरागिणः। पितुर्गृह इवाऽऽसन्ना देवगन्धर्वकिन्नराः।।१२९।।

अहो धन्योऽसि शैलेन्द्र यस्य ते कन्दरं हरः।
अध्यास्ते लोकनाथोऽपि समाधानपरायणः।।१३०।।

अग्नि एवं सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक प्रकार की साधनाओं में लीन तुम्हारी कन्दरा में अवस्थित परमपुनीत तपस्वियों से तुम नित्य पवित्रित किये जाते हो। देवता, गन्धर्व तथा किन्नरों के समूह अपने-अपने विमानों का अपमान कर स्वर्ग में निवास करने का अनुराग छोड़ तुम्हारी गुफाओं में पिता के घर की भाँति निवास करते हैं। शैलेन्द्र तुम सचमुच धन्य हो, इसीसे तुम्हारे जैसे भाग्यशाली पर्वत की कन्दरा में समाधि में लीन होकर लोकपति भगवान् शङ्कर निवास करते हैं।।१२८-१३०।।

इत्युक्तवति देवर्षौ नारदे सादरं गिरा। हिमशैलस्य महिषी मेना मुनिदिदृक्षया।।१३१।।
अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका। लज्जाप्रणयनम्राङ्गी प्रविवेश निवेशनम्।।१३२।।

तत्र स्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी।
दृष्ट्वा तु तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा।।१३३।।
ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः।

देवर्षि नारद की इस प्रकार की आदरपूर्ण बातें हो ही रही थीं कि उसी समय मुनि के दर्शन

की अभिलाषा से हिमाचल की पत्नी मेना अपनी कन्या तथा कुछ सखियों और दासियों के साथ वहाँ आ गयीं और लज्जा तथा प्रेम से विनम्र होकर उक्त निवास गृह में प्रविष्ट हुयीं, जिसमें हिमवान् के साथ जितेन्द्रिय देवर्षि नारद विराजमान थे। शैलराज हिमवान् की पत्नी मेना ने परम तेजोमय देवर्षि नारद को देखकर मुँह छिपाये हुए दोनों कमल के समान मनोहारी हाथों को जोड़कर सादर प्रणाम किया।।१३१-१३३.५।।

तां विलोक्य महाभागो महर्षिरमितद्युतिः।।१३४।।
आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तां व्यवर्धयत्।
ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका।।१३५।।
उदैक्षन्नारदं देवी मुनिमद्भुतरूपिणम्।
एहि वत्सेति चाप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धया गिरा।।१३६।।
कण्ठे गृहीत्वा पितरमुत्सङ्गे समुपाविशत्। उवाच माता तां देवीमभिवन्दय पुत्रिके।।१३७।।
भगवन्तं ततो धन्यं पतिमाप्स्यसि संमतम्।

मेना को देखकर अनुपम कान्तिमान् महाभाग्यशाली नारद ने अमृत वृष्टि के समान मीठे वचनों से उसे आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त हिमवान् की पुत्री पार्वती अति विस्मित होकर उन अद्भुत स्वरूपशाली मुनि नारद को देखने लगीं। नारद ने स्नेहभरी वाणी से 'आओ बेटी, यहाँ आओ' ऐसा कहकर उन्हें अपने पास बुलाया। किन्तु पार्वती अपने पिता की गोद में ही बैठ गयीं और गले में दोनों हाथ डालकर छिप-सी गयीं।' माता मेना ने पार्वती से कहा-'बेटी! भगवान् नारद मुनि को प्रणाम करो, तब तुम अपने मन के अनुकूल योग्य पति प्राप्त करोगी।।१३४-१३७.५।।

इत्युक्ता तु ततो मात्रा वस्त्रान्तपिहितानना।।१३८।।
किञ्चित्कम्पितमूर्धा तु वाक्यं नोवाच किञ्चन।
ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा।।१३९।।
वत्से वन्दय देवर्षि ततो दास्यामि ते शुभम्।
रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया।।१४०।।
इत्युक्ता तु ततो वेगादुद्धृत्य चरणौ तदा।
ववन्दे मूर्ध्नि सन्धाय करपङ्कजकुड्मलम्।।१४१।।

माता के ऐसा कहने पर पार्वती ने वस्त्रों में अपने मुख को और भी छिपा लिया और अपना सिर हिलाने लगीं, किन्तु कुछ बोल नहीं सकीं। मेना ने फिर उसी बात को पार्वती से कहा-बेटी! मुनि को प्रणाम कर लो, तब तुम्हें उस अति सुन्दर रत्नों का बना हुआ खिलौना, जिसे बहुत दिनों से मैंने छिपा रखा है, तुम्हें दूँगी।' ऐसा कहने पर पार्वती शीघ्र ही गोद से उठकर नारद के दोनों चरणों को अपने कमल के समान कोमल हाथों के सम्पुटों से उठाकर अपने सिर पर लगाकर प्रणाम किया।।१३८-१४१।।

कृते तु वन्दने तस्या माता सखीमुखेन तु।
चोदयामास शनकैस्तस्याः सौभाग्यशंसिनाम्॥१४२॥
शरीरलक्षणानां तु विज्ञानाय तु कौतुकात्।
स्त्रीस्वभावाद्यद्दुहितुश्चिन्तां हृदि समुद्वहन्॥१४३॥
ज्ञात्वा तदिङ्गितं शैलो महिष्या हृदयेन तु। अनुद्गीर्णोऽक्षतिर्मेने रम्यमेतदुपस्थितम्॥१४४॥

प्रणाम कर चुकने के बाद स्त्री स्वभाववश पुत्री के भविष्य की चिन्ता को हृदय में धारण कर माता ने अपनी सखियों द्वारा धीरे-धीरे पुत्री के सौभाग्य को बतलाने वाले लक्षणों को देखने के लिए कुतूहलवश मुनिवर नारद जी से अनुरोध किया। शैलेन्द्र हिमवान् पत्नी की अभिलाषा को जानकर हृदय से तो प्रसन्न हुए कि यह अच्छा विषय छिड़ गया, किन्तु स्वयं कुछ भी नहीं बोले और इस चर्चा के छिड़ने में कोई आपत्ति भी नहीं मानी।।१४२-१४४।।

चोदितः शैलमहिषीसख्या मुनिवरस्तदा।
स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाच नारदः॥१४५॥
न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जिता। उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः॥
स्वच्छायया भविष्येयं किमन्यद्बहु भाष्यते॥१४६॥
श्रुत्वैतत्सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्यो महाबलः। नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिरिः॥१४७॥

शैलराज की स्त्री मेना की सखियों द्वारा पूछे जाने पर महाभाग्यशाली मुनिवर नारद हँसते हुए बोले-भद्रे! इस (तुम्हारी पुत्री) का पति जो जगत् में पैदा ही नहीं हुआ है, इसके शरीर में कोई शुभ लक्षण नहीं है। यह तो सर्वदा हथेली को फैलाये रहती है, इसके चरण भी कुछ व्यभिचारी के से लगते हैं। अतः इन लक्षणों से ज्ञात होता है कि यह पति से विहीन रहेगी। यह अपनी ही छाया से वर्तमान रहेगी अर्थात् सर्वदा अकेली ही रहेगी। इससे अधिक क्या कहा जाय?' नारद की ऐसी बातें सुन परमबलशाली महागिरि हिमवान् भय से व्याकुलित हो गये, उनका धैर्य छूट गया और वे आँसू से गद्गद कण्ठ होकर नारद से तुरन्त बोले।।१४५-१४७।।

हिमवानुवाच

संसारस्यातिदोषस्य दुर्विज्ञेया गतिर्यतः।
सृष्ट्यां चाऽऽवश्यभाविन्यां केनाप्यतिशयात्मना॥१४८॥
कत्रा प्रणीता मर्यादा स्थिता संसारिणामियम्।
यो जायते हि यद्बीजो जनितुः स ह्यसार्थकः॥१४९॥
जनिता चापि जातस्य न कश्चिदिति यत्स्फुटम्।
स्वकर्मणैव जायन्ते विविधा भूतजातयः॥१५०॥

हिमवान् ने कहा–महाराज! इस अति दोषमय संसार की गति जानी नहीं जा सकती, अवश्य घटित होने वाली सृष्टि की घटनाओं में अद्भुत पराक्रमशाली एवं महनीय आत्मा विशिष्ट उसके कर्त्ता द्वारा बनाई गई यह मर्यादा संसारी जीवों के लिए स्थिर है। कारण से जिस कार्य की उत्पत्ति होती है– उसके कारण की सार्थकता कुछ भी नहीं है। जो जिसके अंश से उत्पन्न होती है, वह अपने उत्पन्न करने वाले के लिए सार्थक नहीं होता, उत्पन्न करने वाला भी उत्पन्न होने वाले का कोई नहीं है अर्थात् पिता और सन्तान इन दोनों का भी कोई सम्बन्ध नहीं है–यह स्पष्ट है। संसार में रहने वाले सभी प्रकार के जीवों की जातियाँ अपने–अपने कर्मों के अनुसार ही विविध योनियों में उत्पन्न होती हैं।।१४८–१५०।।

अण्डजो ह्यण्डजाज्जातः पुनर्जायेत मानवः।
मानुषाच्च सरीसृप्यां मनुष्यत्वेन जायते।।१५१।।
तत्रापि जातौ श्रेष्ठायां धर्मस्योत्कर्षणेन तु।
अपुत्रजन्मिनः शेषाः प्राणिनः समवस्थिताः।।१५२।।
मनुजास्तत्र जायन्ते यतो न गृहधर्मिणः। क्रमेणाऽऽश्रमसम्प्राप्तिर्ब्रह्मचारिव्रतादनु।।१५३।।
तस्य कर्तुर्नियोगेन संसारो येन वर्धितः। संसारस्य कुतो वृद्धिः सर्वे स्युर्यदतिग्रहाः।।१५४।।

एक ही जीव अण्डज के संयोग से अण्डज योनि में उत्पन्न होता है और वही पुनः मनुष्य के संयोग से मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है, वही सर्पादि की योनि में मनुष्य जन्म लेकर भी अपने कर्मों द्वारा दूसरे जन्म में उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह कि धर्म के तारतम्य से ही उच्च अथवा नीच योनियों में जीव की उत्पत्ति होती है। उन–उन योनियों में उत्पन्न होकर भी अपने कर्मों के प्रभाव से जीवात्मा श्रेष्ठ योनि में उत्पन्न होता है। बहुतेरे प्राणियों को पुत्रोत्पत्ति नहीं होती, वे ही मनुष्य उन–उन अधम योनियों में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उन्होंने जन्म लेकर गृहस्थाश्रम धर्म का पालन नहीं किया। उस गृहस्थाश्रम धर्म की प्राप्ति ब्रह्मचर्य व्रत के पश्चात् होती है। उसी कर्ता की आज्ञा से, जिसने संसार की वृद्धि की है, आश्रयों की यह स्थिति मानी गई है। यदि सभी लोग गृहस्थाश्रम को छोड़ दें तो फिर संसार की वृद्धि कैसे हो सकती है?।।१५१–१५४।।

अतः कर्त्रा तु शास्त्रेषु सुतलाभः प्रशंसितः।
प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्राणसंश्रयात्।।१५५।।
स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते। स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपण दैन्यभाषिणी।।
शास्त्रालोचनसामर्थ्यमुज्झितं तासु वेधसा।।१५६।।

इसी कारण से शास्त्रकारों ने शास्त्रों में नरक से त्राण करने का लाभ दिखाकर समस्त प्राणियों को मोह में फँसाने के लिए पुत्रोत्पत्ति की प्रशंसा की है। वह पुत्रादि सन्तान स्त्रियों के बिना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। स्त्री की जाति तो स्वभाव से ही कृपण एवं दीन बातें कहने वाली होती हैं। अतः ब्रह्मा ने उनके विषय में शास्त्रों की आलोचना करने का अधिकार त्याग दिया है।।१५५–१५६।।

शास्त्रेषूक्तमसंदिग्धं बहुवारं महाफलम्।
दशपुत्रसमा कन्या या न स्याच्छीलवर्जिता॥१५७॥
वाक्यमेतत्फलभ्रष्टं पुंसि ग्लानिकरं परम्।
कन्या हि कृपणा शोच्या पितुर्दुःखविवर्धिनी॥१५८॥
याऽपि स्यात्पूर्णसर्वाढ्या पतिपुत्रधनादिभिः।
किं पुनर्दुर्भगा हीना पतिपुत्रधनादिभिः॥१५९॥

शास्त्रों में निस्सन्देह महाफल देने वाली यह बात बहुत बार कही गई है कि यदि कन्या शील सदाचार आदि से रहित न हो तो वह दस पुत्रों के समान फल देने वाली है। किन्तु यह बात अब व्यर्थ मालूम पड़ रही है और पुरुष जाति के लिए तो यह परम ग्लानि उत्पन्न करने वाली हो गई है। पिता तथा माता के कष्टों को अधिकाधिक बढ़ाने वाली कन्या की स्थिति तो सर्वदा शोचनीय ही रहती है। यह बात तो उस कन्या के लिए भी लागू है, जो पति-पुत्रादि साधनों तथा धनधान्यादि से अति सम्पन्न होती है। तो फिर पति-पुत्र धनादि से हीन अभागिनी कन्या के लिए पिता क्यों न सोच करें?॥१५७-१५९॥

त्वं चोक्तवान्सुतताया मे शरीरे दोषसंग्रहम्।
अहो मुह्यामि शुष्यामि ग्लामि सीदामि नारद॥१६०॥
अयुक्तमथ वक्तव्यमप्राप्यमपि सांप्रतम्।
अनुग्रहेण मे छिन्धि दुःखं कन्याश्रयं मुने॥१६१॥

तुमने मेरी कन्या के शरीर में जैसे अभाग्यपूर्ण अपलक्षण बतलाये हैं, नारद! उन्हें सुनकर मैं अति दुःखी हो रहा हूँ। चिन्ता से सूख रहा हूँ, भयभीत हूँ तथा मेरे हृदय में बड़ी ग्लानि हो रही है, मुनिवर! अब यदि मेरी कन्या के दुःखों को दूर करने के उपाय दुःसाध्य तथा अयुक्त भी हों तब भी बतलाइये और अनुग्रह करके मेरे इस कन्याविषयक दुःख को दूर कीजिये॥१६०-१६१॥

परिच्छिन्नेऽप्यसंदिग्धे मनः परिभवाश्रयम्।
तृष्णा मुष्णाति निष्णाता फललोभाश्रयाशुभा॥१६२॥
स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम्।
इहामुत्र सुखायोक्तं सत्पतिप्राप्तिसंज्ञितम्॥१६३॥
दुर्लभः सत्पतिः स्त्रीणां विगुणोऽपि पतिः किल।
न प्राप्यते विना पुण्यैः पतिर्नार्या कदाचन॥१६४॥
यतो निःसाधनो धर्मः परिमाणोज्झिता रतिः।
धनं जीवितपर्याप्त पत्यौ नार्याः प्रतिष्ठितम्॥१६५॥

निस्सन्देह रूप में कार्य के निष्पन्न होने की सम्भावना होने पर भी परिणाम के लोभ में आसक्त

जो अशुभ तृष्णा है, वह मेरे अवसाद युक्त मन को ठग रही है। स्त्रियों के अच्छे पति की प्राप्ति ही उनके दोनों कुलों को, उनके जन्म को तथा उनके इस लोक एवं परलोक दोनों लोकों को सुखकर बनाने वाली है। प्रिय पति की प्राप्ति उन्हें दुर्लभ होती है, बिना पुण्य के तो थोड़े गुण वाला अथवा निर्गुणी पति भी स्त्रियों को कदापि नहीं मिलता, क्योंकि बिना यत्न किये ही प्राप्त होने वाला धर्म अपरिमित रति-भोग विलास आदि जीवनोपयोगी धन-ये सब स्त्रियों को उनके पतियों द्वारा ही प्राप्त होता है।।१६२-१६५।।

निर्धनो दुर्भगो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः। दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तः सदैव हि।।१६६।।
त्वया चोक्तं हि देवर्षे न जातोऽस्याः पतिः किल।
एतद्दौर्भाग्यमतुलमसंख्यं गुरु दुःसहम्।।१६७।।
चराचरे भूतसर्गे यदद्यापि च नो मुने। न स जात इति ब्रूषे तेन मे व्याकुलं मनः।।१६८।।
मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम्। लक्षणं हस्तपादादौ विहितैर्लक्षणैः किल।।१६९।।
सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुङ्गव। उत्तानहस्तता प्रोक्ता याचतामेव नित्यदा।।१७०।।

निर्धन, कुरूप, मूर्ख तथा सभी शुभ लक्षणों से रहित पति भी सर्वदा स्त्री के इष्ट देवता कहा गया है। देवर्षि! तुमने कहा है कि चराचर जगत् में इस मेरी पुत्री का कोई पति ही नहीं उत्पन्न हुआ है-इस बात को सुनकर मेरा मन अतिशय व्याकुल हो गया है। यह तो इसके महान् अभाग्य की बात है। भला इससे बढ़कर अभाग्य क्या हो सकता है? यह तो मेरे लिये अति दुःसह तथा घोर कष्ट का विषय है। मनुष्यों तथा देवताओं की जातियों के शुभ तथा अशुभ फल के सूचक लक्षण उपर्युक्त हाथ तथा पैर आदि में बतलाये गये हैं। हे मुनिवर्य! तुमने मेरी कन्या के हाथों के उत्तान होने का जो लक्षण बतलाया है, वह सचमुच सर्वदा याचना करने वालों का ही होता है?।।१६६-१७०।।

शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम्।
स्वच्छाययाऽस्याश्चरणौ त्वयोक्तौ व्यभिचारिणौ।।१७१।।
तत्रापि श्रेयसां ह्याशा मुने न प्रतिभाति नः।
शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक्फलनिवेदिनः।।१७२।।
सौभाग्यधनपुत्रायुः पतिलाभानुशंसनम्। तैश्च सर्वैर्विहीनेयं त्वमात्थ मुनिपुङ्गव।।१७३।।

मंगलवान् दानपरायण तथा धन्य भाग्य वाले प्राणियों के ऐसे नहीं होते क्या? इसके दोनों चरणों को तुमने अपनी ही छाया में रहने वाला व्यभिचारी बतलाया है, मुने! उनमें भी मुझे कल्याण की आशा नहीं दिखाई पड़ती है अर्थात् इससे भी मुझे निराशा मिली है। शरीर के अन्यान्य लक्षण भी भिन्न-भिन्न फलों की सूचना देने वाले होते हैं। जिनसे सौभाग्य, धन, पुत्र, आयु तथा योग्य पति के लाभ सूचना मिलती है। किन्तु तुम कह रहे हो कि उन-उन सब शुभ लक्षणों से मेरी कन्या विहीन है।।१७१-१७३।।

त्वं मे सर्वं विजानासि सत्यवागसि चाप्यतः। मुह्यामि मुनिशार्दूल हृदयं दीर्यतीव मे॥१७४॥

इत्युक्त्वा विरतः शैलो महादुःखविचारणात्।
श्रुत्वैतदखिलं तस्माच्छैलराजमुखाम्बुजात्॥
स्मितपूर्वमुवाचेदं नारदो देवचोदितः॥१७५॥

मुनिपुंगव! तुम मेरी मनोगत सारी अभिलाषाओं को जानते हो और सत्य बोलने वाले हो। मुनिशार्दूल! तुम्हारी बातें सुनकर यही कारण है कि मेरा हृदय फटता-सा जा रहा है।' ऐसा कहकर पर्वतराज हिमवान् महादुःख के विचार से विश्राम लेकर चुप हो गये। इन सब बातों को हिमवान् के मुख कमल से सुनकर देवताओं द्वारा सिखाये गये नारद हँसते हुये बोले॥१७४-१७५॥

नारद उवाच

हर्षस्थानेऽपि महति त्वया दुःखं निरूप्यते।
अपरिच्छिन्नवाक्यार्थे मोहं यासि महागिरे॥१७६॥

इमां शृणु गिरं मत्तो रहस्यपरिनिष्ठिताम्। समाहितो महाशैल मयोक्तस्य विचारणे॥१७७॥

न जातोऽस्याः पतिर्देव्या यन्मयोक्तं हिमाचल।
न स जात्तो महादेवो भूतभव्यभवोद्भवः॥
शरण्यः शाश्वतः शास्ता शङ्करः परमेश्वरः॥१७८॥

नारद ने कहा-महागिरे! अत्यन्त हर्ष के विषय में भी तुम दुःख की बात सोच रहे हो और अस्पष्ट वाक्यार्थ वाली मेरी बात को न समझकर कर तुम अज्ञान से दुःख का अनुभव कर रहे हो। रहस्यपूर्ण इस बात का तात्पर्य मुझसे सुनिये! शैल! मेरी कही हुई बात का विचार करने में तनिक सावधानी कीजिये हिमाचल! जो मैंने तुमसे यह कहा है कि इस देवी का पति उत्पन्न नहीं हुआ है, सो तो सही ही है, क्योंकि भूतभावन भगवान् शंकर की उत्पत्ति किसी से हुई नहीं है, वे शरणागतों के रक्षक हैं, शाश्वत (अविनाशी) हैं, शास्ता (नियामक) हैं, कल्याण देने वाले हैं, परमप्रभु हैं॥१७६-१७८॥

ब्रह्मविष्णिवन्द्रमुनयो जन्ममृत्युजरार्दिताः। तस्यैते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे॥१७९॥

आस्ते ब्रह्मा तदिच्छातः सम्भूतो भुवनप्रभुः। विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः॥१८०॥

मन्यसे मायया जातं विष्णुं चापि युगे युगे।
आत्मनो न विनाशोऽस्ति स्थावरान्तेऽपि भूधर॥१८१॥

हे गिरे! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा मुनि आदि सभी जन्म मृत्यु तथा वृद्धता आदि कष्टों से पीड़ित होकर उस परम प्रभु शंकर के खिलौने मात्र हैं। संसार के उत्पत्ति कारक भगवान् ब्रह्मा उन्हीं की इच्छा से अवस्थित हैं, तथा जन्म धारण करते हैं। स्वयं विष्णु भगवान् प्रत्येक युगों में महान् शरीर धारण कर अनेक योनियों में उत्पन्न होते हैं। तुम भी प्रत्येक युगों में मायावश उत्पन्न होने वाले भगवान् विष्णु को तो मानते ही हो। पर्वतराज! स्थावर योनियों में उत्पन्न होकर भी शरीर त्याग करने पर आत्मा का विनाश नहीं होता॥१७९-१८१॥

संसारे जायमानस्य म्रियमाणस्य देहिनः।
नश्यते देह एवात्र नाऽऽत्मनो नाश उच्यते॥१८२॥
ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्तितः।
स जन्ममृत्युदुःखार्तो ह्यवशः परिवर्तते॥१८३॥
महादेवोऽचलः स्थाणुर्न जातो जनकोऽजरः।
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः॥१८४॥

संसार में उत्पन्न होने वाले जो प्राणी मृत्यु के वश होते हैं, उनका भी केवल शरीर नष्ट होता है, आत्मा का नाश नहीं होता-ऐसा कहा जाता है। ब्रह्मा आदि से लेकर स्थावर जीवों तक जितने भी प्राणी संसार में हैं, वे सभी जन्म तथा मृत्यु के कष्ट से दुःखी तथा परवश होते हैं; किन्तु महादेव अचल हैं, सृष्टि के स्थाणु हैं, इनका कोई जनक नहीं उत्पन्न हुआ, ये वृद्धावस्था से भी रहित हैं। जगत् के स्वामी रोग रहित वे शंकर ही इस तुम्हारी कन्या के पति होंगे।।१८२-१८४।।

यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जिता तव।
शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्त्वेन विचारणम्॥१८५॥
लक्षणं दैविको ह्यङ्कः शरीरावयवाश्रयः। सर्वायुर्धनसौभाग्यपरिमाणप्रकाशकः॥१८६॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य सौभाग्यस्यास्य भूधर।
नैवाङ्को लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते॥१८७॥
अतोऽस्या लक्षणं गात्रे शैल नास्ति महामते।
यथाऽहमुक्तवानस्या ह्युत्तानकरतां सदा॥१८८॥

और भी, जो मैंने यह बात कही थी कि यह देवी सभी लक्षणों से हीन है, उसका भी सम्यक् रूप से तात्पर्य सुनिये। शरीर के अवयवों में लक्षण एक प्रकार के भाग्य सूचक दैविक चिह्न हैं, जो आयु, धन, सौभाग्य आदि के फलों की सूचना देने वाले होते हैं। भूधर! इस (तुम्हारी पुत्री) के अनन्त तथा अपरिमित सौभाग्य के सूचक लक्षण दैविक चिह्न के रूप में इसके शरीर में नहीं बनाये गये हैं अर्थात् वे इतने अनन्त तथा अपरिमित हैं कि उसकी सूचना देना लक्षणों के वश की बात नहीं है। हे शैल! महाबुद्धिमान्! इसी कारण से मैंने तुमसे कहा था कि इसके शरीर में कोई लक्षण नहीं है।।१८५-१८८।।

उत्तानो वरदः पाणिरेषु देव्याः सदैव तु। सुरासुरमुनिव्रातवरदेयं भविष्यति॥१८९॥
यथा प्रोक्तं तदा पादौ स्वच्छायाव्यभिचारिणौ।
अस्याः शृणु ममात्रापि वाग्युक्तिं शैलसत्तम॥१९०॥
चरणौ पद्मसङ्काशावस्याः स्वच्छनखोज्ज्वलौ।
सुरासुराणां नद मतां किरीटमणिकान्तिभिः॥१९१॥
विचित्रवर्णैर्भासन्तौ स्वच्छायाप्रतिबिम्बितौ।

और जो मैंने इसके हाथों के सर्वदा उत्तान रहने की बात तुमसे कही थी, उसका कारण यह है कि इस देवी का यह सदा उत्तान रहने वाला हाथ सदा वरदान देने वाला होगा और यह पुत्री सुर-असुर तथा मुनियों को शरण तथा वरदान देने वाली होगी। जो मैंने उस समय इसके चरणों को अपनी ही छाया में रहने वाले तथा व्यभिचारी बतलाये हैं। शैलराज! उसमें भी मेरी बातों की युक्ति इस प्रकार थी, सुनिये! इसके दोनों चरण स्वच्छ नख की कान्तियों से उज्ज्वल रहने वाले तथा कमल के समान सुन्दर हैं, प्रणाम करने वाले सुरों तथा असुरों के मस्तक के किरीटों में लगी रहने वाली मणियों की विचित्र वर्णों की कान्तियों से शोभा सम्पन्न तथा उस कान्ति में प्रतिबिम्बित अपनी छाया से संयुक्त तथा व्यभिचारी (संक्रान्त) हैं।।१८९-१९१.५।।

भार्या जगद्गुरोर्ह्येषा वृषाङ्कस्य महीधर॥१९२॥

जननी लोकधर्मस्य सम्भूता भूतभावनी। शिवेयं पावनायैव त्वत्क्षेत्रे पावकद्युतिः॥१९३॥

तद्यथा शीघ्रमेवैषां योगं यायात्पिनाकिना। तथा विधेयं विधिवत्त्वया शैलेन्द्रसत्तम॥

अत्यन्तं हि महत्कार्यं देवानां हिमभूधर॥१९४॥

महीधर! यह तुम्हारी पुत्री जगद्गुरु वृषभध्वज शङ्कर की पत्नी हैं, समस्त जगत् तथा धर्म की जननी हैं, समस्त जीवों को उत्पन्न करने वाली है, अग्नि के समान कान्तिमती है, कल्याण देने वाली है, तुम्हारे क्षेत्र को पवित्र करने के लिये ही यह तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुई है। पर्वतराज! सो जिस प्रकार से अतिशीघ्र इसका संयोग पिनाकधारी भगवान् शङ्कर से हो, वैसा उपाय विधिपूर्वक तुम्हें करना चाहिये। हिमाचल! देवताओं का परमआवश्यक तथा महान् कार्य इस समय आ पड़ा है।।१९२-१९४।।

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा तु शैलेन्द्रो नारदात्सर्वमेव हि। आत्मानं स पुनर्जातं मेने मेनापतिस्तदा॥१९५॥

नमस्कृत्य वृषाङ्काय तदा देवाय धीमते। उवाच सोऽपि संहृष्टो नारदं तु हिमाचलः॥१९६॥

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! शैलराज मेनापति हिमवान् ने नारद से इस प्रकार की बातें जब सुनीं, तब अपने को पुनः उत्पन्न हुआ-सा अनुभव किया और उस समय परमबुद्धिमान् बृषभध्वज महादेव को प्रणाम कर अत्यन्त हर्षपूर्वक नारद से वह बोले-।।१९५-१९६।।

हिमवानुवाच

दुस्तरान्नरकाद्घोरादुद्धृतोऽस्मि त्वया मुने। पातालादहमुद्धृत्य सप्तलोकाधिपः कृतः॥१९७॥

हिमाचलोऽस्मि विखातस्त्वया मुनिवराधुना।
हिमाचलेऽचलगुणां प्रापितोऽस्मि समुन्नतिम्॥१९८॥
आनन्ददिवसाहारि हृदयं मेऽधुना मुने।
नाध्यवस्यति कृत्यानां प्रविभागविचारणम्॥१९९॥
यदि वाचामधीशः स्यां त्वद्गुणानां विचारणे॥२००॥

हिमवान् ने कहा–मुनि जी! तुमने मुझे दुस्तर घोर नरक से उबार लिया है। पाताल से उबारकर सातों लोकों का भी स्वामी बना दिया है। मुनिवर! इस समय तुम्हारी कृपा से ही मैं अपने को पूर्ववत् विख्यात हिमाचल अनुभव कर रहा हूँ, हिमाचल के अचल गुण तथा समृद्धि को मैं तुम्हारी ही कृपा से प्राप्त कर सका हूँ। मुनि! मेरा हृदय इस समय आनन्दमय दिनों का उपभोग करने वाला है, यदि मैं बृहस्पति भी हो जाऊँ तब भी आपके उपकारों एवं सद्‌गुणों के विचार करने में मेरी बुद्धि सफल नहीं हो सकती।।१९७-२००।।

भवद्विधानां नियतममोघं दर्शनं मुने। तवास्मान्प्रति चापल्यं व्यक्तं मम महामुने।।२०१।।
भवद्भिरेव कृत्योऽहं निवासायाऽऽत्मरूपिणाम्।
मुनीनां देवतानां च स्वयं कर्ताऽपि कल्मषम्।।२०२।।
तथाऽपि वस्तुन्येकस्मिन्नाज्ञा मे संप्रदीयताम्।
इत्युक्तवति शैलेन्द्रे स तदा हर्षनिर्भरे।।२०३।।
तथा च नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो। सुरकार्ये य एवार्थस्तवापि सुमहत्तरः।।२०४।।
इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं प्रति। स गत्वा शक्रभवनममरेशं ददर्श ह।।२०५।।
ततोऽभिरूपे स मुनिरुपविष्टो महासने। पृष्टः शक्रेण प्रोवाच हिमजासंश्रयां कथाम्।।२०६।।

आपके उपकारों के अंशमात्र का भी मैं विचार नहीं कर सकता। आपके समान महर्षियों के दर्शन निश्चय ही अमोघ फलदायी होते हैं। महामुनि! आपकी चंचलता (सरलता) जितनी मेरे ऊपर है, वह मुझे मालूम है। हे मुनिवर्य! आत्मस्वरूप देवताओं तथापि मुनियों के निवास-स्थान के योग्य मैं आप ही द्वारा बनाया जा सका हूँ। यद्यपि मैं स्वयं पापकर्म करने वाला हूँ, तथा एक कार्य में मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये।' उस समय हर्ष से प्रफुल्लित होकर इस प्रकार हिमालय से बातें करते हुये नारद ने पुनः कहा! 'प्रभो! तुमने अपनी नम्रता से सबकुछ कर दिया, मुझे केवल यही कहना है कि देवताओं के कार्य में जो परिणाम होगा, उसमें तुम्हारा भी महान् हित निहित है।' इतनी बातें कह नारद शीघ्र ही स्वर्गपुरी को चले गये और इन्द्र के भवन को जाकर अमरपति से साक्षात्कार किया। वहाँ पहुँचकर अति सुन्दर सिंहासन पर विराजमान नारद ने इन्द्र से पूछे जाने पर पार्वती सम्बन्धी सारी कथा उन्हें कह सुनाई।।२०१-२०६।।

नारद उवाच

समूह्य यत्तु कर्तव्यं तन्मया कृतमेव हि। किं तु पञ्चशरस्यैव समयोऽयमुपस्थितः।।२०७।।
इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना।
चूताङ्कुरास्त्रं सस्मार भगवान्पाकशासनः।।२०८।।
संस्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्त्राक्षेण धीमता। उपतस्थे रतियुतः सविलासो झषध्वजः।।
प्रादुर्भूतं तु तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच सादरम्।।२०९।।

नारद ने कहा-'जो काम मन्त्रणा द्वारा किया जा सकता था उसे तो मैं कर चुका, किन्तु इस अवसर पर अब कामदेव की आवश्यकता आ पड़ी है।' कार्यदर्शी मुनिवर नारद द्वारा ऐसा कहने पर पाकशासन इन्द्र ने आम्र के अंकुर के अस्त्र बनाने वाले कामदेव का स्मरण किया। परमबुद्धिमान् सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र द्वारा स्मरण किये जाने पर मकरध्वज कामदेव अपनी पत्नी रति के समेत सविलास उपस्थित हुए। वहाँ समुपस्थित कामदेव को देखकर इन्द्र ने आदरपूर्वक कहा-।।२०७-२०९।।

शक्र उवाच

उपदेशेन बहुना किं त्वां प्रति वदे प्रियम्।
मनोभवोऽसि तेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम्।।२१०।।
तद्यथार्थकमेव त्वं कुरु नाकसदां प्रियम्। शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव।।
संयुतो मधुना चैव ऋतुराजेन दुर्जय।।२११।।
इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये।
प्रोवाच पञ्चबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम्।।२१२।।

शक्र ने कहा-मनोभव! तुम मन से उत्पन्न होने वाले हो, इससे समस्त जीवों के मनोगत भावों का तुम्हें पूर्ण पता रहता है, अतः अपनी कल्याण प्राप्ति के लिए मुझे तुम्हें अधिक उपदेश करने की आवश्यकता नहीं है। तुम इस स्वर्ग निवासी देवताओं का यह एक कल्याण कार्य करो कि इस मधुमास में ऋतुराज वसन्त की सहायता से हिमालय की पुत्री के साथ शङ्कर का संयोग शीघ्र सम्पन्न कराओ।' इस प्रकार अपनी कार्यसिद्धि के लिए इन्द्र द्वारा निवेदित किये जाने पर भयभीत होकर पंचशर कामदेव ने इन्द्र से कहा-।।२१०-२१२।।

काम उवाच

अनया देवसामग्र्या मुनिदानवभीमया।
दुःसाध्यः शङ्करो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो।।२१३।।
तस्य देवस्य वेत्थ त्वं कारणं तु यदव्ययम्।
प्रायः प्रसादः कोपोऽपि सर्वो हि महतां महान्।।२१४।।
सर्वोपभोगसारा हि सुन्दर्यः स्वर्गसम्भवाः।
अध्याश्रितं च यत्सौख्यं भवता नष्टचेष्टितम्।।२१५।।
प्रमादादथ विभ्रंश्येदीशं प्रतिविचिन्त्यताम्।
प्रागेव चेह दृश्यन्ते भूतानां कार्यसम्भवाः।।२१६।।
विशेषं काङ्क्षतां शक्रं सामान्याद्भ्रंशनं फलम्।
श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामरैर्युतः।।२१७।।

कामदेव ने कहा-जगत् के स्वामी! देवताओं, मुनियों तथा दानवों के भी भयभीत करने वाली इन तुच्छ सामग्रियों द्वारा भगवान् शंकर वश में नहीं किये जा सकते, क्या इस बात को आप नहीं जानते? उस देवाधिदेव की इस दुस्साध्यता का जो सनातन कारण है, उसे आप जानते हैं। महान् पुरुषों की प्रसन्नता तथा उनका क्रोध-दोनों ही महान् होते हैं। सभी उपभोग्य पदार्थों की सारभूत, स्वर्ग में उत्पन्न होने वाली सुन्दरियाँ और अन्य प्रकार के बिना इच्छा ही के प्राप्त होने वाले आनन्द के साधनों का आप उपयोग कर रहे हैं, किन्तु इस प्रकार की असावधानी से उस सबका विनाश हो। अतः शिव के प्रति अपने मन में अच्छे विचार कीजिये। इस प्रकार के कार्यों के परिणाम सामान्य जीवों को भी पहले ही से दिखलाई पड़ने लगते हैं। इन्द्र! साधारण (थोड़े) को छोड़कर जो विशेष (अधिक) के लिए, इच्छुक होता है। वह सामान्य से भी भ्रष्ट हो जाता है और विशेष तो भ्रष्ट है ही, कामदेव की ऐसी बातें सुनकर देवताओं समेत इन्द्र बोले-।।२१३-२१७।।

शक्र उवाच

वयं प्रमाणास्ते ह्यत्र रतिकान्त न संशयः। सन्देशेन विना शक्तिरपकारस्य नेष्यते।।
कस्यचिच्च क्वचिद्दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः।।२१८।।
इत्युक्तः प्रययौ कामः सखाऽयं मधुमाश्रितः।
रतियुक्तो जगामाऽऽशु प्रस्थं तु हिमभूभृतः।।२१९।।
स तु तत्राकरोच्चिन्तां कार्यस्योपायपूर्विकाम्।
महार्था ये हि निष्कम्पा मनस्तेषां सुदुर्जयम्।।२२०।।

शक्र ने कहा-'रतिकान्तर! तुम्हारी इस सूझ को हम लोग मानते हैं। उसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम जो कुछ कर रहे हो वह ठीक है। किन्तु सन्देश के बिना अपकार की शक्ति नहीं मिल सकती। किसी की शक्ति किसी विशेष कार्य में ही दिखाई पड़ती है, सभी कार्यों में नहीं।' इन्द्र के ऐसा कहने पर काम ने अपने मित्र मधु (वसन्त) का आश्रय लिया और रति को भी साथ लेकर शीघ्र ही हिमवान् पर्वत के शिखर को प्रस्थान कर दिया। वहाँ जाकर उसने कार्य की चिन्ता उपायपूर्वक की। जो पुरुष महान् लक्ष्य वाले होते हैं तथा कभी विचलित नहीं होते, उनका मन कठिनाई से वश में किया जा सकता है।।२१८-२२०।।

तदादावेव सङ्क्षोभ्य नियतं सुजयो भवेत्।
संसिद्धिं प्राप्नुयुश्चैव पूर्वं संशोध्य मानसम्।।२२१।।
कथं च विविधैर्भावैर्द्वेषानुगमनं विना। क्रोधः क्रूरतरासङ्गाद्भीषणेर्ष्यां महासखीम्।।२२२।।
चापल्यमूर्ध्नि विध्वस्तधैर्याधारां महाबलाम्।
तामस्य विनियोक्ष्यामि मनसो विकृतिं पराम्।।२२३।।

तो प्रथम लक्ष्य कर मन को ही विक्षुब्ध करके कार्य में सफलता प्राप्त की है तो फिर किस

प्रकार विविध प्रकार के भावों से द्वेष को बिना उत्पन्न किये हुए क्रोध उत्पन्न हो सकता है? और क्रोध के बिना अति क्रूर आसक्तिमूलक महाभीषण ईर्ष्या की उत्पत्ति कैसे होगी? चंचलता के सिर में रहने वाली धैर्य के आधार को नष्ट करने वाली अति शक्तिशालिनी उस ईर्ष्या को मैं शिव में अनुयुक्त करूँगा, जिससे उन महात्मा के मन में घोर विकृति उत्पन्न होगी।।२२१-२२३।।

पिधाय धैर्यद्वाराणि सन्तोषमपकृष्य च। अवगन्तुं हि मां तत्र न कश्चिददतिपण्डितः।।२२४।।
विकल्पमात्रावस्थाने वैरूप्यं मनसो भवेत्। पश्चान्मूलक्रियारम्भगम्भीरावर्तदुस्तरः।।२२५।।

धैर्य के द्वारों को बन्द करके तथा सन्तोष को हटा करके अवस्थित मेरे प्रभाव को कोई पण्डित व्यक्ति जानने में समर्थ नहीं होता। कार्य के प्रारम्भ में विकल्प मात्र का विचार करने से मन में विरूपता पैदा हो जाती है, जिससे पश्चात् प्रारम्भ किये गये कार्य में गम्भीर आपत्तियों की भँवरे आ जाती हैं और कार्य दुस्तरणीय हो जाता है।।२२४-२२५।।

हरिष्यामि हरस्याहं तपस्तस्य स्थिरात्मनः। इन्द्रियग्राममावृत्य रम्यसाधनसंविधिः।।२२६।।
चिन्तयित्वेति मदनो भूतभर्तुस्तदाऽऽश्रमम्। जगाम जगतीसारं सरलद्रुमवेदिकम्।।२२७।।
शान्तसत्त्वसमाकीर्णमचलप्राणिसंकुलम्। नानापुष्पलताजालं गगनस्थगणेश्वरम्।।२२८।।
निर्व्यग्रवृषभाध्युष्टनीलशाद्वलसानुकलम्। तत्रापश्यत्त्रिनेत्रस्य रम्यं कञ्चिद्द्वितीयकम्।।२२९।।
वीरकं लोकवीरेशमीशानसदृशद्युतिम्। यक्षकुङ्कुमकिञ्जल्कपुञ्जपिङ्गजटासटम्।।२३०।।
वेत्रपाणिनमव्यग्रमुग्रभोगीन्द्रभूषणम्।

अनेक प्रकार के मनोहारि साधनों से संयुक्त होकर उनके इन्द्रियों के समूहों को रुद्धकर स्थिर आत्मा वाले शङ्कर की तपस्या को मैं अब भंग करूँगा-इस प्रकार का विचार निश्चित कर कामदेव ने भूतभावन शङ्कर के आश्रम की ओर प्रस्थान किया, जो समस्त जगतीतल में एक प्रमुख स्थान था। जिसमें सीधे-सीधे वृक्षों तथा वेदियों से शोभा की वृद्धि हो रही थी, शान्त प्रकृति वाले जीवगण अधिक संख्या में जहाँ पर एकत्र थे। वहाँ समस्त हिमवान् पर्वत पर रहने वाले जीव दिखाई पड़ रहे थे। अनेक प्रकार के पुष्प वृक्ष तथा लताएँ फूली हुई थीं। ऊपर गगनमण्डल में गणेश्वरों के समूह विराजमान थे। उस पर्वतीय आश्रम के समीप में निश्चिन्त भाव से हरी घास के शिखर पर नन्दीश्वर बैठे हुये थे। उस स्थान पर जाकर कामदेव ने त्रिलोचन भगवान् शंकर के समीप में बैठे हुये मनोहारी वेशों वाले किसी दूसरे व्यक्ति वीरभद्र को देखा। जो शिव की दूसरी मूर्ति के समान समस्त जगत् में एकमात्र वीरों का स्वामी था, शंकर के समान कान्तिमान् था, उसकी जटाएँ कुंकुम और किंजल्क के पुंज की भाँति कुछ लाल-पीले वर्ण की थीं, हाथ में बेंत था, मुद्रा निश्चिन्त थी, भयंकर सर्पों के आभूषणों से आभूषित था।।२२६-२३०.५।।

ततो निमीलितोन्निद्रपद्मपत्राभलोचनम्।।२३१।।
प्रेक्षमाणमृजुस्थानं नासिकाग्रं सुलोचनैः। श्रवस्तरससिंहेन्द्रचर्मलम्बोत्तरीयकम्।।२३२।।

श्रवणाहिफलन्मुक्तं निःश्वावानलपिङ्गलम्। प्रेङ्खत्कपालपर्यन्ततुम्बिलम्बिजटायम्॥२३३॥
कृतवासुकिपर्यङ्कनाभिमूलनिवेशितम्। ब्रह्माञ्जलिस्थपुच्छाग्रनिबद्धोरगभूषणम्॥२३४॥

वहाँ जाने पर मूँदे तथा कुछ खिले हुये पद्म के पत्तों के समान कान्तियुत नेत्रों से सुशोभित शङ्कर को देखा, जो नीचे की ओर नासिका के अग्रभाग पर एकाग्र दृष्टि रखे सिंह के ऐसे चमड़े को कंधे पर लटकाये हुये थे, जिससे रक्त चू रहा था। कानों के पास लगे हुये सर्पों की विकराल श्वासोच्छ्वास की अग्नि से उनका शरीर पिंगल वर्ण का हो रहा था। नीचे रखे गये खप्पर तथा तुम्बीपात्र (कमण्डलु) तक हिलती हुई विशाल जटा शोभित हो रही थी। सर्पराज वासुकि के ऊपर शय्या लगाकर नाभि के मूल भाग तक बैठे हुये थे। ब्रह्म का ध्यान करते समय उनके हाथों के जुटे रहने से भूषण की भाँति सर्पराज वासुकि की पूंछ शोभायमान हो रही थी।।२३१-२३४।।

ददर्श शङ्करं कामः क्रमप्राप्तान्तिकं शनैः। ततो भ्रमरझङ्कारमालम्बिद्रुमसानुकम्॥२३५॥
प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण भवस्य मदनो मनः। शङ्करस्तमथाऽऽकर्ण्य मधुरं मदनाश्रयम्॥२३६॥
सस्मार दक्षदुहितां दयितां रक्तमानसः। ततः सा तस्य शनकैस्तिरोभूयातिनिर्मला॥२३७॥
समाधिभावना तस्थौ लक्ष्यप्रत्यक्षरूपिणी। ततस्तन्मयतां यातः प्रत्यूहपिहिताशयः॥२३८॥

ऐसी मुद्रा में शङ्कर भगवान् को देखकर कामदेव धीरे-धीरे उनके समीप पहुँचा और बड़े-बड़े वृक्षों से सुशोभित शिखर पर भ्रमरों की झनकारों के साथ कान के छिद्र पथ से शिव के मन में प्रविष्ट हुआ, जिससे भगवान् शङ्कर कामदेव के प्रभाव से प्रभावित हो मधुकरों की मधुर ध्वनि को सुनकर अनुराग युक्त हो गये और अपनी प्रियतमा दक्षपुत्री सती का स्मरण करने लगे। उस समय उनकी वह अति निर्मल समाधि भावना धीरे-धीरे अलक्ष्य रूप से तिरोहित हो गई और वे विघ्नों से समाधि भावना के अवरुद्ध हो जाने के कारण तन्मयता को प्राप्त हुये अर्थात् सती के ध्यान में ही तन्मय हो गये।।२३५-२३८।।

वशित्वेन बुबोधेशो विकृतिं मदनात्मिकाम्।
ईषत्कोपसमाविष्टो धैर्यमालम्ब्य धूर्जटिः॥२३९॥
निरासे मदनस्थित्या योगमायासमाव्रतः।
स तया माययाऽऽविष्टो जज्वाल मदनस्ततः॥२४०॥

इच्छाशरीरो दुर्जेयो रोषदोषमहाश्रयः। हृदयान्निर्गतः सोऽथ वासनाव्यसनात्मकः॥२४१॥
बहिस्थलं समालम्ब्य ह्युपतस्थौ झषध्वजः। अनुयातोऽथ हृद्येन मित्रेण मधुना सह॥२४२॥

किन्तु जितेन्द्रिय होने के कारण वे अपनी इस दशा को देखकर कार्यात्मक विकारों को समझ गये। तत्पश्चात् उन्होंने धैर्य धारणकर तनिक क्रोध से आविष्ट होकर योगमाया का आश्रय ग्रहण कर अपने को काम की स्थिति से बचाने की चेष्टा की। शिव की माया से आविष्ट होने के कारण कामदेव जलने लगा। वासना और आसक्ति का मूर्त रूप इच्छानुरूप शरीर धारण करने वाला क्रोध एवं दोष

का महान् आश्रय वह कामदेव शिव के हृदय प्रदेश से बाहर निकला। वहाँ से बाहर निकलकर मकरध्वज शिव के हृदय प्रदेश से बाहर एक अन्य स्थल का अवलम्बन लेकर उपस्थित हुआ। उसके साथ उनका परमसनेही मित्र वसन्त भी था।।२३९-२४२।।

सहकारतरौ दृष्ट्वा मृदुमारुतनिर्धुतम्। स्तबकं मदनो रम्यं हरवक्षसि सत्त्वरम्।।२४३।।
मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः। शिवस्य हृदये शुद्धे नाशशाली महासरः।।२४४।।
पपात परुषप्रांशुः पुष्पबाणो विमोहनः। ततः करणसन्देहो विद्धस्तु हृदये भवः।।२४५।।
बभूव भूधरौपम्यधैर्योऽपि मदनोन्मुखः। ततः प्रभुत्वाद्भावानां नाऽऽवेशं समपद्यत।।२४६।।
बाह्यं बहु समासाद्य प्रत्यूहप्रसवात्मकम्। ततः कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे।।२४७।।

वहाँ पर उसने मन्द पवन द्वारा कंपाये जाते हुये एक आम के वृक्ष को देखा, जिसमें एक मनोहर गुच्छ शोभित हो रहा था। उसीपर अवस्थित होकर मकरध्वज ने शिव के वक्षः स्थल पर मोहन नामक बाण मारा। कामदेव का महाप्रभावशाली नश्वर वह विमोहन नामक विशाल तथा कठोर पुष्पबाण शिव के विशुद्ध वक्षःस्थल में आकर लगा। उस समय हृदय में आहत भगवान् शिव पर्वत के समान धैर्यशाली होने पर भी कुछ कामोन्मुख हो गये। किन्तु भावों के प्रभुत्व से अधिक कामावेश को वे नहीं प्राप्त हुये। इन बाहरी तपस्या के विघ्न समूहों को प्राप्त कर वे क्रोधाग्नि से अभिभूत हो गये और तब मुख से घोर हुँकार का शब्द किया।।२४३-२४७।।

बभूव वदने नेत्रं तृतीयमनलाकुलम्। रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम्।।२४८।।
तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः।
तन्नेत्रविस्फुलिङ्गेन क्रोशतां नाकवासिनाम्।।२४९।।
गमितो भस्मासात्तूर्णं कन्दर्पः कामिदर्पकः।
स तु तं भस्मसात्कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः।।२५०।।
व्यजृम्भत जगद्दग्धुं ज्वालाहुङ्कारघस्मरः। ततो भवो जगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेदसम्।।२५१।।

उनके मुख के ऊपर उनका तीसरा नेत्र क्रोधानल से आकुलित हो गया, जिससे उनका महाभयानक शरीर प्रलयकालीन जगत् के संहार करने में प्रवृत्त की भाँति भीषण दिखायी पड़ने लगा। तदुपरान्त धूर्जटि शिव ने समीप में अवस्थित कामदेव पर तीसरे नेत्र को फेरा। उस तृतीय नेत्र में उठने वाली चिंगारियों से कामियों को उन्मत्त करने वाला रतिकान्त शीघ्र ही जलकर भस्म रूप में परिणत हो गया। उस समय स्वर्ग के निवासी देवगण हाहाकार करने लगे। शिव के नेत्र से उद्भूत होने वाली वह अग्नि उस कामदेव को भस्मसात् करके अपनी ज्वालाओं की भीषण हुँकार से फूफू करती हुई समस्त जगत् को जलाने के लिये उद्यत हो गई। किन्तु भगवान् शिव ने जगत् के मङ्गल की कामना से उस अग्नि को कई विभागों में विभक्त कर दिया।।२४८-२५१।।

सहकारे मधौ चन्द्रे सुमनःसु परेष्वपि। भृङ्गेषु कोकिलास्येषु विभागेन स्मरानलम्।।२५२।।

स बाह्यान्तरविद्धेन हरेण स्मरमार्गणः। रागस्नेहसमिद्धान्तर्धावंस्तीव्रहुताशनः॥२५३॥

विभक्तलोकसङ्क्षोभकरो दुर्वारजृम्भितः।

सम्प्राप्य स्नेहसम्पृक्तं कामिनां हृदयं किल॥२५४॥

ज्वलत्यहर्निशं भीमोदुश्चिकित्स्यमुखात्मकः।

आम के वृक्ष, वसन्तऋतु के समय, चन्द्रमा, पुष्प, भ्रमर तथा कोकिलाओं के मुख में उस काम को जलाने वाली अग्नि का शिव ने विभागपूर्वक स्थापन किया। अन्तः एवं बाह्य दोनों मर्मस्थलों पर आहत शिव द्वारा वे कामबाण अनुराग एवं स्नेह से उद्दीप्त एवं तीव्र वेग से दौड़ने वाले अग्नि के रूप में उपर्युक्त स्थलों में विभक्त होकर लोगों के हृदयों को तभी से क्षुब्ध करने वाले हो गये। उनका दूर करना कठिन हो गया। कामुक व्यक्तियों के स्नेहपूर्ण हृदय को वे रात दिन जलाते रहते हैं। उस जलन की चिकित्सा कठिनाई से हो सकती है।।२५२-२५४.५।।

विलोक्य हरहुङ्कारज्वालाभस्मकृतं स्मरम्॥२५५॥

विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह। ततो विलप्य बहुशो मधुना परिसान्त्विता॥२५६॥

जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम्।

भृङ्गानुयातां सङ्गृह्य पुष्पितां सहकारजाम्॥२५७॥

लतां पवित्रकस्थाने पाणौ परभृतां सखीम्। निर्बध्य तु जटाजूटं कुटिलैरलकै रतिः॥२५८॥

उद्धूल्य गात्रं शुभ्रेण हृद्येन स्मरभस्मना। जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रोवाचेन्द्रविभूषणम्॥२५९॥

इस प्रकार महादेव के हुँकार की ज्वाला से भस्मीभूत कामदेव को देखकर कामदेव के मित्र वसन्त के साथ रति घोर विलाप करने लगीं। बहुत विलाप कर चुकने पर मधु के बहुत समझाने-बुझाने पर रति त्रिलोचन चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर के शरण में गई। जाते समय उसने पवित्रक के स्थान पर भ्रमरों के समूहों से व्याप्त आम्र की प्रफुल्लित लता को अपने एक हाथ में ग्रहण किया था, दूसरे हाथ में अपनी सखी कोकिला को पकड़े हुये थी। उसने अपने घुंघराले बालों की टेढ़ी अलकें सँवारकर बाँध लिया था, शरीर पर कामदेव के स्वच्छ भस्म को लपेट लिया था। वहाँ जाकर घुटनों के बल पृथ्वी पर स्थित होकर रति ने चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर से कहा-।।२५५-२५९।।

रतिरुवाच

नमः शिवायास्तु निरामयाय नमः शिवायास्तु मनोमयाय।

नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय॥२६०॥

नमो भवायास्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय।

नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय॥२६१॥

नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।

नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय नमोऽस्तु ते ज्ञानवरप्रदाय॥२६२॥

नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय नमो निसर्गामलभूषणाय।
नमोऽस्त्वमेयान्धकमर्दकाय नमः शरण्याय नमोऽगुणाय॥२६३॥

रति ने कहा–निरामय शिव! तुम्हारे लिये हमारा प्रणाम है, मनोमय शिव! तुम्हें हमारा प्रणाम है। देवताओं द्वारा पूजित भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले शङ्कर! तुम्हें मैं प्रणाम करती हूँ। भव! मेरा तुम्हें प्रणाम है। भवोद्भव! मैं प्रणाम करती हूँ। मनोभव! कामदेव को विध्वस्त करने वाले! मेरा प्रणाम है। गूढ़ व्रत करने वाले! तुम्हें मैं प्रणाम करती हूँ। माया के गहन आश्रय! तुम्हें मेरा प्रणाम है। शर्व! प्रणाम है। शिव! प्रणाम है। सिद्ध! पुरातन! प्रणाम है। काल! मैं प्रणाम करती हूँ। काल! तुम्हें मेरा प्रणाम है, श्रेष्ठज्ञान देने वाले! तुझे मैं प्रणाम कर रही हूँ। काल तथा कला दोनों के अतिक्रमण करने वाले! तुझे मेरा प्रणाम है। स्वाभाविक! निर्मल भूषणधारी तुम्हें प्रणाम है। अपरिमित पराक्रमशाली! अन्धकासुर के मर्दन करने वाले! प्रणाम है। शरण देने वाले! प्रणाम है। गुण रहित तुम्हें प्रणाम है ।।२६०-२६३।।

नमोऽस्तु ते भीमगणानुगाय नमोऽस्तु नानाभुवनादिकर्त्रे।
नमोऽस्तु नानाजगतां विधात्रे नमोऽस्तु ते चित्रफलप्रयोक्त्रे॥२६४॥
सर्वावसाने ह्यविनाशनेत्रे नमोऽस्तु चित्राध्वरभागभोक्त्रे।
नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे नमः सदा ते भवसङ्गहर्त्रे॥२६५॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यमसह्यकोपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।
शशाङ्कचिह्नाय सदैव तुभ्यममेयमानाय नमः स्तुताय॥२६६॥
वृषेन्द्रयानाय पुरान्तकाय नमः प्रसिद्धाय महौषधाय।
नमोऽस्तु भक्त्याऽभिमतप्रदाय नमोऽस्तु सर्वार्तिहराय तुभ्यम्॥२६७॥

भयंकर प्रमथ गणों से सुसेवित तुम्हें मैं प्रणाम करती हूँ। अनेक भुवनों के आदिकर्त्ता! तुम्हें मेरा प्रणाम है। नाना जगत् की रचना करने वाले! तुझे मेरा प्रणाम है। विचित्र फलों के देने वाले आपको प्रणाम है। महाप्रलय के समय विनाश से बचे हुये प्राणियों के नेता और विचित्र यज्ञों के फल को भोगने वाले! तुम्हें मेरा प्रणाम है। भक्तों को उनका अभिमत प्रदान करने वाले! भवभीति से संग छुड़ाने वाले! तुझे मेरा प्रणाम है। अनन्तरूपशाली! असह्य कोपवान्! तुम्हें मेरा प्रणाम है। अपरिमित मान धारण करने वाले! चन्द्रमा से विभूषित! देवताओं द्वारा सम्मानित! तुम्हें मेरा प्रणाम है। नन्दीश्वर पर आरूढ़! त्रिपुर के विनाशक! प्रसिद्ध महौषध रूप! तुम्हें मैं प्रणाम कर रही हूँ। सब की विपत्तियों को हरने वाले! भक्तों के अभिमत दाता! तुमको मेरा प्रणाम है.।।२६४-२६७।।

चराचराचारविचारवर्यमाचार्यमुत्प्रेक्षितभूतसर्गम्।
त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्ना प्रियाप्रमेयं महतां महेशम्॥२६८॥
प्रयच्छ मे कामवशःसमृद्धिं पुनः प्रभो जीवतु कामदेवः।
प्रियं विना त्वां प्रियजीवितेषु त्वत्तोऽपरः को भुवनेष्विहास्ति॥२६९॥

प्रभुः प्रियायाः प्रसवः प्रियाणां प्रणीतपर्यायपरापरार्थः।
त्वमेवमेको भुवनस्य नाथो दयालुरुन्मूलितभक्तभीतिः॥२७०॥

चराचर जगत् के आचार विचार के आचार्य! समस्त सृष्टि के जीवों को देखने वाले! अप्रमेय प्रिय महान् महेश्वर! अतुलित शक्तिशाली! इन्दुमौलि! मैं अब तुम्हारी शरण में हूँ। हे प्रभो! मुझे काम तथा यश की समृद्धि दीजिये। ऐसा कीजिये जिससे मेरा प्रियकान्त कामदेव पुनः जीवित हो उठे। मेरे प्रियतम को तुम्हारे बिना इस जगत् में दूसरा कौन जिला सकता है? तुम अपनी प्रिया के प्रभु हो, प्रिय समूहों की उत्पत्ति के कारण हो, पर तथा अपर इन अर्थ समूहों के तुम ही पर्याय हो अर्थात् पर तथा अपर-दोनों ही तुम हो, जगत् के स्वामी हो, दयालु हो, भक्तों की भीति को विनष्ट करने वाले हो॥२६८-२७०॥

सूत उवाच

इत्थं स्तुतः शङ्कर ईड्य ईशो वृषाकपिर्मन्मथकान्तया तु।
तुतोष दोषाकरखण्डधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य॥२७१॥

सूतजी कहते हैं-स्तुति के योग बालचन्द्रधारी, शिव कामपत्नी रति के इस प्रकार प्रार्थना करने पर संतुष्ट हो गये और उसे देखकर मधुर स्वर में यों बोले॥२७१॥

शङ्कर उवाच

भवितेति च कामोऽयं कालात्कान्तोऽचिरादपि।
अनङ्ग इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति॥२७२॥
इत्युक्ता शिरसाऽऽवन्द्य गिरिशं कामवल्लभा।
जगामोपवनं रम्यं रतिस्तु हिमभूभृतः॥२७३॥
रुरोद चापि बहुशो दीना रम्ये स्थले तु सा। मरणव्यवसायात्तु निवृत्ता सा हराज्ञया॥२७४॥

शंकर ने कहा-'रति! तुम्हारा पति कामदेव शीघ्र ही तुम्हें पुनः पति रूप में प्राप्त होगा, और 'अनंग' नाम से लोक में विख्यात होगा। महादेव के ऐसा कहने पर काम की पत्नी रति ने सिर झुका गिरीश शङ्कर को प्रणाम कर हिमवान् के परमरमणीय उपवन की ओर प्रस्थान किया और उस सुरम्य स्थान पर पति वियोग से कातर होकर दीन स्वर से बहुत विलाप किया, किन्तु शिव की आज्ञा से मृत्यु की अभिलाषा को उसने छोड़ दिया था॥२७२-२७४॥

अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः। कृताभरणसंस्कारां कृतकौतुकमङ्गलाम्॥२७५॥
स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनांशुकाम्बराम्।
सखीभ्यां संयुता शैलो गृहीत्वा स्वसुतां ततः॥२७६॥
जगाम शुभयोगेन तदा सम्पूर्णमानसः। सकाननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च॥२७७॥
ददर्श रुदतीं नारीमप्रतर्क्यमहौजसम्। रूपेणासदृशीं लोके रम्येषु वनसानुषु॥२७८॥

कौतुकेन परामृश्य तां दृष्ट्वा रुदतीं गिरिः।
उपसर्प्य ततस्तस्या निकटे सोऽभ्यपृच्छत॥२७९॥

इधर नारद के कहने से हिमवान् पर्वत आभूषणादि से सुसज्जित, कौतुकवश मांगलिक विधानों से अलंकृत स्वर्गीय पुष्पों से सिर की माला बनाकर, श्वेत महीन रेशमी कपड़े की साड़ी पहिनकर दो सखियों से युक्त अपनी पुत्री को साथ ले शुभ योग में प्रसन्न चित्त हो जंगलों, उपवनों तथा वनों में घूमता हुआ प्रस्थित हुआ। थोड़ी देर बाद उसने अति तेजस्विनी, असाधारण सौन्दर्यशालिनी स्त्री (रति) को उन मनोहर शिखर पर रोते हुए देखा। उसे दीनभाव में रोती देखकर कुतूहल वश वह उसके समीप गया और पूछने लगा।।२७५-२७९।।

हिमवानुवाच

काऽसि कस्यासि कल्याणि किमर्थं चापि रोदिषि।
नैतदल्पमहं मन्ये कारणं लोकसुन्दरि॥२८०॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह। रुदती शोकजननं श्वसती दैन्यवर्धनम्॥२८१॥

हिमवान् ने कहा-'लोक में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी। तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? क्यों इस प्रकार निर्जन वन में तुम रो रही हो? इस रुदन का साधारण कारण मैं नहीं मानता।' रोते हुये मधु समेत रति ने हिमवान् की ऐसी वाणी सुनकर शोक को उत्पन्न करने वाली तथा दैन्यपूर्ण निम्न बातें दीर्घ श्वासें खींचते हुये कहा।।२८०-२८१।।

रतिरुवाच

कामस्य दायितां भार्यां रतिं मां विद्धि सुव्रत।
गिरावस्मिन्महाभाग गिरिशस्तपसि स्थितः॥२८२॥
तेन प्रत्यूहरुष्टेन विस्फार्याऽऽलोक्य लोचनम्।
दग्धोऽसौ झषकेतुस्तु मम कान्तोऽतिवल्लभः॥२८३॥
अहं तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला।
स्तुतवत्यथ संस्तुत्या ततो मां गिरिशोऽब्रवीत्॥२८४॥
तुष्टोऽहं कामदयिते कामोऽयं ते भविष्यति।
त्वत्स्तुतिं चाप्यधीयानो नरो भक्त्या मदाश्रयः॥
लप्स्यते काङ्क्षितं कामं निवर्त्य मरणादितः॥२८५॥
प्रतीक्षन्ती च तद्वाक्यमाशावेशादिभिर्ह्यहम्। शरीरं परिरक्षिष्ये कंचित्कालं महाद्युते॥२८६॥
इत्युक्तस्तु तदा रत्या शैलसम्भ्रमभीषितः।
पाणावादाय हि सुतां गन्तुर्मच्छत्स्वकं पुरम्॥२८७॥

भाविनोऽवश्यभावित्वाद्भवित्री भूतभाविनी।
लज्जमाना सखिमुखैरुवाच पितरं गिरिम्॥२८८॥

रति ने कहा-सुव्रत! मुझे कामदेव की प्राणवल्लभा रति समझो। महाभाग्यशालिन्! इस पर्वत के शिखर पर शङ्कर देव तपस्या कर रहे हैं। विघ्न के कारण रुष्ट होकर उन्होंने अपने तीसरे नेत्र को खोलकर मेरे प्राणप्रिय मकरध्वज को भस्म कर दिया। भय से विह्वल होकर मैं उन्हीं की शरण में अभी गई हुई थी, वहाँ स्तुति करते समय शङ्कर ने मुझसे कहा है 'कामदेव की प्रिये। मैं तेरे ऊपर सन्तुष्ट हूँ, यह कामदेव फिर तुम्हें पति के रूप में प्राप्त होगा। तुम्हारी की हुई स्तुति को पढ़ने वाला मनुष्य भक्तिपूर्वक मेरे आश्रय में रहकर अपने मनोवांछित प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करेगा। तुम भी सन्तोष धारणकर मृत्यु से निवृत्त हो जाओ। महाद्युतिमान्! उन्हीं शङ्कर की बात की प्रतीक्षा करती हुई मैं कुछ समय तक पति के भावी मिलन की आशा से अपने इस शरीर की रक्षा करूँगी। रति के मुँह से ऐसी बातें सुनकर पर्वतराज हिमवान् अति भयभीत हो गया और अपने हाथ से अपनी कन्या को पकड़कर वह अपने पुर की ओर गमनोद्यत होने लगा। तब भावी की अवश्यम्भाविता से प्रभावित होने के कारण भूतिभाविनी पार्वती लज्जा से युक्त होकर अपनी सखियों द्वारा पिता से बोलीं।।२८२-२८८।।

शैलदुहितोवाच

दुर्भाग्येण शरीरेण किं ममानेन कारणम्। कथं च तादृशं प्राप्तं सुखं मे स पतिर्भवेत्॥२८९॥
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः। दुर्भगत्वं वृथा लोको वहते सति साधने॥२९०॥
जीवितादुदुर्भगाच्छ्रेयो मरणं ह्यतपस्यतः।
भविष्यामि न सन्देहो नियमैः शोषये तनुम्॥२९१॥
तपसि भ्रष्टसन्देह उद्यमोऽर्थजिगीषया। साऽहं तपः करिष्यामि यदहं प्राप्य दुर्लभा॥२९२॥
इत्युक्तः शैलराजस्तु दुहित्रा स्नेहविक्लवः।
उवाच वाचा शैलेन्द्रो स्नेहगद्गदवर्णया॥२९३॥

पार्वती ने कहा-'पिता जी! मेरे इस भाग्य रहित शरीर से क्या लाभ है? मैं किस प्रकार किस सत्कर्म द्वारा वैसे आनन्ददायी पति की प्राप्ति करने योग्य हो सकती हूँ? केवल तपस्या द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। तपोनिष्ठ को संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। मनुष्य ऐसे साधनों के रहते हुये व्यर्थ ही दुर्भाग्य को अपने सिर पर ढोता फिरता है। बिना तपस्या किये भाग्यरहित जीवन से मर जाना तो कहीं अच्छा है। मैं अवश्य अपने मनोरथ की प्राप्ति करूँगी। तपस्या के नियमों से शरीर को सुखा डालूँगी। तपस्या में सन्देह को व्यर्थ करके (निःसन्देह होकर) मनोरथ की प्राप्ति के लिए उद्यम करूँगी। मैं उस घोर तपस्या को करूँगी, जिसे करके सर्वसाधारण से दुर्लभ पदवी को प्राप्त करूँ।' पुत्री पार्वती के ऐसा कहने पर स्नेह से विह्वल गिरिराज हिमवान् स्नेह से भरे गद्गद स्वर में पार्वती को इस प्रकार बोले।।२८९-२९३।।

हिमवानुवाच

उ मेति चपले पुत्रि न क्षमं तावकं वपुः।(सोढुं क्लेशस्वरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने॥२९४॥

भावीन्यभिविचार्याणि पदार्थानि सदैव तु।
भाविनोऽर्था भवन्त्येव हठेनानिच्छतोऽपि वा॥२९५॥
तस्मान्न तपसा तेऽस्ति बाले किञ्चित्प्रयोजनम्।
भवनायैव गच्छामश्चिन्तयिष्यामि तत्र वै॥२९६॥

हिमवान् ने कहा-('उ, मा') नहीं, मत, ऐसा मत करो। चंचले! बेटी! तुम्हारा शरीर तपस्या करने योग्य नहीं है। मेरी भोलीभाली दिखाई पड़ने वाली बेटी! तपस्या क्लेश स्वरूप हैं, उसे सहन करने योग्य तू नहीं है। भावी पदार्थों के लिए इतनी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, इसलिये मैं ऐसा कह रहा हूँ। जो भावी में है वह तो बिना प्रयास व इच्छा किये ही बलात् प्राप्त होता है। वत्से! इसलिये तुम्हें तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है। चलो, घर लौटकर सब लोग चलें, तब फिर वहाँ विचार कर लेंगे।।२९४-२९६।।

इत्युक्ता तु यदा नैव गृहायाभ्येति शैलजा।
ततः स चिन्तयाऽऽविष्टो दुहितां प्रशशंस च॥२९७॥
ततोऽन्तरिक्षे दिव्या वागभूद्भुवनभूतले।
उ मेति चपले पुत्रि त्वयोक्ता तनया ततः)॥२९८॥
उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति।
सिद्धिं च मूर्तिमत्येषा साधयिष्यति चिन्तिताम्॥२९९॥
इति श्रुत्वा तु वचनमाकाशात्काशपाण्डुरः।
अनुज्ञाय सुतां शैलो जगामाऽऽशु स्वमन्दिरम्॥३००॥

पर्वतराज हिमवान् के ऐसा कहने पर भी जब शैलपुत्री पार्वती घर को नहीं लौटीं, तब हिमवान् कुछ चिन्ता से व्याकुल होकर उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय आकाश से पृथ्वी मण्डल पर यह दिव्यवाणी सुनाई पड़ी। (शैलराज) 'तुमने यतः (उ, मा) नहीं मत, ऐसा मत करो हे चंचले! बेटी!' ऐसा कहा है, अतः 'उमा' इस नाम से तुम्हारी यह पुत्री त्रिभुवन में विख्यात होगी। सिद्धियों की मूर्ति यह देवी सभी प्रकार की चिन्ताओं को दूर करेगी।' इस प्रकार की आकाश से होने वाली वाणी को सुनकर काश के फूल के समान श्वेतवर्ण वाले हिमवान् ने पुत्री को तपस्या के लिये आज्ञा प्रदान कर शीघ्र ही अपने निवास-स्थान की ओर प्रस्थान किया।।२९७-३००।।

सूत उवाच

शैलजाऽपि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः। सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा॥३०१॥

शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम्। दिव्यपुष्पलताकीर्णं सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥३०२॥

नानामृगगणाकीर्णं भ्रमरोद्घुष्टपादपम्। दिव्यप्रस्त्रवणोपेतं दीर्घिकाभिरलंकृतम्॥३०३॥
नानापक्षिगणाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
जलजस्थलजैः पुष्पैः प्रोत्फुल्लैरुपशोभितम्॥३०४॥

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! तदनन्तर अपनी दोनों सखियों के साथ नगराज हिमालय की पुत्री पार्वती उस पर्वत शिखर पर तपस्या करने गईं, जहाँ देवगण भी नहीं जाते थे। हिमवान् पर्वत की उस शिखर पर वे पहुँची, जो विविध प्रकार की धातुओं से विभूषित था, दिव्यपुष्पों तथा लताओं से आकीर्ण था, सिद्धों तथा गन्धर्वों के समूहों से सेवित था। उस स्थल पर अनेक प्रकार के मृगगण अधिक संख्या में विद्यमान थे, वृक्षों पर भ्रमर गूँज रहे थे। दिव्य झरने झर रहे थे, अनेक बावलियाँ शोभायमान हो रही थीं। विविध प्रकार के पक्षियों के समूह चहचहा रहे थे। कहीं-कहीं पर मनोहर चक्रवाक के जोड़े दिखाई पड़ रहे थे। जल एवं स्थल में होने वाले पुष्पों के समूह खिलकर उस स्थान की शोभा वृद्धि कर रहे थे॥३०१-३०४॥

चित्रकन्दरसंस्थानं गुहागृहमनोहरम्। विहङ्गसङ्घसङ्घुष्टं कल्पपादपसङ्कटम्॥३०५॥
तत्रापश्यन्महाशाखं शाखिनं हरितच्छदम्। सर्वर्तुकुसुमोपेतं मनोरथशतोज्ज्वलम्॥३०६॥
नानापुष्पसमाकीर्णं नानाविधफलान्वितम्।
नतं सूर्यस्य रुचिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम्॥३०७॥

विचित्र प्रकार की कन्दरायें दिखाई पड़ रही थीं, गुफाओं में सुन्दर मनोहारि छोटे गृह बने हुये थे। पक्षियों के समूह के समूह जिसपर बोल रहे थे-ऐसे कल्पवृक्षों के समूहों से उस स्थान की शोभा और भी अधिक हो रही थी। उस स्थान पर जाकर पार्वती ने एक बहुत बड़े शाखाओं वाले वृक्ष को देखा, जिसके पत्ते हरे-हरे थे। जो सभी ऋतुओं में होने वाले पुष्पों से समन्वित था, सैकड़ों मनोरथों की भाँति उज्ज्वल था, उसमें अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुये थे, अनेक प्रकार के फल लगे हुये थे, सूर्य की किरणें उसके सघन पत्तों को पारकर नीचे तक नहीं आ रही थीं॥३०५-३०७॥

तत्राम्बराणि संत्यज्य भूषणानि च शैलजा। संवीता वल्कलैर्दिव्यैर्दर्भनिर्मितमेखला॥३०८॥
त्रिःस्नाता पाटलाहारा बभूव शरदां शतम्। शतमेकेन शीर्णेन पर्णेनावर्तयत्तदा॥३०९॥
निराहारा शतं साऽभूत्सामानां तपसां निधिः।
तत उद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तत्तपोग्निना॥३१०॥
ततः सस्मार भगवनन्मुनीन्सप्त शतक्रतुः। ते समागम्य मुनयः सर्वे समुदितास्ततः॥३११॥
पूजिताश्च महेन्द्रेण पप्रच्छुस्तं प्रयोजनम्। किमर्थं तु सुरश्रेष्ठ संस्मृतास्तु वयं त्वया॥३१२॥
शक्रः प्रोवाच शृण्वन्तु भगवन्तः प्रयोजनम्। हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा।
तस्या ह्यभिमतं कामं भवन्तः कुर्तुमर्हथ॥३१३॥

उसी मनोरम वृक्ष के नीचे पार्वती ने अपने वस्त्रों को छोड़कर वल्कल का वस्त्र तथा कुश की

बनाई हुई मेखला को धारण किया। प्रथमतः सौ वर्ष तक पार्वती तीनों बेला स्नान कर पाटल वृक्ष के पत्तों का भोजन करती रहीं, उसके बाद सौ वर्ष तक सूखे पत्तों से जीवन यापन करती रहीं। फिर सौ वर्ष तक निराहार रहकर घोर तपस्या में निरत रहीं, इस प्रकार वे तपोनिधि हुई। जब उनकी तपस्या के तेज से जगत् के सभी प्राणी उद्वेलित हो गये, तब भगवान् इन्द्र ने सातों मुनियों का स्मरण किया। स्मरण करते ही वे सभी मुनिगण आनन्दित होकर वहाँ उपस्थित हुये। इन्द्र द्वारा पूजित सप्तर्षियों ने अपने बुलाये जाने का प्रयोजन पूछते हुये कहा–'देवश्रेष्ठ, किस प्रयोजन के लिए आपने हम लोगों का स्मरण किया है?' इन्द्र ने कहा–'महर्षिगण! मेरे प्रयोजन को सुनिये। हिमवान् की पुत्री पार्वती हिमाचल पर घोर तप कर रही है, उसके मनोवांछित प्रयोजन को आप लोग पूर्ण करें।'।।३०८-३१३।।

ततः समापतन्देव्या जगदर्थं त्वरान्विताः। तथेत्युक्त्वा तु शैलेन्द्रं सिद्धसङ्घातसेवितम्।।३१४।।
ऊचुरागत्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम्। पुत्रि किं ते व्यवसितः कामः कमललोचने।।३१५।।
तानुवाच ततो देवी सलज्जा गौरवान्मुनीन्। तपस्यतो महाभागाः प्राप्य मौनं भवादृशान्।।३१६।।

वन्दनाय नियुक्ता धीः पावयत्यविकल्पितम्।
प्रश्नोन्मुखत्वाद्भवतां युक्तमासनमादितः।।३१७।।
उपविष्टाः श्रमोन्मुक्तास्ततः प्रक्ष्यथ मामतः।
इत्युक्त्वा सा ततश्चक्रे कृतासनपरिग्रहान्।।३१८।।
सा तु तान्विधिवत्पूज्यान्पूजयित्वा विधानतः।
उवाचाऽऽदित्यसङ्काशान्मुनीन्सप्त शती शनैः।।३१९।।

ऐसी बातें सुनकर इन्द्र की आज्ञा स्वीकार कर सप्तर्षिगण जगत् के कल्याण के निमित्त अति शीघ्रतापूर्वक पार्वती के पास हिमालय पर पहुँचे, जहाँपर सिद्धगण अधिक संख्या में विद्यमान थे। वहाँ जाकर उन लोगों ने पार्वती से मृदुस्वर में पूछा–'पुत्रि कमललोचने! तुम्हें कौन-सा प्रयोजन सिद्ध करना है?' उन ऋषियों के पूँछने पर लज्जायुक्त पार्वती ने गौरव से सिर ऊपर कर कहा–'महाभाग्यशालियों! तपस्या करते समय मैंने यद्यपि मौनव्रत का पालन किया था; किन्तु आप जैसे महान् पुरुषों का दर्शन प्राप्त कर मेरी बुद्धि प्रणाम करने के लिए प्रवृत्त हुई है, जो निश्चय ही मुझे पवित्र कर रही है। आप लोगों के प्रश्नोन्मुख होने के कारण मुझे प्रथमतः आप लोगों को आसन देना उचित लग रहा है, आइये, बैठ जाइये। परिश्रम से कुछ छुटकारा पा लीजिये, तब मुझसे जो पूँछना हो पूछिये।' ऐसा कहकर पार्वती ने उन लोगों को आसन आदि से संयुक्त किया तथा विविध भाँति से विधानपूर्वक पूजा करके सत्कृत किया। तदुपरान्त सूर्य के समान तेजस्वी उन सातों मुनियों से धीरे-धीरे कुछ कहना प्रारम्भ किया।।।३१४-३१९।।

त्यक्त्वा व्रतात्मकं मौनं मौनं जग्राह ह्रीमयम्।
भावं तस्यास्तु मौनान्तं तस्या सप्तर्षयो यथा।।३२०।।

गौरवाधीनतां प्राप्ताः पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा। साऽपि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी॥३२१॥
मुनीञ्शान्तकथालापान्प्रेक्ष्य प्रोवाच वाग्यमम्।
भगवन्तो विजानन्ति प्राणिनां मानसंहितम्॥३२२॥
मनोगतीभिरत्यर्थं कदर्थन्ते हि देहिनः। केचित्तु निपुणास्तत्र घटन्ते विबुधोद्यमैः॥३२३॥
उपायैर्दुर्लभान् भावान्प्राप्नुवन्ति ह्यतन्द्रिताः।
अपरे तु परिच्छिन्ना नानाकाराभ्युपक्रमाः॥३२४॥
देहान्तरार्थमारम्भमाश्रयन्ति हितप्रदम्। मम त्वकाशसम्भूतपुष्पदामविभूषितम्॥३२५॥

किन्तु उस समय बातें करते हुये पार्वती ने व्रत के मौन को छोड़कर लज्जा के मौन को धारण किया, जिससे उनके समस्त मनोभाव मौनदशा में परिणत हो गये। तब मुनियों ने गम्भीर भावों से युक्त पार्वती से पुनः उस प्रयोजन के बारे में पूछा। सुन्दर हास करने वाली पार्वती ने अपने गौरव का ध्यान रख शान्तिपूर्वक वार्तालाप करने वाले उन मुनियों से वाणी पर संयम रखते हुए इस प्रकार कहा–आप लोग तो प्राणियों के मन में रहने वाली उनकी सभी कल्याण की अभिलाषाओं के जानने वाले हैं। प्रायः सभी शरीरधारी अपने मनोगत भावों के कारण ही दुःख का अनुभव करते हैं। कुछ लोग जो उनमें निपुण हैं, सफलता के लिए दैवी उपायों से प्रयत्न करते हैं। जो आलस्य नहीं करते, वे अपने उपायों से दुष्प्राप्य प्रयोजनों की भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अनेक प्रकार के उपायों से युक्त होकर दूसरे शरीर के लिए कल्याणदायी शास्त्र सम्मत कार्यों को करते हैं। किन्तु मेरा मनोरथ आकाश में फूलने वाले पुष्पों की माला से विभूषित है।।३२०-३२५।।

वन्ध्या सुतं प्राप्तुकामा मनः प्रसरते मुहुः। अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता॥३२६॥
प्रकृत्यैव दुराधर्षं तपस्यन्तं तु संप्रति। सुरासुरैरनिर्णीतं परमार्थक्रियाश्रयम्॥३२७॥
साम्प्रतं चापि निर्दग्धमदनं वीतरागिणम्। कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम्॥३२८॥
इत्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतां मनसस्ततः।
ज्ञातुमस्या वचः प्रोचुः प्रक्रमात्प्रकृतार्थकम्॥३२९॥

मेरा मन बारम्बार वन्ध्या के पुत्र की प्राप्ति करना चाहता है अर्थात् असम्भव अभिलाषा को सफल करने के लिए सतत प्रयत्नशील है। मैं भगवान् शंकर को पति रूप में वरण करने को इच्छुक हूँ, जो स्वभाव से ही दुराराध्य हैं और विशेषतया इस समय तपः साधना में निरत हैं। देवता तथा दानवों में से कोई भी उनका अन्त नहीं जान सका, वे परमार्थ प्रयोजन के एकमात्र आश्रय हैं। अभी थोड़े समय की बात है कि उन्होंने कामदेव को ही जला दिया है, और स्वयं वीतराग होकर अवस्थित हैं तो फिर ऐसे रुद्र को मुझ जैसी कुमारी किस प्रकार आराधना कर प्रसन्न कर सकती है?' पार्वती की ऐसी बातें सुनकर मुनियों ने उनके मन की स्थिरता को और अधिक जानने के लिए क्रमशः उसी विषय पर पुनः कहा।।३२६-३२९।।

मुनय ऊचुः

द्विविधं तु सुखं तावत्पुत्रि लोकेषु भाव्यते।
शरीरस्यास्य सम्भोगैश्चेतसश्चापि निर्वृतिः॥३३०॥
प्रकृत्या स तु दिग्वासा भीमः पितृवणेशयः।
कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षः स्थिरक्रियः॥३३१॥
प्रमत्तोन्मत्तकाकारो बीभत्सकृतसंग्रहः।
यातिना तेन कस्तेऽर्थो मूर्तानर्थेन काङ्क्षितः॥३३२॥
यदि ह्यस्य शरीरस्य भोगमिच्छसि साम्प्रतम्।
तत्कथं ते महादेवाद्भयभाजो जुगुप्सितात्॥३३३॥
स्रवद्रक्तवसाभ्यक्तकपालकृतभूषणात्। श्वसदुग्रभुजङ्गेन्द्रकृतभूषणभीषणात्॥३३४॥
श्मशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतात्सति।

मुनियों ने कहा–वेटी! इस संसार में दो प्रकार के सुख कहे गये हैं। प्रथम तो शरीर के सम्भोग द्वारा, दूसरा मन की शान्ति द्वारा। किन्तु वे शिव तो स्वभाव से ही नंगे रहने वाले हैं, भयानक आकृति वाले हैं, पितृ–वन में निवास करने वाले हैं। वे कपालों को धारण करने वाले हैं। भिक्षुक हैं, नग्न रहते हैं। विकृत नेत्रों वाले हैं, सुस्त हैं, पागलों की भाँति आकार बनाये रहते हैं, वीभत्स वस्तुओं के संग्रह करने में ही उनकी रुचि देखी जाती है। ऐसे अनर्थस्वरूप योगी से भला तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? तुम जो उनके द्वारा इस शरीर के सम्भोग की अभिलाषा कर रही हो सो तो एकदम असम्भव है। ऐसे भयानक आकृति वाले घृणोत्पादक उन महादेव से तुम्हें सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? सर्वदा रक्त और मज्जा बहाते हुए नर कपालों को उन्होंने आभूषण बना रखा है, अति भयानक दिखाई पड़ने वाले फुफकारने वाले भुजङ्गों को वे अपने शरीर में लिपटाये रहते हैं, श्मशान भूमि में निवास करते हैं। उनके पीछे भयानक स्वरूप वाले प्रमथगण घूमा करते हैं।।३३०-३३४३।।

सुरेन्द्रमुकुटव्रातनिघृष्टचरणोऽरिहा ॥३३५॥
हरिरस्ति जगद्धाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्तिमान्।
नाथो यज्ञभुजामस्ति तथेन्द्रः पाकशासनः॥३३६॥
देवतानां निधिश्चास्ति ज्वलनः सर्वकामकृत्।
वायुरस्ति जगद्धाता यः प्राणः सर्वदेहिनाम्॥३३७॥
तथा वैश्रवणो राजा सर्वार्थमतिमान्विभुः।
एभ्य एकतमं कस्मान्न त्वं सम्प्राप्तुमिच्छसि॥३३८॥

उनके अतिरिक्त देवराज इन्द्र के मुकुट की मणियों के समूहों से जिनका चरण घिसा जाता है–ऐसे शत्रुओं के विनाशक, जगत् के पालन करने वाले, अनन्त शोभाशाली, लक्ष्मी के आराध्य

भगवान् विष्णु हैं, तथा यज्ञभोक्ता देवताओं के स्वामी पाकशासन देवेन्द्र हैं, देवताओं के निधि स्वरूप सब मनोरथों की पूर्ति करने वाले अग्निदेव हैं, जगत्पालक वायु हैं, जो सभी शरीरधारियों के प्राण कहे जाते हैं। सभी प्रकार की सम्पत्तियों से भरे पुरे परम बुद्धिमान् कुबेर हैं-इनमें से किसी एक को वरण करने की तुम क्यों नहीं इच्छा करती हो?॥३३५-३३८॥

उतान्यदेहसम्प्राप्त्या सुखं ते मनसेप्सितम्। एवमेतत्तवाप्यत्र प्रभवो नाकसम्पदाम्॥
अस्मिन्नेव पराः सर्वाः कल्याणप्राप्तयस्तव॥३३९॥
पितुरेवास्ति तत्सर्वं सुरेभ्यो यन्न विद्यते।
अतस्तत्प्राप्तये क्लेशः स वाऽप्यत्राफलस्तव॥३४०॥
प्रायेण प्रार्थितो भद्रे सुस्वल्पो ह्यतिदुर्लभः।
अस्य ते विधियोगस्य धाता कर्ताऽत्र चैव हि॥३४१॥

यदि अन्य जन्म में सुख प्राप्त करने की तुम्हें इच्छा है तो वह भी इन्हीं देवताओं से पूर्ण हो सकती है और तुम्हें तो इसी जन्म में सर्वोत्तम कल्याणमय सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। तुम्हारे पिता के पास ऐसी वस्तुएँ हैं, जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। अतः उनके लिए क्लेश सहना बेकार है। भद्रे! प्रायः माँगी हुई थोड़ी-सी वस्तु अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होती है। तुम्हारे ऐसे मनोरथों का एकमात्र विधाता ही पूर्ण करने वाला है।॥३३९-३४१॥

सूत उवाच

इत्युक्ता सा तु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा।
उवाच कोपरक्ताक्षी स्फुरद्भिर्दशनच्छदैः॥३४२॥

सूतजी कहते हैं-ऋषियों के ऐसा कहने पर शैलपुत्री पार्वती उनपर अति अप्रसन्न तथा क्रोध से लाल नेत्र होकर बोलीं, उस समय उनके दाँत और होंठ मारे क्रोध से फड़कने लगे।॥३४२॥

देव्युवाच

असद्ग्रहस्य का प्रीतिर्व्यसनस्य क्व यन्त्रणा।
विपरीतार्थबोद्धारः सत्पथे केन योजिताः॥३४३॥
एवं मां वेत्थ दुष्प्रज्ञां ह्यस्थानासद्ग्रहप्रियाम्।
न मां प्रति विचारोऽस्ति यत्रेहासद्ग्रहावितौ॥३४४॥
प्रजापतिसमाः सर्वे भवन्तः सर्वदर्शिनः। नूनं न वेत्थ तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम्॥३४५॥
अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम् ॥३४६॥

देवी ने कहा-असत् पदार्थों की प्राप्ति में कौन-सा आनन्द है? और मन यदि किसी वस्तु में आसक्त हो गया है तो उसकी प्राप्ति में कौन-सी बाधा है? अर्थात् मनोवाञ्छित पदार्थों की प्राप्ति में

बाधाएँ कुछ नहीं कर सकतीं। विपरीत अर्थ जानने वालों को सन्मार्ग पर किसने नियुक्त कर दिया है? आप लोग मुझे कुबुद्धिपूर्ण तथा अनावश्यक एवं अनुपयुक्त वस्तु की अभिलाषा करने वाली जानते रहें। मेरे लिए आप लोगों को विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे तो असद्ग्रह की लगन लग चुकी है। मेरी समझ से आप सभी लोग प्रजापति के समान सर्वदर्शी हैं। पर ऐसा होते हुए भी निश्चय ही उस शाश्वत, जगत् के परमकारण, भगवान् शङ्कर को आप लोग नहीं जानते, जोकि अजन्मा हैं, ईस्वर हैं, अव्यक्त हैं, अपरिमित महिमामय तथा परमतेजोमय हैं।।३४३-३४६।।

आस्तां तद्धर्मसद्भावसम्बोधस्तावदद्भुतः। विदुर्यं न हरिब्रह्मप्रमुखा हि सुरेश्वराः।।३४७।।

यत्तस्य विभवात्स्वोत्थं भुवनेषु विजृम्भितम्।
प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यत्र न वेत्थ किम्।।३४८।।
कस्यैतद्गगनं मूर्तिः कस्याग्निः कस्य मारुतः।
कस्यभूः कस्य वरुणः कश्चन्द्रार्कविलोचनः।।३४९।।
कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गं भक्त्या सुरासुराः।
यं ब्रुवन्तीश्वरं देवा विधीन्द्राद्या महर्षयः।।३५०।।
प्रभावं प्रभवं चैव तेषामपि न वेत्थ किम्।
अदितिः कस्य मातेयं कस्माज्जातो जनार्दनः।।३५१।।
अदितेः कश्यपाज्जाता देवा नारायणादयः।
मरीचे कश्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका।।३५२।।

उनके अद्भुत क्रियाकलाप एवं तत्त्व निर्णय की चिन्ता आप बेकार कर रहे हैं, रहने दीजिये। जिसको भलीभाँति स्वयं विष्णु तथा ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जानते हैं, जिनके अपने वैभव तथा ऐश्वर्य से संसार के समस्त जीवों में चैतन्यभाव विद्यमान है, क्या आप लोग उसे भी नहीं जानते? यह विस्तृत आकाश किसकी मूर्ति है? यह अग्नि किसकी मूर्ति है? वायु किसकी मूर्ति है? पृथ्वी किसकी मूर्ति है? वरुण किसकी मूर्ति है, सूर्य तथा चन्द्रमा किसके नेत्र हैं? इस संसार में दैत्य तथा देवगण अति भक्तिपूर्वक किसके लिंग की पूजा करते हैं? ब्रह्मा-इन्द्र आदि देवगण तथा महर्षिगण जिसे ईश्वर, सबका उत्पत्ति-कर्ता बतलाते हैं, क्या उसके प्रभाव को आप लोग नहीं जानते? अदिति किसकी माता है? जनार्दन विष्णु किससे उत्पन्न हुये हैं? नारायण आदि देवगण अदिति तथा कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। मरीचि से कश्यप ऋषि उत्पन्न हुये हैं और अदिति दक्ष की पुत्री हैं?।।३४७-३५२।।

मरीचिश्चापि दक्षश्च पुत्रौ तौ ब्रह्मणः किल।
ब्रह्मा हिरणमयात्त्वण्डाद्दिव्यसिद्धिविभूतिकम्।।३५३।।
कस्य प्रादुरभूद्ध्यानात्प्रक्षुब्धाः प्राकृतांशकाः।
प्रकृतौ तु तृतीयायां मधुद्विड्जननक्रिया।।३५४।।

जाता ससर्ज षड्वर्गान्बुद्धिपूर्वान्स्वकर्मजान्।
अजातकोऽभवद्वेधा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥३५५॥

मरीचि और दक्ष-ये दोनों ब्रह्मा से उत्पन्न हुये कहे जाते हैं? ब्रह्मा हिरण्यमय अण्डे से उत्पन्न हुये हैं, जो दिव्य ऐश्वर्य एवं सिद्धियों की विभूति से सम्पन्न था। किसके ध्यान से प्रकृति के अंश क्षुब्ध होकर हिरण्यमय अण्डरूप में परिणत हुये? तृतीय प्रकृति (?) में मधुसूदन की उत्पत्ति क्रिया हुई? और उत्पन्न होकर उसने बुद्धिपूर्वक अपने कर्म से उत्पन्न होने वाले षड्वर्गों की सृष्टि की। उसी अव्यक्त जन्मा ब्रह्म के संयोग से अजन्मा जगत् को रचने वाला ब्रह्मा उत्पन्न हुआ॥३५३-३५५॥

यः स्वयोगेन सङ्क्षोभ्य प्रकृतिं कृतवानिदम्।
ब्रह्मणः सिद्धसर्वार्थमैश्वर्यं लोककर्तृताम्॥३५६॥
विदुर्विष्णवादयो यच्च स्वमहिम्ना सदैव हि।
कृत्वाऽन्यं देहमन्यादृक्तादृक्कृत्वा पुनर्हरिः॥३५७॥
कुरुते जगतः कृत्यमुत्तमाधममध्यमम्। एवमेव हि संसारो यो जन्ममरणात्मकः॥३५८॥
कर्मणश्च फलं ह्येतन्नानारूपसमुद्भवम्।
अथ नारायणो देवः स्वकां छायां समाश्रयत्॥३५९॥
तत्प्रेरितः प्रकुरुते जन्म नानाप्रकारकम्।
साऽपि कर्मण एवोक्ता प्रेरणा विवशात्मनाम्॥३६०॥

जिसने अपने संयोग से प्रकृति को विक्षुब्ध कर इस प्राकृत जगत् की रचना की। ब्रह्मा की लोक सर्जनात्मक शक्ति, ऐश्वर्य तथा सभी प्रयोजनों में व्याप्त उनकी सिद्धियों को विष्णु आदि देवगण जानते हैं, जो सर्वदा अपनी महिमा से अवस्थित रहते हैं। भगवान् हरि अपने लोक अन्यान्य शरीरों को धारणकर जगत् के उत्तम, मध्यम एवं अधम कार्यों को करते हैं। जन्म मरणात्मक संसार की भी स्थिति ऐसी ही है। कर्मों के फल भी इसी प्रकार अनेक रूप में उत्पन्न होते हैं। नारायण भगवान् अपनी छाया का आश्रय लेकर उसी की प्रेरणा से प्रेरित होकर नाना प्रकार के शरीरों को धारण करते हैं, वह प्रेरणा भी भाग्य के वश में रहने वाले जीवों के कर्मों के फलानुकूल ही कही गई है॥३५६-३६०॥

यथोन्मादादिजुष्टस्य मतिरेव हि सा भवेत्। इष्टान्येव यथार्थानि विपरीतानि मन्यते॥३६१॥
लोकस्य व्यवहारेषु सृष्टेषु सहते सदा। धर्माधर्मफलावाप्तौ विष्णुरेव निबोधितः॥३६२॥
अथानादित्वमस्यास्ति सामान्यात्तु तदात्मना।
न ह्यस्य जीवितं दीर्घं दृष्टं देहे तु कुत्रचित्॥३६३॥
भवद्भिर्यस्य नो दृष्टमन्तरग्रमथापि वा।
देहिनां धर्म एवैष क्वचिज्जायेत्क्वचिन्म्रियेत्॥३६४॥
क्वचिद्गर्भगतो नश्येत्क्वचिज्जीवेज्जरामयः। क्वचित्समाः शतं जीवेत्क्वचिद्बाल्ये विपद्यते॥३६५॥

उसके द्वारा प्रेरित प्राणी की बुद्धि पागलपन आदि रोगों से ग्रस्त मनुष्य की बुद्धि की भाँति इष्ट वस्तु में भी अनिष्ट का तथा अनिष्ट वस्तु में भी इष्ट का निश्चय करती है। अतएव इस रचे गये जगत् के व्यवहारों में धर्म एवं अधर्म के फल के विषय में एकमात्र विष्णु ही कारणभूत जाने गये हैं। इनके अनादित्व को मानते हुए भी साधारणतया किसी एक शरीर में दीर्घकाल तक जीवन धारण करते हुए नहीं देखा गया। आप लोग इनके अन्त अथवा आदि को नहीं देख सके हैं। शरीरधारियों का यह स्वाभाविक धर्म है कि वे कहीं जन्म लेते हैं तो कहीं मरते हैं, कहीं गर्भ में ही मर जाते हैं तो कहीं बुढ़ापे और रोग के वश होकर भी जीवित रहते हैं। कहीं सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं तो कहीं पर बाल्यावस्था में ही मृत्यु की आपत्ति में फँस जाते हैं।।३६१-३६५।।

शतायुः पुरुषो यस्तु सोऽनन्तः स्वल्पजन्मनः।
जीवितो न म्रियत्यग्रे तस्मात्सोऽमर उच्यते।।३६६।।

अदृष्टजन्मनिधना ह्येवं विष्ण्वादयो मताः। एतत्संशुद्धमैश्वर्यं संसारे को लभेदिह।।३६७।।

तत्र क्षयादियोगात्तु नानाश्चर्यस्वरूपिणि।
तस्माद्दिश्चरान्सर्वान्मलिनान्स्वल्पभूतिकान्।।३६८।।
नाहं भद्राः किलेच्छामि ऋते शर्वात्पिनाकिनः।
स्थितं च तारतम्येन प्राणिनां परमं त्विदम्।।३६९।।

जो पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है, वह अल्पजीवन धारण करने वाले की अपेक्षा अधिक अनन्त जीवन धारण करने वाला कहा जाता है। जो जीवित रहते हुए भविष्य में मृत्यु को नहीं प्राप्त होता, वही अमर कहा जाता है। उन विष्णु आदि देवगणों का इस प्रकार जीवन और मरण कभी देखा नहीं जाता। इस प्रकार के अद्भुत ऐश्वर्य को इस संसार में कौन प्राप्त कर सकता है? इस प्रकार विलय आदि के संयोग के कारण यह जगत् विविध आश्चर्यों से पूर्ण है। अतः हे भद्रगण! मलिन रहने वाले अत्यल्प विभूतियों वाले तथोक्त समस्त देवताओं को मैं पिनाकधारी भगवान् शर्व को छोड़कर वरण करना नहीं चाहती। यह जो न्यूनाधिक्य का विचार है, वह संसार के प्राणियों में विशिष्ट वस्तु है।।३६६-३६९।।

धीबलैश्वर्यकार्यादिप्रमाणं महतां महत्। यस्मान्न किञ्चिदपरं सर्वं यस्मात्प्रवर्तते।।३७०।।
यस्यैश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता। एष मे व्यवसायश्च दीर्घोऽतिविपरीतकः।।३७१।।
यात वा तिष्ठतैवाथ मुनयो मद्विधायकाः। एवं निशम्य वचनं देव्या मुनिवरास्तदा।।३७२।।

आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सस्वजुस्तां तपस्विनीम्।
ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः।।३७३।।

जिसकी बुद्धि, बल, ऐश्वर्य एवं कार्य महान् से भी अति महान् हैं, जिससे बढ़कर समस्त जगत् में कोई नहीं है, जिससे समस्त जीवों की गति है, जिसके ऐश्वर्य का न आदि है न अन्त-ऐसे शर्व की ही मैं शरण में हूँ। मेरा यह कार्य अति दीर्घ तथा विपरीत है। मेरे कल्याण की शिक्षा देने वाले

मुनिवर्यगण! आप लोग चाहे यहाँ से चले जायँ या ठहरें। देवी की ऐसी बातें सुनकर मुनियों ने आनन्द के आँसू गिराते हुए उस परमतपस्विनी का आलिंगन किया और परमप्रसन्न होकर शैलपुत्री से पुनः मधुर वचन में इस प्रकार बोले-।।३७०-३७३।।

ऋषय ऊचुः

अत्यद्भुताऽस्यहो पुत्रि ज्ञानमूर्तिरिवामला। प्रसादयति नो भावं भवभावप्रतिश्रयात्।।३७४।।

ननु विद्मो वयं तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम्।
त्वन्निश्चयस्य दृढतां वेत्तुं वयमिहाऽऽगताः।।३७५।।
आचिरादेव तन्वङ्गि कामस्तेऽयं भविष्यति।
क्वाऽऽदित्यस्य प्रभा याति रत्नेभ्यः क्वः द्युतिः पृथक्।।३७६।।
कोऽर्थो वर्णालिकाव्यक्तः कथं त्वं गिरिशं विना।
यामो नैकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुं वयम्।।३७७।।
अस्माकमपि वै सोऽर्थः सुतरां हृदि वर्तते।
अतस्त्वमेव सा बुद्धिर्यतो नीतिस्त्वमेव हि।।३७८।।

मुनियों ने कहा-पुत्रि! तुम ज्ञान की मूर्ति की भाँति परमपवित्र हो, अति अद्भुत कार्य करने वाली हो, महादेव के प्रति तुम्हारे अनुरागपूर्ण भाव हम लोगों को अति आनन्द प्रदान कर रहे हैं। उनके देवाधिदेव शङ्कर के अति अद्भुत ऐश्वर्य को हम लोग नहीं जानते-यह बात नहीं है, जानते हैं। केवल तुम्हारे निश्चय की दृढ़ता को जानने के लिए हम लोग यहाँ आये हैं। सुकुमार अङ्गों वाली! तुम्हारा यह मनोरथ शीघ्र ही सफल होगा, सूर्य की प्रभा भला अन्यत्र कहाँ जा सकती है? रत्न की शोभा रत्न को छोड़कर दूसरी जगह कैसे जा सकती है? वर्णों के समूहों को छोड़कर कौन अर्थ रह सकता है? इसी प्रकार शङ्कर के बिना तुम कैसे रह सकती हो? अब हमलोग अनेक उपायों द्वारा शिव की प्रार्थना कर प्रसन्न करने के लिए जा रहे हैं, हम लोगों के हृदय में भी वही अभिलाषा विशेष रूप में विद्यमान है, अतः तुम्हीं वह बुद्धि हो, वह नीति हो, जिसके द्वारा कार्य की सिद्धि हो सकती है।।३७४-३७८।।

अतो निःसंशयं कार्यं शङ्करोऽपि विधास्यति।
इत्युक्त्वा पूजिता याता मुनयो गिरिकन्यया।।३७९।।
प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत्। गङ्गाम्बुप्लावितात्मानं पिङ्गबद्धजटासटम्।।३८०।।
भृङ्गानुयातपाणिस्थमन्दारकुसुमस्त्रजम्। गिरेः संप्राप्य ते प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम्।।३८१।।
प्रशान्ताशेषसत्त्वौघं नवस्तिमितकाननम्। निःशब्दाक्षोभसलिलप्रपातं सर्वतोदिशम्।।३८२।।
तत्रापश्यंस्ततो द्वारि वीरकं वेत्रपाणिनम्।
सप्त ते मुनयः पूज्या विनीताः कार्यगौरवात्।।३८३।।

इसलिए निश्चय है कि शङ्कर तुम्हारे उक्त मनोरथ को पूर्ण करेंगे।' इतना कह मुनिगण गिरिकन्या पार्वती द्वारा पूजित होकर प्रस्थित हो गये और पर्वत पर शयन करने वाले भगवान् शङ्कर के दर्शन की अभिलाषा से हिमालय पर्वत के उच्च शिखर पर गये। वहाँ गङ्गाजल द्वारा नहाये हुए, पीली बड़ी-बड़ी जटाओं को बाँधे, पिछियाये हुए भ्रमरों द्वारा संकुलित मन्दार के कुसुमों की माला को हाथ में लिये आश्रम में बैठे हुए शङ्कर को हिमालय की चोटी पर पहुँचकर उन लोगों ने देखा। उनका आश्रम शान्त प्रकृति वाले सभी प्रकार के जीवों के समूहों से भरा हुआ था, वहाँ नये फूले हुए वृक्षों की पंक्तियाँ शोभायमान हो रही थीं, बिल्कुल निःशब्द एवं वेग से रहित जल के सुन्दर झरने सभी दिशाओं में धीरे-धीरे बह रहे थे। वहीं पर द्वारदेश पर बैठे हुए वीरभद्र को मुनियों ने हाथ में बेंत लिये हुए देखा। तब उन पूज्य विनम्र एवं बोलने वालों में परमप्रवीण सातों मुनियों ने कार्य की गम्भीरता का अनुभव करते हुए मधुर वाणी में वीरभद्र से कहा-।।३७९-३८३।।

ऊचुर्मधुरभाषिण्या वाचा ते वाग्मिनां वराः।
द्रष्टुं वयमिहाऽऽयाताः शरण्यं गणनायकम्।।३८४।।
त्रिलोचनं विजानीहि सुरकार्यप्रचोदिताः।
त्वमेव नो गतिस्तत्त्वं यथा कालानतिक्रमः।।३८५।।
सा प्रार्थनैषा प्रायेण प्रतीहारमयः प्रभुः।
इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात्तानुवाच सः।।३८६।।

हम लोग शरण देने वाले, गणों के स्वामी भगवान् शङ्कर के दर्शनार्थ आये हुए हैं। देवताओं के कार्य के लिए प्रेरित होकर हम लोगों के आगमन की सूचना त्रिलोचन को तुम दे दो। इस अवसर पर तुम्हीं हम लोगों के एकमात्र साधन हो, जिस प्रकार से हम लोगों के समय का अतिक्रम न हो, वैसा ही करो। हम लोगों की यही प्रार्थना है। प्रभु प्रायः प्रतिहारी द्वारा ही बाहर आने वालों को जान सकते हैं, अतः तुम्हीं हम लोगों के इस मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ हो।।३८४-३८६।।

सवनस्यापरा संध्यां स्नातुं मन्दाकिनीजले।
क्षणेन भविता विप्रास्तत्र द्रक्ष्यथ शूलिनम्।।३८७।।
इत्युक्ता मुनयस्तस्थुस्ते तत्कालप्रतीक्षिणः।
गम्भीराम्बुधरं प्रावृट्तृषिताश्चातका यथा।।३८८।।
ततः क्षणेन निष्पन्नसमाधानक्रियाविधिः। वीरासनं बिभेदेशो मृगचर्मनिवासितम्।।३८९।।
ततो विनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य महीस्थितिम्।
उवाच वीरको देवं प्रणामैकसमाश्रयः।।३९०।।

मुनियों के इस प्रकार कहने पर वीरक ने गौरवपूर्वक उन लोगों से कहा, अभी थोड़ी ही देर हुई, त्रिशूलधारी शङ्कर मन्दाकिनी में स्नान तथा सन्ध्या वन्दन के लिए गये हैं और थोड़ी ही देर में आ

जाते हैं, तब उनको आप लोग देख सकेंगे।' वीरक के ऐसा कहने पर शिवजी के आगमन के समय की प्रतीक्षा करते हुए मुनिगण इस प्रकार वहाँ स्थित रहे, जैसे वर्षा ऋतु में प्यासे पपीहे गम्भीर बादल की प्रतीक्षा किया करते हैं। तदनन्तर थोड़ी देर बाद जब सभी क्रियाओं को सम्पन्न कर भगवान् शङ्कर ने मृगचर्म पर से अपने वीरासन को भङ्ग किया, तब अति विनीत भाव से घुटनों को पृथ्वी पर टेककर प्रणाम करते हुए वीरक ने कहा-।३८७-३९०।।

सम्प्राप्ता मुनयः सप्त त्वां द्रष्टुं दीप्ततेजसः। विभो समादिश द्रष्टुमवगन्तुमिहार्हसि।।
ते ऽब्रुवन्देवकार्येण तव दर्शनलालसाः।।३९१।।
इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना। भ्रूभङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा।।३९२।।
मूर्ध्नः कम्पेन तान्सर्वान्वीरकोऽपि महामुनीन्। आजुहावाविदूरस्थान्दर्शनाय पिनाकिनः।।३९३।।
त्वराबद्धार्धचूडास्ते लम्बमानाजिनाम्बराः।
विविशुर्वेदिकां सिद्धां गिरिशस्य विभूतिभिः।।३९४।।

'महाराज! परमतेजस्वी सातों ऋषि आपके दर्शन के लिए आये हुए हैं, उनको अपने दर्शन करने के लिए आने की आज्ञा दीजिए। उन्होंने अपने को देवकार्य के लिए आया हुआ बतलाया है, वे सभी आपके दर्शनाभिलाषी हैं। उनके मनोभावों को जानने के लिए अपने दर्शन की उन्हें आज्ञा प्रदान करें।' महात्मा वीरक के ऐसा कहने पर धूर्जटि शिव ने भृकुटी के इशारे से उन मुनियों को वहाँ प्रवेश करने के लिए आज्ञा प्रदान की। वीरक ने भी अपने सिर को हिलाकर थोड़ी दूर पर बैठे हुए उन महामुनियों को पिनाकधारी शिव के दर्शन करने के लिए बुलाया। शीघ्रता से आधी जटा को बाँधकर वे मुनिगण विभूतियों से संयुक्त गिरीश शङ्कर की सिद्ध वेदी में प्रविष्ट हुए।।३९१-३९४।।

बद्धपाणिपुटाक्षिप्तनाकपुष्पोत्करास्ततः। पिनाकिपादयुगलं वन्द्यं नाकनिवासिनाम्।।३९५।।
ततः स्निग्धेक्षिताः शान्ता मुनयः शूलपाणिना।
मन्मथारिं ततो हृष्टाः समं तुष्टुवुरादृताः।।३९६।।

उस समय उनके मृगचर्म झूल रहे थे। दोनों हाथों की हथेलियों को सम्पुटित कर स्वर्गीय पुष्पों को लिये हुए वे मुनिगण स्वर्ग निवासी देवताओं के पूज्य शंकर के दोनों चरणों पर पड़े। स्नेह से पूर्ण नेत्रों वाले, शान्तचित्त वे मुनिगण शूलपाणि से सम्मानित होकर अति हर्षित हुए और काम के शत्रु भगवान् शंकर की इस प्रकार सामूहिक प्रार्थना की।।३९५-३९६।।

मुनय ऊचुः

अहो कृतार्था वयमेव सांप्रतं सुरेश्वरोऽप्यत्र वरो भविष्यति।
भवत्प्रसादामलवारिसेकतः फलेन काचित्तपसा निपुज्यते।।३९७।।
जयत्यसौ धन्यतरो हिमाचलस्तदाश्रयं यस्य सुता तपस्यति।
स दैत्यराजोऽपि महाफलोदयो विमूलिताशेषसुरो हि तारकः।।३९८।।

त्वदीयमंशं प्रविलोक्य कल्मषात्स्वकं शरीरं परिमोक्ष्यते हि यः।
स धन्यधीर्लोकपिता चतुर्मुखो हरिश्च यत्सम्भ्रमवह्निदीपितः॥३९९॥
त्वदङ्घ्रियुग्मं हृदयेन बिभ्रतो महाभितापप्रशमैकहेतुकम्।
त्वमेव चैको विविधाकृतक्रियः किलेति वाचा विधुरैर्विभाष्यते॥४००॥

मुनियों ने कहा–अहा! हम लोग अब कृतार्थ हो गये। सुरनायक इन्द्र भी इस कार्य में यशस्वी होंगे। आपके प्रसन्नता रूपी निर्मल जल के सिंचन के फल से कोई तपस्विनी तप की आराधना में दत्तचित्त हैं। यह हिमवान् पर्वत अतिशय धन्य हैं, जिसके आश्रय में स्वयं उसकी पुत्री तपस्या कर रही है। समस्त देवताओं का नाश करने वाला वह दैत्यराज तारकासुर भी धन्य है, जिसके पुण्य का फल अतिशय मात्रा में उदित हुआ है। तुम्हारे अंश (पुत्र) को देखकर वह निष्पाप हो, अपने उस शरीर को छोड़ देगा। बुद्धिमान् लोकपिता चतुर्मुख ब्रह्मा धन्य हैं, भय की अग्नि से उद्दीप्त विष्णु भगवान् धन्य हैं, जो अत्यन्त दुःखदायी ताप को प्रशान्त करने के एकमात्र कारण आपके दोनों चरण कमलों का सर्वदा ध्यान हृदय से किया करते हैं। प्रसिद्ध है कि एकमात्र तुम विविध प्रकार के दुरूह कार्यों के करने वाले हो, ऐसी वाणी द्वारा वे लोग, जिनके सिर से सांसारिक कर्मों का भार अलग हो गया है, तुम्हें पुकारते हैं।।३९७-४००।।

अथाऽऽद्य एकस्त्वमवादि नान्यथा जगत्तथा निर्घृणतां तव स्पृशेत्।
न वेत्सि वा दुःखमिदं प्रजात्मकं विहन्यते ते खलु सर्वतः क्रिया॥४०१॥
उपेक्षसे चेज्जगतामुपद्रवं दयामयत्वं तव केन कथ्यते।
स्वयोगमायामहिमागुहाश्रयं न विद्यते निर्मलभूतिगौरवम्॥४०२॥
वयं च ते धन्यतराः शरीरिणां यदीदृशं त्वां प्रविलोकयामहे।
अदर्शनं तेन मनोरथो यथा प्रयाति साफल्यतया मनोगतम्॥४०३॥

तुम ही इस समस्त जगत् में सर्वप्रथम कहे जाते हो, अतः ऐसा कार्य मत करो, जिससे जगत् तुम्हारी निर्दयता का अनुभव करे। प्रजा के ऊपर होने वाले इन दुःखों को तुम नहीं जानते हो, जिससे तुम्हारी क्रियाएँ निश्चय ही सभी ओर से विघ्नपूर्ण हो रही हैं। यदि आप इस प्रकार जगत् में होने वाले उपद्रवों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं तो आपको दयामय कौन कह सकता है? अपनी योगमाया की महिमा से आश्रम पर टिका हुआ आपका गौरव अब निर्मल विभूतियों से युक्त नहीं मालूम होता है। शरीरधारियों में हम लोग भी अतिशय धन्य हैं, जो इस प्रकार ऐश्वर्यमय आपको देख रहे हैं, अतः हम लोगों की प्रार्थना है कि हमारे मनोरथों का लोप न हो, जिससे हमारे मन की इच्छाएँ सफलता को प्राप्त हो।।४०१-४०३।।

जगद्विधानैकविधौ जगन्मुखे करिष्यसेऽतो बलभिच्चरा वयम्।
विनेमुरित्थं मुनयो विसृज्य तां गिरं गिरीशश्रुतिभूमिसन्निधौ॥
उत्कृष्टकेदार इवावनीतले सुबीजमुष्टिं सुफलाय कर्षकाः॥४०४॥

यह विनाशकारी अवस्था, जो जगत् के विनाशार्थ उपस्थित है, उससे सबकी रक्षा कीजिये। हम लोग इन्द्र के अनुचर होकर यहाँ आये हैं। महर्षियों ने अपनी सुमधुर वाणी को भगवान् शङ्कर के वेदों से पवित्रित वेदिका के समीप स्थित होकर इस प्रकार निवेदित किया, जैसे किसान लोग अच्छे फल की प्राप्ति के लिये भलीभाँति जोती तथा कमाई हुई पृथ्वी में अच्छे बीज की मुट्ठियाँ बोते हैं।।४०४।।

तेषां श्रुत्वा तु तां रम्या प्रक्रमोपक्रमक्रियाम्।
वाचं वाचस्पतिस्तुष्टः प्रोवाच स्मितसुन्दरीम्।।४०५।।

इस प्रकार उन लोगों के विविध उपाय एवं तर्कों से युक्त मनोहर वाणी को सुनकर शंकर बृहस्पति की भाँति परम सन्तुष्ट होकर हँसते हुए बोले-।।४०५।।

शर्व उवाच

जाने लोकविधानस्य कन्या सत्कार्यमुत्तमम्।
जाता प्रालेयशैलस्य सङ्केतकनिरूपणाः।।४०६।।
सत्यमुत्कण्ठिताः सर्वे देवकार्यार्थमुद्यताः।
तेषां त्वरन्ति चेतांसि किंतु कार्यं विवक्षितम्।।४०७।।
लोकयात्राऽनुगन्तव्या विशेषेण विचक्षणैः।
सेवन्ते ते यतो धर्मं तत्प्रामाण्यात्परे स्थिताः।।४०८।।

महादेव ने कहा-'समस्त जगत् के उपकारार्थ जो यह उत्तम कार्य उपस्थित है, उसे मैं जानता हूँ। हिमवान् पर्वत के घर एक पुत्री उत्पन्न हुई है, आप लोग उसी के विषय में प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए यहाँ आये हुए हैं। सचमुच आप सभी लोग देवकार्य को सम्पन्न करने के लिए उत्सुक हैं, और सबके चित्त में उक्त कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने की जल्दी भी दिखाई दे रही है, किन्तु कार्य होने में कुछ देर तो होगी ही। बुद्धिमान् पुरुषों को आवश्यक है कि नियमों और पद्धतियों की रक्षा करते हुए लोक-व्यवहार को निभायें, क्योंकि उन्हीं के निश्चय किये गये धर्ममार्ग पर सर्वसाधारण भी चलते हैं।।४०६-४०८।।

इत्युक्ता मुनयो जग्मुस्त्वरितास्तु हिमाचलम्। तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम्।।
ऊचुर्मुनिवराः प्रीताः स्वल्पवर्णं त्वरान्विताः।।४०९।।

शिव के ऐसा कहने पर महर्षिगण तुरन्त हिमालय की ओर प्रस्थित हो गये। वहाँ पहुँच कर हिमालय द्वारा सादर पूजित हो, वे मुनिगण परम प्रसन्न हुये और शीघ्रता के कारण स्पष्टाक्षरों में इस प्रकार बोले।।४०९।।

मुनय ऊचुः

देवो दुहितरं साक्षात्पिनाकी तव मार्गते। तच्छीघ्रं पावयाऽऽत्मानमाहुत्येवानलार्पणात्।।४१०।।

कार्यमेतच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते। जगदुद्धरणायैष क्रियतां वै समुद्यमः॥४११॥
इत्युक्तस्तैस्तदा शैलो हर्षाविष्टोऽवदन्मुनीन्। असमर्थोऽभवद्वक्तुमुत्तरं प्रार्थयञ्छिवम्॥४१२॥
ततो मेना मुनीन्वीक्ष्य प्रोवाच स्नेहविक्लवा। दुहितुस्तान्मुनींश्चैव चरणाश्रयमर्थवित्॥४१३॥

मुनियों ने कहा-'नगराज हिमवान्! भगवान् पिनाकधारी शिव साक्षात् तुम्हारी कन्या को प्राप्त करने को इच्छुक हैं, अतः अग्नि में आहुति कर उसी समय पार्वती को समर्पण कर आप अपने को पवित्रित कीजिये। देवताओं का यह कार्य बहुत दिनों से सोचा गया है। समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए इस उद्योग को आप सम्पन्न कीजिये।' मुनियों के ऐसा कहने पर अति हर्ष से प्रफुल्लित होकर हिमवान् मुनियों को उत्तर देने को उत्सुक हुआ, किन्तु असमर्थ होकर रुक गया और मन ही मन भगवान् शंकर की प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार उसे रुका देखकर कार्य के तत्त्वों को जानने वाली मेना ने उन समागत मुनियों की वन्दना की और उनके चरणों के समीप स्थित हो कन्या के स्नेह से आर्द्र हृदय होकर इस प्रकार बोलीं-॥४१०-४१३॥

मेनोवाच

यदर्थं दुहितुर्जन्म नेच्छन्त्यपि महाफलम्। तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव साम्प्रतम्॥४१४॥
कुलजन्मवयोरूपविभूत्यृद्धियुतोऽपि यः। वरस्तस्यापि चाऽऽहूय सुता देया ह्ययाचतः॥४१५॥

तत्समस्ततपोघोरं कथं पुत्री प्रयास्यति।
पुत्रीवाक्याद्यदत्रास्ति विधेयं तद्विधीयताम्॥४१६॥

इत्युक्त्वा मुनयस्ते तु प्रियया हिमभूभृतः। ऊचुः पुनरुदारार्थं नारीचित्तप्रसादकम्॥४१७॥

मेना ने कहा-'जिस कठिनाई के कारण लोग अतिशय पुण्य फल देने वाली पुत्री के जन्म की अभिलाषा नहीं करते, वे ही सब असुविधाएँ मेरे सम्मुख उपाय समेत इस समय उपस्थित हैं। जो वर कुल, जन्म, अवस्था, रूप, सम्पत्ति तथा विभूतियों से समन्वित होने पर भी कन्या के लिए स्वतः प्रार्थना नहीं करता है, उसी को बुलाकर कन्यादान करना चाहिये। सो उस परम तपस्वी को मेरी पुत्री किस प्रकार अंगीकार कर सकेगी, जिसका एकमात्र तप ही धन है। इस विषय में पुत्री के कथनानुसार जो कुछ करना उचित हो, उसे आप लोग करें।' हिमवान् की प्रिया मेना के ऐसा कहने पर मुनि लोग स्त्री के चित्त को प्रसन्न करने वाली उदारतापूर्ण वाणी में बोले।॥४१४-४१७॥

मुनय ऊचुः

ऐश्वर्यमगच्छस्व शङ्करस्य सुरासुरैः। आराध्यमानपादाब्जयुगलत्वात् सुनिर्वृतैः॥४१८॥

यस्योपयोगि यद्रूपं सा च तत्प्राप्तये चिरम्।
घोरं तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृतिः॥४१९॥
यस्तद्व्रतानि दिव्यानि नयिष्यति समापनम्।
तत्र साऽवहिता तावत्तम्यात्सेव भविष्यति॥४२०॥

मुनियों ने कहा-'भगवान् शंकर के अतुल ऐश्वर्य को देवताओं तथा असुरों द्वारा तुम जान सकती हो, जिन्होंने उनके कमलवत् दोनों चरणों की आराधना कर परम सिद्धियों की प्राप्ति की है। जिसके उपयोग के लिए जो रूप होता है, उसी रूप के द्वारा वह सन्तुष्ट भी होता है। उन्हीं की प्राप्ति करने के लिए चिरकाल से तुम्हारी पुत्री घोर तपस्या कर रही है। शिव के उसी रूप से उसकी इच्छापूर्ति होगी। जो व्यक्ति उसके दिव्य व्रतों को समाप्त करेगा, उसी में वह देवी अतिशय प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होगी।।४१८-४२०।।

इत्युक्त्वा गिरिणा सार्धं ते ययुर्यत्र शैलजा।
जितार्कज्वलनज्वाला तपस्तेजोमयो ह्युमा।।४२१।।
प्रोचुस्तां मुनयः स्निग्धं संमान्यपथमागतम्। रम्यं प्रियं मनोहारि मा रूपं तपसा दह।।४२२।।
प्रातस्ते शङ्करः पाणिमेष पुत्रि ग्रहीष्यति। वयमर्थित्वन्तस्ते पितरं पूर्वमागताः।।४२३।।
पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम्।।४२४।।

ऐसा कहकर मुनि लोग हिमवान् के साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ पर्वतपुत्री, अग्नि एवं सूर्य की ज्वाला जीतने वाली, तप एवं तेजोमयी उमा तपस्या कर रही थी। वहाँ पहुँचकर मुनियों ने पार्वती से स्नेहपूर्ण वाणी में कहा-'पुत्री! अब तुम्हारा सम्माननीय मार्ग तुम्हारे सामने आ गया है अर्थात् अब तुम्हारी तपस्या सफल है। अब अपने रमणीय मनोहर एवं प्रियरूप को तुम कठोर तप द्वारा मत जलाओ। प्रातःकाल शंकर तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार करेंगे, हम लोग यहाँ आने के पहिले ही तुम्हारे पिता से इस विषय में प्रार्थना कर चुके हैं, तब यहाँ आये हैं। अब तुम अपने पिता के साथ अपने घर जाओ। हम लोग भी अपने-अपने निवास स्थानों को प्रस्थित हो रहे हैं।।४२१-४२४।।

इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा।
त्वरमाणा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यार्थशोभितम्।।४२५।।
सा तत्र रजनीं मेने वर्षायुतसमां सती। हरदर्शनसञ्जातमहोत्कण्ठा हिमाद्रिजा।।४२६।।
ततो मुहूर्ते ब्राह्मे तु तस्याश्चक्रुः सुरस्त्रियः। नानामङ्गलसन्दोहान्यथावत्क्रमपूर्वकम्।।४२७।।
दिव्यमण्डनमङ्गानां मन्दिरं बहुमङ्गले। उपासत गिरिं मूर्ता ऋतवः सार्वकामिकाः।।४२८।।

मुनियों के इस प्रकार कहने पर पार्वती ने इसे अपने घोर तपस्या का सत्य फल मानकर शीघ्रता के साथ दिव्य सम्पत्तियों से सुसम्पन्न अपने पिता के भवन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर सती ने उस रात को दस सहस्र वर्ष के समान व्यतीत किया। उस समय वह हिमवान् की पुत्री महादेव के दर्शन की उत्कण्ठा से आत्मविभोर-सी हो रही थीं। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त होने पर देवताओं की स्त्रियों ने क्रमपूर्वक समुचित स्थान पर अनेक प्रकार के मांगलिक उपचारों से उन्हें विभूषित किया और अनेक मांगलिक उपचारों से सुसज्जित भवन में बिठाकर दिव्य आभूषणों से अलंकृत किया। सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाली छहों ऋतुएँ उस समय आ-आकर गिरिराज हिमवान् की सेवा कर रही थीं।।४२५-४२८।।

वायवो वारिदाश्चाऽऽसन्संमार्जनविधौ गिरेः।
हर्म्येषु श्रीः स्वयं देवी कृतनानाप्रसाधना॥४२९॥
कान्तिः सर्वेषु भावेषु ऋद्धिश्चाभवदाकुला।
चिन्तामणिप्रभृतयो रत्नाः शैलं समन्ततः॥४३०॥
उपतस्थुर्नगाश्चापि कल्पकाममहाद्रुमाः।
ओषध्यो मूर्तिमत्यश्च दिव्यौषधिसमन्विताः॥४३१॥
रसाश्च धातवश्चैव सर्वे शैलस्य किंकराः।
किंकरास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाऽऽज्ञानुवर्तिनः॥४३२॥
नद्यः समुद्रा निखिलाः स्थावरं जङ्गमं च यत्।
तत्सर्वं हिमशैलस्य महिमानमवर्धयत्॥४३३॥

वायु और बादल स्वयं आकर पर्वतराज की गुफाओं की सफाई में लगे हुए थे। राजभवन में साक्षात् लक्ष्मी अनेक प्रकार के साज-बाज के साधनों समेत आकर विराजमान थीं। कान्ति तो वहाँ की प्रत्येक वस्तुओं-भाव एवं विचारों तक में-विराजमान थीं। ऋद्धियाँ व्याकुल हो चली थीं। चिन्तामणि आदि प्रमुख रत्नसमूह पर्वतराज के चारों ओर उपस्थित थे। कल्पद्रुम आदि कामनाओं को सफल करने वाले वृक्षगण भी सुशोभित हो रहे थे। दिव्य औषधियाँ एवं सभी प्रकार की अन्य सामान्य औषधियाँ मूर्ति धारणकर वहाँ आयी हुई थीं। सभी प्रकार के रस और धातुएँ पर्वतराज के किंकर रूप में आये हुए थे और आज्ञा पालन में तत्पर रहकर सभी आनन्दातिरेक से व्यग्र-से हो रहे थे। इनके अतिरिक्त सभी नदियाँ, समुद्र, संसार के जड़ चेतन जीवगण, आ-आकर हिमवान् की महिमा एवं शोभा की वृद्धि कर रहे थे।।४२९-४३३।।

अभवन्मुनयो नागा यक्षगन्धर्वकिन्नराः। शङ्करस्यापि विवुधा गन्धमादनपर्वते॥४३४॥
सर्वे मण्डनसम्भारास्तस्थुर्निर्मलमूर्तयः। शर्वस्यापि जटाजूटे चन्द्रखण्डं पितामहः॥४३५॥
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः।
कपालमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्न्यबन्धयत्॥४३६॥
उवाच चापि वचनं पुत्रं जनय शङ्कर। यो दैत्येन्द्रकुलं हत्वा मां रक्तैस्तर्पयिष्यति॥४३७॥

उधर गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित शंकर के विवाहोत्सव समारोह में सभी मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर तथा सुरगण सम्मिलित हुए थे। वे सभी भव्य स्वरूप धारणकर आभूषणादि सामग्रियों के सजाने में तत्पर थे। अति प्रेम युक्त उदार भावना पूर्ण प्रफुल्लित नेत्रों वाले पितामह ब्रह्मा ने शंकर की जटा में लघु चन्द्र को बाँधा। चामुण्डा ने एक कपालों की लम्बी माला सिर में बाँधा और कहा-शंकर ऐसे पुत्र को उत्पन्न करो, जो दैत्येन्द्र तारकासुर के परिवार का विनाशकर मुझे रक्त से तृप्त करे।।४३४-४३७।।

सौरिर्ज्वलच्छिरोरत्नमुकुटञ्चानलोल्बणम्। भुजगाभरणं गृह्य सज्जं शम्भोः पुराऽभवत्॥४३८॥
शक्रो गजाजिनं तस्य वसाभ्यक्ताग्रपल्लवम्। दधे सरभसं स्विद्यद्विस्तोर्णमुखपङ्कजम्॥४३९॥
वायुश्च विपुलं तीक्ष्णशृङ्गं हिमगिरिप्रभम्। वृषं विभूषयामास हरयानं महौजसम्॥४४०॥

वितेनुर्नयनान्तःस्थाः शम्भोः सूर्यानलेन्दवः।
स्वां द्युतिं लोकनाथस्य जगतः कर्मसाक्षिणः॥४४१॥

सूर्य के पुत्र शनैश्चर ने देदीप्यमान रत्न, अग्नि के समान लहलहाते हुये मुकुट तथा भुजंगों के आभूषण को लाकर शंकर को आभूषित किया और उनके सम्मुख खड़े होकर अभिनन्दन किया। देवराज इन्द्र ने शंकर को गजचर्म लाकर पहिनाया, जो चर्बी से भीगा हुआ था। उस समय वे बड़े वेग में थे और उनके विस्तृत मुख कमल पर पसीने की बूँदें छाई हुई थीं। वायु ने हिमवान् पर्वत के समान तेजस्वी तीक्ष्ण सींगों वाले, अतिबलवान्, महातेजस्वी शंकर के वाहन नन्दीश्वर नामक वृषभ को आभूषणों से विभूषित किया। शंकर के नेत्रों में निवास करने वाले जगत् के सभी कर्मों के साक्षी चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि ने अपने-अपने तेजों को अधिकाधिक उत्तेजित किया, जिससे लोकेश्वर की शोभा की वृद्धि बहुत विशेष हुई।।४३८-४४१।।

चिताभस्म समाधाय कपाले राजतप्रभम्।
मनुजास्थिमयीं मालामाबबन्ध च पाणिना॥४४२॥

प्रेताधिपः पुरो द्वारे सगदः समवर्तत। नानाकारमहारत्नभूषणं धनदाहृतम्॥४४३॥
विहायोदग्रसर्पेन्द्रकटकेन स्वपाणिना। कर्णोत्तंसं चकारेशो वासुकिं तक्षकं स्वयम्॥४४४॥

प्रेतपति ने मस्तक में चाँदी के समान चमकीले चिता के भस्म को लगाकर एक हाथ से मनुष्य की हड्डियों की बनी हुई माला बाँधी और द्वारदेश पर गदा समेत स्वयं उपस्थित हुये। धनाध्यक्ष कुबेर द्वारा लाये गये अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्नों एवं आभूषणों को तथा जलाध्यक्ष वरुण द्वारा लाये गये कभी न कुम्हलाने वाले पुष्पों से रचित सुन्दर माला को छोड़कर शंकर ने स्वयं अपने हाथों से जिसमें अत्यन्त विकराल सर्पों को केयूर की भाँति धारण किये हुए थे, वासुकि और तक्षक नामक सर्पों को अपने कानों का आभूषण बनाया।।४४२-४४४।।

जलाधीशाहृता स्थास्नुप्रसूनावेष्टितां पृथक्।
ततस्तु ते गणाधीशा विनयात्तत्र वीरकम्॥४४५॥

प्रोचुर्व्यग्राकृते त्वं गां समावेदय शूलिने। निष्पन्नाभरणं देवं प्रसाध्येशं प्रसाधनैः॥४४६॥
सप्त वारिधयस्तस्थुः कर्तुं दर्पणविभ्रमम्। ततो विलोकितात्मानं महाम्बुधिजलोदरे॥४४७॥

धरामालिङ्ग्य जानुभ्यां स्थाणुं प्रोवाच केशवः।
शोभसे देवरूपेण जगदानन्ददायिना॥४४८॥

तदनन्तर वहाँ पर आये हुए शिव के गणाधीशों ने वीरभद्र से अति विनय के साथ निवेदन

किया-'भयंकर आकृति वाले! आप हम लोगों की बात त्रिशूलधारी को सूचित करें कि उन्हें हम समस्त आभूषणों से सुसज्जित करेंगे। तदनन्तर सातों समुद्र दर्पण का कार्य करने के लिए वहाँ उपस्थित हुए। उस महासमुद्र के उदर में अपने स्वरूप को देखने वाले स्थाणु शङ्कर से भगवान् विष्णु घुटनों को पृथ्वी पर टेककर बोले-'देव! सम्प्रति इस जगत् के आनन्ददायी स्वरूप से आप अधिक शोभित हो रहे हैं।'।।४४५-४४८।।

मातरः प्रेरयन्कामवधूं वैधव्यचिह्निताम्। कालोऽयमिति चाऽऽलक्ष्य प्रकारेङ्गितसंज्ञया।।४४९।।

ततस्ताश्चोदिता देवमूचुः प्रहसिताननाः।
रतिः पुरस्तव प्राप्ता नाऽऽभाति मदनोज्झिता।।४५०।।

ततस्तां सन्निर्वार्याऽऽह वामहस्ताग्रसंज्ञया। प्रयाणं गिरिजावक्त्रदर्शनोत्सुकमानसः।।४५१।।

ठीक उसी समय उपयुक्त समय जान मातृकाओं ने विधवा के समान वेशादि को बनाये हुए कामदेव की स्त्री रति को इशारा किया और वह शिव के सम्मुख उपस्थित हुई। तब वे सुन्दरियाँ हँसती हुई शिव से बोलीं-'महाराज! कामदेव से विहीन यह रति आपके सामने खड़ी हुई सम्प्रति शोभा नहीं पा रही है।' शिव ने अपने बाएँ हाथ के अग्रभाग के इशारे से सान्त्वना देकर रति को आगे से हटाकर गिरिजा के मुखदर्शन की उत्कण्ठा से प्रस्थान किया ।।४४९-४५१।।

ततोहरो हिमगिरिकन्दराकृतिं सितं कशामृदुहतिभिः प्रचोदयत्।
महावृषं गणतुमुलाहितेक्षणं स भूधरानशनिरिव प्रकम्पयन्।।४५२।।
ततो हरिर्द्रुतपदपद्धतिः पुरः पुरःसरान्द्रुमनिकरेषु संश्रितान्।
धरारजःशबलितभूषणोऽब्रवीतप्रयात मा कुरुत पथोऽस्य सङ्कटम्।।४५३।।
प्रभोः पुनः प्रथमनियोगमूर्जयन्सुतोऽब्रवीद्भृकुटिमुखोऽपि वीरकः।
वियच्चरा वियति किमस्ति कान्तकं प्रयातनो धरणिधराविदूरतः।।४५४।।

तदनन्तर शिव हिमालय के शिखर के समान भीषण, प्रमथों की तुमुलध्वनि से लाल नेत्र वाले, श्वेतवर्ण वाले महावृषभ नन्दीश्वर के ऊपर सवार होकर कोड़े की मृदु चोटों से प्रेरित किया। उस समय वे पर्वतों को वज्र के समान कँपा रहे थे। प्रस्थान करते समय भगवान् विष्णु आगे शीघ्रता से कदम चलाते हुए अपने से आगे चलने वाले वृक्ष के समूहों पर बैठे हुए बरातियों से कह रहे थे, 'अरे! चलते चलो, मार्ग को रोककर भीड़ मत करो।' उस समय पृथ्वी की धूल से उनके आभूषणों की रंग-बिरंगी शोभा हो रही थी। शंकर के पुत्र वीरक ने प्रभु की आज्ञा को विस्तृत करते हुए उच्चस्वर से कहा-'अरे आकाश में चलने वालों! आकाश में क्या ऐसी मनोहर वस्तु है, जिसे तुम लोग देख रहे हो, आगे चलते चलो, अरे पर्वतों! दूर से होकर चलो।।४५२-४५४।।

महार्णवाः कुरुत शिलोपमं पयः सुरद्विषागमनमहातिकर्दमम्।
गणेश्वराश्चपलतया न गम्यतां सुरेश्वरैः स्थिरमतिभिर्निरीक्ष्यते।।४५५।।

न भृङ्गिणा स्वतनुमवेक्ष्य नीयते पिनाकिनः पृथुमुखमण्डमग्रतः।
वृथा यमः प्रकटितदन्तकोटरं त्वमायुध वहसि विहाय सम्भ्रमम्॥४५६॥

हे समुद्रो! तुम लोग राक्षसों के आगमन से उत्पन्न हुए अत्यधिक कीचड़ से युक्त जल को शिला सदृश कर दो। गणेश्वरगण! तुम लोग चंचलता से मत चलो। स्थिर बुद्धि प्रमुख सुरगण देख रहे हैं। पिनाकधारी शिव के सम्मुख जो विशाल मुख वाले सुरापात्र (मण्ड) या विशाल अण्ड लेकर चल रहा है, वह भृंगी अपने शरीर को देखता हुआ नहीं चल रहा है। यमराज व्यर्थ में ही तुम तीक्ष्ण दाँतरूप कोटर से युक्त अपने अस्त्र को लेकर इस समय भी चल रहे हो; भय छोड़कर चलो।।४५५-४५६।।

पदं न यद्रथतुरगैः पुरद्विषः प्रमुच्यते बहुतरमातृसंकुलम्।
अमी सुराः पृथगनुयायिभिर्वृताः पदातयो द्विगुणपथान्हरप्रियाः॥४५७॥
स्ववाहनैः पवनविधूतचामरैश्चलध्वजैर्व्रजत विहारशालिभिः।
सुराः स्वकं किमिति सरागमूर्जितं विचार्यते नियतलयत्रयानुगम्॥४५८॥
न किन्नरैरभिभवितुं हि शक्यते विभूषणप्रचयसमुद्भवो ध्वनिः।
अजातिजाः किमिति न षड्जमध्यमपृथुस्वरं बहुतरमत्र वक्ष्यते॥४५९॥
नतानतानतनततानतां गताः पृथक्तया समयकृता विभिन्नताम्।
विशङ्किता भवदतिभेदशीलिनःप्रयान्त्यमी द्रुतपदमेव गौडकाः॥४६०॥

त्रिपुर के शत्रु शंकर के अनेक माताओं से संकुलित मार्ग को रथ के घोड़े नहीं छोड़ रहे हैं। शिव जी के प्रिय देवगण अपने-अपने अनुयायियों से घिरे हुए पृथक्-पृथक् पैदल ही दूने मार्ग को समाप्त कर रहे हैं। आमोद-प्रमोद के साधनों से समन्वित एवं पवन से विकम्पित चामरों से युक्त अपने ऐसे वाहनों समेत, जिनकी ध्वजाएँ हिल रही हैं, आप लोग चलिये। देवगण! राग समेत नियत तीनों लयों से युक्त संगीत स्वरों का विचार आप लोग क्यों नहीं कर रहे हैं? आभूषण के समूहों से निकलने वाली ध्वनि को किन्नरगण अपने बाजनों से पराजित (दबा) नहीं कर सकते। अपनी-अपनी जाति की एकसमान ध्वनियों से संयुक्त ये षड्ज, मध्यम एवं परम उच्च स्वर लहरियों की ध्वनियाँ क्यों नहीं यहाँ अधिक मात्रा में गायी जा रही हैं? ये गौडकगण कालभेद के अनुसार अति सूक्ष्म एवं कठिनाई से दिखने योग्य स्वरों के भेदों को दिखाते हुए नतानत, नत और आनत-इन तीनों तान के भेदों समेत सुमधुर संगीतालाप करते हुए शीघ्रता के साथ चले जा रहे हैं।।४५७-४६०।।

विसंहताः किमिति न षाड्गवादयः स्वगीतकैर्ललितपदप्रयोगजैः।
प्रभोः पुरो भवति हि यस्य चाक्षतं समुद्गतार्थकमिति५ तत्प्रतीयते॥४६१॥
अमी पृथग्विरचितरम्यरासकं विलासिनो बहुगमकस्वभावकम्।
प्रयुञ्जते गिरिशयशोविसारिणं प्रकीर्णकं बहुतरनागजातयः॥४६२॥

अमी कथं ककुभि कथाः प्रतिक्षणं ध्वनन्ति ते विविधवधूविमिश्रिताः।
न जातयो ध्वनिमुरजसमीरिता न मूर्च्छिताः किमिति च मूर्च्छनात्मिकाः॥४६३॥
श्रुतिप्रियक्रमगतिभेदसाधनं ततादिकं किमिति न तुम्बरेरितम्।
न हन्यते बहुविधवाद्यडम्बरं प्रकीर्णवीणामुरजादि नाम यत्॥४६४॥
इतीरिते गिरिमवधानशालिनः सुरासुराः सपदि तु वीरकाङ्क्षया।
नियामिताः प्रययुरतीव हर्षिताश्चराचरं जगदखिलं ह्यपूरयन्॥४६५॥

ये सम्मिलित स्वर, ललित पद एवं स्पष्ट अर्थ वाले संगीत को करने वाले षाड़गवादि गण क्यों नहीं प्रभु के सम्मुख जाते हैं?.... विलासोन्मत्त अनेक नागों की जाति वाले, शिव के यशोगान के विस्तार से युक्त, बहुत गमक से युक्त, पृथक्-पृथक् मनोहर रास से संयुक्त संगीत की ध्वनि कर रहे हैं। इस दिशा की ओर, विविध संगीतज्ञ लोग बहुओं से संयुक्त हो, प्रतिक्षण कैसे गान कर रहे हैं, जो मृदंग आदि की ध्वनियों के साथ अनेक प्रकार के स्वरालाप तो सुने जाते हैं, मगर मूर्च्छना एक भी नहीं सुनाई पड़ रही है? क्यों इधर तुम्बरु की ध्वनि के साथ विविध आरोह-अवरोह क्रम एवं भेदों से युक्त वीणा एवं मृदंग आदि बाजनों का शब्द नहीं सुनाई पड़ रहा है?' इस प्रकार वीरभद्र की आदेशपूर्ण बातें सुनते हुये, सुर तथा असुरगण बड़े हर्ष एवं सावधानी के साथ अपने-अपने बाजे और गानादि से चराचर जगत् को व्याप्त करते हुए आगे बढ़ने लगे।।४६१-४६५।।

इति स्तनत्ककुभि रसन्महार्णवे स्तनद्घने विदलितशैलकन्दरे।
जगत्यभूत्तुमुल इवाऽऽकुलीकृतःपिनाकिना त्वरितगतेन भूधरः॥४६६॥
परिज्वलत्कनकसहस्रतोरणं क्वचिन्मिलन्मरकतवेश्मवेदिकम्।
क्वचित्क्वचिद्विमलविदूरवेदिकं क्वचिद्गलज्जलधररम्यनिर्झरम्॥४६७॥
चलद्ध्वजप्रवरसहस्रमण्डितं सुरद्रुमस्तबकविकीर्णचत्वरम्।
सितासितारुणरुचिधातुवर्णिकं श्रियोज्ज्वलं प्रविततमार्गगोपुरम्॥४६८॥
विजृम्भिताप्रतिमध्वनिवारिदं सुगन्धिभिः पुरपवनैर्मनोहरम्।
हरो महागिरिनगरं समासदत्क्षणादिव प्रवरसुरासुरस्तुतः॥४६९॥
तं प्रविशन्तमगात्प्रविलोक्य व्याकुलतां नगरं गिरिभर्तुः।
व्यग्रपुरन्ध्रिजनं जययुक्तं धावितमार्गजनाकुलरथ्यम्॥४७०॥

समुद्र एवं मेघ गर्जने लगे। दिशाएँ स्वरों से गूंज उठीं। पर्वतों की कन्दराएँ प्रतिध्वनित होने लगीं। शिव की शीघ्रतापूर्वक गति से समस्त जगत् में तुमुल ध्वनि व्याप्त हो गई और उधर पर्वतराज हिमवान् व्याकुल हो गये। तदनन्तर भगवान् शंकर थोड़ी ही देर में सुर एवं असुरगणों के साथ हिमाचल के नगर में प्रविष्ट हुए। उस मनोहर नगर में कई स्थान सैकड़ों सुवर्ण जटित तोरणों से सुसज्जित था। किसी स्थान पर मरकत मणि की शिलाओं के बने हुए घर बनी हुई वेदियों से सुशोभित थे। कहीं-

कहीं पर वैदूर्य मणि की फर्श बनी थीं। किसी स्थान पर बादल के समान वेग से झरने झर रहे थे। भवनों पर सहस्रों लम्बी-लम्बी पताकाएँ शोभायमान थीं, जो श्वेत, काले एवं लाल रंगों से रंगी हुई थीं। चौराहों पर मनोहर कल्पद्रुम आदि वृक्षों के पुष्पों के गुच्छे बिखरे पड़े थे। मार्ग अति विस्तृत थे तथा पुर का प्रवेशद्वार अति विशाल था। समस्त पुर में शिव के पहुँचने पर उन्हें देखकर सारा पुर व्याकुलित हो गया। सभी लोग भयभीत होकर भागने लगे और उनसे सारा मार्ग आकीर्ण हो गया।।४६६-४७०।।

हर्म्यगवाक्षगतामरनारीलोचननीलसरोरुहमालम् ।
सुप्रकटा समदृश्यत काचित्स्वाभरणांशुवितानविगूढा।।४७१।।
काऽप्यखिलीकृतमण्डनभूषा त्यक्तसखीप्रणया हरमैच्छत्।
काचिदुवाच कलं गतमाना कातरतां सखि मा कुरु मूढे।।४७२।।
दग्धमनोभव एव पिनाकी कामयते स्वयमेव विहर्तुम्।
काचिदपि स्वयमेव पतन्ती प्राह परां विरहस्खलिताङ्गीम्।।४७३।।
मा चपले मदनव्यतिषङ्ग शङ्करजं स्खलनेन वद त्वम्।
काऽपि कृतव्यवधानमदृष्ट्वा युक्तिवशाद्गिरिशो ह्ययमूचे।।४७४।।
एष स यत्र सहस्रमखाद्या नाकसदामधिपाः स्वयमुक्तैः।
नामभिरिन्दुजटं निजसेवाप्राप्तफलाय नतास्तु घटन्ते।।४७५।।

कोई उच्च सुवर्ण अट्टालिका के झरोखे में बैठी हुई देवता की स्त्री अपने आभूषणों की किरणों के वितान में सुशोभित होकर प्रकट रूप से लोगों के नेत्र रूपी नील कमल माला को देख रही थी। कोई अन्य सुन्दरी अपने सभी आभूषणों से आभूषित होकर सखी की प्रीति भरी बातों को अनसुनी कर शिव को ही देख रही थी। कोई अन्य सुन्दरी शिव के दर्शन से अत्यन्त सुन्दर मनोभाव की भूमि में पहुँच गई थी और वह अपनी सखी से कह रही थी-मुग्धे! शिव को देखकर कातरता मत धारण करो, क्योंकि कामदेव को जलाने वाले पिनाकधारी शिव अब स्वयमेव विहार की इच्छा कर रहे हैं। शिव को देखकर कोई गिरती हुई स्त्री अपनी विरह से विस्खलित अंगों वाली सखी से कह रही थी-'चंचले! तू शिव के उत्पन्न हुए काम विकार विषयक कथा को भूल से दूसरों से कह-कहकर मत फैलाओ। कोई कामिनी व्यवधान पड़ने के कारण शिव को न देखकर भी उन्हीं के लक्ष से युक्तिपूर्वक कह रही थी। ये जो स्वर्ग के स्वामी इन्द्रादि देवगण यहाँ पर आये हुए हैं, वे अपने नामों को ले-लेकर अपनी सेवा अर्पित करने के लिए चन्द्रशेखर को प्रणाम करते हुये चेष्टा कर रहे हैं।।४७१-४७५।।

एष न चैष स एष यदग्रे चर्मपरीततनुः शशिमौली।
धावति वज्रधरोऽमरराजो मार्गममुं विवृतीकरणाय।।४७६।।

एष स पद्मभवोऽयमुपेत्य प्रांशुजटामृगचर्मनिगूढः।
सप्रणयं करघट्टितवक्त्रः किञ्चिदुवाच मितं श्रुतिमूले॥४७७॥
एवमभूत्सुरनारिकुलानां चित्तविसंष्ठुलता गुरुरागात्।
शङ्करसंश्रयणाद्गिरिजाया जन्मफलं परमं त्विति चोचुः॥४७८॥

ततो हिमगिरेर्वेश्म विश्वकर्मनिवेदितम्। महानीलमयस्तम्भं ज्वलत्काञ्चनकुट्टिमम्॥४७९॥

कोई सुन्दरी अपनी सखी से कह रही है–अरे वह नहीं, वह शंकर जी हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा है और शरीर पर गजचर्म सुशोभित है और जिनके आगे देवताओं के स्वामी इन्द्र आगे-आगे मार्ग को साफ करने के लिए दौड़ते हुए चल रहे हैं। देखो, यह ब्रह्मा जी हैं, जो लम्बी जटा और मृगचर्म से सुशोभित हैं और हाथ से मुख पकड़कर शिव के कान में कुछ बातें कर रहे हैं।' उस समय जब हिमवान् पर्वत के नगर में शिव पहुँचे, तब इस प्रकार पुरनारियों में परस्पर यह बातें होने लगीं–'इन महादेव के आश्रय से पार्वती का जन्म सफल हो गया, उस समय उन सभी के चित्त अति प्रेम के कारण आर्द्र हो गये थे।।४७६-४७९।।

मुक्ताजालपरिष्कारं ज्वलितौषधिदीपितम्। क्रीडोद्यानसहस्राढ्य काञ्चनाम्बुजदीर्घिकम्॥४८०॥
महेन्द्रप्रमुखाः सर्वे सुरा दृष्ट्वा तदद्भुतम्।
नेत्राणि सफलान्यद्य मनोभिरिति ते दधुः॥४८१॥

तदनन्तर विश्वकर्मा द्वारा विनिर्मित महानीलमणि के बने हुए खम्भों से सुशोभित, उज्ज्वल प्रकाशमान सुवर्णमय फर्श वाले मोतियों की मालाओं से परिष्कृत देदीप्यमान औषधियों के प्रकाश से सुप्रकाशित, सहस्रों क्रीड़ागारों एवं वाटिकाओं से सुसमृद्ध सुवर्ण की सीढ़ी वाली बावलियों से सुशोभित हिमवान् पर्वत के सुन्दर भवन को देखकर, महेन्द्र आदि देवताओं ने मान में मान लिया कि 'आज मेरे नेत्र सफल हो गये'।।४८०-४८१।।

विमर्दक्षीणकेयूरा हरिणा द्वारि रोधिताः। कथंचित्प्रमुखास्तत्र विविशुर्नाकवासिनः॥४८२॥

तदनन्तर द्वार पर विष्णु भगवान् द्वारा रोके गये स्वर्गनिवासी प्रमुख देवतागण किसी प्रकार अपने संघर्षण से कुचले गये केयूर आदि आभूषणों से युक्त होकर हिमाचल के भवन में प्रविष्ट हुये।।४८२।।

प्रणतेनाचलेन्द्रेण पूजितोऽथ चतुर्मुखः। चकार विधिना सर्वं विधिमन्त्रपुरःसरम्॥४८३॥

वहाँ विनत भाव से अचलेश्वर हिमवान् द्वारा सुपूजित चतुर्मुख ब्रह्मा ने विधिपूर्वक मन्त्रादि का उच्चारण कर सभी विधानों से सम्पन्न कराया।।४८३।।

शर्वस्य पाणिग्रहणमग्निसाक्षिकमक्षतम्। दाता महीभृतां नाथो होता देवश्चतुर्मुखः॥४८४॥
वरः पशुपतिः साक्षात्कन्या विश्वारणिस्तथा।
चराचराणि भूतानि सुरासुरवराणि च॥४८५॥

तत्राप्येते नियमतो ह्यभवन्व्यग्रमूर्तयः।
मुमोचाभिनवान् सर्वान्सस्यशालीन् रसौषधीः॥४८६॥
व्यग्रा तु पृथिवी देवी सर्वभावमनोरमा।

निश्चित मुहूर्त में शर्व, भगवान् शंकर ने अग्नि को साक्षी कर पार्वती का पाणिग्रहण किया। उस महान् उत्सव के समय महादानी पर्वतों का स्वामी हिमालय दान करने वाला, चतुर्मुख ब्रह्मा हवन करने वाले, साक्षात् शिवजी वर तथा जगदम्बिका पार्वती कन्या रूप में थीं। यह सब था, किन्तु वे चराचर सभी जीवगण देवता एवं राक्षस जो द्रष्टा रूप में थे, कार्याधिक्य से व्यग्र हो गये। फिर भी शान्तिपूर्वक सब लोग वहाँ अवस्थित रहे। सभी प्रकार के मनोरम भावों से पूर्ण होकर साक्षात् पृथ्वी देवी ने नूतन अन्नों, रसों एवं औषधियों को व्यग्रता समेत आकर छोड़ा॥४८४-४८६.५॥

गृहीत्वा वरुणः सर्वरत्नान्याभरणानि च॥४८७॥
पुण्यानि च पवित्राणि नानारत्नमयानि तु।
तस्थौ साभरणो देवो हर्षदः सर्वदेहिनाम्॥४८८॥
धनदश्चापि दिव्यानि हैमान्याभरणानि च।
जातरूपविचित्राणि प्रयतः समुपस्थितः॥४८९॥

स्वयं वरुण सभी प्रकार के रत्नों एवं आभरणों को जो पुण्य, पवित्र एवं अनेक प्रकार के रत्नों से बने हुये थे, लेकर वहाँ उपस्थित थे। सभी प्रकार के जीवों को हर्ष पदान करने वाले विनीत भाव से धनाध्यक्ष कुबेर भी सुवर्ण के बने हुये तथा विचित्र ढंग वाले दिव्य आभूषणों को लिये हुये उपस्थित थे॥४८७-४८९॥

वायुर्ववौ सुसुरभिः सुखसंस्पर्शनो विभुः। छत्रमिन्दुकरोद्भासिसुसितं च शतक्रतुः॥४९०॥
जग्राह मुदितः स्रग्वी बाहुभिर्बहुभूषणैः। जगुर्न्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥४९१॥
वादयन्तोऽतिमधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। मूर्ताश्च ऋतवस्तत्र जगुश्च ननृतुश्च वै॥४९२॥

सभी जीवों को हर्ष प्रदान करने वाले भगवान् शंकर अपने दिव्य आभूषणों से सजे हुये थे। भगवान् वायु अति सुगन्धित सुखमय स्पर्श कराते हुए बह रहे थे। इन्द्र चन्द्रमा की किरणों के समान प्रकाश मान अतिश्वेत छत्र को लिये हुए परम प्रसन्न हो रहे थे। उस समय वे माला धारण किये हुये थे तथा उनके हाथ अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत थे। प्रमुख गन्धर्वगण समवेत रूप से सुमधुर गान कर रहे थे, अप्सराएँ नाच नहीं थीं, कुछ गन्धर्व तथा किन्नरों के समूह अति स्वर में अनेक प्रकार के बाजनों को बजाते हुये अलग भी गान कर रहे थे। सभी ऋतुएँ भी रूप धारण कर नाच गान कर रही थीं॥४९०-४९२॥

चपलाश्च गणास्तस्थुर्लोलयन्तो हिमाचलम्।
उत्तिष्ठन्क्रमशश्चात्र विश्वभुग्भगनेत्रहा॥४९३॥

चकारौद्वाहिकं कृत्यं पत्न्या सह यथोचितम्। दत्तार्घो गिरिराजेन सुरवृन्दैर्विनोदितः॥४९४॥
अवसत्तां क्षपां तत्र पत्न्या सह पुरान्तकः। ततो गन्धर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि॥४९५॥
स्तुतिभिर्देवदैत्यानां विबुद्धो विबुधाधिपः। आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं प्रभाते चोमया सह॥
जगाम मन्दरगिरिं वायुवेगेन शृङ्गिणा॥४९६॥

शिव के चंचल प्रकृति वाले प्रमथगण हिमालय को विचलित करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। एसे अवसर पर विश्व के पालन करने वाले भगनेत्रहारी भगवान् शंकर ने यथोचित रीति से अपनी वल्लभा पार्वती के साथ वैवाहिक कर्म सम्पन्न किया। तदनन्तर देव समूहों द्वारा प्रार्थना किये गये, गिरिराज हिमालय द्वारा पूजित, भगवान् त्रिपुरान्तक शंकर ने वहाँ पर पत्नी के साथ एक रात्रि व्यतीत भी किया। दूसरे दिन प्रातःकाल गन्धर्वों के गीत, अप्सराओं के नृत्य एवं देवता तथा दैत्यों की स्तुतियों से जगाये गये देवताओं के स्वामी भगवान् शंकर ने प्रातःकाल पार्वती के साथ गिरिराज हिमवान् से आज्ञा प्राप्त कर वायु के समान वेगशाली नन्दीश्वर के द्वारा मन्दराचल को प्रस्थान किया।।४९३-४९६।।

ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमया रतिमलभन्न भूधरः।
सबान्धवो भवति च कस्य नो मनो विह्वलं च जगति हि कन्यकापितुः॥४९७॥

पार्वती समेत नीललोहित भगवान् शंकर के चले जाने पर सपरिवार हिमवान् को आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। इस जगत् में भला किस कन्या के पिता का मन उसकी विदाई हो जाने के बाद विह्वल नहीं हो जाता।।४९७।।

(ज्वलन्मणिस्फटिकहाटकोत्कटं स्फुटद्युति स्फटिकगोपुरं पुरम्।
हरो गिरौ चिरमनुकल्पितं तदा विसर्जितामरनिवहोऽविशत् स्वकम्॥४९८॥
तदोमासहितो देवो विजहार भगाक्षिहा। पुरोद्यानेषु रम्येषु विविक्तेषु वनेषु च॥४९९॥

तदनन्तर शिव ने मन्दराचल में चिरकाल से बनाये हुए उज्ज्वल देदीप्यमान मणियों, स्फटिक की शिलाओं तथा शुभ्र सुवर्ण से बनाये गये अति कान्तिमान् स्फटिक से बने हुये प्रवेशद्वार वाले पुर में देवताओं को विदाकर स्वयं प्रवेश किया। प्रविष्ट होने के उपरान्त भगनेत्रहारी भगवान् शंकर ने उस पुर के सुरम्य उद्यानों तथा एकान्त वनों में उमा के समेत विहार किया।।४९८-४९९।।

सुरक्तहृदयो देव्या मकराङ्कपुरःसरः। ततो बहुतिथे काले सुतकामा गिरेः सुता॥५००॥
सखीभिः सहिता क्रीडां चक्रे कृत्रिमपुत्रकैः।
कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा॥५०१॥
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलिनान्तरितां तनुम्। तदुद्वर्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम्॥५०२॥

कामवश अनुरक्त हृदय वाले भगवान् शंकर ने इस प्रकार देवी पार्वती के साथ बहुत दिनों तक विहार किया और इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर एक बार पुत्र प्राप्ति की अभिलाषिणी पार्वती सखियों के साथ खिलौने के बनावटी पुत्तली को पुत्र मानकर क्रीडा करने लगीं। उसी प्रसङ्ग

में एक दिन शैलपुत्री पार्वती ने उस पुत्तल के अंगों में सुगन्धित द्रव्य युक्त तेल लगाकर कुछ मैले शरीर में सुगन्धित चूर्णों का उबटन भी लगाया और उस उबटन को लेकर हाथी के समान मुख वाले मनुष्य की आकृति का निर्माण किया।।५००-५०२।।

पुत्रकं क्रीडती देवी तं चाप्यर्पयदम्भसि।
जाह्नव्यास्तु शिवासख्यास्ततः सोऽभूद्बृहद्वपुः।।५०३।।
कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा। पुत्रेत्युवाच तं देवी पुत्रेत्यूचे च जाह्नवी।।५०४।।
गाङ्गेय इति देवैस्तु पूजिनोऽभूद्गजाननः।
विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः।।५०५।।

इस प्रकार उस बनावटी पुत्तल के साथ क्रीड़ा करती हुई पार्वती ने उस गजाकृति नर पुत्तल को जल में डाल दिया। पार्वती की सखी जह्नु कन्या गंगा के जल में पड़कर वह पुत्तल लम्बे शरीर वाला हो गया और अपने विशाल शरीर से उसने समस्त जगत् को व्याप्त-सा कर लिया। उस विशाल शरीर वाले पुत्तले को पार्वती ने 'पुत्र' कहकर पुकारा और उस जाह्नवी ने भी 'पुत्र' कहा। फिर गज के आनन के समान मुख वाला वही पुत्तलक देवताओं द्वारा पूजित होकर 'गांगेय' और 'गजानन' नाम से विख्यात हुआ। पितामह ब्रह्मा ने उसे विघ्नों का आधिपत्य पद सौंपा।।५०३-५०५।।

पुनः सा क्रीडनं चक्रे पुत्रार्थं वरवर्णिनी। मनोज्ञमङ्कुरं रूढमशोकस्य शुभानना।।५०६।।
वर्धयामास तं चापि कृतसंस्कारमङ्गला। बृहस्पतिमुखविप्रैर्दिवस्पतिपुरोगमैः।।५०७।।
ततो देवैश्च मुनिभिः प्रोक्ता देवी त्विदं वचः।
भवानि भवती भव्या सम्भूता लोकभूतये।।५०८।।

सुन्दर अंगों वाली पार्वती ने पुनः पुत्र की कामना से एक बार खिलवाड़ किया और इसी प्रसङ्ग में उस सुन्दर मुख वाली ने जमे हुये एक अशोक के मनोहर अंकुर को अनेक संस्कार एवं मंगलादि का विधान कर बढ़ाया। सूर्य आदि देवताओं तथा बृहस्पति आदि ऋषियों ने देवी से इसके कारण को पूछते हुए इस प्रकार की बातें कहीं, 'भवानी! मनोहर रूप वाली! आपकी उत्पत्ति तो लोक की विभूति के लिये हुई है।।५०६-५०८।।

प्रायः सुतफलो लोकः पुत्रपौत्रैश्च लभ्यते।
अपुत्राश्च प्रजाः प्रायो दृश्यन्ते दैवहेतवः।।५०९।।
अधुना दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि। फलं किं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः।।
इत्युक्ता हर्षपूर्णाङ्गी प्रोवाचोमाः शुभां गिरम्।।५१०।।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि लोग पुत्ररूप फल को ही प्राप्त करने को इच्छुक रहा करते हैं। पुत्र-पौत्रादि से ही लोग अपने जन्म की सफलता मानते हैं और प्रायः यह देखा जाता है कि जो लोग पुत्रविहीन हैं, वे संसार से विरक्त होकर ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग ग्रहण करते हैं। इस समय आप

सज्जनों के लिए उचित मार्ग की मर्यादा निर्धारित करें। देवि! इस बनाये हुए वृक्षों को पुत्र रूप में मानने से भला क्या फलप्राप्ति होगी?' देवताओं तथा ऋषियों के ऐसा पूछने पर हर्ष से प्रफुल्लित अंगों वाली पार्वती ने मांगलिक वाणी में उत्तर दिया।।५०९-५१०।।

देव्युवाच

एवं निरुदके देशे यः कूपं कारयेद्बुधः।
बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य वसेत्संवत्सरं दिवि।।५११।।
दशकूपसमावापी दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः।।
एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी।।५१२।।

देवी ने कहा-जलरहित देश में जो कोई बुद्धिमान् कूप का निर्माण करता है, वह जल के एक-एक बिन्दु के हिसाब से उतने ही वर्षों तक स्वर्गलोक में निवास करता है। दस कुएँ के समान पुण्यदायिनी एक बावली कही गई है, दस बावली के समान पुण्यप्रद एक सरोवर माना गया है। दस सरोवरों के समान एक पुत्र है और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष है। यही लोक को पवित्र करने वाली मर्यादा है, जिसे मैं निर्धारित कर रही हूँ।।५११-५१२।।

इत्युक्तास्तु ततो विप्रा बृहस्पतिपुरोगमाः।
जग्मुः स्वमन्दिराण्येव भवानीं वन्द्य सादरम्।।५१३।।
गतेषु तेषु देवोऽपि शङ्करः पर्वतात्मजाम्।
पाणिनाऽऽलम्ब्य वामेन शनैः प्रावेशयच्छुभाम्।।५१४।।
चित्तप्रसादजननं प्रासादमनुगोपुरम्। लम्बमौक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम्।।५१५।।

देवी के इस प्रकार कहने पर बृहस्पति आदि ऋषिगण सादर भवानी की वन्दना कर अपने-अपने स्थान को चले गये। उन लोगों के चले जाने पर देवाधिदेव शंकर भी मङ्गलदायिनी पार्वती को बाएँ हाथ से धीरे से पकड़कर चित्त को प्रसन्न करने वाले प्रवेश द्वार के निकट वाले सुन्दर भवन में प्रविष्ट हुए, जिसमें लम्बी-लम्बी मोतियों की मालाएँ झूल रही थी। सुन्दर पुष्प की मालाओं से वेदियाँ सुसज्जित की गयी थीं।।५१३-५१५।।

निर्धौतकलधौतं च क्रीडागृहमनोरमाम्। प्रकीर्णकुसुमामोदमत्तालिकुलकूजितम्।।५१६।।
किन्नरोद्गीतसङ्गीतगृहान्तरितभित्तिकम्। सुगन्धिधूपसङ्घातमनःप्राथ्यर्मलक्षितम्।।५१७।।

उसमें तपाये हुए सुवर्ण के बने हुए मनोहर क्रीड़ागार में, जहाँ नीचे गिरे हुये पुष्पों की सुगन्धि से मतवाले भँवरों के समूह गूँज रहे थे, किन्नरों के सुरीले गायनों एवं संगीतों से गृह के भीतरी भाग की दीवालें प्रतिध्वनित हो रही थी, धूप आदि पदार्थों की भीनी सुगन्धि हो रही थी।।५१६-५१७।।

क्रीडन्मयूरनारीभिर्वृतं वै ततवादिभिः। हंससङ्घासङ्घुष्टं स्फटिकस्तम्भवेदिकम्।।५१८।।
अनाविलमसम्भ्रान्त्या बहुशः किन्नराकुलम्। शुकैर्यत्राभिहन्यन्ते पद्मरागविनिर्मिताः।।५१९।।

भित्तयो दाडिमभ्रान्त्या प्रतिबिम्बितमौक्तिकाः।
तत्राक्षक्रीडया देवी विहर्तुमुपचक्रमे॥५२०॥
स्वच्छेन्द्रनीलभूभागे क्रीडने यत्र धिष्ठितौ। वपुःसहायतां प्राप्तौ विनोदरसनिर्वृतौ॥५२१॥

मयूरियाँ क्रीड़ा कर रही थीं, यक्षों की स्त्रियाँ वीणा बजा रही थीं। हंसों के समूह गुंजारव कर रहे थे, स्फटिक के खम्भों से बनी हुई वेदियाँ शोभित हो रही थीं, किन्नरों के समूह क्रीड़ा में निरत थे। उस सुन्दर भवन में पद्मराग मणि की बनी हुई दीवालों में मोतियों के प्रतिबिम्ब झलक रहे थे। शुकगण अनार के भ्रम में उसमें टोंट मार देते थे, ऐसे सुरम्य क्रीड़ागार में पार्वती जी द्यूतक्रीड़ा करती हुई विहार करने लगीं। स्वच्छ इन्द्र नीलमणि की बनी हुई फर्श पर क्रीड़ा करते हुए शिव तथा पावती परस्पर केलि के रस में विभोर हो एक-दूसरे के शरीर की सहायता को प्राप्त हुये।।५१८-५२१।।

एवं प्रक्रीडतोस्तत्र देवीशङ्करयोस्तदा। प्रादुर्भवन्महाशब्दस्तद्गृहोदरगोचरः॥५२२॥
तच्छुत्वा कौतुकाद्देवी किमेतदिति शङ्करम्। पप्रच्छ तं शुभतनुर्हरं विस्मयपूर्वकम्॥५२३॥
उवाच देवीं नैतत्ते दृष्टपूर्वं सुविस्मिते।
एते गणेशाः क्रीडन्ते शैलेऽस्मिन्मत्प्रियाः सदा॥५२४॥

शंकर तथा पार्वती के आपस में क्रीड़ा करते समय घर के भीतर से एक भीषण शब्द हुआ, उसे सुनकर अति कुतूहल से आकर सुन्दरी पार्वती ने शंकर से पूछा-'यह क्या है?'।।५२२-५२४।।

तपसा ब्रह्मचर्येण नियमैः क्षेत्रसेवनैः। यैरहं तोषितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः॥५२५॥
मत्समीपमनुप्राप्ता मम हृद्याः शुभानने। कामरूपा महोत्साहा महारूपगुणान्विताः॥५२६॥

शिव ने कहा-'विस्मय को प्राप्त हाने वाली! इस स्थान को तुमने पहले नहीं देखा है, इस पर्वत में मेरे अतिप्रिय प्रमथों के स्वामी सर्वदा क्रीड़ा करते हैं, उन्हीं लोगों ने यह शब्द किया होगा? नियम, क्षेत्र सेवन, ब्रह्मचर्य तथा तपस्या द्वारा जो पुण्यात्मा मनुष्य मेरा नित्य ध्यान करते हैं, वे ही इस रूप में यहाँ मेरे प्रेमपात्र होते हैं। हे शुभानने! ये सभी हमारे सान्निध्य को प्राप्त करने वाले हैं, हमारे सुहृद हैं, इच्छानुकूल रूप धारण करने वाले हैं, बड़े उत्साही हैं, अतिस्वरूप एवं गुणों से संयुक्त हैं।।५२५-५२६।।

कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम्। चराचरस्य जगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः॥५२७॥
ब्रह्मविष्ण्विन्द्रगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः। समावृतोऽप्यहं नित्यं नैभिर्विरहितो रमे॥५२८॥

इन बलशालियों के उत्तम कर्मों द्वारा मैं विस्मय को प्राप्त होता हूँ। ये सभी चराचर जगत् की सृष्टि के विनाश करने में समर्थ हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, गन्धर्वगण, किन्नर एवं नागगण-इन सबों से घिरा हुआ भी मैं इन लोगों के बिना कभी आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता।।५२७-५२८।।

हृद्या मे चारुसर्वाङ्गि त एते क्रीडिता गिरौ)।
इत्युक्ता तु ततो देवी त्यक्त्वा तद्विस्मयाकुला॥५२९॥

गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते विस्मितानना। यावन्तस्ते कृशा दीर्घा ह्रस्वाः स्थूला महोदराः॥५३०॥
व्याघ्रेभवदनाः केचित्केचिन्मेषाजरूपिणः। अनेकप्राणिरूपाश्च ज्वालास्याः कृष्णपिङ्गलाः॥५३१॥

सर्वांगसुन्दरी! ये सभी हमारे हृदय में निवास करने वाले प्रमथगण इसी गिरि पर क्रीड़ा कर रहे हैं।' शिव के ऐसा कहने पर विस्मय से आकुलित हो पार्वती ने द्यूतक्रीड़ा छोड़ दी और विस्मित मुख हो झरोखे के रास्ते उन सबको देखा। जिनमें कुछ तो दुबले, लम्बे, छोटे, मोटे, लम्बे पेटों वाले, बाघ एवं हाथी के समान मुख वाले हैं, कोई भेड़ तथा बकरी के रूप के हैं, कुछ अनेक प्राणियों के समान रूप वाले हैं, किन्हीं के मुख अग्नि की ज्वाला के समान विकराल हैं, कोई काले रङ्ग के हैं तो कोई अति पिंगल वर्ण के हैं।॥५२९-५३१॥

सौम्या भीमाः स्मितमुखाः कृष्णपिङ्गजटासटाः।
नानाविहङ्गवदना नानाविधमृगाननाः॥५३२॥

कौशेयचर्मवसना नग्ना चान्ये विरूपिणः। गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुवक्त्रेक्षणोदराः॥५३३॥

कुछ सुन्दर आकृति के हैं, तो कुछ अति भयङ्कर दिखाई पड़ने वाले हैं। कोई हँस रहे हैं। कुछ काली तथा पीले वर्ण की जटाओं को धारण किये हुए हैं, कुछ अनेक प्रकार के पक्षियों के समान मुख वाले हैं। कुछ रेशमी वस्त्र धारण किये हैं, तो कुछ चमड़े धारण किये हैं, कुछ नग्न हैं तो अन्य बिल्कुल कुरूप हैं। कुछ गाय के समान कान वाले हैं तो कुछ हाथी के समान कान वाले हैं, कुछ अनेक मुख, आँख एवं पेटों वाले हैं।॥५३२-५३३॥

बहुपादा बहुभुजा दिव्यनानास्त्रपाणयः। अनेककुसुमापीडा नानाव्यालविभूषणाः॥५३४॥
वृकाननायुधधरा नानाकवचभूषणाः। विचित्रवाहनारूढा दिव्यरूपा वियच्चराः॥५३५॥

वीणावाद्यमुखोद्धृष्टा नानास्थानकनर्तकाः।
गणेशांस्तांस्तथा दृष्ट्वा देवी प्रोवाच शङ्करम्॥५३६॥

किसी के बहुत पैर हैं, किसी के अनेक हाथ हैं, कुछ दिव्य अनेक प्रकार के अस्त्रों को हाथों में लिये हुए हैं। कुछ अनेक प्रकार के पुष्पों की मालाएँ धारण किये हुए हैं। कुछ अनेक सर्पों का आभूषण बनाये हुए हैं। कुछ भेड़ियों के मुख का हथियार बनाये हुए हैं, कुछ अनेक प्रकार के कवचों एवं आभूषणों से सुसज्जित हैं, कुछ अनेक प्रकार के विचित्र वाहनों पर आरूढ़ होकर दिव्यरूप धारण किये हुए आकाश में चलने वाले हैं। कुछ मुख से वीणा तथा अनेक प्रकार के बाजनों का स्वर करते हुये अनेक स्थानों पर नाचते हुये विराजमान हैं। इस प्रकार उन प्रमथगणों के स्वामियों को देखकर पार्वती ने शंकर से कहा।॥५३४-३३६॥

देव्युवाच

गणेशाः कतिसंख्याताः किन्नामानः किमात्मकाः।
एकैकशो मम ब्रूहि धिष्ठिता ये पृथक्पृथक्॥५३७॥

देवी ने कहा-इन प्रमथों के स्वामियों की संख्या कितनी है? इनके नाम क्या हैं? इनके स्वरूप कैसे हैं? इन सबों को, जो यहाँ पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ रहे हैं, एक-एक करके मुझसे बताइये।।५३७।।

शङ्कर उवाच

कोटिसंख्या ह्यसंख्याता नानाविश्चातपौरुषाः। जगदापूरितं सर्वैरेभिर्भमैर्महाबलैः।।५३८।।
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु। दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च।।
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः।।५३९।।

शंकर ने कहा-इन गणों में उन प्रधान वीरों की संख्या एक करोड़ कही गई है, जो सबके सब अनेक प्रकार के विख्यात पौरुष वाले हैं। अन्यान्य की तो अगणित संख्या है। इन महाबलवान् भयानक आकृति वालों से समस्त जगत् व्याप्त है। सिद्ध क्षेत्रों में, सड़कों या गलियों में, पुराने उद्यानों में, पुराने घरों में, दानवों के शरीरों में, बालकों में तथा पागलों में ये प्रवेश करके आनन्दपूर्वक अनेक प्रकार का आहार-विहार करते हैं।।५३८-५३९।।

ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूमपा मधुपायिनः।
रक्तपाः सर्वभक्षाश्च वायुपा ह्यम्बुभोजनाः।।५४०।।
गेयनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः।
न ह्येषां वै अनन्तत्वाद्गुणान्वक्तुं हि शक्यते।।५४१।।

ये ऊष्मप (गरम वायु पान करने वाले), फेन पीने वाले, धूम्रपान करने वाले, मधु पीने वाले, रक्त पीने वाले, सर्वभक्षी, वायुपान करने वाले, जल का आहार करने वाले हैं, गान-नृत्य के उपहार से प्रसन्न होने वाले तथा अनेक प्रकार के वाद्यों के शब्दों के प्रेमी हैं। अनन्त होने के कारण इन सबके गुणों का वर्णन अलग-अलग करके नहीं किया जा सकता।।५४०-५४१।।

देव्युवाच

मार्गत्वगुत्तरासङ्गशुद्धाङ्गो मुञ्जमेखली। मानशिलेन कल्केन चपलो रञ्जिताननः।।५४२।।
पिनद्धोत्पलस्त्रग्दामा सुकान्तो मधुराकृतिः।
पाषाणशकलोत्तानकांस्यतालप्रवर्तकः।।५४३।।
असौ गणेश्वरो देवः किन्नामा किन्नरानुगः। य एष गणगीतेषु दत्तकर्णो मुहुर्मुहः।।५४४।।

देवी ने कहा-मृग चर्म का दुपट्टा ओढ़े हुये, सुन्दर अंगों वाले, मूंज की मेखला से सुशोभित, अति चंचल, मैनशिल के विलेपन से लाल मुख वाला, कमल की माला से विभूषित, अति सुन्दर, मधुर आकृति वाला, पाषाण के टुकड़े से उतान कांस्य के बाजे पर ताल लगाने वाले गणों को प्रेरित करता हुआ किन्नरों के पीछे जो वह गणेश्वर हैं, उसका क्या नाम है? वही जो बारम्बार अन्य प्रमथगणों की गीतों पर अपना कान लगाये हुये हैं।।५४२-५४४।।

शर्व उवाच

स एष वीरको देवि सदा मद्हृदयप्रियः। नानाश्चर्यगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः॥५४५॥

शिव ने कहा–देवि! उसका नाम वीरक है, वह समस्त गणों का स्वामी है और मुझे हृदय के समान प्यारा है। अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक गुणों में वह निपुण है, गणेश्वर लोग उसकी पूजा करते हैं।।५४५।।

देव्युवाच

ईदृशस्य सुतस्यास्ति ममोत्कण्ठा पुरान्तक।
कदाऽहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानन्ददायिनम्॥५४६॥

देवी ने कहा–पुरान्तक! ऐसे ही पुत्र को प्राप्त करने की मेरी हार्दिक अभिलाषा है, कब मैं ऐसे आनन्दमय पुत्र को देखूँगी?।।५४६।।

शर्व उवाच

एष एव सुतस्तेऽस्तु नयनानन्दहेतुकः।
त्वया मात्रा कृतार्थोऽस्तु वीरकोऽपि सुमध्यमे॥५४७॥
इत्युक्ता प्रेषयामास विजयां हर्षणोत्सुका।
वीरकानयनायाऽऽशु दुहिता हिमभूभृतः॥५४८॥

साऽवरुह्य त्वरायुक्ता प्रासादादम्बरस्पृशः। विजयोवाच गणपं गणमध्ये प्रवर्तिता॥५४९॥

शिव ने कहा–'सुन्दरी! नयन को आनन्द देने वाला यह वीरक ही तुम्हारा पुत्र हो। तुम जैसी माता को प्राप्त कर वीरक भी कृतार्थ हो जायगा।' शिव की यह बात सुनकर हिमवान् की पुत्री पार्वती ने अति हर्ष तथा उत्कण्ठा से शीघ्र ही वीरक को लिवा लाने के लिये विजया को भेजा। पार्वती की आज्ञा से स्वर्ग को छूने वाली भवन के ऊपर से उतरकर विजया ने शीघ्रतापूर्वक गणों के मध्य में खेलते हुये गणपति वीरक से कहा।।५४७-५४९।।

विजयोवाच

एहि वीरक चापल्यात्त्वया देवः प्रकोपितः। किमुत्तरं वदत्यर्थे नृत्यरङ्गे तु शैलजा॥५५०॥
इत्युक्तस्त्यक्तपाषाणशकलो मार्जिताननः। आहूतस्तु तयोद्भूतमूलप्रस्तावशंसकः॥५५१॥
देव्याः समीपमागच्छद्विजयानुगतः शनैः। प्रसादशिखरात्फुलरक्ताम्बुजनिभद्युतिः॥५५२॥
तं दृष्ट्वा प्रस्नुतानल्पस्वादुक्षीरपयोधरा। गिरिजोवाच सस्नेहं गिरा मधुरवर्णया॥५५३॥

विजया ने कहा–'वीरक यहाँ आओ! तुम्हारी चंचलता से महाराज शिव क्रुद्ध हो गये हैं, इस नृत्यरंग के बारे में माता पार्वती भी तुम्हें क्या कह रही हैं?' इस प्रकार विजया के बुलाने पर वीरक ने पत्थरों के टुकड़ों को तुरन्त फेंक दिया और मुँह धोकर वहाँ से 'माता ने किसलिये बुलाया है?'-

ऐसा सोचते हुये विजया के पीछे-पीछे देवी के समीप आया। प्रसाद के शिखर पर से फूले हुये लाल कमल के समान शोभा वाली पार्वती ने वीरक को आते देखा। उस समय उनके स्तनों से अधिक मात्रा में सुस्वादु दुग्ध का प्रस्त्रवण होने लगा। समीप आने पर स्नेह भरी मृदुवाणी में पार्वती बोलीं।।५५०-५५३।।

उमोवाच

एह्येहि यातोऽसि मे पुत्रतां देवदेवेन दत्तोऽधुना वीरक।।५५४।।
इत्येवमङ्के निधायाथ तं पर्यचुम्बत्कपोले कलवादिनम्।।५५५।।

उमा ने कहा-'प्यारे वीरक! यहाँ आओ! मेरे पास आओ! देव-देव ने, अब तुमको मेरा पुत्र बनाकर सौंपा है।' ऐसा कहकर प्रिय वचन बोलने वाले वीरक को पार्वती ने अपने अंक में लिपटा लिया।।५५४-५५५।।

मूर्ध्न्युपाघ्राय संमार्ज्य गात्राणि ते भूषयामास दिव्यैः।
स्वयं भूषणैः किङ्किणीमेखलानूपुरैर्माणिक्यकेयूरहारोरुमूलगुणैः।।५५६।।
कोमलैः पल्लवैश्चित्रितैश्चारुभिर्दिव्यमन्त्रोद्भवैस्तस्य शुभ्रैस्ततो।
भूरिभिश्चाकरोन्मिश्रसिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिम् ।।५५७।।

सिर को सूंघकर उसके सारे धूल धूसरित शरीर को हाथों से साफ किया और दिव्य मनोहर आभूषणों से स्वयं विभूषित किया। किंकिणी, मेखला, नूपुर, मणि का बना हुआ केयूर, हार, कमर की करधनी आदि आभूषण पहिनाये। अति सुन्दर विचित्र रंग के अति कोमल पल्लवों से, दिव्य मांगलिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित किये गये रक्षा कवचों से तथा सफेद सरसों से, जो अनेक धातुओं के चूर्णों से मिश्रित थीं, इसके अंगों की रक्षा का विधान किया।।५५६-५५७।।

एवमादाय चोवाच कृत्वा स्त्रजं मूर्ध्नि गोरोचनापत्रभङ्गोज्ज्वलम्।।५५८।।
गच्छ गच्छाधुना क्रीड सार्धं गणैरप्रमत्तोनगे श्वभ्रवर्जं शनै-
र्व्यालमालाकुलाः शैलसानुद्रुमैर्दन्तिभिर्भिन्नसाराः परे सङ्गिनः।।५५९।।

इस प्रकार अति आदरपूर्वक गोद में लेकर मस्तक से गोरोचन की पत्ते के आकार की तिलक लगायी तथा कण्ठ में एक सुन्दर उज्ज्वल माला पहिनायी और कहा, 'पुत्र! अब तुम जाओ और जाकर अपने साथी गणों के साथ सावधान चित्त होकर खेलो।।५५८-५५९।।

जाह्नवीयं जलं क्षुब्धतोयाकुलं कूलं मा विशेथा बहुव्याघ्रदुष्टे वने।।५६०।।
वत्सासंख्येषु दुर्गा गणेशेष्वेतस्मिन्वीरके पुत्रभावोपतुष्टान्तःकरणा तिष्ठतु।।५६१।।
स्वस्यपितृजनप्रार्थितं भव्यमायातिभाविन्यसौ भव्यता।।५६२।।

कुछ समय तक सर्प की माला धारणकर मलिन शरीर रहो, पर्वत के शिखर, वृक्ष एवं गजराजों से तुम्हारे साथी पराजित हो रहे हैं, इस गंगा का तल अत्यन्त चञ्चल वेग वाले जल से व्याप्त हैं, इसमें

भूलकर भी प्रवेश मत करना। अनेक व्याघ्रों से दूषित वन में भी मत प्रवेश करना। दुर्गा देवी (?) इन असंख्य गणपतियों के मध्य में इस वीरक के प्रति पुत्र के भाव से एवं शुद्ध अन्तःकरण से व्यवहार करें? अपने पितरों (माता और पिता) से प्रार्थित सुन्दर फल मनुष्य को निश्चय ही भविष्य में प्राप्त होता है, अतः मेरा यह आशीर्वाद भविष्य में तुम्हें प्राप्त होगा।'?५६०-५६२।।

सोऽपि निर्वर्त्य सर्वान्गाणान्सस्मयमाह बालत्वलीलारसाविष्टधीः।।५६३।।
एष मात्रा स्वयं मे कृतभूषणोऽत्र एष पटः पाटलैर्बिन्दुभिः।
सिन्दुवारस्य पुष्पैरियं मालतीमिश्रिता मालिका मे शिरस्याहिता।।५६४।।

पार्वती के ऐसा कहने के बाद बालकपन की क्रीडा में मस्त होकर वीरक ने भी हँसते हुये सभी गणेश्वरों से अति प्रसन्न होकर कहा, 'माता ने स्वयं मुझे इन आभूषणों को पहिनाया है, यह सुन्दर वस्त्र दिया है; पाटल एवं सिन्दुवार के पुष्पों से मिश्रित मालती की माला मेरे सिर में पहिनाई है।'।।५६३-५६४।।

कोऽयमातोद्यधारी गणस्तस्य दास्यामि हस्तादिदं क्रीडनम्।।५६५।।
दक्षिणात्पश्चिमं पश्चिमादुत्तरमुत्तरात्पूर्वमभ्येत्य सख्या युता प्रेक्षती।
तं गवाक्षान्तराद्वीरकं शैलपुत्री बहिः क्रीडनं यज्जगन्मातुरप्येष चित्तभ्रमः।।५६६।।
पुत्रलुब्धो जनस्तत्र को मोहमायाति न स्वल्पचेता जडो मांसविण्मूत्रसन्धातदेहः।।५६७।।

उधर 'वह वाद्य धारण करने वाला कौन गण है? उसको हाथ से यह खिलौना दूँगी।' इस प्रकार कहते हुए दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर, उत्तर से पूर्व दिशा में सखियों समेत शैलपुत्री पार्वती झरोखे से बाहर वीरक को खेलते हुये देखकर प्रसन्न हो रही थीं। समस्त जगत् की माता को भी पुत्र को खेलते हुये देखकर इस प्रकार चित्त में जब व्यामोह होता है, तो जो अल्प बुद्धि वाले, जड़, मांस, मलमूत्र के समूह से भरे हैं, ऐसे पुत्रलोभी जनों को यदि इस विषय में मोह हो जाता है तो क्या दोष?।।५६५-५६७।।

द्रष्टुमभ्यन्तरं नाकवासेश्वरैरिन्दुमौलिं प्रविष्टेषु कक्षान्तरम्।।५६८।।
वाहनात्यावरोहा गणास्तैर्युतो लोकपालास्त्रमूर्तो ह्ययं खड्गो विखड्गकरोः।
निर्ममः कृतान्तः कस्य केनाहतो ब्रूत मौने भवन्तोऽस्त्रदण्डेन किं दुःस्पृहा।।५६९।।
भीममूर्त्याननेनास्ति कृत्यं गिरौ य एषोऽस्त्रज्ञेन किं वध्यते।।५७०।।

तदनन्तर चन्द्रशेखर भगवान् शिव को देखने के लिये आये हुये लोकपालों के भीतर प्रविष्ट होनेपर सभी प्रमथगण उनके वाहनों पर चढ़ गये और उनके हथियारों को धारणकर इधर-उधर घुमाने लगे। वीरक ने हाथ में एक तलवार धारण किया और जोर से चिल्लाकर कहा कि 'इस तलवार द्वारा कौन दो खण्ड में परिणत होगा? किसने निर्मम काल को अपने पास बुलाया है? कहो, तुमसब जब मौन रह जाते हो, तो मालूम होता है कि इस अस्त्रदण्ड से डरते हो। इस भयानक

आकृति एवं मुख वाले मेरे रहते इस पर्वत में ऐसा कौन-सा कार्य है, जो अस्त्र जानने वाले से सिद्ध न हो?'।।५६८-५७०।।

मा वृथा लोकपालानुगचित्तता, एवमेवैतदिप्यूचुरस्मै तदा देवताः।।५७१।।
देवदेवानुगं वीरकं लक्षणा प्राह देवी वनं पर्वता।
निर्झराण्यग्निदेव्यान्यथो भूतपा निर्झराम्भोनिपातेषु निमज्जत।।५७२।।
पुष्पजालावनद्धेषु धामस्वपि प्रोत्तुङ्गनानाद्रि-
कुञ्जेष्वनुगर्जन्तु हेमारुतास्फोटसङ्क्षेपणात्कामतः।।५७३।।

इस प्रकार जब वीरक कह रहे थे तो देवताओं ने यह कहकर कि व्यर्थ में लोकपालों की चित्तवृत्ति का अनुकरण नहीं करना चाहिये मना किया। तदनन्तर देवाधिदेव शंकर के अनुगामी वीरक से लक्षणा देवी बोलीं कि इस वन में तुम सभी भूतों के पालने वाले लोग झरनों के जल की धारा में प्रविष्ट हो जाओ, पुष्पों के समूहों से सुशोभित भवनों में शयन करो, इच्छानुकूल अति उच्च विविध पर्वतों के कुंजों में जाकर वायु के समान प्रबल शब्दों को करते हुये खूब शोर करो।।५७१-५७३।।

काञ्चनोत्तुङ्गशृङ्गावरोहक्षितौ हेमरेणूत्करासङ्गद्यतिं खेचराणां वनाधायिनि रम्ये बहुरूपसम्पत्प्रकरे।
गणान्वासितं मन्दरकन्दरे सुन्दरमन्दारपुष्पप्रवालाम्बुजे सिद्धनारीभिरापीतरूपामृतं विस्तृतैर्नेत्र-
पात्रैरनुन्मेषिभिर्वीरकं शैलपुत्री निमेषान्तरादस्मरत्पुत्रगृध्नी विनोदार्थिनी।।५७४।।

पुत्र की उत्कट इच्छा करने वाली पार्वती जी खिलवाड़ करने की इच्छा से सुवर्ण की धूलि समूह से धूसरित अंगों वाले प्रमथगणों के साथ विराजमान, सिद्ध नारियों द्वारा पिये जाते हुये रूपामृत को धारण करने वाले वीरभद्र का, सुवर्ण की अति विशाल एवं ऊँची चढ़ाई की भूमि पर, जहाँ आकाशगामी जीवों के सुन्दर वन विद्यमान थे, अति सुन्दर अनेक प्रकार की सौन्दर्यमयी समृद्धि बिखरी हुई थी, सुन्दर मन्दार के पुष्प एवं लाल कमल खिले हुये थे। ऐसी मन्दराचल की कन्दराओं में क्षण-क्षण पर स्मरण करती थीं।।५७४।।

सोऽपि तादृक्क्षणावाप्तपुण्योदयो योऽपि जन्मान्तरस्याऽऽत्मजत्वं गतः क्रीडतस्तस्य।
तृप्तिः कथंजायतेयोऽपिभाविजगद्वेधसातेजसःकल्पितःप्रतिक्षणंदिव्यगीतक्षणोनृत्यलोकोगणेशैःप्रणतः।।५७५।।

वे एकटक विस्फारित नेत्रों से वीरक को ताकती रहती थीं। पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से पार्वती के पुत्र रूप में प्राप्त हुआ वीरभद्र भी अपने भाग्य को सफल मानता था और क्रीडा में निमग्न रहता हुआ तृप्ति को नहीं प्राप्त होता था। जगत् के निर्माता ब्रह्मा द्वारा वह विशेष तैजस् अंश से कल्पित किया गया था। प्रतिक्षण वह दिव्य गीतों को सुनता था। गणेशगण उसकी वन्दना में निरत रहते थे।।५७५।।

क्षणं सिंहनादाकुले गण्डशैले सृजद्रत्नजाले बृहत्सालताले
क्षणं फुल्लनानातमालालिकाले क्षणं वृक्षमूले विलोलो मराले।।५७६।।

क्षणे स्वल्पपङ्के जले पङ्कजाढ्ये क्षणं मातुरङ्के शुभे निष्कलङ्के।
परिक्रीडते बाललीलाविहारी गणेशाधिपो देवतानन्दकारी।।
निकुञ्जेषु विद्याधरैर्गीतशीलःपिनाकीव लीलाविलासैःसलीलः।।५७७।।

वह स्वयं अति चंचलतापूर्वक विविध प्रकार के नृत्यों को किया करता था। वह कभी तो सिंहों के भयानक नाद से आकुल पर्वतों के शिखरों पर, कभी रत्नों के समूह जिसमें बिखरे पड़े थे ऐसी खान में, कभी बड़े-बड़े साल एवं ताल के वृक्षों से घने जङ्गल में, कभी फूले हुए तमालों की शाखाओं पर, कभी दूसरे क्षण वृक्षों की जड़ों में, कभी अति चंचलतावश होकर किसी मराल पर, कभी कीचड़ वाले जल में, कभी क्षण भर में कमलों से अति शोभित गहरे जल में और फिर दूसरे क्षण अपनी माता की निष्कलंक गोदी में बाल-लीला करते हुए विराजमान दिखाई पड़ता था। इस प्रकार देवताओं को आनन्द देने वाला बालकों की लीला से विहार करने वाला गणेशों का स्वामी वह वीरक, निकुंजों में विद्याधरों के साथ गान करता हुआ लीलापूर्वक शिव की भाँति विराजमान हो रहा था।।५७६-५७७।।

प्रकाश्य भुवनाभोगी ततो दिनकरे गते। देशान्तरं तदा पश्चाद्दूरमस्तावनीधरम्।।५७८।।
उदयास्ते पुरोभावी यो हि चाऽऽस्तेऽवनीधरः।
मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये परिचिन्त्यताम्।।५७९।।
नित्यमाराधितः श्रीमान्पृथुमूलः समुन्नतः। नाकरोत्सेवितुं मेरुरुपहारं पतिष्यतः।।५८०।।

ठीक इसी समय संसार को प्रकाशित करने वाले भास्कर ने सभी भुवनों को प्रकाशित कर पश्चिम दिशा में अस्ताचल को प्रस्थान किया। उदय और अस्त-ये दोनों पर्वत पूर्वकाल की निश्चित योजना पर स्थिर हैं, जो पर्वत अवसान के समय सूर्य द्वारा अधिष्ठित होता है, उसी के साथ उसकी मित्रता, सुदृढ़ है, ऐसा विचार हृदय में करके नित्य सूर्य द्वारा आराधित, शोभाशाली, मूल भाग में स्थूल एवं समुन्नत मेरु ने गिरते हुए (अस्त होते) सूर्य को कोई सेवा व कोई उपहार नहीं अर्पित किया।।५७८-५८०।।

जलेऽप्येषा व्यवस्थेति संशयेताखिलं बुधः। दिनान्तानुगतो भानुः स्वजनत्वमपूरयत्।।५८१।।
संध्याबद्धाञ्जलिपुटा मुनयोऽभिमुखा रविम्।
याचन्त्यागमनं शीघ्रं निवार्याऽऽत्मनि भाविताम्।।५८२।।

जल में भी ऐसी ही व्यवस्था है, ऐसा विचार कर सभी विषयों पर बुद्धिमान् संशय करेंगे....? दिन के अवसान पर जाते हुये सूर्य ने अपनेपन की पूर्ति की। संध्या करते समय अंजलि बाँधकर सूर्य के सम्मुख उपस्थित हुये मुनिगण आत्मा में अवस्थित दुःखमय भावों का संवरण कर शीघ्र ही सूर्य के आगमन की प्रार्थना करने लगे।।५८१-५८२।।

व्यजृम्भत तथा लोके क्रमाद्वैभावरं तमः। कुटिलस्येव हृदये कालुष्यं दूषयन्मनः।।५८३।।
ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके। शयनं शशिसङ्घातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम्।।५८४।।

नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम्। रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम्।।५८५।।
कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम्। मन्दिरे मन्दसञ्चारः शनैर्गिरिसुतायुतः।।५८६।।
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः। शशिमौलिसितज्योत्स्ना शुचिपूरितगोचरः।।५८७।।

गिरिजाऽप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः।
विभावर्या च सम्पृक्ता बभूवातितमोमयी।।
तमुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम्।।५८८।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५४।।

आदितःश्लोकानां स्मष्ट्यङ्काः।।८३९१।।

इस प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर धीरे-धीरे समस्त लोक में रात्रि का अन्धकार दुष्ट के हृदय में मन को दूषित करने वाले पापों की भाँति घना होने लगा। तदनन्तर अति प्रभापूर्ण सर्पों की फणिमणियों के दीपकों से उद्भाषित दीवालों वाले सुन्दर भवन में, चन्द्रमा के समूहों के समान शुभ्र एवं स्वच्छ उत्तरीय वस्त्र से सुशोभित, अनेक प्रकार के रत्नों की शोभा से इन्द्र धनुष के समान शोभायमान, रत्न की किंकिणियों के समूहों से विभूषित लटकती हुई मोतियों की मालाओं से अलंकृत, पर सुन्दर और चंचल वितानों से आच्छादित शैय्या पर, मन्द-मन्द गमन करते हुये गिरिजा के साथ शिव जी पुनः विराजमान हुए। उस समय पार्वती की भुजलता से उनका कन्धा मिला हुआ था। चन्द्रभूषण शंकर की श्वेत कान्ति थी और वे पवित्रता से पूर्ण दिखाई पड़ रहे थे। गिरिपुत्री पार्वती भी, नीले कमल के समान श्यामल कान्तियुक्त थीं, उनके नेत्र प्रान्त विशेष श्यामल थे। कृष्ण वर्णा रात्रि के संयोग से उत्पन्न पार्वती अंधकार मय रूप में विराजमान थीं। देवाधिदेव शिव परिहासपूर्वक क्रीडा एवं केलि से युक्त होकर बोले।।५८३-५८८।।

।।एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त।।१५४।।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शिव और पार्वती में प्रेम-कलह, पुनः तपस्यार्थ पार्वती का प्रस्थान और वीरक की रखवाली

शर्व उवाच

शरीरे मम तन्वङ्गि सिते भास्यसितद्युतिः। भुजङ्गीवासिता शुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ।।१।।

चन्द्रातपेन सम्पृक्ता रुचिराम्बरया तथा। रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे॥२॥
इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना। उवाच कोपरक्ताक्षी भुकुटीकुटिलानना॥३॥

शिव ने कहा-'सुकुमार अङ्गों वाली! हमारे श्वेत वर्ण के शरीर में तुम्हारी कृष्ण वर्ण की शोभा इस प्रकार शोभित हो रही है, जैसे चन्दन के वृक्ष में काली नागिन। चन्द्रमा की शुभ्र कौमुदी से युक्त सुन्दर आकाश में कृष्णपक्ष की रात्रि के समान तुम मेरी आँखों को दूषित कर रही हो।' ऐसा कहकर परिहास ही परिहास में शंकर ने गिरिजा के कंठ को छोड़ दिया। तब भौं को टेढ़ीकर क्रोधपूर्ण नेत्र एवं मुख वाली पार्वती ने कहा॥१-३॥

देव्युवाच

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते। अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनां जनमण्डले॥४॥
तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम्। तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदे पदे॥५॥

पार्वती ने कहा-अपने द्वारा की गई मूर्खता से सभी को अपमान सहन करना पड़ता है, स्वार्थ की अभिलाषा करने वाला प्राणी जन समाज में जाकर अवश्य ही अपमान को प्राप्त करता है। बहुत दिनों तक की गई तपस्या द्वारा मैने जिस मनोरथ की प्रार्थना थी, उसी के परिणामस्वरूप यह मेरा अपमान पद-पद पर हो रहा है॥४-५॥

नैवास्मि कुटिला शर्व विषमा नैव धूर्जटे। सविषयस्त्वं गतः ख्यातिं व्यक्तदोषाकराश्रयः॥६॥
नाहं पूष्णोऽपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि।
आदित्यश्च विजानाति भगवान्द्वादशात्मकः॥७॥
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन्। यस्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः॥८॥

हे शर्व! मैं कुटिल नहीं हूँ। हे धूर्जटे! मैं विषम भी नहीं हूँ। तुम विषयुक्त (विषयी) के नाम से ख्याति प्राप्त कर चुके हों, स्पष्ट है कि तुम दोषों के आकर (दोषाकर, चन्द्रमा) के भी आश्रय हो। मैं पूषा का दाँत नहीं हूँ। भग का नेत्र नहीं हूँ। बारह अंशों में विभक्त भगवान् आदित्य मुझे भलीभाँति जानते हैं। अपने दोषों द्वारा मुझे अपमानित करते हुए तुम सिर में पीड़ा पैदा कर रहे हो। तुम मुझे कृष्णा (काली) नाम से सम्बोधित कर रहे हो, सो तुम भी तो 'महाकाल' नाम से विख्यात हो॥६-८॥

यास्याम्यहं परित्यक्त्वा चाऽऽत्मानं तपसा गिरिम्।
जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परिभूतया॥९॥
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः।
उवाचाऽऽविष्टसम्भ्रान्तिप्रणयोन्मिश्रया गिरा॥१०॥

मैं अपने इस जीवन को समाप्त करने के लिए तपस्यार्थ पर्वत पर जा रही हूँ, तुम जैसे धूर्त से अपमानित होकर अब मुझे इस जीवन के रखने से कोई प्रयोजन नहीं है। पार्वती की अतिशय कोपयुक्त इन तीखी बातों को सुनकर शिव अति आवेश सम्भ्रम तथा प्रणय मिश्रित वाणी में बोले॥९-१०॥

शर्व उवाच

अनात्मज्ञासि गिरिजे नाहं निन्दापरस्तव।
त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम्॥११॥

महादेव ने कहा-'शैलपुत्रि! तुम यथार्थ बात को नहीं समझ रही हो। मैंने तुम्हारी कोई निन्दा नहीं की है। तुम्हारे ऊपर भक्तिपूर्ण बुद्धि रखकर मैंने तुम्हारे नाम पड़ने का कारण बतलाया है।।११।।

विकल्पः स्वस्थचित्तेऽपि गिरिजे नैव कल्पना।
यद्येवं कुपिता भीरु त्वं तवाहं न वै पुनः॥१२॥
नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते।
शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाऽञ्जलिः॥१३॥

हे गिरिजे! मेरा चित्त स्वच्छ है, पर उसमें भी तुम ऐसे विकल्प की कल्पना कर रही हो, यही ठीक नहीं। तुम्हारा अपमान समझकर ऐसी बात मैंने नहीं कही थी। हे भीरु! यदि तुम इतनी अप्रसन्न हो गयी हो, तो अब मैं पुनः कभी तुम्हारे साथ परिहास नहीं करूँगा। हे सुन्दर हँसने वाली! क्रोध को तुम छोड़ दो। देखो, मैंने तुम्हें हाथ जोड़ा है, और सिर से नम्र हुआ हूँ।।१२-१३।।

स्नेहेनाप्यवमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम्।
तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल॥१४॥
अनेकैश्चाटुर्भिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता। कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता॥१५॥
अवष्टब्धमथाऽऽस्फाल्य वासः शङ्करपाणिना।
विपर्यस्तालका वेगाद्यातुमैच्छत शैलजा॥१६॥

जो स्नेहयुक्त अपमान द्वारा एवं व्याजनिन्दा किए जाने से ही अप्रसन्न हो जाता है, उस व्यक्ति के साथ कभी परिहास की बातें नहीं करनी चाहिये।' इस प्रकार अनेक चाटुकारी भरी बातों द्वारा पार्वती शिव से समझायी जाने पर भी अपने क्रोध को नहीं छोड़ सकीं, क्योंकि उस व्यंग से उनका मर्मस्थल विद्ध हो गया था। शंकर के हाथ से अपने वस्त्र की छोर को छुड़ा कर बालों को बिखेरे हुए शैलपुत्री वहाँ से वेगपूर्वक जाने की चेष्टा करने लगीं।।१४-१६।।

तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः। सत्यं सर्वैरवयवैः सुताऽसि सदृशी पितुः॥१७॥
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः। तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाऽऽशयः॥१८॥
काठियन्याङ्कस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता।
कुटिलत्वं च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि॥
सङ्क्रान्ति सर्वदैवेति तन्वङ्गि हिमशैलराट्॥१९॥

इस प्रकार अति क्रोधावेश में जाती हुई सती से पुरान्तक भगवान् शिव ने कहा-'सच बात है

कि तुम सभी अवयवों में अपने पिता हिमाचल के समान ही हो। हिमाचल के उन आकाशचुम्बी, दुरधिगम्य शिखरों के, जिनपर कोई नहीं जा सकता तथा जो मेघों की मालाओं से घिरा रहता है तथा गुफाओं के समान तुम्हारा हृदय भी कठिन एवं दुर्गम है। वहाँ के वनों के समान ही तुम्हारे अङ्गों में कठोरता है। पहाड़ी मार्गों से भी अधिक कुटिलता तुम्हारी चाल में है, तुम बरफ से भी अधिक कठिनाई से सेवन करने योग्य हो। सुन्दरि! तुम सर्वदा पर्वतराज हिमवान् के गुणों के संयोग से बनी हुई हो।।१७-१९।।

इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा। कोपकम्पितमूर्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा।।२०।।

शिव के ऐसा कहने पर शैलपुत्री महादेव से पुनः बोलीं। उस समय उनका सिर अति क्रोध से काँप रहा था, दाँतों के ऊपरवर्ती होठों के दल फड़क रहे थे।।२०।।

उमोवाच

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान्।
तवापि दुष्टसम्पर्कात्सङ्क्रान्तं सर्वमेव हि।।२१।।

पार्वती ने कहा-दोष देकर अन्य गुणी व्यक्तियों को बेकार क्यों दूषित कर रहे हो? दुष्टों के सम्पर्क से तुम्हारा ही सबकुछ विकृत हो गया है।।२१।।

व्यालेभ्योऽनैकजिह्वत्वं भस्मना स्नेहबन्धनम्।
हृत्कालुष्यं शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्वं वृषादपि।।२२।।

सर्पों के संयोग से तुम अधिक जीभों वाले हो गये हो, भस्म लगाते-लगाते तुम्हारे हृदय में भी स्नेह (प्रेम तथा चिकनाहट) का सर्वथा अभाव हो गया है, शशांक (चन्द्रमा) के संयोग से तुम्हारे हृदय में कालिमा आ गयी है। बृषभ नन्दीश्वर के संयोग से तुममें दुर्बोधता आ गई है।।२२।।

तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते।
श्मशानवासान्निर्भीस्त्वं नग्नत्वान्न तव त्रपा।।
निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम्।।२३।।

तुम्हारी अधिक बुराइयों के कहने से क्या फल होगा, व्यर्थ की बातों में श्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम श्मशान में निवास करने वाले हो, अतः किसी का भय तुम्हें नहीं है। सर्वदा नंगे रहते हो, अतः तुम्हें लज्जा क्यों कर लगेगी? कपालों के धारण करते-करते तुम निर्मम हो गये हो, दया तो चिरकाल से तुमसे विदा ले चुकी है।।२३।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा।।२४।।
तस्यां व्रजन्त्यां देवेशगणैः किलकिलो ध्वनिः।
क्व मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धावितः पुनः।।२५।।

सूतजी कहते हैं-ऐसी कठोर बातें कहकर हिमवान् की पुत्री पार्वती उस भवन से चली गयीं। पार्वती के जाते ही देवेशगण किलकिला कर रोते हुए दौड़ने लगे और कहने लगे 'जननी! हम लोगों को इस प्रकार असहाय छोड़कर कर तुम कहाँ जा रही हो?।।२४-२५।।

विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम्।
प्रोवाच मातःकिंत्वेतत्क्व यासि कुपितान्तरा।।२६।।
अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम्।
नो चेत्पतिष्ये शिखरात्तपोनिष्ठे त्वयोज्झितः।।२७।।

वीरक ने आँसू से गद्गद कण्ठ हो पार्वती के चरणों पर गिरकर कहा-'मातः! यह क्या हो गया, क्रोध में भरी हुई तुम कहाँ चली जा रही हो? हे तपोनिष्ठे! इस प्रकार मैं स्नेह छोड़कर जाती हुई तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा, नहीं तो पर्वत के शिखर पर से कूद पड़ूंगा।'।।२६-२७।।

उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना। उवाच वीरकं माता शोकं पुत्रक मा कृथाः।।२८।।
शैलाग्रात्पतितुं नैव न चाऽऽगन्तुं मया सह।
युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु।।२९।।

पार्वती ने अपने दाहिने हाथ से वीरक के मुख को ऊपर करके कहा-'बेटा! शोक मत करो, तुम्हें पर्वत शिखर पर से नहीं गिरना चाहिये और न यही चाहिये कि तुम मेरे पीछे आओ। हे पुत्र! तुम्हें मैं इसका कारण बता रही हूँ सुनो।।।२८-२९।।

कृष्णेत्युक्त्वा हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता। साऽहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम्।।३०।।
एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम्। द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा।।३१।।
यथा न काचित्प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम्। दृष्ट्वा परां स्त्रियं चात्र वदेथा मम पुत्रक।।३२।।

अनिन्दनीय होते हुए भी शिव ने 'कृष्णा' (काली) ऐसा कहकर मेरी भर्त्सना की है; सो मैं अब जाकर तपस्या करूँगी, जिससे गौरीत्व (गौरवर्ण) की प्राप्ति कर सकूँ। यह शिव स्त्रियों के विषय में अति आसक्त हैं, मेरे चले जाने के बाद तुम इनके छिद्रों को देखते हुए नित्य घर के प्रवेश द्वारा मार्ग की रखवाली किया करना, जिससे कोई अन्य स्त्री इनके समीप में न पहुँच सके। पुत्र! यहाँ पर आई हुई पराई स्त्री को देखकर तुम मुझे सूचित करना।।३०-३२।।

शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम्। एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह सांप्रतम्।।३३।।
मातुराज्ञामृताह्लादप्लाविताङ्गो गतज्वरः। जगाम कक्षां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम्।।३४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे देव्यास्तपोनुगमनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५५।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८४२५।।

—✻—

मैं उसके बाद शीघ्र ही जो उचित समझूँगी करूँगी। पार्वती की ऐसी बातें सुनकर वीरक ने कहा 'अच्छी बात है, मैं ऐसा ही करूँगा।' इस प्रकार माता के आज्ञामय आह्लाददायी अमृत वचन से स्नान कराये गये अङ्गों वाले वीरभद्र का सन्ताप दूर हो गया और वे माता को प्रणाम कर अन्तःपुर में रखवाली करने के लिए चले आये।।३३-३४।।

।।एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त।।१५५।।

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आडि वध वर्णन

सूत उवाच

देवीं साऽपश्यदायान्तीं सखीं मातुर्विभूषिताम्।
कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम्।।१।।
साऽपि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा।
क्व पुत्रि गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता।।२।।
सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शङ्करात्कोपकारणम्।
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम्।।३।।

सूतजी कहते हैं-पार्वती ने जाते समय अपनी माता मेना की सखी एवं पिता हिमवान् की देवता रूपेण आराधित अलंकारों से विभूषित कुसुमामोदिनी नामक देवी को देखा। प्रेम से विह्वल चित्त हो कुसुमामोदिनी ने भी गिरि पुत्री पार्वती को देखकर आलिंगन किया और 'हे बेटी! कहाँ जा रही हो?' ऐसा उच्चस्वर से कहा। पार्वती ने भी शंकर से उत्पन्न हुए अपने क्रोध के समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया और पुनः माता के समान सम्मानित कुसुमामोदिनी से कहा।।१-३।।

उमोवाच

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते। सर्वतः सन्निधानं ते मम चातीव वत्सला।।४।।
अतस्त ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया। अन्यस्त्रीसंप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः।।५।।

पार्वती ने कहा-'अनिन्दते! तुम सर्वदा मेरे पिता शैलाधिराज की देवता मानी गयी हो, सभी कार्यों में तुम्हारा सम्पर्क मेरे साथ रहता है, तुम मेरे ऊपर अत्यन्त वात्सल्य भाव रखती हो। अतः मैं तुमसे एक ऐसा कार्य बतला रही हूँ, जो मेरे चले जाने के बाद तुम्हें अपने बुद्धि से करना होगा। वह यह है कि तुम अन्य स्त्री के प्रवेश की रखवाली प्रयत्नपूर्वक करती रहना।।४-५।।

रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ। पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयाऽनघे॥६॥

इस पर्वत में प्रयत्नपूर्वक रहस्यात्मक ढंग से स्थिर होकर व्यवस्थित चित्त से तुम देखा करना, और पिनाकधारी के समीप में अन्य स्त्री के प्रवेश करते समय तुम मुझसे बतलाना॥६॥

ततोऽहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम्।
इत्युक्त्वा सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम्॥७॥

निष्पापे! तदनन्तर मैं जो समुचित समझूँगी, करूँगी। इस प्रकार पार्वती की बातें सुनने के बाद कुसुमामोदिनी ने 'अच्छी बात है मैं ऐसा ही करूंगी' कहकर अपने मंगलदायी पर्वत की ओर प्रस्थान किया॥७॥

(उमाऽपि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम्। अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा॥८॥

पर्वतपुत्री उमा ने भी शीघ्र ही उद्यान की ओर प्रस्थान किया। उद्यान में प्रवेश करते समय पार्वती की शोभा इस प्रकार हो रही थी, जैसे मेघों की माला आकाश में प्रविष्ट होकर दिखाई पड़ रही हो॥८॥

ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी। ग्रीष्मे पञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासु च जलोषिता॥९॥
शैशिरासु च रात्रीषु शुष्कस्थण्डिलशायिनी।
एवं साधयती (न्ती) तत्र तपसा संव्यवस्थिता॥१०॥

वहाँ जाकर पार्वती ने आभूषणों को छोड़ वृक्षों के वल्कलों को धारण किया। वह ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तापती थी और वर्षा ऋतु में जल में निवास करती थीं। शिशिर ऋतु की रात्रि में सूखी धरती के चबूतरे पर शयन करती थीं। इस प्रकार की साधना में निरत रह वे तपस्या से व्यवस्थित चित्त वाली बन गई॥९-१०॥

ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे वशी। अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन्॥११॥
देवान्सर्वान्विजित्याऽऽजौ बकभ्राता रणोत्कटः।
आडिर्नामाऽन्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः॥१२॥

बकासुर के भाई अन्धक का पुत्र आडि नामक जितेन्द्रिय दैत्य अत्यन्त घमण्डी तथा युद्ध में अत्यन्त भयानक था। इस उपयुक्त अवसर पर पार्वती को तपस्या करते हुए जानकर अपने पिता की हत्या का स्मरण कर वह संग्राम में समस्त देवताओं को पराजित कर रात-दिन चन्द्रमौलि शंकर के छिद्रान्वेषण में ही तत्पर रहा करता था॥११-१२॥

आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः। स तत्राऽऽगत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम्॥१३॥
विचिन्त्याऽऽसीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना। हते तदाऽन्धके दैत्ये गिरिशेनामरद्विषि॥१४॥
आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम्। तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः॥१५॥
किमाडे दानव श्रेष्ठ तपसा प्राप्तुमिच्छसि। ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वहं वृणे॥१६॥

इस प्रकार देवताओं का शत्रु वह दैत्य त्रिपुरविध्वंसी शंकर के निवास स्थान पर आया और आकर उसने द्वार पर खड़े हुए रखवाली में तत्पर वीरक को देखा। वहाँ पहुँचने के बाद अपने वरदान के प्रभाव को, जिसे प्राचीन काल में पद्मयोनि ब्रह्मा से उसने प्राप्त किया था, भलीभाँति सोचकर बदला लेने का निश्चय किया। प्राचीनकाल में शंकर द्वारा देवशत्रु अन्धक नामक दैत्य की मृत्यु हो जाने के उपरान्त उस आडि ने घोर तपश्चर्या की थी। तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा उसके समीप आकर बोले थे, 'दानवराज आडि! तुम इस घोर तपस्या से किस वस्तु की अभिलाषा रखते हो'? दैत्य आडि ने ब्रह्मा से कहा था कि 'मैं मृत्यु से छुटकारा पाने का वरदान चाहता हूँ'॥१३-१६॥

ब्रह्मोवाच

न कश्चिच्च विना मृत्युं नरो दानव विद्यते।
यतस्ततोऽपि दैत्येन्द्र मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा॥१७॥
इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसम्भवम्। रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसम्भव॥१८॥
तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम्। इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसम्भवः॥१९॥
यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति। तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति॥२०॥

ब्रह्माजी कहते हैं-'दानव! इस जगत् में कोई भी शरीरधारी मृत्यु के बिना नहीं है। दैत्येन्द्र! शरीरधारी को तो किसी न किसी बहाने से मृत्यु को प्राप्त करना ही पड़ता है।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दैत्यसिंह आडि ने पद्मयोनि ब्रह्मा से कहा-'पद्मसम्भव! जब कभी मेरे स्वरूप का परिवर्तन हो, तभी मेरी मृत्यु हो अन्यथा मैं अमर ही रहूँ।' उसकी तपस्या से सन्तुष्ट ब्रह्मा ने कहा-'ठीक है, जब कभी तुम्हारे स्वरूप का परिवर्तन होगा, तभी तुम्हारी मृत्यु भी होगी, अन्यथा तुम अमर रहोगे।'॥१७-२०॥

इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः। तस्मिन्काले तु संस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः॥२१॥
परिहर्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा। भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशःपथम्॥२२॥

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दैत्यपुत्र ने अपने को अमर समझ लिया। उस अवसर पर उसने अपनी मृत्यु के उपर्युक्त उपाय का स्मरण कर वीरक के दृष्टिपथ को बचाने के लिये सर्प का स्वरूप धारण किया और एक बिल मार्ग से प्रविष्ट हो गणेश वीरक की दृष्टि को बचाकर अलक्षित रूप से पुरारि शंकर के समीप पहुँचा॥२१-२२॥

परिहृत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः। अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम्॥२३॥
भुजङ्गरूपं संत्यज्य बभूवाथ महासुरः। उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः॥२४॥
कृत्वा मायां ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम्। सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम्॥२५॥
कृत्वा मुखान्तरे दन्तान्दैत्यो वज्रोपमान्दृढसान्।
तीक्ष्णाग्रान्बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः॥२६॥

पहुँचने के उपरान्त अति बलशाली उस मूर्ख दानव ने भुजंग के रूप को परिवर्तित कर उमा

का स्वरूप धारण कर शिव को छलने की चेष्टा की। इस प्रकार माया पर किसी से भी न पहचानने योग्य मनोहर रूप को धारण कर पार्वती के सभी अवयव तथा प्रमुख शरीर चिह्नों से युक्त होकर मुख के भीतर वज्र के समान भीषण तीक्ष्ण एवं दृढ़ दाँतों को उसने बनाया और बुद्धि के अभाव से महादेव की हत्या करने को उद्यत हुआ।।२३-२६।।

कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम्। पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः।।२७।।

इस प्रकार वह दैत्य पार्वती के समान अंगों एवं चिह्नादि को बनाकर शिव के पास गया। उस समय वह पापिष्ठ दैत्य अति सुन्दर आकृति युक्त होकर चित्र-विचित्र आभूषणों एवं वस्त्रों से सुशोभित था।।२७।।

तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदाऽऽलिङ्ग्य महासुरम्। मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः।।२८।।
अपृच्छत्साधु ते भावो गिरिपुत्रि न कृत्रिमः। या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनी।।२९।।

उमा रूपधारी उस दैत्य को देखकर शंकर ने सन्तुष्ट होकर उसका आलिंगन कर उसके सभी अंग-प्रत्यंगों को देखकर उसे पार्वती ही माना और पूछा-'गिरिपुत्री! अब तुम्हारे भाव मेरे प्रति स्वाभाविक एवं सच्चे तो हैं न? बनावटी भाव बनाकर तो तू मेरे पास नहीं आयी है? श्रेष्ठ अंगों वाली सुन्दरी! मेरे हृदयगत भावों को जानकर ही तू यहाँ आयी होगी?।।२८-२९।।

त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्त्रयम्। प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविधं त्वयि।।३०।।

इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाऽभाषत्स्मयञ्छनैः)।
न चाबुध्यदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः।।३१।।

तुम्हारे बिना मुझे त्रिलोक सूना-सा मालूम पड़ रहा था, प्रसन्न मुख वाली! तुम यहाँ जो आ गई हो, वह तुम्हारी जैसी देवी के लिए उचित ही है।' महादेव की ऐसी बातें सुनकर दानवेन्द्र आडि मुस्कराते हुए धीरे-धीरे बोला। किन्तु उस समय त्रिपुरघाती शंकर के पहिचान वाले चिह्न को, जिसे उन्होंने पार्वती के शरीर में निश्चित किया था, वह नहीं जानता था।।३०-३१।।

देव्युवाच

याताऽस्म्यहं तपश्चर्तुं वाल्लभ्याय तवातुलम्।
रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम्।।३२।।

पार्वती (रूपधारी आडि) ने कहा-'तुम्हारी अतिशय वल्लभा होने के लिए मैं यहाँ से तपस्या करने के लिए गयी थी, किन्तु वहाँ जाने पर मेरा मन नहीं लगा; अतः तुम्हारे पास वापस लौट आयी।।३२।।

इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां काञ्चित्प्राप्यावधारयत्। हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः।।३३।।
कुपिता मयि तन्वङ्गी प्रकृत्या च दृढव्रता। अप्राप्तकामा सम्प्राप्ता किमेतत्संशयो मम।।३४।।

उसके ऐसा कहते ही शंकर के हृदय में कुछ शंका उत्पन्न हुई, जिसे उन्होंने हृदय में ही समाहित

कर लिया और विहँसते हुए बोले-'सुकुमार अंगों वाली! घोर तपस्या करने वाली! तू मुझसे अतिशय कुपित होकर तपस्या के लिए गयी थी, किन्तु बिना मनोरथ की प्राप्ति किये ही क्यों लौट आई? यह कैसी बात है? मुझे तुम पर सन्देह हो रहा है।'।।३३-३४।।

इति चिन्त्य हरस्तस्या अभिज्ञानं विधारयन्। नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्गे पद्मलक्षणम्।।३५।।
लोमावर्तं तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक्। अबुध्यद्दानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः।।३६।।
मेढ्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमसूदयत्। अबुध्यद्वीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम्।।३७।।

ऐसी बात कहकर शंकर ने पार्वती के तथोक्त विशेष चिह्न का स्मरण किया, जो रोमावली द्वारा पार्वती के बाएँ अंग में कमल के आकार की भाँति था; पर नहीं देखा। तब पिनाकधारी शंकर ने आकार को छिपाते हुए उस दानव की माया को जान लिया और लिंग में वज्रास्त्र को धारणकर उस दानव को मार डाला। इस प्रकार मारे गये उस दानवेन्द्र को वीरक नहीं जान सका।।३५-३७।।

हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम्। अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्ये न्यवेदयत्।।३८।।
दूतेन मारुतेनाऽऽशुगामिना नगदेवता। श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधसक्तविलोचना।।
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता।।३९।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे आडिवधो नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५६।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८४६४।।

शिव द्वारा मारे गये स्त्री रूपधारी दानवराज वीरक को मारा हुआ देख हिमालय की देवता (कुसुमामोदिनी) ने यथार्थ बात को न जानकर शीघ्र जाने वाले वायुदूत से पार्वती को यह संदेशा भिजवा दिया। वायु के मुख से उक्त बात सुन क्रोध से लाल नेत्रों वाली पार्वती ने हृदय में अति दुःख माना और पुत्र वीरक को शाप दे दिया।।३८-३९।।

।।एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।।१५६।।

❖❖❖

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वीरक को शाप दान

देव्युवाच

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविक्लवाम्। विहितावसरः स्त्रीणां शङ्करस्य रहोविधौ।।१।।
तस्मात्ते परुषा रूक्षो जडा हृदयवर्जिता। गणेश क्षारसदृशी शिला माता भविष्यति।।२।।

देवी ने कहा-गणों के स्वामी वीरक! स्नेह से विकल मुझ माता को छोड़कर जो तुमने शंकर के एकान्त में अन्य स्त्री के प्रवेश करने के अवसर को अपने सामने ही होने दिया है, उसी कारण से अति कठोर, रूखी, मूर्ख, हृदयहीन राख के समान स्नेहरहित शिला तेरी माता होगी।।१-२।।

निमित्तमेतद्विख्यातं वीरकस्य शिलोदये। सोऽभवत्प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः।।३।।
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम्। निर्जगाम मुखात्क्रोधः सिंहरूपी महाबलः।।४।।

सूतजी कहते हैं कि शिला से वीरक की उत्पत्ति होने रूप कार्य में यही शाप ही कारणरूप है, यही शाप धीरे-धीरे विचित्र कथाओं से सम्बन्ध रखने वाला हो जाता है। इस प्रकार गिरि पुत्री पार्वती जी जब शाप दे चुकीं, तब उनके मुख से सिंह रूप धारणकर मूर्तमान महाबलवान् क्रोध प्रादुर्भूत हुआ।।३-४।।

स तु सिंह करालास्यो जटाजटिलकन्धरः प्रोद्धूतलम्बलाङ्गूलौ दंष्ट्रोत्कटमुखातटः।।५।।
व्यादितास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिश्चिखादिषुः।
तस्याऽऽशु वर्तितुं देवी व्यवस्यत सती तदा।।६।।
ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः। आजगामाऽऽश्रमपदं सम्पदामाश्रयं तदा।।
आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा।।७।।

वह सिंह विकराल मुख, घनी केसर, लपलपाती हुई लम्बी पूँछ, तीखें दाँतों एवं विकराल दाढ़ों से युक्त था और मुख बाए हुए जीभ लपलपा रहा था। उसका (पेट) बिल्कुल चिपटा हुआ था, किसी को निगल जाने की टोह में था। जब शीघ्र ही पार्वती देवी ने उस सिंह पर अधिरूढ़ होने की चेष्टा की, तब चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा पार्वती की मनोगत इच्छाओं को जानकर सम्पत्तियों के आधार रूप उनके आश्रम में आये और आकर गिरिपुत्री से स्पष्ट वाणी में बोले।।५-७।।

ब्रह्मोवाच

किं पुत्रि प्राप्तुकामाऽसि किमलभ्यं ददामि ते।
विरम्यतामतिक्लेशात्तपसोऽस्मान्मदाज्ञया ।।८।।
तच्छ्रुत्वोवाच गिरिजा गुरोर्गौरवगर्भितम्। वाक्यं वाचा चिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम्।।९।।

ब्रह्माजी कहते हैं-बेटी! तुम क्या चाहती हो? किस अलभ्य पदार्थ को मैं तुझे दूँ, मेरी आज्ञा से तुम अब इस अति क्लेशदायी तपस्या से विरत हो जाओ। जगद्गुरु ब्रह्मा की गौरवपूर्ण वाणी सुनकर गिरिजा ने चिरकाल से सुविचारित एवं निश्चित अक्षरों में अपने मनोरथ को व्यक्त करते हुए कहा।।८-९।।

देव्युवाच

तपसा दुष्करेणाऽऽप्तः पतित्वे शङ्करो मया।
स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान्भवः।।१०।।

स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता। भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निविशेऽङ्गवत्॥११॥

पार्वती ने कहा-'अति कठिन तपस्या करके मैंने पतिरूप में शिव को प्राप्त किया था, किन्तु उन्होंने मुझे 'श्यामलवर्ण वाली' कहकर घोर अपमान किया है, सो मैं सुवर्ण के समान गौरवर्ण की होकर उनकी अतिप्रिया हो जाऊँ, और भूतनाथ के अंगों में एक ओर से उन्हीं के अंग के समान होकर प्रविष्ट हो जाऊँ, यही चाहती हूँ।'।।१०-११।।

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः। एवं भव त्वं भूयश्च भर्तृदेहार्धधारिणी॥१२॥

पार्वती की ऐसी बातें सुनकर पद्मासन ब्रह्माजी कहते हैं-'तुम ऐसी ही होकर अपने पति के आधे शरीर को धारण करने वाली हो जाओ।'।।१२।।

ततस्तत्याज भृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम्॥१३॥
त्वचा सा चाभवद्दीप्ता घण्टाहस्ता त्रिलोचना।
नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयधारिणी॥१४॥

ऐसा कहने पर पार्वती ने खिले हुए नीले कमल के रंग वाले अपने चमड़े को छोड़ सुवर्ण के समान गौरवर्ण धारण किया, जिससे उनका चमड़ा अत्यन्त प्रकाशमय हो गया। हाथ में घण्टा, तीन नेत्रों से युक्त अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित अंगों वाली, पीले रेशमी वस्त्र को धारण करने वाली हो गयी।।१३-१४।।

तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम्।
निशे भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं ममाऽऽज्ञया॥१५॥
सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकाऽनंशा पुरा ह्यसि।
य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने॥१६॥
स तेऽस्तु वाहनं देवि केतौ चास्तु महाबलः।
गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि॥१७॥

नीले कमल के समान कान्तिधारिणी उस देवी से ब्रह्मा ने कहा, 'निशे! तू मेरी आज्ञा से पर्वतपुत्री उमा के शरीर के सम्पर्क के कारण कृतकृत्य हो गई, इसके पहले तुम एकानंशा नाम से विख्यात हो चुकी हो। हे सुन्दर मुख वाली! देवी के क्रोध से उत्पन्न हुआ जो यह सिंह दिखाई पड़ रहा है। अब यह तुम्हारा वाहन होगा और तुम्हारी ध्वजा पर भी इसका निवास रहेगा, तुम विन्ध्याचल जाओ और वहाँ जाकर देवताओं का कार्य करो।।१५-१७।।

पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः। दत्तस्ते किंकरोदेवि मया मायाशतैर्युतः॥१८॥

एक लक्ष यक्ष जिसके पीछे चलते हैं, ऐसा यह पंचाल नामक यक्ष मैं तुम्हें सेवक रूप में दे रहा हूँ, यह सैकड़ों माया जानता है।'।।१८।।

इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह। उमाऽपि प्राप्तसङ्कल्पा जगाम गिरिशान्तिकम्॥१९॥

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर कौशिकी देवी ने विन्ध्याचल को प्रस्थान किया। अपने संकल्प को प्राप्तकर पार्वती ने भी शिव के समीप नमन किया।।१९।।

प्रविशन्तीं तु तां द्वारादपकृष्य समाहितः। रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः।।२०।।

घर में प्रवेश करती हुई पार्वती को द्वार देश से खींचकर सावधान चित्त वाले वीरक ने, जो सुवर्ण निर्मित वेत की लता को हाथ में धारण किये था, प्रवेश करने से रोक लिया।।२०।।

तामुवाच स कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम्।
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसे।।२१।।

स्वरूप से दूसरी स्त्री की भाँति दिखाई पड़ने वाली पार्वती को रोककर वीरक ने क्रोध से कहा-'तुम्हारा यहाँ आने का कोई प्रयोजन नहीं है, भाग जाओ, जबतक कि मैं तुझे पीट नहीं देता।।२१।।

देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह। प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः।।२२।।
घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकण्ठेन कोपिना। द्वारेषु नावधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः।।२३।।

इस स्थान पर देवी पार्वती का स्वरूप धारणकर एक दैत्य शिव को छलने की इच्छा से प्रविष्ट हो गया था, जाते समय मैंने उसे नहीं देखा था, देवाधिदेव ने उसे मार डाला।।२२।।

भविष्यसि न मद्द्वाःस्थो वर्षपूगान्यनेकशः।
अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम्।।२४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे वीरकशापो नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५७।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८४८८।।

और मारने के बाद अति क्रुद्ध होकर नीलकण्ठ ने मुझे आज्ञा दी है कि अब से द्वार पर तुम असावधानी मत करना। तभी से मैं खूब ध्यान से रखवाली कर रहा हूँ। अनेक वर्षों तक तू मेरे द्वार पर नहीं आ सकती। यही कारण है कि मैं तुझे प्रविष्ट न होने दूंगा, शीघ्र ही यहाँ से चली जा।।२३-२४।।

।।एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।।१५७।।

❖❖❖

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वीरक द्वारा पार्वती की स्तुति, पार्वती और शङ्कर का पुनः समागम, उतावले सुरों द्वारा शिव आश्रम की यात्रा, अग्नि को शापदान, कृतिकाओं की प्रतिज्ञा

वीरक उवाच (?)

एवमुक्त्वा गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला (?)।
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने॥१॥

वीरक ने कहा–कमललोचने! मेरी स्नेहवत्सला माता पार्वती ने भी मुझे इसी प्रकार की आज्ञा दी है। अतः शिव के पास कोई अन्य स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती॥१॥

इत्युक्ता तु तदा देवी चिन्तयामास चेतसा। न सा नारीति दैत्योऽसौ वायुर्मे यामभाषत॥२॥

वीरक के ऐसा कहने पर पार्वती सोचने लगीं कि वायु ने जिस स्त्री के प्रवेश की चर्चा मुझसे की थी, वह स्त्री नहीं प्रत्युत कोई दैत्य था॥२॥

वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया। अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः॥३॥

क्रोध से अभिभूत होकर मैंने व्यर्थ में ही वीरक को शाप दे दिया, प्रायः क्रोध से प्रेरित होकर मूर्ख लोग अकार्य को भी कर बैठते हैं॥३॥

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्।
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम्॥
विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः॥४॥

क्रोध से यश का नाश होता है, क्रोध स्थिर लक्ष्मी का नाश करने वाला है। शोक है कि यथार्थ बात को न विचार कर मैंने अपने पुत्र को ही शाप दे दिया, जिन लोगों की बुद्धि विपरीत अर्थ को ग्रहण करती है, उनको आपत्तियाँ सर्वदा सुलभ रहती हैं॥४॥

सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा। लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा॥५॥

पर्वत पुत्री उमा ने इस प्रकार की चिन्तना कर कमल के समान कान्तिमान् मुख से लज्जा का भाव व्यक्त करती हुई वीरक से कहा॥५॥

देव्युवाच

अहं वीरक ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः। शङ्करस्यास्मि दयिता सुता तुहिनभूभृतः॥६॥

पार्वती ने कहा–वीरक! मैं तुम्हारी माता हूँ, तुम अपने मन में मेरे प्रति सन्देह मत करो, मैं ही शंकर की प्रियतमा तथा हिमवान् की पुत्री हूँ॥६॥

मम गात्रच्छविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र भावय। तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना॥७॥

पुत्र! मेरे शरीर की अभिनव शोभा से तुम सन्देह मत करो, यह गौर कान्ति मुझे पद्मसम्भव भगवान् ब्रह्मा ने सन्तुष्ट होकर दी है॥७॥

मया शप्तोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते। ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करे रहसि स्थिते॥८॥

दैत्य के न जाने हुए वृत्तान्त को, मैंने शंकर के एकान्त में स्थिर होने के अवसर पर समझा कि कोई स्त्री तुम्हारी असावधानी से उनके पास प्रविष्ट हो गई है। अतः मैंने तुम्हें शाप दे दिया है॥८॥

न निवर्तयितुं शक्यः शापः किं तु ब्रवीमि ते।
शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात्स त्वं कामसमन्वितः॥९॥

यद्यपि यह शाप अब टाला नहीं जा सकता, किन्तु यह तुमसे बतला रही हूँ कि तुम शीघ्र ही मनुष्य योनि प्राप्त कर मनोरथ युक्त हो पुनः मुझे प्राप्त करोगे॥९॥

सूत उवाच

शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः। उवाचोदितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम्॥१०॥

सूतजी कहते हैं-पार्वती के ऐसा कहने पर वीरक ने सिर नवाकर हृष्टमना हो माता को प्रणाम किया और उदित हुए पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभा वाली हिमवान् की पुत्री पार्वती से कहा॥१०॥

वीरक उवाच

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते।
नगसुते शरणागतवत्सले तव नतोऽस्मि नतार्तिविनाशिनी॥११॥

वीरक ने कहा-विनम्र देवताओं तथा राक्षसों के मुकुट मणियों के समूहों की कान्ति से सुशोभित कराल नखों वाली! पर्वतपुत्रि! शरणागतवत्सले! नम्र भक्तजनों की आपत्ति को दूर करने वाली मैं तुम्हारी शरण में हूँ॥११॥

तपनमण्डलमण्डितकन्धरे पृथुसुवर्णनगद्युते।
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते गिरिसुते भवतीमहमाश्रये॥१२॥

हे सूर्य के मण्डल के समान विभासमान कन्धे वाली, प्रचुर सुवर्ण के पर्वत के समान कान्तिमती! तरकस के विषयुक्त भुजंगों से विभूषित गिरिजे! मैं आपही के आश्रय पर अवलम्बित हूँ॥१२॥

जगति कः प्रणताभिमतं ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा।
जगति कां च न वाञ्छति शङ्करो भुवनधृत्तनये भवतीं यथा॥१३॥

हे सिद्धों द्वारा प्रणाम की जाने वाली! तुम्हारी भाँति कौन ऐसा अन्य देवता है, जो झट से प्रणाम

करने वाले के मनोरथ को पूर्ण कर देता है। हे भूधरनन्दिनी! तुम्हारे बिना कौन ऐसी सुन्दरी इस जगत् में है, जिसे शंकर हृदय से चाहते हैं॥१३॥

विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले।
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता॥१४॥

अपने विमल योगबल से भगवान् शंकर के अनुरूप अपने शरीर की दुर्लभ कान्ति प्राप्त कर तुम उनके मण्डल स्वरूप हो। तुम अन्धकासुर के परिवार वर्ग को विनष्ट करने वाली हो। श्रेष्ठ देवताओं द्वारा तुम्हारी सर्वप्रथम स्तुति की गई है॥१४॥

सितसटानपटलोद्धतकन्धराभरमहामृगराजरथस्थिता।
विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा॥१५॥

हे जननि! तुम श्वेत वर्ण के केसरों के भार से लदे हुए कन्धों वाले बहुत बड़े मृगराज पर सवार होने वाली हो। चमचमाती हुई शक्ति की धारा से निकलने वाली अग्नि की लपटों से पिंगलवर्ण की विस्तृत बाहुओं से बड़े-बड़े असुरों को पीस देने वाली हो॥१५॥

निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि शुम्भनिशुम्भनिषूदनी।
प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि॥१६॥
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि च यद्वपुः।
तदजितेऽप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनी ते भवल्लभे॥१७॥

शुम्भ तथा निशुम्भ को मारने वाली हो। सारा संसार तुम्हें चण्डिका नाम से पुकारता है। सेवा में आकर विनम्र जनों के लिये चिन्ताकारक श्रेष्ठ दानवों का वेगपूर्वक मर्दन करने में उत्साह रखने वाली हो। अपने तेज से पृथ्वी में, आकाश में, वायुमार्ग में, अग्नि की भीषण ज्वालाओं में तथा पृथ्वी तल में, जो तुम्हारा शरीर भासमान है, हे किसी से न जीती जाने वाली अनुपमे! भववल्लभे! भुवन को पवित्र करने वाली! तुम्हारे उस स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ॥१६-१७॥

जलधयो ललितोद्धतवीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम्।
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयङ्कराः॥१८॥

मनोहर छोटी-छोटी तथा बड़ी-बड़ी उद्धत लहरों से व्याप्त समुद्र, चराचर जगत् में व्याप्त होने वाली अग्नि की भयानक लपटें, सहस्रों फणों को धारण करने वाली अति भयानक भुजंगगण-ये सभी तुम्हारा नाम लेने से मेरे लिये कुछ भी भयंकर नहीं दिखाई पड़ते॥१८॥

भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम्।
करणजातमिहास्तु ममाचलं नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः॥१९॥
प्रशममेहि ममाऽऽत्मजवत्सले तव नमोऽस्तु जगत्त्रयसंश्रये।
त्वयि ममास्तु मतिःसततं शिवे शरणगोऽस्मि नतोऽस्मि नमोऽस्तुते॥२०॥

हे स्थिर भक्तजनों की आश्रय भगवति! मैं तुम्हारे चरणों की शरण में हूँ, तुम्हें प्रणाम करने के थोड़े से पुण्य कार्य के फल स्वरूप मेरी भक्ति अविचलरूप में तुम्हारे चरणों में हो। हे अपने पुत्रों पर वात्सल्य भाव रखने वाली, तीनों लोकों की आधारभूते! जननि! मेरे ऊपर शान्त हो, तुम्हें मेरा प्रणाम स्वीकार हो। शिवे! तेरे चरणों में मेरी बुद्धि सर्वदा लगी रहे। मैं तुम्हारी शरण में हूँ, और तुम्हें पुनः प्रणाम करता हूँ।।१९-२०।।

सूत उवाच

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता। प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा।।२१।।

सूतजी कहते हैं-वीरक के इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरान्त गिरिपुत्री पार्वती प्रसन्नचित्त हो अपने पति शंकर के भवन में प्रविष्ट हुई।।२१।।

(अथ रुद्रो महागौरीं दृष्ट्वा तु सुन्दरीम्। चित्तव्यामोहनाकारां करीन्द्रोन्मत्तगामिनीम्।।
पूर्णचन्द्राननां तन्वीं नितम्बोरुघनस्तनीम्। मध्ये क्षामां तथाऽक्षीणलावण्यामृतवर्षिणीम्।।२२।।
सर्वाभरापूर्वाङ्गीं मदो मन्देन कारिणीम् (?)।
सकामः शङ्कितो दीनो रौद्रो वीरो भयानकः।।२३।।

(तब रुद्र ने महागौरवर्ण मतवाले हाथी के समान गमन करने वाली चित्त को विमुग्ध करने वाली, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली, पतले अंगों वाली, घने जंघों से सुशोभित मध्य भाग में पतली, पूर्ण सौन्दर्य से अमृत रस की वृष्टि करने वाली सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित, मन्द गमन करती हुई सुन्दरी गौरी पार्वती को देखकर कामाविष्ट हो गये, सशंकित हो गये, दीन हो गये, रौद्र हुए, वीर एवं भयानक भी बने।।२२-२३।।

करुणाहास्यबीभत्सकिञ्चित्किंचिद्धरोऽभवत्(?)।
जिघांसुर्देववाक्येन भैरवं कृतवान्वपुः।।२४।।

तत्पश्चात् उनके चित्त में करुण, हास्य एवं वीभत्स भावना का भी संचार हुआ। उन्होंने देवताओं की बात का स्मरण कर दैत्य के संहार करने की इच्छा से अपने शरीर को भयानक बनाया।।२४।।

सा चापि भैरवी जाता देवस्य प्रतिरूपिणी। तस्या रूपसहस्त्राणि ददर्श गिरिगोचरः।।२५।।

महादेव की प्रतिरूपिणी पार्वती ने भी अपने स्वरूप को परिवर्तित कर भैरवी (अति भयानक) का स्वरूप धारण किया। शिव ने पार्वती के उस भयानक सहस्त्र रूप का दर्शन किया।।२५।।

ग्रस्ते सहस्त्ररूपाणां तारारूपे प्रदर्शिते। पार्वत्या चाथ निःशङ्क शङ्करो वाऽभवत्ततः।।२६।।
दृष्ट्वा जगन्मयीं तां तु रराम सुरतप्रियः।
विरहोत्कण्ठितां भार्या प्राप्य भूयो हिमात्मजाम्।।२७।।

यावद्वर्षसहस्रान्तमुभयो रहसिस्थयोः। नानाकरणबद्धोत्था क्रीडाऽऽसीत्सन्तता तयोः)॥२८॥

तदनन्तर सहस्र रूपों के समाप्त हो जाने पर जब पार्वती ने अपना तारा के समान सुन्दर रूप दिखलाया। तब उस स्वरूप को देखकर शंकर की शंका निवृत्त हुई। सुरतप्रिय शिव इतने दिनों की विरहजन्य उत्कण्ठा से प्रतीक्षित जगन्मयी पार्वती को देखकर अति आनन्दित हुए और एकान्त में स्थित होकर वे दोनों प्राणी एक सहस्र वर्ष तक अनेक प्रकार की काम केलियों में लगे रहे।।२६-२८।।

द्वारस्थो वीरको देवान्हरदर्शनकाङ्क्षिणः। व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकम्॥२९॥

नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः।
निभृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम्॥३०॥

द्वार पर नियुक्त वीरक ने शिव के दर्शन की अभिलाषा से आये हुए देवताओं को आदरपूर्वक प्रार्थना आदि करके अपने-अपने घरों को वापस कर दिया और उनसे कहा कि इस समय आप लोगों के मिलने के लिए ठीक अवसर नहीं है। वृषभध्वज भगवान् शंकर एकान्त में पार्वती के साथ क्रीड़ा विलासादि कर रहे हैं। वीरक के निवेदन पर सभी देवगण जहाँ-जहाँ से आये थे, वहाँ-वहाँ वापस लौट गये।।२९-३०।।

गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसाः। ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम्॥३१॥

एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर देवगण अति उतावले हो गये और अन्तःपुर से शंकर की चेष्टा जानने के लिए अग्नि को प्रेरित किया।।३१।।

प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः।
ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह॥३२॥

हुताशन ने शुक का रूप धारण कर झरोखे के छिद्र से भीतर जाकर देखा तो शिव को पार्वती के साथ रति करते हुये पाया।।३२।।

ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम्। तमुवाच महादेवः किञ्चित्कोपसमन्वितः॥३३॥

शर्व उवाच

निषिक्तमर्धं देव्यां मे शुक्रस्य शुकविग्रह। लज्जया विरतिस्थायां त्वमर्धं पिब पावक॥३४॥

महादेव ने शुक रूपधारी अग्नि को आया हुआ देखा और कुछ कुपित होकर कहा महादेव ने कहा-शुक का शरीर धारण करने वाले अग्निदेव! मेरे वीर्य का आधा भाग पार्वती में निहित हो चुका है, किन्तु तुम्हारे इस प्रकार के आगमन को देख लज्जा के कारण उमा के रति से विमुख हो जाने पर अब आधा वीर्य बच रहा है, उसे तुम्हें पीना पड़ेगा।।३३-३४।।

यस्मात्तु त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वय्युपपद्यते।
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम्॥३५॥

क्योंकि तुम्हीं ने हमारी रति क्रीड़ा में इस प्रकार आकर विघ्न पहुँचाया है, अतः इसे रखने के योग्य पात्र भी तुम्हीं हो।' शिव के ऐसा कहने पर अग्नि ने हाथ जोड़कर शिव के द्वारा छोड़े गये वीर्य का पान किया।।३५।।

तेनापूर्यत तान्देवांस्तत्तत्कायविभेदतः। विपाट्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः।।३६।।
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं विततं शङ्कराश्रमे। तस्मिन्सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम्।।३७।।

अग्नि ने पान कर उस वीर्य द्वारा सभी देवताओं के उदर की पूर्ति की। उन पान करने वाले देवताओं के पेट को भेद देने के कारण वह तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिशाली वीर्य शंकर के विस्तृत आश्रम में चारों ओर फैल गया और वहीं पर अनेक योजन में विस्तृत एक निर्मल महान् सरोवर के रूप में परिणत हो गया।।३६-३७।।

प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविगहनादितम्। तच्छ्रुत्वा तु ततो देवी हेमद्रुममहाजलम्।।३८।।
जगाम कौतुकाविष्टा तत्सरः कनकाम्बुजम्। तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा।।३९।।

उस सुन्दर सरोवर में सुवर्ण के समान शोभायमान कमल खिल गये, अनेक प्रकार के पक्षीगण चहकने लगे। उस सुवर्णमय वृक्ष तथा कमल वाले एवं प्रचुर सम्पन्न सरोवर की चर्चा सुन पार्वती जी अति कौतुक से देखने के लिए वहाँ गईं और उसी में फूले हुए कमलों को सिर का आभूषण बनाकर जलक्रीड़ा करने लगीं।।३८-३९।।

उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता। पातुकामा च तत्तोयं स्वादु निर्मलपङ्कजम्।।४०।।
अपश्यत्कृत्तिकाः स्नाताः षडर्कद्युतिसन्निभाः।
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम्।।४१।।
हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः। ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजाम्।।४२।।

तदनन्तर उसके तट पर सखियों समेत बैठी हुई पार्वती ने सुन्दर निर्मल कमलों से सुरभित सुस्वादु जल को पीने की इच्छा की और वहीं कमल के पत्ते में उस सरोवर के निर्मल जल को रखकर घर के लिए प्रस्थित, सूर्य की किरणों के समान कान्तिमयी छहों कृत्तिकाओं को, जो उस सरोवर में स्नानकर चुकी थीं, देखा और हर्षित होकर कहा, 'मैं कमल के पत्तों में रखे गये उस जल को देख रही हूँ।' पार्वती की बात सुन उन कृत्तिकाओं ने कहा।।४०-४२।।

कृत्तिका ऊचुः

दास्यामो यदि ते गर्भः सम्भूतो यो भविष्यति।
सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम्।।
भवेल्लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि शुभानने।।४३।।

कृत्तिकाओं ने कहा-हम लोग इस जल को आपको दे देंगी। यदि यह प्रतिज्ञा कीजिए कि इसके पान करने से जो गर्भ आपको रहे, वह उत्पन्न होकर हम लोगों का भी पुत्र कहा जाय, और हमी

लोगों के नाम पर उसका नामकरण संस्कार भी किया जाय। हे सुन्दर मुख वाली! वह बालक सभी भुवनों में विख्यात होगा।।४३।।

इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्गात्रसम्भवः। सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत्।।४४।।

कृत्तिकाओं के ऐसा कहने पर गिरिपुत्री पार्वती ने कहा-'भला जो सभी अंगों में मेरे ही समान होगा, मेरे शरीर से उत्पन्न होगा, वह बालक किस प्रकार आप लोगों का पुत्र कहा जा सकता है?'।।४४।।

ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम्।
उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति।।४५।।

तब कृत्तिकाओं ने कहा कि 'हम लोग उस बालक के उत्तम अंगों (सिरों) की रचना अपने समान करेंगी, यदि ऐसा होगा तो वह बालक हम लोगों का पुत्र कहलायेगा।।४५।।

उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः। ततस्ता हर्षसम्पूर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः।।४६।।
तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम्।

उन सबों के इस प्रकार कहने पर शैलपुत्री ने कहा-अभिनन्दनीय गुणों वाली! ऐसा ही करो।' पार्वती की स्वीकृति से कृत्तिकाएँ हर्ष से खिल उठीं और कमल पत्र पर रखे गए उस जल को पार्वती के लिए समर्पित कर दिया। पार्वती ने भी उस जल को धीरे-धीरे पी डाला।।४६.५।।

पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन्सरोवरे।।४७।।
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुक्षिमुद्गतः।
निश्चक्रामाद्भुतो बालः सर्वलोकविभासकः।।४८।।

उस जल को पी लेने के उपरान्त उसी सरोवर में पार्वती की दाहिनी कोख को फाड़कर एक अद्भुत बालक, जिसका तेज समस्त लोकों में भासमान हो रहा था, निकला।।४७-४८।।

प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः। गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः।।४९।।
दीप्तो मारयितुं दैत्यान्कुत्सितान्कनकच्छविः। एतस्मात्कारणाद्देवः कुमारश्चापि सोऽभवत्।।५०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकोपाख्याने कुमारसम्भवो नामाष्टनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५८।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८५३८।।

उसकी आभा सूर्य के समान थी, चमक सुवर्ण के समान थी, छः मुख थे, हाथों में भयानक चमकती हुई अति कठोर शक्ति एवं शूल धारण किए हुए था। सुवर्ण के समान शोभा वाली वह बालक तेज से देदीप्त हो रहा था और जन्मते ही वह कुत्सित पापाचरण में लीन दैत्यों को मारने के लिए उद्यत-सा था। यही कारण है कि वह कुमार नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।।४९-५०।।

एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त।।१५८।।

अथ नवपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रण उद्योग प्रसंग

सूत उवाच

वामं विदार्य निष्क्रान्तःसुतो देव्याः पुनः शिशुः।
स्कन्दाच्च वदने वह्नेः शुक्रात्सुवदनोऽरिहा॥१॥

सूतजी कहते हैं-पुनः देवी की बायीं कोख को फाड़कर एक अन्य शिशु बाहर निकला। प्रथमतः अग्नि के मुख में वीर्य के क्षरण होने के कारण वह बालक सुन्दर मुख वाला शत्रुओं का विनाशक हुआ॥१॥

कृत्तिकामेलनादेव शाखाभिः सविशेषतः।
शाखाभिधाः समाख्याताः षट्सु वक्त्रेषु विस्तृताः॥२॥
यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः।
स्कन्दो विशाखः षड्वक्त्रः कार्तिकेयश्च विश्रुतः॥३॥

विशेषकर शाखाओं (अंग-प्रत्यंगों) में उन कृत्तिकाओं के मेल होने के कारण वह बालक शाषाभिध भी हुआ, उसके छः मुख थे। यही कारण है कि वह विशाख नामधारी हुआ और लोक में षण्मुख (छः मुखों वाला) भी उसका नाम पड़ा। इस प्रकार उस बालक का स्कन्द (क्षरण होने के कारण) विशाख (शाखाओं अङ्गों में, कृतिकाओं के मेल होने के कारण) षण्मुख (छः मुख होने के कारण) तथा कार्तिकेय (कृत्तिकाओं के पुत्र होने के कारण) नाम विख्यात हुआ॥२-३॥

चैत्रस्य बहुले पक्षे पञ्चदश्यां महाबलौ। सम्भूतावर्कसदृशौ विशाले शरकानने॥४॥

चैत्र महीने के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं (अमावस्या) तिथि को विशाल शरों (सरपत या रामशर) के वन में वे दोनों महाबलवान् तथा सूर्य के समान तेजस्वी बालक उत्पन्न हुए थे॥४॥

चैत्रस्यैव सिते पक्षे पञ्चम्यां पाकशासनः। बालकाभ्यां चकारैकं मत्वा चामरभूतये॥५॥

उसी चैत्र महीने के शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि को पाकशासन इन्द्र ने देवताओं के कल्याणार्थ उन दोनों बालकों को एक में जोड़ दिया॥५॥

तस्यामेव ततः षष्ठ्यामभिषिक्तो गुहः प्रभुः। सर्वैरमरसङ्घातैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभास्करैः॥६॥

उसी महीने की षष्ठी तिथि को भगवान् गुह सभी देवसमूह तथा ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, सूर्य आदि देवताओं द्वारा सेनापति के पद पर अभिषिक्त किये गये॥६॥

गन्धमाल्यैः शुभैर्धूपैस्तथा क्रीडनकैरपि। छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः॥७॥
अभिषिक्तो विधानेन यथावत्षणमुखः प्रभुः। सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम्॥८॥

सुगन्धित द्रव्य, पुष्प, मांगलिक धूप, खिलौने, छत्र, चामर, समूह, आभूषण तथा चन्दनादि सामग्रियों द्वारा विधिपूर्वक षण्मुख स्वामिकार्त्तिकेय का अभिषेक किया गया। शक्र ने देवसेना नामक कन्या को स्वामिकार्तिकेय को स्त्री पद के लिए सौंपा।।७-८।।

पत्यर्थं देवदेवस्य ददौ विष्णुस्तदाऽऽयुधम्। यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्मै धनाधिपः।।९।।
ददौ हुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम्। ददौ क्रीडनकं त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम्।।
एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनुत्तमम्।।१०।।

विष्णु ने उस देवाधिदेव को शस्त्रास्त्रों के समूह दिये। धनाध्यक्ष कुबेर ने दस लाख यक्ष दिये, अग्नि ने तेज दिया, वायु ने वाहन, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने खिलौने तथा इच्छानुरूप स्वरूप धारण करने वाला एक कुक्कुट (मुर्गा) दिया।।९-१०।।

ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायाऽऽदित्यवर्चसे।।११।।
जानुभ्यामवनौ स्थित्वा सुरसङ्घास्तमस्तुवन्।
स्तोत्रेणानेन वरदं षण्मुखं मुख्यशः सुराः।।१२।।

इस प्रकार आनन्दयुक्त मन से सभी देवताओं ने सूर्य के समान परमतेजस्वी स्कन्द को सर्वश्रेष्ठ परिवार वर्ग दिया। तदनन्तर प्रमुख देवताओं ने घुटनों के बल पृथ्वी पर अवस्थित होकर वरदायी षडानन स्वामिकार्तिकेय की इस निम्न स्तोत्र द्वारा स्तुति की।।११-१२।।

देवा ऊचुः

नमः कुमाराय महाप्रभाय स्कन्दाय च स्कन्दितदानवाय।
नवार्कविद्युद्द्युतये नमोऽस्तु ते नमोऽस्तु ते षण्मुख कामरूप।।१३।।

देवताओं ने कहा–महातेजस्वी कुमार! तुम्हें हम लोगों का प्रणाम स्वीकार हो, तुम स्कन्द हो, दानवों का विनाश करने वाले हो। नवीन सूर्य के समान कान्तिमान् हो, छः मुखों वाले हो, इच्छानुरूप रूप धारण करने वाले हो, तुम्हें हमलोग प्रणाम करते हैं।।१३।।

पिनद्धनानाभरणाय भर्त्रे नमो रणे दानवदारणाय।
नमोऽस्तु तेऽर्कप्रतिमप्रभाय नमोऽस्तु गुह्याय गुहाय तुभ्यम्।।१४।।

अनेक प्रकार के आभूषणों से आभूषित, समस्त जगत् के पालने वाले, दारुण दानवों के विनाशक, सूर्य के समान ओजस्वी! तुम्हें हम लोग प्रणाम कर रहे हैं। गुह्य को गुह के लिए हम लोग तुम्हें प्रणाम करते हैं।।१४।।

नमोऽस्तु त्रैलोक्यभयापहाय नमोऽस्तु ते बाल कृपापराय।
नमो विशालामललोचनाय नमो विशाखाय महाव्रताय।।१५।।

त्रैलोक्य के भय को दूर करने वाले तथा बालकृपा करने वाले आपको प्रणाम है। विशाल

निर्मल नेत्रों वाले! तुम्हें प्रणाम है। विशाख एवं महाव्रत स्वरूप! तुम्हें हम लोगों का प्रणाम स्वीकार हो।।१५।।

नमो नमस्तेऽस्तु मनोहराय नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय।
नमो मयूरौज्ज्वलवाहनाय नमोऽस्तु केयूरधराय तुभ्यम्।।१६।।
नमो धृतोदग्रपताकिने नमो नमः प्रभावप्रणताय तेऽस्तु।
नमो नमस्ते वरवीर्यशालिने कृपापरो नो भव भव्यमूर्ते।।१७।।
क्रियापरा यज्ञपतिं च स्तुत्वा विनेमुरेवं त्वमराधिपाद्याः।
एवं तदा षड्वदनस्तु सेन्द्रानुवाच तुष्टश्च गुहस्ततस्तान्।।
निरीक्ष्य नेत्रैरमलैः सुरेशाञ्शत्रून्हनिष्यामि गतज्वराःस्थ।।१८।।

मन को हरण करने वाले! तुम्हें हम लोगों का प्रणाम है। रण में अत्यन्त भयानक! तुम्हें हम लोगों का प्रणाम है। उज्ज्वल मयूर पर सवार होने वाले! तुम्हें हम सबों का प्रणाम हो। श्रेष्ठ केयूर धारण करने वाले! तुम्हें प्रणाम स्वीकार हो। उत्कट पताका धारण करने वाले! प्रणतजनों के दुःख को दूर करने वाले! तुम्हें प्रणाम है, प्रणाम है। श्रेष्ठपराक्रमशाली! क्रियापरायण भक्तजनों के लिए मनोहर मूर्ति वाले! तुम्हें हम सब प्रणाम करते हैं। देवताओं के स्वामी इन्द्रादि सत्क्रिया परायण देवगण इस प्रकार की स्तुति यज्ञपति भगवान् स्वामि कार्तिकेय कर चुप हो गये। उस समय उन देवताओं ने सन्तुष्ट चित्त हो अति हर्ष से जब इस प्रकार स्तुति की तो गुह भगवान् स्वामिकार्तिकेय ने अपने निर्मल नेत्रों से उन देवताधिपतियों की ओर ताककर कहा-देवगण! अब आप लोग अपना दुःख दूर हुआ समझिये, मैं सभी शत्रुओं का विनाश कर दूँगा।।१६-१८।।

कुमार उवाच

कं वः कामं प्रयच्छामि देवता ब्रूत निर्वृताः। यद्यप्यसाध्यं हृद्यं वो हृदये चिन्तितं परम्।।१९।।

कुमार ने कहा-देवगण! आप लोग बताइये मैं आप लोगों के किस मनोरथ की पूर्ति करूँ? मैं आप लोगों की उस हार्दिक अभिलाषा को, जिसे आप लोग हृदय में बहुत दिनों से सोच रहे हैं, पूर्ण करूँगा, भले ही वह दुःसाध्य क्यों न हो?।।१९।।

इत्युक्तास्तु सुरास्तेन प्रोचुः प्रणतमौलयः। सर्व एव महात्मानं गुहं तद्गतमानसाः।।२०।।

कुमार के ऐसा कहने पर देवगण विनत हो अनुकूल हृदय वाले बनाकर महात्मा गुह से बोले?।।२०।।

दैत्येन्द्रस्तारको नाम सर्वामरकुलान्तकृत्। बलवान्दुर्जयो दुष्टो दुराचारोऽतिकोपनः।।
तमेव जहि हृद्योऽर्थ एषोऽस्माकं भयापह।।२१।।

सभी देवकुल का विनाश करने वाला, अति बलवान् एक दुर्जय तारक नामक दैत्यराज है,

जो अत्यन्त दुराचारी तथा क्रोधी है। हम लोगों के भय को दूर करने वाले! आप उस राक्षस का संहार कीजिए, यही हम लोगों की हार्दिक अभिलाषा है।।२१।।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुगः। जगाम जगतां नाथः स्तूयमानोऽमरेश्वरैः॥२२॥
तारकस्य वधार्थाय जगतः कण्टकस्य वै। ततश्च प्रेषयामास शक्रो लब्धसमाश्रयः॥२३॥
दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम्। स तु गत्वाऽब्रवीद्दैत्यं निर्भयो भीमदर्शनः॥२४॥

देवताओं के इस प्रकार निवेदन करने के बाद सभी देववृन्दों के परम उपकारी जगत् के स्वामी स्वामिकार्तिकेय वहाँ जगत् के कण्टक स्वरूप तारकासुर के वध के लिए प्रस्थित हुये। स्कन्द के बल का भरोसा पाकर इन्द्र ने दानवराज तारक के पास कठोर वचन बोलने वाले एक दूत को भेजा। भयानक आकृति वाले उस दूत ने भयरहित होकर तारक के पास जाकर इन्द्र का सन्देश कहा।।२२-२४।।

दूत उवाच

शक्रस्त्वामाह देवेशो दैत्यकेतो दिवस्पतिः।
तारकासुर तच्छ्रुत्वा घट शक्त्या यथेच्छया॥२५॥

दूत ने कहा-दैत्यपते! स्वर्ग के स्वामी देवराज भगवान् इन्द्र ने तुमको कुछ सन्देश कहा है। तारकासुर! उसे सुनकर अपनी शक्ति के अनुसार जो चाहो करो।।२५।।

यज्जगद्दलनादाप्तं किल्विषं दानव त्वया।
तस्याहं शासकस्तेऽद्य राजाऽस्मि भुवनत्रये॥२६॥

उन्होंने कहा-दानव! इस संसार का विनाश कर तुमने जो पापाचरण किया है, उसका दण्ड देने के लिए मैं अब त्रिभुवन के राजा रूप में प्रस्तुत हुआ हूँ। उन सबकी शान्ति करूंगा।।२६।।

श्रुत्वैतद्दूतवचनं कोपसंरक्तलोचनः। उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः॥२७॥

दूत की ऐसी बातें सुनकर क्रोध से लाल नेत्रों वाले दुष्टात्मा तारकासुर ने जिसकी विभूति प्रायः नष्ट हो चुकी थी, कहा।।२७।।

तारक उवाच

दृष्टं ते पौरुषं शक्र रणेषु शतशो मया। निस्त्रपत्वान्न ते लज्जा विद्यते शक्र दुर्मते॥२८॥

तारकासुर ने कहा-'शक्र! युद्धों में सैकड़ों बार मैंने तेरे पराक्रम को देखा है। दुर्बुद्धि इन्द्र! निर्लज्ज होने के कारण तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा तो लगेगी नहीं।।२८।।

एवमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः। नालब्धसंश्रयः शक्रो वक्तुमेवं हि चार्हति॥२९॥
जितः स शक्रो नाकस्माज्जायते संश्रयाश्रयः।
निमित्तानि च दुष्टानि सोऽपश्यद् दुष्टचेष्टितः॥३०॥

इस प्रकार तारक को सन्देश देने के बाद जब दूत चला गया, तब दानव ने मन में चिन्ता की कि बिना किसी की महायता का भरोसा पाये हुए इन्द्र इस प्रकार की निर्भीकतापूर्ण बातें नहीं कर सकता, क्योंकि मुझसे यह पूर्व ही पराजित हो चुका है। न जाने कहाँ से उसे सहायता की प्राप्ति हो गई है? इस प्रकार चिन्ता में निमग्न हो दुष्ट चेष्टा वाले उस दैत्य ने अति अमंगलपूर्ण निमित्तों को घटित होते हुए देखा।।२९-३०।।

पांशुवर्षमसृक्पातं गगनादवनीतले। भुजनेत्रप्रकम्पं च वक्त्रशोषमनोभ्रमम्।।३१।।
स्वकान्तावक्त्रपद्मानां म्लानतां च व्यलोकयत्।
दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान् सोऽपश्यद् दुष्टवेदिनः।।३२।।

उस समय गगनमण्डल से अनेक बार पृथ्वी पर धूलि की वर्षा होने लगी। अनिष्ट सूचक भुजा और नेत्र फड़कने लगे, मुख सूख गया, चित्त में घबराहट हो गई, अपनी रमणियों के कमलवत मुख को मलिन देखने लगा। अमंगल की सूचना देने वाले भयानक आकृति वाले दुष्ट प्राणियों के दर्शन होने लगे।।३१-३२।।

तदचिन्त्वैव दितिजो न्यस्तचिन्तोऽभवत्क्षणात्। यावद्गजघटाघण्टारणत्काररवोत्कटाम्।।३३।।
तद्वत्तुरगसङ्घात क्षुण्णभूरेणुपिञ्जराम्। चञ्चलस्यन्दनोदग्रध्वजराजिविराजिताम्।।३४।।
विमानैश्चाद्भुतासारैश्चलितामरचामरैः। तां भूषणनिबद्धां च किन्नरोद्गीतनादितम्।।३५।।
नानानाकतरूत्फुल्लकुसुमापीडधारिणीम्। विकोशास्त्रपरिष्कारां वर्मनिर्मलदर्शनाम्।।३६।।
बन्द्युद्घुष्टस्तुतिरवां नानावाद्यनिनादिताम्। सेनां नाकसदां दैत्याः प्रासादस्थो व्यलोकयत्।।३७।।

किन्तु इन सभी अमांगलिक अपशकुनों की कोई चिन्ता न कर वह दैत्य क्षण भर में पुनः जबतक निश्चित हुआ, तबतक हाथियों के समूहों की भयानक घटाओं की आवाजों से अतिशय भयानक, उसी प्रकार घोड़ों के समूहों की खुरों से उठी हुई धूलियों से श्वेत वर्ण वाली, अद्भुत प्रकार के विमानों एवं देवताओं द्वारा चलते हुए चवरों से युक्त, विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित, किन्नरों के गीतों से शब्दायमान, विविध रंग वाले स्वर्गीय पुष्पों की मालाओं को धारण किये हुए वीरों से सुशोभित, म्यान रहित तलवार आदि हथियारों से परिष्कृत दिखाई पड़ने वाले निर्मल कवचों से संयुक्त, बन्दियों द्वारा स्वर से स्तुति की जाती हुई, विविध प्रकार के बाजनों से घोर शब्दों वाली सेना को आते हुए राजमहल के ऊपरी भाग पर खड़े होकर देखा।।३३-३७।।

चिन्तयामास स तदा किञ्चिदुद्भ्रान्तमानसः। आपूर्वः को भवेद्योद्धा यो मया न विनिर्जितः।।३८।।
ततश्चिन्ताकुलो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम्। सिद्धबन्दिभिरुद्भिरुद्घुष्टमिदं हृदयदारणम्।।३९।।

और तब कुछ चिन्तित एवं घबराहट से युक्त होकर सोचा कि यह कौन अपूर्व योद्धा आ रहा है, जिसे मैंने अभी तक नहीं हराया है। थोड़ी देर बाद फिर दैत्य ने कठोर स्वर सुने, सिद्ध तथा बन्दीगण उस समय दैत्य के हृदय को विदारण करने वाले इस स्तोत्र का पाठ कर रहे थे।।३८-३९।।

अथ गाथा

जयातुलशक्तिदीधितिपिञ्जर भुजदण्डचण्डरणरभस।
सुरवदन कुमुदकाननविकासनेन्दो॥
कुमार जय दितिजकुलमहोदधिवडवानल॥४०॥

हे अनुपम शक्ति की किरणों से पिंगल वर्ण की कान्ति वाले! कठोर भुजदण्डों से भयानक रण मचा देने वाले! देवताओं के मुख रूपी कुमुद कानन को विकसित करने में चन्द्रमा रूप! तुम्हारी जय हो। हे कुमार दैत्य कुलरूप समुद्र के लिए वाडवाग्नि॥४०॥

षणमुख मधुररवमयूररथ सुरमुकुटकोटिघट्टितचरणनखाङ्कुरमहासन।
जय ललितचूडाकलापनवविमलदलकमलकान्त दैत्यवंशदुःसहदावानल॥४१॥

छः मुखों वाले! मनोहर मधुर स्वर मयूर के ऊपर सवार होने वाले! सुरों की मुकुट मणियों की कोर से घिसे हुए चरणों के नखों की किरणों से सुशोभित श्रेष्ठ सिंहासन वाले! मनोहर केश कलाप से युक्त! अभिनव निर्मल कमल की पंखुड़ियों के समान मनोहर स्वरूप वाले! दैत्य वंश रूप बाँस के विनाशार्थ दुःसह दावाग्नि रूप! तुम्हारी जय हो॥४१॥

जय विशाख विभो जय सकललोकतारक जय देवसेनानायक।
स्कन्द जय गौरीनन्दन घण्टाप्रिय प्रिय विशाख विभो धृतपताकप्रकीर्णपटल॥
कनकभूषण भासुरदिनकरच्छाय॥४२॥
जय जनितसम्भ्रम लीलीलूनाखिलाराते जय सकललोकतारक दितिजासुरवरतारकान्तक।
स्कन्द जय बाल सप्तवासर जय भुवनावलिशोकविनाशन॥४३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे रणाद्योगो नाम नवपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५९॥

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥८५८१॥

भगवन् विशाल! तुम्हारी जय हो। सकल लोकों का उद्धार करने वाले! स्कन्द! गौरीनन्दन! घण्टा के प्रेमी तुम्हारी जय हो। हे परमप्रिय भगवन् विशाख! हाथ में पताका के समूह धारण करने वाले! अति देदीप्यमान आभूषणों से दिनकर की शोभा धारण करने वाले! भय के उत्पन्न करने वाले! अखिल दानवों का लीलापूर्वक विनाश करने वाले, सकल लोकों के तारक! समग्र दैत्यों के स्वामी! तारकासुर के परमशत्रु! स्कन्द! सात दिन के बालक! चौदहों भुवनों के शोकापहर्ता तुम्हारी जय हो, जय हो॥४२-४३॥

॥एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त॥१५९॥

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

तारक वध प्रसंग

सूत उवाच

श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्टं देवबन्दिभिः। सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधं बालादुपस्थितम्॥१॥
स्मृत्वा धर्मार्द्रसर्वाङ्गः पदातिरपदानुगः। मन्दिरान्निर्जगामाऽऽशु शोकग्रस्तेन चेतसा॥२॥
(कालनेमिमुखा दैत्याः संरम्भाद्भ्रान्तचेतसः। स्वे स्वे स्वनीकेषु तदा त्वराविस्मितचेतसः॥
योधा धावतगृहीत योजयध्वं वरूथिनीम्॥३॥

सूतजी कहते हैं-देवताओं के बन्दियों द्वारा उच्चस्वर से उद्घोषित उपर्युक्त प्रार्थना को सुनकर तारकासुर ने ब्रह्मा की अपनी मृत्यु वाली पूर्व बात स्मरण की। (जिसमें उन्होंने बालक से मृत्यु का वरदान दिया था) उसने यह समझ लिया कि अब हमारी मृत्यु समीप आ गई है। उस बात का स्मरण कर पसीने से भीगे हुए सम्पूर्ण शरीर वाला पैदल हो बिना किसी को साथ लिये शोकाकुल चित्त हो अपने भवन से बाहर निकला और बोला-शीघ्रता के कारण घबराये हुए चित्त वाले! कालनेमि आदि प्रमुख योधा दैत्यगण! दौड़ते जाओ, पकड़ो और इस सेना को पराजित कर दो॥१-३॥

कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणकृतिः।
किं बाल योद्धुकामोऽसि क्रीड कन्दुकलीलया॥४॥

तदनन्तर भयानक आकृति वाले तारकासुर ने देखकर कहा, 'बालक! क्या तुम युद्ध करने को इच्छुक हो? यदि चाहते हो तो आओ, कन्दुक के समान खेलो॥४॥

त्वया न दानवा दृष्टा यत्सङ्गरविभीषकाः। बालत्वादथ ते बुद्धिरेवं स्वल्पार्थदर्शिनी॥५॥

रणभूमि में भीषण दानवों को अभी तक तुमने नहीं देखा है, बालक होने के कारण तुम्हारी बुद्धि थोड़ी ही दूर तक देखती है॥५॥

कुमारोऽपि तमग्रस्थं बभाषे हर्षयन्सुरान्। शृणु तारक शास्त्रार्थस्तव चैव निरूप्यते॥६॥
शास्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समरे निर्भयैर्भटैः। शिशुत्वं माऽवमंस्था मे शिशुः कालभुजङ्गमः॥७॥

देवताओं को आनन्दित करते हुए स्वामिकार्तिकेय ने भी आगे खड़े हुए तारकासुर से कहा-हे तारक! सुनो, तुम्हारे शास्त्रीय अर्थ को मैं निरूपित कर रहा हूँ। समर भूमि में न डरने वाले योद्धागण रण में शास्त्रों द्वारा अर्थ को नहीं देखते, मेरे बालकपन का तुम अपमान मत करो, भुजंग का बच्चा ही मृत्यु देने वाला होता है॥६-७॥

दुष्प्रेक्ष्यो भास्करो बालस्तथाऽहं दुर्जयः शिशुः)।
अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सुस्फुरो दैत्य दृश्यते॥८॥

उदयकालीन सूर्य भी दुष्प्रेक्ष्य (कठिनाई से देखने योग्य) होता है, उसी प्रकार मैं भी दुर्जय बालक हूँ। दैत्य क्या यह तुम नहीं देखते हो कि थोड़े अक्षरों वाला मन्त्र कितना प्रभावशाली होता है। इसी प्रकार की बातें कुमार कर ही रहे थे कि इतने ही अवसर में दैत्य ने उनके ऊपर अपना मुद्गर छोड़ दिया। कुमार ने अपने अमोघ तेजस्वी वज्र से उसे निष्फल कर दिया।।८।।

कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यश्चिक्षेप मुद्गरम्। कुमारस्तं निरस्याथ वज्रेणामोघवर्चसा।।९।।
ततश्चिक्षेप दैत्येन्द्रो भिन्दिपालमयोमयम्। करेण तच्च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा।।१०।।

तब दैत्येन्द्र ने लोहे के बने हुए भिन्दिपाल को उनके ऊपर छोड़ा, जिसे कुमार ने दैत्यों के शत्रु स्वामि कार्तिकेय ने अपने हाथ में पकड़ लिया।।९-१०।।

गदां मुमोच दैत्याय षण्मुखः परमस्वनाम्। तया हतस्ततो दैत्यश्चकम्पेऽचलराडिव।।११।।

षण्मुख ने घोर शब्द करने वाली अपनी गदा को दैत्य के ऊपर छोड़ा, उसके घात से दैत्य महागिरि के समान प्रकम्पित हो गया।।११।।

मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा षड्वदनं रणे।
चिन्तयामास बुद्ध्या वै प्राप्तः कालो न संशयः।।१२।।

उसने रणभूमि में षण्मुख स्वामिकार्तिकेय को कठिनाई से जीतने योग्य बना लिया और बुद्धि से चिन्तन करने लगा कि अब निस्सन्देह हमारा काल आ गया है।।१२।।

कुपितं तु तमालोक्य कालनेमिपुरोगमाः। सर्वे दैत्येश्वरा जघ्नुः कुमारं रणदारुणम्।।१३।।

कालनेमि आदि प्रमुख दैत्यों के साथ प्रायः सभी दैत्यों के स्वामियों ने इस प्रकार कुपित देखकर रण में अत्यन्त कठोर कार्य करने वाले कुमार के ऊपर शस्त्रास्त्रों द्वारा एकसाथ प्रहार किया।।१३।।

स तैः प्रहारैरस्पृष्टो वृथाक्लेशैर्महाद्युतिः।
रणशौण्डास्तु दैत्येन्द्राः पुनः प्रासैः शिलीमुखैः।।१४।।
कुमारं सामरं जघ्नुर्बलिनो देवकण्टकाः। कुमारस्य व्यथा नाभूद्दैत्यास्त्रनिहतस्य तु।।१५।।

किन्तु स्वामिकार्तिकेय ने उन कुछ भी क्लेश न पहुँचाने वाले घोर प्रहारों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन रणमत्त देवकण्टक बलवान् दैत्येन्द्रों ने पुनः अपने तीक्ष्ण भालों तथा बाणों से कुमार को समर भूमि में भीषण चोट पहुँचाई, परन्तु दैत्यों के अस्त्रों से उन्हें तनिक भी व्यथा न हुई।।१४-१५।।

प्राणान्तकरणो जातो देवानां दानवाहवः।
देवान्निपीडितान् दृष्ट्वा कुमारः कोपमाविशत्।।१६।।
ततोऽस्त्रैर्वारयामास दानवानामनीकिनीम्। ततस्तैर्निष्प्रतीकारैस्ताडिताः सुकण्टकाः।।१७।।

कालनेमिमुखाः सर्वे रणादासन्पराङ्मुखाः। विद्रुतेष्वथ दैत्येषु हतेषु च समन्ततः॥१८॥
ततः क्रुद्धो महादैत्यस्तारकोऽसुरनायकः। जग्राह च गदां दिव्यां हेमजालपरिष्कृताम्॥१९॥

किन्तु दानवों का यह भयानक युद्ध देवताओं के प्राणों का महान् घातक सिद्ध हुआ। तब देवताओं को अति दुःखित देखकर कुमार अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अपने अस्त्रों से दानवों की सेना को विचलित कर दिया। उस समय उन अमोघ अस्त्रों की चोट से घायल हुए देवताओं के शत्रु कालनेमि आदि दैत्यगण युद्धभूमि से पीछे लौट पड़े। दैत्यों के इस प्रकार निहत होने एवं रणभूमि छोड़कर भाग जानेपर असुरों का स्वामी महादैत्य तारक परमक्रुद्ध हुआ और सुवर्ण के बने हुये जालों से परिष्कृत अपनी दिव्य गदा को धारण किया॥१६-१९॥

जघ्ने कुमारं गदया निष्तप्तकनकाङ्गदः। शरैर्मयूरपत्रेश्च चकार विमुखान् सुरान्॥२०॥

अत्यन्त तपाये गये सुवर्ण के बने हुये केयूर से सुशोभित भुजा वाले उस दैत्यराज ने गदा से कुमार को आहत किया और मयूर के पंखों वाले बाणों से देवताओं को विमुख किया॥२०॥

तथा परैर्महाभल्लैर्मयूरं गुहवाहनम्। विभेद तारकः क्रुद्धः स सैन्येऽसुरनायकः॥२१॥

और दूसरे अति भयानक विशाल भालों से कार्तिकेय के वाहन मयूर को घायल कर दिया। इस प्रकार रणभूमि में असुरनायक तारक ने अतिक्रुद्ध हो देवताओं की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया॥२१॥

दृष्ट्वा पराङ्मुखान्देवान्मुक्तरक्तं स्ववाहनम्।
जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम्॥२२॥
बाहुना हेमकेयूररुचिरेण षडाननः। ततो जवान्महासेनस्तारकं दानवाधिपम्॥२३॥
तिष्ठ तिष्ठ सुदुर्बुद्धे जीवलोकं विलोकय।
हतोऽस्यद्य मया शक्त्या स्मर शस्त्रं सुशिक्षितम्॥२४॥

तब देवताओं को रणभूमि से पराङ्मुख होते तथा अपने वाहन मयूर को रक्त उगलते हुए देखकर षडानन देवताओं के सेनापति स्वामी कार्तिकेय परम मनोहर सुवर्ण निर्मित केयूर से सुशोभित भुजाओं द्वारा रणभूमि में सुवर्ण से अलंकृत शक्ति को धारण किया और अतिवेग पूर्वक दानवराज तारक की ओर अभिमुख हो पुकार कर कहा-हे कुबुद्धे! खड़े हो जाओ! खड़े हो जाओ! भागो मत, संसार के जीवों की ओर देखो, अब तुम मेरी शक्ति से मारे जा चुके हो, अपने सुशिक्षित शस्त्र का स्मरण करो॥२२-२४॥

बिभेद दैत्यहृदयं वज्रशैलेन्द्रकर्कशम्॥२५॥

ऐसा कहकर कुमार ने उस शक्ति को दैत्य के ऊपर छोड़ दिया। कुमार के केयूर की ध्वनि के साथ हाथों से छूटी हुई उस शक्ति ने वज्र के महागिरि के समान अत्यन्त कठोर दैत्य के हृदय को छिन्न-भिन्न कर दिया॥२५॥

गतासुः स पपातोर्व्यां प्रलये भूधरो यथा। विकीर्णमुकुटोष्णीषो विस्त्रस्ताखिलभूषणः।।२६।।

और वह निष्प्राण होकर पृथ्वी तल पर प्रलय काल के पहाड़ की भाँति गिर पड़ा। पगड़ी तथा मुकुट गिरकर बिखर गये और शरीर के सारे आभूषण पृथ्वी तल पर छिटक गये।।२६।।

तस्मिन्विनिहते दैत्ये त्रिदशानां महोत्सवे।
नाभूत्कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत्।।२७।।

इस प्रकार उस महादैत्य के मारे जाने पर स्वर्गलोक के महान् उत्सव के अवसर पर कोई भी दुःखी प्राणी नहीं रहा, नरक में निवास करने वाले पापात्मा जीव भी सुखी हुए।।२७।।

स्तुवन्तः षणमुखं देवाः क्रीडन्तश्चाङ्गनायुताः।
जग्मुः स्वानेव भवनान्भूरिधामान उत्सुकाः।।२८।।

अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ क्रीडा करते हुए देवगण षडानन की स्तुति करते हुये अति उत्सुक होकर अपने-अपने घरों को चले गये।।२८।।

ददुश्चापि वरं सर्वे देवाः स्कन्दमुखं प्रति।
तुष्टाः सम्प्राप्तसर्वेच्छाः सह सिद्धैस्तपोधनैः।।२९।।

उस समय अपनी मनोवाञ्छित सारी इच्छाओं को प्राप्त करने वाले समस्त देवतागण, तपस्वियों तथा सिद्धों को साथ ले अत्यन्त सन्तुष्ट चित्त हो स्कन्द को वरदान देने लगे।।२९।।

देवा ऊचुः

यः पठेत्स्कन्दसम्बद्धां कथां मर्त्यो महामतिः। शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि स भवेत्कीर्तिमान्नरः।।३०।।

देवताओं ने कहा-जो कोई महाबुद्धिशाली मनुष्य स्कन्द से सम्बन्ध रखने वाली इस पुण्यकथा को सुनता है अथवा सुनाता है, वह कीर्तिशाली होता है।।३०।।

बह्वायुः सुभगः श्रीमान्कान्तिमाञ्छुभदर्शनः। भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः।।३१।।

दीर्घायु, सुन्दर आकृति वाला, लक्ष्मीवान्, शोभाशाली मंगलमय दिखाई पड़ने वाला सभी जीवों से भयरहित तथा सभी प्रकार के दुःखों से विवर्जित होता है।।३१।।

संध्यामुपास्य यः पूर्वां स्कन्दस्य चरितं पठेत्।
स मुक्तः किल्विषैः सर्वैर्महाधनपतिर्भवेत्।।३२।।

बालानां व्याधिजुष्टानां राजद्वारं च सेवताम्। इदं तत्परमं दिव्यं सर्वदा सर्वकामदम्।।
तनुक्षये च सायुज्यं षणमुखस्य व्रजेन्नरः।।३३।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकवधो नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६०।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८६१४।।

जो मनुष्य प्रातःकाल की सन्ध्या करने के बाद स्कन्द के चरित को पढ़ता है, वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर महाधनवान् होता है। बालकों को, व्याधि से पीड़ितों को तथा राजद्वार का सेवन करने वाले पुरुषों को, यह स्कन्द चरित परमोपयोगी, सर्वदा सभी मनोरथों की पूर्ति करने वाला एक दिव्य उपाय है। इसका पाठ करने वाला मनुष्य शरीर के नष्ट होने पर षडानन की समीपता प्राप्त करता है।।३२-२३।।

।।एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त।।१६०।।

❖❖❖

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्यकशिपु का जन्म, ब्रह्मा द्वारा हिरण्यकशिपु की वर प्राप्ति, हिरण्यकशिपु का अत्याचार और देवताओं में आतंक, विष्णु का अभयदान

ऋषय ऊचुः

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम्। नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम्।।१।।

ऋषिगण कहते हैं-अब हम लोग हिरण्यकशिपु का वध तथा पापों को नष्ट करने वाले नरसिंह भगवान् के माहात्म्य को सुनना चाहते हैं।।१।।

सूत उवाच

पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः। दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः।।२।।

सूतजी कहते हैं-ऋषिवृन्द! प्राचीनकाल में हिरण्यकशिपु नामक अति प्रभावशाली दैत्यों के आदिम पुरुष ने घोर तपस्या की थी।।२।।

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च। जलवासी समभवत्स्नानमौनधृतव्रतः।।३।।

जल में निवास करते हुए स्नान एवं मौन का व्रत धारण कर उसने ग्यारह सहस्र वर्षों तक तपस्या की थी।।३।।

ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि। ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च।।४।।

ततः स्वयम्भूर्भगवान्स्वयमागम्य तत्र ह। विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता।।५।।

तब उसकी तपस्या, नियम, शान्ति, इन्द्रिय-निग्रह एवं ब्रह्मचर्य से ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए और स्वयम्भू भगवान् स्वयमेव वहाँ सूर्य के समान परम तेजोमय विमान पर हंसयुक्त उपस्थित हुए।।४-५।।

आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्तथा। रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः॥६॥
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा। नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥७॥
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा। राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥८॥
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैर्दिवौकसैः। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥९॥
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत। वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥१०॥

आदित्य, वसु, साध्य, मरुत, विश्वेदेव के साथ रुद्र, यक्ष, राक्षस, सर्प, दिशाएँ, विदिशाएँ, नदी, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त, आकाशगामी ग्रह, महाग्रह, देवता, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, राजर्षि, पुण्यकर्ता गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूहों तथा स्वर्ग निवासियों से घिरे हुए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ चराचर जगत् के गुरु शोभा सम्पन्न ब्रह्मा ने दैत्य से कहा-सद्व्रतपरायण! तुझ जैसे भक्त की इस घोर तपस्या से मैं अति प्रसन्न हूँ, अतः तुम श्रेष्ठ वरदान माँग लो और अपनी मनोवांछित अभिलाषा की प्राप्ति करो।।६-१०।।

हिरण्यकशिपुरुवाच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः। न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मां देवसत्तम॥११॥

हिरण्यकशिपु ने कहा-देवसत्तम! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच-ये सब मुझे न मार सकें।।११।।

ऋषयो वा न मां शापैः शपेयुः प्रपितामह। यदि मे भगवान्प्रीतो वर एष वृतो मया॥१२॥

प्रपितामह! न तो ऋषिगण मुझे शाप ही दे सकें। भगवन्! यदि आप सचमुच हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं यह वरदान माँग रहा हूँ।।१२।।

न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च।
न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न दिवा न निशाथ वा॥१३॥
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः। सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश॥१४॥

न अस्त्र से, न शस्त्र से, न पर्वत से, न वृक्ष से, न किसी सूखे हुए पदार्थ से, न गीले पदार्थ से, न दिन में और न रात में अर्थात् कभी भी और किसी से भी मेरी मृत्यु न हो।।१३-१४।।

अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो यमः। धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः॥१५॥

मैं ही सूर्य हो जाऊँ, चन्द्रमा, वायु एवं अग्नि हो जाऊँ, जल, आकाश, नक्षत्र तथा दसों दिशाएँ बन जाऊँ। मैं क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यमराज, कुबेर, यक्ष तथा किंपुरुषों का स्वामी हो जाऊँ।।१५।।

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः। सर्वान्कामान्सदा वत्स प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥१६॥

ब्रह्माजी कहते हैं-प्रियवर! इन दिव्य वरदानों को मैं तुम्हें दे रहा हूँ। वत्स! सर्वदा इनके प्रभाव से निस्सन्देह अपने मनोरथों को तुम प्राप्त करोगे।।१६।।

एवमुक्त्वा सा भगवाञ्जगामाऽऽकाश एव हि। वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥१७॥

इस प्रकार कहकर भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मर्षियों के समूहों से सेवित वैराज नामक अपने निवास स्थान को चले गये॥१७॥

ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह। वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः॥१८॥

तब सब देवता नाग तथा गन्धर्व ऋषियों के साथ वरदान की प्राप्ति का समाचार सुनते ही ब्रह्मा के पास पहुँचे॥१८॥

देवा ऊचुः

वरप्रदानाद्भगवन्वधिष्यति स नोऽसुरः।
तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्॥१९॥

देवताओं ने कहा-भगवन्! आपके वरदान को प्राप्त कर वह असुर हम सबों का संहार करेगा। अतः उसके संहार की भी आप शीघ्र ही चिन्ता करें॥१९॥

भगवन्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः। स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुधः॥२०॥

भगवन्! आप जगत् के समस्त जीवों के स्वयम् आदिकर्ता हैं, प्रभु हैं, हव्य-कव्य के स्रष्टा हैं, अव्यक्त प्रकृति वाले हैं॥२०॥

सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः।
आश्वासयामास सुरान्सुशीतैर्वचनाम्बुभिः॥२१॥

इस प्रकार समस्त जगत् के कल्याण की बातें सुनकर प्रजापति ब्रह्मा ने सुन्दर एवं शीतलतापूर्ण अपने वचन रूपी जल से देवताओं का आश्वस्त किया और कहा॥२१॥

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्।
तपसोन्तेऽस्य भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति॥२२॥

'देवगण! अवश्य ही वह दानव अपनी तपस्या का फल प्राप्त करेगा; परन्तु तपस्या के पुण्यफल के समाप्त हो जाने पर उसका संहार स्वयं विष्णु भगवान् करेंगे॥२२॥

तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रजग्मुर्मुदाऽन्विताः॥२३॥

कमल से उत्पन्न होने वाले भगवान् ब्रह्मा की इस बात को सुनकर सभी लोग प्रसन्न चित्त हो अपने-अपने दिव्य स्थानों को चले गये॥२३॥

लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधतप्रजाः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः॥२४॥

ब्रह्मा से वरदान की प्राप्ति करते ही उस हिरण्यकशिपु ने वरदान से गर्वित होकर सभी प्रजाओं को विशेष कष्ट पहुँचाया॥२४॥

आश्रमेषु महाभागान् स मुनीञ्छंसितव्रतान्। सत्यधर्मपरान्दान्तान्धर्षयामास दानवः॥२५॥

उस दानव ने आश्रमों में, प्रशंसनीय व्रतों में परायण, सत्य तथा धर्म की सेवा में तत्पर महापुण्यशाली त्यागी मुनियों को अत्यन्त अपमानित किया॥२५॥

देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः। त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥२६॥

इस प्रकार वह महान् असुर त्रिभुवन में रहने वाले देवताओं को पराजित कर तीनों लोकों को स्ववश कर स्वर्गलोक में निवास करने लगा॥२६॥

यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः। यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियाश्च देवताः॥२७॥

तदाऽऽदित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा।
सेन्द्रा देवगणा यक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः॥२८॥

शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम्। देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम्॥२९॥

जब काल की प्रेरणा से उसने वरदान के मद से उन्मत्त होकर दैत्यों को यज्ञ भाग का अधिकारी बना दिया तथा देवताओं को यज्ञ भागों से बहिष्कृत कर दिया, तब सूर्य, साध्य, विश्वेदेव, वसु तथा इन्द्र समेत समस्त देवगण, यक्ष, सिद्ध तथा महर्षिगण शरणागतवत्सल महाबलवान् देवाधिदेव सनातन वासुदेव विष्णु की शरण में गये॥२७-२९॥

देवा ऊचुः

नारायण महाभाग देवास्त्वां शरणं गताः। त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो॥३०॥

देवताओं ने कहा—महाभाग्यशालिन् नारायण! देवता लोग तुम्हारी शरण में आए हुए हैं। प्रभो! इन सब की तुम रक्षा करो, दैत्यपति हिरण्यकशिपु का संहार करो॥३०॥

त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः। त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम॥३१॥

तुम हम लोगों के सबसे बड़े उत्पत्तिकर्ता हो, परमगुरु हो, परम देव हो। देवश्रेष्ठ! तुम ब्रह्मादि देवताओं के भी देवता हो॥३१॥

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्। तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम्॥३२॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—देववृन्द! तुम लोग भय छोड़ दो, मैं तुम लोगों को अभयदान दे रहा हूँ। देवगण! तुम लोग उसी तरह पुनः स्वर्ग को प्राप्त करोगे, देर न होगी॥३२॥

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्। अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम्॥३३॥

मैं वरदान से उन्मत्त, देवताओं के स्वामियों द्वारा अवध्य उस दानवराज को सैन्य समेत विध्वंस करने चल रहा हूँ॥३३॥

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान्। वधं सङ्कल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः॥३४॥

इस प्रकार की बातें कह भगवान् विष्णु ने देवताओं को विसर्जित कर मन में हिरण्यकशिपु के संहार का संकल्प किया।।३४।।

साहाय्यं च महाबाहुरोंकारं गृह्य सत्वरम्। अथोंकारसहायस्तु भगवान्विष्णुरव्ययः।।३५।।

तदुपरान्त शीघ्र ही महाबाहु वाले भगवान् ने ओंकार को ग्रहण कर अपनी सहायता में नियुक्त किया। ओंकार की सहायता प्राप्त कर कभी नष्ट न होने वाले भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु के निवास स्थान की ओर प्रस्थित हुए।।३५।।

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः। तेजसा भाष्कराकारः शशी कान्त्येव चापरः।।३६।।

उस समय तेज में सूर्य के समान तथा शोभा में दूसरे चन्द्रमा के समान आधे शरीर को मनुष्य का तथा आधे शरीर को सिंह का बना कर भगवान् ने अपना नरसिंह स्वरूप बनाया और एक हाथ से दूसरे हाथ का स्पर्श किया।।३६।।

नरस्य कृत्वाऽर्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं तथा। नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना।।३७।।

ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम्।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम्।।३८।।

विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्धमायताम्। वैहायसीं कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम्।।३९।।

जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम्।
वेशमहर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसौ।।४०।।

अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा। दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम्।।४१।।

नीलपीतसितस्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि। अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः।।४२।।

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत। रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा।।४३।।

तदनन्तर अत्यन्त विस्तृत, दिव्य, अति रमणीय, मन को हरने वाली, सभी प्रकार की अभिलाषाओं से युक्त, शुभ हिरण्यकशिपु की सभा को उन्होंने देखा। वह सभी आकाश के मध्य में सौ योजन में फैली हुई थी, पाँच योजन चौड़ी थी, सभी मनोरथों को देने वाली, वृद्धता शोक एवं कष्टों से रहित, धैर्यशील, कल्याणदायिनी, सुखकारी, सुन्दर भवन तथा अटारियों से संयुक्त, तेज से देदीप्यमान, अन्तः सलिल से संयुक्त, विश्वकर्मा की बनाई हुई दिव्य रत्नों से संयुक्त फल-पुष्प देने वाले वृक्षों से सुशोभित, नीले, पीले, श्वेत, श्याम, कृष्ण तथा लाल पुष्पों वाले गुल्मों तथा सैकड़ों मंजरीवाले गुच्छों से सुहावनी, श्वेत बादल के समान मानो जल से स्नान करती हुई-सी वह दिखाई पड़ रही थी। वह चमक रही थीं और उससे किरणें फूट रही थी। दिव्य सुगन्धि से वह अतिशय मनोहारिणी हो रही थी।।३७-४३।।

सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा। न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति ते।।४४।।

अति आनन्द को देने वाली थी, दुःखदायिनी नहीं थी, न तो उसमें अधिक शीतलता थी और

न अधिक धूप ही थी। उसमें स्थित लोगों को क्षुधा, पिपासा तथा ग्लानि का अनुभव नहीं हो रहा था।।४४।।

नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरतिभास्वरैः। स्तम्भैर्न विभृता सा वै शाश्वती चाक्षपा सदा।।४५।।

रंग-बिरंगे अति चमकीले पदार्थों से वह सुशोभित थी। स्तम्भों पर आधारित नहीं थी, उसकी अनुपम छटा सर्वदा एकरूप में रहने वाली तथा टिकाऊ थी।।४५।।

अति चन्द्रं च सूर्यं च शिखिनं च स्वयंप्रभा।
दीप्यते नाकपृष्ठस्था भासयन्तीव भास्करम्।।४६।।

स्वयमेव अति प्रकाशित वह सभा चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि की तेजस्विता को दबाने वाली थी। स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर अवस्थित यह प्रकाश फैलाती हुई सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही थी।।४६।।

सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः।
रसयुक्तं प्रभूतं च भक्ष्यभोज्यमनन्तकम्।।४७।।

सभी प्रकार के मनोरथ-चाहे वे देवताओं से सम्बन्ध रखने वाले हों अथवा मनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाले हो-वहाँ पर प्रचुर परिणाम में विद्यमान थे। षड् रस संयुक्त विभिन्न प्रकार से भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थ प्रचुर परिमाण में वहाँ रखे हुए थे।।४७।।

पुण्यगन्धस्त्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः।
उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति च।।४८।।

वहाँ की मालाएँ अति गम्भीर तथा सुगन्धि वाली थीं, वहाँ के वृक्ष सर्वदा पुष्प एवं फलों से लदे रहते थे, गर्मी की ऋतु में शीतल तथा शीत की ऋतु में गर्म जल वहाँ पर रहता था।।४८।।

पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालाङ्कुरधारिणः। लतावितानसंछन्ना नदीषु च सरःसु च।।४९।।

फूली हुई लम्बी शाखाओं वाले कोमल पत्तों तथा अंकुरों से युक्त लता के वितानों से ढके हुए वृक्ष, नदियों तथा तालाबों के तट पर वहाँ विद्यमान थे।।४९।।

वृक्षान्बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः। गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च।।५०।।

इस प्रकार के अनेक वृक्षों को नरसिंह भगवान् ने वहाँ पर देखा। वे सभी सुगन्धिपूर्ण पुष्पों तथा रसयुक्त फलों से लदे हुए थे।।५०।।

नातिशीतानि नोष्णानि तत्र तत्र सरांसि च।
अपश्यत्सर्वतीर्थानि सभायां तस्य स प्रभुः।।५१।।

वहाँ के तालब न तो अत्यन्त शीतल जल वाले थे और न गर्म जल वाले थे। हिरण्यकशिपु की उस विस्तृत सभा में भगवान् ने सभी तीर्थों को उपस्थित देखा।।५१।।

नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः। रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संवृतानि च॥५२॥

सुगन्धि युक्त नलिन, पुण्डरीक, शतपत्र, लाल कमल, नील कमल, कुमुद उन तालाबों में खिले हुए थे।।५२।।

सुकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैश्च सुप्रियैः। कारण्डवैश्चक्रवाकैः सारसैः कुररैरपि॥५३॥
विमलैः स्फाटिकाभैश्च पाण्डुरच्छदनैर्द्विजैः। बहुहंसोपगीतानि सारसाभिरुतानि च॥५४॥

अत्यन्त सुन्दर धार्तराष्ट्र, नेत्रों को अत्यन्त प्रिय दिखाई पड़ने वाले राजहंस, कारण्डव, सारस, कुरर स्वच्छ स्फटिक की शिलाओं के समान शुभ्र वर्ण तथा पीले वर्ण के पंखों वाले पक्षियों से वहाँ के सरोवर शोभायमान हो रहे थे। अनेक प्रकार के हंस तथा सारसों के कलरव उनमें हो रहे थे।।५३-५४।।

गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्टमञ्जरिधारिणीः। दृष्टवान्पर्वताग्रेषु नानापुष्पधरा लताः॥५५॥

भगवान् नृसिंह पर्वत के अग्रभाग पर सुगन्धिपूर्ण मनोहारिणी, बड़ी-बड़ी मंजरियों को धारण करने वाली अनेक प्रकार के रंग-बिरंगी पुष्पों से लदी हुई लताओं के देखा।।५५।।

केतक्यशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः।
चूता नीपाः प्रस्थपुष्पाः कदम्बा बकुला धवाः॥५६॥
प्रियङ्गुपाटलावृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः।
सालास्तालास्तमालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः॥५७॥
तथैवान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः।
विद्रुमाश्च द्रुमाश्चैव ज्वलिताग्निसमप्रभाः॥५८॥
स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः।
अञ्जनाशोकवर्णाश्च बहवश्चित्रका द्रुमाः॥५९॥

केतकी, अशोक सरल, पुन्नाग, तिलक अर्जुन, आम, बड़ी कदम्ब, प्रस्थपुष्प, छोटी कदम्ब, बकुल, धव, प्रियंगु, पाटल शाल्मलि, हरिद्रक, साल, ताल, तमाल तथा मनोहर चम्पक आदि वृक्ष वहाँ सुशोभित हो रहे थे। इसी प्रकार अन्य कई पुष्पों के वृक्ष वहाँ ऊँचे तना, लम्बी शाखाओं से युक्त ताल वृक्षों के समान विरामजान हो रहे थे। अंजन के समान काले, अशोक के वर्ण वाले अनेक चित्रक के वृक्ष वहाँ पर थे।।५६-५९।।

वरुणो वत्सनाभश्च पनसाःसहचन्दनैः।
नीपाः सुमनसश्चैव निम्बा अश्वत्थतिन्दुकाः॥६०॥
पारिजाताश्च लोध्राश्च मल्लिका भद्रदारवः।
आमलक्यस्तथा जम्बुलकुचाः शैलवालुकाः॥६१॥

खर्जूर्यो नारिकेलाश्च हरीतकविभीतकाः। कालीयका द्रुकालाश्च हिङ्गवः पारियात्रकाः॥६२॥

मन्दारकुन्दलक्ताश्च पतङ्गाः कुटजास्तथा।
रक्ताः कुरण्टकाश्चैव नीलाश्चागरुभिः सह॥६३॥
कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमा बीजपूरकाः।
सप्तपर्णाश्च बिल्वाश्च मधुपैरावृतास्तथा॥६४॥
अशोकाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः।
मधूकाः सप्तपर्णाश्च बहवः क्षीरका द्रुमाः॥६५॥
लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः। एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः॥६६॥

वरुण, वत्सनाभ, चन्दन, पनस (कटहल) नीम, खिले हुए फूलों वाले कदम्ब, पीपल, तिन्दुक, पारिजात, लोध्र, मल्लिका, भद्रदारु, इमली, जामुन, बड़हर, शैलवालुक, खजूर, नारियल, हर्रे, विभीतक, कालीयक, द्रुकाल, हिंगु, पारियात्रक मन्दार, कुन्द, लक्त, पतंग, कुटज, लाल कुरंटक, काले अगरु, मनोहर कदम्ब, अनार, बिजोरा, छितवान, बेल, भ्रमरों से घिरे हुए बहुत- से खिन्नी के वृक्ष, अनेक प्रकार की लताओं से घिरे हुए अशोक के तथा तमाल के वृक्ष, तथा महुआ के वृक्ष वहाँ सुशोभित हो रहे थे। पत्तों, पुष्पों तथा फूलों से लदी हुई विविध प्रकार की लताएँ तथा उपयुक्त वृक्षों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से जंगलों में होने वाले वृक्ष भी वहाँ विद्यमान थे॥६०-६६॥

नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः। चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः॥६७।
पुष्पिताः पुष्पिताग्रैश्च सम्पतन्ति महाद्रुमाः। रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगताः खगाः॥६८॥
परस्परमवेक्षन्ते प्रहृष्टा जीवजीवकाः।

चारों तरफ से ये वृक्ष अनेक प्रकार के पुष्पों तथा फलों से लदे हुए शोभायमान हो रहे थे। चकोर, शतपत्र, मतवाली कोयलें तथा मैना खिली हुई वृक्ष की डाली से दूसरी पर फुदक रही थी। लाल, पीले तथा लोहित वर्ण वाले वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए पक्षी वहाँ पर विराजमान हो रहे थे। अत्यन्त प्रसन्न होकर जीवजीवक (चकोर) नामक पक्षी के जोड़े वहाँ बैठे हुए एक-दूसरे को देख रहे थे॥६७-६८.५॥

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा॥६९॥
स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः।
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिः शिखाज्वलितकुण्डलः॥७०॥

उक्त सभा में बैठा हुआ दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु उस समय चिचित्र वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर विराजमान था। वह सहस्र स्त्रियों से घिरा हुआ था, उसके आभूषण तथा वस्त्रों की शोभा निराली थी। अति मूल्यवान मणियों एवं रत्नों की कान्तियों से उसके कुण्डल सुशोभित हो रहे थे॥६९-७०॥

आसीनश्चाऽऽसने चित्रे दशनल्वप्रमाणतः। दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते॥७१॥

दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ। हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः॥७२॥
उपचेरुर्महादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा। दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः॥७३॥

उसका सिंहासन दस नल्व का था, सूर्य के समान अतिदिव्य वस्त्र फर्श पर बिछा हुआ था। अति सुखकारी सगुन्धित वायु बह रही थी, सुप्रकाशित कुण्डल से विराजमान दैत्य उक्त सिंहासन पर बैठा हुआ था। उस समय सेवक गण हिरण्यकशिपु की सेवा में लगे हुए थे। प्रमुख गन्धर्व गण मनोहर ताल एवं लय से गीत गा रहे थे।।७१-७३।।

विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता।
दिव्याऽथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली॥७४॥

मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रलेखा शुचिस्मिता। चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशी तथा॥७५॥
एताः सहस्त्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः। उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्॥७६॥

विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, सोंरमेयी, समीची, पुञ्जकस्थली मिश्रकेशी, रम्या, सुन्दर हँसने वाली चित्रलेखा, चारुकेशी, मेनका, उर्वशी-ये सब स्वर्गलोक की अप्सरायें तथा अन्य सहस्त्रों नाचने-गाने में अति सुनामा निपुण अप्सराएँ प्रभावशाली असुरपति हिरण्यकशिपु की सेवा में उपस्थिति थीं।।७४-७६।।

तत्राऽऽसीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्। उपासते दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा॥७७॥
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्त्रशः। बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः॥७८॥
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः। सुरहन्ता सुनामा च प्रमतिः सुमतिर्वरः॥७९॥
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा। विश्वरूपः सुरूपश्च स्वबलश्च महाबलः॥८०॥
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महासुरः। घटास्योऽकम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः॥८१॥
दैत्यदानवसङ्घास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः। स्त्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः॥८२॥
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः। एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्॥८३॥

सभा के मध्यवर्ती आसन पर समासीन अद्भुत पराक्रमशाली उस महाबाहु हिरण्यकशिपु की परिचर्या में दिति के पुत्र दैत्यगण, जो सबके सब वरदान प्राप्त कर चुके थे, सहस्रों की संख्या में तत्पर थे। बलि, विरोचन, नरक, पृथ्वीपुत्र, प्रह्लाद, विप्रचित्ति, महासुर, गविष्ठ, देवताओं का शत्रु सुनामा, प्रमति, दैत्य श्रेष्ठ सुमति, घटोदर, महापार्श्व, कुथन, पिठर, विश्वरूप, सुरूप, महाबलवान् स्वबल, दशग्रीव, बाली, महासुर मेघवासा, घटमुख, अकम्पन, प्रजन, इन्द्रतापन-आदि असुरगण वहाँ पर उपस्थित होकर हिरण्यकशिपु की सेवा में तत्पर थे। सभी दैत्यों तथा दानवों के समूह उज्ज्वल कुण्डल से सुशोभित, सुन्दर भाला धारण किये हुए विराजमान थे। वे सबके सब बोलने में प्रवीण तथा सर्वदा व्रत में परायण रहने वाले थे।।७७-८३।।

उपासन्ति महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः। विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः॥८४॥
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः। भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः॥८५॥

तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः। हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः॥८६॥

सभी वरदान प्राप्तकर मृत्यु से रहित हो गये थे ये उपर्युक्त तथा अन्य बहुतेरे दैत्यगण प्रभावशाली हिरण्यकशिपु की सेवा में तत्पर थे। दिव्य वस्त्रों से सुशोभित होकर इन्द्र के समान सुन्दर शरीर वाले विचित्र प्रकार के केयूरों से सुशोभित बाहुओं वाले, आभूषणों से आभूषित दिति के पुत्रगण चारों ओर उसकी उपासना में तत्पर थे। उस दिव्य सभा में पर्वतों के समान भीषण आकृति वाले दैत्यगण सुवर्ण के समान कान्तिमान् शरीर के सूर्य के समान शोभायमान हो रहे थे॥८४-८६॥

न श्रुतं नैव दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्यथा। ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः॥८७॥

कनकरजतचित्रवेदिकायां परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम्।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम्॥८८॥
कनकविमलहारभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श।
दिवसकरमहाप्रभांज्वलन्तं दितिजसहस्त्रशतैर्निषेव्यमाणम्॥८९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहप्रादुर्भाव एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६१॥

आदितःश्लोकानां समाष्ट्यङ्काः॥८७०३॥

सूत ऋषियों से कहते हैं कि दैत्यसिंह महात्मा हिरण्यकशिपु के समान ऐश्वर्य न तो कहीं सुना गया है और न कहीं देखा गया है। सुवर्ण तथा चाँदी से बनी हुई विचित्र वेदी पर, रंग-बिरंगे रत्नों से जटित वीथिका में, जो रत्नों से जटित झरोखों से सुशोभित थी। नरसिंह भगवान् ने, सूर्य की कान्ति के समान अतिशय तेजोमय, सुन्दर सुवर्ण की बनी माला से सुशोभित सेवा में तत्पर सैकड़ों-सहस्त्रों दैत्यों से संयुक्त दिति के पुत्र उस हिरण्यकशिपु का देखा॥८७-८९॥

॥एक सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त॥१६१॥

❖❖❖

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विष्णु का नरसिंह रूप धारण और प्रह्लाद की प्रार्थना, नरसिंह और दानवों का भीषण युद्ध

सूत उवाच

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवाऽऽगतम्। नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम्॥१॥

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान्। दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम्॥२॥

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमाश्रितम्। विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च यः॥३॥

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! तदनन्तर नरसिंह रूप में छिपे हुए महनीय आत्मा भगवान् विष्णु को राख में छिपी हुई अग्नि के समान अथवा कालचक्र की भाँति आया हुआ देखकर हिरण्यकशिपु के पुत्र पराक्रमशाली प्रह्लाद ने दिव्यदृष्टि द्वारा उन आये हुए भगवान् को सिंह रूप में देखा। इस प्रकार वहाँ उपस्थित सुवर्ण के पर्वत के समान शोभायमान् अपूर्व शरीर वाले नरसिंह भगवान् को विस्मित होकर सभी दानवों ने तथा उस हिरण्यकशिपु ने भी देखा॥१-३॥

प्रह्लाद उवाच

महाबाहो महाराज दैत्यानामादिसम्भव। न श्रुतं न च नो दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः॥४॥

प्रह्लाद ने कहा-महाबाहुशाली महाराज! दैत्यों के मूल पुरुष! इस प्रकार का आधा मानव तथा आधा सिंह का शरीर' मैंने न तो कभी देखा था और न सुना था॥४॥

अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमागतम्। दैत्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम॥५॥

अव्यक्त उत्पत्ति एवं दिव्य स्वरूप वाला यह कौन यहाँ आया हुआ है? मेरे मन में सन्देह हो रहा है कि यह भयानक स्वरूप दैत्यों का अन्त करने वाला है॥५॥

अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्च याः।
हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः॥६॥

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह। धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः॥७॥

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः। नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः॥८॥

इस देव के शरीर में सागर तथा नदियाँ विराजमान दिखाई पड़ रहीं हैं, हिमवान् पारियात्र तथा अन्य जो कुल पर्वत हैं; नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, वसुओं समेत बारह आदित्य, धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण, यमराज, शचीपति इन्द्र, मरुत्, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण, नाग, यक्ष, पिशाच, भयानक पराक्रमवाले राक्षस इस शरीर में दिखाई पड़ रहे हैं॥६-८॥

ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै। स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च॥९॥

भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः। विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा॥१०॥

सर्वं त्रिभुवनं राजँल्लोकधर्माश्च शाश्वताः।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिंस्तथेदमखिलं जगत्॥११॥

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्चयोगाश्च महीरुहाश्च।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च रतिश्च सत्यं च तपो दमश्च॥१२॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो धर्मश्च मोहः पितरश्च सर्वे॥१३॥

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
उवाच दानवान्सर्वान्गणांश्च स गणाधिपः॥१४॥

मृगेन्द्री गृह्यतामेष अपूर्वां तनुमास्थितः। यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः॥१५॥

ब्रह्मा तथा भगवान् शंकर ललाट में विराजमान हैं। सभी प्रकार के स्थावर तथा जंगम जीव, हम सभी दैत्य गणों के साथ आप तथा सौ विमानों से आकीर्ण आपकी सभा भी उसमें दिखाई पड़ रही है। प्रजापति महात्मा मनु, ग्रह, योग, वृक्ष, उत्पात, काल, धैर्य, मति, सत्य, तप, दम, महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेव, सभी ऋषिगण, क्रोध, काम, हर्ष वर्म मोह तथा सभी पितरगण भी इस शरीर में विराजमान हैं। प्रह्लाद के वचन सुनकर प्रभावशाली हिरण्यकशिपु ने सभी दानवों तथा उनके गणों के प्रति अभिमुख होकर कहा-तुम लोग जाकर अपूर्व शरीर धारण करने वाले इस नरसिंह को पकड़ो, यदि पकड़े जाने में कोई सन्देह हो तो इस वन्य पशु को कहीं भी पा कर मार डालो।।९-१५।।

ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्। परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा॥१६॥

सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः।
बभञ्ज तां सभां दिव्यां व्यादितास्य इवान्तकः॥१७॥
सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषाद्व्याकुललोचनः॥१८॥

हिरण्यकशिपु की आज्ञा से उनसबों ने महापराक्रमी उस मृगेन्द्र रूपधारी भगवान् के ऊपर अत्यन्त हर्षित होकर अस्त्रों का प्रहार किया और अपने तेज से दुखाने की कोशिश की, महाबलवान् नरसिंह ने सिंह गर्जनाकर मुँह बाये हुए काल के समान भीषण हो उस सभा के भंग हो जाने पर स्वयं हिरण्यकशिपु ने व्याकुल नेत्र होकर सिंह के ऊपर अपने अस्त्रों का प्रहार किया।।१६-१८।।

सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमन्त्रं सुदारुणम्।
कालचक्रं तथाऽघोरं विष्णुचक्रं तथा परम्॥१९॥

पैतामहं तथाऽत्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत्। विचित्रामशनीं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम्॥२०॥
रौद्रं तथोग्रं शूलं च कङ्कालं मुसलं तथा। मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम्॥२१॥
वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैङ्करम्। तथाऽप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च॥२२॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा। कम्पनं शातनं चैव त्वाष्ट्रं चैव सुभैरवम्॥२३॥
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनं च महाबलम्। संवर्तनं मोहनं च तथा मायाधरं परम्॥२४॥
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम्। प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम्॥
अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः॥२५॥
अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च। नारायणास्त्रमैन्द्रं च सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम्॥२६॥

पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा। महाबलं भावनं च प्रस्थापनविकम्पने॥२७॥

एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाऽऽहुतिम्॥२८॥

हिरण्यकशिपु ने सभी प्रकार के अस्त्रों में श्रेष्ठ अत्यन्त दारुण दण्ड को, घोर कालचक्र को श्रेष्ठ विष्णुचक्र को तीनों लोकों को जलाने वाले अत्यन्त उग्र पितामह के ब्रह्मास्त्र को, विचित्र वज्र को, पुनः शुष्क तथा आर्द्र दो वज्रों को, अत्यन्त भयानक तथा रौद्र शूल को, कंकाल तथा मूसल को, मोहन, शोषण, संतापन तथा विलापन नामक अस्त्र को, वायव्य मथन, कपाल, कैंकर, कभी विफल न होने वाली कठोर शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, ब्रह्मशिरास्त्र, कम्पन, शातन, त्वाष्ट्र, तथा सुभैरव, अत्यन्त क्षुब्ध करने वाले कालमुद्गर को महापराक्रम दिखाने वाले तपनास्त्र को, संवर्तन, मोहन; तथा श्रेष्ठ मायाधर को प्रिय गान्धर्व अस्त्र, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, अतिश्रेष्ठ वारुण नामक अस्त्र को तथा पाशुपत नामक विख्यात अस्त्र को, जिसकी गति कहीं भी नहीं रोकी जाती, हयशिरा नामक अस्त्र को, ब्राह्म अस्त्र को नारायण ऐन्द्र तथा अद्भुत सार्प नामक अस्त्र को, कभी विफल न होने वाले पैशाच, शामन शोषद, अति विक्रमी भावन, प्रस्थापन तथा विकम्पन-इन उपर्युक्त अस्त्रों को उस समय हिरण्यकशिपु ने नृसिंह भगवान् के ऊपर इस प्रकार छोड़ा, जैसे जलती हुई अग्नि के ऊपर आहुति छोड़ी जाती है॥१९-२८॥

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमः। विवस्वान्धर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः॥२९॥

अस्त्रों द्वारा प्रकाशमान होते हुए नरसिंह भगवान् को असुरनायक हिरण्यकशिपु ने इस प्रकार आवृत कर लिया था, जैसे ग्रीष्मऋतु में हिमालय को सूर्य अपनी किरणों द्वारा॥२९॥

स ह्यमर्षानिलोद्भूतो दैत्यानां सैन्यसागरः। क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः॥३०॥

भगवान् के अमर्ष रूप वायु से तपाया गया वह दैत्यों का सैन्यसमुद्र क्षण भर में इस प्रकार क्षुब्ध हो गया, जैसे समुद्र मैनाक पर्वत को डुबोकर क्षुब्ध हो गया था॥३०॥

प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा।
वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः॥३१॥

मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः। शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः॥३२॥

अनन्तर भाले, फाँसी, तलवार, गदा, मूसल, वज्र, अग्नि समेत अशनि, बड़े-बड़े वृक्ष मुद्गर, भिन्दिपाल, शिलाएँ, उलूखल, पर्वत, जलती हुई तोपें तथा कठोर दण्डों से युद्ध होने लगा॥३१-३२॥

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगाः।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकायाः स्थितास्त्रिशीर्षा इव नागपाशाः॥३३॥

इन्द्र के समान वज्र एवं अशनि को धारण किये हुए वेगपूर्वक वे दानवगण हाथ में फाँसी लेकर, चारों ओर से प्रहार के लिए हाथ को उठाये हुए उस युद्ध भूमि में तीन शिरों वाले नागपाश के समान स्थित हुए दिखाई पड़ रहे थे॥३३॥

सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इवाऽऽभान्ति विशालपक्षाः॥३४॥

वे सभी सुवर्ण की बनी हुई मालाओं से विभूषित अंगों वाले थे, पीले रेशमी वस्त्रों से अपने अंगों को सजाये हुए थे। उस समय वे मोतियों की माला से सुशोभित पार्श्व वाले विशाल पंखों वाले हंसों के समान सुशोभित हो रहे थे।।३४।।

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीवलयोत्कटानाम्।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि॥३५॥

केयूर तथा वलय से सुशोभित उत्कट पराक्रमशाली, वायु के समान तेजस्वी उन दानवों के सिर चारों ओर से प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान कान्तिमान् शोभित हो रहे थे।।३५।।

क्षिपद्भिरुग्रैर्ज्वलितैर्महाबलैर्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरो द्रुमैः॥३६॥

चारों ओर से गिरते हुए देदीप्यमान, अतिशय प्रभाव वाले, महान् अस्त्रों के समूहों तथा महाबलवान् राक्षसों से घिरे हुए नरसिंह भगवान् उस समय इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, जिस प्रकार निरन्तर बरसने वाले मेघों तथा वृक्षों द्वारा किये गये घने अंधकार से युक्त गुफाओं वाला पर्वत ।।३६।।

तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः।
नाकम्पताऽऽजौ भगवान्प्रतापस्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः॥३७॥

उन महान् अस्त्रों के समूहों तथा महाबलवान् दैत्यों द्वारा प्रहार किये जाने पर भी प्रतापशाली नरसिंह भगवान् इस प्रकार रणभूमि में विचलित नहीं हुए, जैसे प्रकृति से ही गम्भीर हिमवान् पर्वत।।३७।।

संत्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धुताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः॥३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहप्रादुर्भावो नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६२।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८७४१।।

अग्नि के समान उग्र स्वरूप वाले नरसिंह भगवान् से डरवाये गये दैत्यों के समूह इस प्रकार विचलित हो गये, जैसे प्रबल वायु के थपेड़ों से क्षुब्ध होने पर समुद्र में लहरियाँ दौड़ने लगती हैं।।३८।।

।।एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त।।१६२।।

❖❖❖

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्यकशिपु वध वर्णन

सूत उवाच

खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः। ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिताः॥१॥

सूतजी कहते हैं-ऋषिवृन्द! उस रणभूमि में कुछ दानव खर के आकार वाले, खर के समान मुख वाले, मकर तथा सर्प के समान मुख वाले थे, तो कुछ मृग के समान मुख वाले तथा शूकर के समान मुख वाले थे॥१॥

बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा। अर्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा॥२॥

कुछ प्रातःकालीन सूर्य के समान मुख वाले थे। कुछ आधे चन्द्रमा के समान मुख वाले तथा प्रज्वलित अग्नि के समान मुख वाले थे॥२॥

हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः।
सिंहास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा॥३॥

भयानक आकृति वाले, मुख बाये हुए कुछ असुर हंस तथा मुर्गे के समान मुख वाले थे। कुछ सिंह के समान भयानक मुख वाले किसी को चटकर जाने की ताक में थे, कुछ काक तथा गृध्र के समान मुख वाले थे॥३॥

द्विजिह्वका वक्रशीर्षास्तथोल्कामुखसंस्थिताः।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः॥४॥

कुछ दो जीभों वाले, कुछ टेढ़े सिर वाले तथा कुछ उल्का के समान मुख वाले थे। अन्य के कुछ महाग्राह के समान मुख वाले अत्यन्त गर्वीले दानवों के समूह थे॥४॥

शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शरवृष्टिभिः। अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे॥५॥
एवं भूयोऽपरान्घोरानसृजन्दानवेश्वराः। मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः॥६॥
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः। विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते॥७॥

किन्तु युद्धभूमि में उन असुरों के बाणों की वृष्टि से पर्वत समान दृढ़ शरीर वाले अवध्य नरसिंह भगवान् के शरीर में कुछ भी व्यथा नहीं हुई क्रुद्ध हुए। फुफकारते हुए सर्पों के समान उन श्रेष्ठ दानवों ने इसी प्रकार पुनः अन्य घोर अस्त्रों को नरसिंह भगवान् के ऊपर फेंका, किन्तु दानवेन्द्रों द्वारा छोड़े गये वे अत्यन्त कठोर दानवों के बाण आकाश में ही पर्वत खद्योत की भाँति प्रकाशित होकर विलीन हो गये॥५-७॥

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः। मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानि समन्ततः॥८॥

तैरासीद्गगनं चक्रैः सम्पतद्भिरितस्ततः। युगान्ते संप्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव॥९॥

तब क्रोध से अभिभूत होकर उन दैत्यों ने चारों ओर से अग्नि के समान जलते हुए दिव्य प्रभावशाली चक्रों को नरसिंह के ऊपर छोड़ा। इधर-उधर उड़ते हुए उन चक्रों से समस्त आकाशमण्डल प्रलयकाल में प्रकाशमान चन्द्रमा सूर्य तथा ग्रहों के इधर-उधर भ्रमण करते हुए की भाँति दिखाई पड़ने लगा॥८-९॥

तानि सर्वाणि चक्राणि मृगेन्द्रेण महात्मना।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदा पावकार्चिःसमानि वै॥१०॥

अग्नि की लपटों के समान ऊपर प्रकाशित होते हुए उन सभी चक्रों को महात्मा नरसिंह ने अपने मुख में निगल लिया॥१०॥

तानि चक्राणि वदने विशमानानि भान्ति वै। मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव॥११॥

मुख में प्रविष्ट होते समय वे चक्रों के समूह बादलों के पेट में प्रविष्ट होते हुए चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्यान्य ग्रहों की भाँति शोभित हो रहे थे॥११॥

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम्।
शक्तिं प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्प्रभाम्॥१२॥

इस प्रकार उन चक्रों के निष्फल हो जाने पर हिरण्यकशिपु ने अति प्रभावशालिनी अति कठोर बिजली के समान चमकती हुई शक्ति को नरसिंह के ऊपर छोड़ा॥१२॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्ज्वलाम्। हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा॥१३॥

उस परमतेजोमयी सुप्रकाशित शक्ति को आती देख नरसिंह ने अपने अति भयानक हुङ्कार से ही भंग कर दिया। भगवान् द्वारा भंग की गई वह शक्ति पृथ्वीतल पर गिरते समय इस प्रकार शोभायमान हो रही थी, मानो आकाश से गिरी हुई चिनगारियों समेत बहुत बड़ी उल्का हो॥१३॥

रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता॥१४॥

नरसिंह के समीप दैत्यों द्वारा छोड़े गये उन बाणों की उज्ज्वल पंक्तियाँ नीले कमल के पत्तों की माला के समान शोभायमान हो रही थी॥१४॥

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजेऽविदूरतः। नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना॥१५॥

स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम्।
तत्सैन्यमुत्सारितवांस्तृणाग्राणीव मारुतः॥१६॥

भगवान् नरसिंह ने अपने पराक्रम को प्रदर्शित करते हुए सुखपूर्वक गर्जना की और उस समस्त दानव की सेना को इस प्रकार सामने से हटा दिया जैसे वायु तृणों के तिनकों को उड़ा देता है॥१५-१६॥

ततोऽश्मवर्षं दैत्यैन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः। नागमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः॥१७॥

तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूर्धनि पातितम्। दिशो दश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव॥१८॥

उस समय वे दैत्यों के सेनापति आकाश में जाकर बड़े-बड़े पत्थरों की वर्षा करने लगे। नरसिंह के ऊपर गिरकर वे पत्थर इस प्रकार विकीर्ण हो गये, जैसे खद्योतों के समूह।।१७-१८।।

तदाऽश्मौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिंदमम्। छादयाञ्चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम्॥१९॥

तब दानवों ने अति दृढ़ पर्वतों के बड़े-बड़े शिखरों के आकार वाले, छोटी-छोटी पहाड़ियों के समान बड़े-बड़े पत्थरों की चट्टानों को शत्रुओं को वश में करने वाले नरसिंह भगवान् के ऊपर इस प्रकार बरसाना प्रारम्भ किया, जैसे जल की धारा पर्वत पर गिर रही हो।।१९।।

न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा देवसत्तमम्। भीमवेगोऽचलश्रेष्ठं समुद्र इव मन्दरम्॥२०॥

किन्तु इस प्रकार पत्थरों की वृष्टि करके भी दैत्यगण देवश्रेष्ठ भगवान् को विचलित करने में इस प्रकार असफल रहे, जैसे मन्दराचल पर्वत को समुद्र इधर-उधर टस से मस नहीं कर सकता।।२०।।

ततोऽश्मवर्षे विहते जलवर्षमनन्तरम्। धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत्समन्ततः॥२१॥

दैत्यों ने पत्थरों की वृष्टि से कोई लाभ होता न देखकर जल की वृष्टि की, जिससे चारों ओर से मूसलाधार वृष्टि होने लगी।।२१।।

नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः समन्ततः।
आवृत्य सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा॥२२॥

आकाश से गिरती हुई तिरछे वेग वाली जल की धाराओं ने चारों ओर से आकाश दिशाओं के कोणों को घेर लिया।।२२।।

धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायां च सर्वशः।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्त्योऽनिशं भुवि॥२३॥

पृथ्वी और आकाश में व्याप्त हुई वह जल की धारा रात-दिन गिरती हुई देवाधिदेव को छू तक नहीं सकी।।२३।।

बाह्यतो ववृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषुः। मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया॥२४॥

बाहर इधर-उधर चारों ओर से घोर वृष्टि तो होती थी, पर मृगेन्द्र भगवान् के युद्ध भूमि में उपस्थित होने के कारण उनके प्रभाव से उनके ऊपर होकर वृष्टि नहीं हो रही थी।।२४।।

हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते। सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम्॥२५॥

इस प्रकार पत्थर की वर्षा के निष्फल कर देने तथा जल की वृष्टि के सोख लिये जानेपर उस दैत्य ने अग्नि तथा वायु के वेगों से युक्त माया को छोड़ा।।२५।।

महेन्द्रस्तोयदैः सार्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः। महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम्॥२६॥

किन्तु अति द्युतिमान सहस्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र ने बादलों के साथ अति घोर वृष्टि द्वारा उस अग्नि को शान्त कर दिया।।२६।।

तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः। असृजद्घोरसङ्काशं तमस्तीव्रं समन्ततः।।२७।।

युद्ध भूमि में उस माया के भी निवारित हो जाने पर दानव ने चारों ओर से अत्यन्त घोर तथा घने अन्धकार युक्त माया को छोड़ा।।२७।।

तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च। स्वतेजसा परिवृतो दिवामर इवाऽऽबभौ।।२८।।
त्रिशिखां भुकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे। ललाटस्थां त्रिशूलाङ्कां गङ्गां त्रिपथगामिव।।२९।।

अंधकार से समस्त जगत् के व्याप्त हो जाने पर उस युद्ध भूमि में दैत्यगण विविध अस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्धार्थ आये। नरसिंह भगवान् उस समय अपने तेज देदीप्यमान सूर्य की भाँति दिखाई पड़ने लगे, दानवों ने रण में उनकी तीन रेखाओं वाली भृकुटी को ललाट में स्थित तीन पथों से जाने वाली त्रिशूल के आकाश में अंकित गंगा के समान देखा।।२८-२९।।

ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः। हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णाः शरणं ययुः।।३०।।

इस प्रकार अपनी सब मायाओं के निष्फल हो जाने पर दिति के पुत्रगण अत्यन्त दुःखी एवं चिन्तित होकर हिरण्यकशिपु की शरण में गये।।३०।।

ततः प्रज्वलितः क्रोधात्प्रदहन्निव तेजसा। तस्मिन्क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत्।।३१।।

तदुपरान्त अत्यन्त क्रुद्ध होकर तेज से जलते हुए की भाँति जब दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु युद्ध भूमि में आया तो समस्त जगत् अन्धकार में लीन-सा हो गया।।३१।।

आवहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः। परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः।।३२।।
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसिनः। इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः।।३३।।

आवह, प्रवह, विवह, उदावह, परावह, संवह तथा परिवह नामक अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी, श्रीमान्, उत्पात एवं भय की सूचना देने वाले वायुगण आकाश में बहने लगे।।३२-३३।।

ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै। ते सर्वे गगने दुष्टा व्यचरन्त यथासुखम्।।३४।।

जो ग्रह समस्त लोक के क्षयकाल में दिंखाई पड़ते थे, वे सभी उस समय आकाश में सुखपूर्वक विचरते हुए देखे गये।।३४।।

अयोगतश्चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः। सग्रहः सह नक्षत्रैराकापतिररिंदमः।।३५।।
विवर्णतां च भगवान्गातो दिवि दिवाकरः। कृष्णं कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि।।३६।।

रात में निशाचर राहुगण ने बिना योग के ही (ग्रहण) योग उपस्थित कर दिया। रात में नक्षत्रों तथा ग्रहों समेत शत्रुओं को वश में करने वाले चन्द्रमा तथा दिन में सूर्य एकदम मलिन हो गये। विस्तृत आकाश मण्डल में काला कबन्ध दिखाई पड़ने लगा।।३५-३६।।

अमुञ्चच्चार्चिषां वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः। गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते॥३७॥

भूमि पर रहकर भी अग्नि देव चिनगारियों के समूह छोड़ने लगे एवं आकाशमण्डल में भी अवस्थित भगवान् अग्नि निरन्तर दिखाई पड़ने लगे॥३७॥

सप्तधूम्रनिभा घोरा सूर्या दिवि समुत्थिताः।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः॥३८॥

वामे तु दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती। शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमद्युतिः॥३९॥

धुएँ के समान अति भयानक आकृति वाले सात सूर्य आकाश मण्डल में उदित हुए दिखाई पड़ने लगे, आकाश में अवस्थित चन्द्रमा के शिखर पर ग्रहगण स्थित हो गये। अग्नि के समान तेज से देदीप्यमान शनैश्चर और मंगल-ये दोनों ग्रह साथ ही साथ आकाश में दिखाई पड़ने लगे॥३८-३९॥

समं समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचराः। शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः॥४०॥

वे सभी आकाश में दिखाई पड़ने वाले नक्षत्रगण, जो युगान्त के सूचक थे एवं अत्यन्त विषम परिणाम देने वाले थे, एक ही साथ आकाश मण्डल में धीरे-धीरे शिखर पर आरोहित होते हुए दिखाई पड़ने लगे॥४०॥

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैर्ग्रहैः सह तमोनुदः। चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनन्दत॥४१॥

अंधकार दूर करने वाले चन्द्रमा के नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ चराचर के विनाश के लिए रोहिणी को अभिनंदित नहीं किया॥४१॥

गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते।
उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे विचरन्ति यथासुखम्॥४२॥

राहु से ग्रस्त हुआ चन्द्रमा उल्काओं से पीड़ित होने लगा, उसमें जलती हुई उल्काएँ सुखपूर्वक विचरण करने लगीं॥४२॥

देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत शोणितम्।
अपतन्गगनादुल्का विद्युद्रूपा महास्वनाः॥४३॥

देवताओं का भी देवता जो है वह रक्त की वर्षा करने लगा और उस समय आकाशमण्डल से अति घोर शब्द करती हुई विद्युत् के रूप में उल्काएँ पृथ्वी पर गिरने लगीं॥४३॥

अकाले च द्रुमाः सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च।
लताश्च सफलाः सर्वा ये चाऽऽहुर्दैत्यनाशनम्॥४४॥

सभी वृक्ष बिना अपने समय के आधे अकाल ही में फूलने और फलने लगे, लताएँ सभी फलने लगीं, जो सभी दैत्यों के विनाश की सूचना दे रही थीं॥४४॥

फलैः फलान्यजायन्त पुष्पैः पुष्पं तथैव च।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च॥४५॥
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च।
प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम्॥४६॥

फलों से फल पैदा होने लगे, पुष्पों से पुष्प फूलने लगे, देवताओं की मूर्तियों की मूर्तियाँ आँखें खोलने लगीं, बन्द करने लगीं, हँसने लगीं, रोने लगीं, जोर-जोर से चिल्लाने लगीं, धुआँ करने लगीं, जलने लगीं, इस प्रकार का उत्पात कर वे घोर भय की सूचना देने लगीं।।४५-४६।।

आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः। चक्रुः सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम्॥४७॥
नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः। न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः॥४८॥

ग्राम में उत्पन्न होने वाले पशु-पक्षी जंगली पशु-पक्षियों से अति भयानक युद्ध करने लगे, गन्दे जल से युक्त होकर नदियाँ उल्टी बहने लगीं, रक्त और धूलि से व्याप्त दिशाएँ प्रकाश से रहित हो गई।।४७-४८।।

वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन। वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च॥४९॥

पूजा के योग्य वनस्पति वर्गों की पूजा (रक्षा) नहीं हुई। वे सभी वायु के प्रबल झोकों से टूटने लगे, तड़ित होने लगे, नम्र होने लगे।।४९।।

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते। अपराह्णगते सूर्ये लोकानां युगसङ्क्षये॥५०॥
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः। भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु॥५१॥

इसके अतिरिक्त अपराह्न में सूर्य के रहते हुए भी जीवों की छाया परिवर्तित होती नहीं दिखाई पड़ती थी। इस प्रकार युगान्त के समान भयकारी उस समय में हिरण्यकशिपु दैत्य के भवन पर, खजाने पर तथा अस्त्रागार के ऊपर मधु गिरने लगी?५०-५१।।

असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः॥५२॥

असुरों के विनाश तथा देवताओं की विजय के सूचक अत्यन्त घोर तथा भयानक अनेक प्रकार के उत्पात उस समय घटित होने लगे।।५२।।

एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः।
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः॥५३॥

ये ऊपर कहे गये तथा इनसबों के अतिरिक्त अन्य बहुत से उत्पात, काल की प्रेरणा तथा विधि के विधान से दिखाई पड़ने लगे।।५३।।

मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना। महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः॥५४॥

विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम्।
चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः॥५५॥

तब महाबली दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पृथ्वी के कँपा देने पर अमित तेजस्वी पर्वत तथा नागों के समूह गिरने लगे, विष की ज्वाला से पूर्ण मुखों वाले चार सिर वाले, पाँच सिर वाले तथा सर्पगण आग उगलने लगे।।५४-५५।।

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ।
एलामुखः कालियश्च महापद्मश्च वीर्यवान्॥५६॥
सहस्रशीर्षो नागो वै हेमतालध्वजः प्रभुः।
शेषोऽनन्तो महाभागो दुष्प्रकम्प्यः प्रकम्पितः॥५७॥
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च। तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः॥५८॥

वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, एलामुख, कालिय, बलवान् महापद्म, सहस्रफणों वाला प्रभावशाली हेमतालध्वज नामक नाग, महाभाग्यशाली अनन्त शेषनाग, जो कठिनाई से कँपने वाले हैं-सभी उस समय प्रकम्पित हो उठे। पृथ्वी के धारण करने वाले, जल के अन्दर रहने वाले सभी जीवगण उद्दीप्त हो उठे। उस समय रणभूमि में क्रुद्ध हुए हिरण्यकशिपु ने सभी को विकम्पित कर दिया।।५६-५८।।

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान्महीम्॥५९॥

इस प्रकार पाताल में टहलने वाले परम तेजस्वी नागगण अतिशय कम्पित हो गये, जिस समय हिरण्यकशिपु दैत्य ने पृथ्वी का स्पर्श किया।।५९।।

सन्दष्टौष्ठपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः। नदी भगीरथी चैव शरयूः कौशिकी तथा॥६०॥
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणा च निम्नगा। सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा॥६१॥
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः। कमलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः॥६२॥
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी। गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती॥६३॥
मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी। जम्बूद्वीपं रत्नतटं सर्वरत्नोपशोभितम्॥६४॥
सुवर्णप्रकटं चैव सुवर्णाकरमण्डितम्। महानदं च लौहित्यं शैलकाननशोभितम्॥६५॥
पत्तनं कोशकरणमृषिवीरजनाकरम्। मागधाश्च महाग्रामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च॥६६॥
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम्॥६७॥

पूर्वकाल में उत्पन्न होने वाला वह दैत्य वाराह भगवान् की भाँति दोनों होठों को चबाता हुआ उस समय शोभित हो रहा था। भागीरथी, कौशिकी, यमुना, कावेरी, कृष्णवेणी नामक नदी, महाभाग्यशालिनी

सुवेणा नदी, गोदावरी, चर्मण्वती, सिन्धु, अनेक नदियों तथा नदों का स्वामी कमलों का उत्पत्ति स्थान मणि के समान स्वच्छ जल वाला शोण नामक नद, सुन्दर जल वाली नर्मदा, वेत्रवती, गौओं के देशों में बहने वाली गोमती, पूर्व सरस्वती, मही, कालमही, तमसा, पुष्पवाहिनी-इन सभी नदियों, जम्बूद्वीप, सभी प्रकार के रत्नों से सुशोभित रत्नतट, जिसमें सुवर्ण की खानि से सुशोभित हैं, नामक द्वीप, जंगलों तथा पर्वतों से सुशोभित लौहित्य नामक महानद, ऋषियों तथा वीरों का उत्पत्ति स्थान कोशकरण नामक देश, बड़े-बड़े ग्रामों वाले मागध देश, मुड, शुंग, सुह्म, मल्ल, विदेह, मालव, काशी, कोसल इन सब प्रदेशों को तथा विनता के पुत्र गरुड़ के भवन को भी, उस दैत्येन्द्र ने प्रकम्पित कर दिया, जिसे विश्वकर्मा ने कैलास पर्वत के शिखर के आकार के समान का बनाया था।।६०-६७।।

कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः।।६८।।

उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम्। सुवर्णवेदिकः श्रीमान्मेघपङ्क्तिनिषेवितः।।६९।।
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः। शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः।।७०।।

अत्यन्त भयानक लाल जल वाले लौहित्य (लाल) सागर, सौ योजन ऊँचे उदय नामक पर्वत को भी, जो सुवर्ण की वेदी से सुशोभित, शोभा वाली तथा मेघों के समूहों द्वारा सुसेवित तथा सूर्य के समान देदीप्यमान सुवर्णमय साल, ताल, तमाल तथा फूले हुए कनेर के वृक्षों से सुशोभित है, उस दैत्य ने कँपाया।।६८-७०।।

अयोमुखश्च विख्यातः पर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः।।७१।।
सुराष्ट्राश्च सबाह्लीकाः शूराभीरास्तथैव च।
भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः।।७२।।
तथैवोण्ड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः।।७३।।

सभी धातुओं से विभूषित अयोमुख नामक पर्वत को तमाल के वनों से सुशोभित सुगन्धियुक्त सुन्दर मलय नामक पर्वत को, सुराष्ट्र, वाह्लीक, शूराभीर, भोज, पाण्ड्य, वङ्ग, कलिङ्ग, ताम्रलिप्त उण्ड्र, पौण्ड्र, वामचूड तथा केरल देश के निवासियों को देवताओं तथा अप्सराओं के समूह समेत उस दैत्य ने क्षुब्ध कर दिया।।७१-७३।।

अगस्त्यभवनं चैव यदगम्यं कृतं पुरा। सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम्।।७४।।

इसी प्रकार महर्षि अगस्त के भवन को भी उसने कँपा दिया, जहाँ पर प्राचीनकाल में कोई नहीं जाता था तथा जहाँ पर सिद्धों तथा चारणों के समूह सर्वदा विराजमान रहते थे।।७४।।

विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम्। जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणनादितम्।।७५।।

गिरिपुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः। उत्थितः सागरं भित्त्वा विश्रामश्चन्द्रसूर्ययोः।।
रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव।।७६।।
चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतैः। विद्युत्वान्सर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम्।।७७।।
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे। ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान्वृषभसंज्ञितः।।७८।।

जहाँ पर अनेक प्रकार के पक्षीगण कलरव किया करते थे तथा फूले हुए बड़े-बड़े वृक्ष विद्यमान थे एवं सुवर्णमय पहाड़ों के शिखर सुशोभित थे। अप्सराओं के समूह वहाँ क्रीडा में निरत रहते थे। गिरिपुष्पितक नामक शोभाशाली देखने में अति मनोहर पर्वत, जो सागर का भेदन कर सूर्य तथा चन्द्रमा को विश्राम देने वाला था, वहीं अत्यन्त उच्च शिखरों से आकाश का भेदन करता हुआ स्थित था। चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों के समान मनोहर एवं तेजस्वी, समुद्र की अपार जलराशि से चारों ओर घिरे हुए शिखरों से शोभा सम्पन्न विद्युत्वान् नामक पर्वत भी वहाँ था, जो सौ योजन में विस्तृत था। उस श्रेष्ठ पर्वत पर बिजलियों के समूह सर्वदा गिरते रहते थे, वहीं पर ऋषभ शोभा वाली वृषभ तथा कुंजर नामक पर्वत भी थे, जहाँ पर अगस्त्य मुनि का सुन्दर भवन था। अत्यन्त दुरधिगम्य विशालाक्ष नामक पर्वत भी वहीं था, जो सर्पों का निवास स्थान था। इन सबको तथा पुरी तथा भोगवती नामक नगरी-इन सबको भी दैत्येन्द्र ने कँपा दिया।।७५-७८।।

कुञ्जरः पर्वतः श्रीमान्यत्रागस्त्यगृहं शुभम्। विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालयःपुरी।।७९।।
तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता। महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः।।८०।।
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः। प्राग्ज्यौतिषपुरं चापि जातरूपमयं शुभम्।।८१।।
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः। मेघश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः।।८२।।
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः। तरुणादित्यसंङ्काशो मेरुस्तत्र महागिरिः।।८३।।
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः। हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखो गिरिः।।८४।।

महासेन, पारियात्र, गिरिश्रेष्ठ चक्रवान तथा वाराह नामक पर्वत, सुवर्णमय सुन्दर प्राग्ज्योतिष नामक पुर, जिसमें अति दुष्टात्मा नरक नामक दानव का निवास स्थान था, मेघों के समान सर्वदा गम्भीर ध्वनि करने वाला मेघ नामक गिरिश्रेष्ठ है ऋषिवृन्द! जिसमें अन्य साठ पर्वत भी सम्मलित हैं, मध्यकालीन सूर्य के समान महागिरि सुमेरु, जिसकी कन्दराओं में नित्य ही यक्षों, राक्षसों तथा गन्धर्वों का समूह निवास करता है, महान् पर्वत हेमगर्भ, हेमसख तथा शैलराज कैलाश-इन सबको भी दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु ने कँपा दिया।।७९-८४।।

कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पितः। हेमपुष्करसंछन्नं तेन वैखानसं सरः।।८५।।
कम्पितं मानसं चैव हंसकारण्डवाकुलम्। त्रिशृङ्गपर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा।।८६।।
तुषारचयसंछन्नो मन्दरश्चापि पर्वतः। उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाऽद्रिराट्।।८७।।
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्कर पर्वतः। देवाभ्रपर्वतश्चैव तथा वै रेणुको गिरिः।।८८।।

क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः। एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा॥८९॥

उस दैत्य ने सुवर्ण के कमलों से ढके हुए वैखानस नामक सरोवर, हंसों तथा कारण्डवों से आकुलित मानसरोवर, त्रिश्रृंग पर्वत, नदियों में श्रेष्ठ कुमारी नामक नदी, बर्फों के समूहों से ढँका हुआ मन्दर नामक पर्वत, उशीरविन्दु नामक पर्वत गिरिराज चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवान पर्वत, रेणुक गिरि, सातों ऋषियों का क्रौञ्च नामक पर्वत, धूम्रवर्ण पर्वत-इस सबको तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य पर्वतों को देशों को, गाँवों को उन दैत्यराज ने कँपा दिया।।८५-८९।।

नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः॥९०॥

खेचराश्च सतीपुत्रः पातालतलवासिनः। गणस्तथा परे रौद्रो मेघनामाऽङ्कुशायुधः॥९१॥

महीपुत्र कपिल तथा व्याघ्रवान भी काँप उठे, सती के पुत्र आकाश में चलने वाले तथा पाताल में निवास करने वाले रुद्र के गण मेघों का अंकुशधारी ऊध्वर्ग (ऊपर जाने वाला) भीमवेग, ये सब भी कँपा दिये।।९०-९१।।

ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः। गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा॥९२॥
जीमूतघनसङ्काशो जीमूतघननिःस्वनः। जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान्॥९३॥

इस प्रकार गदा तथा शूल धारणकर अति कराल रूप हिरण्यकशिपु बादलों के समूहों के समान भीषण आकृति हो, मेघों के समूहों की भाँति भयानक शब्द करता हुआ, अति वेग से नरसिंह भगवान् के ऊपर झपटा।।९२-९३।।

देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपनाद्रवत्। समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः॥
तदोंकारसहायेन विदार्य निहतो युधि॥९४॥

उस समय युद्धभूमि में ओंकार की सहायता प्राप्त कर नरसिंह ने अपने विकराल तीक्ष्ण नखों से उसे फाड़कर मार डाला।।९४।।

मही च कालश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः।
नद्यश्च शैलश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादं दितिपुत्रनाशात्॥९५॥

ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः। तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम्॥९६॥
यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः। एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः॥९७॥

इस प्रकार उस दैत्य के विनष्ट हो जाने पर पृथ्वी, काल, चन्द्रमा, आकाश, ग्रहगण सूर्य, सभी दिशाएँ, नदियाँ, पर्वत महासमुद्र-सभी अति प्रमुदित हुए और तपस्वी ऋषि तथा देवगण दिव्य नामों का उच्चारण करते हुए सनातन भगवान् की प्रसन्नचित हो प्रार्थना करने लगे। 'हे देव! यह जो आपने नरसिंह का शरीर धारण किया है, पूर्व एवं पश्चात् दोनों अवस्थाओं को जानने वाले लोग उसकी पूजा करेंगे।।९५-९७।।

देवा ऊचुः

भवान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमः।
भवान्कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवोऽव्ययः॥९८॥
परां च सिद्धिं च परं देवं परं च मन्त्रं परमं हविश्च।
परं च धर्मं परमं च विश्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥९९॥

देवों ने कहा–हे भगवान्! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा अन्य श्रेष्ठ देवगण तुम्हीं हो, समस्त लोकों के कर्त्ता, संहर्ता तथा उत्पत्ति स्थान तुम्हीं हो, तुम सनातन हो, परम सिद्धि वाले हो, परमदेव हो, परम मन्त्र हो, परम हवि हो, परम धर्म हो, परम विश्व हो, तुम्हीं परम पुराण पुरुष एवं संसार के अग्रजन्मा कहे जाते हो॥९८-९९॥

परं शरीरं परमं च ब्रह्म परं च योगं परमां च वाणीम्।
परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥१००॥

परम शरीर, परब्रह्म, परमयोग, परमवाणी, परम रहस्य, परमगति तथा परम पुराण पुरुष तुम्हीं कहे जाते हो॥१००॥

एवं परस्यापि परं पदं यत्परं परस्यापि परं च देवम्।
परं परस्यापि परं च भूतं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥१०१॥

इसी प्रकार परम से परम जो पद है, वह तुम ही हो, तुम्हीं परम से भी परमदेव हो, अति परम से भी परमभूत हो, लोग तुम्हीं को सर्वश्रेष्ठ पुराण पुरुष कहते हैं॥१०१॥

परं परस्यापि परं रहस्यं परं परस्यापि परं महत्त्वम्।
परं परस्यापि परं महद्यत्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥१०२॥

तुम पर से भी परे परात्पर हो, परम रहस्य हो, परम से भी अति परम महत्त्व वाले हो, परात्पर जो महात्तत्व है, वह तुम्हीं हो, तुम्हीं परम पुराण पुरुष कहे गये हो॥१०२॥

परं परस्यापि परं निधानं परं परस्यापि परं पवित्रम्।
परं परस्यापि परं च दान्तं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥१०३॥

तुम पर से परम निधान हो, परम से भी अति परम पवित्र हो, परम से भी अति दयालु हो, तुम्हीं पुराण पुरुष एवं जगत् के अग्रजन्मा कहे गये हो॥१०३॥

एवमुक्त्वा तु भगवान्सर्वलोकपितामहः। स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः॥१०४॥

इस प्रकार लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु की स्तुति कर ब्रह्मलोक को चले गये॥१०४॥

ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च। क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः॥१०५॥

वहाँ पर तुरुहियाँ बजने लगीं, अप्सरायें नाचने लगीं। भगवान् विष्णु क्षीर सागर के उत्तरी तट को गये।।१०५।।

नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमत्। पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः।।१०६।।
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता। अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान्प्रभुः।।१०७।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे हिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६३।।

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८८४८।।

अपने नृसिंह रूप का त्याग करके अपने पुराने अति तेजस्वी सनातन स्वरूप को धारण कर अव्यक्त प्रकृति गरुडध्वज भगवान् अति तेजोमय शोभाशाली आठ चक्कों वाले सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो अपने निवास स्थान को गये।।१०६-१०७।।

।।एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।।१६३।।

❖❖❖

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पद्मोद्भव की कथा

ऋषय ऊचुः

कथितं नरसिंहस्य माहात्म्यं विस्तरेण च। पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विस्तरतो वद।।१।।
पद्मरूपमभूदेतत्कथं हेममयं जगत् कथं च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत्पुरा।।२।।

ऋषिगण कहते हैं-सूत जी! आप विस्तारपूर्वक नृसिंह स्वरूप के माहात्म्य का वर्णन तो कर चुके, अब पुनः उन्हीं भगवान् के अन्यान्य स्वरूप के माहात्म्य को हम लोगों से कहिये। यह समस्त जगत् किस प्रकार सुवर्णमय पद्म के रूप में था, और प्राचीन काल में किस प्रकार विष्णु भगवान् द्वारा उत्पन्न यह सृष्टि उस पद्म के मध्य में से प्रादुर्भूत हुई थी? इसे हम लोग जानना चाहते हैं।।१-२।।

सूत उवाच

श्रुत्वा च नारसिंहस्य माहात्म्यं रविनन्दनः। विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः पप्रच्छ केशवम्।।३।।

सूतजी कहते हैं-भगवान् मत्स्य से नृसिंह स्वरूप के माहात्म्य का वर्णन सुनकर सूर्यपुत्र मनु ने विस्मय से उत्फुल्ल नेत्र होकर पुनः केशव से पूछा।।३।।

मनुरुवाच

कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत्। जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन।।४।।

प्रभावात्पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि। पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा॥५॥

मनु कहते हैं-जनार्दन! पाद्म नामक महाकल्प में जब आप समुद्र के जल में विराजमान थे तो आपकी नाभि से इस पद्ममय जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी? सागर के जल में शयन करने वाले पद्मनाभ के प्रभाव से किस प्रकार देवता तथा ऋषिगण प्राचीन काल में उस कमल से उत्पन्न हुए थे?॥४-५॥

एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदां पते। शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरुपजायते॥६॥

योग जानने वालों के स्वामी! इस सम्पूर्ण योग को मुझे बताइये, उस भगवान् की कीर्ति को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती॥६॥

कियता चैव कालेन शेते वै पुरुषोत्तमः।
कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः॥७॥

पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु कितने दिनों तक यहाँ शयन करते हैं? तथा यह बताइये कि उनके शयन करने की अवधि कितनी है? इस काल का उद्भव कहाँ से होता है?॥७॥

कियता वाऽथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः।
कथं चोत्थाय भगवान्सृजते निखिलं जगत्॥८॥

महायशस्वी वे भगवान् कितने दिनों बाद फिर उठते हैं? उठने के बाद किस प्रकार इस जगत् की रचना करते हैं?॥८॥

के प्रजापतयस्तावदासन्पूर्वं महामुनि। कथं निर्मितवांश्चैव चित्रे लोकं सनातनम्॥९॥
कथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे। दग्धे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे॥१०॥
नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले। केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये॥११॥
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः। आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित्॥१२॥
शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः। वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम्॥१३॥
श्रद्धया चोपविष्टानां भगवन्वक्तुमर्हसि॥१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहमाहात्म्यनाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६४॥

आदितःश्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥८८४८॥

महामुने! पूर्वकाल में कौन-कौन से प्रजापति हो गये हैं? भगवान् ने इस विचित्र सनातन जगत् को किस ढंग से निर्मित किया है? ब्रह्मन्! जब इस जगत् के निवासी देवता तथा असुरगण दग्ध हो जाते हैं, सर्प एवं राक्षस नष्ट हो जाते हैं, सभी स्थावर जंगमात्मक प्रकृति नष्ट होकर शून्य में विलीन हो एक समुद्र के रूप में परिणत हो जाती है, लोक में वायु एवं अग्नि, आकाश एवं पृथ्वी तल का सर्वथा विनाश हो जाता है, केवल अत्यन्त घना अन्धकार दिखाई पड़ता है अर्थात्

महाप्रलय आ जाता है, उस समय योग में लीन महातेजस्वी, विराट् सभी जगत् के आदि स्वामी, देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् किस प्रकार अपने विधान में तत्पर रहकर अवस्थित रहते हैं? धर्म की महत्ता को जानने वाले! भगवन्! परम भक्ति तथा श्रद्धा से युक्त हम लोगों को भगवान् विष्णु के समस्त यश को बतलाइये।।९-१४।।

।।एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त।।१६४।।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

चारों युगों की प्रवृत्तियाँ और अवधि

मत्स्य उवाच

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्। तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन।।१।।

मत्स्य ने कहा-सूर्यपुत्र मनु जी! सतयुग की अवधि चार सहस्र दिव्य वर्ष कही गयी है, उसकी सन्ध्या की अवधि आठ सौ वर्ष की है।।।।१।।

यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः। स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः।।२।।

उसमें धर्म अपने चारों चरणों में निवास करता है, अधर्म का एक चरण रहता है अधर्म का एक चरण होता है, उसमें उत्पन्न होने वाले मानव अपने-अपने धर्म में निरत रहने वाले होते हैं।।।२।।

विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः स्थिताः।।३।।

ब्राह्मण लोग धर्मपरायण, राजा (क्षत्रियगण) राजकीय वृत्ति में, वैश्य कृषि कर्म में तथा शूद्र सेवा कार्य में तल्लीन रहते हैं।।३।।

तदा सत्यं च शौचं च धर्मश्चैव विवर्धते। सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै।।४।।

उस युग में सत्य, पवित्रता तथा धर्म की अभिवृद्धि होती है, सत्पुरुषों द्वारा किये गये कर्म को लोग करते हैं तथा उसी की प्रसिद्धि करते हैं।।४।।

एतत्कार्तयुगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव। प्राणिनां धर्मसञ्ज्ञानामपि वै नीचजन्मनाम्।।५।।

राजन्! सभी जातियों के लोगों में सतयुग में यही व्यवहार पाया जाता है, वे चाहे धर्मप्राण उच्च जाति वाले हों अथवा नीच कुल में उत्पन्न हों। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म में व्यवस्थित रहते हैं।।५।।

त्रीणि वर्षसहस्त्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते। तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्त्यते॥६॥

त्रेतायुग की अवधि तीन सहस्त्र वर्षों की कही गई है, उसकी संख्या छः सौ वर्षों की मानी गई है॥६॥

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः।
यत्र सत्यं च सत्त्वं च त्रेताधर्मो विधीयते॥७॥

उसमें अधर्म दो चरणों तथा धर्म तीन चरणों से व्यवस्थित रहता है। त्रेता-धर्म सत्य एवं सत्त्वगुण प्रधान माना गया है॥७॥

त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेते न संशयः।
चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः॥८॥

ये ब्रह्माणादि वर्ण त्रेतायुग में विकार को प्राप्त हो जाते हैं- इसमें सन्देह नहीं। इन चतुर्वर्ण वालों के विकारयुक्त होने के कारण आश्रम धर्म भी दुर्बल हो जाते हैं॥८॥

एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता। द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि॥९॥

भगवान् द्वारा रचित यह विचित्र व्यवस्था त्रेतायुग की गई है। अब द्वापर युग की जो रूपरेखा है, उसे भी सुनो॥९॥

द्वापरं द्वे सहस्त्रे तु वर्षाणां रविनन्दन। तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा युगमुच्यते॥१०॥
तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनां रजसा हताः। सर्वे नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन॥११॥

द्वापर की अवधि दो सहस्त्र दिव्य वर्ष है, उसकी सन्ध्या चार सौ दिव्य वर्षों की कही जाती है। सूर्यपुत्र मनुजी! उस द्वापर युग में रजोगुण के कारण लोग अर्थनीति में तत्पर रहते हैं, प्रायः सभी लोग निष्कर्म एवं क्षुद्र विचार वाले होते हैं॥१०-११॥

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः। विपर्ययाच्छनैर्धर्मः क्षयमेति कलौ युगे॥१२॥

पूर्व त्रेतायुग में धर्म अपने दो चरणों से तथा अधर्म तीन चरणों से अवस्थित रहता है; किन्तु द्वापर युग में क्रमशः क्षीण होता हुआ धर्म कलियुग में आकर क्षय को प्राप्त होता है॥१२॥

ब्राह्मण्यभावस्य ततस्तथौत्सुक्यं विशीर्यते। व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये॥१३॥

इस प्रकार द्वापर की समाप्ति आने तक जनता में ब्राह्मणत्व की उत्कण्ठा का विनाश हो जाता है, लोग व्रत-उपवास आदि को छोड़ देते हैं॥१३॥

तथा वर्षसहस्त्रं तु वर्षाणां द्वे शते अपि। सन्ध्यया सह सङ्ख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम्॥१४॥

तदुपरान्त एक सहस्त्र वर्ष तथा दो सौ वर्ष-अर्थात् सन्ध्या समेत बारह सौ वर्षों तक क्रूर कलियुग की अवधि मानी गई है॥१४॥

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः। कामिनस्तपसा हीना जायन्ते तत्र मानवाः॥१५॥

जिसमें अधर्म चार चरणों से तथा धर्म एक चरण से विद्यमान रहता है। उस कलियुग में उत्पन्न होने वाले मनुष्य, कामी तथा तपस्या से रहित होते हैं।।१५।।

नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक्। नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः।।१६।।
अहङ्कारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः। विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे।।१७।।

अहंकार से ग्रस्त तथा स्नेह से रहित होते हैं। न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक होता है, न कोई साधु अथवा सत्यवादी ही होता है, प्रायः परलोक न मानने वाले एवं ब्रह्म की उपासना करने वाले लोग उत्पन्न होते हैं। उस कलियुग में सभी ब्राह्मण शूद्रों का-सा आचरण करने वाले हो जाते हैं।।१६-१७।।

आश्रमाणां विपर्यासः कलौ सम्परिवर्तते। वर्णानां चैव सन्देहो युगान्ते रविनन्दन।।१८।।

इस प्रकार कलियुग के पूर्णतया प्रवर्तित होते-होते आश्रम धर्म का उलट-फेर हो जाता है। रविनन्दन! युग की समाप्ति आते-आते तो वर्णों में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् वे सभी मिल जाते हैं।।१८।।

विद्याद्द्वादशसाहस्त्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम्। एवं सहस्त्रपर्यन्तं तदहर्ब्राह्ममुच्यते।।१९।।

इस प्रकार पहले कहे गए इन बारह सहस्त्र वर्षों की संख्या चारों युगों की अवधि मानी गई है। इस प्रकार एक सहस्त्र चतुर्युगी का ब्रह्मा एक दिन होता है।।१९।।

ततोऽहनि गते तस्मिन्सर्वेषामेव जीविनाम्। शरीरनिर्वृत्तिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः।।२०।।
देवतानां च सर्वासां ब्रह्मादीनां महीपते। दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम्।।२१।।
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानां च पार्थिव। पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम।।
तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां कृमिणां तथा।।२२।।
महाभूतपतिः पञ्च हत्वा भूतानि भूतकृत्। जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत्।।२३।।

इस प्रकार ब्रह्मा के एक दिन के बीतने पर सभी जीवों के शरीर को अस्त होते हुए देखकर लोक के संहार करने की भावना से सभी ब्रह्मा आदि देवताओं, दैत्यों, यक्षों, राक्षसों, पक्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सर्पों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, तिर्यग् योनि वालों (बिच्छू आदि) एवं कृमियों के शरीरों से पाँचों महाभूतों-पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि तथा वायु-का हरण करके महाभूतपति, भूतों का स्रष्टा भगवान् समस्त चराचर के संहारार्थ महान् विनाश करता है।।२०-२३।।

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाऽऽददानो भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणजालम्।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान्भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽप्यवर्षत्।।२४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८९००।

वह सूर्य बनकर सभी लोगों के नेत्रों की ज्योतियों को ग्रहण करता है, वायु होकर सभी के प्राणों को समेटता है, अग्नि होकर समस्त लोकों को जलाता है एवं मेघ होकर भयानक वृष्टि करता है।।२४।।

।।एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त।।१६५।।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सृष्टि प्रलय वर्णन

मत्स्य उवाच

भूत्वा नारायणो योगी सत्त्वमूर्तिर्विभावसुः।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान्।।१।।
ततः पीत्वाऽर्णवान्सर्वान्नदीः कूपांश्च सर्वशः।
पर्वतानां च सलिलं सर्वमादाय रश्मिभिः।।२।।
भित्वा गभस्तिभिश्चैव मही गत्वा रसातलात्। पातालजलमादाय पिबते रसमुत्तमम्।।३।।

मत्स्य भगवान् ने कहा–मनु जी! उसी प्रकार वे योगी सत्त्वमूर्ति नारायण भगवान् सूर्य का रूप धारण कर अपनी जलती हुई किरणों से समूद्रों को सोख लेती हैं और सभी समुद्रों को पीकर सभी नदियों तथा कूपों को जलरहित कर देते हैं। किरणों से पर्वतों के जल को ग्रहण लेते हैं और पुनः उन्हीं किरणों से पृथ्वी को भिन्न करके रसातल को जाते हैं और पाताल के सुन्दर जल को पान कर जाते हैं।।१–३।।

मूत्रासृक्लेदमन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम्। तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः।।४।।

फिर प्राणियों में निश्चय रूप रहने वाले, मल, मूत्र, मांस, मज्जा आदि जलीय उपादानों को भी वे कमलनेत्र पुरुषोत्तम भगवान् ग्रहण करते हैं।।४।।

वायुश्च बलवान्भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत्। प्राणापानसमानाद्यान्वायूनाकर्षते हरिः।।५।।

फिर बलवान् वायु बनकर समस्त जगत् को प्रकम्पित करते हुए वे हरि प्राण, अपान समान आदि वायुओं को खींचते हैं।।५।।

ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु। गन्धो घ्राणं शरीरं च पृथिवीं संश्रिता गुणाः।।६।।

तदनन्तर सभी देवगण एवं अन्य भूतों के तत्त्व तथा ग्रन्थ, घ्राण (नासिका) एवं शरीर–ये सब पृथ्वी में मिल जाते हैं।।६।।

जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः।
रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाऽऽश्रिता गुणाः॥७॥
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवने संश्रिता गुणाः।
शब्दः श्रोत्रं च खान्येव गगने संश्रिता गुणाः॥८॥

जिह्वा, रस एवं स्नेह (चिकनाहट)- ये जल में मिल जाते हैं। रूप, नेत्र तथा विपाक ये अग्नि में, स्पर्श, प्राण तथा चेष्टा ये पवन में मिल जाते हैं। शब्द, श्रोत्र तथा इन्द्रियाँ-ये आकाश में मिल जाते हैं।।७-८।।

लोकमाया भगवता मुहूर्तेन विनाशिता। मनो बुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः॥९॥
तं वरेण्यं परमेष्ठी हृषीकेशमुपाश्रितः। ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः॥१०॥
वायुनाऽऽक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासु चाऽऽश्रितः।
तेषां सङ्घर्षणोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन्॥११॥
अदहच्च तदा सर्वं वृतः संवर्तकोऽनलः। सपर्वतद्रुमान्गुल्माँल्लतावल्लीस्तृणानि च॥१२॥
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च।
यानि चाऽऽश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत्॥१३॥

इस प्रकार पुराकाल में उस भगवान् ने इस समस्त लोक की माया को क्षणभर में विनष्ट कर दिया,जो सभी प्रणियों का मन एवं बुद्धि है, जो क्षेत्रज्ञ नाम से प्रसिद्ध है, उस श्रेष्ठ परमेष्ठी हृषीकेश भगवान् के समीप में अवस्थित सूर्य की किरणों से व्याप्त, वायु द्वारा आक्रान्त, वृक्षों की शाखाओं पर आश्रित, वृक्षादि के संघर्ष से उत्पन्न सैकड़ों लपटों में जलते हुए सवंर्तक नामक अग्नि ने समस्त जगत् को भस्म कर दिया। उसने पर्वत, वृक्ष, लता, गुल्म एवं तृणों को, दिव्य विमानों को तथा उन अनेक पुरों को, जो सभी आश्रम के लिए थे, भस्म कर दिया।।९-१३।।

भस्मीकृत्य ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः।
भूयो निर्वापयामास युगान्तेन च कर्मणा॥१४॥

इस प्रकार समस्त लोकों को लोकेश भगवान् विष्णु ने भस्म कर पुनः युगान्तकारी अन्यान्य कर्मों द्वारा सृष्टि का विनाश किया।।१४।।

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः। दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम्॥१५॥

महाबलवान् उस भगवान् ने सैकड़ों सहस्रों प्रकार की वृष्टि का स्वरूप धारण कर दिव्य जल से तथा हवि से पृथ्वी को पूरित कर दिया।।१५।।

ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाम्भसा। शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम्॥१६॥
तेन रोधेन संछन्ना पयसां वर्षतो धरा। एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता॥१७॥

जिससे उस परम स्वादिष्ट अपार जल राशि से, जो परम कल्याणकारिणी एवं पवित्र थी, पृथ्वी चारों ओर से डूब गई। अपार जलवृष्टि एवं जल के समूह से छिपी हुई पृथ्वी एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो गई और उस पर निवास करने वाले सभी जीव-जन्तु भी विनष्ट हो गये।।१६-१७।।

महासत्त्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम्। नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृत्ते।।१८।।

बड़े-बड़े जीव-जन्तुओं एवं सामर्थ्यवान् अत्यन्त तेजस्वी प्राणियों का भी विनाश हो गया। सूर्य, पवन एवं आकाश के नष्ट हो जाने पर जगत् की सभी वस्तुएँ सूक्ष्म रूप में परिणत हो गई।।१८।।

संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रानपि देहिनः। दग्ध्वा सम्प्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः।।१९।।

इस प्रकार समुद्रों एवं देहधारियों का शोषण कर, जलाकर तथा जल से आप्लावित कर वह सनातन भगवान् एकाकी होकर शयन करता है।।१९।।

पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः। एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः।।२०।।

अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति।।२१।।

वह अनुपम पराक्रमशाली, एक समुद्र रूप में परिणत समस्त जगन्मण्डल रूप में व्याप्त रहने वाला भगवान् योगबल का आश्रय लेकर अपने पुराने स्वरूप को ग्रहण कर अनेक सहस्र वर्षों तक यहाँ शयन करता है। कोई उस अव्यक्त भगवान् का पता प्रकट रूप में नहीं ज्ञात कर सकता।।२०-२१।।

कश्चैव पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान्।
असौ कियन्तं कालं च एकार्णवविधिं प्रभुः।।
करिष्यतीति भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते।।२२।।

वह कौन पुरुष है? कौन योग करता है? कितने दिनों तक वह जगत् को एक समुद्र रूप में किये रहेगा? और पुनः सबकी रचना कब करेगा-ऐसी बातों को कोई नहीं जानता।।२२।।

न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः। तस्य न ज्ञायते किं चित्तमृते देवसत्तमम्।।२३।।

न कोई उसे देखने वाला है, न कोई उसके समीप जा सकता है, न कोई उसे जानता है, न कोई उसके समीप में ही पहुँचने वाला है। उसे, उसी देवश्रेष्ठ को छोड़कर कोई अन्य जान भी नहीं सकता कि वह वास्तव में कौन है?।।२३।।

नभः क्षितिं पवनमपः प्रकाशकं प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम्।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं प्रशाम्य भूयः शयनं ह्यरोचयत्।।२४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८९२४।।

(अर्थात् वही अपने को जानता है।) इस प्रकार वह आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, प्रजापति, भुवन को धारण करने वाले (पहाड़ अथवा देवता) सुरेश्वर, पितामह, ब्रह्मा, वेदों के समूह एवं महामुनि सबको प्रशान्त करके पुनः शयन की इच्छा करता है।।२४।।

।।एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त।।१६६।।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विष्णु का शयन, सृष्टि का प्रादुर्भाव, मार्कण्डेय को आश्चर्य, विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद

मत्स्य उवाच

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः। प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वीं हंसो नारायणास्तदा।।१।।

मत्स्य ने कहा–इस प्रकार जगत् के एक समुद्र रूप में परिणत हो जाने पर उस महासमुद्र रूपी सरोवर में महाद्युतिमान् भगवान् विष्णु हंस स्वरूप हो जल से पृथ्वी को आच्छन्न कर शयन करते हैं।।१।।

महतो रजसो मध्ये महार्णवसरः सु वै। विरजस्कं महाबाहुमक्षयं ब्रह्म यद्विदुः।।२।।

महान् रजोराशि के मध्य में सागर रूपी सरोवर में सोने वाले उन्हीं को, रजोगुण रहित, महाबाहुशाली अक्षयब्रह्मा कहा जाता है।।२।।

आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः। मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत्सत्यमासत।।३।।

उस समय वह प्रभु अंधकार से घिरे हुए उस महासमुद्र में अपने स्वरूप के प्रकाश से प्रकाशमान एवं सत्त्वगुण युक्त मन में समाधिलीन हो विराजमान था। यही उसका सत्त्व भाव था।।३।।

याथातथ्यं परं ज्ञानं भूतं तद्ब्रह्मणा पुरा। रहस्यारण्यकोद्दिष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम्।।४।।
पुरुषो यज्ञ इत्येतद्यत्परं परिकीर्तितम्। यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात्स एष पुरुषोत्तमः।।५।।

वही प्रभु यथार्थतः परम ज्ञानमय है, उसी से पूर्वकाल में ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। वही आरण्यक का रहस्य एवं उपनिषदों का ज्ञान कहा गया है।।४। जो यज्ञपुरुष कहा गया है, जो उसके बाद का पुरुष कहा गया है एवं जो पुरुषोत्तम कहा गया है, वह सब वही पुरुषोत्तम है।।४-५।।

ये च यज्ञकरा विप्रा ये चर्त्विज इति स्मृताः। अस्मादेव पुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूतयां तथा।।६।।
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम्। होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः।।७।।

इस यज्ञपुरुष से प्राचीन काल में यज्ञकर्ता ब्राह्मणगण एवं पुरोहितगण उत्पन्न कहे गये हैं। प्रभु ने सर्वप्रथम मुख से ब्रह्मा को तथा दोनों बाहुओं से उद्गाता, सामग, होता तथा अध्वर्यु को उत्पन्न किया था।।६-७।।

ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारं च सर्वशः।
तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात्प्रतिप्रस्तारमेव च (?)।।८।।

उस परब्रह्म के पृष्ठभाग में ब्राह्मणाच्छंसी प्रस्तोता, मित्रवरुण तथा प्रस्थाता उत्पन्न हुये।।८।।

उदरात्प्रतिहर्तारं पोतारं चैव पार्थिव। अच्छावाकमथोरुभ्यां नेष्टारं चैव पार्थिव।।९।।

हे राजन्! उदर से प्रतिहर्त्ता तथा पोता तथा दोनों उरुओं-जंघाओं से अच्छावाक् और नेष्टा को उत्पन्न किया।।९।।

पाणिभ्यामथ चाऽऽग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च जानुतः।
ग्रावस्तुतं तु पादाभ्यामुन्नेतारं च याजुषम्।।१०।।

दोनों हथेलियों से अग्नीध्र को और जानुभाग से सुब्रह्मण्य, को दोनों चरणों से ग्रावस्तुत् तथा उन्नेता को, जो यजुर्वेद के ऋत्विक् माने गये हैं, उत्पन्न किया।।१०।।

एवमेवैष भगवान्षोडशैव जगत्पतिः। प्रवक्तृन्सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान्।।११।।

इस प्रकार जगत्पति ने सभी प्रकार के यज्ञों के प्रवक्ता इन श्रेष्ठ ऋत्विजों को उत्पन्न किया।।११।।

तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंज्ञितः। वेदाश्चैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः।।१२।।

सो यह वेदमय पुरुष ही नामधारी है, छहों अंगों के समेत वेद, उपनिषद् तथा क्रियाएँ-ये सभी उमसें निहित हैं।।१२।।

स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा। श्रूयतां तद्यथा विप्रा मार्कण्डेयकुतूहलम्।।१३।।

प्राचीनकाल में जिस समय समस्त जगत् एक समुद्ररूप में परिणत था, उस समया आश्चर्यमय जो घटना हुई, हे विप्रवृन्द! प्राचीनकाल में मार्कण्डेय को आश्चर्यचकित करने वाली उस घटना को मैं आप लोगों को बतला रहा हूँ, सुनिये।।१३।।

गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः। बहुवर्षसहस्त्रायुस्तस्यैव वरतेजसा।।१४।।

वे महामुनि मार्कण्डेय जी उस भगवान् की उदरस्थली में उनके वरदान की महिमा से अनेक सहस्त्र वर्षो तक टहलते हुए विराजमान थे।।१४।।

अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीं तीर्थगोचराम्। आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च।।१५।।

देशान्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
जपहोमपरः शान्तस्तपो घोरं समास्थितः।।१६।।

वहीं पर तीर्थयात्रा के प्रसंग से पृथ्वीतल पर दिखाई देने वाले तीर्थों को देखते हुये पुण्यप्रद आश्रमों तथा देव मन्दिरों को देखते हुए, अनेक प्रकार के राष्ट्र, देश, विचित्र-विचित्र ग्रामों में टहलते हुये वे मार्कण्डेय जी जप, हवन आदि पुण्यकर्मों को करते हुए शान्त चित्त हो घोर तपस्या में निरत रहते थे।।१५-१६।।

मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः। स निष्क्रामन्न चाऽऽत्मानं जानीते देवमायया।।१७।।

इस प्रकार मार्कण्डेय जी भगवान् के उदर में घूमते हुये धीरे-धीरे मुख भाग से बाहर निकल पड़े; किन्तु भगवान् की माया की महिमा से वे अपने को भगवान् के उदर में अवस्थित अथवा उनके मुख द्वार से निकला हुआ नहीं जान सके।।१७।।

निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत्।
सर्वतस्तमसाऽऽच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववक्षत।।१८।।

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चाऽऽत्मजीविते। देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः।।१९।।

भगवान् के मुख से निकलकर समस्त जगत् को उन्होंने एक समुद्र के रूप में चारों ओर से घोर अन्धकार में छिपा हुआ देखा, जिससे उनके हृदय में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ और अपने जीवन में भी उन्हें संदेह हो गया। उसी समय चित्त में भगवान् के दर्शन से अति प्रसन्नन होकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए।।१८-१९।।

चिन्तयञ्जलमध्यस्थो मार्कण्डेयो विशङ्कितः।
किं नु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते।।२०।।

जल के बीच में खड़े हुए मार्कण्डेय जी सोचने लगे कि यह मेरे मन में इसी प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो रही है या मुझे मोह तो नहीं हो गया है अथवा मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ।।२०।।

व्यक्तमन्यतमो भावस्तेषां सम्भावितो मम। न हीदृशं जगत्क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति।।२१।।

परन्तु स्पष्ट है कि मैं इनमें से किसी एक का अनुभव कर रहा हूँ, इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से अयुक्त संसार तो सचमूच नहीं हो सकता।।२१।।

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले। कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः।।२२।।

चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पर्वत, पृथ्वीतल आदि से विहीन यह भला कौन-सा लोक है- इस प्रकार की चिन्ता उनके हृदय में उत्पन्न हुई।।२२।।

ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम्। सलिलेऽर्धमथो मग्नं जीमूतमिव सागरे।।२३।।

आगे चलकर उन्होंने पर्वत के समान विशालकाय पुरुष को जल में आधा डूबा हुआ शयन करते हुए देखा, जो समुद्र में बादल की भाँति शोभायमान हो रहा था।।२३।।

ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम्।
शर्वर्यां जाग्रतमिव भास्वन्तं स्वेन तेजसा।।२४।।

अपने तेज से वह किरणों से उदीप्त भास्कर की भाँति दिखाई पड़ रहा था। अपने तेज एवं प्रकाश से उस अंधकारमयी रजनी में वह जाग्रत-सा दिख रहा है।।२४।।

देवं द्रष्टुमिहाऽऽयातः को भवानिति विस्मयात्।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः॥२५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि जिस समय उस विशेष पुरुष को यथार्थ रूप में निश्चित करने के लिये कि 'आप कौन हैं' विस्मयान्वित होकर समीप पहुँचे, उसी समय पुनः उदर प्रदेश में कर दिये गये।।२५।।

संप्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः।
तथैव तु पुनर्भूयो विजानन्स्वप्नदर्शनम्॥२६॥

इस प्रकार पुनः उदरगत होकर मार्कण्डेय अत्यन्त विस्मित हुए और बाहर के उस आश्चर्य दृश्य को स्वप्न माना।।२६।।

स तथैव यथापूर्वं यो धरामटते पुरा। पुण्यतीर्थबलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च॥२७॥

वहाँ पहुँच कर जिस प्रकार पहले वह तीर्थ यात्रा आदि से निरत रहते थे, उसी प्रकार पुनः पृथ्वी-पर्यटन करने लगे और वहाँ पवित्र तीर्थ स्थानों एवं पवित्र जलवादी नदियों, विविध प्रकार के पवित्र आश्रमों को देखने लगे।।२७।।

क्रतुभिर्यजमानाश्च समाप्तवरदक्षिणान्।
अपश्यद्देवकुक्षिस्थान्याजकाञ्छतशो द्विजान्॥२८॥

भगवान् के उदर में अवस्थित यजमानों को यज्ञ कराकर दक्षिणा ग्रहण करने वाले यज्ञकारी ब्राह्मण पुरोहितों को सैकड़ों की संख्या में देखा।।२८।।

सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः।
चत्वारश्चाऽऽश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टा मया तव॥२९॥

वहाँ रहने वाले ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपने-अपने धर्म एवं आश्रमों में सत्कर्म में परायण थे, उन चारों आश्रमों को मैं तुम्हें बता चुका हूँ।।२९।।

एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः। चरतः पृथिवीं सर्वां न कुक्ष्यन्तः समीक्षितः॥३०॥

इस प्रकार सौ वर्ष तक बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनि के समस्त पृथ्वी के घूमते रहने पर भी भगवान् की उदरस्थली का अन्त नहीं दिखाई पड़ा।।३०।।

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः। सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरैक्षत॥३१॥

इसी के बाद वे फिर घूमते-घूमते मुख द्वार से बाहर निकल पड़े और सामने बरगद की शाखा में छिपे हुए एक बालक को उन्होंने देखा।।३१।।

तथैवैकार्णवजले नीहारेणाऽऽवृताम्बरे। अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते॥३२॥

पूर्व की भाँति उस समय समस्त जगत् एक महासमुद्र के रूप था, आकाश चारों ओर हिम से आच्छादित था, लोक में इतने विशाल प्रदेश में कोई भी प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, तथापि वह बालक व्यग्र नहीं था॥३२॥

स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः।
बालमादित्यसङ्काशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम्॥३३॥

उसे देख कौतूहल से युक्त मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हुये और सूर्य के अति तेजस्वी उस बालक की ओर देखने में असमर्थ से हो गये॥३३॥

स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ। पूर्वदृष्टमिदं मेने शङ्कितो देवमायया॥३४॥

चिन्ता में निमग्न मार्कण्डेय मुनि जल में खड़े हुए देव की माया से विमोहित होकर इस दृश्य को पूर्वकाल में देखा-हुआ सा मानने लगे॥३४॥

अगाधसलिले तस्मिन्मार्कण्डेयः सविस्मयः। प्लवंस्तथाऽऽर्तिमगमद्भयात्संत्रस्यलोचनः॥३५॥
स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान्। बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः॥३६॥

मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवाऽऽयाहि मेऽन्तिकम्।
मार्कण्डेयो मुनिस्त्वाह बालं तं श्रमपीडितः॥३७॥

उस अगाध जलराशि में विस्मित होकर भय से संत्रस्त नेत्र हो दुःखित होने लगे। तत्पश्चात् बाल योगधारी पुरुषोत्तम भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से मार्कण्डेय के लिए स्वागत वचन कहा- और कहा 'वत्स! मत डरो, तुम्हें डरना नहीं चाहिए। यहाँ मेरे पास चले आओ।' भगवान् की वाणी सुनकर भय श्रम आदि से पीड़ित मार्कण्डेय मुनि बाल रूप धारी भगवान् से बोले॥३५-३७॥

मार्कण्डेय उवाच

को मां नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्मम। दिव्यं वर्षसहस्राख्यं धर्षयन्निव मे वयः॥३८॥

मार्कण्डेय ने कहा-कौन है, जो इस तरह मेरा नाम लेकर मेरी कठोर तपस्या का अपमान कर रहा है, तथा दिव्य सहस्र वर्षों तक कहीं आने वाली मेरी दीर्घायु को भी अपमानित कर रहा है॥३८॥

न ह्येष वः समाचारो देवेष्वपि ममोचितः। मां ब्रह्माऽपि हि देवेशो दीर्घायुरिति भाषते॥३९॥

देवताओं में भी मेरा ऐसा व्यवहार समुचित नहीं है, अर्थात् यदि तुम कोई देवता हो तब भी तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। देवेश ब्रह्मा भी मुझे दीर्घायु कहकर पुकारते हैं॥३९॥

कस्तमो घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति॥४०॥

कौन है, जो ऐसे महान् अज्ञानांधकार में लीन होकर जीवन रहित हो 'मार्कण्डेय' इस प्रकार मेरा नाम लेकर मृत्यु का मुख देखना चाहता है?'।।४०।।

सूत उवाच

एव माभाष्य तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः। तथैव भगवान्भूयो बभाषे मधुसूदनः।।४१।।

सूत ने कहा–इस प्रकार बालरूपधारी भगवान् से क्रोधपूर्वक कहकर महामुनि मार्कण्डेय जब चुप हो गये, तब मधुसूदन भगवान् उसी प्रकार पुनः बोले।।४१।।

श्रीभगवानुवाच

अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः।
आयुष्प्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि।।४२।।

श्रीभगवान् ने कहा–'वत्स! मैं तुम्हारा पिता हृषीकेश हूँ, मैं ही तुम्हारी दीर्घायु को प्रदान करने वाला पुराण प्रसिद्ध गुरु हूँ, तुम क्यों नहीं मेरे पास आते ?।।४२।।

मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसो मुनिः। पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः।।४३।।
ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोदमितौजसम्। उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिममितौजसम्।।४४।।

पुत्र की इच्छा करने वाले तुम्हारे पिता अंगिरा मुनि ने पूर्वकाल में अति घोर तपस्या करके मेरी आराधना की थी, तब अति प्रभावशाली आत्मभूत महर्षि की उस घोर तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने अमित तेजस्वी तुमको पुत्र रूप में उन्हें प्राप्त होने का वरदान दिया था।।४३-४४।।

कः समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मजः। द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगवर्त्मना।।४५।।

अपने आत्मीय भक्त के पुत्र तुम्हारे बिना कौन ऐसा साहस कर सकता है जो इस समुद्र में योग मुद्रा में क्रीड़ा करते हुए मुझे देख सके।।४५।।

ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः। मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः।।४६।।
नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः। तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत्।।४७।।

तदनन्तर भगवान् की ऐसी बातें सुनकर विस्मय से विकसित नेत्र हो लोकपूजित दीर्घायु महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने सिर से अञ्जलि बाँधकर प्रसन्नमुख हो अपने नाम तथा गोत्र का उच्चारण कर उस बाल रूपधारी भगवान् की प्रार्थना की।।४६-४७।।

मार्कण्डेय उवाच

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ। यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान्।।४८।।

मार्कण्डेय ने कहा–निष्पाप! मैं तुम्हारी इस माया को तात्त्विक दृष्टि से जानना चाहता हूँ, जो आप इस प्रकार का बालक रूप धारण कर इस विशाल समुद्र के मध्य में अवस्थित हो रहे हैं।।४८।।

किं संज्ञश्चैव भगवाँल्लोके विज्ञायसे प्रभो।
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति॥४९॥

प्रभो! आप किस नाम से लोक में प्रसिद्ध होते हैं, इस प्रकार जल में शयन करने वाले आपको मैं महनीय आत्मा समक्ष रहा हूँ, आपके बिना कौन इस प्रकार वहाँ अवस्थित हो सकता है।।४९।।

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणो ब्रह्मन्सर्वभूतविनाशनः। अहं सहस्रशीर्षाख्यो यः पदैरभिसंज्ञितः॥५०॥

श्री भगवान् ने कहा–'ब्रह्मन्! सभी भूतों का विनाशकर्त्ता मैं नारायण हूँ, जिसे लोग 'सहस्रशीर्षा' (सहस्र सिरों वाला) आदि नामों से पुकारते हैं।।५०।।

आदित्यवर्णः पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मखः। अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः॥५१॥

मैं आदित्य वर्ण पुरुष हूँ, यज्ञों में मेरा नाम ब्रह्ममय यज्ञ है। मैं हवि का वहन करने वाला अग्नि हूँ, जल में निवास करने वाले जीवों का स्वामी हूँ, अव्यय (कभी न नाश होने वाला) हूँ।।५१।।

अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सरः। अहं योगी युगाख्यस्य युगान्तावर्त एव च॥५२॥

मैं ही इन्द्र के स्थान पर शोभित शक्र हूँ। वर्षों में मैं परिवत्सर हूँ, मैं योगी हूँ, मैं ही युग कहा जाता हूँ, युगों का अन्त करने वाला भी मैं ही हूँ।।५२।।

अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि तु।
भुजङ्गानामहं शेषस्तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम्॥५३॥
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम्॥५४॥

मैं ही समस्त जीवों देवताओं एवं अन्य वस्तुओं में निवास करने वाला हूँ। भुजंगों में मैं शेष हूँ, सब पक्षियों में मैं ही गरुड़ हूँ, सब जीवों का मैं कृतान्त हूँ, समस्त जगत् का काल भी मुझे कहा गया है। मैं सभी आश्रमों में निवास करने वालों का धर्म हूँ।।५३-५४।।

अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः। यत्तत्सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः॥५५॥

तप भी मेरा नाम है, मैं दिव्य नदी हूँ, क्षीर का महासमुद्र मैं ही हूँ, जो कुछ परमतत्व है, वह सब मैं एक प्रजापति रूप में हूँ।।५५।।

अहं साङ्ख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमं पदम्।
अहमिज्या क्रिया चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः॥५६॥

मैं सांख्य हूँ, मैं योग हूँ। मैं वह परम पद हूँ, मैं यज्ञ दान आदि की क्रियाएँ हूँ। मैं समस्त विद्याओं का स्वामी कहा गया हूँ।।५६।।

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः। अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश॥५७॥

मैं ज्योति हूँ, मैं वायु हूँ, मैं पृथ्वी हूँ, मैं आकाश हूँ, मैं जल हूँ, समुद्र हूँ, नक्षत्र समूह हूँ, दशों दिशाएं मैं ही हूँ।।५७।।

अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः। क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः॥५८॥

मैं वर्ष हूँ, मैं चन्द्रमा हूँ, मैं बादल हूँ, मैं सूर्य हूँ, क्षीर सागर में निवास करने वाला हूँ, समुद्र में मैं वडवामुख नामक अग्नि हूँ।।५८।।

वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः। अहं पुराणः परमं तथैवाहं परायणम्॥५९॥

संवर्तक नामक अग्नि होकर मैं ही जलरूप हवि का पान करता हूँ, मैं ही परम पुराण कहा जाता हूँ, उसी प्रकार मैं ही सब का आश्रय दाता हूँ।।५९।।

अहं भूतस्य भव्यस्व वर्तमानस्य सम्भवः।
यत्किंचित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किञ्चन॥६०॥
यल्लोके चानुभवसि तत्सर्वं मामनुस्मर।
विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्य माम्॥६१॥

मैं ही भूत, भविष्य एवं वर्तमान–सब की उत्पत्ति करता हूँ। हे विप्र! जो कुछ तुम देख रहे हो, जो कुछ सुन रहे हो, लोक में जो कुछ अनुभव कर रहे हो, उन सब में मेरा ही स्मरण करो। मैंने ही पूर्वकाल में समस्त जगत् की सृष्टि की है, मुझे ही इसकी रचना पुनः करनी है, मुझे देखो!।।६०-६१।।

युगे युगे च स्त्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्। तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयवधारय॥६२॥

हे मार्कण्डेय! प्रत्येक युगों में पुनः मैं ही इस समस्त जगत् की सृष्टि करूँगा। अतः इन सब वस्तुओं का सम्बन्ध मुझसे ही समझो।।६२।।

शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखं मम। मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह॥६३॥

मेरे धर्म के श्रवण की इच्छा से ही तुम पुनः आकर मेरे उदर में सुखपूर्वक विचरण करो, समस्त देवताओं तथा ऋषियों के साथ ब्रह्मा मेरे शरीर में ही अवस्थित हैं।।६३।।

व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छासुरद्विषम्। अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः॥६४॥

प्रकट एवं अप्रकट योग वाले मुझको असुरों का संहारकर्ता मानों। मैं ही एकाक्षर रूप एवं तीन अक्षर रूप तारक मन्त्र हूँ।।६४।।

परस्त्रिवर्गादोङ्कारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः। एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः॥६५॥

तीनों वर्गों से परे, तीनों वर्गों का प्रयोजन देने वाला ओंकार मैं ही हूँ। समस्त जगत् के स्वामी महामतिशाली भगवान् ने इस प्रकार की बातें कहते समय शीघ्रता से अपनी मुख को पुनः विकसित किया।।६५।।

वक्त्रमाहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम्। ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः॥
स तस्मिन्सुखमेकान्ते शुश्रूषुर्हंसमव्ययम्॥६६॥
योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे।
शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजज्जगद्विहरति कालपर्यये॥६७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६७॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥८९९१॥

परिणामतः मुनिसत्तमम् मार्कण्डेय भगवान् के उदर में पुनः प्रविष्ट हो गये और उस एकान्त प्रदेश में शाश्वत हंस रूप भगवान् के विषय में अधिकाधिक श्रवण करने की इच्छा से सुखपूर्वक विचरण करने लगे। वहाँ घूमते हुए मार्कण्डेय ने इस प्रकार हंस-ध्वनि सुनी। मैं ही वह शाश्वत हंस हूँ, जो समर्थ होकर चन्द्रमा तथा सूर्य से रहित भी इस विशाल समुद्र में धीरे-धीरे घूमता हुआ पुनः इस विशाल संसार की रचना करता हूँ॥६६-६७॥

॥एक सौ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥१६७॥

❖❖❖

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पाँचों महाभूतों की दिव्य उत्पत्ति

मत्स्य उवाच

आपवः स विभुर्भूत्वा चारयामास वै तपः।
छादयित्वाऽऽत्मनो देहं यादसां कुलसम्भवम्॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा-इस प्रकार जल में निवास करते हुए उस महान् आत्मा ने अपने शरीर को छिपाकर जल में ही तपस्या की, उस समय वे जलचर जन्तुओं के कुल में उत्पन्न हुए॥१॥

ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने। महतां पञ्चभूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत्॥२॥

तदनन्तर उस महाबलवान् महान् आत्मा ने लोक के सर्जन करने की इच्छा की और पाँच महाभूतों की समष्टि से बने हुए उस विश्व का चिन्तन किया॥२॥

तस्य चिन्तयमानस्य निर्वाते संस्थितेऽर्णवे। निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे॥३॥
ईषत्सङ्क्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलाश्रयः। अनन्तरोर्मिभिः सूक्ष्ममथ च्छिद्रमभूत्पुरा॥४॥
शब्दं प्रति तदोद्भूतो मारुतश्छिद्रसम्भवः। स लब्ध्वाऽन्तरमक्षोभ्यो व्यवर्धत समीरणः॥५॥

वायुरहित समुद्र में विश्व का चिन्तन करने वाले भगवान् के सम्मुख उस आकाश रहित जलमय गम्भीर समुद्र के जल में, जिसमें जगत् सूक्ष्म रूप से वर्तमान था, कुछ संक्षोभ उत्पन्न हुआ। उसी से उठने वाली लहरों से सूक्ष्म छिद्र उत्पन्न हुआ, उस छिद्राकाश से अभिहत होकर शब्द एवं वायु का प्रादुर्भाव हुआ। दुर्द्धर्ष वायु वहीं पर अवकाश प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त हुई।।३-५।।

विवर्धता बलवता वेगाद्विक्षोभितोऽर्णवः। तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मन्थिते।।
कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरो महान्।।६।।

उस बढ़ती हुई वायु से समुद्र पुनः विक्षुब्ध हुआ और संक्षोभित हुए उस समुद्र की जलराशि मन्थन के समान उद्वेलित हुई एवं मथे हुए उस जल में काले धूमों वाली वैश्वानर नामक अग्नि उत्पन्न हुई।।६।।

ततः संशोषयामास पावकः सलिलं बहु। क्षयज्जलनिधेश्छिद्रमभवद्विस्तृतं नभः।।७।।

उस अग्नि ने समुद्र का बहुत-सा जल सोख लिया, जिसमें समुद्र के जल के विनाश हो जाने से छिद्रविस्तृत आकाश रूप में परिणत हो गया।।७।।

आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः। आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः।।८।।

उस विभु के आत्मतेज से उद्भूत जल अत्यन्त पवित्र तथा अमृत के रस समान सुस्वादु हुआ। छिद्र से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु प्रादुर्भूत हुई।।८।।

आभ्यां सङ्घर्षणोद्भूतं पावकं वायुसम्भवम्। दृष्ट्वा प्रीतो महादेवो महाभूतविभावनः।।९।।

इन आकाश और वायु के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई, जो वायु से उत्पन्न कही जाती है। महाभूतों को उत्पन्न करने वाले देवाधिदेव इन तत्त्वों को उद्भूत हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।।९।।

दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम्। ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो व्यचिन्तयत्।।१०।।

एवं लोकसृष्टि के लिए इन महाभूतों को उपस्थित देख कर ब्रह्मा की उत्पत्ति एवं अनेक स्वरूप वाली अन्य आवश्यक वस्तुओं के विषय में चिन्तन किया।।१०।।

चतुर्युगाभिसङ्ख्याते सहस्त्रयुगपर्यये। बहुजन्मा हि विश्वात्मा ब्रह्मणो हविरुच्यते।।११।।
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम्।
ज्ञानं दृष्टं तु विश्वार्थे योगिनां याति मुख्यताम्।।१२।।
तं योगवन्तं विज्ञाय सम्पूर्णैश्वर्यमुत्तमम्। पदे ब्रह्मणि विश्वेशं न्ययोजयत योगवित्।।१३।।

चारों युगों के सहस्र बार बीत जाने पर अनेक जन्म लेने पर विश्वात्मा को ब्रह्म का हवि कहते हैं। योग के जानने वाले प्रभु ने, पृथ्वी पर तपस्या से पवित्र आत्मा वाले महर्षियों में जो ज्ञान देखा जाता है, योगियों में योग करने की जो क्षमता पाई जाती है, उनसब गुणों से युक्त, सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त, उस विश्व के रचने की योग्यता वाले महात्मा को विश्व की सृष्टि के लिए ब्रह्मा के पद पर नियुक्त किया।।११-१३।।

ततस्तस्मिन्महातोये महीशो हरिरच्युतः। जले क्रीडंश्च विधिवन्मोदते सर्वलोककृत्॥१४॥

तदनन्तर उस अपार जलराशि में महीश अच्युत भगवान् विष्णु ने जो सभी लोकों की रचना करने वाले हैं, स्वयं क्रीड़ा करते हुए विधिपूर्वक आनन्द का अनुभव किया॥१४॥

पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुप्पादितवांस्तदा। सहस्रपर्णं विरजं भास्कराभं हिरणमयम्॥१५॥

और अपनी नाभि से सहस्र पंखड़ियों वाले रजरहित सुवर्णमय एक कमल की उत्पत्ति की, जो सूर्य के समान अनुपम कान्ति से युक्त था॥१५॥

हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभमुपस्थितं शरदमलार्कतेजसम्।
विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम्॥१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावो नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥९००७॥

अग्नि की जलती हुई लपटों के समान देदीप्यमान, निज शरीर की रोमावलि के समान सुन्दर दिखाई पड़ने वाला, मनोहर कान्ति युक्त, शरत्कालीन सूर्य के समान शोभित वह कमल परम शोभा सम्पन्न था॥१६॥

॥एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥१६८॥

❖❖❖

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मा का प्रादुर्भाव

मत्स्य उवाच

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद्भूरितेजसम्। स्त्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम्॥१॥
यस्मिन्हिरणमये पद्मे बहुयोजनविस्तृते। सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणैर्वृतम्॥२॥
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम्। नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः॥३॥

मत्स्य ने कहा—तदनन्तर भगवान् ने समस्त भुवन के स्त्रष्टा योगियों में श्रेष्ठ अतितेजस्वी चारों ओर मुँह वाले ब्रह्मा की रचना की और अनेक योजनों में विस्तृत उस सुवर्णमयकमल में सभी राज-लक्षणों से सुशोभित तेजोमय सभी गुणों से संयुक्त ब्रह्मा उत्पन्न हुए। पुराणों की महिमा जानने वाले उस कमल को पृथ्वी का उत्तम स्वरूप मानते हैं, महर्षिगण उसे नारायण से उत्पन्न हुआ मानते हैं॥१-३॥

या पद्मा सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते। ये पद्मसारगुरवस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः॥४॥

जो पद्मा है, वही रसा नाम से पृथ्वी देवी कही जाती है और जो उस पद्म में बोझीले पदार्थ हैं, उसे लोग दिव्य गुणयुक्त पर्वत जानते हैं॥४॥

हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च। कैलासं मुञ्जवन्तं च तथाऽन्यं गन्धमादनम्॥५॥
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च। उदयं पिञ्जरं चैव विन्ध्यवन्तं च पर्वतम्॥६॥
एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम्। आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः॥७॥

हिमवान्, सुमेरु, नील, निषध, कैलास, मुंजवान, गन्धमादन, पवित्र त्रिशिखर, सुन्दर मन्दर, उदय, पिंजर तथा विन्ध्य-ये पर्वत पुण्यशील सिद्ध महात्माओं तथा देवताओं के समूहों के निवास स्थान तथा सभी प्रकार के मनोरथ एवं फलों को देने वाले हैं॥५-७॥

एतेषामन्तरे देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः। जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र वै क्रियाः॥८॥

इन सभी पर्वतों के मध्यभाग में जम्बूद्वीप की अवस्थिति कही जाती है। जम्बूद्वीप की पहचान है जहाँ पर यज्ञ की क्रियाएँ होती हैं॥८॥

एभ्यो यत्स्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम्।
दिव्यास्तीर्थशताधाराः सुरम्याः सरितः स्मृताः॥९॥

इन उपर्युक्त पर्वतों से दिव्य अमृत रस के समान सुस्वादु जल चू कर जिनमें बहता है, वे ही दिव्य, सैकड़ों तीर्थ स्थानों से युक्त सुरम्य नदियाँ कही जाती हैं॥९॥

स्मृतानि यानि पद्मस्य केसराणि समन्ततः।
असङ्ख्येयाः पृथिव्यास्ते विश्वे वै धातुपर्वताः॥१०॥

उस कमल के चारों ओर जो अत्यन्त सुरम्य केसर हैं, वे ही इस पृथ्वी के असंख्य धातु पर्वत कहे जाते हैं॥१०॥

यानि पद्मस्य पर्णानि भूरीणि तु नराधिप।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः॥११॥
यान्यधोभागपर्णानि ते निवासास्तु भागशः।
दैत्यानामुरगाणां च पतङ्गानां च पार्थिव॥१२॥

राजन्! जो उस पद्म के अधिक संख्या वाले पत्ते हैं, वे ही पहाड़ों से घिरे हुए दुर्गम म्लेच्छों के देश हैं, जो नीचे के पत्ते वाले हैं, वे क्रमशः दैत्यों, सर्पों तथा पतंगों के निवास स्थान कहे जाते हैं॥११-१२॥

तेषां महार्णवो यत्र तद्रसेत्यभिसंज्ञितम्। महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः॥१३॥

उन सब दैत्यों, सर्पों आदि का महासमुद्र जहाँ पर है, वह रसा नाम से कहा जाता है, वहीं पर महापाप करने वाले मानव डूबते हैं॥१३॥

पद्मस्यान्तरतो यत्तदेकार्णवगता मही। प्रोक्ताऽथ दिक्षु सर्वासु चत्वारः सलिलाकराः॥१४॥

उस पद्माकार पृथ्वीमण्डल के चारों ओर चार समुद्र कहे गये हैं।।१४।।

एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसम्भवा। प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः॥१५॥

इस प्रकार नारायण की इच्छा मात्र से वह पुष्कर से पृथ्वी उत्पन्न कही गई है, अब उसके उत्पन्न होने का वृत्तान्त भी पुष्कर नाम से प्रसिद्ध है।।१५।।

एतस्मात्कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः। याज्ञिकैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञे पद्मविधिः स्मृतः॥१६॥

यही कारण है कि उस वृत्तान्त को जानने वाले प्राचीन महर्षियों ने, जो परम याज्ञिक माने गये हैं, वेद के दृष्टान्तों से यज्ञ में पद्म का विधान बतलाया है।।१६।।

एवं भगवता तेन विश्वेषां धारणाविधिः। पर्वतानां नदीनां च ह्रदानां चैव निर्मितः॥१७॥

इस प्रकार उस भगवान् ने समस्त पृथ्वी के पर्वत, नदी एवं सरोवरों के साथ निर्णय किया।।१७।।

विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः प्रभाकराभो वरुणः सितद्युतिः।
शनैः स्वयम्भूः शयनं सृजत्तदा जगन्मयं पद्मविधिं महार्णवे॥१८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भाव एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९०२५।।

तदुपरान्त अतुलित प्रभावशाली, सूर्य के समान शोभा वाली, सामर्थ्यवान् स्वयम् उत्पन्न होने वाले भगवान् जगन्मय उस पद्म का विधान करके उस महासमुद्र में धीरे से पुनः शयन करने लगे।।१८।।

।।एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१६९।।

❖❖❖

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मधुकैटभ वध वर्णन

मत्स्य उवाच

विघ्नस्तपसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः। तेनैव च सहोद्भूतो ह्यसुरो नाम कैटभः॥१॥

मत्स्य ने कहा—इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ के योगनिद्रा में निमग्न हो जाने पर तपस्या के विघ्न स्वरूप रजस्तमोमय मधु और कैटभ नामक दो असुर एक ही समय उत्पन्न हुए।।१।।

तौ रजस्तमसौ विष्णोः सम्भूतौ तामसौ गणौ। एकार्णवे जगत्सर्वं क्षोभयन्तौ महाबलौ॥२॥

रजोगुण-तमोगुण से उत्पन्न वे दोनों महाबलवान् विघ्नकारी राक्षस उस महासमुद्र में समस्त जगत् को क्षुब्ध करने लगे॥२॥

दिव्यरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ। किरीटकुण्डलोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ॥३॥

उस समय वे दोनों लाल वर्ण के दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए थे, उनके अगले दाँत अति उज्ज्वल होने से चमक रहे थे, वे किरीट तथा कुण्डल धारण किये हुए थे, उज्ज्वल केयूर और वलय से सुशोभित थे॥३॥

महाविवृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ। महागिरेः संहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ॥४॥

उनकी विशाल आँखें लाल थीं, वक्षस्थल दृढ़ थे। भुजाएँ विशाल थीं। आकृति देखने में महागिरि के समान दिखाई पड़ती थीं। उस समय वे चलते हुए पर्वत के समान लग रहे थे॥४॥

नवमेघप्रतीकाशावादित्यसदृशाननौ। विद्युदाभौ गदाग्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ॥५॥

उनके मुख नवीन मेघ के समान श्यामल तथा सूर्य के समान तेजोमय थे, वे गदा के अग्रभाग तथा हाथों में विद्युत् के समान अत्यन्त भीषण दिख रहे थे॥५॥

तौ पादयोस्तु विन्यासादुत्क्षिपन्ताविवार्णवम्। कम्पयन्ताविव हरिं शयानं मधुसूदनम्॥६॥

वे दोनों पैरो के विन्यास से समुद्र को फेंकते हुए के समान मालूम हो रहे थे और शयन करते हुए मधुसूदन भगवान् विष्णु को कम्पित से कर रहे थे॥६॥

तौ तत्र विचरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम्। योगिनां श्रेष्ठमासाद्य दीप्तं ददृशतुस्तदा॥७॥
नारायणसमाज्ञातं सृजन्तमखिलाः प्रजाः। दैवतानि च विश्वानि मानसानसुरानृषीन्॥८॥

इस प्रकार महासमुद्र में घूमते हुए उन दोनों ने कमल में विराजमान योगियों में श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्मा को देखा जो उस समय अत्यन्त तेजोमय थे तथा नारायण की आज्ञा से मानसिक संकल्प द्वारा समस्त प्रजाओं की एवं सभी देवताओं, ऋषियों तथा असुरों की सृष्टि कर रहे थे॥७-८॥

ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ। दीप्तौ मुमूर्षू संक्रुद्धौ रोषव्याकुलितेक्षणौ॥९॥
कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः।
आधाय नियमं मोहादास्से त्वं विगतज्वरः॥१०॥

उन आसन्न असुरनायकों ने ब्रह्मा के समीप जाकर अति क्रोध से व्याकुलित नेत्र हो कहा-'चार भुजावाले, श्वेत रंग की पगड़ी बाँधे, कमल के मध्य में निवास करने वाले तुम कौन हो? अज्ञान से योग की आराधना कर शान्तचित्त हो यहाँ मौज कर रहे हो॥९-१०॥

एह्यागच्छाऽऽवयेर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्भव। आवाभ्यां परमीशाभ्यामशक्तस्त्वमिहार्णवे॥११॥
तत्र कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वाऽसि नियोजितः।
कः स्त्रष्टा कश्च ते गोप्ता केन नाम्ना विधीयसे॥१२॥

यहाँ आओ, कमल से उत्पन्न होने वाले! मुझ दोनों के साथ युद्ध करो, इस महासमुद्र में तुम-हम दो महान् स्वामियों के सामने एक नगण्य व्यक्ति हो, असमर्थ हो, यहाँ कहाँ से तुम्हारी उत्पत्ति हो गई है? किसने तुम्हें इस काम में नियुक्त किया है? तुम्हारी सृष्टि किसने की है ? तुम्हारी रक्षा भला कौन करता है? तुम्हारा नाम क्या है?'।।११-१२।।

ब्रह्मोवाच

एक इत्युच्यते लोकैरविचिन्त्यः सहस्रदृक्।
तत्संयोगेन भवतोः कर्म नामावगच्छताम्।।१३।।

ब्रह्मा ने कहा–सहस्त्र नेत्रों वाला, जिसे लोग जान नहीं सकते वह प्रभु लोक में एक कहा गया है, तुम दो दिखाई पड़ रहे हो, अतः तुम दोनों के नाम तथा काम को मैं जानना चाहता हूँ।।१३।।

मधुकैटभावूचतुः

नाऽऽवयोः परमं लोके किञ्चिदस्ति महामते।
आवाभ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसाऽथ वै।।१४।।

मधु-कैटभ ने कहा–महाबुद्धिमान्! हम दोनों से बढ़कर इस विश्व में कोई नहीं है, हम दोनों ने रजोगुण तथा तमोगुण से समस्त विश्व को आवृत्त कर लिया है।।१४।।

रजस्तमोमयावावामृषीणामवलङ्घितौ। छाद्यमानौ धर्मशीलौ दुस्तरौ सर्वदेहिनाम्।।१५।।

हम दोनों रजोगुण एवं तमोगुण से संयुक्त हैं, ऋषिगण हम दोनों से पार नहीं पा सकते, हम धर्म एवं शील को छिपाते हुए समस्त देहधारियों से पराजित नहीं किये जा सकते।।१५।।

आवाभ्यामुह्यते लोको दुष्कराभ्यां युगे युगे।
आवामर्थश्च कामश्च यज्ञः स्वर्गपरिग्रहः।।१६।।

प्रत्येक युग में हमी दोनों लोक का वहन करते हैं, हम दोनों के लिए अर्थ, काम, यज्ञ एवं स्वर्ग का विधान बना हुआ है।।१६।।

सुखं यत्र मुदा युक्तं यत्र श्रीः कीर्तिरेव च।
येषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय।।१७।।

जहाँ पर आनन्द एवं सुख है, लक्ष्मी एवं यज्ञ है, प्राणियों के मन में जितनी अभिलाषाएँ हैं, वे सब मुझ दोनों की ही समझनी चाहिए।।१७।।

ब्रह्मोवाच

यत्नाद्योगवतो दृष्ट्या योगः पूर्वं मयाऽर्जितः।
तं समाधाय गुणवत्सत्त्वं चास्मि समाश्रितः।।१८।।

ब्रह्मा ने कहा–योग के यत्न से एवं दृष्टि से मैंने पूर्व काल में योग की आराधना की थी, उसी के कारण मैं सत्त्व गुण को प्राप्त कर सका हूँ।।१८।।

यः परो योगमतिमान्योगाख्यः सत्त्वमेव च।
रजसस्तमसश्चैव यः स्त्रष्टा विश्वसम्भवः।।१९।।
ततो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च।
स एव हि युवां नाशे वशी देवो हनिष्यति।।२०।।

जो इस जगत् में सर्वश्रेष्ठ है, मतिमान् है, जिसकी संज्ञा ही 'योग' है, जो वास्तव में सत्त्वरूप ही है, जो विश्व का उत्पत्तिकर्ता एवं रजोगुण तथा तमोगुण का भी सृष्टिकर्ता है, उसी से सत्त्वगुण युक्त, रजोगुणमय एवं तमोगुणमय जीवों की उत्पत्ति होती है। वही देव आप दोनों के विनाश करने में समर्थ है और वही संहार भी करेगा।।१९-२०।।

स्वपन्नेव ततः श्रीमान्बहुयोजनविस्तृतम्। बाहुं नारायणो ब्रह्मा कृतवानात्ममायया।।२१।।

ठीक इसी अवसर पर भगवान् विष्णु ने शयन करते हुए अपनी माया से अपनी बाहु को अनेक योजन तक विस्तृत बनाया।।२१।।

कृष्यमाणौ ततस्तस्य बाहुना बाहुशालिनः चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ।।२२।।

जिससे उस लम्बी बाहुवाले की बाहु से खींचे जाते हुए वे दोनों दैत्य इधर-उधर दीन दशा में घूमते हुए मोटे पक्षी की भाँति दिखाई पड़ने लगे।।२२।।

ततस्तावाहतुर्गत्वा तदा देवं सनातनम्। पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य स्थितावुभौ।।२३।।

तदनन्तर वे दोनों दैत्य सर्वदा एकरूप में रहने वाले हृषीकेश पद्मनाभ भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रणाम करते हुए बोले-।।२३।।

जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम्। त्वमावां पाहि हेत्वर्थमिदं नौ बुद्धिकारणम्।।२४।।

देव! विश्व को उत्पन्न करने वाले! पुरुषोत्तम! एकमात्र आपको हम जानते हैं, हम दोनों की आप रक्षा करें, आप ही हमारे कल्याण रूप हैं।।२४।।

अमोघदर्शनः स त्वं यतस्त्वां विद्व (:)शाश्वतम्।
ततस्त्वामागतावावामभितः प्रसमीक्षितुम्।।२५।।

आपका दर्शन किसी को कभी विफल नहीं होने देता, आपको हम लोग शश्वत जानते हैं, इसलिये आपके दर्शनार्थ हम दोनों यहाँ आये हुए हैं।।२५।।

तदिच्छामो वरं देव त्वत्तोऽद्भुतमरिन्दम। अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिंजय।।२६।।

शत्रुओं को बस में करने वाले देव! अतएव हम आपसे यह वरदान प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं। युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले! आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।।२६।।

श्रीभगवानुवाच

किमर्थं हि द्रुतं ब्रूतं वरं ह्यसुरसत्तमौ। दत्तायुष्कौ पुनर्भूयोरहो जीवितुमिच्छथः॥२७॥

श्री भगवान् ने कहा–दानवों में श्रेष्ठ असुरद्वय! किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आप लोग इस वरदान को माँग रहे हैं, आप लोगों की आयु तो समाप्त हो गई है। क्या सभी जीवित रहने को इच्छुक हैं?॥२७॥

मधुकैटभावूचतुः

यस्मिन्न कश्चिन्मृतवान्देव तस्मिन्प्रभो वधम्।
तमिच्छावो वधश्चैव त्वत्तो नोऽस्तु महाव्रत॥२८॥

मधु-कैटभ ने कहा–महाव्रतशाली देव! जिस स्थल पर कोई भी नहीं मरा है, वहाँ और आपके हाथों द्वारा हम दोनों अपनी मृत्यु की अभिलाषा करते हैं॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

बाढं युवां तु प्रवरौ भविष्यत्कालसम्भवे। भविष्यतो न सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम्॥२९॥

श्री भगवान् ने कहा–'तुम दोनों दैत्यों की उत्पत्ति भविष्य में अवश्य ही श्रेष्ठ शक्तिशाली रूप में होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, मैं सत्य कह रहा हूँ॥२९॥

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरः सुरोत्तमः।
रजस्तमोवर्गभवायनौ यमौ ममन्थ तावूरुतलेन वै प्रभुः॥३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे मधुकैटभवधे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥९०५५॥

इस प्रकार उन श्रेष्ठ दैत्यों को वरदान देकर विश्व में श्रेष्ठ सुरोत्तम सनातन भगवान् विष्णु ने रज एवं तमोगुणमय उन भयानक दैत्यों के जोड़े को अपनी जाँघों के मूल भाग पर रखकर मार डाला॥३०॥

॥एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥१७०॥

❖❖❖

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मा को मानस पुत्रों की प्राप्ति, दक्ष की बारह कन्याओं का वृत्तान्त, ब्रह्मा द्वारा सृष्टि का वर्णन, विविध देवयोनियों का प्रादुर्भाव

मत्स्य उवाच

स्थित्वा च तस्मिन्कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपो घोरं समाश्रितः॥१॥

मत्स्य ने कहा—ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी ब्रह्मा जी उस कमल में अवस्थित होकर ऊपर हाथ किये हुए घोर तपस्या कर रहे थे।।१।।

प्रज्वलन्निव तेजोभिर्भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः। बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुभिः॥२॥

उस समय वे अपने अतिशय तेज तथा शोभा से चारों ओर घनीभूत अंधकार का विनाश कर रहे थे एवं अपनी अनुपम आभा से सहस्त्र किरणों वाले सूर्य की भाँति दिखाई पड़ रहे थे।।२।।

अथान्यद्रूपमास्थाय शम्भुर्नारायणोऽव्ययः। आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः॥३॥
साङ्ख्याचार्यो हि मतिमान्कपिलो ब्राह्मणो वरः। उभावपि महात्मानौ स्तुवन्तौ क्षेत्रतत्परौ॥४॥
तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम्। परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः॥५॥

उस समय अव्यय नारायण भगवान् ने, जो समस्त जगत् को कल्याण प्रदान करने वाले हैं, अति तेजस्वी महायशस्वी योगाचार्य का स्वरूप धारण किया। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सांख्याचार्य परमबुद्धिमान् कपिल भी आ गये, फिर वे दोनों अपने-अपने मार्ग में तत्पर, भूत एवं भविष्य को जानने वाले, महर्षियों से पूजित महात्मा स्तुति करते हुए अमित तेजस्वी ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले।।३-५।।

ब्रह्मात्मदृढबन्धश्च विशालो जगदास्थितः। ग्रामणीः सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः॥६॥

विशाल जगत् के रचने वाले तीनों लोकों में पूजे जाने वाले दृढ़ आसन पर विराजमान ब्रह्मा ही सभी जीवों के निर्माण करने वाले तथा प्रमुख हैं"।।६।।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्माऽभ्याहतयोगवित्। त्रीनिमान्कृतवाँल्लोकान्यथेयं ब्रह्मणः श्रुतिः॥७॥

उन दोनों प्रार्थना करने वालों की ऐसी बात सुनकर योगज्ञानी ब्रह्मा ने अपने योगबल द्वारा इन तीनों लोकों की रचना अपनी ब्रह्मशक्ति के अनुरूप की।।७।।

पुत्रं च शम्भवे चैकं समुत्पदितवानृषिः। तस्याग्रे वाग्यतस्तस्थौ ब्रह्मा तामसमव्ययम्॥८॥
सोत्पन्नमात्रो ब्रह्माणमुक्तवान्मानसः सुतः। किं कुर्मस्तव साहाय्यं ब्रवीतु भगवानृषिः॥९॥

तदनन्तर ऋषि ने एक मंगलाचार सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति की। ब्रह्मा का वह मानस पुत्र

उत्पन्न होते ही अजन्मा एवं अव्यय ब्रह्मा के अग्रभाग में चुपचाप विनम्र भाव से खड़ा हुआ और बोला- 'भगवन्'। मैं आप की क्या सहायता करूँ, उसे बतलाइये'।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

य एष कपिलो ब्रह्म नारायणमयस्तथा। वदते भवतस्तत्त्वं तत्कुरुष्व महामते।।१०।।
ब्रह्मणस्तु तदर्थं तु तदा भूयः समुत्थितः। शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं करोमि कृताञ्जलिः।।११।।

ब्रह्मा ने कहा-'महाबुद्धिमान्! यह जो कपिल नामक महर्षि तथा नारायण ब्रह्मरूप भगवान् सम्मुख खड़े हैं, वे तुमसे जो तत्त्व की बातें बतायें, उनका पालन करो।' ब्रह्मा के ऐसा करने पर वह पुत्र हाथ जोड़कर पुनः भगवान् और कपिल के सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला 'भगवन्! मैं क्या करूँ?।।१०-११।।

श्रीभगवानुवाच

यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशविधं तु तत्। यत्सत्यं यदृतं तत्तु परं पदमनुस्मर।।१२।।

भगवान् ने कहा-'ब्रह्मन्! जो कुछ सत्य एवं शश्वत कहा गया है, वह अट्ठारह प्रकार का है, जो सत्य है, अनश्वर है, वही परम पद है, तुम उसी का अनुसरण करो।।१२।।

एतद्वचो निशम्यैव ययौ स दिशमुत्तराम्। गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानतेजसा।।१३।।

ऐसी बातें सुनते ही वह पुत्र उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हुआ और वहाँ पहुँच कर अपने ज्ञान के तेज से उसने ब्रह्मत्व की प्राप्ति की।।१३।।

ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत्प्रभुः। सङ्कल्पयित्वा मनसा तमेव च महामनाः।।१४।।
ततः सोऽथाब्रवीद्वाक्यं किं करोमि पितामह। पितामहसमाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः।।१५।।

ब्रह्माभ्यासं तु कृतवान्भुवश्च पृथिवीं गतः।
प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः।।१६।।

तदनन्तर महामना भगवान् ब्रह्मा ने मन में उसी प्रकार के 'भुव' नामक द्वितीय पुत्र को उत्पन्न किया और वह भी उनके सम्मुख आकर बोला-पितामह! मैं क्या करूँ?' पितामह की आज्ञा से उस द्वितीय पुत्र भुव ने भी पृथ्वी से जाकर उस सांख्य एवं योग के आचार्य कपिल तथा विष्णु से वेदाभ्यास किया और कालान्तर में चलकर परम पद प्राप्त किया।।१४-१६।।

तस्मिन्नपि गते पुत्रे तृतीयमसृजत्प्रभुः। मोक्षप्रवृत्तिकुशलं भूर्भुवं नामतो विभुम्।।१७।।

उस दूसरे पुत्र के भी इस प्रकार चल जाने पर भगवान् ब्रह्मा ने सांख्य आदि विषयों में प्रवीण 'भूर्भुव' नामक तीसरे पुत्र को उत्पन्न किया।।१७।।

गोपतित्वं समासाद्य तयोरेवागमद्गतिम्।
एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येत उक्ताः शम्भोर्महात्मनः।।१८।।

ब्रह्मा के इस तृतीय पुत्र ने भी उन्हीं दोनों भाईयों की भाँति गोपतित्व (इन्द्रियजित्व) की प्राप्ति कर उत्तम गति प्राप्त की। इस प्रकार ये तीन पुत्र महात्मा शम्भु (ब्रह्मा) के जिस प्रकार उत्पन्न हुए, वैसा मैं तुम्हें कह चुका।।१८।।

तान्गृहीत्वा सुतमांस्तस्य प्रयातः स्वार्जितां गतिम्।
नारायणश्च भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः।।१९।।

तदनन्तर ब्रह्मा के उन पुत्रों को अपने साथ ले भगवान् नारायण तथा यतीश्वर कपिल जी अपने स्थान को चले गये।।१९।।

यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तं कालमेव हि। ततो घोरतमं भूयः संश्रितः परमं व्रतम्।।२०।।

जिस समय वे दोनों चले गये, उसी समय ब्रह्मा जी पुनः अपने आसन पर बैठकर परमव्रत एवं तपस्या में लीन हुए।।२०।।

न रेमेऽथ ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्। शरीरार्धात्ततो भार्यां समुत्पादितवयञ्छुभाम्।।२१।।
तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च। सदृशीमात्मनो देवीं समर्थां लोकसर्जने।।२२।।

किन्तु इस प्रकार अकेले तपस्या करते हुए वे कुछ भी आत्म-सन्तोष का लाभ नहीं कर सके। तदनन्तर उन्होंने शरीर द्वारा एक परम सुन्दरी स्त्री को उत्पन्न किया, जो तपस्या, तेजस्विता, ओजस्विता एवं नियम में उन्हीं के समान एवं लोक सृष्टि में भी समर्थ थी।।२१-२२।।

तया समाहितस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपश्चरन्। ततो जगाद त्रिपदां गायत्रीं वेदपूजिताम्।।२३।।

तपस्या में तत्पर रहकर ब्रह्मा ने उसी स्त्री के साथ विहार करते हुए कालयापन किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने वेदों द्वारा पूजित तीन चरणों वाली गायत्री की सृष्टि की।।२३।।

सृजन्प्रजानां पतयः (?)सागरांश्चासृजद्विभुः। अपरांश्चैव चतुरो वेदान्गायत्रिसम्भवान्।।२४।।

फिर भगवान् ने प्रजापतियों का निर्माण किया और समुद्रों की भी सृष्टि की, तथा गायत्री से उत्पन्न हुए वेदों को भी प्रकट किया।।२४।।

आत्मनः सदृशान्पुत्रानसृजद्वै पितामहः।
विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः।।२५।।

विश्वेशं प्रथमं तावन्महातापसमात्मजम्। सर्वमन्त्रहितं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान्।।२६।।

फिर पितामह ने अपने ही समान तेजस्वी पुत्रों की सृष्टि की जो, विश्व में विविध प्रजाओं के सृष्टिकर्ता हुए, समस्त प्रजाएँ उन्हीं से उत्पन्न हुई। सर्वप्रथम उन्होंने अपने पुत्र महातपस्वी धर्म को उत्पन्न किया, जो सभी मंत्रों से अभिरक्षित, अति पवित्र तथा महान् तपस्वी थे।।२५-२६।।

दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम्।।२७।।

फिर दक्ष, मारीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अंगिरा और मनु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया।।२७।।

अथैवाद्भुतमित्येते ज्ञेयाः पैतामहर्षयः। त्रयोदशगुणं धर्ममालभन्त महर्षयः॥२८॥

इन अत्यन्त अद्भुत कर्मशाली, पितामह के महर्षि पुत्रों ने तेरह प्रकार की विशेषताओं से युक्त धर्म का प्रतिपादन एवं अनुसरण किया॥२८॥

अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिका मुनिः।
ताम्रा क्रोधाऽथ सुरता विनता कद्रुरेव च॥२९॥

दक्षस्यापत्यमेता वै कन्या द्वादश पार्थिव। मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः किल॥३०॥

राजन्! अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, ताम्रा, क्रोधा, सुरता, विनता और कद्रू–ये बारह दक्ष की कन्याएँ थीं। मरीचि ने कश्यप नामक पुत्र उनके तपोबल के माहात्म्य से उत्पन्न हुआ॥२९-३०॥

तस्मै कन्या द्वादशान्या दक्षस्ताः प्रददौ तदा। नक्षत्राणि च सोमाय तदा वै दत्तवानृषिः॥३१॥

रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि रविनन्दन।

सूर्यपुत्र! तदनन्तर दक्ष ने अपनी उन बारह कन्याओं को कश्यप को सौंप दिया और रोहिणी आदि पवित्र सभी नक्षत्र संज्ञक कन्याओं को चन्द्रमा को समर्पित किया॥३१.५॥

लक्ष्मीर्मरुत्वीती साध्या विश्वेशा च मता शुभा॥३२॥

देवी सरस्वती चैव ब्राह्मणा निर्मिताः पुरा। एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव॥३३॥
दत्ता भद्राय धर्माय ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा। या तु रूपवती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी॥३४॥
सुरभिः सा हिता भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता। ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुनं लोकपूजितः॥३५॥
लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय सत्तमः। जज्ञिरे च सुतास्तस्यां विपुला धूमसन्निभाः॥३६॥
नक्तसन्ध्याभ्रसङ्काशाः प्रादहंस्तिग्मतेजसः। ते रुदन्तो द्रवन्तश्च गर्हयन्तः पितामहम्॥३७॥
रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा इति ततः स्मृता। निर्ऋतिश्चैव शम्भुर्वै तृतीयश्चापराजितः॥३८॥

मृगव्याधः कपर्दी च दहनोऽथेश्वरश्च वै।
अहिर्बुध्न्यश्च भगवान्कपाली चापि पिङ्गलः॥३९॥
सेनानीश्च महातेजा रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः।
तस्यामेव सुरभ्यां च गावो यज्ञेश्वराश्च वै॥४०॥
प्रकृष्टाश्च तथा माया सुरभ्याः पशवोऽक्षराः।
अजाश्चैव तु हंसाश्च तथैवामृतमुत्तमम्॥४१॥
ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरस्यास्ताः समुत्थिताः।
धर्माल्लक्ष्मीस्तथा कामं साध्या साध्यान्व्यजायत॥४२॥

लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या, शुभा, विश्वेशा तथा सरस्वती इन पाँच कल्याणदायिनी देवियों की

रचना ब्रह्मा ने पूर्वकाल में की थी। राजन्! सभी कार्यों को देखने वाले ब्रह्मा ने इन कन्याओं को श्रेष्ठ देवता धर्म को समर्पित किया। जो ब्रह्मा की अर्धरूपवती इच्छानुकूल स्वरूप धारण करने वाली जगत् का कल्याण करने वाली परम हितैषिणी रूपवती स्त्री थी, वह अपने इच्छा के अनुरूप सुरभि (गौ) का रूप धारण कर ब्रह्मा के समीप आई। लोकपूजित ब्रह्मा ने लोकसृष्टि के उद्देश्य से गौओं की उत्पत्ति के लिए उसके साथ समागम किया, जिससे उसमें धूम के समान काले आकार वाले विशाल पुत्र उत्पन्न हुए जो रात्रि होने के पूर्व सन्ध्या के बादलों के समान भीषण थे और अपने तेज से सबको भस्म से कर रहे थे।। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले वे पुत्र रोते हुए, दौड़ते हुए पितामह की निन्दा कर रहे थे। इसी रोने तथा दौड़ने के कारण वे सभी रुद्र नाम से पुकारे जाते हैं। निर्ऋति, शम्भु अपराजित, मृगव्याध, कपर्दी, दहन, ईश्वर, अह्रिर्बुध्न्य, कपाली, पिंगल तथा महातेजस्वी सेनानी--ये ग्यारह रुद्र के नाम से विख्यात हैं। उसी सुरभि नामक देवी में यज्ञ की साधनभूत समस्त गौएँ, उत्तम (माया?) गौएँ तथा पशु, जिनका कभी विनाश नहीं होता, बकरियाँ, हंस तथा उत्तम अमृत उत्पन्न हुए। जितनी उत्तम रसयुक्त औषधियाँ हैं, वे भी उसी में उत्पन्न हुई। लक्ष्मी ने धर्म के संयोग से काम की तथा साध्या ने साध्य देवगणों को उत्पन्न किया।।३२-४२।।

भवं च प्रभवं चैव हीशं चाऽऽसुरहं तथा। अरुणं चाऽऽरुणिं चैव विश्वावसुबलध्रुवौ।।४३।।
हविष्यं च वितानं च विधानशमितावपि। वत्सरं चैव भूतिं च सर्वासुरनिषूदनम्।।४४।।

सुपर्वाणं बृहत्कान्तिः साध्या लोकनमस्कृताः।
वासवानुगता देवी जनयामास वै सुरान्।।४५।।

भव प्रभव, ईश, असुरहन्ता, अरुण, आरुणि, विश्वावशु, बल, ध्रुव, हविष्य, वितान, विधान, शमित, वत्सर, सभी असुरों विनाशक भूति एवं सुपर्वा नामक देवताओं को अति सुन्दरी वासव की अनुगामिनी साध्या देवी ने, जिसे लोक प्रणाम करता है, उत्पन्न किया।।४३-४५।।

वरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम्। विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम्।।४६।।
ततोऽनुरूपमयं च यमस्तस्मादनन्तरम्। सप्तमं च तथा वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम्।।४७।।

सुदेवी में धर्म के संयोग से प्रथम वर दूसरे कभी विनष्ट न होने वाले ध्रुव, तीसरे विश्वावसु, चौथे भगवान् सोम तदनन्तर अपने ही अनुरूप आप उसके उपरान्त यम, सातवें वायु तथा आठवें निर्ऋति नामक वसु उत्पन्न हुए।।४६-४७।।

धर्मस्यापत्यमेतद्वै सुदेव्यां समजायत।
विश्वेदेवाश्च विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः।।४८।।

ये सभी धर्म के सन्तान कहे जाते हैं। इसी प्रकार सुना जाता है कि धर्म के संयोग से विश्वा में विश्वदेवों (गणदेवता) की उत्पत्ति हुई।।४८।।

दक्षश्चैव महाबाहुः पुष्करस्वन एव च। चाक्षुषस्तु मनुश्चैव तथा मधुमहोरगौ।।४९।।

विश्रान्तकवपुर्बालो विष्कम्भश्च महायशाः। गरुडश्चातिसत्त्वाजौ भास्करप्रतिमद्युतिः॥५०॥

विश्वान्देवान्देवमाता विश्वेशाऽजनयत्सुतान्। मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत्सुतान्॥५१॥

अग्निं चक्षुं रविर्ज्योतिः सावित्रं मित्रमेव च। अमरं शरवृष्टिं च सुकर्षं च महाभुजम्॥५२॥

विराजं चैव वाचं च विश्वावसुमतिं तथा। अश्वमित्रं चित्ररश्मिं तथा निषधनं नृप॥५३॥

हूयन्तं वाडवं चैव चारित्रं मन्दपन्नगम्। बृहन्तं वै बृहद्रूपं तथा वै पूतनानुगम्॥५४॥

मरुत्वती पुरा जज्ञ एतान्वै मरुतां गणान्।
अदितिः कश्यपाज्जज्ञ आदित्यान्द्वादशैव हि॥५५॥

महाबाहु दक्ष, पुष्करस्वन, चाक्षुष मनु, मधु, महोरग, विश्रान्तकवपु, बाल, महायशस्वी विष्कम्भ, अत्यन्त पराक्रमी, तेजस्वी एवं सूर्य के समान कान्ति वाले गरुड़ इन विश्वेदेव संज्ञक पुत्रों की देवताओं की माता विश्वा ने उत्पन्न किया। मरुत्वती ने मरुत्वान् नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। अग्नि, चक्षु, रवि, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुकर्ष, महाभुज, विराजवाच विश्वावसु, मति, अश्वामित्र, चित्ररशिम, निषधन, हूयन्त, वाडव, चारित्र, मन्दपन्नग, बृहन्त, बृहद्रूप और पूतनानुग-इन मरुत संज्ञक देवताओं को पूर्वकाल में मरुत्वती ने उत्पन्न किया था। अदिति ने कश्यप के संयोग से बारह आदित्य संज्ञक देवताओं को उत्पन्न किया।।४९-५५।।

इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्ष्टा वरुणो ह्यर्यमा रविः। पूषा मित्रश्च धनदो धाता पर्जन्य एव च॥५६॥

इत्येते द्वादशाऽऽदित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः।
आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञाते द्वौ सुतौ वरौ॥५७॥

तपः श्रेष्ठौ गुणश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यापि सम्मतौ। दनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्दैत्यान्व्यजायत॥५८॥

इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा वरुण, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, धनद, धाता और पर्जन्य-इन आदित्य संज्ञक पुत्रों को जो स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं में सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं, अदिति ने उत्पन्न किया था। आदित्य की सरस्वती नामक पत्नी में दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए जो समस्त स्वर्ग निवासी देवताओं के पूज्य तपःश्रेष्ठ और गुणश्रेष्ठ कहे जाते हैं। दनु ने दानवों को तथा दिति ने दैत्यों को उत्पन्न किया।।५६-५८।।

माला तु वै कालकेयानसुरान्सुरसा तु वै। अनायुषायास्तनया व्याधयः सुमहाबलाः॥५९॥

काला ने कालकेय नामक असुरों तथा राक्षसों को उत्पन्न किया। अनायुषा के पुत्र महाबलवान् व्याधि संज्ञक पुत्र उत्पन्न हुए।।५९।।

सिंहिका ग्रहमाता वै गन्धर्वजननी मुनिः।
ताम्रा त्वप्सरसां माता पुण्यानां भारतोद्भव॥६०॥

सिंहिका ग्रहों की माता तथा मुनि गन्धर्वों की माता कही जाती हैं। हे राजन्! इसी प्रकार ताम्रा पवित्रात्मा अप्सराओं की माता कही जाती है।।६०।।

क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव पार्थिव।
जज्ञे यज्ञगणांश्चैव राक्षसांश्च विशाम्पते॥६१॥

राजन्! क्रोधा के सभी भूत तथा पिशाच कहे जाने वाले पुत्र उत्पन्न हुए। नृपतिवर! यक्षों तथा राक्षसों के समूहों को भी क्रोधा ने उत्पन्न किया था॥६१॥

चतुष्पदानि सत्त्वानि तथा गावस्तु सौरभाः। सुपर्णान्पक्षिणश्चैव विनता च व्यजायत॥६२॥

चार पैरों वाले जीव-विशेष कर गौएँ-सुरभी की सन्तति कही जाती हैं। विनता ने गरुड़ तथा अन्य पधकारी जीवों को उत्पन्न किया॥६२॥

महीधरान्सर्वनागान्देवी कद्रूर्व्यजायत। एवं वृद्धिं समगमन्विश्वे लोकाः परन्तप॥६३॥

देवी कद्रू ने पृथ्वी को धारण करने वाले सभी नागों को उत्पन्न किया। परम तपस्विन्! इसी प्रकार से समस्त लोक की सृष्टि वृद्धि को प्राप्त हुई॥६३॥

तदा वै पौष्करो राजन्प्रादुर्भावो महात्मनः। प्रादुर्भावः पौष्करास्ते मया द्वैपायनेरितः॥६४॥
पुराणः पुरुषश्चैव मया विष्णुर्हरिः प्रभुः। कथितस्तेऽनुपूर्वेण संस्तुतः परमर्षिभिः॥६५॥
यश्चेदमग्र्यं शृणुयात्पुराणं सदा नरः पर्वसु गौरवेण।
अवाप्य लोकान्स हि वीतरागः परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते॥६६॥

राजन्! उस समय महान् आत्मा विष्णु भगवान् की पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं विस्तार उक्त प्रकार से हुआ, व्यास द्वारा कहे गये पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि का वर्णन मैं कर सृष्टि का वर्णन चुका और उस सृष्टि से महर्षियों द्वारा स्तुति किये गये पुराण पुरुष विष्णु एवं हरि प्रभृति नामों से विख्यात प्रभु की महिमा भी बतला चुका। जो मनुष्य सर्वदा विशेष कर-पर्वकाल में- इस पुराण की श्रेष्ठ गाथा को गौरवपूर्वक सुनता है, वह सभी प्रकार के रागद्वेष से मुक्त हो कर ऐहलौकिक सुखों का अनुभव कर पारलौकिक-स्वर्गीय-सुखों के फलों को उपभोग करता है॥६४-६६॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यः कृष्णं तं कृष्णोऽनुप्रसीदति॥६७॥

नेत्र, मन, वचन एवं कर्म द्वारा जो व्यक्ति कृष्ण को प्रसन्न करता है, उसे कृष्ण भी प्रसन्न रखते हैं॥६७॥

राजा च लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम्।
क्षीणायुर्लभते चाऽऽयुः पुत्रकामः सुतं तथा॥६८॥

इसके प्रभाव से राजा राज्य की प्राप्ति करता है, निर्धन को उत्तम धन की प्राप्ति होती है, नष्ट आयु वाले को दीर्घायु की प्राप्ति होती है, पुत्र का अभिलाषी पुत्र प्राप्त करता है॥६८॥

यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च।
प्राप्नोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च॥६९॥

विष्णु की भक्ति करने वाला प्राणी यज्ञ, वेद, मनोरथ, विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा उत्पन्न हुए फल, सम्पत्ति एवं अन्य विविध पुण्यों को प्राप्त करता है।।६९।।

यद्यत्कामयते किञ्चित्तत्तल्लोकेश्वराद्भवेत्। सर्वं विहाय य इमं पठेत्पौष्करकं हरेः।।७०।।
प्रादुर्भावं नृपश्रेष्ठ न तस्य ह्यशुभं भवेत्। एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।।
कीर्तितस्ते महाभाग व्यासश्रुतिनिदर्शनात्।।७१।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावो नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९१२६।।

जिस-जिस मनोरथ की वह अभिलाषा करता है, वह लोकेश्वर भगवान् से उसे प्राप्त होता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ जो सभी कार्यों को छोड़कर भगवान् विष्णु की इस पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि के प्रादुर्भाव की कथा को सुनता है, उसका कभी अमंगल नहीं होता। महाभाग्यशाली! महान् आत्मा भगवान् विष्णु के इस पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि के प्रादुर्भाव एवं विस्तार की कथा का व्यास के वाक्यों एवं श्रुतियों के आधार पर मैं कीर्तन कर चुका।।७०-७१।।

।।एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१७१।।

❖❖❖

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

विष्णु के विविध अवतारों की कथा, विष्णु के विराट् शरीर में चराचर जगत् की अवस्थिति, दैत्यों के अत्याचारों से देवताओं को कष्ट, देवताओं की करुण प्रार्थना

मत्स्य उवाच

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वं च कृते युगे। वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च।।१।।
ईश्वरस्य हि तस्यैषा कर्मणां गहना गतिः। सम्प्रत्यतीतान्भव्यांश्च शृणु राजन्यथातथम्।।२।।

मत्स्य ने कहा-राजन्! अब सतयुग में भगवान् विष्णु के विष्णुत्व तथा हरित्व का देवताओं में उनके वैकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में उनके कृष्णत्व का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! उस ईश्वर के कर्मों की गति अत्यन्त गहन है। उसके बीते हुए तथा भविष्य में होने वाले अवतारों की कथा यथार्थतया सुनो।।१-२।।

अव्यक्तो व्यक्तिलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च॥३॥

जो यह अव्यक्तात्मा भगवान् हैं, वे चिह्न वाले भी कहे जाते हैं, उन्हें नारायण, अनन्त आत्मा, सभी के उत्पत्तिकर्ता एवं अव्यय नाम से भी कहते हैं॥३॥

एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः। ब्रह्मा वायुश्च सोमश्च धर्मः शक्रो बृहस्पतिः॥४॥

वे सर्वदा एक रूप में रहने वाले भगवान् नारायण (जलशायी) होकर भी ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र तथा बृहस्पति रूप में प्रकट होते हैं॥४॥

अदितेरपि पुत्रत्वमेव याति युगे युगे। एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रस्यावरजो विभुः॥५॥

प्रत्येक युगों में वे अदिति के पुत्र होते हैं। अतएव भगवान् विष्णु (उपेन्द्र) नाम से इन्द्र के छोटे भाई के रूप में भी विख्यात होते हैं॥५॥

प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम्। वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम्॥६॥

इन भगवान् का अदिति के घर में पुत्र रूप में जन्म देवताओं के शत्रु दैत्य, दानव एवं राक्षसों के संहार के लिए होता है॥६॥

प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः। सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुराकल्पे प्रजापतीन्॥७॥

महान् आत्मा भगवान् ने प्राचीन काल में सर्वप्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति की और उस सर्वप्रथम पुरुष ने प्राचीन कल्प में प्रजापतियों की उत्पत्ति की॥७॥

असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान्। तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम्॥८॥
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम्। कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे॥९॥

और पुनः ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न होने वाले उत्तम चरित्र वाले मनुष्यों को उत्पन्न किया। उन महात्माओं के संयोग से शाश्वत ब्रह्म, जो अबतक एकरूप में वर्तमान था, अनेक रूपों में विभक्त हुआ। यह आश्चर्यमय कीर्तन करने योग्य भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्तन, जिसे मैं कर रहा हूँ, सुनो॥८-९॥

वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे। आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः सङ्ग्रामस्तारकामयः॥१०॥
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे सङ्ग्रामदुर्जयाः। घ्नन्ति देवगणान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान्॥११॥
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे। त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुम्॥१२॥

सतयुग में विख्यात वृत्रासुर के निधन हो जाने पर त्रैलोक्य विख्यात तारकामय शुद्ध हुआ था। जिस संग्राम में कठिनता से जीते जाने वाले भयानक दानवों ने सभी देवताओं के समूहों, यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों का घोर संहार किया था। युद्ध भूमि में निर्बल दैत्यों द्वारा मारे जाते हुए देवगण युद्ध से विमुख होकर मन से अपने रक्षक भगवान् नारायण की शरण में गये॥१०-१२॥

एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः। सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम्॥१३॥
चण्डविद्युद्गणोपेता घोरनिर्ह्लादकारिणः। अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः॥१४॥

इसी अवसर पर मेघों ने धूम रहित अंगारे के समान जलती हुई कान्ति से सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहों के समूह के साथ समस्त आकाश-मण्डल को आवृत कर लिया, उस समय उनमें प्रचण्ड बिजलियाँ उद्दीप्त हो रही थीं, वे भयानक शब्द कर रहे थे। एक-दूसरे के वेग से अभिहत होकर सातों वायु भी बहने लगी थीं॥१३-१४॥

दीप्ततोयाशनिघनैर्वज्रवेगानलानिलैः। रवैः सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम्॥१५॥
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च॥१६॥
चतुर्युगान्तपर्याये लोकानां यद्भयं भवेत्। अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे॥१७॥

उद्दीप्त बिजली एवं जल को बरसाने वाले मेघों के समूहों से, वज्र के समान वेगशाली अनल एवं अनिल से तथा अति भयानक उत्पातों से सारा आकाशमण्डल ज़ल-सा रहा था। उस समय आकाशमण्डल में सहस्रों उल्काएँ पृथ्वी पर गिर रही थीं। द्विव्य देवताओं के विमान इधर से उधर गिरते पड़ते हुए उड़ रहे थे। चारों युगों के बीत जाने पर सभी लोकों का जिस प्रकार भयकारी विनाश होता है, उसी प्रकार उस उत्पात के समय सभी वस्तुएँ रूपरहित हो गई थीं अर्थात् अंधकार में लीन हो गयीं॥१५-१७॥

जातं च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन। तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश॥१८॥

सभी पदार्थ शोभाहीन हो गये, कहीं पर किसी वस्तु के अस्तित्व का कोई पता ही नहीं लगता था। अंधकारराशि में छिपी हुई दसों दिशाएँ भी उस समय नहीं प्रकाशित हो रही थीं॥१८॥

विवेश रूपिणां काली कालमेघावगुण्ठिता।
द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसाऽऽवृता॥१९॥
तान्घनौघान्सतिमिरान्दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः।
वपुः सन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः॥२०॥

उस समय प्रलयकालीन मेघों से घिरी हुई काली रूपधारणी देवी आकाश में प्रविष्ट हुई एवं घोर अंधकार से आवृत्त आकाशमण्डल, जिसमें सूर्य छिप गए थे, नहीं शोभित हो रहा था। उस अवसर पर भगवान् ने अपने दोनों हाथों से उस अत्यन्त निविड अन्धकार के साथ उन मेघ समूहों को खींचकर अपने दिव्य श्यामल शरीर को दिखलाया॥१९-२०॥

बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम्। तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम्॥२१॥
दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम्। धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम्॥२२॥
चतुर्द्विगुणपीनांसं किरीटच्छन्नमूर्धजम्। बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम्॥२३॥

मेघ एवं कज्जल के समान श्यामल वर्ण, मेघ के समान केश वाले, तेज एवं शरीर-दोनों काले पर्वत के समान दिखाई पड़ने वाले जाज्वल्यमान पीताम्बर धारण किये हुए, तपाये हुए सुवर्ण के आभूषण से विभूषित धूम एवं अन्धकार के समान काले शरीर वाले, उठी हुई प्रलयकालीन अग्नि के समान देदीप्यमान, चतुर्भुज, द्विगुणित पुष्ट कन्धेवाले, किरीट से बालों को छिपाये हुए, स्वर्ण के समान शोभायमान, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित भगवान् को लोगों ने देखा।।२१-२३।।

चन्द्रार्ककिरणाद्द्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम्। नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम्।।२४।।
शक्तिचिंत्रबलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम्। विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गशृङ्गिणम्।।२५।।
(त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम्। सर्वलोकमनःकान्तं सर्वसत्त्वमनोहरम्।।२६।।

चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों के समान सुप्रकाशित पर्वत के शिखर की भाँति ऊँचा दिखाई पड़ने वाले, नन्दक नामक अपने खड्ग से सुशोभित हाथ वाले, सर्पों के मुख के समान तीक्ष्ण बाणों को धारण किये हुए विचित्र एवं उदण्ड शक्ति, शंख, चक्र एवं गदा युक्त अद्‌भुत एवं विशाल पर्वत के समान विष्णु भगवान् को लोगों ने देखा। क्षमा मूल थी, श्रीवृक्ष थी, शार्ङ्ग धनुष शिखर था, वह स्वर्ग निवासी देवताओं को सुन्दर फल देने वाला था, स्वर्ग की सुन्दरियाँ पल्लव रूप थीं, वह पर्वत सभी लोकों के मन को रमणीय लगने वाला तथा सभी जीवों को मनोहर दिखाई पड़ने वाला था।।२४-२६।।

नानाविमानविटपं तोयदाम्बुमधुस्त्रवम्। विद्याहङ्कारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम्।।२७।।
विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम्। दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोकप्रकाशितम्।।२८।।

विविध देवताओं के विमान उस पर वृक्ष रूप थे, बादलों से गिरने वाला जल मीठे झरनों का जल था, विद्या एवं अहंकार सारभूत सामग्री थी, महाभूत उस पर उगने वाले वनस्पति थे, वे विशेष पत्रों से शोभायमान थे, ग्रह एवं नक्षत्रगण पुष्प रूप में थे। दैत्यों के लोक उसके कन्धे थे। इस प्रकार वह विष्णुरूप शैल मर्त्यलोक में सुप्रकाशित हो रहा था।।२७-२८।।

सागराकारनिर्ह्लादं रसातलमहाश्रयम्। मृगेन्द्रपाशैर्विततं। पक्षजन्तुनिषेवितम्।।२९।।
शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम्। अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम्।।३०।।

रसातल के महान् आश्रय पर टिका हुआ वह विष्णुरूप महासमुद्र घोर शब्द कर रहा था, बड़े-बड़े मृगेन्द्र को फँसाने वाले पाश उसमें फैल रहे थे, पक्षधारी जन्तुगण उसमें आवास ले रहे थे। शील एवं अर्थ उसमें पवित्र सुगन्धि की समृद्धि बिखेर रहे थे, सभी लोक बड़े विशाल वृक्ष के समान थे। परमेश की जो अव्यक्त एवं अनन्त सत्ता थी, वही उसमें जल रूप थी, व्यक्त जो अहंकार था, वही उसका फेन था।।२९-३०।।

महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्‌बुदम्। विमानविहगव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम्।।३१।।

महाभूतगण ही उसमें तरंगों के समूह थे, ग्रह एवं नक्षत्र उसमें बुदबुदों के समान शोभायमान

हो रहे थे, देवताओं के विमान ही पक्षी रूप में व्याप्त हो रहे थे, बादल ही उस समुद्र के आटोप एवं उत्कर्ष से विदित हो रहे थे।।३१।।

जन्तुमत्स्यगणाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम्। त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम्।।३२।।

उस महासमुद्र में जन्तुओं एवं मत्स्यों के समूह व्याप्त थे, पर्वत उसमें शंखों के समूह थे। सत्त्व, रजस् एवं तमस् - इन तीनों गुणों के विषय ही उसमें तरंग रूप थे, सभी लोक बड़े-बड़े मत्स्य रूप में दिख रहे थे।।३२।।

वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम्। द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम्।।३३।।

वीरगण वृक्ष एवं लताओं के गुल्म रूप में थे, बड़े-बड़े भुजंग ही सेवार थे, द्वादश आदित्य ही उस समुद्र के महाद्वीप थे, एकादश रुद्र उसके नगर थे।।३३।।

वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम्। सन्ध्यासङ्ख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिलसेवितम्।।३४।।

आठों वसु रूपी पर्वतों से वह संयुक्त था, उस महासमुद्र में त्रैलोक्य में व्याप्त सलिल राशि थी। सन्ध्याओं की संख्या ही उसमें लहरियाँ थी, सुपर्णरूप वायु से वह सेवित हो रहा था।।३४।।

दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगझषाकुलम्। पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम्।।३५।।

दैत्यों एवं राक्षसों के समूह उसमें ग्राह रूप थे, यक्ष एवं सर्प बड़े-बड़े मत्स्य रूप में थे, महाबलवान् पितामह एकमात्र उसमें प्रभावशाली जीव थे। वह समुद्र सभी स्त्री रूप रत्नों से शोभायमान था।।३५।।

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम्। कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम्।।३६।।

श्री, कीर्ति, कान्ति तथा लक्ष्मी रूप नदियों से सुशोभित था। काल, योग एवं महापर्वों के विनाश एवं उत्पत्ति का कर्ता था।।३६।।

तं तु योगमहापारं नारायणमहार्णवम्। देवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तिवत्सलम्।।३७।।
अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम्। हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते।।३८।।

इस प्रकार योग के महान् तटवाले उस समुद्र रूप विष्णु को, जो देवताओं के भी देवता, वरदायक अपने भक्तों के ऊपर दयाभाव रखने वाले, अनुग्रह करने वाले, शान्तिप्रदान करने वाले एवं मंगलदायी हैं, देवताओं ने देखा। उस समय वे भगवान् हरे घोड़े वाले इन्द्र के रथ पर विराजमान थे, उस रथ की पताका पर गरुड़ विराजमान थे।।३७-३८।।

ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते। अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे।।३९।।

ग्रहगण, चन्द्रमा एवं सूर्य भी उसमें यथास्थान शोभायमान हो रहे थे, मन्दराचल उस रथ में श्रेष्ठ धुरी के स्थान पर था। इस प्रकार उस रथ में असंख्य प्रकाश-किरणें प्रकाशित हो रही थीं, जिससे प्रकाशमान होकर वह विशाल रथ सुमेरु की भाँति गम्भीर दिखाई पड़ रहा था।।३९।।

तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे। भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः।।४०।।

ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्ये लोकमये रथे। ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः॥४१॥

विचित्र ढंग की ताराएँ उसमें पुष्पों के स्थान पर थीं। ग्रह एवं नक्षत्र भी उसमें यथास्थान जुड़े हुए थे, इस अनुपम दिव्य रथ में समासीन, भयानक परिस्थिति में अभयदान देने वाले भगवान् को आकाश मार्ग में दैत्यों द्वारा पराजित देवताओं ने देखा और इन्द्र को आगे कर हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए उन शरणागत वत्सल भगवान् की शरण में प्रस्थान किया।।४०-४१।।

जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः। स तेषां तां गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम्॥४२॥
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे। आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः॥४३॥
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः। शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः॥४४॥
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम्। ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः॥४५॥
देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमिवोत्तमम्। ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः॥४६॥

देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने देवताओं की उस करुणापूर्ण वाणी को सुनकर महायुद्ध में दानवों का विनाश करने का विचार किया और आकाश में अवस्थित हो उत्तम शरीर को धारण कर प्रतिज्ञा पूर्ण यह वचन कहा—'मरुत्गण (देवताओं)! शान्ति धारण कीजिये, डरिये मत! मैं सभी दानवों को जीत चुका हूँ, आप लोग पुनः अपने तीनों लोकों को वापस लीजिये।' दृढ़प्रतिज्ञ भगवान् की अमृत के समान आनन्द-दायिनी ऐसी बात को सुनकर वे देवगण अति सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हुए। तदनन्तर वह निविड अन्धकार नष्ट हो गया और वे बादल भी छिन्न-भिन्न हो गये।।४२-४६।।

प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ताश्च दिशो दश।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमश्चक्रुः प्रदक्षिणाम्॥४७॥

शान्तिपूर्ण सुखदायिनी वायु बहने लगी, दसों दिशाएँ भी अति शान्त हो गई, नक्षत्रों एवं चन्द्रमा की ज्योति शुभ्र हो गई और वे सभी प्रदक्षिणा करने लगे।।४७।।

न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः। विरजस्का भवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः॥४८॥

ग्रहगण किसी प्रकार का उपद्रव नहीं कर सके और समुद्र भी प्रशान्त हो गये, सभी मार्ग धूल से रहित हो गये तथा स्वर्ग आदि तीनों वर्गों में भी शान्ति स्थापित हो गई।।४८।।

यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः। आसच्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु॥४९॥
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चै रधीयत। यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः॥५०॥
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः। विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वाऽरिनिधने गिरम्॥५१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९१७७।।

नदियाँ जैसे पहले शान्तिकाल में बहा करती थीं, वैसी हो गई तथा समुद्रों का विक्षोभ भी बन्द हो गया। मनुष्यों की इन्द्रियाँ मांगलिक विचारों एवं कामों में लगने लगीं और अन्तरात्मा शुद्ध हो गई। महर्षिगण शोक-दुःख आदि से विरत रहकर उच्चस्वर से वेदों का पाठ करने लगे, यज्ञों में सुन्दर सुस्वादु पके हुए हविष्यान्न को अग्नि प्राप्त करने लगे। इस प्रकार भगवान् विष्णु के शत्रुओं के विनाशार्थ प्रतिज्ञा पूर्ण वचन को सुनकर सभी लोग आनन्दित मन से अपने धर्मों में तल्लीन हो गये।।४९-५१।।

।।एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।१७२।।

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दैत्यों और दानवों की युद्धार्थ तैयारी

मत्स्य उवाच

ततोऽभयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः। उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च।।१।।

मत्स्य ने कहा-इस प्रकार उस समय भगवान् विष्णु के अभय वचन को सुनकर दैत्यों तथा दानवों ने उस युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए विपुल उद्योग किया।।१।।

मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम्। चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुगम्।।२।।
किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम्। रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम्।।३।।
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम्। दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरविनादितम्।।४।।
स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम्। गदापरिघसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम्।।५।।
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम्। सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिवमन्दरम्।।६।।
गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित्केसरिवर्चसम्। युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम्।।७।।

मय दानव ने अपने सुवर्ण निर्मित बारह सौ हाथ लम्बे अक्षय रथ पर, जो अति विशाल सुन्दर विस्तृत जुआ से संयुक्त, चार चक्कों वाला, किंकिणी के जालों से शब्दायमान, गैंडे के चर्म से मढ़ा हुआ, रुचिर रत्नों के जालों एवं सुवर्ण से परिष्कृत, जटित मृगों के समूहों से आकीर्ण, पक्षियों की पंक्तियों से विराजमान, दिव्य अस्त्र एवं तरकसों से सजाया हुआ, मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करने वाला, सुन्दर धुरी से युक्त, मनोहर तल से संयुक्त, गगन के समान, गगनचुम्बी पताका से विभूषित, गदा तथा परिघ से भरा हुआ, मूर्तिमान समुद्र की भाँति दिखाई पड़ने वाला, सुवर्ण के बने हुए केयूर तथा वलय से आभूषित, सुवर्ण से मढ़े हुए कूबर (पहिये काष्ठ को संयुक्त करने वाला

काष्ठ) वाले, सुन्दर पताका एवं ध्वजा से युक्त, आदित्य (सूर्य) समेत मन्दराचल की भाँति दिखाई पड़ने वाला गजराज के चर्म से आवेष्टित, कहीं-कहीं सिंह के रूप में युक्त, सहस्र रीक्षों से जुते हुए, घने बादल के समान भीषण गर्जना करने वाला था, अधिरोहण किया।।२-७।।

दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम्। अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्त इवांशुमान्॥८॥

वह दिव्य सुन्दर रथ आकाश मार्ग में चल रहा था और शत्रुओं के रथों को पराजित करने वाला था। सुमेरु के समान उस सुन्दर रथ पर सूर्य की भाँति मय युद्ध की आकांक्षा से अधिरूढ़ हुआ।।८।।

तारमुत्क्रोशविस्तारं सर्वं हेममयं रथम्। शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम्॥९॥
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम्। तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम्॥१०॥
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम्। आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः॥११॥
प्रासैः पाशैश्च विततैरसंयुक्तैश्च कण्टकैः। शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः॥१२॥
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम्। युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम्॥१३॥

तारकासुर एक ऐसे रथ पर सवार हुआ जो शब्द कर रहा था, जिसके सभी अंग सुवर्णमय थे, आकार में पर्वत के समान दिखाई पड़ रहा था, अति घने काल कज्जल के समूह के समान शोभा पा रहा था, काले लौह की बने हुए दिव्य पहियों तथा जुआ से सुसज्जित किया गया था, कहीं-कहीं पर अन्धकार को दूर करती हुई किरणें बाहर प्रकाशित हो रही थीं। वह रथ चलते हुए ऐसा शब्द कर रहा था, मानो बादल गरज रहा हो। लोहे के बने हुए बड़े-बड़े गवाक्षों एवं खिड़कियों से वह भली-भाँति सुशोभित था, लोहे के बने हुए परिघ, क्षेपणी (भिन्दिपाल) तथा मुद्गरों से भी भरा हुआ था, भाले, फाँसी तथा असंयुक्त कंटकों से आकीर्ण था, भयदायी तोमर एवं परशु भी उसमें सुशोभित हो रहे थे। शत्रुओं की सेना की ओर झुका हुआ वह रथ दूसरे मन्दराचल की भाँति दिखाई पड़ रहा था, उसमें एक हजार गधे जुते हुए थे। तारकासुर दानव उस भीषण रथ पर अधिरूढ़ हुआ।।९-१३।।

विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः। प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः॥१४॥

तदनन्तर अति क्रुद्ध होकर विरोचन नामक दानव हाथ में गदा लेकर उस सेना के मुख भाग में देदीप्यमान शिखर वाले पर्वत के समान अवस्थित हुआ।।१४।।

युक्त रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः। स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः॥१५॥

शत्रु की सेना को विध्वंस करने वाला हयग्रीव नामक दानव अन्य सहस्र रथों के साथ अपने विशाल रथ पर आरूढ़ हुआ।।१५।।

व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत्। वराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः॥१६॥

एक सहस्र किष्कु (एक किष्कु का परिमाण अंगुल का है) के परिमाण में विस्तृत विशाल

धनुष को ग्रहण कर टंकार करते हुए वराह नामक दानव ने वृक्षों समेत पर्वत की भाँति युद्ध भूमि में प्रवेश किया।।१६।।

खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनः सङ्ग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत॥१७॥

खर नामक दानव अति दर्प के कारण अपने नेत्रों से क्रोध द्वारा उत्पन्न जल को गिराता हुआ, दाँतों एवं ओठों को कटकटाता हुआ संग्राम के लिए उपस्थित हुआ।।१७।।

त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः। व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राय वीर्यवान्॥१८॥

अतिशय पराक्रमशाली त्वष्टा नामक दानव आठ हाथियों से युक्त रथ पर सवार होकर दानवों की सेना को एक व्यूह में खड़ा करने के लिए इधर-उधर भ्रमण करने लगा।।१८।।

विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः।
श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः॥१९॥

विप्रचित्ति दानव का पुत्र श्वेत नामक दानव श्वेतवर्ण के कुण्डल को धारण कर, श्वेत पर्वत के समान विशाल आकार युक्त हो युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ।।१९।।

अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधः। युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः॥२०॥

बलवान् बलि का पुत्र अरिष्ट नामक दानव, जो पर्वत को कँपा देने वाला था, पर्वत की शिलाओं को हथियार बनाकर युद्धार्थ प्रस्तुत हुआ।।२०।।

किशोरस्त्वतिसंहर्षात्किशोर इति चोदितः। सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम्॥२१॥

अत्यन्त हर्ष से युक्त होकर किशोर नामक दैत्य भी युद्ध में आया। इस प्रकार क्रमानुसार दैत्यगण कवच पहनकर युद्ध में उपस्थित हुए।।२१।।

अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः। लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः॥२२॥

नवीन मेघ के समान श्यामल वर्ण का लम्ब नामक दानव, लम्बे वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर उस दैत्य की सेना में सूर्य की भाँति उदित हुआ।।२२।।

दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान्। स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनोष्ठेक्षणायुधः॥२३॥

मुख, दाँत एवं आँख से भी युद्ध करने वाला स्वर्भानु नामक दैत्य दैत्यों की सेना में इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था, जैसे कुहरे में सूर्य।।२३।।

हंसस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः। अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे॥२४॥
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे। केचित्खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः॥२५॥
पत्तिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः। एकपादार्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः॥२६॥

शत्रुओं के लिए अति भयानक हंस नामक दानव दैत्यों में सबसे आगे उपस्थित हुआ, कुछ

लोग घोड़ों पर सवार थे, अन्य कुछ लोग हाथियों के कन्धों पर बैठे हुए थे, अन्य कुछ लोग सिंह तथा बाघों पर सवार थे, कुछ अन्य वाराह और रीछों पर भी बैठे थे। कुछ गधों और ऊँटों पर चढ़कर चल रहे थे, कुछ कुत्तों पर भी बैठें हुए थे। कुछ अन्य भयानक मुख वाले पैदल चल रहे थे, कुछ एक पाद तथा कुछ आधे पाद वाले राक्षस युद्ध की अभिलाषा से नाच रहे थे।।२४-२६।।

आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथा परे। हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः॥२७॥

बहुतेरे उसी में शब्द कर रहे थे, कुछ कूद रहे थे कुछ खुश होकर सिंहों की भाँति दहाड़ रहे थे। अन्य कुछ बलवान दानवगण शोर मचा रहे थे।।२७।।

ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः। बाहुभिः परिघाकारैस्तंर्जयन्ति स्म देवताः॥२८॥

पाशैः प्रासैश्च परिधैस्तोमराङ्कुशपट्टिशैः।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः॥२९॥

इस प्रकार युद्धभूमि में उपस्थित वे दानवगण शिला, मूसल, गदा तथा भयानक परिघ आदि हथियारों को लेकर परिघ के समान भीषण अपने हाथों से देवताओं को धमकी देने लगे और फाँसी, भाले, परिघ, तोमर, अंकुश, पट्टिश, तोप, शतधार तथा मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रों से युद्ध क्रीड़ा करने लगे।।२८-२९।।

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः। चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम्॥३०॥

एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम्। देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम्॥३१॥

बड़ी-बड़ी शिलाओं, पर्वत के शिखरों, उत्तम लोहे के बने हुए परिघों तथा चक्रों से वे बड़े-बड़े दैत्यगण आनन्दित होकर सेना में घूमने लगे। इस प्रकार युद्ध में अतिबलवान् एवं मदोन्मत्त उन दानवों की सारी सेना उद्धत बादलों की सेना के समान देवताओं के सम्मुख उपस्थित हुई।।३०-३१।।

तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम्।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवाऽऽबभासे॥३२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९२०९।।

अद्भुत पराक्रमशाली सहस्त्रों दैत्यों से आकीर्ण वायु, अग्नि, पर्वत एवं बादल के समान भीषण वह दानवों की सेना उस रणभूमि में युद्ध करने की प्रबल इच्छा से पागलों की भाँति दिखाई पड़ने लगी।।३२।।

।।एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७३।।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवताओं का युद्धार्थ अभियान

मत्स्य उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारो रविनन्दन। सुराणामपि सैन्यस्य विस्तारं वैष्णवं शृणु॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–रविनन्दन! तुम दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन तो सुन चुके हो, अब देवताओं की–विशेषकर विष्णु भगवान् की–सेना का विस्तार भी सुनो॥१॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ। सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यन्त यथक्रमम्॥२॥

आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, महाबलवान् दोनों अश्विनीकुमार–इन सबों ने अपनी–अपनी सेना एवं अपने–अपने अनुचरों को साथ लेकर क्रमानुसार कवच धारण किया॥२॥

पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्त्रदृंक्। ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विषम्॥३॥

सबसें आगे लोकों की पालना करने वाले, सहस्त्रनेत्र पुरुहूत इन्द्र, जो समस्त देवताओं के सेनापति हैं, सुरगज ऐरावत पर आरूढ़ हुए॥३॥

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवररंहसः। सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः॥४॥
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्त्रशः। दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः॥५॥
वज्रविस्फूर्जितोद्भूतैर्विद्युदिन्द्रायुधोदितैः। युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः॥६॥

उसके मध्य भाग में सभी श्रेष्ठ पक्षियों के समान वेग वाला उनका रथ था, जो सुन्दर बने हुए चक्कों से सुशोभित तथा सुवर्ण और मणि आदि से विभूषित था। सहस्त्रों की संख्या में देवता, गन्धर्व एवं यक्षगण उनके पीछे चल रहे थे। अति शोभाशाली, ब्रह्मर्षिगण, जो सदस्य रूप में वहाँ उपस्थित थे, स्तुति कर रहे थे। उस रथ के चारों ओर वज्र के घोर शब्दों से निनादित, विद्युत् प्रकाश एवं इन्द्रधनुष से संयुक्त पर्वतों के समान भयंकर एवं इच्छानुसार गमन करने वाले बादलों के समूह घिरे हुए थे॥४-६॥

यमारुढः स भगवान्पर्येति सकलं जगत्। हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः॥७॥
स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु। सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसां गणाः॥८॥

उस रथ पर आरूढ़ होकर भगवान् इन्द्र ने समस्त लोक को व्याप्त-सा कर लिया। उस समय यज्ञों में उपस्थित होने वाले ऋषिगण स्तुति पाठ करने लगे। स्वर्गलोक में इन्द्र के युद्धार्थ सुसज्जित होने पर देवतागण तुरही बजाने लगे, सुन्दरी अप्सराएँ सैकड़ों की संख्या में नृत्य करने लगीं॥७-८॥

केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः। युक्तो हयसहस्त्रेण मनोमारुतरंहसा॥९॥

स स्यन्दनवरो भाति गुप्तो मातलिना तदा। कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा॥१०॥

नागराज द्वारा विराजमान रवि की भाँति, अति विशाल ध्वजा द्वारा शोभित मन एवं पवन के समान वेगशाली सहस्त्रों घोड़ों पर चढ़े हुए इन्द्र भगवान् शोभित हो रहे थे। उस समय मातलि द्वारा हाँका जाता हुआ वह श्रेष्ठ रथ सूर्य की आभा से परिव्याप्त सुमेरु पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था॥९-१०॥

यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गम्। तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन्॥११॥

काल (मृत्यु) समेत यमराज अपने दण्ड एवं मुद्गर को उठाकर देवताओं की सेना में अपने भीषण नाद से दैत्यों को भयभीत करते हुए विराजमान हुए॥११॥

चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः। शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः॥१२॥
कालपाशान्समाविध्यन्हयैः शशिकरोपमैः। वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वल्लीलाः सहस्त्रशः॥१३॥
पाण्डुरोद्धतवसनः प्रवालरुचिराङ्गदः। मणिश्यामोत्तमवपुहरिभारर्पितो वरः॥१४॥
वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान्। युद्धवेलामभिलषभिन्नवेल इवार्णवः॥१५॥

चार समुद्रों तथा भीषण जिह्वा को लपलपाते हुए सर्पों से युक्त वरुणदेव शंख तथा मुक्ताजटित विजायठ से सुशोभित जलमय शरीर धारण किये हुए चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेतवर्ण के घोड़ों पर, जो वायु के समान वेगशाली एवं जल के समान थे, सवार होकर कालपाश धारण कर सहस्त्रों लीलाएँ करते हुए, पीले वर्ण के वस्त्र को धारण कर, मनोहर प्रवाल जटित अंगद से विभूषित हो, पाश धारणकर देवताओं की सेवा के मध्यभाग में अवस्थित हुए। उस समय उनके वस्त्र हिल रहे थे। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ होने के समय की प्रतीक्षा करते हुए वरुण उस समय उद्वेलित समुद्र की भाँति शोभित हो रहे थे॥१२-१५॥

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि। युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः॥१६॥
राजराजेश्वरः श्रीमान्गदापाणिरदृश्यत। विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः॥१७॥

इसी प्रकार यक्षों एवं राक्षसों की सेना तथा गुह्यकों के समूहों से युक्त होकर पद्म एवं शंख लिये हुए धनाधिपति राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर पुष्पक विमान में अवस्थित हो हाथ में गदा लिये हुए दिखाई पड़े॥१६-१७॥

स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः।
उक्षाणमास्थितः सङ्ख्ये साक्षादिव शिवः स्वयम्॥१८॥

विमान पर चढ़कर युद्ध करने के लिए आये हुए राजराजेश्वर नरवाहन कुबेर युद्ध में उस समय इस प्रकार शोभित हुए जैसे नन्दिकेश्वर पर बैठे हुए साक्षात् शिवजी स्वयमेव आये हुए हों॥१८॥

पूर्वपक्षः सहस्त्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः। वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः॥१९॥

उस युद्धभुमि में सहस्त्रनेत्र इन्द्र पूर्व दिशा में, वरुण पश्चिम दिशा में तथा नरवाहन कुबेर उत्तर दिशा में अवस्थित हुए॥१९॥

चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः।
स्वासु दिक्षु स्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते॥२०॥

ये चारों दिशाओं में महाबलशाली लोकपालगण, चारों दिशाओं में स्थित होकर अपनी-अपनी दिशाओं में स्वयं अपनी रक्षा करते हुए उस देवसेना की भी रक्षा करते रहे॥२०॥

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना।
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः॥२१॥

उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना। त्रिदिवद्वारचक्रेण तपसा लोकमव्ययम्॥२२॥
सहस्त्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा। चचार मध्ये लोकानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः॥२३॥

तदनन्तर अति शोभा से जाज्वल्यमान, अति द्रुतगामी सात अश्वों से युक्त रथ पर अधिरूढ़, सुप्रकाशित रश्मियों (लगाम की रस्सी) से युक्त, सुमेरु की प्रदक्षिणा करने वाले उदय एवं अस्त दोनों अंचलों पर जाने वाले, स्वर्ग के द्वार के समान सुशोभित चक्रशाली, सभी अविनश्वर लोकों को सुप्रकाशित करते हुए, परम तेज से देदीप्यमान सहस्त्रकिरणों से युक्त होकर समस्त लोकों के मध्य में द्वादशात्मक दिनेश्वर सूर्य रणभूमि में भ्रमण करने लगे॥२१-२३॥

सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान्। हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत्॥२४॥

चन्द्रमा श्वेत घोड़ों से जुते हुए रथ पर शीतल रश्मियों से युक्त हो, बर्फ मिले जल से पूर्ण अपनी कान्ति द्वारा जगत् को आनन्दित करते हुए युद्धभूमि में आये॥२४॥

तमृक्षपूगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम्। शशच्छायाङ्कितततनुं नैशस्य तमसः क्षयम्॥२५॥
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसदं प्रभुम्।
ओषधीनां सहस्त्राणां निधानममृतस्य च॥२६॥
जगतः प्रथमं भागं सौम्यं सत्यमयं रथम्। ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम्॥२७॥

पीछे चलने वाले नक्षत्र समूहों से युक्त शिशिरांशु, द्विराज मृग के चिह्नवाले, रात्रि के घने अंधकार का विनाश करने वाले, नक्षत्रों एवं ग्रहों के स्वामी, रस प्रदान करने वाले, सहस्त्रों औषधियों एवं अमृत के निधान, जगत् के एक अंश के समान विशाल, सत्यमय, सुन्दर दिखाई पड़ने वाले रथ पर आरूढ़ आकाशमार्ग में अवस्थित हिम से प्रहार करने वाले चन्द्रमा को दैत्यों ने देखा॥२५-२७॥

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु। सप्तधातुगतो लोकांस्त्रीन्दधार चचार च॥२८॥
यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम्। सप्तस्वरगतो यश्च नित्यं गीर्भिरुदीर्यते॥२९॥
(यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम्। यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोगिनम्॥३०॥

स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा। ववौ प्रव्यथयन्दैत्यान्प्रतिलोमं सतोयदः॥३१॥

जो सभी जीवों का प्राण रूप एवं मनुष्यों में पाँच विभागों में विभक्त है, जो सातों धातुओं में पाया जाता है एवं तीनों लोकों को धारण करने वाला तथा तीनों लोकों में विचरण करने वाला है। लोग जिसे अग्नि का उत्पत्तिकर्ता कहते हैं, सभी की उत्पत्ति जिससे होती है, जो अति सामर्थ्यशाली, सात प्रकार के स्वरों में प्राप्त होकर जो वाणी द्वारा नित्य उदित होता है, जिसे लोग सभी भूतों में उत्तम भूत तथा शरीर से रहित बतलाते हैं, जिसे लोग आकाशगामी कहते हैं। शीघ्रगामी एवं शब्द का उत्पत्तिकर्ता भी जिसे लोग कहते हैं, वह वायु देवता सभी जीवों का आयुरूप हो अपने ही तेज से युद्धभूमि में उद्भूत हुआ और दैत्य समूहों को व्यथित करता हुआ बादलों के साथ दैत्यों की प्रतिकूल दिशा में बहने लगा।।२८-३१।।

मरुतो दिव्यगन्धर्वैर्विद्याधरगणैः सह। चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः॥३२॥
सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रतोयमयं विषम्। शरभूता दिवीन्द्राणां चेरुर्व्यात्तानना दिवि॥३३॥

उस समय वे मरुत्गण गन्धर्व एवं विद्याधर के समूहों के साथ श्वेतवर्ण की उन तलवारों द्वारा, जो म्यान से रहित होने पर सर्पों के समान विकराल दिखाई पड़ रही थी, क्रीड़ा करने लगे और बड़े-बड़े सर्पों के स्वामी तीव्र, जलमय विष की धारा को छोड़ते हुए रणभूमि में फैलाये हुए बाणों की अविरल धारा के समान आकाश में विचरण करने लगे।।३२-३३।।

पर्वतैश्च शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः। उपतस्थुः सुरगणााः प्रहर्तुं दानवं बलम्॥३४॥

पर्वतों, शिलाओं, शिखरों एवं सैकड़ों वृक्षों के साथ लेकर दानवों की सेना में विनाश करने के लिए अन्यान्य देवगण भी उपस्थित हुए।।३४।।

यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः।
युगान्तकृष्णवर्त्माभो विश्वस्य जगतः प्रभुः॥३५॥
सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक्क्रतुसंस्थितः।
भूम्यापोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा॥३६॥
अरिघ्नममरादीनां चक्रं गृह्य गदाधरः। अर्कं नागादिवोद्यान्तमुद्यम्योत्तमतेजसा॥३७॥
सव्येनाऽऽलम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम्।
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्॥३८॥

जो देव-देवहृशीकेश, पद्मनाभ एवं त्रिविक्रम के नाम से विख्यात हैं, युगान्त में जो कृष्णवर्ण शरीर धारण कर समस्त जगत् का विनाश करते हैं, जो सभी प्रकार के जीवों की उत्पत्तिस्थली है, मधु दैत्य के शत्रु हैं, यज्ञों में उपस्थित होकर हवनीय द्रव्यों का भोग लेते हैं, उन्हीं भूमि, जल, आकाश स्वरूप धारण करने वाले, श्याम, शान्ति देने वाले, शत्रु संहारक भगवान् गदाधर ने रणभूमि में देवताओं के शत्रुओं के विनाश करने वाले सुदर्शन चक्र को, जो अपने अनुपम तेज से उदयाचल

से उठते हुए सूर्य की भाँति देदीप्यमान था, उठाकर बाएँ हाथ से सभी असुरगणों की विनाशिनी विशाल गदा को उठाया, जो काले वर्ण की आकृति से शत्रु को मृत्यु के मुख में सौंपने वाली थी।।३५-३८।।

अन्यैर्भुजैः प्रदीप्तानि भुजगारिध्वजः प्रभुः।
दधाराऽऽयुधजातानि शार्ङ्गादीनि महाबलः॥३९॥

अपनी अन्य तेजस्विनी भुजाओं से गरुड़ध्वज महाबली भगवान् ने शार्ङ्ग धनुष आदि को धारण किया।।३९।।

स कश्यपस्याऽऽत्मभुवं द्विजं भुजगभोजनम्।
पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम्॥४०॥
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम्। अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम्॥४१॥
देवासुरविमर्देषु बहुशो दृष्टविक्रमम्। महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम्॥४२॥
शिखिनं बलिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम्। विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम्॥४३॥
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा। भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता॥४४॥
पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम्॥४५॥
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम्। केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम्॥४६॥
अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः। सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम्॥४७॥

तदनन्तर भगवान् कश्यप के पुत्र, सर्पभक्षी, द्विज (पक्षिराज) पवन से भी अधिक वेग वाले, गगनमण्डल को क्षुब्ध करने वाले, मुख में एक सर्प लिये हुए, आकाशगामी, खगराज, अमृत मन्थन के उपरान्त मन्दाराचल के समान शोभाशाली, देवासुर संग्राम में कई बार अतिशय पराक्रम दिखलाने वाले, अमृत के हरण के समय इन्द्र से युद्ध कर उनके व्रज द्वारा चिह्नित, शिखाधारी, बलवान् तपाये हुए सुवर्ण के कुण्डल से विभूषित, विचित्र रङ्ग के पंखे को धारण करने वाले, धातुमान् पर्वत की भाँति शोभायमान, विशाल वक्षःस्थल पर, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल सर्पों के फणस्थ मणियों से सुशोभित, प्रलयकालीन इन्द्र धनुषों से युक्त दो बादलों की भाँति दोनों पंखों से लीलापूर्वक आकाश मण्डल को व्याप्त कर, नीली, लाल, पीली पताकाओं से विभूषित, पताका के समान वेश में छिपे हुए महान् एवं विशाल शरीर वाले अरुण के अनुज गरुड़ पर आरूढ़ होकर वे युद्धभूमि में उपस्थित हुए। उस समय गरुड़ का शरीर सुन्दर सुवर्ण के समान शोभायमान हो रहा था।।४०-४७।।

तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः। गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम्॥४८॥

भगवान् के उपस्थित होने पर देवगण इनके पीछे-पीछे आए। उस समाधि में मग्न होकर मुनिगण अति उत्कृष्ट मंत्रों द्वारा जनार्दन की स्तुति करने लगे।।४८।।

तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरः सरम्। द्विजराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम्॥४९॥
चन्द्रप्रभाभिर्विपुलं युद्धाय समवर्तत। पवनाविद्धनिर्घोषं सम्प्रदीप्तहुताशनम्॥५०॥
विष्णोर्जिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा तमसाऽऽवृतम्। बलं बलवदुद्वृत्तं युद्धाय समवर्तत॥५१॥
स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत। स्वस्त्यस्तु दानवानीक उशना वाक्यमाददे॥५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे चतःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९२६१।।

इस प्रकार कुबेर से युक्त, सूर्यपूत्र यमराज से सुशोभित, द्विजराज गरुड़ के समन्वित, देवराज इन्द्र से सुशोभित, चन्द्रमा की कान्तियों से विभूषित देवताओं की वह विशाल वाहिनी युद्ध के लिए रणभूमि में प्रस्तुत हुई, तब बृहस्पति ने देवताओं के लिए 'कल्याण हो' ऐसा स्वस्तिवाचन किया, इसी प्रकार शुक्र ने दैत्यों की सेना में स्वस्तिवाचन पढ़ा।।४९-५२।।

।।एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१७४।।

❖❖❖

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवताओं और असुरों का लोमहर्षक संग्राम, मय की अग्निमाया, और्व की कथा

मत्स्य उवाच

ताभ्यां बलाभ्यां सञ्जज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा। सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम्॥१॥

मत्स्य ने कहा–इस प्रकार देवताओं तथा दानवों की विशाल वाहिनी जब एक -दूसरे को विजित करने की इच्छा से रणभूमि में उपस्थित हुई, तब दोनों सेनाओं में अत्यन्त तुमुल युद्ध छिड़ गया।।१।।

दानवा दैवतैः सार्धं नानाप्रहरणोद्यताः। समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः॥२॥

अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से लैस हुए दानवगण देवताओं के साथ युद्ध करते हुए इस प्रकार मालूम हुए मानों पर्वतों से पर्वत लड़ रहे हों।।२।।

तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ। धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च॥३॥

देवताओं तथा दानवों से संयुक्त वह अद्भूत धर्म एवं अधर्म से, गर्व एवं विनय से युक्त वह युद्ध शोभित हो रहा था।।३।।

ततो रथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः। उत्पतद्भिश्च गगनमसिहस्तैः समन्ततः।।४।।
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः।।५।।
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम्। जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम्।।६।।

तदनन्तर अलग-अलग चलते हुए रथ, प्रेरित किये गये हाथियों, आकाशमण्डल में चलती हुई हाथों से युक्त तलवारों चारों ओर से चलते हुए मुसलों, गिरने वाले बाणों, टँकार युक्त धनुषों, शत्रुओं पर फेंके जाते हुए मुद्गरों से वह भयानक युद्ध देवताओं तथा दानवों से संकुलित हो गया और महाप्रलय के समान समस्त जगत् को त्रास युक्त कर दिया।।४-६।।

हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः। दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान्।।७।।

उस रण में दानवगण हाथों से छोड़े गये परिघों तथा ऊपर से फेंके गये पर्वतों द्वारा इन्द्र आदि देवताओं को आहत करने लगे।।७।।

ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाङ्क्षिभिः। विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे।।८।।

विजय के इच्छुक, बलवान् उन दानवों द्वारा मारे जाते हुए वे देवगण अति विषाद युक्त हो युद्ध में परमचिन्तित हुए।।८।।

तेऽस्त्रशूलप्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः। भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्बहु।।९।।

उन दिति पुत्रों के अस्त्रों तथा शूलों द्वारा अति घायल, परिघों द्वारा छिन्न-भिन्न मस्तकवाले, कटी हुई छाती वाले देवगणों के घावों से रक्त की अविरल धाराएँ बहने लगीं।।९।।

वेष्टिलाः शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः।
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम्।।१०।।

असुरों के बाणों के समूहों द्वारा घायल होकर देवगण कुछ भी करने में निष्फल रहे, यहाँ तक कि दानवों को युद्ध की उस भीषण माया में पड़कर उनका होशहवाश तक गुम हो गया।।१०।।

अस्तङ्गतमिवाऽऽभाति निष्प्राणसदृशाकृति। बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम्।।११।।

इस प्रकार राक्षसों द्वारा देवताओं की सारी सेना अस्तप्राय कर दी गई, सबके सब सैनिक प्राण रहित से दिखाई पड़ने लगे, उनके हाथियारों के सारे प्रयत्न भी निष्फल हो रहे।।११।।

दैत्यचापच्युतान्घोरांच्छित्त्वा वज्रेण ताञ्छरान्।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः।।१२।।

तब अनेक नेत्रों वाले इन्द्र अपने वज्र से दैत्यों की धनुषों से छूटे हुए उन विकराल बाणों को काटते हुए दैत्यों की विकराल सेना में प्रविष्ट हुए।।१२।।

स दैत्यप्रमुखान्हत्वा तद्दानवबलं महत्। तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत्।।१३।।

और बड़े-बड़े दानवों का संहार कर अपने तामस अस्त्र के जाल उन दैत्यों की विशाल वाहिनी को अंधकार में आच्छन्न कर दिया।।१३।।

तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च।
घोरेण तमसाऽऽविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा॥१४॥

इस प्रकार इन्द्र के अद्भुत पराक्रम से निविड अंधकार में छिपे हुए वे दानवगण आपस में एक-दूसरे को देखने एवं पहचानने में भी असमर्थ हो गये, यहाँ तक कि देवताओं के वाहनों तक को वे न पहचान सके।।१४।।

मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः। वपूंषि दैत्यसिंहानां तमोभूतान्यपातयन्॥१५॥
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा। पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः॥१६॥

इन्द्र के प्रयत्न से उक्त मायापाश से छूटे हुए बड़े-बड़े देवगण प्रयत्न पूर्वक अंधकार में विलीन उन पराक्रमी दानवों के शरीरो को काटने लगे, जिससे अंधकार में विलीन, होशहवाश रहित देवताओं द्वारा हताहत वे दानवगण पृथ्वी पर कटे हुए पक्ष वाले पर्वतों की भाँति गिरने लगे।।५-१६।।

तद्घनीभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे। दानवं देवकदनं तमोभूतमिवाभवत्॥१७॥

समुद्र में घोर अंधकार की भाँति देवताओं के शत्रु उन दानवों की सारी सेना अंधकार में विलीन थी और बड़े-बड़े दैत्यगण उसमें छिपे हुए थे।।१७।।

तदाऽसृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन्। युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना॥१८॥

उस समय मय नामक दानव ने इन्द्र की तामसी माया को विध्वस्त करने वाली महाभयानक और्व नामक अग्नि से उत्पन्न होने वाली तथा प्रलय काण्ड उपस्थित करने वाली अपनी माया की रचना की।।१८।।

सा ददाह ततः सर्वान्माया मयविकल्पिता।
दैत्याश्चाऽऽदित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे॥१९॥

मय द्वारा रची गई उस भीषण माया ने सभी देवताओं को जलाना प्रारम्भ किया और दानवगण सूर्य के समान तेजस्वी शरीर धारणकर शीघ्र ही पुनः युद्धार्थ उठ खड़े हुए।।१९।।

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः। भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिलप्रदम्॥२०॥

उस और्वी माया के प्रभाव से जलते हुए देवगण, इन्द्र तथा शीतल किरणों वाले तथा जलप्रद चन्द्रमा की शरण में पहुँचे।।२०।।

ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः। शशंसुर्वज्रिणं देवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः॥२१॥
सन्तप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः। चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत्॥२२॥

जिस समय इस प्रकार शरणार्थी देवगण और्वाग्नि की माया से विह्वल एवं सन्तप्त होकर

वज्रधारी इन्द्र की शरण में जाकर कहने के लिए प्रस्तुत हुए। उस समय दानवों की घोर माया से सेना के हताहत हो जाने से इन्द्र के पूछने पर वरुण ने कहा।।२१-२२।।

पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपे सुदारुणम्। ऊर्वः सपूर्वतेजस्वी सदृशो ब्राह्मणो गुणैः।।२३।।

इन्द्र! प्राचीन काल में महर्षिपुत्र ऊर्व, जो अतिशय तेजस्वी तथा गुणों में ब्रह्मा के समान थे, घोर तपस्या कर रहे थे।।२३।।

तं तपन्तमिवाऽऽदित्यं तपसा जगदव्ययम्। उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सह।।२४।।
हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः। ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम्।।२५।।

तपस्या करते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, तपस्या से अव्यय लोक की प्राप्ति करने वाले ऊर्व के पास दिव्य तेजोमय महर्षिगण देवर्षिगण के साथ उपस्थित हुए, उसी समय दानवराज हिरण्यकशिपु भी वहाँ पहुँचा। उस परमतेजस्वी ऋषि ऊर्व से ब्रह्मर्षियों ने धर्मपूर्वक वचन को निवेदित किया।।२४-२५।।

ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम्। ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं पदम्।।२६।।
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रजोऽन्यो न वर्तते। कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे।।२७।।
बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः।।२८।।

ऋषियों ने कहा-भगवन्! ऋषियों के वंश में यह पद विनष्ट हो रहा है, उसका मूल ही नष्ट हो रहा है, उसमें तुम एकमात्र सन्तान थे, तुम्हारे भी कोई सन्तति नहीं है, जो गोत्र की अभिवृद्धि कर सके और तुम तो कौमार (ब्रह्मचर्य) व्रत को अंगीकार कर क्लेश सहन करते हुए तपस्या कर रहे हो, उच्चाशय मुनियों तथा ब्राह्मणों के अनेक वंश केवल एक व्यक्ति में शेष हैं, बिना सन्तति के सभी छिन्न-भिन्न से हो रहे हैं।।२६-२८।।

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम्। भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः।।२९।।
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्धयाऽऽत्मानमात्मना।
त्वया धर्मोऽर्जितस्तेन द्वितीयां कुरु वै तनुम्।।३०।।

इस प्रकार मूल के उच्छिन्न हो जाने पर पुत्र उत्पत्ति का कोई कारण शेष नहीं दिखाई पड़ता। आप तो तपस्या के प्रभाव से अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त कर प्रजापति के समान तेजस्वी एवं प्रभावशाली हो गये हैं। अतः अपने उस शरीर से वंश की वृद्धि के लिए भी कोई उपाय कीजिये और अपने प्रभाव से अपने वंश की अभिवृद्धि कीजिए। आपने इस शरीर से बहुत धर्म का अर्जन किया है, अतः दूसरे शरीर को बनाइये अर्थात् सन्तानोपत्ति के लिए प्रयत्नशील होइये।।२९-३०।।

स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मर्मसु ताडितः। जगर्हे तानृषिगणान्वचनं चेदमब्रवीत्।।३१।।
यथाऽयं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतः पुरा। आर्षं वै सेवतः कर्म वन्यमूलफलाशिनः।।३२।।

ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्याऽऽत्मदर्शिनः। ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥३३॥

मुनियों के इस प्रकार कहने पर ऊर्व के मर्मस्थल में आघात हुआ और उन्होंने उन ऋषियों की निन्दा करते हुए कहा-'मुनियों के लिए जिस प्रकार इस धर्म का विधान बनाया गया है, वह कभी नष्ट होने वाला नहीं है। इस धर्म मार्ग में रहकर आर्ष धर्म की सेवा में तत्पर रह जंगल में उत्पन्न होने वाले मूल फलादि का भोजन कर आत्माभिमानी, ब्राह्मण कुलोत्पन्न मुनि का भली-भाँति अर्जित किया हुआ ब्रह्मचर्य ब्रह्मा को भी विचलित कर सकता है।।३१-३३।।

जनानां वृत्तयस्तिस्त्रो ये गृहाश्रमवासिनः। अस्माकं तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम्॥३४॥

गृहस्थाश्रम में निवास करने वाले मुनष्यों के लिए अन्य तीन वृत्तियों का विधान किया गया है, पर वन में आश्रम बनाकर निवास करने वाले हम जैसे लोगों के लिए यही-हमारी-वृत्ति सबसे अच्छी है।।३४।।

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
अस्मकुट्टा ह्यशनकाः पञ्चातपसहाश्च ये॥३५॥

एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः। ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परां गतिम्॥३६॥

जल पीकर, वायुपान कर, दाँत द्वारा तथा उलूखल (खरल) में कूटकर या पत्थर से कूटकर जो वस्तु खाई जा सके उसे खाकर दस ओर या पाँच ओर धूनी जलाकर अग्नि का सेवन करने वाले जो मुनि लोग हैं, वे इससे भी कठोर दुष्कर व्रतों का निर्वाह करते हुए तपस्या में लगे रहते हैं और सर्वप्रथम लक्ष्य ब्रह्मचर्य की विधिवत् रक्षा कर परमगति को प्राप्ति करते हैं।।३५-३६।।

ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते। एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः॥३७॥

ब्राह्मण को तो ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है, ब्रह्मचर्य की महिमा को जानने वाले लोग इसी प्रकार परलोक में ब्रह्मचर्य को फलदायी बतलाते हैं।।३७।।

ब्रह्मचर्ये स्थितं सत्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्ये तु ब्राह्मणा दिवि संस्थिताः॥३८॥

ब्रह्मचर्य में स्थित रहने पर धैर्य रह सकता है, ब्रह्मचर्य के रहते हुए ही तपश्चर्या हो सकती है, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहते हैं, वे स्वर्ग में स्थित रहते हैं।।३८।।

नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः।
नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात्परं तपः॥३९॥

बिना योग के सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती, सिद्धि के बिना यश नहीं मिलता, लोक में ब्रह्मचर्य से बढ़कर यश का मूल कारण कोई अन्य तप नहीं है।।३९।।

यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम्। ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः॥४०॥

जो प्राणी अपने इन्द्रिय-समूहों तथा पाँचों भूतों को स्ववश रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसके समान घोर तपस्या कोई अन्य नहीं है।।४०।।

अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रियां। अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद्दम्भसंज्ञकम्।।४१।।

बिना योगाभ्यास के केशों को रख लेना, बिना संकल्प के व्रत की क्रिया करना, बिना ब्रह्मचर्य के अन्य पुण्य कार्यों को करना-ये तीनों निरे पाखण्ड कहे गये हैं।।४१।।

क्व दाराः क्व च संयोगः क्व चभावविपर्ययः।
नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा।।४२।।

कहाँ स्त्री है? कहाँ संयोग होता है? कहाँ पर स्त्री-पुरुषों के भाव विकृत होते हैं? यह तो निश्चय है कि यह ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि संकल्पों से होने वाली है और ये सारी प्रजाएँ उसकी मानसिक सृष्टि से उद्भूत हुई हैं।।४२।।

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम्।
सृजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा।।४३।।

यदि आप जैसे आत्मज्ञानी मुनियों में तपस्या का कोई बल है तो ब्रह्मा की भाँति मानसिक सृष्टि की रचना कर मानस पुत्रों को उत्पन्न कीजिये।।४३।।

मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम्।।४४।।

तपस्वीगण तो मन से संकल्पित योनि में आधान करते हैं, तपस्वियों के लिए स्त्री का संयोग अथवा गर्भयोनि में बीजाधान करने का कोई नियम नहीं कहा गया है।।४४।।

यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः। व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम्।।४५।।

यह जो धर्म, अर्थ से हीन, सज्जनों द्वारा न कहने योग्य बातें आप लोगों ने निर्भय हो कर मेरे सम्मुख कही है, वे मेरी समझ में अज्ञानियों की भाँति हैं।।४५।।

वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत्कृत्वा मनोमयम्। दारयोगं विना स्त्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम्।।४६।।

अपने शरीर को जो प्रकाशित आत्मा से संयुक्त है, मन से सम्बद्ध कर मैं बिना स्त्री समागम के ही आत्मशरीरोत्पन्न पुत्र की सृष्टि करूँगा।४६।।

एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति। वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः।।४७।।

इस प्रकार मेरी आत्मा इस जंगली (वानप्रस्थियों के करने योग्य) विधि से समस्त प्रजा को जलाते हुए अपनी दूसरी आत्मा-पुत्र को उत्पन्न करेगी।।४७।।

ऊर्वस्तु तपसाऽऽविष्टो निवेश्योरुं हुताशने। ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम्।।४८।।

ऐसा कहकर ऊर्व ऋषि तपस्या के आवेश से युक्त हो अपने ऊरु (जंघा) भाग को अग्नि में प्रविष्ट कर एक कुशा से अरणि की भाँति मन्थन किया।।४८।।

तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः।
जगदो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत॥४९॥

जिसस शीघ्र ही उनके भेदन कर ज्वाला से युक्त, ईंधन रहित, जगत् के विध्वंस के लिए इच्छुक अग्निरूपी एक पुत्र उत्पन्न हुआ।।४९।।

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामाऽन्तकोऽनलः।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः॥५०॥
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं क्षीणया गिरा।
क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्ष्ये त्यजस्व माम्॥५१॥

इस प्रकार ऊर्व के ऊरु को फाड़कर और्व नामक जगत् का विनाशक अग्नि तीनों लोकों को भस्मसात् करते हुए की भाँति अति क्रोधयुक्त हो उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होते ही अपने पिता से विनम्र स्वर में बोला-'तात! मैं भूख से पीड़ित हूँ, मुझे छोड़िये, जगत् भोजन करने की आज्ञा मुझे प्रदान कीजिये।।५०-५१।।'

त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश। निर्दहन्सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन्। उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयां कुरु॥५३॥
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये स्थानमुत्तमम्। तथ्यमेतद्वचः पुत्र शृणु त्वं वदतां वर॥५४॥

ऐसा कहकर स्वर्ग तक पहुँचती हुई लपटों से युक्त होकर दसों दिशाओं में फैला हुआ यह और्व अग्नि समस्त जीवों को भस्मसात् करता हुआ बढ़ने लगा। इसी अवसर पर ब्रह्मा जी महर्षि ऊर्व की प्रशंसा करते हुए आए और बोले-'प्रियवर! अपने पुत्र को रोको, दया कर जगत् की रक्षा करो। मैं तुम्हारे पुत्र के निवासार्थ उत्तम स्थान का प्रबन्ध कर दूँगा, हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! पुत्र! मेरी यह बात सच मानो।।५२-५४।।

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुहीतोस्मि यन्मेऽद्य भगवाञ्छिशोः। मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै॥५५॥
प्रभातकाले सम्प्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे।
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम्॥५६॥
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम्।
विधास्यतीह भगवान्वीर्यतुल्यं महौजसः॥५७॥

ऊर्व ने कहा-भगवन्! आज मैं धन्य हो गया। आपने यह मेरे ऊपर अनुग्रह किया। मेरे शिशु के लिए मुझे ऐसी बुद्धि दी; किन्तु प्रातः काल होने पर जब वह भूखा होकर मुझसे भोजन माँगेगा, तब उसे मैं किन पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट करूंगा ? कहाँ उसका निवास होगा? भोजन क्या करेगा? आप उस महातेजस्वी के अनुरूप ही प्रबन्ध करेंगे ?।।५५-५७।।

ब्रह्मोवाच

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति।
मम योनिर्जलं विप्र तस्य पीतवतः सुखम्।।५८।।

ब्रह्मा ने कहा–विप्र! समुद्र में निवास करने वाली वडवा के मुख में इस तुम्हारे पुत्र का निवास स्थान होगा, मेरा उत्पत्ति स्थान जल है, उसे पीकर तुम्हारे पुत्र को महान् सुख होगा।।५८।।

यत्राहमास नियतं पिबन्वारिमयं हविः। तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं च तत्।।५९।।

उसी स्थान पर मैं भी जलमय हवि का पान करते हुए निवास करता हूँ, वही हवि तुम्हारे पुत्र के लिए भी भोजनार्थ अर्पित करूँगा और वही उसका भी निबास स्थान होगा।५९।।

ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च पुत्रक। सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणमृणापहः।।६०।।
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मयाकृतः। दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम्।।६१।।

युगान्त के समय हम और यह तुम्हारा पुत्र-दोनों सन्तान रहित प्राणियों के पितृ-ऋण का मोचन करने के लिए एक ही साथ विचरण करेंगे, यह जल का भोजन करने वाला तुम्हारा पुत्र अन्तकाल (महाप्रलय) में देव, असुर, राक्षस आदि सभी जीवों को जलाने वाला होगा।।६०-६१।।

एवमस्त्विति तं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरि प्रभाम्।।६२।।

ब्रह्मा की ऐसी बातें सुन 'ऐसा ही हो' कहकर ऊर्व ने अनुमोदन किया और वह और्व अग्नि अपनी भीषण ज्वालाओं के मण्डल से युक्त होकर अपनी कान्ति को पिता में निक्षिप्त कर निष्प्रभ हो समुद्र मुख में प्रविष्ट हुआ।।६२।।

प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः।
और्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः।।६३।।

तदुपरान्त वे सब महर्षि, जो वहाँ आये हुए थे और ब्रह्मा, ऊर्व में अग्नि की प्रभा का प्रवेश हुआ देखकर अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को प्रस्थित हुए।।६३।।

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम्। उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह।।६४।।

इस प्रकार की घटना घटित होते देख हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने दण्डवत् प्रणाम कर उच्चस्वर से ऊर्व से ऐसा निवेदन किया।।६४।।

भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम्। तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः।।६५।।

भगवन्! यह अति अद्भुत बात हुई है, सारा लोक इसे साक्षीरूपेण देख रहा है, मुनिश्रेष्ठ! आपकी इस घोर तपस्या से पितामह भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये हैं।।६५।।

अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत। भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा।।६६।।

तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाऽऽराधने रतम्। यदि सीदेन्मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः॥६७॥

महाव्रती! मैं आपका तथा आपके पुत्र का किंकर हूँ, ऐसा सच जानिये, जो कुछ भी आवश्यकता हो, उसके लिए हमें आप आज्ञा दे सकते हैं, मुझे अपनी ही शरण में आया हुआ समझिये, मैं आप ही की आराधना में निरत हूँ, यदि इस प्रकार अनन्य भाव से आपकी शरण में रहते हुए भी मैं कष्ट पाता हूँ, इससे आपकी पराजय होगी।।६६-६७।।

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुः स्थितः।
नास्ति मे तपसाऽनेन भयमद्येह सुव्रत॥६८॥

ऊर्व ने कहा-'सद्व्रत परायण! मैं धन्य तथा अनुग्रहीत हो गया जो तुम्हारा गुरु हुआ, मुझे अपनी इस कठोर तपस्या एवं सिद्धि से क्या मिलेगा, यदि मेरे रहते तुम्हें कष्ट मिले।।६८।।

तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम्। निरिन्धनामग्निमयीं दुर्धर्षं च पावकैरपि॥६९॥

तो तुम मेरे पुत्र द्वारा निर्मित उसी अग्निमयी माया को ग्रहण करो, जो बिना ईंधन के अग्नि में भी बढ़कर भीषण युद्ध दुर्द्धर्ष है।।६९।।

एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगाऽरिविनिग्रहे। संरक्षत्मात्मपक्षं च विपक्षं च प्रधक्ष्यति॥७०॥

शत्रुओं को वश में करते समय यह माया तुम्हारे वंशवालों के वश में रहेगी, अपने पक्ष वालों की यह रक्षा करेगी और विपक्षियों का विनाश करेगी'।।७०।।

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्। जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः॥७१॥

मुनि की ऐसी बाते सुन दानव हिरण्यकशिपु मुनि पुंगव ऊर्व को प्रणाम कर अति प्रसन्नचित्त एवं कृतार्थ होकर स्वर्ग को प्रस्थित हुआ।।७१।।

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा। और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना॥७२॥

(वरुण कहते हैं) यह पूर्व काल में ऊर्व पुत्र अग्नि स्वरूप और्व द्वारा निर्मित माया अत्यन्त कठोर तथा असह्य है, देवगण भी इसे सहन नहीं कर सकते।।७२।।

तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीयैषा न संशयः।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा॥७३॥

किन्तु इस हिरण्यकशिपु दैत्य के मर जाने पर यह काया निवीर्य हो जायेगी-इसमें कोई सन्देह नहीं ऐसा शाप पूर्वकाल में उन्हीं मुनि ऊर्व ने उसे दिया था, जिसने इसे निर्मित किया था।।७३।।

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान्सुखी।
दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः॥७४॥

भगवन्! यदि इस माया को निष्फल कर सबको सुखी करना चाहते हैं तो जल के आश्रय स्थान निशाकर चन्द्रमा को हमारे मित्ररूप में नियुक्त कीजिये।।७४।।

तेनाहं सह सङ्गम्य योदोभिश्च समावृतः। मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः।।७५।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९३३६।।
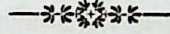
जिससे उनके तथा जलचरों के साथ आप की कृपा से हम लोग इस माया का विध्वंस कर सकें। मेरे इस कथन में आप संशय न करें।।७५।।

।।एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१७५।।

❖❖❖

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रमा की सहायता से वरुण द्वारा अग्निमाया को शान्त करना, दैत्यों की दुर्दशा

मत्स्य उवाच

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः। सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम्।।१।।

मत्स्य ने कहा- वरुण की ऐसी प्रार्थना सुनने पर देवताओं को बढ़ाने वाले इन्द्र अति प्रसन्न होकर शिशिरायुध चन्द्रमा को प्रमुखरूपेण उस युद्ध में सहयोग करने के लिए आदेश दिया और कहा।।१।।

गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै। असुराणां विनाशाय जयार्थं च दिवौकसाम्।।२।।

'सोम! तुम जाओ और असुरों के विनासार्थ तथा देवताओं के विजयार्थ पाशधारी वरुण की सहायता करो।।२।।

त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः। त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः।।३।।

तुम मुझसे भी बलवान् हो, ज्योतिःपुञ्ज नक्षत्रों के स्वामी हो रसज्ञ लोग समस्त लोक में व्याप्त रहने वाले रस को तुमसे ही युक्त जानते हैं।।३।।

क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले। परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन्।।४।।

तुम्हारे मण्डल में भी सागर की भाँति क्षय एवं वृद्धि व्यक्त होती है, जगत् में काल (समय) का योग करते हुए तुम दिन तथा रात्रि का परिवर्तन करते हो।।४।।

लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः। न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोनयः॥५॥

तुम्हारा चिह्न लोक की छाया से युक्त है, तुम्हारे अंक में मृग का चिह्न है। सोम! तुम्हारी महिमा को वे देवतागण भी नहीं जानते, जो स्वयं नक्षत्रों के उत्पत्तिकर्ता हैं॥५॥

त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः।
तमः प्रोत्सार्य महसा भासयस्यखिलं जगत्॥६॥

तुम सूर्य के पथ से भी ऊपर, अन्य नक्षत्रगणों के भी ऊपर अवस्थित हो। तुम अपने अनुमप तेज से अंधकार को दूर कर समस्त जगत् को प्रकाशित करते हो॥६॥

श्वेतभानुर्हितनुर्ज्योतिषामधिपः शशी। अधिकृत्कालयोगात्मा इष्टो यज्ञरसोऽव्ययः॥७॥
ओषधीशः क्रियायोनिर्हरशेखरभाक्तथा। शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः॥८॥

तुम श्वेतभानु कहे जाते हो, हिम शरीर हो, नक्षत्रों के स्वामी हो, शशलांछन हो, कालयोगों के स्वामी हो, कभी नष्ट न होने वाले यज्ञ स्वरूप हो, औषधीश हो। समस्त जगत् के कार्यों को उत्पन्न करने वाले, जल से उत्पन्न होने वाले, शीतल कान्ति वाले, शीतांशु, अमृत के आश्रय, चंचल एवं श्वेत वाहन हो॥७-८॥

त्वं कान्तिः कान्तिवपुषां त्वं सोमः सोमपायिनाम्।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट्॥९॥

शोभाशालियों की शोभा तुम्हीं हो, सोमपान करने वाले देवताओं के लिए सोम तुम्हीं हो, सभी जीवों में सुन्दर तुम्हीं हो, तुम अंधकार के विनाशकर्त्ता तथा नक्षत्रों के स्वामी हो॥९॥

तद्गच्छ त्वं महासेन वरुणेन वरूथिना। शमय त्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे॥१०॥

महासेन! इसीलिये मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम कवचधारी वरुण के साथ जाकर इस आसुरी माया को शान्त करो, जिससे हम लोग इस समय जल रहे हैं'॥१०॥

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज वरप्रद। एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम्॥११॥

सोम ने कहा–'वरदान देने वाले देवराज! यदि आप मुझे युद्ध के लिए आज्ञा प्रदान कर रहे हैं तो अब मैं दैत्यों की माया को हरने वाले शिशिर की वर्षा कर रहा हूँ॥११॥

एतान्मच्छीतनिर्दग्धान्पश्य त्वं हिमवेष्टितान्।
विमायान्विमदांश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे॥१२॥

इस मेरे बरसाये हुए हिम से आच्छादित एवं शीत से सिकुड़े हुये दानवों को देखिये, इस महायुद्ध में मैं इन सभी बड़े-बड़े दैत्यों को माया से रहित कर दूंगा और इन सबका गर्व-खर्व कर दूँगा॥१२॥

इत्युक्त्वा तारकाधीसः सजलेशः शिवोदकैः।
प्लावयामास सैन्यानि सुराणां शान्तिवृद्धये॥१३॥

ऐसा कहकर तारापति चन्द्रमा जल के स्वामी वरुण के साथ मांगलिक जल द्वारा देवताओं की सेना के सभी सैनिकों को शान्त करने के लिये ठण्डा कर दिया॥१३॥

तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सपाशा हिमवृष्टयः। वेष्टयन्ति स्म तान्घोरान्दैत्यान्मेघगणा इव॥१४॥

उनके हिमयुक्त किरणों से छूटी हुई तुषारों की वृष्टि ने वरुण के पाश के साथ उन घोर दैत्यों के समूहों को मेघ के समान आच्छन्न कर लिया॥१४॥

तौ पाशशीतांशुधरै वरुणेन्दू महाबलौ। जघ्नतुर्हिमपातैश्च दानवान्॥१५॥

वे पाश और शीतमय किरणों के धारण करने वाले महाबलवान् वरुण और चन्द्रमा अपने पाशों और तुषारों की वृष्टि कर दानवों की सेना को आहत करने लगे॥१५॥

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ। मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ॥१६॥

युद्धभूमि में पाश और हिम के हथियारों का प्रयोग करने वाले दोनों जल के स्वामी, समर में जल के वेग से अत्यन्त क्षुब्ध दो महासमुद्रों की भाँति विचरण करने लगे॥१६॥

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत। जगत्संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिव संवृतम्॥१७॥

इस प्रकार उन दोनों द्वारा जल में डुबोई गई वह दानवों की सेना प्रलय कालीन संवर्तक नामक मेघों से आप्लावित जगन्मण्डल की भाँति दिखाई पड़ने लगी॥१७॥

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ। शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम्॥१८॥

युद्धभूमि में लड़ते हुए उन-शशलांछन चन्द्रमा तथा वरुण-दोनों देवताओं ने दैत्येन्द्र द्वारा विनिर्मित माया को शान्त कर दिया॥१८॥

शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे।
न शेकुश्चलितं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः॥१९॥

युद्ध में चन्द्रमा की शीतमय किरणों द्वारा जलाये गये तथा वरुण के पाशों द्वारा बाँधे गये दैत्यगण सिर रहित हो कर पर्वतों के समान दिखाई पड़ रहे थे॥१९॥

शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः॥२०॥

शीतरश्मियों द्वारा और तुषार द्वारा पीड़ित, हिम द्वारा आप्लावित समस्त अंगों वाले वे दानव ऊष्मा रहित अग्नि की भाँति शोभित हो रहे थे॥२०॥

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै। विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च॥२१॥

उन दैत्यों के विचित्र ढंग के बने हुए रथों की कान्ति नष्ट हो गई और वे आकाश मार्ग में इधर-उधर गिरने पड़ने लगे॥२१॥

तान्पाशहस्तग्रथितांश्छीतरश्मिभिः। मयो ददर्श मायावी दानवान्दिवि दानवः॥२२॥

इस प्रकार चन्द्रमा की शीतल किरणों द्वारा आच्छादित, वरुण के पाश द्वारा बाँधे हुए आकाश में अवस्थित उन दानवों को मायावी मय ने देखा।।२२।।

स शिलाजालविततां खड्गचर्माट्टहासिनीम्।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम्॥२३॥
सिंहव्याघ्रगणाकीर्णं नदद्भिर्गजयूथपैः। ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम्॥२४॥
निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम्।
प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्स समन्ततः॥२५॥

और शिलाओं के समूहों से संयुक्त एवं चर्म (ढाल) से युक्त होकर घोर शब्द करने वाली, घने वृक्षों से युक्त, अति भयानक शिखरों वाली, कन्दराओं एवं जंगलों से आकीर्ण सिंह तथा व्याघ्र के समूहों से संकुलित, गरजते हुए बड़े-बड़े गजराजों से युक्त, विविध जाति के मृगों से आकीर्ण, पवन द्वारा कँपाये जाते वृक्षों से संयुक्त, अपने ही प्रयत्न से बनाई गई, घोर शब्द करने वाली, इच्छानुरूप शत्रु पर जाने वाली पर्वत की माया को देवताओं की सेना के चारों ओर छोड़ा।।२३-२५।।

ससिशब्दैः शिलवर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत्॥२६॥

मय द्वारा छोड़ी गयी वह माया खड्गों को शब्द करती हुई शिलाओं की वृष्टि एवं ऊपर गिरते हुए वृक्षों द्वारा देवताओं का संहार करने लगी और दानवगणों को जिलाने लगी।।२६।।

नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः। असिभिश्चाऽऽयसगणैः किरन्देवगणान्रणे॥२७॥
साश्मयन्त्रायुधधना द्रुमपर्वतसङ्कटा। अभवद्घोरसञ्चारा पृथिवी पर्वतैरिव॥२८॥

उसके प्रभाव से चन्द्रमा तथा वरुण दोनों की माया अन्तर्हित हो गई। दैत्य ने रण में लोहे के विविध अस्त्रों तथा तलवारों से देवताओं के समूहों को आच्छादित कर पृथ्वी को पत्थरों, अस्त्रों, वृक्षों तथा पर्वतों को गिराकर पर्वतों की भाँति दुर्गम बना दिया।।२७-२८।।

अश्मना प्रहताः केचिच्छिलाभिः शकलीकृताः। नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन॥२९॥
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम्। निप्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम्॥३०॥

कुछ देवता पत्थरों द्वारा मार डाले गये, कुछ शिलाओं से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये और कुछ वृक्षों से छिपे से दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार वह देवताओं की सारी सेना, बेकार-सी हो गई, उस सेना में केवल गदाधर भगवान् विष्णु को छोड़कर शेष सभी लोगों के धनुष टूट गये और अन्य सभी हथियार व्यर्थ से हो गये।।२९-३०।।

स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः॥३१॥

युद्धभूमि में विराजमान शोभा सम्पन्न वे जगत् के स्वामी भगवान् तनिक भी अपने स्थान से विचलित नहीं हुए और सहनशील होने के कारण क्रुद्ध भी नहीं हुए।।३१।।

कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन्कालमाहवे। देवासुरविमर्दं तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः।।३२।।

काल की महिमा जानने वाले कृष्ण मेघ के समान शोभायमान वे भगवान् उस समय देवासुर संग्राम को देखने की इच्छा से युद्ध में उपयुक्त अभीष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए अवस्थित थे।।३२।।

ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ। चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम्।।३३।।

तदनन्तर युद्ध में भगवान् विष्णु से देखे गये अग्नि और पवन इन दोनों देवताओं ने उन्हीं की आज्ञा से उस मय की माया को अपने में खींचना प्रारम्भ किया।।३३।।

ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे।
दग्धा स पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह।।३४।।
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ।।३५।।

उस महायुद्ध में अति वेगशाली, पूर्ण वृद्धि की सीमा को पहुँचे हुए उन दोनों देवताओं के प्रभाव से वह पर्वत की माया जल गई और भस्मसात् होकर एकदम नष्ट हो गई तथा वह पवन अग्नि के साथ तथा अग्नि पवन के साथ मिलकर युगान्त की भाँति अति विह्वल होकर दैत्यों की सेना को जलाने लगे।।३४-३५।।

वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम्। चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ।।३६।।

युद्धभूमि में आगे-आगे वायुदेव दौड़ने लगे, उनके पीछे अग्नि चले, फिर पीछे वायु दौड़े, इस प्रकार अग्नि की क्रीड़ा करते हुए दौड़ने लगे।।३६।।

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च। दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः।।३७।।
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके। मायाबन्धे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे।।३८।।
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने। संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः।।३९।।

दैत्यों की सेना जलती हुई इधर-उधर भागने लगी, दानवों के विमान इधर-उधर गिरने लगे। दैत्यों के कन्धे वायु से अकड़ गये, फिर अग्नि से जल गये-इस प्रकार जब दैत्य की माय नष्ट हो गई, चारों ओर से गदाधर भगवान् की स्तुति होने लगी, दैत्यगण निष्प्रयत्न हो गये, त्रैलोक्य का बन्धन छूट गया, देवतागण प्रसन्न होकर चारों ओर से 'बड़ा अच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ' कहकर शोरगुल करने लगे।।३७-३९।।

जये दशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये। दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे।।४०।।

सहस्रनेत्र इन्द्र की सेना जीत गई और दैत्यगण पराजित हो गये, सारी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं, धर्म का विस्तार हो गया।।४०।।

अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे। प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चरित्रबन्धुषु।।४१।।

चन्द्रमा शुभ्र होकर प्रकाशित हो गये, सूर्य अपने स्थान पर विराजमान हो गये, तीनों लोक निश्चिन्त हो गये, सभी में चरित्र बल एवं परिवार की भावना आ गई।।४१।।

यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु। अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने।।४२।।

यजमानगण यज्ञ करने लगे, पाप शान्त हो गये, मृत्यु का बन्धन बँध गया, अग्नि में विधिवत् हवन होने लगा।।४२।।

यज्ञशाभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च। लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु।।४३।।

यज्ञों की शोभा बढ़ाने वाले देवगण स्वर्ग की प्राप्ति के लिए होने वाले इन शुभ कर्मों को देखने लगे, लोकपालगण अपने-अपने निवास स्थानों को प्रस्थित हो गये।।४३।।

भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम्। देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति।।४४।।

सिद्ध तपस्वी गण पुण्य कर्मों में प्रवृत हो गये, पाप कर्मों का आभाव हो गया, देवपक्ष प्रमुदित हो गया, दैत्यपक्ष चिन्तित हो गया।।४४।।

त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पावविग्रहे। अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे।।४५।।
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सद्धर्मेष्वाश्रमेषु च। प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु।।४६।।

धर्म तीन चरणों द्वारा स्थित हुआ, अधर्म का एक चरण रह गया, सत्पथ महाद्वार खुल गया, सभी लोगं सधर्म में और अपने-अपने आश्रमों में प्रवृत्त हो गये। राजा लोग प्रजा की रक्षा में तत्पर होकर शोभित होने लगे।।४५-४६।।

प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे। अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते सङ्ग्रामकर्मणि।।४७।।

इस प्रकार उस रण में अग्नि और वायु के घोर संग्राम होने के बाद लोक का पाप शान्त हो गया और तमोगुण रूप दानव दब गये।।४७।।

तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां कृतजयक्रियाः।
पूर्वं दैत्यभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत्।।४८।।
कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत। भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः।।४९।।

सभी विशाल लोक उन दोनों देवताओं के पराक्रम द्वारा प्राप्त किये विजय लाभ से युक्त हो गये। तब उस अवसर पर अग्नि और वायु द्वारा उत्पन्न दानवों के लिए अति भय की चर्चा सुन कालनेमि नाम से विख्यात दानव रणभूमि में दिखाई पड़ा। उसका मुकुट सूर्य के समान था, सुन्दर शब्द करते हुए अंगद आदि आभूषणों से अलंकृत था।।४८-४९।।

मन्दरादिप्रतीकाशो महारजतसंवृतः। शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः॥५०॥

उस समय वह सुवर्ण से युक्त मन्दराचल के समान शोभायमान हो रहा था, उसने अति भयानक सौ हथियार धारण किये थे, उसके सौ बाहु थे, सौ मुख थे।।५०।।

शतशीर्षः स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्गः इवाचलः। कक्षे महति संवृद्धो निदाघ इव पावकः॥५१॥

सौ सिरों से शोभायमान वह दानव रणभूमि में सौ शिखर वाले पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था। विस्तृत युद्ध के मैदान में तेज से अतिशय बढ़ा हुआ वह दानव ग्रीष्मकालीन अग्नि की भाँति दिखाई पड़ रहा था।।५१।।

धूम्रकेशो हरिच्छ्मश्रुः सन्दष्टौष्ठपुटाननः। त्रैलोक्यान्तरविस्तारि धारयन्विपुलं वपुः॥५२॥

धुएँ के समान उसके केश थे, दाढ़ी हरे रंग की थी, ओठों के दल फड़क रहे थे। त्रैलोक्य भर में विस्तृत विपुल शरीर धारण किये हुए था।।५२।।

बाहुभिस्तुलयन्व्योम क्षिपन्पद्भ्यां महीधरान्।
ईरयन्मुखनिःश्वासैर्वृष्टियुक्तान्बलाहकान् ॥५३॥

बाहुओं से आकाश को नापता हुआ-सा पैरों से पर्वतों को फेंक रहा था, मुख द्वारा फेंकी गरम श्वासों से वह जलयुक्त बादलों को इधर से उधर कर देता था।।५३।।

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम्। दिधक्षन्तमिवाऽऽयान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे॥५४॥
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश। संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम्॥५५॥

इस प्रकार उस तिरछे किये हुए बड़े-बड़े लाल नेत्रों वाले, मन्दराचल की भाँति उत्कट तेजोमय सभी देव समूहों को जलाते हुए की भाँति आये हुए कालनेमि को, जो इशारे मात्र से देवताओं को भयभीत कर रहा था तथा विशाल शरीर से दसों दिशाओं को आच्छादित कर रहा था, युद्ध में आये हुए वीरों ने देखा। उस समय वह प्यासे प्रलयकाल की भाँति उठा हुआ दिखाई पड़ रहा था।।५४-५५।।

सुतलेनोच्छ्रायवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा। लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितकर्मणा॥५६॥
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता। दानवान्देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन्॥५७॥

रणभूमि में आये हुए कालनेमि ने मोटी गाँठों वाली अंगुलियों से युक्त, सुन्दर हथेलियों वाले, ऊँचे दहिने हाथ से, जिसमें लटकते हुए आभूषण शोभित हो रहे थे और जो उस समय कुछ चंचल हो रहा था, देवताओं द्वारा मारे गये दानवों से कहा- 'अब तुम सब उठो।'।।५६-५७।।

तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम्। वीक्षन्ते स्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः॥५८॥

इस प्रकार दैत्यों को उद्बोधित करते हुए शत्रुओं के लिए काल के समान भीषण चेष्टावाले कालनेमि को सब देवगण अतिभयपूर्ण कातर नेत्रों से देखने लगे।।५८।।

तं वीक्षन्ते स्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम्। त्रिविक्रमाधिकमतं नारायणमिवापरम्॥५९॥

रणभूमि में घूमते हुए उस भयानक कालनेमि को सभी प्राणियों ने स्वर्ग में घूमते हुए दूसरे नारायण के समान देखा।।५९।।

सोऽत्युच्छ्रयपुरःपादमारुताघूर्णिताम्बरः। प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः।।६०।।

अति विशाल शरीर वाले उस कालनेमि के वेग पूर्वक चलते हुए पैरों की वायु से आकाश कंपित होने लगा। इस प्रकार उसने देवताओं को युद्ध में भयभीत कर दिया।।६०।।

स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे। कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः।।६१।।

रण के मैदान में कालनेमि के आने पर मय ने उसे छाती से लगाया, उस समय वह दैत्य इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था मानों विष्णु भगवान् के साथ मन्दराचल दिखाई पड़ रहा हो।।६१।।

अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः। कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम्।।६२।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९३९८।।

दूसरे काल की भाँति युद्ध के मैदान में आये हुए कालनेमि को देखकर इन्द्र आदि समेत सभी देवगण अत्यन्त दुःखी हुए।।६२।।

।।एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१७६।।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालनेमि का भीषण युद्ध, कालनेमि की विजय और देवताओं की पराजय

मत्स्य उवाच

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः। व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा।।१।।

मत्स्य ने कहा—दानवों की सेना में महातेजस्वी तथा परम बलशाली वह कालनेमि दैत्य वर्षा ऋतु के बादल के समान दिखाई पड़ रहा था।।१।।

तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः। उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वाऽमृतमनुत्तमम्।।२।।

ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः। तारकामयसङ्ग्रामे सततं जितकाशिनः।।३।।

रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः। मन्त्रमभ्यसतां तेषां व्यूहं च परिधावताम्॥४॥
प्रेक्षतां चाभवत्प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम्। ये तु तत्र मयस्याऽऽसन्मुख्या युद्धपुरःसराः॥५॥
ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः। मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान्॥६॥
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि। अरिष्टो बलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च॥७॥
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः। एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः॥८॥

तीनों लोकों के अन्दर आये हुए उसको देखकर बड़े-बड़े दानवगण बिना किसी परिश्रम का अनुभव किये ही उठ खड़े हो गये और सब लोग उत्तम अमृत रस का पानकर भय को छोड़ मय तथा तारकासुर को प्रथम रख उस तारकामय संग्राम में सर्वदा जीतने वाले के समान शोभाशाली हुए और युद्ध की अभिलाषा से मैदान में भविष्य के बारे में सलाहें करने लगे, इधर-उधर दौड़ने लगे, व्यूह रचना करने लगे, एक-दूसरे को देखने लगे और सभी के चित्त में कालनेमि के प्रति प्रेमभाव का उदय हुआ। फिर उस युद्ध में जो मय की सेना के आगे चलने वाले प्रमुख दानव थे, वे सब भय को छोड़कर अति हर्षित हो युद्ध करने के लिए उपस्थित हुए। मय, तारक, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्ति का पुत्र श्वेत, दोनों खर और लम्ब, बलि का पुत्र अरिष्ट, किशोर, स्वर्भानु प्रसिद्ध चामर, महाअसुर वक्त्रयोधी—ये सबके सब दानव शस्त्रास्त्र विद्या के जानने वाले तथा तपस्या में सुनिपुण थे।।२-८।।

दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिं तमुद्धतम्। ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रैरथ परश्वधैः॥९॥
कालकल्पैश्च मुसलैःक्षेपणीयैश्च मुद्गरैः। अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः॥१०॥
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः। घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च॥११॥
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः। दोर्भिश्चाऽऽयतदीप्तैश्च प्रासैः पाशैश्च मूर्च्छनैः॥१२॥
भुजङ्गवदनैः क्रूरैर्लेलिहानैश्च सायकैः। वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः॥१३॥
विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः। दैत्याः सन्दीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः॥१४॥

युद्ध में वे सब बलवान एवं निपुण दानव उद्धत चित्तवाले कालनेमि के पास गये और गदा, भुशुण्डि, चक्र, रथ, फरसा, काल के समान मूसल, फेंके जानेवाले मुद्गर, पर्वत के समान भीषण शिलाएँ, अति-दारुण बड़ी-बड़ी पत्थरों की चट्टानें, पट्टिश, भिन्दिपाल, श्रेष्ठ लोहे के बने परिघ, बड़ी भीषण एवं संहार करने वाली तोपें, हाथों से छोड़े गये अति भयानक बाण, अति दीप्त भाले, पाश, मूर्च्छन, जीभ लपलपाते हुए सर्पों के समान मुख वाले चलते हुए तीक्ष्ण बाण, फेंके जाते हुए वज्र, चमकते हुए तोमर, अति तीक्ष्ण म्यान रहित तलवार, श्वेत निर्मलशूल-आदि शस्त्रास्त्रों से युक्त क्रोध से जलते हुए मतवाले दैत्यों ने धनुष लेकर युद्ध भूमि में विजयार्थ युद्ध प्रारम्भ किया।।९-१४।।

ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे। सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः॥१५॥
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घनानीलाम्बुदागमे। देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता॥१६॥

उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः। वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी॥१७॥
तोयदा विद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी। यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता॥१८॥
सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा। सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः॥१९॥
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी। तयोश्चम्वोस्तदानीं तु बभूव स समागमः॥२०॥

उस महायुद्ध में कालनेमि को आगे कर जलते हुए भयानक अस्त्रों से लैस दैत्यों की वह सेना इस प्रकार सुशोभित होने लगी, मानो सारा आकाश मण्डल काले बादलों से छुप गया हो। उधर इन्द्र द्वारा सुरक्षित देवताओं की विशाल सेना श्वेत और कृष्ण रङ्ग की दिखाई देती हुई सूर्य तथा चन्द्रमा से युक्त वायु के वेग से युक्त, तारागणों को पताका बनाये हुए अति सुन्दर दिखाती हुई, वस्त्र की भाँति बादलों से युक्त तथा ग्रहों और नक्षत्रों से हँसती हुई–सी यमराज, वरुण, इन्द्र एवं बुद्धिमान् कुबेर से अभिरक्षित प्रज्ज्वलित अग्नि रूप नेत्रों से युक्त और नारायण के आश्रित हो सुशोभित हो रही थी। इस प्रकार अति भयदायिनी वह देवसेना यक्षों एवं गन्धर्वों के गणों से युक्त सागर समूह के समान विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थी। युद्धभूमि में उन दोनों विशाल वाहिनियों का समागम हुआ।।१५-२०।।

द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये। तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसङ्कुलम्॥२१॥

वह समागम उस समय प्रलयकालीन आकाश तथा पृथ्वी के समागम की भाँति भयावना था। देवताओं तथा दानवों की विशाल भीड़ से अति घोर युद्ध होने लगा।।२१।।

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च। निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु भीमास्तत्र सुरासुराः॥२२॥

क्षमा, पराक्रम, दर्प एवं विनयपूर्वक वह युद्ध हो रहा था। कुछ अति भयानक देवता तथा दानव, देवताओं तथा दैत्यों की सेना से निकलकर युद्ध करने लगे।।२२।।

पूर्वापराभ्यां संरब्धः सागराभ्यामिवाम्बुदाः। ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः॥२३॥
वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथाऽऽगमाः।
समाजघ्नुस्ततो भेरीः शङ्खान्दध्मुरनेकशः॥२४॥
स शब्दो द्यां भुवं खं च दिशश्च समपूरयत्। ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च॥२५॥
दुन्दुभीनां च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम्। तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तः परस्परम्॥२६॥

पूर्व और पश्चिम में खड़ी हुई उन सेनाओं से निकलते हुए वे वीर इस प्रकार दिखलाई पड़ रहे थे मानों पूर्व तथा पश्चिम के समुद्रों से अति विशाल एवं क्षुब्ध बादलों के समूह। उस समय देव तथा दानवों की सेना इस प्रकार प्रसन्नचित्त घूम रही थी, मानो पर्वत के फूले हुए जङ्गलों में हाथियों के समूह घूम रहे हों। तदनन्तर उन दोनों सेनाओं में अनेक प्रकार के शंख, भेरी आदि रणवाद्यों का बजना प्रारम्भ हुआ और वे शब्द, आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग एवं दसों दिशाओं भर में व्याप्त हो गये, धनुषों की प्रत्यञ्चा के कठोर शब्द सुनाई देने लगे। देवताओं की दुन्दुभियों के स्वर ने दैत्यों के रण

वाद्यों के स्वरों को दबा दिया। दोनों सेनाओं के सैनिक परस्पर एक-दूसरे को लक्ष्य कर प्रहार करने लगे और आहत कर गिराने लगे।।२३-२६।।

बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः। देवास्तु चाशनिं घोरं परिघांश्चोत्तमायसान्।।२७।।

हाथों से हाथों में प्रहार करने लगे, युद्ध के अभिलाषी कुछ द्वन्द्व युद्ध करने लगे। देवतागण अति भयानक वज्र, तथा लोहे के बने हुए श्रेष्ठ परिघों को दानवों के ऊपर छोड़ने लगे।।२७।।

निस्त्रिंशान्ससृजुः संख्ये गदा गुर्वीश्च दानवाः।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः।।२८।।
परिपेतुर्भृशं केचित्पुनः केचित्तु जघ्निरे। ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाऽऽशुगामिभिः।।२९।।
समीयुस्ते सुसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे। संवर्तमानाः समरे सन्दष्टौष्ठपुटाननाः।।३०।।
रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदाताश्च पदातिभिः। तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम्।।३१।।
नभोनभश्च हि यथा नभस्यैर्जलदस्वनैः। बभञ्जुस्तु रथान्केचित्केचित्सम्मर्दिता रथैः।।३२।।

दैत्यगण युद्ध में भारी गदाएँ तथा छूरियाँ और कटारें लेकर प्रहार करने लगे। गदाओं की चोटों से टूटे-फूटे अंगोवाले, बाणों से टुकड़े-टूकड़े किये गये कुछ देवतागण बारम्बार पृथ्वीतल पर गिरने लगे और कुछ मृत्यु के मुख में चले गये। घोड़ों समेत रथों से तथा शीघ्र चलने वाले विमानों से अतिक्रुद्ध हुए वीरगण युद्ध में एक-दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे। रण के मैदान में आये हुए वीरगण ओठों को फड़काते हुए से रथों से रथों पर और पैदलों से पैदलों पर आक्रमण करा रहे थे। शब्द करते हुए उन दोनों सेनाओं के रथों के एक-दूसरे पर आक्रमण करते हुए ऐसा मालूम हो रहा था मानों भाद्रपद के बादलों के समूह परस्पर भिड़ गये हों, कुछ वीर तो रथों को ही तोड़ रहे थे और कुछ रथों की मार से मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे।।२८-३२।।

सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न सेकुश्चलितुं रथाः।
अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः।।३३।।

कुछ अन्य रथ आगे युद्ध भूमि के अवरुद्ध हो जाने के कारण आगे चलने में असमर्थ हो रहे थे, युद्ध में वीरगण एक-दूसरे को अपनी बाहुओं से घसीट-घसीट कर, पटक-पटक कर मारने लगे।।३३।।

संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः। अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हता युधि।।३४।।

चर्मधारण करने वाले कुछ वीरों के आभूषण शब्द कर रहे थे, कुछ अन्य वीरगण अस्त्रों से अत्यन्त घायल होकर रक्त वमन कर रहे थे।।३४।।

क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे। तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम्।।३५।।
देवदानवसङ्क्षुब्धं सङ्कुलं युद्धमाबभौ। तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम्।।३६।।

इस प्रकार युद्धभूमि में जल की भाँति रक्त बहाते हुए वे दानवगण सचमुच बादलों की भाँति

दिखाई पड़ रहे थे। अस्त्रों तथा शस्त्रों से संयुक्त, फेंकी और प्रहार की जाती हुई गदाओं से आकीर्ण, देवताओं तथा दानवों से संकुलित एवं क्षुब्ध वह युद्ध शोभित हो रहा था। देवताओं के हथियारों से सुशोभित वह दानव सैन्यरूपी महामेघ शोभित हो रहा था।।३५-३६।।

अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ। एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिः स दानवः।।३७।।
व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः।

एक-दूसरे की बाणवृद्धि से युद्ध रूप दुर्दिन (वर्षा काल) उपस्थित हो गया था। इसी बीच कालनेमि दानव युद्धभूमि में आगे निकला, उस समय वह क्षुब्ध समुद्र से वृद्धि को प्राप्त हुए बादल की भाँति शोभित हो रहा था।।३७.५।।

तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः।।३८।।
गात्रैर्नागगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः। क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः।।३९।।
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः। तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः।।४०।।
पर्वतादिव निष्क्रान्ता पञ्चास्या इव पन्नगाः।

उसके बिजली के समान चंचल दिखाई पड़ने वाली सिर की मालाओं से युक्त शरीर के अंगों से टकराकर हाथी तथा पर्वत के समान भीषण जलते हुए वज्र के बरसाने वाले बादल इधर-उधर छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे। क्रोध से श्वास खींचते हुए तथा भृकुटि के टेढ़े करने से पसीना बहने के साथ ही साथ उसके विकराल मुख से अग्नि की चिनगारियों से युक्त ज्वालाएँ निकलने लगीं, उसकी विशाल बाहुएँ आकाश में टेढ़ी-मेढ़ी होकर बढ़ने लगीं, वे उस समय ऐसी दिखाई पड़ रही थीं मानों पाँच मुख वाले सर्प पर्वत से निकल रहे हों।।३८-४०.५।।

सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि।।४१।।
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव।

उस दानव ने अपने अनेक प्रकार के अस्त्रों के समूहों से, धनुषों से तथा परिघों से आकीर्ण आकाश मण्डल को मानों उच्च पर्वतों से आच्छादित-सा कर दिया।।४१.५।।

सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ सङ्ग्राममलालसः।।४२।।
संध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः। उरुवेगप्रमथितैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः।।४३।।
अपातयद्देवगणान्वज्रेणेव महागिरीन्।

उस समय उसके वस्त्र वायु से हिल रहे थे, जिससे संग्राम का अभिलाषी वह दानव, रणभूमि में सायंकालीन धूप से प्रकाशित चट्टानों वाले साक्षात् सुमेरु पर्वत की भाँति दिखालाई पड़ रहा था। जंघों के वेग से तोड़े गये शैल शिखर के अग्रवर्ती वृक्षों से मार-मारकर देवताओं को वह इस प्रकार पृथ्वी पर सुला दिया जैसे वज्र से विशाल पर्वत तोड़े गये हों।।४२-४३.५।।

बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः।।४४।।

न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि। मुष्टिभिर्निहताः केचित्केचित्तु विदलीकृताः॥४५॥
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः।

कालनेमि द्वारा आहत अनेक प्रकार की छूरियों तथा कटारों से कटे-फटे केशों वाले देवगण युद्धभूमि में चलने में असमर्थ हो गये,मुष्टि के प्रहार से कुछ तो मर गये और कुछ टूट-फूटकर छिन्न-भिन्न हो गये, बड़े-बड़े सर्पों के साथ यक्षों और गन्धर्वों के यूथपति गिर पड़े।।४४-४५.५।।

तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना॥४६॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः। तेन शक्रः सहस्त्राक्षः स्पन्दितः शरबन्धनैः॥४७॥
ऐरावतगतः सङ्ख्ये चलितुं न शशाक ह। निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः॥४८॥

उस कालनेमि से डाराये गये देवगण युद्धभूमि में अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी बेहोशी के कारण कुछ भी करने में असमर्थ रहे। बाणों के बन्धनों से कपाँये गये सहस्त्रनेत्र इन्द्र भी रण में ऐरावत पर बैठे हुए इधर-उधर टस से मस तक नहीं हो सके। उस समय उनकी दशा निर्जल बादल के समान और निर्जल समुद्र के समान हो रही थी।।४६-४८।।

निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे। रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा॥४९॥
वित्तदोऽपि कृतः सङ्ख्ये निर्जितः कालनेमिना। यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणो रणे॥५०॥
याम्यामवस्थां सन्त्यज्य भीतः स्वां दिशमाविशत्।
स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषां च कर्म तत्॥५१॥

युद्ध में पाशरहित वरुण भी उस दानव से निर्व्यापार कर दिये गये थे। इच्छानुरूप स्वरूप धारण करने वाले दानव कालनेमि ने परिघों से मारकर वैश्रवण धनपति कुबेर को भी युद्ध में पराजित कर दिया। उस मृत्युदायक रण में सबको विनष्ट करने वाले यमराज भी पराजित कर दिये गये, वे भयभीत होकर अपनी दक्षिण दिशा में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार सभी लोकपालों को रण के मैदान से बाहर खदेड़ कर उनके कर्मों को उसने स्वयं सम्हाला।।४९-५१।।

दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा। स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शनम्॥५२॥
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत्।
चालयामास दीप्तांशु स्वर्गद्वारात्स भास्करम्॥५३॥

और चारों दिशाओं में अपने शरीर को चार भागों में विभक्त कर स्थापित किया। नक्षत्रों के विचरण करने योग्य दिव्य मार्ग में जाकर उसने राहु की अभिलषित चन्द्रमा की शोभा को हर कर उसके अधीन रहने वाले महान् साम्राज्य एवं कार्यों को भी अपने अधीन किया। स्वर्गद्वार में प्रदीप्त किरणों वाले भास्कर को अपने स्थान से विचलित कर दिया।।५२-५३।।

सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च। सोऽग्निं देवमुखं दृष्ट्वा चकाराऽऽत्ममुखाश्रयम्॥५४॥
वायुं च तरसा जित्वा चकाराऽऽत्मवशानुगम्।

उनके सायं एवं दिन आदि के रचने की शक्ति को स्वाधीन कर लिया। उसने अग्नि को सब देवताओं को मुखरूप देखकर उसे अपने ही मुख में कर लिया और वायु को पराजित कर अपने अधीन बना लिया।।५४.५।।

स समुद्रान्समानीय सर्वाश्च सरितो बलात्।।५५।।
चकाराऽऽत्ममुखे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः।
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः।।५६।।
स स्वयं भूरिवाऽऽभाति महाभूतपतिर्यथा। सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः।।५७।।

अपने अनुपम पराक्रम से सभी समुद्रों को तथा नदियों को बलपूर्वक अपने मुख में रख लिया। इस प्रकार नदियाँ उसके शरीर के अधीन हो गईं। आकाश और भूमि-सभी स्थलों पर वर्तमान जलराशि को अपने अधीन कर वह महाभूपति स्वयं उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा के समान शोभित हुआ। उस समय सारे लोग उससे व्याप्त थे, सभी जीवों को वह भय देने वाला था।।५५-५७।।

स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान्। स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः।।५८।।

इस प्रकार सभी लोकपालों के एकमात्र मूर्तमान रूप उस दानवराज ने जो चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य ग्रहपिण्डों से भी संयुक्त था, पर्वतों से सुरक्षित जगती तल स्थापित किया।।५८।।

पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः। पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवाप्यये।।
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम्।।५९।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९४५७।।

इस प्रकार युद्ध के मैदान में अग्नि और वायु के वेग के समान शक्तिमान् वह दानव कालनेमि सभी लोकों के उत्पत्ति-कर्त्ता परमेष्ठी ब्रह्मा के समान पद पर अवस्थित होकर शोभित हुआ। दानवगण उसकी स्तुति करने लगे, उस समय वह देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए ब्रह्मा के समान शोभित हो रहा था।।५९।।

।।एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१७७।।

अथ अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालनेमि का अमर्ष, विष्णु और कालनेमि का भीषण युद्ध, कालनेमि की मृत्यु, देवताओं की पुनः निजपद प्राप्ति

मत्स्य उवाच

पञ्च तं नाम्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा। वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया॥१॥

मत्स्य ने कहा–विरुद्ध कर्म करने के कारण उस दानव के वश में पाँच पदार्थ- वेद, धर्म, क्षमा, सत्य तथा भगवान् नारायण के आश्रय में रहने वाली लक्ष्मी–नहीं हुए॥१॥

स तेषामनुपस्थानात्सक्रोधो दानवेश्वरः। वैष्णवं पदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम्॥२॥

अतः उनकी अनुपस्थिति से वह दानवेश्वर कालनेमि क्रोध समेत विष्णुपद की प्राप्ति की इच्छा से नारायण के समीप गया॥२॥

स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम्। दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम्॥३॥
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम्। स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनं कश्यपं खगम्॥४॥

वहाँ जाकर उसने गरुड़ पर समासीन शंख, चक्र, गदाधारी, सजल बादल के समान कृष्णवर्ण भगवान् विष्णु को, जो विद्युत् के समान पीताम्बर धारण किये हुए गरुड़ पर शोभायमान होकर दानवों के विनाशार्थ अपनी सुन्दर गदा को घुमा रहे थे, देखा वहीं पर उसने सुन्दर आकृति, सुवर्ण के समान सुन्दर पंख वाले शिखायुक्त कश्यप के पुत्र आकाशगामी गरुड़ को भी देखा॥३-४॥

दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम्। दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः॥५॥

दैत्यों के विनाशार्थ स्वस्थचित्त अनुपम पराक्रमी भगवान् एवं गरुड़ को रण के मैदान में देखकर दानव ने खिन्न चित्त हो भगवान् की ओर कहा॥५॥

अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः। अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च॥६॥

'हम लोगों के पूर्वजों का यही प्राणनाशक शत्रु है, समुद्र में निवास करने वाले मधु एवं कैटभ का जीवन इसने ही नष्ट किया है॥६॥

अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते। अनेन संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः॥७॥

इसके साथ हम दानवों का वैर प्रसिद्ध है कि कभी शान्त नहीं है, आज ही युद्ध के मैदान में अनेक दानवों की इसने हत्या की॥७॥

अयं स निर्घृणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः। येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम्॥८॥

यह लोक में एक मात्र निर्मम एवं स्त्री और बालकों का संहार करने वाला शर्म रहित वीर है, इसने दानवों की स्त्रियों के केशों को उपारा है॥८॥

अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम्।
अनन्तो भोगिनामप्सु स्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः॥९॥
अयं स नाथो देवनामस्माभिर्व्यथितात्मनाम्।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः॥१०॥

यह स्वर्ग निवासी देवताओं का विष्णु एवं वैकुण्ठ है, सर्पों में इसका नाम अनन्त विख्यात है, यही सर्वप्रथम स्वयम् उत्पन्न होने वाला आद्यपुरुष है, यह हम लोगों के द्वारा व्यथित किये जाने वाले देवताओं का स्वामी है, इसके क्रोध का भाजन होकर हिरण्यकशिपु मारा गया॥९-१०॥

अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिताः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति विधौ हुतम्॥११॥
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम्। यस्य वक्त्रं प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे॥१२॥

इसकी छाया का आश्रय प्राप्त कर देवगण यज्ञों भाग लेते हैं और महर्षियों द्वारा दिये जाने वाले हवनीय द्रव्यों का, जो तीन प्रकार से अग्नि में डाला जाता है, उपभोग करते हैं। यही सभी देवशत्रुओं की मृत्यु का प्रमुख कारण कहा गया है, हमारे परिवार के लोग युद्ध में इसी के चक्र में प्रविष्ट हो गये हैं॥११-१२॥

अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः। सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु॥१३॥

प्रसिद्ध है कि देवताओं के कार्य के लिये यह युद्ध में जीवन की बाजी लगाकर युद्ध करता है और सूर्य के तेज के समान परम तेजस्वी अपने चक्र का शत्रुओं पर प्रयोग करता है॥१३॥

अयं स कालो दैत्यानां कालभूतः समास्थितः।
अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं प्राप्स्यति केशवः॥१४॥

यह दैत्यों का काल रूप है और काल ही होकर यहाँ स्थित है; किन्तु अब यह विष्णु अपने बीते हुये अच्छे समय का फल प्राप्त करेगा॥१४॥

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः। अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणयिष्यति॥१५॥

भाग्यवश मेरे ही सामने वह केशव आ गया है, अब तो मेरी बाहुओं से पिसकर यह मुझे ही प्रेम करेगा॥१५॥

यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे। इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम्॥१६॥

बड़ा अच्छा संयोग है कि आज युद्ध में मैं दानवों को भय देने वाले इस विष्णु का संहार कर अपने पूर्वजों की समृद्धि तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करूँगा॥१६॥

क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगांस्ततः। जात्यन्तरगतोऽप्येष बाधते दानवान्मृधे॥१७॥

इसके बाद शीघ्र ही देवताओं के समूहों का नाश करूँगा। अन्य जन्म धारण करके भी यह दानवों को पीड़ा पहुँचाता है॥१७॥

एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः। जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ॥१८॥

प्राचीन काल में यही अनन्त रूपधारी विष्णु पद्मनाभ होकर सृष्टि के प्रारम्भ में, जबकि समस्त जगत् एक समुद्र के रूप में था, उन मधु तथा कैटभ नामक दानवों का संहार किया था।।१८।।

द्विधा भूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्ध नरस्य च। पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा॥१९॥

अपने शरीर को दो भागों में एक भाग में मनुष्य तथा दूसरे में सिंह का स्वरूप धारण कर इसी ने मेरे पितर हिरण्यकशिपु का संहार पहले किया है।।१९।।

शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः। त्रील्लँलोकानुज्जहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः॥२०॥

देवताओं की माता अदिति ने इसी देवताओं के मंगलकारी को गर्भ में धारण किया था, इसी ने अपने तीनों डगों से तीनों लोकों का हरण किया था।।२०।।

भूयस्त्विदानीं सङ्ग्रामे सम्प्राप्ते तारकामये। मया सह समागम्य सह देवैर्विनङ्क्ष्यति॥२१॥

अब इस तारकामय संग्राम में यह पुनः आग गया है, अतः मेरे साथ भिड़कर अब देवताओं समेत नष्ट होगा।।२१।।

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे। वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत्॥२२॥

रण के मैदान में इस प्रकार की असह्य बातें करते हुए नारायण को अनेक प्रकार से धमकाते हुए उसने युद्ध करने की अभिलाषा प्रकट की।।२२।।

क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः। क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत्॥२३॥

असुरपति के इस प्रकार असह्य आक्षेपों को सुनकर श्री गदाधर भगवान् विष्णु अपनी अपार क्षमा की महिमा से तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए, प्रत्युत हँसते हुए बोले।।२३।।

अल्पं दर्पबलं दैत्य स्थिरमक्रोधजं बलम्। हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद्भाषसे क्षमाम्॥२४॥

दैत्य! दर्प का बल तो बहुत अल्पकाल तक टिकता है, बिना क्रोध का जो बल होता है, वही स्थित बल है। क्षमा को छोड़कर जो तुम ऊटपटाँग की बातें कर रह हो, उसी गर्व के कारण अब तुम्हारा विनाश होगा।।२४।।

अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम्। न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः॥२५॥

मेरी समझ में तुम अधीर दिख रहे हो, तुम्हारी इस वाक्शक्ति को धिक्कार है, जहाँ पर पुरुष नहीं रहते वहाँ स्त्रियां भी डींग हाँका करती हैं।।२५।।

अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिणम्।
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्त्वाकः स्वस्तिमान्व्रजेत्॥२६॥

दैत्य! अपने पूर्वजों के अनुचित मार्ग पर तुम्हें भी चलते देख रहा हूँ, कौन ऐसा है जो ब्रह्मा की स्थापित की गई सेतु रूप कार्यप्रणाली को तोड़कर कुशलपूर्वक रह सकता है।।२६।।

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम्।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः॥२७॥

देवताओं के कार्यों की हानि करने वाले तुम्हें मैं आज ही नष्ट करूँगा! और सभी देवताओं को अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करूँगा॥२७॥

एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान्॥२८॥

रण में श्रीवत्स चिह्न से विभूषित भगवान् के ऐसा कहने पर दानव ने हँसकर अपने हाथों में हथियारों को धारण किया॥२८॥

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे। क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत्॥२९॥

रण में अति क्रोध के कारण द्विगुणित लाल नेत्रों से अपने सौ हाथों में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण कर उसने विष्णु की छाती पर प्रहार किया॥२९॥

दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः। उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन्रणे॥३०॥

अन्य दानवों ने भी मय और तारकासुर को आगे कर अति तीक्ष्ण छूरी तथा कटारों से विष्णु भगवान् पर आघात किया॥३०॥

स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः। न चचाल ततो युद्धेऽकम्पमान इवाचलः॥३१॥

सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युक्त उन अति बलवान् दैत्यों से आहत किये गये भगवान् विशाल पर्वत की भाँति रण से तनिक भी टस से मस नहीं हुए॥३१॥

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः। सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः॥३२॥
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि। कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमविशत्॥३३॥

गरुड़ द्वारा आहत महाबलवान् कालनेमि ने क्रुद्ध होकर तमाम बूते से अपनी सभी बाहुओं द्वारा अति विशाल भयानक तथा जलती हुई गदा को उठाकर गरुड़ के ऊपर प्रहार किया। दैत्य के उस अद्भुत कर्म को देख कर विष्णु विस्मय में आ गये॥३२-३३॥

यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्ध्नि सा गदा। सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः॥३४॥
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे। व्यवर्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः॥३५॥

जब उसने गरुड़ के ऊपर उस भीषण गदा से प्रहार किया, तब गरुड़ को अति व्यथित तथा अपने को भी घायल देखकर क्रोध से लाल नेत्र हो भगवान् विष्णु ने अपने चक्र को हाथ में सम्हाला और वेगपूर्वक चलते हुए गरुड़ को साथ ले रणभूमि में आगे बढ़े॥३४-३५॥

भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश।
प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः॥३६॥

उनकी भुजाएँ दशों दिशाओं में फैल गयीं। इस प्रकार केशव ने आकाश तथा पृथ्वी को आच्छादित कर लिया।।३६।।

ववृधे च पुनर्लोकान्क्रान्तुकाम इवौजसा। तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले।।३७।।
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम्। सर्वान्किरीटेन लिहन्साभ्रमम्बरमम्बरैः।।३८।।
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः।
स सूर्यकरतुल्याभं सहस्त्रारमरिक्षयम्।।३९।।

और पुनः अपने परम तेज से सभी लोकों को अतिक्रान्त करते हुए से रण में बढ़े। आकाश मण्डल में असुरपतियों को तर्जित करने के लिए बढ़ते हुए मधुसूदन भगवान् की ऋषियों तथा गन्धर्वों ने स्तुति की। उस समय भगवान् विष्णु ने अपने किरीट तथा वस्त्रों से बादलों समेत आकाश को छूते हुए पैरों से पृथ्वी को आक्रान्त कर, बाहुओं से दिशाओं को व्याप्त कर अपने उस सुदर्शन चक्र को धारण किया, जो सूर्य की किरणों के समान चमक रहा था, शत्रुओं का नाश करने वाला था, जिसमें एक सहस्त्र अरे लगे हुये थे।।३७-३९।।

दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम्। सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम्।।४०।।

भीषण अग्नि की भाँति घोर होते हुए भी वह सुदर्शन (देखने में सुन्दर) था, सुवर्ण की धूलि से सुशोभित तथा वज्र की नाभि से युक्त था, शत्रुओं को भय देने वाला था।।४०।।

मेदोस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसम्भवैः। अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम्।।४१।।

उसमें दानवों के शरीर से निकले हुए मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रक्त लगे हुये थे, उसकी उपमा किसी अन्य अस्त्र से नहीं की जा सकती। उसके मण्डल के चारों ओर छूरे के समान तीक्ष्ण धारें थी।।४१।।

स्त्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम्। स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम्।।४२।।
महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्। क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः।।४३।।

उसमें मालायें तथा हार सुशोभित हो रहे थे, वह इच्छानुकूल रूप धारण करने वाला तथा अभीसिप्त स्थान पर जाने वाला था। सभी शत्रुओं को भय प्रदान करने वाले उन श्रेष्ठ चक्र को स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने बनाया था, महर्षियों के क्रोधों से आविष्ट तथा युद्ध में सर्वदा विजय प्राप्त कर गर्व करने वाला था। उसके प्रहार करने पर सभी स्थावर जंगम जीव भयभीत हो जाते थे।।४२-४३।।

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यन्ति महामृधे। तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा।।४४।।

महासमर में जब उसका प्रहार होता था, तब मांस खाने वाले जीव तृप्ति प्राप्त करते थे, इस प्रकार सूर्य के समान अति तेजस्वी उस चक्र के सभी कर्म अनुपम एवं उग्र थे।।४४।।

चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः। स मुष्णन्दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा।।४५।।
चिच्छेद बाहुं चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः। तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै।।४६।।

तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः।

उस भीषण सुदर्शन चक्र को उठाकर गदाधर भगवान् ने क्रोध से जलते हुए की भाँति रणभूमि में अपने तेज से दानव के तेज को अस्त करते हुए प्रहार किया और कालनेमि के बाहु को काट डाला। तदनन्तर उस दैत्य के अग्नि के समान तेजस्वी भीषण अट्टहास करते हुए सौ मुखों को भी हरि ने काट डाला।।४५-४६.५।।

स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः।।४७।।
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः।

किन्तु सिर और बाहु से विहीन होकर भी वह दानव रण के मैदान से विचलित नहीं हुआ। उसका सिर रहित कबन्ध (धड़) रण में डाल रहित वृक्ष की भाँति खड़ा ही रह गया।।४७.५।।

संवितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम्।।४८।।
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम्। स तस्य देहो विमुखो विबाहुः खात्परिभ्रमन्।।४९।।
निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतलम्।
तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा।।५०।।
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्। अपरे ये तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः।।५१।।
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे। कांश्चित्केशेषु जग्राह कांश्चित्कण्ठेषु पीडयन्।।५२।।

तदनन्तर गरुड़ ने अपने दोनों पंखों को फैलाकर अपने वेग को वायु के समान कर अपनी छाती से धक्का मारकर कालनेमि को नीचे गिरा दिया। आकाश से गिराया गया उस दानव का सिर तथा बाहु रहित शरीर पृथ्वी तल को क्षुभित करते हुए नीचे गिरा। उसके गिरने पर ऋषियों समेत देवगण भगवान् वैकुण्ठ (विष्णु) के समीप आकर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए उनकी पूजा करने लगे। भगवान् के इस अद्भूत पराक्रम को देखने वाले अन्य दैत्यगण उनकी भुजाओं से अवरुद्ध होकर रणभूमि में चल भी नहीं सके, भगवान् ने किन्हीं के केशों को पकड़ कर पटका, किन्हीं के कण्ठों पर आघात कर पीड़ा पहुँचाई।।४८-५२।।

चकर्ष कस्यचिद्वक्त्रं मध्येऽगृह्णादथापरम्। ते गदा चक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः।।५३।।
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गाः निपेतुर्धरणीतले। तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः।।५४।।
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वाकृतकर्मा गदाधरः।

किसी के मुख को फाड़ डाला, किसी दूसरे की कमर तोड़ दी, इस प्रकार भगवान् की भीषण गदा और उस भयंकर चक्र से जलाये गये दानवगण रणभूमि में निर्जीव होकर गिरने लगे। आकाश से सभी अंगों के कट-कट कर गिर पड़ने के कारण सभी दानव पृथ्वी पर गिरने लगे। इस प्रकार उन सभी असुरों के मारे जाने पर पुरुषोत्तम भगवान् इन्द्र के मनोवांछित प्रिय कार्य को सम्पन्न कर कृतार्थ हो गदा धारण कर रणभूमि में अवस्थित हुए।।५३-५४.५।।

तस्मिन्विमर्दे सङ्ग्रामे निवृत्ते तारकामये॥५५॥
तं देशमाजगामाऽऽशु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥५६॥

उस भीषण तारकमय संग्राम के समाप्त हो जाने पर उस युद्ध के मैदान में तुरन्त ही सभी ब्रह्मर्षियों, गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूहों को साथ लेकर देवाधिदेव लोकपितामह ब्रह्मा जी आये॥५५-५६॥

देवदेवो हरिं देवं पूजयन्वाक्यमब्रवीत्। कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम्॥
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः॥५७॥

और विष्णु भगवान् का समादर करते हुए देव बोले! आपने देवताओं का महान् कार्य किया है, उनके काँटों को आपने निकाल कर फेंक दिया। दैत्यों के इस संहार से हम सभी को परमसन्तोष प्राप्त हुआ है॥५७॥

योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमिर्महासुरः।
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते॥५८॥

विष्णो! आपने जिस महान् असुर कालनेमि का संहार किया है, आपको छोड़कर उसका रण में संहार करने वाला कोई अन्य नहीं था॥५८॥

एष देवान्परिभवँल्लोकांश्च सचराचरान्। ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रति गर्जति॥५९॥

वह दानव चराचर सभी प्राणियों का अपमान करके देवताओं को जीतकर ऋषियों का संहार कर मुझे भी डांट-फटकार सुना रहा था॥५९॥

तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा। यदयं कालकल्पस्तु कालनेमिर्निपातितः॥६०॥
तदागच्छ स्वभवनं गच्छामि दिवमुत्तमम्। ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः॥६१॥

सो अब आपके इस काल के समान भीषण कालनेमि के वध रूपी अति उत्तम कार्य से हम लोग सन्तुष्ट हो गये, तो अब आईये, अब हम अपने उत्तम आवास स्थान स्वर्ग को चल रहे हैं, वहाँ पर सभा में उपस्थित हुए ब्रह्मर्षिगण आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं॥६०-६१॥

कं चाहं तव दास्यामि वरं वरवतांवर। सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान्॥६२॥

वरदान देने वालों में श्रेष्ठ! मैं आपको कौन-सा वरदान दूँ? तुम तो स्वयं देवताओं तथा दैत्यों सभी को वरदान देने वाले हो॥६२॥

निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम्।
अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने॥६३॥
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः। देवाञ्छक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा॥६४॥

विष्णो! अब इस त्रैलोक्य को, जिसमें से असुररूपी कण्टक दूर कर दिये गये हैं। इसी युद्ध के मैदान से महात्मा इन्द्र को वापस कर दीजिये। इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर अव्यय भगवान् विष्णु ने इन्द्र प्रभृति सभी प्रमुख देवताओं से शान्तिपूर्ण वाणी में कहा।।६३-६४।।

विष्णुरुवाच

शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः।
श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम्।।६५।।

भगवान् ने कहा–जितने भी देवता यहाँ मेरे पास आये हुए हैं, वे सभी इन्द्रादि प्रमुख देवगण सावधानतया मेरी बातों को ध्यान से सुनें।।६५।।

अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः। दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः।।६६।।
अस्मिन्महति सङ्ग्रामे दैतयौ द्वौ विनिःसृतौ।
विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः।।६७।।

हम सभी लोगों ने इस संग्राम में इन्द्र से भी बलवान् पराक्रमशाली कालनेमि प्रभृति दैत्यों का संहार तो कर दिया; किन्तु इस घोर संग्राम से दो दैत्य तो भाग गये। उनके नाम दैत्येन्द्र विरोचन तथा महाग्रह राहु हैं।।६६-६७।।

स्वां दिशं भजतां दिशं वरुण एव च। याम्यां यमः पालयितामुत्तरां च धनाधिपः।।६८।।

अब इन्द्र अपनी दिशा को चले जायें, वरुण भी अपनी दिशा का आश्रय लें, यमराज दक्षिण का पालन करें तथा धनाध्यक्ष कुबेर उत्तर दिशा का पालन करें।।६८।।

ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः। अब्दमृतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह।।६९।।

नक्षत्रों को साथ लेकर चन्द्रमा, जैसे कि पहले रहा करते थे अपने स्थान को चले जायें, सूर्य अपने अयनों के साथ प्रत्येक ऋतुओं में वर्तमान होकर वर्षों का भोग करें।।६९।।

आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः। हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा।।७०।।

सदस्यों द्वारा अभिपूजित होकर देवगण यज्ञों में अपना भाग ग्रहण करें, ब्राह्मण लोग वेदानुकूल विधि से अग्नि में हवन करें।।७०।।

देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः।
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्।।७१।।

देवता लोग अग्निहोम, से, महर्षिगण अपने स्वाध्याय से पितरगण श्राद्ध को प्राप्त कर सुखपूर्वक सन्तोष लाभ करें।।७१।।

वायुश्चस्तु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः।
त्रींस्तु वर्णांश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चाऽऽत्मजैर्गुणैः।।७२।।

वायु अपने तीनों मार्गों से बहते रहें, अग्नि अपने गुणों से तीनों वर्णों को तथा तीनों लोकों को तृप्त करते हुए प्रकाशित हों।।७२।।

क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः। दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक्पृथक्।।७३।।

दीक्षा देने योग्य ब्राह्मणों की देखरेख में यज्ञों की प्रवृत्ति बढ़े। यज्ञ करने वाले लोग पृथक्-पृथक् दक्षिणाओं के वितरण करने का प्रबन्ध करें।।७३।।

गां तु सूर्यो रसान्सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु।
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्व एव स्वकर्मभिः।।७४।।

सूर्य पृथ्वी को, चन्द्रमा रसों को, वायु प्राणधारियों के प्राणों को तृप्त करते हुए अपने-अपने योग्य कर्मों में प्रवृत्त हों।।७४।।

यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः। त्रैलोक्यमातरः सर्वा समुद्रं यान्तु सिन्धवः।।७५।।

महेन्द्र और मलय प्रभृति पर्वतों से निकलने वाली, तीनों लोकों की माता रूप सभी नदियाँ, जैसे पूर्वकाल में अवस्थित थीं-उसी क्रम से समुद्रों में प्रविष्ट हों।।७५।।

दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः। स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।।७६।।

देवगण! दैत्यों से भय करना छोड़ दो, तुम लोगों का कल्याण हो अब मैं सनातन ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ।।७६।।

स्वगृहे स्वर्गलोके वा सङ्ग्रामे वा विशेषतः।
विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा दानवाः।।७७।।

छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा। सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवं धनम्।।७८।।

आप लोग अपने-अपने घरों में, स्वर्ग लोक में-विशेषतया संग्राम में-कभी भी दैत्यों का विश्वास न करें; क्योंकि ये दानव सर्वथा क्षुद्र विचार रखने वाले हैं, छिद्रों में प्रहार करने वाले हैं, इनकी अवस्थिति कभी निश्चित नहीं रहती। आप लोगों जैसे सौम्य-सरल स्वभाव वाले देवताओं का तो सरलता ही परमधन है'।।७७-७८।।

एवमुक्त्वा सुरगणान्विष्णुः सत्यपराक्रमः। जगाम ब्रह्मणा सार्धं स्वलोकं तु महायशाः।।७९।।

देवताओं से इस प्रकार की बातें कर महायशस्वी, सत्य, पराक्रमी भगवान् विष्णु ब्रह्मा के साथ लोक को चले गये।।७९।।

एतदाश्चर्यमभवत्सङ्ग्रामे तारकामये। दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृष्टवान्।।८०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावसंग्रहो नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९५३७।।

मत्स्य ने कहा- तुमने जिस तारकामय संग्राम के बारे में मुझसे प्रश्न किया था, वह आश्चर्यकारी दानवों का और विष्णु का संग्राम इसी प्रकार सम्पन्न हुआ था।।८०।।

।।एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१७८।।

अथ नवसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अन्धक वध वर्णन

ऋषय ऊचुः

श्रुतः पद्मोद्भवस्तात विस्तरेण त्वयेरितः। समासाद्भवमाहात्म्यं भैरवस्याभिधीयताम्॥१॥

ऋषियों ने कहा-तात! तुम्हारे द्वारा कहे गये पद्मोद्भव का विस्तृत वृत्तान्त तो हम लोग सुन चुके, अब संक्षेप में भैरव भव का माहात्म्य हम लोगों को सुनाईये।।१।।

सूत उवाच

तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम्। आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः॥२॥
तपसा महता युक्तो ह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम्।

सूत ने कहा-ऋषिगण! उन देवाधिदेव भैरव के उत्तम चरित्र को भी तुम लोग सुनो। प्राचीन काल में अन्धक नामक अंजन के समूह के समान दिखाई पड़ने वाला एक दैत्य था, जो अपनी अनुपम तपस्या के कारण स्वर्गवासियों द्वारा नहीं मारा जा सका।।२-२.५।।

स कदाचिन्महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम्॥३॥
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे। तस्य युद्धं तदा घोरमभवत्सह शम्भुना॥४॥

उस दैत्य ने एक बार पार्वती समेत क्रीड़ा करते हुए भगवान् महादेव को देखकर पार्वती को हरण करने का उपक्रम किया, तब शंभु के साथ उसका घोर संग्राम हुआ।।४।।

अवन्तिविषये घोरे महाकालवनं प्रति। तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः॥५॥
मुमुचे बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि तत्। रुद्रबाणाधिनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु॥६॥
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः।

अवन्ती प्रान्त में महाकाल नामक वन है। उसी वन के पास वह घोर युद्ध हुआ था। उस भयानक युद्ध में अन्धक द्वारा अति दुःखित होकर रुद्र भगवान् शंकर ने अत्यन्त उग्र पाशुपत नामक अस्त्र का प्रयोग किया। रुद्र के बाण के आघात से अन्धक के शरीर से जो रक्तपात हुआ, उससे सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में अन्धकों की उत्पत्ति हुई।।५-६.५।।

तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः॥७॥
बभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
एवं मायाविनं दृष्ट्वा तं च देवस्तदाऽन्धकम्॥८॥
पानार्थमन्धकास्तस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा।

उनके फाड़े जाने पर जो रक्त निकला फिर उससे भी हुए, जो अत्यन्त भयानक दिखाई पड़े रहे थे। मतलब यह कि इस प्रकार उन उत्पन्न होने वाले अन्धकों से अन्य अन्धक उत्पन्न हुए। उनसे समस्त जगन्मण्डल आकीर्ण हो गया, बढ़ते हुए उस मायावी अन्धक को देखकर भगवान् शंकर ने उसके रक्त को पान करने के लिए अनेक माताओं की सृष्टि की।।७-८.५।।

माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मालिनी तथा॥९॥
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै नैर्ऋती तथा।
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी॥१०॥
वाराही नारसिंही च वैष्णवी च चलच्छिखा।
शतानन्दा भगानन्दा पिच्छिला भगमालिनी॥११॥
बला चातिबला रक्ता सुरभी मुखमण्डिका।
मातृनन्दा सुनन्दा च बिडाली शकुनी तथा॥१२॥
रेवती च महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका। जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता॥१३॥
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च। सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा॥१४॥
अदितिश्च दितिश्चैव मारी वै मृत्युरेव च। कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकी च घटोदरी॥१५॥
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटसी तथा॥१६॥
खेटा सुलोचना धूम्र एकवीरा करालिनी।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटी कुक्कुटी तथा॥१७॥
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा। सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभी तथा॥१८॥
भ्रुकुटी बहुपुत्री च प्रेतयाना विडम्बिनी। क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरसा दनुः॥१९॥
उषा रम्भा मेनका च सलिला चित्ररूपिणी। स्वाहा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठा कपर्दिनी॥२०॥
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा।
मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी॥२१॥
कुमारी रोचना भीमा सदाहा सा मदोद्धता।
अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णी महासुरी॥२२॥

केशिनी शङ्खिनी लम्बा पिङ्गला लोहितामुखी।
घण्टारवाऽथ दंष्ट्राला रोचना काकजङ्घिका॥२३॥
गोकर्णिकाऽजमुखिका महाग्रीवा महामुखी।
उल्कामुखी धूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी॥२४॥
मोहना कल्पना क्ष्वेला निर्भया बाहुशालिनी।
सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोका नन्दिनी तथा॥२५॥
ज्योत्स्नामुखी च रभसा निकुम्भा रक्तकल्पना।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा॥२६॥
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला। अबाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती॥२७॥
चित्ता चित्तचला कोणा शान्तिकाऽघविनाशिनी।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी॥२८॥
स्खलन्ती दीर्घकेशी च सुचिरा सुन्दरी शुभा।
अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनी च तथाऽशनी॥२९॥
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी।
सामान्य हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी॥३०॥
शङ्कुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी। हूङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी॥३१॥
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वलामुखी तथा।
एताश्चान्याश्च देवेशः सोऽसृजन्मातरस्तदा॥३२॥

माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, सौपर्णी, वायव्या, शाक्री, नैर्ऋती, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिच्छिला, भगमालिनी, बला, अतिबला, रक्ता, सुरभि, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, बिडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, काली, महाकाली, दुती, सुभगा, दुर्भगा, कराली, नन्दिनी, अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी भुशुण्डी, शांकरी, चण्डा, लांगली, कुटसी, खेटा, सुलोचना, धूम्रा, एकवीरा, करालिनी, विशालदंष्ट्रिणी, श्यामा, त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उन्मत्तोदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भ्रुकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना, विडम्बनी, क्रौंचा, शैलमुखी, विनता, सुरसा, दनु, उषा, रम्भा, मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा, कपर्दिनी, माया, विचित्ररूपा, कामरूपा, संगमा, मुखेविला, मंगला, महानासा, महामुखी, कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालपर्णी, कुंभपर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, लोहितामुखी, घण्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काकजंघिका, गोकर्णिका, अजमुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, उल्कामुखी, धूमशिखा,

कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कल्पना, क्ष्वेला, निर्भया, बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका, नन्दिनी, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निकुम्भा, रक्तकल्पना, अविकारा, महाचित्रा, चन्द्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातंगी, लम्बमेखला, अबाला, वञ्चना, काली, प्रमोदा, लाङ्गलावती, चित्ता, चित्तचला, कोणा, शान्तिका, अघविनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बसटा, विसटा, वासचूर्णिनी, स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, आशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, शंकुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी, हुँकारी, रुद्रसुसटा, रुद्रेशी, भूतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी- तथा इसके अतिरिक्त अनेक बहुतेरी मातृकाओं की देवाधिदेव ने उस समय सृष्टि की।।९-३२।।

अन्धकानां महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा। ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः।।३३।।

उत्पन्न हुई इन महाभयानक मातृकाओं ने उन अन्धकों के रक्त का पान किया और परमतृप्ति का लाभ किया।।३३।।

तासु तृप्तासु सम्भूता भूय एवान्धकप्रजाः। अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः।।३४।।
ततः स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः। जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम्।।३५।।

किन्तु उनके तृप्त हो जाने के बाद भी पुनः प्रचुर संख्या में अन्धकों के सन्तान उत्पन्न हुए। शूल, मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रों समेत इन अन्धकों के प्रहार करने से महादेव अति व्यथित हुए और अन्धकों द्वारा व्याकुल चित्त होकर वे अजन्मा भगवान् वासुदेव की शरण में गये।।३४-३५।।

ततस्तु भगवान्विष्णुः सृष्टवाञ्शुष्करेवतीम्।
या पपौ सकलं तेषामन्धकानामसृक्क्षणात्।।३६।।

शंकर को शरण में आया देख भगवान् विष्णु ने शुष्करेवती नामक एक देवी की उत्पत्ति की, जिसने क्षण भर में ही उन समस्त असुरों के रक्त को पान कर लिया।।३६।।

यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम्।
तथा तथाऽधिकं देवीं संशुष्यति जनाधिप।।३७।।

राजन्! ज्यों-ज्यों उन अंधकों के शरीर से रक्त को देवी ने पान किया, त्यों-त्यों वह अधिक सूखती हुई सी दिखाई पड़ने लगीं।।३७।।

पीयमाने तया तेषामन्धकानां तथाऽसृजि।
अन्धकास्तु क्षयं नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा।।३८।।

उसके रक्त को पान कर लेने के बाद सभी अन्धकों को त्रिपुरारि शंकर ने विनष्ट कर दिया।।३८।।

मूलान्धकं तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक्।
चकार वेगाच्छूलाग्रे स च तुष्टाव शङ्करम्।।३९।।

अन्ततः जब त्रिलोक को धारण करने वाले भगवान् शंकर ने अति पराक्रम से उस मुख्य अन्धक को वेगपूर्वक अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर रख लिया, तब उसने शंकर की स्तुति की।।३९।।

अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः। सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च।।४०।।

वह प्रमुख अन्धक महाबलवान् था, उसके ऊपर प्रसन्न होकर शंकर ने उसे सर्वदा अपने समीप में रहने के लिए नियुक्त किया और गणेश का पद समर्पित किया।।४०।।

ततो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन्। भगवन्भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषान्।।
त्वत्प्रसादाल्ज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि।।४१।।

तदनन्तर उन सभी मातृकाओं ने शंकर से कहा- 'भगवन्! हम सब तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर इस समस्त जगत् को-देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्यों समेत-खा जायेंगी, अतः इसके लिए हमें आज्ञा प्रदान कीजिए।।४१।।

शङ्कर उवाच

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः।
तस्माद्घोरादभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम्।।४२।।

शंकर ने कहा-आप लोगों को समस्त प्रजा की रक्षा करनी चाहिए न कि विनाश। अतः शीघ्र ही इस भयंकर अभिप्राय से अपने-अपने मन को लौटा लीजिये।।४२।।

इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा। भक्षयामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम्।।४३।।

शंकर की ऐसी बात का उन लोगों ने अनादर कर दिया और अत्यन्त उग्र स्वरूप होकर चराचर तीनों लोकों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया।।४३।।

त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै। नृसिंहमूर्तिं देवेशं प्रदध्यौ भगवाञ्छिवः।।४४।।

इस प्रकार उन मातृगणों द्वारा खाये जाते हुए त्रैलोक्य को देखकर भगवान् शंकर ने नरसिंह स्वरूप उन देवाधिदेव भगवान् का ध्यान किया।।४४।।

अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम्। दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम्।।४५।।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम्। कल्पान्तमारुतक्षुब्धं सप्तार्णवसमस्वनम्।।४६।।

जो कभी मृत्यु को नहीं प्राप्त होते, जिनका प्रारम्भ नहीं, जो सभी लोकों के उत्पन्न करने वाले थे। दैत्यपति हिरण्यकशिपु की छाती फाड़ने के कारण उससे निकले हुए रक्त से उनके भीषण नाखून रंगे हुये थे, उनकी जीभ बिजली की भाँति लपलपा रही थी, उनके दाँत महाभयानक थे, कंधे पर केसर का जाल शोभायमान था, वे प्रलयकालीन वायु की भाँति अति क्षुभित हुए दिख रहे थे, उनका भीषण स्वर सातों समुद्रों के भयानक स्वरों की भाँति था।।४५-४६।।

वज्रजीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम्। मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम्।।४७।।

नख वज्र के समान अतिपुष्ट तथा तीक्ष्ण थे, भीषण मुख कान तक फैला हुआ था, आँखें सुमेरु पर्वत पर उदित हुए प्रातः उदीत कालीन सूर्य के समान तेजोमयी थीं।।४७।।

हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम्। नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम्।।४८।।

आकृति हिमवान पर्वत के शिखर के समान थी, मुख की शोभा सुन्दर दाँतों की श्वेतता से अधिक बढ़ रही थी। जो भीषण नख की क्रोधाग्नि की ज्वाला तथा केसरों से युक्त थे।।४८।।

बद्धाङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम्। श्रेणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम्।।४९।।

जिनके विशाल शरीर पर बँधा हुआ अंगद, सुन्दर मुकुट, हार तथा केयूर विराजमान हो रहे थे, कटि प्रदेश में अति विस्तृत सुवर्णमय कमर की करधनी भी सुशोभित थी।।४९।।

नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम्। तेजसाऽऽक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसङ्कुलम्।।५०।।

नीले कमल की पंखुड़ियों की भाँति दो नीले वस्त्र विराजित हो रहे थे, अपने-अपने अनुपम तेज से जिन्होंने निखिल ब्रह्माण्ड को आक्रान्त-सा कर लिया था।।५०।।

पवनभ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम्। आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः।।५१।।

हवन को जलाती हुई अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के समान देदीप्यमान जिनकी केसर पवन द्वारा इधर-उधर हिल रही थी, जल के भँवरों के समान घुँघराले शरीर के बालों से जो संयुक्त थे।।५१।।

सर्वपुष्पविचित्रां च धारयन्तं महास्रजम्। स ध्यातमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम्।।५२।।

जिन्होंने कण्ठ में सभी चित्र-विचित्र रंग वाले पुष्पों की बनाई हुई मनोरम माला धारण की थी।' शिव को ध्यान करते ही भगवान् ने अपना दर्शन दिया।।५२।।

यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रेण धीमता। तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः।।५३।।
प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः।।५४।।

परम बुद्धिमान् रुद्र ने जिस प्रकार के स्वरूप का ध्यान किया था, उसी प्रकार के देवताओं द्वारा न देखे जाने योग्य भीषण स्वरूप से संयुक्त होकर भगवान् ने अपना दर्शन उन्हें दिया। दर्शन पाते ही शंकर जी ने हाथ जोड़कर देवाधिदेव की स्तुति की।।५३-५४।।

शङ्कर उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर। दैत्यनाथसृजापूर्णनखशुक्तिविराजित।।५५।।
ततः सकलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह। नतोऽस्मि पद्मनाभ त्वां सुरशक्रजगद्गुरो।।५६।।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ। सहस्त्रयमसङ्क्रोध सहस्त्रेन्द्रपराक्रम।।५७।।

शंकर ने कहा-जगत्स्वामी नरसिंह शरीर धारण करने वाले! दैत्यपति हिरण्यकशिपु के रक्त से सम्पूर्ण नख को रंजित करने वाले! पद्मनाभ सुवर्ण के समान शरीरधारी, इन्द्रादि देवताओं समेत

समस्त जगत् के गुरो! युगान्त के मेघों की भाँति भीषण स्वर करने वाले! करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान्! सहस्त्र यमराज के समान अति क्रुद्ध! सहस्त्र इन्द्र जितने पराक्रमी।।५५-५७।।

सहस्त्रधनदस्फीत सहस्त्रवरुणात्मक। सहस्त्रकालरचित सहस्त्रनियतेन्द्रिय।।५८।।

सहस्त्र कुबेर के समान शोभायमान! सहस्त्र वरुण की भाँति पराक्रमी! सहस्त्रों काल की भाँति विनाश करने वाले! सहस्त्रों इन्द्रियजित् महर्षियों के समान मन को स्ववश रखने वाले।।५८।।

सहस्त्रभूर्महाधैर्य सहस्त्रानन्तमूर्तिर्मन्। सहस्त्रचन्द्रप्रतिम सहस्त्रग्रहविक्रम।।५९।।

सहस्त्रों बार उत्पन्न होने वाले, महाधैर्यशालिन्! सहस्त्रों, असंख्य मूर्ति धारण करने वाले! सहस्त्रों चन्द्रमा के समान शोभायमान, सहस्त्रों ग्रहों के समान पराक्रमी।।५९।।

सहस्त्ररुद्रतेजस्क सहस्त्रब्रह्मसंस्तुत। सहस्त्रबाहुवेगोग्र सहस्त्रास्यनिरीक्षण।।
सहस्त्रयन्त्रमथन सहस्त्रवधमोचन।।६०।।

सहस्त्र रुद्र के समान तेजस्वी! सहस्त्रों ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाने वाले! सहस्त्रबाहु अति उग्र एवं वेगवान्, सहस्त्रों मुख तथा नेत्र धारण करने वाले! सहस्त्रों यन्त्र के समान नाश करने वाले! सहस्त्रों का वध एवं मोक्ष करने वाले।।६०।।

अन्धकस्य विनाशाय याः सृष्टा मातरो मया।
अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्युद्यताः प्रजाः।।६१।।

मैंने अन्धकों के विनाश के लिए जिन मातृकाओं की सृष्टि की थी, सबों ने मेरी निषेधाज्ञा का अनादर कर प्रजा का भक्षण करना आरम्भ कर दिया है।।६१।।

कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित। स्वयं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिकारये।।६२।।

अपराजित! उनकी सृष्टि करके अब मैं संहार नहीं सक सकता, स्वयं निर्माण करके उनका विनाश भला कैसे कर सकता हूँ ?।।६२।।

एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः। ससर्ज देवो जिह्वायास्तदा वागीश्वरीं हरिः।।६३।।

रुद्र के ऐसा करने पर नरसिंह रूपधारी महनीय आत्मा भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम जिह्वा से वागीश्वरी देवी की सृष्टि की।।६३।।

हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी।
अस्थिभ्यश्च तथा काली सृष्टा पूर्वं महात्मना।।६४।।

इसी प्रकार हृदय से माया का, गुह्य प्रदेश से भवमालिनी का तथा हड्डियों से उस काली की सृष्टि की।।६४।।

यया तद्रुधिरं पीतमन्धकानां दुरात्मनाम्।
या चास्मिन्कथिता लोके नामतः शुष्करेवती।।६५।।

उसी काली ने उस दुरात्मा अन्धकों के रक्त का पान किया था और वही इस लोक में शुष्करेवती नाम से प्रसिद्ध है।।६५।।

द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु।।६६।।
सर्वास्तास्तु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च। त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्त्ववशङ्करी।।६७।।
तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी। शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसङ्कर्षणी तथा।।६८।।
इत्येताः पृष्ठगा राजन्वागीशानुचराः स्मृताः।

तदनन्तर सुदर्शन चक्रधारी विष्णु ने अपने अंगों से बत्तीस मातृकाओं का निर्माण किया, उन बत्तीसों के नामों का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो उस सब देवियों के नाम, महाभाग्यशालिनी घण्टाकर्णी, त्रैलोक्यमोहिनी, पुण्य देने वाली सर्वसत्त्ववशंकरी, चक्रहृदया, व्योमचारिणी, लेखनी और कालसंकर्षिणी। हे राजन्! ये सब देवियाँ वागीश की अनुचरी तथा पृष्ठगामिनी सुनी गई।।६६-६८.५।।

सङ्कर्षणी तथाऽश्वत्था बीजभावाऽपराजिता।।६९।।
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका। इति देव्यष्टकं राजन्मायानुचरमुच्यते।।७०।।

संकर्षिणी, अश्वत्था, बीजभाव्रा, अपराजिता, कल्याणी, मधुदंष्ट्री कमल-हस्तिका तथा उत्पलहस्तिका। हे राजन्! ये आठ देवियाँ माया की अनुचरी कही गई हैं।।६९-७०।।

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धावेशाश्मदंशना। नृसिंहभैरवा बिल्वा गरुत्मद्धृदया जया।।७१।।
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृप मातरः।

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धावेशा, अश्मदंशना, नृसिंहभैरवा, बिल्वा, गरुत्महृदया, जया-हे राजन्! ये आठ भवमालिनी की अनुचर देवियाँ हैं।।७१.५।।

आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका।।७२।।
ज्वालामुखी भीषणिका कामधेनुश्च बालिका।
तथा पद्मकरा राजन् रेवत्यनुचराः स्मृताः।।७३।।
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः। त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः।।७४।।

आकर्णनी, संभटा, उत्तरमालिका ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका तथा पद्मकरा- ये आठ रेवती की अनुचर देवियाँ हैं। ये सब विष्णु भगवान् के शरीर से उत्पन्न अति बलशालिनी तथा तीनों लोकों की सृष्टि और संहार करने में समर्थ थीं।।७२-७४।।

ताः सृष्टमात्रा देवेन क्रुद्धा मातृगणस्य तु। प्रधाविता महाराज क्रोधविस्फारितेक्षणाः।।७५।।

महाराज! भगवान् विष्णु द्वारा उत्पन्न किये जाते ही ये देवियाँ उन मातृकाओं के ऊपर अति क्रोध से विस्तृत नेत्र हो दौड़ पड़ी।।७५।।

अविषह्यतमं तासां दृष्टितेजः सुदारुणम्। तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत्।।७६।।

उस समय उनकी आँखों से असह्य तेज दिखाई पड़ रहा था। इन देवियों को देखकर जगत् के विनाश में उद्यत वे मातृकाएँ नरसिंह की शरण में गईं। शरण में जाने पर नरसिंह ने कहा।।७६।।

यथा मनुष्याः पशवः पालयन्ति चिरात्सुतान्।
जयन्ति ते तथैवाऽऽशु यथा वै देवतागणाः।।७७।।

जिस प्रकार मनुष्य तथा पशु चिरकाल तक अपनी सन्तति का पालन करते हैं और शीघ्र ही देवताओं की भाँति विजय प्राप्त करते हैं।।७७।।

भवन्त्यस्तु तथा लोकान्पालयन्तु मयेरिताः। मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम्।।७८।।

न च बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके।
ये च मां संस्मरन्तीह ते च रक्ष्याः सदा नराः।।७९।।

उसी प्रकार मेरी प्रेरणा से आप लोग भी समस्त लोक का पालन करें। मनुष्य तथा देवगण त्रिपुरशत्रु शंकर जी की अराधना करें। जो लोग त्रिपुरान्तक शिव में भक्ति भावना रखने वाले हैं, उनके कार्यों में बाधा नहीं होनी चाहिए। जो लोग यहाँ मेरा स्मरण करते हैं, उनकी सर्वदा रक्षा करनी चाहिए।।७८-७९।।

बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः। सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वं तथैव च।।८०।।

जो मनुष्य आप लोगों के लिए सर्वदा बलि कर्म करते हैं, उनके सभी मनोरथों को पूर्ण करें।।८०।।

उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम्।
ते च रक्ष्याः सदा लोका रक्षितव्यं च शासनम्।।८१।।

जो लोग मेरे द्वारा कहे गये महात्मा आदि का वर्णन करते हैं, उनकी सर्वदा रक्षा करनी चाहिये, शासन की भी आप लोगों को रक्षा करनी चाहिए।।८१।।

रौद्रीं चैव परां मूर्तिं महादेवः प्रदास्यति। युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्ष्यथ।।८२।।

महादेव रौद्री नामक एक परमतेस्विनी मूर्ति प्रदान करेंगे, आप लोग महादेवी के पद पर प्रतिष्ठित होकर उसकी भी रक्षा करेंगी। उनके द्वारा कही गयी बातों को भी आप लोगों को रक्षा करनी होगी।।८२।।

मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः। एष नित्यं विशालाक्षो मयैव सह रंस्यते।।८३।।

मैंने जिन लज्जा भय से रहित मातृगण की सृष्टि की है, वह विस्तृत नेत्रों वाला मातृकाओं का समूह नित्य मेरे साथ विहार करेगा।।८३।।

मया सार्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ। पृथक्सुपूजिता लोकैः सर्वान्कामान्प्रदास्यथ।।८४।।

मेरे ही साथ आप लोगों को भी मनुष्यों द्वारा समर्पित की गई पूजा प्राप्त होगी। लोग अलग से पूजा करेंगे, उनके मनोरथों को पूर्ण करना होगा।।८४।।

शुष्कां सम्पूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः।
तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यति न संशयः।।८५।।

जो पुत्र के इच्छुक मनुष्य शुष्का देवी की पूजा करेंगे, उन सब को वह देवी पुत्र देंगी, इसमें सन्देह नहीं।।८५।।

एवमुक्त्वा तु भगवान्सह मातृगणेन तु। ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत।।८६।।

इस प्रकार की बातें कहकर मातृकाओं के साथ, ज्वाला के समूहों से व्याप्त शरीर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये।।८६।।

तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः। तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः।।८७।।
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्त्वा रुद्रस्तु पार्थिव। रौद्रीं दिव्यां तनुं तत्र मातृमध्ये व्यवस्थितः।।८८।।

उसी स्थान पर एक तीर्थ उत्पन्न हुआ, जो 'कृतशौच' के नाम से प्रसिद्ध है। राजन्! उसी स्थान पर आदिदेव जगत् के दुःखों का हरण करने वाले भगवान् शंकर ने उस रौद्र मातृ समूह को अपना अति रौद्र दिव्य शरीर और स्वयं उन्हीं के मध्य भाग में अवस्थित हुए।।८७-८८।।

सप्त ता मातरो देव्यः सार्धनारीश्वरः शिवः। निवेश्य रौद्रं तत्स्थानं तत्रैवान्तरधीयत।।८९।।

इस प्रकार अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर उन सात देवियों को उसी स्थान पर स्थापित कर स्वयं अन्तर्हित हो गये।।८९।।

समातृवर्गस्य हरस्य मूर्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्तेः पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः।।९०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽन्धकवधो नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९६२७।।

—❊❊❊—

मातृवर्ग के समेत शिव की मूर्ति जब-जब उनके तथा नरसिंह शरीरधारी देवेश्वर विष्णु के समीप में जाती है, तब-तब त्रिपुरदाहक अन्धक-शत्रु शिव की पुजा करते हैं।।९०।।

।।एक सौ उन्नयासीवाँ अध्याय समाप्त।।१७९।।

❖❖❖

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दण्डपाणि वर प्रदान वर्णन

ऋषय ऊचुः

श्रुतोऽन्धकवधः सूत यथावत्त्वदुदीरितः।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥१॥

ऋषियों ने कहा–सूत जी! तुमसे कहे गये अन्धक के वध का वृत्तान्त तो, जो कुछ था, उसे हम लोग सुन चुके, अब वाराणसी के माहात्म्य का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं।।१।।

भगवान्पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः। अन्नदत्वं च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः॥२॥

उस वाराणसी में महाद्युति भगवान् पिंगल किस प्रकार गणरूप को प्राप्त हुए? और किस प्रकार अन्नदान करने का पद उन्हें प्राप्त हुआ।।२।।

क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वं च कथं गतः। एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत त्वया॥३॥

वे किस प्रकार क्षेत्रपाल और कैसे शंकर के प्रिय हुए ? हे ब्रह्मपुत्र! इन सब बातों को हम लोग तुमसे सुनना चाहते हैं।।३।।

सूत उवाच

शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः। अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह॥४॥

सूत ने कहा–ऋषिगण! पिंगल ने जिस प्रकार गणेशत्व की प्राप्ति की और जिस प्रकार लोक को अन्नदान देने का पद उन्हें प्राप्त हुआ, वाराणसी नगरी जैसे उनको मिली- उन सब कथाओं को मैं कह रहा हूँ, सुनिये।।४।।

पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान्। हरिकेश इति ख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह॥५॥

प्राचीन काल में पूर्णभद्र का पुत्र प्रतापशाली, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों का प्रतिपालक धार्मिक हरिकेश नामक एक यक्ष था।।५।।

तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा। तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः॥६॥

उनकी जन्म से ही भगवान् शंकर में परमभक्ति थी, उन्हीं को प्रणाम करने में, उन्हीं की भक्ति में तथा उन्हीं की शरण में वह सर्वदा लीन रहता था।।६।।

आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन्।
भुञ्जानोऽथ पिबन्वाऽपि रुद्रमेवान्वचिन्तयत्॥७॥

सोते जागते, चलते, फिरते, उठते, बैठते, खाते-पीते-सब समय वह रुद्र के ही ध्यान में मग्न रहा करता था।।७।।

तमेवं युक्तमनसं पूर्णभद्रः पिताऽब्रवीत्। न त्वां पुत्रमहं मन्ये दुर्जातो यस्त्वमन्यथा॥८॥

शंकर की भक्ति में इस प्रकार अनन्य भाव से लीन अपने पुत्र को देखकर उसके पिता पूर्णभद्र ने कहा कि मैं तुम्हें अपना बेटा नहीं मानता, तुम निश्चय ही किसी दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न हुए हो।।८।।

न हि यक्षकुलीनानामेतद्वृत्तं भवत्युत। गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात्क्रूरचेतसः॥९॥

यक्षों के कुल में उत्पन्न होने वाली की ऐसी वृत्ति नहीं होती; क्योंकि वे तो स्वभाव से ही क्रूर चित्तवाले होते हैं।।९।।

क्रव्यादाश्चैव किम्भक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक।
मेवं कार्षीर्नि ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना॥१०॥
स्वयम्भुवा यथाऽऽदिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत्।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत्॥११॥

कच्चा मांस खाते हैं, कुत्सित जीवों का भक्षण करते हैं, हिंसक होते हैं। पुत्र! यदि तुम सचमुच मेरे पुत्र हो तो ऐसा मत करो; क्योंकि महापुरुषों ने हम लोगों के लिए ऐसी वृत्ति नहीं बतलाई है। भगवान् ब्रह्मा ने जिस प्रकार के कर्मों का उपदेश हमारी जाति वालों को दिया है, यदि तुम उसे छोड़ रहे हो तो अनुचित कर रहे हो। किसी गृहस्थाश्रमी परिवार वाले व्यक्ति को दूसरे आश्रम वालों के कर्मों के करने का अधिकार नहीं है।।१०-११।।

हित्वा मनुष्यभावं च कर्मभिर्विविधैश्चर। यत्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एव च॥१२॥

अतः तुम अपने मानवीय स्वभाव का परित्याग कर यक्षों के विचित्र कर्मों को करो। यदि तुम वैसा नहीं करोगे और इस प्रकार अन्य के मार्ग पर रहोगे तो मैं जानूंगा कि निश्चय ही तुम्हारी उत्पत्ति मनुष्य से हुई है।।१२।।

यथावद्विविधं तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम्। मयाऽपि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः॥१३॥

अतः यक्षों के करने योग्य विविध कर्मों का, जिन्हें मैं करता हूँ, तुम अनुसरण करो, इसमें सन्देह नहीं है कि वे मेरे द्वारा किये गये कर्म यक्ष जाति के करने योग्य है।।१३।।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान्। उवाच निष्ठुरं क्षिप्रं गच्छ पुत्र यथेच्छसि॥१४॥

सूत ने कहा–प्रतापशाली पूर्णभद्र ने अपने पुत्र से इस प्रकार की बातें कर और उस पर अपनी बातों का कोई प्रभाव न देखकर निष्ठुरता पूर्ण स्वर में कहा- 'हे पुत्र! यदि तुम मेरे कथन पर ध्यान नहीं दे रहे हो तो शीघ्र ही यहां से, जहाँ तुम्हारा मन कहे, चले जाओ'।।१४।।

ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं सम्बन्धिनस्तथा।
वाराणसीं समासाद्य तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥१५॥

पिता की ऐसी बातें सुनने पर हरिकेश ने अपने परिवार, सम्बन्धियों तथा घर वालों को छोड़कर वाराणसी नगरी की शरण ली और वहाँ पहुँचकर अति दारुण तपस्या प्रारम्भ की।।१५।।

स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः।
सन्नियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः।।१६।।

वहाँ वह बिना आँखों को खोले सूखे हुए काष्ठ तथा शिला की भाँति स्थाणुवत् निश्चल हो सभी इन्द्रियों को स्ववश कर अवस्थित रहा।।१६।।

अथ तस्यैव तपसि संस्थितस्य महात्मनः। सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यभ्यवर्तत।।१७।।

इस प्रकार उस महान् आत्मा के घोर तपस्या में अवस्थित होने पर एक सहस्र दिव्य वर्ष का समय व्यतीत हो गया।।१७।।

वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः।
वज्रसूचिमुखैस्तीक्ष्णैर्विध्यमानस्तथैव च।।१८।।

उसके शरीर के चारों ओर बिलें बन गईं। वज्र की बनी हुई के समान तीक्ष्ण मुख वाले चीटों ने शरीर को खा-खा कर बींध डाला।।१८।।

निर्मांसरुधित्वक्च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः। अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि।।१९।।
एतस्मिन्नन्तरे देवी व्यज्ञापयत शङ्करम्।।२०।।

जिससे माँस, रक्त तथा चमड़े से रहित हो वह अस्थि मात्र शेष रह कुन्द के पुष्प तथा शंख के समान दिखाई पड़ने लगा। किन्तु इतने पर भी वह देवाधिदेव शंकर के ध्यान में मग्न रहा। इसी अवसर पर पार्वती देवी ने शंकर से यह निवेदन किया।।१९-२०।।

देव्युवाच

उद्यानं पुरनेवेदं द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा। क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं हि मे।।
यतश्च प्रियमेतत्ते तथाऽस्य फलमुत्तमम्।।२१।।

देवी ने कहा-हे देव! मैं पुनः इस उपवन को देखना चाहती हूँ और इस काशी क्षेत्र के महात्म्य का वर्णन सुनने की मुझे उत्कण्ठा है; क्योंकि यह तुम्हें विशेष प्रिय है और उसके श्रवण करने का फल भी उत्तम कहा जाता है।।२१।।

इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः। सर्वं पृष्टं यथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे।।२२।।
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः। उद्यानं दर्शयामास देव्याः देवः पिनाकधृक्।।२३।।

पार्वती के इस प्रकार निवेदन करने पर परमेश्वर शंकर ने इन पूछी गई बातों के बारे में, जैसा कुछ कहा गया है-यथार्थतया सुनाने का निश्चय किया। फिर पार्वती को साथ लेकर पिनाकधारी देवाधिदेव शंकर ने देवी को उस उपवन का दर्शन कराया।।२२-२३।।

देवदेव उवाच

प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम्।
विरूढपुष्पैःपरितःप्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैःकण्टकितैश्च केतकैः॥२४॥

देवाधिदेव शंकर ने कहा–हे प्रिये! मन को हरने वाले अति सुन्दर उपवन को देखो। देखो, झुकी हुई लताओं की वल्लरियों से वह सुशोभित हो रहा है, खूब खिले हुए विविध प्रकार के लता गुल्म उसमें शोभायमान हो रहे हैं, चारों ओर से प्रियंगु की मनोहारिण लताएँ पुष्पों से लदी हुई दिखाई पड़ रही हैं, काँटों वाली केतकी के समूहों में भी खूब फूल खिले हुए हैं।।२४।।

तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वशः।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः॥२५॥

अति सुगन्धियुक्त तमाल के गुल्मों से यह उपवन भरा पड़ा है, सभी प्रकार के कनेर तथा वकुल भी खिले हुए हैं, इसमें भ्रमरों के समूहों से युक्त पुष्पों से लदे हुए अशोक तथा पुन्नाग के वृक्ष कितने सुन्दर खिले हुए हैं।।२५।।

क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणु रूषितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः।
विनादितं सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदात्यूरुतैश्च वल्गुभिः॥२६॥

इस उपवन में कहीं पर खिले हुए कमलों के मकरन्दों से धूसरित विविध पक्षीगण अति सुन्दर कलरव कर रहे हैं, कहीं पर सारस आदि जल पक्षी कलनाद कर रहे हैं।।२६।।

क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्चमत्तालिकुलाकुलीकृतम्॥२७॥

कहीं पर मतवाले पपीहे और जलकाक पक्षियों की सुरीली ध्वनि हो रही है। कहीं पर चक्रवाक पक्षी के सुन्दर स्वर सुनाई पड़ रहे हैं, कहीं पर हंसों के छोटे-छोटे बच्चे किलोलें मार रहे हैं, कहीं पर कलहंसों के समूह अपनी मतवाली ध्वनि सुना रहे हैं। एक ओर कहीं मतवाले भ्रमरों के समूह गूँजते हुए उड़ रहे हैं।।२७।।

मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनादिभिर्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पम्।
क्वचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च॥२८॥

इस उपवन के किसी बाग में काम मद से आकुल देवांगनाएँ विहार कर रहीं हैं, कहीं दूसरी ओर खूब फूले हुए आम्र के वृक्ष तथा लताओं से आवेष्टित तिलक के वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं।।२८।।

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणं प्रवृत्तनृत्याप्सरसां गणाकुलम्।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम्॥२९॥

किसी भाग में सिद्ध तथा गन्धर्वों के समूह गान करने में मग्न हैं तो दूसरी ओर अप्सराओं

के वृन्द नाचने में प्रवृत्त हैं। आति प्रमोद में लीन विविध प्रकार के पक्षीगण इस उपवन में उड़ रहे हैं, कुछ मतवाले हारीत पक्षी कलरव मचा रहे हैं।।२९।।

मृगेन्द्रनादाकुलसत्त्वमानसैः क्वचित्क्वचिद्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः सरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित्।।३०।।

कहीं पर सिंह दहाड़ रहा है, कहीं पर हिरणों के जोड़े विहार कर रहे हैं। कहीं पर तालाबों में अनेक प्रकार के सुन्दर कमल खिले हुए हैं और कहीं पर मनोहर तालाब शोभित हो रहे हैं।।३०।।

निबिडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम्।।३१।।

अति नील वर्ण मनोरम दिखाई पड़ने वाले मनोहर मयूरों से शोभायमान वह उपवन प्रमुदित तथा उन्मत विहंगों के समूहों से गुंजरित होकर सुशोभित हो रहा है, फूली हुई वृक्षों की डालियों में लगे हुए उन्मत भ्रमर के समूह गुंजार कर रहे हैं। वृक्षों की शाखाओं में नवीन कोपलों के मनोहरि गुच्छे सुशोभित हो रहे हैं।।३१।।

क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम्।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं किम्पुरुषव्रजैःक्वचित्।।३२।।

कहीं पर हाथियों से तोड़ी गयी मनोरम लताएँ पड़ी हुई हैं, कहीं पर सुन्दर लताएँ वृक्षों पर आलिंगन कर रही हैं, कहीं पर विलास से अलसाये मयूरगण मन्द-मन्द विचरण कर रहे हैं, कहीं पर किन्नरों के समूह विहार कर रहे हैं।।३२।।

पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गैरभ्रङ्कषैः सितमनोहरचारुरूपैः।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजितं त्रिदशदेवकुलैरनेकैः।।३३।।

श्वेत वर्ण के मनोहारि सुन्दर दिखाई पड़ने वाले गगनचुम्बी सुन्दर शिखर, जिस पर कबूतरों की ध्वनियाँ गुंजरित हो रही हैं, विराजमान हो रहे हैं, उन पर्वतों के शिखरों पर मुक्तहास सूचित करने वाले पुष्पों के समूह बिखरे हुए हैं और स्वर्ग निवासी अनेक देवगण विहार कर रहे हैं।।३३।।

फुल्लोत्पलागुरुसहस्त्रवितानयुक्तैस्तोयाशयैःसमनुशोभितदेयमार्गम्।
मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्तिसम्बद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम्।।३४।।

तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पस्तबककभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-
र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम्।।३५।।

फूले हुए कमल एवं अगुरु के सहस्रों वितानों से युक्त जलाशयों वाले इस उपवन के मार्ग

देवमार्गों की भाँति शोभित हो रहे हैं, इन मार्गों पर विचित्र प्रकार के पुष्प बिखरे हुए हैं और सुन्दर गुच्छेवाले वृक्ष, जिन पर पक्षीगण कलरव कर रहे हैं, विराजमान हैं, इस उपवन में कहीं पर ऊँची डालियों पर खिले हुए श्यामल वर्ण के पुष्प के गुच्छों के भार से अवनत शाखाओं से सुशोभित अशोक के वृक्ष, जिनके भीतर मद से उन्मत सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ कानों को सुख देने वाली मनोहारिणी गीतों की ध्वनि करती हुई शोभायमान हो रही हैं, सुशोभित हैं और कहीं पर रात्रि में चन्द्रमा की कान्ति से समानता प्राप्त करने वाले फूले हुए तिल के वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं। कहीं पर वृक्षों की छाया में सोते हुए, बैठे हुए तथा खड़े हुए हरिणों के समूहों से चरे गये कुशों के अग्रभाग शोभित हो रहे हैं।।३४-३५।।

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम्।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितै रञ्जितक्ष्माप्रदेशं
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम्।।३६।।

इस उपवन में हंसों के पंखों के हिलाने-डुलाने के कारण हिलते हुए कमलों से युक्त स्वच्छ विस्तीर्ण जलराशि शोभित हो रही है, जलराशि के तट पर उत्पन्न फूले हुए केले के पौधों वाले मार्ग पर नाचते हुए मयूरगण दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं पर मयूरों के चन्द्रक युक्त पंख गिरे हुए हैं, जिनसे पृथ्वी तल शोभित हो रहा है। सभी ओर फैले हुए विहार करने वाले हारीत पक्षीगण वृक्षों पर शोभित हो रहे हैं।।३६।।

सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सञ्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः।
हृष्टाभिःक्वचिदपि किन्नराङ्गनाभिःक्षीबाभिःसमधुरगीतवृक्षखण्डम्।।३७।।

इस उपवन के किसी भाग में सारंग मृग के समूह बैठे हुए हैं, कहीं पर विचित्र रंग के पुष्पों के समूह से पृथ्वी तल छिपा हुआ है कहीं पर उन्मत किन्नरों की स्त्रियाँ अति हर्षित होकर विहार कर रही हैं। उनके सुमधुर गीतों की ध्वनियाँ वृक्षों के गुच्छों में प्रतिध्वनित हो रही हैं।।३७।।

संसृष्टैःक्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैःपरिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात्फलनिचितैःक्वचिद्विशालैरुत्तुङ्गैः पानसमहीरुहैरुपेतम्।।३८।।

कहीं पर मुनिजनों द्वारा बनाये गये लीप-पोतकर स्वच्छ एवं बिछाये गये पुष्पों से सुशोभित आवास स्थलों से युक्त वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं पर जड़ तक फलों से लदे हुए ऊँचे तथा फैले हुए कटहल के वृक्ष-समूह सुशोभित है।।३८।।

फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम्।
रम्यप्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं भृङ्गावलीस्खलितचारुकदम्बपुष्पम्।।३९।।

इस उपवन के किसी भाग में सिद्धाङ्गनाओं के सुवर्ण निर्मित नूपुर की सुमधुर ध्वनियों से

गुंजरित एवं मोतियों के समान खूब फूली हुई लताओं से आवेष्टित सिद्धों के लीलागृह विराजमान हैं, कहीं पर सुन्दर प्रियङ्गुलता की मंजरी में लीन मधुपगण गुंजार कर हैं और कहीं पर मृगों के समूहों द्वारा गिराये गये मनोहर कदम्ब के पुष्प सुशोभित हैं।।३९।।

पुष्पोत्करानिलविघूर्णितजपादपाग्रमग्रेसरैर्भुवि निपातितवंशगुल्मम्।
गुल्मान्तरप्रसृतभीतमृगीसमूहं संमुह्यतां तनुभृतामपवर्गदातृ॥४०॥

कहीं पर पुष्पों के समूहों को गिराने वाले वायु से प्रकम्पित वृक्षों की डालियों के अग्रभाग झुककर बाँस की कोठों को नीचे गिरा रहे हैं, उन झुकी हुई बाँस की कोठों में डरी हुई हरिणियों के समूह छिपे हुए हैं, सचमुच यह उपवन देखने वाले प्राणियों को अपवर्ग का-सा सुख प्रदान करने वाला है।।४०।।

चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः।
चामीकरप्रतिसमैरथ कर्णिकारैःफुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः॥४१॥

क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः। क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम्॥४२॥

पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्ताशोकस्तबकभरनमितम्।
रम्योपान्तश्रमहरपवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम्॥४३॥

इस उपवन में कहीं पर सिन्दूर, केसर तथा कुसुम्भ की भाँति लालवर्ण के अशोक सुशोभित हो रहे हैं और कहीं लम्बी डालियों वाले सुवर्ण की कान्ति के समान दिखाई पड़ने वाले पुष्पों से सुशोभित कनेर के वृक्ष हैं और कहीं पर कमल खिले हुए हैं, कहीं चाँदी के बने हुए पत्रों की भाँति श्वेत वर्ण के, कहीं पर विद्रुम की भाँति लाल वर्ण के और कहीं पर सुवर्ण की भाँति पीले वर्ण के पुष्प समूहों से यह भूतल शोभायमान हो रहा है। कहीं पर पुन्नाग के वृक्षों पर पक्षियों के कलरव, कहीं पर लाल अशोकों के गुच्छों के भार से विनम्र डालियाँ, कहीं पर रमणीक स्थल में परिश्रम को दूर करने वाले वायु के झोंके ओर कहीं पर विकसित कमलों पर गुंजार करते हुए भ्रमरों की पंक्तियाँ सुख देती हुई शोभायमान हो रही हैं।।४१-४३।।

सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं तुहिनशिखरिपुत्र्याः सार्धमिष्टैर्गणेशैः।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्टमुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः॥४४॥

इस प्रकार उस समय समस्त लोकों के स्वामी लोकनाथ भगवान् शंकर ने अपने प्रिय गणेश्वरों को साथ लेकर उस विविध प्रकार के विशाल वृक्षों से सुशोभित तथा उन्मत्त एवं हर्षित करने वाले मनोहर उपवन को हिमवान की पुत्री पार्वती को दिखलाया।।४४।।

देव्युवाच

उद्यानं दर्शितं देव शोभया परया युतम्। क्षेत्रस्य तु गुणान्सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि॥४५॥

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा। श्रुत्वाऽपि हि न मे तृप्तिरता भूयो वदस्व मे॥४६॥

देवी ने कहा–हे देव! अनुपम शोभायुक्त इस उद्यान को तो आप मुझे दिखला चुके, अब इस क्षेत्र के समस्त माहात्म्य का वर्णन मुझसे करें। इस परम पुण्यप्रद अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं प्राप्त होती, अतःपुनः इसको मुझसे कहिये।।४५-४६।।

देवदेव उवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम। सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा।।४७।।
अस्मिन्सिद्धाः सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः।।४८।।

देवाधिदेव शंकर ने कहा–हे देवि! सर्वदा सभी जीवों को मोक्ष देने हेतु रूप यह वाराणसी नगरी मेरा गोपनीय क्षेत्र है। मेरे व्रत में रहने वाले सिद्धगण विविध प्रकार के शरीर धारण कर सर्वदा मेरे लोक की आँकाक्षा करते हुए इसमें निवास करते हैं और इन्द्रिय को वश में कर मुक्तात्मा हो श्रेष्ठ योग का अभ्यास करते हैं।।४७-४८।।

अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगकूजिते।।४९।।
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते। अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे।।५०।।
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु। मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः।।५१।।
यथा मोक्षमिहाऽऽप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित्।
एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत्।।५२।।
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः। अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम।।५३।।
विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदा च न।
महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम्।।५४।।

अनेक प्रकार के वृक्षों से आकीर्ण, विविध प्रकार के पक्षियों से गुञ्जरित, कमल, उत्पल आदि पुष्प समूहों से सुशोभित, सुन्दर, सरोवरों से अलंकृत, सर्वदा अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों से सुसेवित इस शुभ क्षेत्र में, जिस कारण सर्वदा निवास करना मुझे भाता है, वह सब सुनो। मेरे वे भक्त, जो अपनी सभी क्रियाओं को करके मुझमें ही अर्पित करते हैं, मेरा ही चिन्तन करने वाले हैं, जिस प्रकार सुगमता से यहाँ मोक्ष को प्राप्त करते हैं, उस तरह कहीं अन्यत्र नहीं। वह मेरा महान् पुर अति दिव्य गुणसम्पन्न तथा अति एकान्त में है। इससे बढ़कर कोई भी क्षेत्र मुझे प्रिय नहीं है, इस बात को या तो ब्रह्मादि देवतागण जानते हैं। क्योंकि मैं अपने इस क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ना चाहता हूँ। अतएव इस महान् क्षेत्र का नाम अविमुक्त कहा जाता है।।४९-५४।।

नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे। स्नानात्संसेविताद्वाऽपि न मोक्षः प्राप्यते यतः।।५५।।
इह सम्प्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते। प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात्।।५६।।

नैमिषारण्य में, कुरुक्षेत्र में, हरिद्वार में तथा पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने तथा ध्यानपूजनादि से सामान्यतः मोक्ष नहीं प्राप्त होता और यहाँ आने पर जिस कारणवश प्राप्त होता है, अतएव इसकी विशेषता है। प्रयाग में मोक्ष प्राप्त होता है और यहाँ मेरा स्थान होने के कारण प्राणियों की मोक्ष की प्राप्ति होती है।।५५-५६।।

प्रयागादपि तीर्थाग्ग्र्यादिदमेव महत्स्मृतम्।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं यो गतः स महातपाः।।५७।।
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात्।
जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते।।५८।।

किन्तु तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयाग से भी अधिक महत्व है। महातपस्वी जैगीषव्य ने, जो परमसिद्धि प्राप्त करने वाले थे, इस काशी क्षेत्र के माहात्म्य से तथा मेरी भक्ति के कारण यहीं पर नित्य मेरा ध्यान करते हुए योगियों की परमोच्च पदवी को प्राप्त किया था।।५७-५८।।

ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम्।
कैवल्यं परमं याति देवानामपि दुर्लभम्।।५९।।

मनुष्य को मेरा ध्यान करने पर काशी क्षेत्र में उदीप्त योगाग्नि प्राप्त होती है, जिससे वह कैवल्य पद की प्राप्ति करता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।।५९।।

अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः। इह सम्प्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः।।६०।।
तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम्।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च।।६१।।

सभी सिद्धान्तों के जानने वाले मुनिगण, अप्रकट रूप से छिपे हुए इस क्षेत्र में देवताओं तथा दानवों के लिए भी दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति करते हैं, उन सबको मैं उत्तम ऐश्वर्य एवं भोग देता हूँ और अन्त में अपनी समीपता एवं उनके मनोवांछित स्थान को भी देता हूं।।६०-६१।।

कुबेरस्तु महायक्षस्तथा सर्वार्पितक्रियः। क्षेत्रसंवसनादेव गणेशत्वमवाप ह।।६२।।
संवर्तो भविता यश्च सोऽपिभक्तो ममैव तु।
इहैवाऽऽराध्य मां देवि सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम्।।६३।।
पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः। धर्मकर्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः।।६४।।
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि क्षेत्रेऽस्मिन्मुनिपुङ्गवः।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः।।६५।।
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः। उपासते महात्मानः सर्वे मामेव सुव्रते।।६६।।

मेरे लिए सभी क्रियाओं का समर्पण कर इस क्षेत्र में निवास करने के कारण ही यक्षराज

कुबेर ने गणेशत्व की पदवी प्राप्त की है। देवि! भविष्यत् काल में संवर्त नामक जो तपस्वी होगा, वह भी मेरा भक्त होगा, इसी क्षेत्र में मेरी आराधना कर वह परमश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करेगा। हे पद्माक्षि! महातपस्वी योगी मुनिपुंगव पाराशर के पुत्र व्यास भी, जो वेदों की मर्यादा के प्रवर्त्तक तथा धर्म कार्यों के कर्ता होंगे, इसी क्षेत्र में तपस्या करते हुए निवास करेंगे। यहाँ ब्रह्मर्षियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, वायु, सूर्य, देवराज इन्द्र तथा इनके अतिरिक्त अन्य जो देवगण हैं, वे सभी महान् चेता मेरी उपासना करते हैं।।६२-६६।।

अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः।
अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा।।६७।।
अलर्कश्च पुरीमेतां मत्प्रसादादवाप्स्यति।
स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम्।।६८।।
स्फीतां जनसमाकीर्णां भक्त्या च सुचिरं नृपः।
मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते।।६९।।

अन्य जो महाव्रतधारी योगाभ्यास में निरत सिद्ध महात्मा हैं, वे प्रच्छन्न रूप धारण कर अनन्य चित्त हो यहाँ मेरी सर्वदा उपासना करते हैं। मेरी ही कृपा से इस काशीपुरी को राजा अलर्क प्राप्त करेगा। वह इस काशीपुरी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-इन चार वर्णों तथा ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों के पालन करने वाले मनुष्यों से आकीर्ण कर चिरकाल तक मेरी भक्ति से इसका उपभोग करता हुआ अपने सभी कार्यों को मुझको समर्पित कर अन्त में मुझे प्राप्त करेगा।।६७-६९।।

ततः प्रभृति चार्वङ्गि येऽपि क्षेत्रनिवासिनः।
गृहिणो लिङ्गिनो वाऽपि मद्भक्ता मत्परायणाः।।७०।।
मत्प्रसादाद्व्रजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम्। विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः।।७१।।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत्।
ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था विजितेन्द्रियाः।।७२।।
व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः। देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः।।
गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते।।७३।।

सुन्दरि! उसी समय से लेकर जो कोई प्राणी इस क्षेत्र में निवास करते हुए मेरी भक्ति तथा मेरी शरण में रहकर-चाहे वे गृहस्थाश्रमी हों-अथवा संन्यासी हों, मेरी ही कृपा से परम दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। जो प्राणी वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर सर्वदा विषयों में आसक्त रहने वाले हैं, वे भी इस क्षेत्र में शरीर त्याग कर पुनः संसार में जन्म नहीं धारण करते। सुव्रते! फिर तो, जो अहंकार रहित, धैर्यवान् सत्ववृत्ति में निरत रहने वाले जितेन्द्रिय, तपस्या में निरत, निरारम्भ एवं संगवर्जित

तथा मेरी भक्ति से भावित हैं, वे भी परम बुद्धिमान् शरीर को छोड़कर मेरी कृपा से परममोक्ष की प्राप्ति करते हैं।।७०-७३।।

जन्मान्तरसहस्त्रेषु युञ्जन्योगमवाप्नुयात्। तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति।।७४।।
एतत्सङ्क्षेपतो देवि क्षेत्रस्यास्य महत्फलम्। अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम्।।७५।।
अतः परतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि। एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि।।७६।।
एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम्। एतदेव परं ब्रह्म एतदेव परं पदम्।।७७।।

योग लोग सहस्त्रों जन्मों में योगाराधना करके जिस परम पद की प्राप्ति करते हैं, उसको इस काशी क्षेत्र में शरीर त्याग कर प्राप्त करते हैं। हे देवि! संक्षेप में यही इस अतिगोपनीय अविमुक्त क्षेत्र का महत्वपूर्ण फल है, जिसे मैं तुम्हें सुना चुका। हे माहेश्वरि! इससे बढ़कर गोपनीय सिद्धि की बात कोई नहीं हैं, इसे योग के माहात्म्य को जानने वाले ही जानते हैं अथवा वह लोग जानते हैं जो इस पृथ्वी मण्डल में योगेश्वर माने जाते हैं। यही सबसे श्रेष्ठ स्थान है, यही सबसे श्रेष्ठ फल देने वाला क्षेत्र है, यही परमब्रह्म है, यही परमपद है।।७४-७७।।

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्री।
अत्राऽऽगता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः।।७८।।
एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासुपुष्पम्।
अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र।।७९।।

हे गिरिराज पुत्रि! यह रमणीय वाराणसी पुरी, जो तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ है, परम प्यारी नगरी है, यहाँ पर आकर अनेक प्रकार के पाप कर्मों के करने वाले पापी जन भी पाप कर्मों के क्षय हो जाने से रजोवृत्ति रहित होकर सुशोभित होते हैं। देवि! विचित्र प्रकार के वृक्षों एवं लताओं के गुल्मों एवं पुष्पों से सुशोभित, कभी नष्ट न होने वाला अविमुक्त क्षेत्र मेरा अति प्रिय क्षेत्र कहा गया है, इस मेरे क्षेत्र में शरीर त्याग करने वाले शरीरधारी, चाहे वे मूर्ख अथवा वेद विरुद्ध क्यों न हों, परमपद की प्राप्ति करते हैं।।७८-७९।।

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवो देवीं प्राह गिरीन्द्रजाम्। दातुं प्रसादं यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि।।८०।।
भक्तो मम वरारोहे तपसा हतकिल्बिषः। अहो वरमसौ लब्धुमस्मत्तो भुवनेश्वरि।।८१।।
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः।
जगाम यक्षो यत्राऽऽस्ते कृशो धमनिसन्ततः।।८२।।
ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती। श्वेतवर्णं विचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम्।।८३।।
देवी प्राह तदा देवं दर्शयन्ती च गुह्यकम्। सत्यं नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शङ्कर।।८४।।
ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम्।

सूत ने कहा–इसके बाद देवाधिदेव शंकर ने गिरिपुत्री पार्वती से कहा–'हे भामिनि! भक्त यक्ष को वरदान देने के लिए चलना चाहिये। हे सुन्दरि भुवनेश्वरि! वह यक्ष मेरा भक्त है, जो अपनी घोर तपस्या के प्रभाव से निष्पाप हो चुका है, अब मुझसे वरदान प्राप्त करने का वह अधिकारी है।' ऐसा कहकर पार्वती के साथ महादेव वहाँ गये, जहाँ पर धमनियों के जाल के रूप में अवशेष वह यक्ष अवस्थित था। वहाँ पहुँचकर उस समय श्वेतवर्ण चर्मरहित स्नायु से बंधे हुए अस्थि के पंजर रूप में अवशेष यक्ष को देखती हुई पार्वती ने महादेव को उसे दिखलाया और कहा– 'हे शंकर! देवताओं ने आपका नाम जो उग्र रखा है, वह सत्य है; क्योंकि ऐसी घोर तपश्चर्या में लीन होने वाले को तुम वरदान नहीं देते।।८०-८४.५।।

अतः क्षेत्रे महादेव पुण्ये सम्यगुपासिते।।८५।।
कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः। शीघ्रमस्य वरं यच्छ प्रसादात्परमेश्वर।।८६।।
एवं मन्वादयो देव वदन्ति परमर्षयः। रुष्टाद्वा चाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतो भवेत्।।
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदा शिवात्।।८७।।

देवाधिदेव इस पुण्यपद्र क्षेत्र में इतनी घोर उपासना करके यह यक्ष का कुमार क्यों इतने घोर क्लेश को अभी तक सहन कर रहा है, हे परमेश्वर! शीघ्र ही इसके ऊपर प्रसन्न होकर वरदान दीजिये। हे देव! मनु आदि परम ऋषिगण आपके विषय में ऐसी चर्चा करते हैं कि सदाशिव के रुष्ट होने पर तथा सन्तुष्ट होने पर–दोनों दशाओं में इस लोक में भोग की प्राप्ति तथा राज्य मिलता है और शरीरान्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती।।८५-८७।।

एवमुक्तस्ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः।
जगाम यक्षो यत्राऽऽस्ते कृशो धमनिसन्ततः।।८८।।
तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः। दिव्यं चक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत्स शङ्करम्।।८९।।
अथ यक्षस्तदादेशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी। अपश्यत्सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम्।।९०।।

पार्वती के ऐसा कहने पर शिव उन्हें साथ लेकर उस स्थान पर गये, जहाँ वह यक्ष धमनियों के जाल के रूप में अवशेष हो तपस्या में निरत था। वृषभध्वज ने भक्ति से प्रणाम करते हुए उसे देखकर दिव्य नेत्र प्रदान किया, जिससे उसने शंकर को स्पष्टतया देखा। तदनन्तर यक्ष ने शिव के आदेश से अपनी आँखों को धीरे से खोल कर गण समेत उपस्थित वृषभध्वज शंकर का यथेष्ट दर्शन किया।।८८-९०।।

देवदेव उवाच

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा। सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः।।९१।।

देवदेव ने कहा- तुम्हें मैं सर्वप्रथम इस त्रिलोक में दर्शन करने का वरदान दे रहा हूँ, पुनः अपने शरीर के समान तुम्हारे शरीर के वर्ण होने का वरदान भी दे रहा हूँ, अब सभी दुःखों से तुम दूर होकर मुझे देखो।।९१।।

सूत उवाच

ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च।
पादयोः प्रणतस्तस्थौ कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥९२॥
उवाचाथ तदा तेन वरदोऽस्मीति चोदितः।
भगवन्भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे॥९३॥
अन्नदत्वं च लोकानां गाणपत्यं तथाऽक्षयम्।
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा॥
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम्॥९४॥

सूत ने कहा–शिव से वरदान की प्राप्ति कर सुन्दर व्रणरहित शरीर को प्राप्त कर उस यक्ष ने हाथों को मस्तक में लगा शिवजी के चरणों पर गिरकर निवेदन किया – 'भगवन् देवदेव! आप यदि हमें वरदान दे रहे हैं तो आपके चरणों में मेरी अटूट निश्चल भक्ति हो- ऐसा वरदान दीजिये तथा सभी लोगों को अन्नदान देने का तथा गणों के स्वामी होने का अक्षयपद मुझे प्रदान कीजिये, जिससे आपसे कभी नहीं छोड़े गये इस अविमुक्त क्षेत्र का मैं सर्वदा दर्शन करता रहूँ, मैं इसी सर्वश्रेष्ठ वरदान को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ॥९२-९४॥

जरामरणसन्त्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः। भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः॥९५॥
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः।
अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालो भविष्यसि॥९६॥
महाबलो महासत्त्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः। त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च॥९७॥
उद्भ्रमः सम्भ्रमश्चैव गणौ ते परिचारकौ। तवाऽऽज्ञया करिष्येते लोकस्योद्भ्रमसम्भ्रमौ॥९८॥

देवदेव ने कहा–यक्ष! तुम वृद्धावस्था एवं मृत्यु से तथा सभी प्रकार की व्याधियों से रहित हो सबके पूज्य एवं गणों के स्वामी धनपति होगे, अतुल ऐश्वर्य एवं योग की प्राप्ति कर सभी प्राणियों द्वारा अजेय होकर सभी लोगों के अन्नदाता तथा क्षेत्रपाल होंगे। मेरे प्रिय होकर महाबलवान्, परम पराक्रमी, सत्त्वगुणसम्पन्न, ब्राह्मणोपकारक, तीन आँखों वाले, दण्डपाणि तथा महान् योगाभ्यासी होगे। उद्भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे सेवक होंगे और तुम्हारी आज्ञ से वे लोक के चित को व्याकुल तथा क्षुब्ध करने वाले होंगे॥९५-९८॥

सूत उवाच

एवं स भगवाँस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम्। जगाम वासं देवेशः सह तेन महेश्वरः॥९९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये दण्डपाणिवरप्रदानं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥९७२६॥
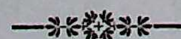
सूत बोले–इस प्रकार देवेश महेश्वर भगवान् शिव ने उस यक्ष को गणों का स्वामी बनाकर उसके अपने निवास स्थान को प्रस्थान किया।।९९।।

।।एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त।।१८०।।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

यक्ष को वर प्राप्ति

सूत उवाच

इमां पुण्योद्भवां स्निग्धां कथां पापप्राणाशिनीम्।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे सुविशुद्धास्तपोधनाः।।१।।
गणेश्वरपतिं दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम्। सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्।।२।।
ब्रूहि गुह्यं यथातत्त्वं यत्र नित्यं भवः स्थितः। महात्मा सर्वभूतानां परमात्मा महेश्वरः।।३।।
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः। आभूतसम्पप्लवं यावत्स्थाणुभूतो महेश्वरः।।४।।

सूत बोले- परम शुद्धचित्त तपस्वी ऋषिगण! इस पाप को नष्ट करने वाली पुण्य प्रदायिनी मनोहर कथा को आप सब लोग सुनें। एक समय रुद्र के समान पराक्रमी गणेश्वरों के स्वामी नन्दिकेश्वर से भगवान् सनत्कुमार ने पूछा था–'हे नन्दिकेश्वर! परमात्मा, सभी जीवों के स्वामी, महान्चेता महेश्वर भगवान् शंकर जहाँ पर नित्य अवस्थित रहते हैं, ऐसे पवित्र अति गोपनीय स्थान का पता हमें बतलाईये, जहाँ सृष्टि के स्थाणु रूप भगवान् महेश्वर महाप्रलय पर्यन्त अति भयानक देवताओं तथा दैत्यों के लिए भी दुष्कर स्वरूप को धारण कर स्थित रहते हैं'।।१-४।।

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम्। तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम्।।५।।
ततो देवेन तुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया। कथितं भुवि विख्यातं यत्र नित्यं स्वयं स्थितः।।६।।
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी। महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति।।७।।

नन्दिकेश्वर ने कहा–देवाधिदेव शंकर ने पहले जिस उतम पुण्यप्रदायिनी कथा को मुझसे कहा है, उसी सारी कथा को महेश्वर को प्रणाम कर मैं आपसे बतला रहा हूँ। पार्वती के कल्याण की भावना से अति सन्तुष्ट होकर शिव ने पृथ्वी पर विख्यात उस पवित्र स्थान को बतलाया था, जहाँ वे नित्य निवास करते थे। सुमेरु के शिखर पर महादेव जी के आधे आसन पर विराजमान यशस्विनी पार्वती जी ने उसने विनम्र हो कर एक बार ऐसा पूछा।।५-७।।

देव्युवाच

भगवन्देवदेवेश चन्द्रार्धकृतशेखर। धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्ध्वरेतसाम्॥८॥
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्। ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम्॥९॥
जन्मान्तरसहस्त्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाऽऽचक्ष्व शङ्कर॥१०॥
यस्मिन्व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसि त्वं महेश्वर।
व्रतानि नियमाश्चैव आचारो धर्म एव च॥११॥
सर्वसिद्धिकरं यत्र ह्यक्षय्यगतिदायकम्। वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे॥१२॥

देवी ने कहा–देवदेवेश! मस्तक पर आधे चन्द्रमा से सुशोभित! भगवन्! इस पृथ्वी मण्डल पर ऊध्वरिता मनुष्यों के धर्मों का उपदेश मुझे दीजिये। किस प्रकार से जपा हुआ जप, हवन किया हुआ यज्ञ, विधिपूर्वक की गई तपस्या, ध्यान एवं अध्ययन से प्राप्त की गई पुण्य तथा विद्या शाश्वत फलदायी हो जाती है। जो पाप पूर्वकाल से सहस्त्रों जन्मों से-संचित होता चला जाता है, वह किस प्रकार नष्ट हो जाता है, हे शंकर! इस बात को मुझसे बतलाइये। हे महेश्वर! जिस क्षेत्र में अवस्थित होकर आप भक्ति से सन्तुष्ट हो जाते हैं और जहाँ पर किये गये व्रत, आचार, नियम, धर्म आदि सम्पूर्ण सिद्धियों के देने वाले होते हैं और कभी नष्ट नहीं होते, उसके बारे में समस्त वृत्तान्त को सुनने के लिए मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है, कृपया आप कहें॥८-१२॥

महेश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्। सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रियं मम॥१३॥
अष्टषष्टिः पुरा प्रोक्ता स्थानानां स्थानमुत्तमम्।
यत्र साक्षात्स्वयं रुद्रः कृत्तिवासाः स्वयं स्थितः॥१४॥

महेश्वर ने कहा- हे देवि! सभी क्षेत्रों में विख्यात, अति एकान्त एवं गोपनीय मेरे प्रिय अविमुक्त क्षेत्र का वर्णन सुनों, मैं कह रहा हूँ। जहाँ पर पूर्व काल से ही अति उत्तम अड़सठ स्थान गिनाये गये हैं, उस अविमुक्त क्षेत्र में रुद्र मूर्ति धारण कर गजेन्द्र का चर्म पहन कर मैं स्वयं निवास करता हूँ॥१३-१४॥

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम्। तत्क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥१५॥
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः। जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥१६॥
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम्। जन्मान्तरसहस्त्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम्॥१७॥
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाऽऽहितम्॥१८॥

निरन्तर निवास करते हुए मैंने उस क्षेत्र को कभी भी नहीं छोड़ा है। अतः वह अविमुक्त के नाम से विख्यात है। उस अविमुक्त क्षेत्र में परमसिद्धि प्राप्त होती है, परमगति मिलती है। जहाँ पर

किये गये जप, दान, हवन, यज्ञाराधन, तपस्या, ध्यान तथा अध्ययन आदि कर्म कभी नष्ट नहीं होते। पूर्वकाल के सहस्त्रों जन्मों में किये गये सभी पाप कर्म, जो संचित हो जाते हैं, अविमुक्त में प्रवेश करते ही नष्ट हो जाते हैं। रुई के समान इकट्ठे हुये वे पाप अविमुक्त रूप अग्नि से तुरन्त जल जाते हैं।।१५-१८।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः।।१९।।
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये।।२०।।
चन्द्रार्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः। शिवे मम पुरे देवि मोदन्ते तत्र मानवाः।।२१।।

हे प्रिय! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्ण संकर, कृमि, म्लेच्छ, अन्य पापयोनि में उत्पन्न होने वाले नीच मनुष्य, कीट, चींटे आदि, अन्य जो पशु तथा पक्षी जाति के जीव हैं, वे सभी काल के प्रभाव से यदि इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग करते हैं तो आधे चन्द्रमा से विभूषित मस्तक वाले हो, ललाट में मेरी ही भाँति तृतीय नेत्र तथा वृषभध्वज हो मेरे शिवपुर में आनन्द का उपभोग करते हैं।।१९-२१।।

अकामो वा सकामो वा ह्यपि तिर्यग्गतोऽपि वा।
अविमुक्ते त्यजन्प्राणान्मम लोके महीयते।।२२।।
अविमुक्तं यदागच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात्। अश्मना चरणौ भित्त्वा तत्रैव निधनं व्रजेत्।।२३।।
अविमुक्तं गतो देवि न निर्गच्छेत्ततः पुनः।
सोऽपि मत्पदमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।।२४।।

देवि! कामयुक्त हो व निष्काम हो, चाहे तिर्यक् योनि में ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो, इस अविमुक्त में प्राण छोड़कर मेरे लोक में पूजित होता है। जो मनुष्य कभी कालक्रम से अविमुक्त की यात्रा करता और पत्थर के टुकड़ों से चरणों को बाँधकर या तोड़कर प्राण त्याग करता है, अविमुक्त को प्राप्त कर फिर कभी उससे बाहर नहीं निकलता, वह भी मेरे स्थान को प्राप्त करता है, इसके बारे में शंका समाधान करने की आवश्यकता नहीं ?।।२२-२४।।

वस्त्रपदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम्। गोकर्णं रुद्रकर्णं च सुवर्णाक्षं तथैव च।।२५।।
अमरं च महाकालं तथा कायावरोहणम्।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात्सन्ध्ययोर्द्वयोः।।२६।।
कालिञ्जरवनं चैव शङ्कुकर्णं स्थलेश्वरम्।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि मम प्रिये।।
अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः।।२७।।

हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम्। जालेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा॥२८॥
महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्। गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च॥२९॥
अष्टावेतानि स्थानानि सान्निध्याद्धि मम प्रिये। अविमुक्ते वरारोहे त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः॥३०॥

वस्त्र, पद, रुद्रकोटि, सिद्धेश्वर महालय, (सिद्धेश्वर का विशाल आवासस्थान), गोकर्ण, रुद्रकर्ण, सुवर्णाक्ष, अमर, महाकाल, कायावरोहण-ये सब स्थान दोनों-प्रातः काल तथा सन्ध्याकाल की-सन्ध्याओं में मेरे सन्निधान के कारण परम पवित्र रहते हैं। हे प्रिये! कालिंजर नामक वन, शंकुकर्ण, स्थलेश्वर-ये सब भी मेरे सन्निधान से परमपवित्र हैं। अविमुक्त में मैं तीनों सन्ध्याओं में निवास करता हूँ। परमएकान्त हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जालेश्वर, श्री पर्वत, महालय, कृमिचण्डेश्वर, अति एकान्त केदार तथा महाभैरव-ये आठ स्थान मेरे तीनों संस्थाओं में निवास करने के कारण अति पवित्र हैं। हे सुन्दरि! इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों सन्ध्याओं में निवास करता हूँ-इसमें संशय नहीं॥२५-३०॥

यानि स्थानानि श्रूयन्ते त्रिषु लोकेषु सुव्रते। अविमुक्तस्य पादेषु नित्यं सन्निहितानि वै॥३१॥
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने। स्कन्दो वक्ष्यति माहात्म्यमृषीणां भावितात्मनाम्॥३२॥

इति श्री मात्स्ये महापुरोणऽविमुक्तमाहात्म्य एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥९७५८॥

हे सुव्रते! तीनों लोकों में जितने पुण्यप्रद स्थान बतलाये गये हैं, वे सभी अविमुक्त के चरणों में सर्वदा सन्निहित रहते हैं। शोभने! इसके बाद अविमुक्त की दिव्य कथा तथा भक्ति में लीन ऋषियों के वृत्तान्त को स्कन्द कहेंगे॥३१-३२॥

॥एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त॥१८१॥

❖❖❖

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वर द्वारा सनत्कुमार को काशी-माहात्म्य बतलाना, स्कन्द द्वारा काशी की स्थिति का वर्णन, अविमुक्त द्वारा महान् पापों के विनाश का माहात्म्य

सूत उवाच

कैलाशपृष्ठमासीनं स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम्। पप्रच्छुर्ऋषयः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः॥१॥

तथा राजर्षयः सर्वे ये भक्तास्तु महेश्वरे।
ब्रूहि त्वं स्कन्द भूर्लोके यत्र नित्यं भवः स्थितः॥२॥

सूत ने कहा- ऋषिवृन्द! प्राचीन काल में सनकादि परम तपस्वी ऋषिगण तथा महेश्वर में भक्ति रखने वाले जितने राजर्षि हैं- उन सबों ने एक बार कैलास की पीठ पर बैठे हुए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्द से पूछा- 'हे स्कन्द! मुझे पृथ्वीतल के उस स्थान का माहात्म्य बतलाईये, जहाँ पर नित्य भगवान् शंकर निवास करते हैं॥१-२॥

स्कन्द उवाच

महात्मा सर्वभूतात्मा देवदेवः सनातनः। घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवः॥३॥
आभूतसंप्लवं यावत्स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः। गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिति स्मृतम्॥४॥
अविमुक्ते सदा सिद्धिर्यत्र नित्यं भवः स्थितः।
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं यदुक्तं त्वीश्वरेण तु॥५॥
स्थानं परं पवित्रं च तीर्थमायतनं तथा। श्मशानसंस्थितं वेश्म दिव्यमन्तर्हितं च यत्॥६॥

स्कन्ध ने कहा–सभी जीवों के आत्मस्वरूप देवाधिदेव, कभी नष्ट न होने वाले, महनीय आत्मा भगवान् शंकर देवताओं तथा दानवों से दुष्करणीय महाभयानक रूप धारण कर जिस स्थान पर महाप्रयल तक स्थाणु रूप से निवास करते हैं, वह अति गोपनीय एवं एकान्त अविमुक्त नामक क्षेत्र है। उस अविमुक्त क्षेत्र में, नित्य शंकर निवास करते हैं, सर्वदा सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, स्वयं शिव ने उस अविमुक्त का जो माहात्म्य कहा है, उसे मैं कह रहा हूँ। यह काशी क्षेत्र परम पवित्र क्षेत्र है, इसमें अनेक पवित्र तीर्थ एवं देव मन्दिर हैं। इसमें श्मशान भूमि पर अवस्थित एक दिव्य भवन है, जो सर्वसाधारण को दिखाई नहीं पड़ता॥३-६॥

भूर्लोके नैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम्।
अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥७॥
ब्रह्मचर्यव्रतोपेताः सिद्धा वेदान्तकोविदाः। आ देहपतनाद्यावत्तत्क्षेत्रं यो न मुञ्चति॥८॥
ब्रह्मचर्यव्रतैः सम्यक्सम्यगिष्टं मखैर्भवेत्।
अपापात्मा गतिः सर्वा या तूक्ता च क्रियावताम्॥९॥

धरातल से उस शिवालय का संयोग नहीं है, प्रस्तुत वह आकाश मार्ग में अवस्थित है। उस शिवालय को जो लोग ब्रह्मचारी अथवा योगी नहीं हैं, वे नहीं देख पाते, केवल योगी जन समाधिस्थ होकर उसका दर्शन करते हैं। वेदान्त के जानने वाले ब्रह्मचर्य व्रत में निष्ठ सिद्ध लोग भली-भाँति ब्रह्मचर्य का पालन कर तथा विधिपूर्वक यज्ञों का अनुष्ठान कर जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को इस अविमुक्त क्षेत्र को शरीरान्त तक कभी न छोड़ने वाला मनुष्य, जो कभी पाप कर्म नहीं करता, प्राप्त करता है। वह गति क्रियानिष्ठ जनों के लिये कही जाती है॥७-९॥

हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम्। जालेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा॥२८॥
महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्। गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च॥२९॥
अष्टावेतानि स्थानानि सान्निध्याद्धि मम प्रिये। अविमुक्ते वरारोहे त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः॥३०॥

वस्त्र, पद, रुद्रकोटि, सिद्धेश्वर महालय, (सिद्धेश्वर का विशाल आवासस्थान), गोकर्ण, रुद्रकर्ण, सुवर्णाक्ष, अमर, महाकाल, कायावरोहण-ये सब स्थान दोनों-प्रातः काल तथा सन्ध्याकाल की-सन्ध्याओं में मेरे सन्निधान के कारण परम पवित्र रहते हैं। हे प्रिये! कालिंजर नामक वन, शंकुकर्ण, स्थलेश्वर-ये सब भी मेरे सन्निधान से परमपवित्र हैं। अविमुक्त में मैं तीनों सन्ध्याओं में निवास करता हूँ। परमएकान्त हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जालेश्वर, श्री पर्वत, महालय, कृमिचण्डेश्वर, अति एकान्त केदार तथा महाभैरव-ये आठ स्थान मेरे तीनों संस्थाओं में निवास करने के कारण अति पवित्र हैं। हे सुन्दरि! इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों सन्ध्याओं में निवास करता हूँ-इसमें संशय नहीं॥२५-३०॥

यानि स्थानानि श्रूयन्ते त्रिषु लोकेषु सुव्रते। अविमुक्तस्य पादेषु नित्यं सन्निहितानि वै॥३१॥
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने। स्कन्दो वक्ष्यति माहात्म्यमृषीणां भावितात्मनाम्॥३२॥

इति श्री मात्स्ये महापुरोणऽविमुक्तमाहात्म्य एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥९७५८॥

हे सुव्रते! तीनों लोकों में जितने पुण्यप्रद स्थान बतलाये गये हैं, वे सभी अविमुक्त के चरणों में सर्वदा सन्निहित रहते हैं। शोभने! इसके बाद अविमुक्त की दिव्य कथा तथा भक्ति में लीन ऋषियों के वृत्तान्त को स्कन्द कहेंगे॥३१-३२॥

॥एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त॥१८१॥

❖❖❖

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वर द्वारा सनत्कुमार को काशी-माहात्म्य बतलाना, स्कन्द द्वारा काशी की स्थिति का वर्णन, अविमुक्त द्वारा महान् पापों के विनाश का माहात्म्य

सूत उवाच

कैलाशपृष्ठमासीनं स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम्। पप्रच्छुर्ऋषयः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः॥१॥

तथा राजर्षयः सर्वे ये भक्तास्तु महेश्वरे।
ब्रूहि त्वं स्कन्द भूर्लोके यत्र नित्यं भवः स्थितः॥२॥

सूत ने कहा- ऋषिवृन्द! प्राचीन काल में सनकादि परम तपस्वी ऋषिगण तथा महेश्वर में भक्ति रखने वाले जितने राजर्षि हैं- उन सबों ने एक बार कैलास की पीठ पर बैठे हुए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्द से पूछा- 'हे स्कन्द! मुझे पृथ्वीतल के उस स्थान का माहात्म्य बतलाईये, जहाँ पर नित्य भगवान् शंकर निवास करते हैं॥१-२॥

स्कन्द उवाच

महात्मा सर्वभूतात्मा देवदेवः सनातनः। घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवः॥३॥
आभूतसंप्लवं यावत्स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः। गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिति स्मृतम्॥४॥
अविमुक्ते सदा सिद्धिर्यत्र नित्यं भवः स्थितः।
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं यदुक्तं त्वीश्वरेण तु॥५॥
स्थानं परं पवित्रं च तीर्थमायतनं तथा। श्मशानसंस्थितं वेश्म दिव्यमन्तर्हितं च यत्॥६॥

स्कन्ध ने कहा–सभी जीवों के आत्मस्वरूप देवाधिदेव, कभी नष्ट न होने वाले, महनीय आत्मा भगवान् शंकर देवताओं तथा दानवों से दुष्करणीय महाभयानक रूप धारण कर जिस स्थान पर महाप्रयल तक स्थाणु रूप से निवास करते हैं, वह अति गोपनीय एवं एकान्त अविमुक्त नामक क्षेत्र है। उस अविमुक्त क्षेत्र में, नित्य शंकर निवास करते हैं, सर्वदा सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, स्वयं शिव ने उस अविमुक्त का जो माहात्म्य कहा है, उसे मैं कह रहा हूँ। यह काशी क्षेत्र परम पवित्र क्षेत्र है, इसमें अनेक पवित्र तीर्थ एवं देव मन्दिर हैं। इसमें श्मशान भूमि पर अवस्थित एक दिव्य भवन है, जो सर्वसाधारण को दिखाई नहीं पड़ता॥३-६॥

भूर्लोके नैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम्।
अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥७॥
ब्रह्मचर्यव्रतोपेताः सिद्धा वेदान्तकोविदाः। आ देहपतनाद्यावत्तत्क्षेत्रं यो न मुञ्चति॥८॥
ब्रह्मचर्यव्रतैः सम्यक्सम्यगिष्टं मखैर्भवेत्।
अपापात्मा गतिः सर्वा या तूक्ता च क्रियावताम्॥९॥

धरातल से उस शिवालय का संयोग नहीं है, प्रस्तुत वह आकाश मार्ग में अवस्थित है। उस शिवालय को जो लोग ब्रह्मचारी अथवा योगी नहीं हैं, वे नहीं देख पाते, केवल योगी जन समाधिस्थ होकर उसका दर्शन करते हैं। वेदान्त के जानने वाले ब्रह्मचर्य व्रत में निष्ठ सिद्ध लोग भली-भाँति ब्रह्मचर्य का पालन कर तथा विधिपूर्वक यज्ञों का अनुष्ठान कर जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को इस अविमुक्त क्षेत्र को शरीरान्त तक कभी न छोड़ने वाला मनुष्य, जो कभी पाप कर्म नहीं करता, प्राप्त करता है। वह गति क्रियानिष्ठ जनों के लिये कही जाती है॥७-९॥

यस्तत्र निवसेद्विप्रोऽसंयुक्तात्माऽसमाहितः।
त्रिकालमपि भुञ्जानो वायुभक्षसमो भवेत्॥१०॥
निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्ते तु भक्तिमान्। ब्रह्मचर्यसमायुक्तः परमं प्राप्नुयात्तपः॥११॥

जो ब्राह्मण इस अविमुक्त क्षेत्र में कभी समाधि में निमग्न न होकर एवं आत्मा के साथ सम्बन्ध न करके तीनों वेला भरपेट भोजन करते हुए निवास करता है, वह भी वायु भक्षण कर जीवन-यापन करने वाले योगी की भाँति उत्तम गति का अधिकारी होता है। भक्तिपूर्वक जो मनुष्य क्षण भर भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए इस अविमुक्त में निवास करता है, परम तपस्या का फल प्राप्त करता है॥१०-११॥

योऽत्र मासं वसेद्धीरो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
सम्यक्तेन व्रतं चीर्णं दिव्यं पाशुपतं महत्॥१२॥
जन्ममृत्युभयं तीर्त्वा स याति परमां गतिम्।
नै श्रेयसीं गतिं पुण्यां तथा योगगतिं व्रजेत्॥१३॥

जो धीर पुरुष अल्प भोजन कर इन्द्रियों को स्ववश में रखकर एक मास तक निवास करता है, वह भली-भाँति महापाशुपत नामक दिव्य व्रत का अनुष्ठान करता है तथा जन्म एवं मृत्यु की भीति छोड़कर परमगति को प्राप्त करता है एवं निःश्रेयस् प्राप्त कराने वाली पुण्यगति को प्राप्त कर योगगति का भी अधिकारी होता है॥१२-१३॥

न हि योगगतिर्दिव्या जन्मान्तरशतैरपि। प्राप्यते क्षेत्रमाहात्म्यात्प्रभावाच्छङ्करस्य तु॥१४॥
ब्रह्महा योऽभिगच्छेत्तु अविमुक्तं कदाचन।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्ब्रह्महत्या निवर्तते॥१५॥

सैकड़ों जन्म प्रयत्न करते रहने पर भी वह दिव्य योग गति मनुष्य को प्राप्त होने वाली नहीं है; परन्तु भगवान् शंकर के प्रभाव तथा इस अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य से वह उस मनुष्य को प्राप्त हो जाती है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला भी यदि कभी अविमुक्त क्षेत्र की पवित्र यात्रा करता है तो वह भी उस क्षेत्र के माहात्म्य से ब्रह्महत्या से छुटकारा पा जाता है॥१४-१५॥

आ देहपतनाद्यावत्क्षेत्रं यो न विमुञ्चति। न केवलं ब्रह्महत्या प्राक्कृतं च निवर्तते॥१६॥
प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते।
अनन्यमानसो भूत्वा योऽविमुक्तं न मुञ्चति॥१७॥
तस्य देवः सदा तुष्टः सर्वान्कामान्प्रयच्छति।
द्वारं यत्सांख्ययोगानां स तत्र वसति प्रभुः॥१८॥

जो मनुष्य शरीरान्त पर्यन्त इस अविमुक्त क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ता, उसकी ब्रह्महत्या ही क्या पुराने कई जन्मों के किये गये घोरातिघोर पाप भी छूट जाते हैं। विश्वेश्वर भगवान् शिव का परम

पवित्र पद पाकर वह फिर कभी मर्त्यलोक में उत्पन्न नहीं होता। जो मनुष्य अनन्य चित्त हो अविमुक्त क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ता, उसके सभी मनोरथों को प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रदान करते हैं। वे भगवान् शंकर भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिए अपने गणों समेत वहाँ निवास करते हैं, जो सांख्य तथा योग का द्वार है।।१६-१८।।

सगणो हि भवो देवो भक्तानामनुकम्पया। अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः।।१९।।
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम्। अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम्।।२०।।

यदीच्छेन्मानवो धीमान्न पुनर्जायते क्वचित्।
मेरोः शक्तो गुणान्वक्तुं द्वीपानां च तथैव च।।२१।।
समुद्राणां च सर्वेषां नाविमुक्तस्य शक्यते।

वह अविमुक्त सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है, उसमें परमगति की प्राप्ति होती है। उस अविमुक्त में परमसिद्धि की प्राप्ति होती है, उसमें परमपद की प्राप्ति है, देवताओं तथा ऋषियों द्वारा सेवित उस अविमुक्त का सेवन अवश्य करना चाहिये। जो बुद्धिमान् पुरुष इस अविमुक्त क्षेत्र की इच्छा रखता है, वह पुनर्जन्म कभी नहीं धारण करता। सुमेरु पर्वत एवं सभी समुद्रों के तथा द्वीपों के गुणों का वर्णन तो किया जा सकता है, पर अविमुक्त के गुणों की प्रशंसा नहीं की जा सकती।।१९-२१.५।।

अन्तकाले मनुष्याणां छिद्यमानेषु मर्मसु।।२२।।
वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते।
अविमुक्ते ह्यन्तकाले भक्तानामीश्वरः स्वयम्।।२३।।

कर्मभिः प्रेर्यमाणानां कर्णजापं प्रयच्छति। मणिकर्ण्यां त्यजन्देहं गतिमिष्टां व्रजेन्नरः।।२४।।

मनुष्यों के शरीरान्त काल में जब कि उसका मर्मस्थल छिन्न-भिन्न होने लगता है, वायु का प्रबल वेग उठने लगता है, स्मृति भी शेष नहीं रहती, सभी कर्मों के फल उदित हो जाते हैं, उस समय भगवान् शंकर स्वयमेव अपने उन भक्तों को कानों में गुरुमंत्र का उपदेश करते हैं। मणिकर्णिका नामक तीर्थ पर शरीर को त्यागने वाला मनुष्य इष्टगति प्राप्त करता है।।२२-२४।।

ईश्वरप्रेरितो याति दुष्प्रापामकृतात्मभिः। अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुष्यं बहुकिल्विषम्।।२५।।
अविमुक्तं निषेवेत संसारभयमोचनम्। योगक्षेमप्रदं दिव्यं बहुविघ्नविनाशनम्।।२६।।

विघ्नैश्चाऽऽलोड्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न मुञ्चति।
स मुञ्चति जरां मृत्युं जन्म चेतदशाश्वतम्।।
अविमुक्तप्रसादात्तु शिवसायुज्यमाप्नुयात्।।२७।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९००७।।

—***—

ईश्वर की प्रेरणा से वह ऐसी उत्तम गति प्राप्त करता है, जो दुष्कर्मियों के लिए सर्वथा दुष्प्राप्य है। अनेक पापपूर्ण प्रपंचों से भरे हुए इस मानवजीवन को नाशवान् समझकर मनुष्य को सांसारिक भय को दूर करने वाले इस अविमुक्त क्षेत्र का सेवन करना चाहिए, वह योग क्षेम को देने वाला, दिव्यगुण युक्त एवं अनेक विघ्नों को नष्ट करने वाला है। अनेक विघ्नों से विचलित किये जाने पर भी जो अविमुक्त को नहीं छोड़ता, वह वृद्धावस्था मृत्यु तथा नश्वर जन्म को छोड़ता है एवं अविमुक्त के माहात्म्य से शिव की समीपता प्राप्त करता है।।२५-२७।।

।।एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८२।।

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

काशी के विविध माहात्म्य के प्रसंग में देवी और महादेव का संवाद

देव्युवाच

हिमवन्तं गिरिं त्यक्त्वा मन्दरं गन्धमादनम्। कैलासं निषधं चैव मेरुपृष्ठं महाद्युतिम्।।१।।
रम्यं त्रिशिखरं चैव मानसं सुमहागिरिम्। देवोद्यानानि रम्याणि नन्दनं वनमेव च।।२।।
सुरस्थानानि मुख्यानि तीर्थान्यायतनानि च। तानि सर्वाणि संत्यज्य अविमुक्ते रतिः कथम्।।३।।
किमत्र सुमहत्पुण्यं परं गुह्यं वदस्व मे। येन त्वं रमसे नित्यं भूतसम्पद्गुणैर्युतः।।४।।
क्षेत्रस्य प्रवरत्वं च ये च तत्र निवासिनः। तेषामनुग्रहः कश्चित्तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर।।५।।

पार्वती ने कहा-शंकर! अति शोभाशाली हिमवान् गिरि को छोड़कर तथा मन्दराचल, गन्धमादन, कैलास, निषध, सुमेरु के पृष्ठभाग, सुरम्य त्रिशिखर, महागिरि मानस आदि पर्वतों एवं परम मनोहर देवताओं की विविध अमराईयों तथा प्रसिद्ध नन्दन वन, प्रमुख देवताओं के स्थानों मन्दिरों तथा तीर्थों को छोड़कर तुम्हारी अनुरक्ति इस अविमुक्त क्षेत्र में क्यों हुई ? इसमें अति गोपनीय कौन-सा ऐसा पुण्य है, जिसके कारण तुम सभी भूतों, समृद्धियों तथा गुणों समेत उसमें नित्य निवास करते हो ? इस क्षेत्र की कौन ऐसी महिमा है, कौन-सा बड़प्पन है, वहाँ के निवासीगण कैसे होते हैं ? उनके ऊपर अपने द्वारा किये गये किसी अनुग्रह की कथा-इन सबके बारे में यथार्थ रूप में मुझसे कहिये।।१-५।।

शङ्कर उवाच

अत्यद्भुतमिमं प्रश्नं यत्त्वं पृच्छसि भामिनि। तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु।।६।।

शंकर ने कहा–प्रिये! तुम जिस प्रश्न को कर रही हो वह अत्यन्त अद्‌भुत है, उस सभी बातों को मैं बतला रहा हूँ सुनो।।६।।

वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता। प्रविष्टा त्रिपथा गङ्गा तस्मिन्क्षेत्रे मम प्रिये।।७।।
ममैव प्रीतिरतुला कृत्तिवासे च सुन्दरि। सर्वेषां चैव स्थानानां स्थानं तत्तु यथाऽधिकम्।।८।।
तेन कार्येण सुश्रोणि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम। तस्मिँल्लिङ्गे च सान्निध्यं मम देवि सुरेश्वरि।।९।।
क्षेत्रस्य च प्रवक्ष्यामि गुणान्गुणवतां वरे। याञ्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।१०।।

उस मेरे परमप्रिय क्षेत्र में वाराणसी नगरी है, जिसमें सिद्धों तथा गन्धर्वों से सेवित पुण्यसलिला त्रिपथगा गंगा बहती हुई प्रविष्ट होती हैं। हे सुन्दरि! कृत्तिवासा (गजचर्म पहिनने वाले) नामक लिंग में मेरी परम प्रीति है और सभी तीर्थ स्थानों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इस अविमुक्त क्षेत्र में भी मेरी परम प्रीति है। हे सुरेश्वरि! इसीलिये वहाँ के लिंग में मेरा सान्निध्य है। सभी गुणवानों में श्रेष्ठ! मैं उस अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य बतला रहा हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य अपने सभी पापकर्मों के छुटकारा पा जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।७-१०।।

यदि पापो यदि शठो यदि वाऽधार्मिको नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्यविमुक्तं व्रजेद्यदि।।११।।
प्रलये सर्वभूतानां लोके स्थावरजङ्गमे। न हि त्यजामि तत्स्थानं महागणशतैर्वृतः।।१२।।

यदि पापात्मा, दुष्ट एवं अधार्मिक मनुष्य भी हों और वे अविमुक्त क्षेत्र की यात्रा करें तो सभी पापकर्मों से छुटकारा पा जाते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होने पर भी, जबकि सभी स्थावर-जंगमात्मक जगत् का विनाश होने लगता है, मैं अपने सौ महान् गणों को साथ लेकर इस अविमुक्त क्षेत्र की रक्षा करता हूँ और इसको उस समय भी नहीं छोड़ता।।११-१२।।

यत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। वक्त्रं मम महाभागे प्रविशन्ति युगक्षये।।१३।।
तेषां साक्षादहं पूजां प्रतिगृह्णामि पार्वति। सर्वगुह्योत्तमं स्थानं मम प्रियतमं शुभम्।।१४।।
धन्याः प्रविष्टाः सुश्रोणि मम भक्ता द्विजातयः।
मद्‌भक्तिपरमा नित्यं ये मद्‌भक्तास्तु ते नराः।।१५।।
तस्मिन्प्राणान्परित्यज्य गच्छन्ति परमां गतिम्। सदा यजति रुद्रेण सदा दानं प्रयच्छति।।१६।।

महाभाग्यशालिनी! कल्पान्त के समय, जब देवता लोग गन्धर्वों, यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों समेत मेरे मुख में प्रविष्ट हो जाते हैं, पार्वति! उस समय उन सबकी दी हुई पूजा को साक्षात् मैं ग्रहण करता हूँ। यह मेरा स्थान सभी गोपनीय स्थानों में एक है, यह मेरा अतिप्रिय एवं कल्याणकारी स्थान है सुन्दरि! वे ब्राह्मणादि द्विजातिवर्ण मेरे भक्त धन्य हैं। जो मेरी भक्ति में तल्लीन होकर नित्य मेरी पूजा में तत्पर रहते हुए इस क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं। वे लोग इस परम पुण्यप्रद क्षेत्र में प्राणों को छोड़कर परमगति की प्राप्ति करते हैं। इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले मनुष्य सर्वदा

तपस्या करने वाले,सर्वदा रुद्र के मन्त्रों से यज्ञाराधना करने वाले तथा सर्वदा दान देने वाले होते हैं।।१३-१६।।

सदा तपस्वी भवति अविमुक्तस्थितो नरः। यो मां पूजयते नित्यं तस्य तुष्याम्हं प्रिये।।१७।।
सर्वदानानि यो दद्यात्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च स प्रपद्येत मामिह।।१८।।
अविमुक्तं सदा देवी ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः।
ते तिष्ठन्तीह सुश्रोणि मद्भक्ताश्च त्रिविष्टपे।।१९।।
मत्प्रसादात्तु ते देवि दीप्यन्ते शुभलोचने। दुर्धराश्चैव दुर्धर्षा भवन्ति विगतज्वराः।।२०।।
अविमुक्तं शुभं प्राप्य मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः।
निर्धूतपापा विमला भवन्ति विगतज्वराः।।२१।।

हे प्रिये! जो मनुष्य मेरी नित्य पूजा करता है, उसके ऊपर मैं प्रसन्न रहता हूँ। इस अविमुक्त में निवास कर जो मनुष्य सभी प्रकार के दान करते हैं, सभी यज्ञों से दीक्षित होते हैं, सभी तीर्थों के जलों से अभिषिक्त होते हैं, वह मुझे प्राप्त करते हैं। हे देवि सुन्दरि! जो मनुष्य निश्चिन्त होकर सर्वदा अविमुक्त की यात्रा करते हैं, वे मेरे भक्त इस स्वर्गरूप अविमुक्त में निवास करते हैं। हे सुन्दर नेत्रोंवाली! मेरे प्रसाद से वे मनुष्य तेज से प्रकाशित रहते हैं, शत्रुओं द्वारा वश में नहीं किये जाते, अति पराक्रमी होते हैं तथा उनके सभी सन्ताप दूर हो जाते हैं। निश्चय पर पहुँचे हुए मेरे भक्तगण इस कल्याणकारी अविमुक्त को प्राप्त कर सभी पापों तथा सन्तापों से उन्मुक्त होकर निर्मल हो जाते हैं।।१७-२१।।

पार्वत्युवाच

दक्षयज्ञस्त्वया देव मत्प्रियार्थे निषूदितः। अविमुक्तगुणानां तु न तृप्तिरिह जायते।।२२।।

पार्वती ने कहा–देव! आपने मेरे ही प्रिय कार्य को करने के लिए दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था। अतः पुनः उसी मुझे प्रिय लगने वाली कथा को मुझसे कहिये; क्योंकि अविमुक्त के गुणों के श्रवण करने से मुझे तृप्ति तो होती ही नहीं।।२२।।

ईश्वर उवाच

क्रोधेन दक्षयज्ञस्तु त्वत्प्रियार्थे विनाशितः। महाप्रिये महाभागे नाशितोऽयं वरानने।।२३।।
अविमुक्ते यजन्ते तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।।२४।।

महादेव ने कहा–हे महाभाग्यशालिनि! परम प्रियतमे! सुन्दरि! सच है, तुम्हारे प्रिय कार्य को करने ही के लिये मैंने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था, अतः पुनः तुम्हारे प्रिय कार्य को कर रहा हूँ, सुनो! जो मेरे भक्त किसी एक निश्चय पर पहुँचकर इस अविमुक्त क्षेत्र में यज्ञ करते हैं, वे सैकड़ों कोटि वर्षों के बाद भी इस मर्त्यलोक में पुनः नहीं आते।।२३-२४।।

देव्युवाच

दुर्लभास्तु गुणा देव अविमुक्ते तु कीर्तिताः। सर्वांस्तान्मम तत्त्वेन कथयस्व महेश्वर॥२५॥
कौतूहलं महादेव हृदिस्थं मम वर्तते। तत्सर्वं मम तत्त्वेन आख्याहि परमेश्वर॥२६॥

पार्वती ने कहा –महेश्वर! आप अविमुक्त के दुर्लभ गुणों का वर्णन कर चुके, अब पुनः उनका यथार्थ वर्णन कीजिए। देवाधिदेव! मेरे हृदय में बड़ा कौतुहल हो रहा है, परमेश्वर! अविमुक्त के उन सब गुणों के तात्त्विक वर्णन मुझसे करें।।२५-२६।।

ईश्वर उवाच

अक्षया ह्यमराश्चैव ह्यदेहाश्च भवन्ति ते। मत्प्रसादाद्वरारोहे मामेव प्रविशन्ति वै॥२७॥
ब्रूहि ब्रूहि विशालाक्षि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि॥२८॥

महादेव ने कहा–सुन्दरि! जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करते हुये मेरी पूजा करते हैं, वे अन्त में देवयोनि प्राप्त करते हैं एवं कलुषित देह से रहित होकर मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरे जैसा स्वरूप प्राप्त करते हैं। विशाल नेत्रों वाली! पुनः कहो, तुम्हें अन्य कौन-सी कथा सुनायें?।।२७-२८।।

देव्युवाच

अविमुक्ते महाक्षेत्रे अहो पुण्यमहो गुणाः। न तृप्तिमधिगच्छामि ब्रूहि देव पुनर्गुणान्॥२९॥

देवी ने कहा–देव! उस अविमुक्त क्षेत्र में अतिशय पुण्य प्राप्ति होती है, उसके गुण अपरिमित जान पड़ते हैं, उन सबका वर्णन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही हैं, आप पुनः उनका वर्णन कीजिये।।२९।।

ईश्वर उवाच

महेश्वरि वरारोहे शृणु तांस्तु मम प्रिये। अविमुक्ते गुणा ये तु तथाऽन्यानपि तच्छृणु॥३०॥
शाकपर्णाशिनो दान्ताः संप्रक्षाल्या मरीचिपाः।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथा परे॥३१॥
मासि मासि कुशाग्रेण जलमास्वादयन्ति वै।
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा परे॥३२॥
आदित्यवपुषः सर्वे जितक्रोधा जितेन्द्रियाः। एवं बहुविधैर्धर्मैरन्यत्र चरितव्रताः॥३३॥
त्रिकालमपि भुञ्जाना येऽविमुक्तनिवासिनः।
तपश्चरन्ति वाऽन्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
येऽविमुक्ते वसन्तीह स्वर्गे प्रतिवसन्ति ते॥३४॥

ईश्वर ने कहा–सुन्दरि! महेश्वरि! इस मेरे अतिप्रिय अविमुक्त क्षेत्र में जो अन्यान्य गुण हैं, उन्हें तुम सुनो। इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले एवं तीनों बेला भर पेट भोजन करने वाले प्राणी,

अन्यत्र रहकर शाक एवं पत्तों पर निर्वाह करने वाले, संयमी, भली-भाँति स्नानादि से पवित्र हो सूर्य की किरणों को पान करने वाले, दाँत से कच्चे फलों का भोजन कर निर्वाह करने वाले, उलूखल में कूटकर पत्थर पर पीसकर भोजन करने वाले, महीने-मास तक कुशा के अग्रभाग से जल पीकर निर्वाह करने वाले, वृक्ष की जड़ों पर शयन करने वाले, पत्थर की शिलाओं पर सोने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी शरीर वाले, क्रोध को वश में रखने वाले, इन्द्रिय को जीतने वाले, इसी प्रकार के अन्यान्य कठोर उपायों द्वारा साधना में निरत रहने वाले तपस्वियों के समान महान् पुण्य प्राप्त करते हैं अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अन्यत्र रहकर तपस्या करने वाले मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते। जो इस अविमुक्त में निवास करते हैं, वे मानो साक्षात् स्वर्गलोक में निवास करते हैं।।३१-३४।।

मत्समः पुरुषो नास्ति त्वत्समा नास्ति योषिताम्।
अविमुक्तसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति।।३५।।
अविमुक्ते परो योगो ह्यविमुक्ते परागतिः।
अविमुक्ते परो मोक्षः क्षेत्रं नैवास्ति तादृशम्।।३६।।

मेरे समान जिस प्रकार जगत् में काई अन्य पुरुष नहीं है और तुम्हारे समान कोई अन्य स्त्री नहीं है, उसी प्रकार अविमुक्त के समान न तो कोई क्षेत्र था और न होगा। अविमुक्त में परमयोग की प्राप्ति होती है, अविमुक्त में परमगति मिलती है, अविमुक्त में परम मोक्ष प्राप्त होता है। इसके समान अन्य कोई क्षेत्र नहीं है।।३५-३६।।

परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि तत्त्वेन वरवर्णिनि। अविमुक्ते महाक्षेत्रे यदुक्तं हि मया पुरा।।३७।।
जन्मान्तरशतैर्देवि योगोऽयं यदि लभ्यते। मोक्षः शतसहस्रेण जन्मना लभ्यते न वा।।३८।।
अविमुक्ते न सन्देहो भद्भक्तः कृतनिश्चयः।
एकेन जन्मना सोऽपि योगं मोक्षं च विन्दति।।३९।।

हे सुन्दरि! मैं उस अति गोपनीय बात को बतला रहा हूँ, जिसे इसी अविमुक्त क्षेत्र में मैंने प्राचीन काल में कहा है। हे देवि! सैकड़ों जन्मों के संचित बड़े भाग्य से जो भली-भाँति योग का अभ्यास करता है, वह सैकड़ों-हजारों जन्मों में मोक्ष प्राप्त करता है या नहीं, इसमें तो संदेह रहता है; किन्तु इस बात में तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि जो मेरा भक्त निश्चयपूर्वक इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करता है, वह एक ही जन्म में योग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति करता है।।३७-३९।।

अविमुक्तं नरा देवि ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः। ते विशन्ति परं स्थानं मोक्षं परमदुर्लभम्।।४०।।
पृथिव्यामीदृशं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति। चतुर्मूर्तिः सदा धर्मस्तस्मिन्सन्निहितः प्रिये।।
चतुर्णामपि वर्णानां गतिस्तु परमा स्मृता।।४१।।

हे देवि! जो मनुष्य अति निश्चय पूर्वक अविमुक्त क्षेत्र की यात्रा करते हैं, वे परममोक्ष के पद

को प्राप्त करते हैं, जो जगत् में अति दुर्लभ है। इस पृथ्वी मण्डल में इस प्रकार का कोई क्षेत्र न तो था और न होगा। हे प्रिये! उस अविमुक्त क्षेत्र में धर्म चारमूर्ति में सर्वदा सन्निहित रहता है। उसमें निवास करने वाले चारों वर्णों के लिए परमगति कही गयी है।।४०-४१।।

देव्युवाच

श्रुता गुणास्ते क्षेत्रस्य इह चान्यत्र ये प्रभो। वदस्व भुवि विप्रेन्द्राः कं वा यज्ञैर्यजन्ति ते।।४२।।

देवी ने कहा-प्रभो! आपके इस अविमुक्त क्षेत्र के एहिक एवं पारलौकिक फल प्रदान करने वाले गुणों को तो मैं सुन चुकी। अब यह बताईये कि पृथ्वीतल पर ब्राह्मणगण यज्ञों द्वारा किसकी आराधना करते हैं ?।।४२।।

ईश्वर उवाच

इज्यया चैव मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ये। न तेषां भयमस्तीति भवं रुद्रं यजन्ति यत्।।४३।।

अमन्त्रो मन्त्रको देवि द्विविधो विधिरुच्यते।
सांख्यं चैवाथ योगश्च द्विविधो योग उच्यते।।४४।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।४५।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।४६।।

निर्गुणः सगुणो वाऽपि योगश्च कथितो भुवि।
सगुणश्चैव विज्ञेयो निर्गुणो मनसः परः।।४७।।
एतत्ते कथितं देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।।४८।।

ईश्वर ने कहा- पार्वति! वे ब्राह्मण लोग दान एवं मन्त्रों द्वारा मेरी पूजा करते हैं, उनको किसी प्रकार का भी भय नहीं रहता, जो भव तथा रुद्र की पूजा करते हैं। बिना मन्त्र का तथा मंत्रों सहित-ये दो प्रकार की विधियाँ कही गई हैं, सांख्य और योग-ये दो योग माने गये हैं। एकनिष्ठ होकर जो सभी प्राणियों में अवस्थित मेरी सेवा करता है, वह योगी सर्वदा गृहकार्य में रहकर भी मुझमें निवास करता है। अपनी तरह जो सभी जीवों में व्यवहार करता है तथा संसार की सभी चराचर वस्तुओं का अस्तित्व मुझ ही में देखता है, उसको में कभी नहीं छोड़ता और न वह कभी मुझे छोड़ता है। पृथ्वी तल पर निर्गुण और सगुण-ये योग के मार्ग कहे गये हैं। सगुण योग का ही ज्ञान हो सकता है। निर्गुण योग तो मन से परे की वस्तु है। हे देवि! जिस बात को तुमने मुझसे पूछा था, वह मैं तुम्हें बतला चुका।।४३-४८।।

देव्युवाच

या भक्तिस्त्रिविधा प्रोक्ता भक्तानां बहुधा त्वया।
तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः कथयस्व मे।।४९।।

देवी ने कहा–हे शंकर! बहुधा भक्तों को तुमने तीन प्रकार की भक्ति का उपेदश दिया है, उसे मैं सुनना चाहती हूँ, तत्त्वतः उसको मुझे बताओ।।४९।।

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति देवेशि भक्तानां भक्तिवत्सले।
प्राप्य सांख्यं च योगं च दुःखान्तं च नियच्छति।।५०।।

ईश्वर ने कहा–हे भक्तों की रक्षा करने वाली पार्वति! देवेशि! मनुष्य सांख्य एवं योग की उपलब्धि करके अपने दुःखों का अन्त करता है।।५०।।

सदा यः सेवते भिक्षां तमो भवति रञ्जितः।
रञ्जनात्तन्मयो भूत्वा लीयते स तु भक्तिमान्।।५१।।
शास्त्राणां तु वरारोहे बहुकारणदर्शिनः। न मां पश्यन्ति ते देवि ज्ञानवाक्यविवादिनः।।५२।।
परमार्थज्ञानतृप्ता युक्ता जानन्ति योगिनः।
विद्यया विदितात्मानो योगस्य च द्विजातयः।।५३।।
प्रत्याहारेण शुद्धात्मा नान्यथा चिन्तयेच्च तत्।
तुष्टिं च परमां प्राप्य योगं मोक्षं परं तथा।।
त्रिभिर्गुणैः समायुक्तो ज्ञानवान्पश्यतीह माम्।।५४।।

भक्तजन सर्वदा भिक्षाटन करते हुए भी परमानन्द का उपभोग करते हैं एवं उस परमानन्द के कारण तन्मय होकर मुझी में लीन हो जाते हैं। हे सुन्दरि! शास्त्रों में अनेक कारणों एवं वादों के देखने वाले तथा ज्ञान के वाक्यों पर विवाद करने वाले मुझे नहीं देख पाते; किन्तु परमार्थ ज्ञान से संयुक्त जो योगीजन हैं, वही मुझे भली–भाँति जान पाते हैं। विद्या द्वारा आत्मा को यथार्थ रूप में जानने वाले, योग को जानने वाले ब्राह्मणादि द्विजाति वर्ग प्रत्याहार (निवृत्ति, मनोनिग्रह) द्वारा शुद्धात्मा होकर, अन्यथा चिन्तन न करते हुए अर्थात् परमात्मा को मुझसे अतिरिक्त न मानते हुए परम सन्तोष, परमयोग तथा परममोक्ष को प्राप्त करते हैं। इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों गुणों से युक्त होकर ज्ञानवान् पुरुष मेरा दर्शना करता है।।५१-५४।।

एतत्ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि। भूय एव वरारोहे कथयिष्यामि सुव्रते।।५५।।
गुह्यं पवित्रमथवा यच्चापि हृदि वर्तते। तत्सर्वं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये।।५६।।

देवि! यह वृत्तान्त तो मैं तुमसे कह चुका, अब इसके अतिरिक्त तुम क्या सुनना चाहती हो बताओ। सुन्दरि! सुव्रते! पुनः अविमुक्त के विषय में तुमसे वर्णन कर रहा हूँ। प्रिये! अति गोपनीय, पवित्र जो कुछ भी मेरे हृदय में भाव विद्यमान हैं, उन सबको तुमसे कह रहा हूँ, स्थिरचित्त होकर सुनो।।५५-५६।।

देव्युवाच

त्वद्रूपं कीदृशं देव युक्ताः पश्यन्ति योगिनः। एतं मे संशयं ब्रूहि नमस्ते सुरसत्तम॥५७॥

देवी ने कहा–देव! योगी लोग तुम्हारे किस प्रकार के रूप का दर्शन करते हैं ? देवताओं में श्रेष्ठ! मेरे इस संशय को तुम बतलाकर दूर करो, मेरा प्रणाम है॥५७॥

श्रीभगवानुवाच

अमूर्तं चैव मूर्तं च ज्योतीरूपं हि तत्स्मृतम्।
तस्योपलब्धिमन्विच्छन् यत्नः कार्यो विजानता॥५८॥

गुणैर्वियुक्तो भूतात्मा एवं वक्तुं न शक्यते। शक्यते यदि वक्तुं वै दिव्यैर्वर्षशतैर्न वा॥५९॥

श्री भगवान् ने कहा–वह मेरा ज्योतिःस्वरूप अमूर्त एवं मूर्त स्मरण किया गया है, उसकी प्राप्ति की इच्छा कर ज्ञानवान् पुरुष को यत्न करना चाहिए। मैं तीनों गुणों से सर्वदा रहित एवं निखिल प्राणि रूप हूँ, इस प्रकार से मेरा वर्णन कोई नहीं कर सकता। यदि कोई करे भी तो वह सैकड़ों दिव्य वर्षों में कर सकता है या नहीं–इसमें भी सन्देह है॥५८-५९॥

देव्युवाच

किंप्रमाणं तु तत्क्षेत्रं समन्तात्सर्वतोदिशम्। यत्र नित्यं स्थितो देवो महादेवो गणैर्युतः॥६०॥

देवी ने कहा–शंकर वह तुम्हारा क्षेत्र जिसमें तुम अपने गणों के साथ सर्वदा स्थित रहते हो, चारों ओर दिशाओं में कितनी दूर तक फैला हुआ है?॥६०॥

ईश्वर ने कहा–वह मेरा क्षेत्र पूर्व से पश्चिम में दो योजन तथा दक्षिण उत्तर में आधे योजन तक फैला हुआ है। वरणा से लेकर असी की शुक्ल (?) नदी पर्यन्त वाराणसी नगरी है, भीष्म चण्डिका से प्रारम्भ होकर पर्वतेश्वर तक इसका विस्तार है।, जहाँ पर कूष्माण्ड, गजतुण्ड, जयन्त प्रभृति उत्कट पराक्रमशाली विनायकगण नियुक्त हैं॥६१-६३॥

ईश्वर उवाच

द्वियोजनं तु तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्मृतम्। अर्धयोजनविस्तीर्णं तत्क्षेत्रं दक्षिणोत्तरम्॥६१॥

वरणाऽसी नदी यावत्तावच्छुक्लनदी तु वै। भीष्मचण्डिकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके॥६२॥

गणा यत्रावतिष्ठन्ते सन्नियुक्ता विनायकाः।
कूष्माण्डगजतुण्डश्च जयन्तश्च मदोत्कटाः॥६३॥
सिंहव्याघ्रमुखाः केचिद्विकटाः कुब्जवामनाः।
यत्र नन्दी महाकालश्चण्डघण्टो महेश्वरः॥६४॥

दण्डचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः। एते चान्ये च बहवो गणाश्चैव गणेश्वराः॥६५॥

महोदरा महाकाया वज्रशक्तिधरास्तथा। रक्षन्ति सततं देवि ह्यविमुक्तं तपोवनम्॥
द्वारे द्वारे च तिष्ठन्ति शूलमुद्गरपाणयः॥६६॥

इन गणों में से कोई तो सिंह तथा व्याघ्र के समान विकराल मुख वाले हैं, कुछ बड़े विशाल हैं, कुछ बौने हैं तथा कुछ कूबरे हैं। नन्दी, महाकाल, चण्डघण्ट, महेश्वर, दण्डचण्डेश्वर, महाबलवान् घण्टाकर्ण तथा इन सबों के अतिरिक्त अन्य बहुतेरे गण तथा गणेश्वर वहाँ निवास करते हैं। ये बड़े विशाल उदर वाले, महाकाय, वज्र एवं शक्ति धारण किये हुए इस अविमुक्त तपोवन की निरन्तर रक्षा किया करते हैं। शूल और मुद्गर हाथ से लेकर प्रत्येक द्वार पर वहाँ ये सदा अवस्थित रहते हैं।।६४-६६।।

सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलाजिनपयस्विनीम्।
वाराणस्यां तु यो दद्यात्सवत्सां कांस्यकभाजनाम्॥६७॥
गां दत्त्वा तु वरारोहे ब्राह्मणे वेदपारगे। आसप्तमं कुलं तेन तारितं नात्र संशयः॥६८॥

सुन्दरि! जो कोई मनुष्य सुवर्ण की सींगों वाली, चाँदी की खुरों वाली, सुन्दर वस्त्र एवं चर्म से सुशोभित, दूध देने वाली, सवत्सा गौ को कांसे के बने हुए दोहन पात्र समेत इस काशी पुरी में वेदों के पारगामी ब्राह्मण को दान करता है, वह अपने सातवें पूर्व पुरुषों तक को नरक से उबार लेता है, इसमें सन्देह नहीं।।६७-६८।।

यो दद्याद्ब्राह्मणे किञ्चित्तस्मिन्क्षेत्रे वरानने। कनकं रजतं वस्त्रन्नाद्यं बहुविस्तरम्॥
अक्षयं चाव्ययं चैव स्यातां तस्य सुलोचने॥६९॥
शृणु तत्त्वेन तीर्थस्य विभूतिं व्युष्टिमेव च।
तत्र स्नात्वा महाभागे भवन्ति नीरुजा नराः॥७०॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः। तदवाप्नोति धर्मात्मा तत्र स्नात्वा वरानने॥७१॥

हे सुमुखि! उस अविमुक्त क्षेत्र में जो मनुष्य ब्राह्मण को सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, अन्नादि का किञ्चित भी दान देता है, हे सुलोचने! वह उसे अक्षय एवं अव्यय रूप में प्राप्त होते हैं। हे महाभागे! अब उस अविमुक्त की विभूति तथा फल को यथार्थतः सुनो। वहाँ स्नान करके मनुष्य रोग से मुक्त हो जाते हैं। हे वरानने! उस अविमुक्त क्षेत्र में स्नान कर धर्मात्मा मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है।।६९-७१।।

बहुस्वल्पे च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे। शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते॥७२॥
वाराण्सीजाह्नवीभ्यां सङ्गमे लोक विश्रुते।
दत्त्वाऽन्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते॥७३॥
एतत्ते कथितं देवि तीर्थस्य फलमुत्तमम्॥७४॥

अपनी सामर्थ्य के अनुकूल अधिक व न्यून, जो कुछ भी वेदों के पारगामी-ब्राह्मण को

दान करता है, वह शुभ गति प्राप्त करता है तथा अग्नि की भाँति तेजस्वी होता है। लोक में विख्यात गंगा और वाराणसी के संगम पर मनुष्य विधिपूर्वक अन्नदान देकर पुनः मृत्यु लोक में उत्पन्न नहीं होता। हे देवि! उस अविमुक्त तीर्थ का यह सुन्दर फल मैं तुम्हें सुना चुका।।७२-७४।।

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तीर्थस्य फलमुत्तमम्। उपवासं तु यः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः।।
सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।७५।।

पुनः दूसरा फल इसी तीर्थ का तुम्हें बतला रहा हूँ। जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में उपवास करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है, वह सौत्रामणि नामक यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।।७५।।

एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र वरानने। यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति।।७६।।
अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः। प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसन्दिग्धं वरानने।।७७।।
कुर्वन्त्यनशनं ये तु मद्भुक्ताः कृतनिश्चयाः। न तेषां पुनरावृत्ति कल्पकोटिशतैरपि।।७८।।
अर्चयेद्यस्तु मां देवि अविमुक्ते तपोवने। तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि यदवाप्नोति मानवः।।७९।।
दशाश्वमेधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः।।८०।।

हे वरानने! जो कोई मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में एक मास तक निवास करता है, वह अपने समस्त गत जीवन के किये गये पापों से मुक्ति प्राप्त करता है। हे वरानने। इस अविमुक्त क्षेत्र में जो मनुष्य विधानपूर्वक अग्नि प्रवेश करते हैं, वे निस्सन्देह मेरे ही मुख में प्रवेश करते हैं। जो मेरे भक्त निश्चयपूर्वक इस अविमुक्त क्षेत्र में आकर अनशनपूर्वक निवास करते हैं, वे शतकोटि कल्प में भी कभी जन्म नहीं ग्रहण करते। हे देवि! मैं तुम्हें इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले मनुष्य के लिए अपनी पूजा करने का विधान बतला रहा हूँ, जिस प्रकार उसे पूजा करनी चाहिए। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मेरी बतलाई हुई विधि से मेरी पूजा करने वाला मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों के पुण्य को प्राप्त करता है।।७६-८०।।

दशसौवर्णिकं पुष्पं योऽविमुक्ते प्रयच्छति। अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धदाने तथा शृणु।।
भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतम्।।८१।।
सम्मार्जने पञ्चशतं सहस्रमनुलेपने। मालया शतसहस्रमनन्तं गीतवाद्यतः।।८२।।

जो इस अविमुक्त क्षेत्र में पुष्पों द्वारा मेरी पूजा करता है, वह दस सुवर्ण मुद्रा के दान करने का फल प्राप्त करता है। धूप देने से अग्निहोत्र का फल प्राप्त होता है, अब गन्ध दान का फल सुनो। वह गन्धदान अन्यत्र के भूमिदान के बराबर माना जाता है। भली-भाँति स्नान करने से पाँच सौ तथा चन्दन लगाने से एक सहस्र मुद्रा का फल होता है। माला से सौ सहस्र मुद्रा का फल एवं गायन तथा वादन के द्वारा अनन्त मुद्रादान का फल प्राप्त होता है।।८१-८२।।

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देव स्थानमेतत्प्रकीर्तितम्। रहस्यं श्रोतुमिच्छामि यदर्थं त्वं न मुञ्चसि।।८३।।

देवी ने कहा–देव अति अद्भुत इस स्थान का वर्णन तो तुम कर चुके, अब मैं इस रहस्य को जानना चाहती हूँ कि किसलिये तुम इसे नहीं छोड़ते ?॥८३॥

ईश्वर उवाच

आसीत्पूर्वं वरारोहे ब्रह्मणस्तु शिरो वरम्। पञ्चमं शृणु सुश्रोणि जातं काञ्चनसप्रभम्॥८४॥
ज्वलत्तत्पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः। तदेवमब्रवीद्देवि जन्म जानामि ते ह्यहम्॥८५॥
ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च। वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण च्छिन्नं तस्य शिरो मया॥८६॥

ईश्वर ने कहा–सुन्दरि! प्राचीन काल में महात्मा ब्रह्मा को सुवर्ण के समान कान्तिमान् एक पाँचवाँ सिर उत्पन्न हुआ था। जो अति तेज से देदीप्यमान हो रहा था देवि! ब्रह्मा के उस पाँचवें सिर ने मुझसे इस प्रकार कहा कि 'मैं तुम्हारा जन्म जानता हूँ।' उसकी इस अपमानपूर्ण बात को सुनकर क्रोधयुक्त एवं लाल नेत्र हो मैंने अपने बायें अंगुठे के नख के अग्रभाग से उस सिर को काट डाला॥८४-८६॥

ब्रह्मोवाच

यदा निरपराधस्य शिरश्छिन्नं त्वया मम।
तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि॥
ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चर तीर्थानि भूतले॥८७॥
ततोऽहं गतवान्देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम्।
तत्र नारायणः श्रीमान्मया भिक्षां प्रयाचितः॥८८॥
ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम्।
स्रवतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता॥८९॥

ब्रह्मा ने कहा–जो तुमने बिना किसी अपराध के ही मेरे सिर को इस प्रकार काट दिया, सो मेरे शाप के कारण तू कपाल धारण करने वाला हो जा और ब्रह्महत्या के पास से आकुलित हो पृथ्वी के सभी तीर्थों में भ्रमण कर। देवि! ब्रह्मा की ऐसी बात सुन मैं पर्वतराज हिमालय के ऊपर गया और वहाँ पर विराजमान श्रीयुत् नारायण भगवान् से भिक्षा की याचना की। उन भगवान् ने अपने पार्श्व स्थान को नख के अग्रभाग में विदीर्ण किया, जिससे उनके रक्त की एक विशाला धारा बह निकली॥८७-८९॥

प्रयाता साऽतिविस्तीर्णा योजनार्धशतं तदा। न सम्पूर्णं कपालं तु घोरमद्भुतदर्शनम्॥९०॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता। प्रोवाच भगवान्विष्णुः कपालं कुत ईदृशम्॥९१॥
आश्चर्यभूतं देवेश संशयो हृदि वर्तते। कुतश्च सम्भवो देव सर्वं मे ब्रूहि पृच्छतः॥९२॥

बहते हुए अतिविस्तृत रूप में वह धारा पचास योजन तक बह चली; किन्तु तब भी मेरा

वह अति अद्भूत एवं घोर दिखाई पड़ने वाला कपालपूर्ण नहीं हो सका। इस प्रकार जब एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वह धारा अविरल रूप में प्रवाहित होती रही, तव भगवान् विष्णु ने कहा कि 'यह इस प्रकार का अद्भुत कपाल कहाँ से आग गया? देवेश! यह तो अति आश्चर्यमय कपाल है, मेरे हृदय में संशय उत्पन्न हो रहा है, अतः मुझसे बताईये कि यह कहाँ से आपको प्राप्त हुआ?'।।९०-९२।।

देवदेव उवाच

श्रूयतामस्य हे देव कपालस्य तु सम्भवः। शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।।९३।।
ब्रह्माऽसृजद्वपुर्दिव्यमद्भुतं लोमहर्षणम्। तपसश्च प्रभावेण दिव्यं काञ्चनसन्निभम्।।९४।।
ज्वलत्तत्पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः। निकृत्तं तन्मया देव तदिदं पश्य दुर्जयम्।।९५।।
यत्र यत्र च गच्छामि कपालं तत्र गच्छति। एवमुक्तस्ततो देवः प्रोवाच पुरुषोत्तमः।।९६।।

देवदेव ने कहा- देव! इस आश्चर्यपूर्ण कपाल की उत्पत्ति सुनिये। सौ सहस्र वर्षों तक अति घोर तपस्या करके ब्रह्मा ने अति अद्भूत विशाल एवं रोमांचकारी शरीर की सृष्टि की, उनकी घोर तपस्या के प्रभाव से उनका शरीर अति दिव्य तेजोमय एवं सुवर्ण के समान शोभायमान था। महात्मा ब्रह्मा को फिर अति तेज से देदीप्यमान एक पांचवें सिर की उत्पत्ति हुई। हे देव! मैंने उस पांचवें सिर को काट लिया। उस दुर्जय सिर को आप देखिये, वही यह है, मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ-वहाँ यह कपाल मेरे ही साथ जाता हैं' इस प्रकार शिव जी के कहने पर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने कहा-।।९३-९६।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं ब्रह्मणस्त्वं प्रियं कुरु।
तस्मिन्स्थास्यति भद्रं ते कपालं तस्य तेजसा।।९७।।
ततः सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
गतोऽस्मि पृथुलश्रोणि न क्वचित्प्रत्यतिष्ठत।।९८।।
ततोऽहं समनुप्राप्तो ह्यविमुक्ते महाशये।
अवस्थितः स्वके स्थाने शापश्च विगतो मम।।९९।।
विष्णुप्रसादात्सुश्रोणि कपालं तत्सहस्रधा।
स्फुटितं बहुधा जातं स्वप्नलब्धं धनं यथा।।१००।।
ब्रह्महत्यापहं तीर्थं क्षेत्रमेतन्मया कृतम्। कपालं मोचनं देवि देवानां प्रथितं भुवि।।१०१।।

श्री भगवान् ने कहा- शिव! जाओ! अपने स्थान को लौट जाओ और वहाँ जाकर ब्रह्मा को प्रसन्न करो, वहीं जाने पर उनके अमिट प्रभाव से यह कपाल तुम्हारे साथ जाने से रुकेगा। हे सुन्दर कटि वाली! तब मैं सभी तीर्थों एवं पुण्यप्रद स्थानों का परिभ्रमण कर चुका था; किन्तु कहीं

भी वह कपाल रुका नहीं था। तदनन्तर मैं इस अति प्रभावशाली अविमुक्त क्षेत्र में आया, इस स्थान पर पहुँचते ही वह रुक गया और इस प्रकार मेरा वह शाप निवृत्त हो गया। सुन्दरि! यहाँ पर भगवान् विष्णु की कृपा से वह कपाल सहस्रों टुकड़ों में चूर्ण होकर स्वप्न की सम्पत्ति की भाँति विलीन हो गया। तभी से इस अविमुक्त क्षेत्र को मैंने ब्रह्महत्या के दोष से दूर करने वाला बनाया। देवि! देवताओं की यह पवित्र तीर्थ पृथ्वी पर कपालमोचन तीर्थ के नाम से विख्यात है। मैं ही समस्त जगत् का कालरूप होकर निर्माण करता हूँ तथा संहार भी मैं ही करता हूँ।।९७-१०१।।

कालो भूत्वा जगत्सर्वं संहरामि सृजामि च। ततस्तत्पतितं तत्र शापश्च विगतो मम।।१०२।।
कपालमोचनं तीर्थमभूद्धत्याविनाशनम्। तत्रस्थोऽस्मि जगत्सर्वं सुकरोमि सुरेश्वरि।।
देवेशि सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतरं मम।।१०३।।
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति विष्णुभक्तास्तथैव च।
ये भक्ता भास्करे देवि लोकनाथे दिवाकरे।।
तत्रस्थो यस्त्यजेद्देहं मामेव प्रविशेत्तु सः।।१०४।।

सुरेश्वरि! इसी कपालमोचन तीर्थ में आने पर वह कपाप गिर पड़ा और शाप की भी निवृत्ति हो गई। यह कपालमोचन ब्रह्महत्या को भी दूर करने वाला है, यहाँ पर अवस्थित होकर मैं समस्त जगत् की सुव्यवस्था परिचालित करता हूँ। देवेशि! मेरे सभी गोपनीय स्थानों में यह अविमुक्त इसीलिये मुझे अतिप्रिय है। मेरी भक्ति करने वाले तथा भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाला मनुष्य इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं। देवि! लोकनाथ भगवान् भास्कर के भक्तगण भी इसी तीर्थ की यात्रा करते हैं। यहाँ पर अवस्थित रहकर जो शरीर को त्यागता है, वह मुझमें ही प्रवेश करता है।।१०२-१०४।।

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देव यदुक्तं पद्मयोनिना। त्रिपुरान्तकरस्थानं गुह्यमेतन्महाद्युते।।१०५।।
यान्यन्यानि सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
यत्र तिष्ठति देवेशो यत्र तिष्ठति शङ्करः।।१०६।।
गङ्गा तीर्थसहस्राणां तुल्या भवति वा न वा। त्वमेव भक्तिदेवेश त्वमेव गतिरुत्तमा।।१०७।।
ब्रह्मादीनां तु ते देव गतिरुक्ता सनातनी।
श्राव्यमेतद्द्विजातीनां भक्तानामनुकम्पया।।१०८।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९८९३।।

देवी ने कहा–देव! भगवान् ब्रह्मा ने जो बात कही है, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। महाद्युति

वाले! यह त्रिपुरान्तक शिव का–तुम्हारा–गोपनीय स्थान है। जगत् के अन्यान्य जो तीर्थ स्थान हैं, वे इसकी सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते, जहाँ पर साक्षात् देवाधिदेव शंकर–तुम निवास करते हो। सहस्रों तीर्थों के समान पुण्यप्रदायिनी गङ्गा हैं, या नहीं, इसमें तो सन्देह है; किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य तीर्थ इस पवित्र तीर्थ की समानता नहीं कर सकते। देवेश! तुम्हीं भक्ति के स्वरूप हो, तुम्हीं उत्तम गति हो। देव! ब्रह्मादि देवगणों की गति को कभी नष्ट न होने वाली बतलाया जाता है। इस अविमुक्त के उत्तम माहात्म्य को द्विजाति ब्राह्मणादि भक्तों को अनुकम्पापूर्वक श्रवण करना चाहिए।।१०५-१०८।।

।।एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८३।।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

काशी की अलौकिक महिमा

महेश्वर उवाच

सेवितं बहुभिः सिद्धैरपुनर्भवकाङ्क्षिभिः। विदित्वा तु परं क्षेत्रमविमुक्तनिवासिनाम्।।१।।
तद्गुह्यं देवदेवस्य तत्तीर्थं तत्तपोवनम्। परं स्थानं तु ते यान्ति सम्भवन्ति न ते पुनः।।२।।

महेश्वर ने कहा–अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले प्राणियों के इस परम प्रभावशाली क्षेत्र का माहात्म्य समझकर अनेक सिद्धों ने, जो पुनर्जन्म की इच्छा नहीं करते, उसका सेवन किया है। देवाधिदेव का वह तीर्थ तथा तपोवन अति गोपनीय है। इनका सेवन कर वे सिद्धगण उस परमस्थान को जाते हैं, जहाँ जाकर पुनः उत्पन्न नहीं होते।।१-२।।

ज्ञाने विहितनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्।
या गतिर्विहिता सद्भिः साऽविमुक्ते मृतस्य तु।।३।।
भवस्य प्रीतिरतुला ह्यविमुक्ते ह्यनुत्तमा। असङ्ख्येयं फलं तत्र ह्यक्षया च गतिर्भवेत्।।४।।
परं गुह्यं समाख्यातं श्मशानमिति संज्ञितम्। अविमुक्तं न सेवन्ते वञ्चितास्ते नरा भुवि।।५।।
अविमुक्ते स्थितैः पुण्यैः पांशुभिर्वायुनेरितैः।
अपि दुष्कृतकर्माणो यास्यन्ति परमां गतिम्।।६।।

महर्षियों ने ज्ञान में निष्ठा रखने वाले, परमानन्द के इच्छुक प्राणियों की जो गति बतलाई है, वह गति इस अविमुक्त में मरने वाले की होती है। यह अविमुक्त क्षेत्र परमएकान्त में है, श्मशान भी इसे कहते हैं। जो मनुष्य पृथ्वी पर उत्पन्न होकर अविमुक्त का सेवन नहीं करते, वे ठगे जाते हैं।

अविमुक्त क्षेत्र की वायु द्वारा उड़ाई गई पवित्र धूलि से चाहे घोर दुष्कर्म का भी करने वाला क्यों न हो, परमगति को प्राप्त करता है।।३-६।।

अविमुक्तगुणान्वक्तुं देवदानवमानवैः। न शक्यतेऽप्रमेयत्वात्स्वयं यत्र भवः स्थितः।।७।।

अनाहिताग्निर्नो यष्टा नोऽशुचिस्तस्करोऽपि वा।
अविमुक्ते वसेद्यस्तु स वसेदीश्वरालये।।८।।

जिस अविमुक्त क्षेत्र में साक्षात् शंकर जी निवास करते हैं, उसकी अमित महिमा का वर्णन देव-दानव तथा मनुष्य-कोई भी नहीं कर सकते। कभी अग्निहोत्र न करने वाला, यज्ञ न करने वाला, अपवित्र रहने वाला, चोर भी क्यों न हो, यदि वह अविमुक्त में निवास करता है तो ईश्वर के भवन में निवास करता है।।७-८।।

तत्र नापुण्यकृत्कश्चित्प्रसादादीश्वरस्य च।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा।।९।।

यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना। अविमुक्ते प्रविष्टस्य तत्सर्वं भस्मसाद्भवेत्।।१०।।

सरितः सागराः शैलास्तीर्थान्यायतनानि च। भूतप्रेतपिशाचाश्च गणा मातृगणास्तथा।।११।।

श्मशानिकपरीवाराः प्रियास्तस्य महात्मनः। न ते मुञ्चन्ति भूतेशे तान्भवस्तु न मुञ्चति।।१२।।

भगवान् की कृपा से वहाँ कोई पुण्य न करने वाला प्राणी निवास नहीं कर पाता। चाहे जानकर या बिना जाने, स्त्री हो या पुरुष, यदि मानव सुलभ बुद्धिवश अशुभ कर्म करता है तो अविमुक्त में प्रवेश करने से वह सब भस्म हो जाता है। नदियाँ, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, पवित्र देवायतन, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथगण, मातृगण आदि उन महात्मा शंकर के जो प्रिय कहे गये हैं, श्मशान भूमि के चारों ओर अवस्थित रहते हैं, वे कभी भूतनाथ को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते और न उनको शंकर ही कभी छोड़ते हैं।।९-१२।।

रमते च गणैः सार्धमविमुक्ते स्थितः प्रभुः। दृष्ट्वैतान्भीतकृपणान्पापदुष्कृतकारिणः।।१३।।

अनुकम्पया तु देवस्य प्रयान्ति परमां गतिम्।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तिर्यग्योनिगतानपि।।१४।।
नयत्येव वरं स्थानं यत्र यान्ति च याज्ञिकाः।
भार्गवाङ्गिरसः सिद्धा ऋषयश्च महाव्रताः।।१५।।

अविमुक्त में अवस्थित रहकर प्रभु अपने गणों को, भयभीत, अकिंचन, पाप कर्म में लीन तथा दुरात्मा देखकर भी उन्हीं के साथ विहार करते हैं। देव की अनुकम्पा से वे सभी परम गति को प्राप्त करते हैं। भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले भगवान् तिर्यक् (अधम) योनि में उत्पन्न होने वाले अपने भक्तों को भी श्रेष्ठ स्थान पर पहुँचा देते हैं, जहाँ पर कि यज्ञों के करने वाले सिद्ध, महातपस्वी भार्गव, अंगिरा आदि बड़े-बड़े ऋषि जाते हैं।।१३-१५।।

अविमुक्ताग्निना दग्धा अग्नौ तूलमिवाऽऽहितम्। न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे॥१६॥

सा गतिर्विहिता पुंसामविमुक्तनिवासिनाम्।
तिर्यग्योनिगताः सत्त्वा येऽविमुक्ते कृतालयाः॥
कालेन निधनं प्राप्तास्ते यान्ति परमां गतिम्॥१७॥

अविमुक्त रूपी अग्नि से पापकर्म रुई की भाँति नष्ट हो जाते हैं। जो गति कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार तथा पुष्कर में भी नहीं मिलती, वह गति अविमुक्त में निवास करने वाले पुरुषों को प्राप्त होती है। अधमयोनि में उत्पन्न हुए प्राणी भी जो अविमुक्त में निवास करते हैं, कालवश मृत्यु को प्राप्त कर परमगति प्राप्त करते हैं।।१६-१७।।

मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। अविमुक्तं समासाद्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥१८॥
श्मशानमिति विख्यातमविमुक्तं शिवालयम्। तद्गुह्यं देवदेवस्य तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥१९॥

पापपूर्ण कर्मों की सुमेरु एवं मन्दिर के समान विशाल राशि भी अविमुक्त में जाकर विनष्ट हो जाती है। शिव का निवास रूप वह अविमुक्त 'श्मशान' नाम से विख्यात है, देवाधिदेव का वह परमपवित्र गोपनीय तीर्थ यात्रा तपोवन है।।१८-१९।।

तत्र ब्रह्मादयो देवा नारायणपुरोगमाः। योगिनश्च तथा साध्या भगवन्तं सनातनम्॥२०॥

वहाँ पर अवस्थित होकर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् विष्णु को अग्रगण्य बनाकर तथा मेरे भक्त योगी तथा साधकगण मुक्तचित्त हो मुझी में लीन रहकर शिव का ध्यान करते हैं।।२०।।

उपासन्ते शिवं मुक्ता मद्भक्ता मत्परायणाः।
या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्॥२१॥

अविमुक्ते मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा। संहर्तारश्च कर्तारस्तस्मिन्ब्रह्मादयः सुराः॥२२॥
सम्राड्विराण्मया लोका जायन्ते ह्यपुनर्भवाः। महर्जनस्तपश्चैव सत्यलोकस्तथैव च॥२३॥

मनसः परमो योगो भूतभव्यभवस्य च।
ब्रह्मादिस्थावरान्तस्य योनिः साङ्ख्यादिमोक्षयोः॥२४॥

ज्ञानपूर्वक तपस्या करने वाले को जो गति प्राप्त होती है, विविध यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले को जो शुभ गति प्राप्त होती है, वही शुभ गति अविमुक्त में प्राण त्याग करने वाले को मिलती है। उसी अविमुक्त क्षेत्र में जगत् की सृष्टि करने वाले तथा विनाश करने वाले ब्रह्मा प्रभृति देवगण सदा निवास करते हैं। इसी प्रकार सम्राट् विराट् प्रभृति लोकगण इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास कर पुनर्जन्म नहीं धारण करते। मह, जन, तप एवं सत्यलोक में निवास करने वाले ब्रह्मा से लेकर के स्थावर जीवों तक, भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान काल के जीवगण, सांख्य एवं योग के अनुशीलन करने वाले महर्षिगण- सभी इस क्षेत्र में सदा निवास करते हैं। जो मनुष्य अविमुक्त का त्याग नहीं करते हैं, वे ही जगत् में जन्म लेकर ठगे नहीं जाते। अर्थात् वे ही परम चतुर तथा भाग्यवान् हैं।।२१-२४।।

येऽविमुक्तं न मुञ्चन्ति नरास्ते नैव वञ्चिताः।
उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च यत्॥२५॥

क्षेत्राणामुत्तमं चैव श्मशानानां तथैव च। तडागानां च सर्वेषां कूपानां स्त्रोतसां तथा॥२६॥
शैलानामुत्तमं शैलं तीर्थानामुत्तमं तथा। पुण्यकृद्भवभक्तैश्च ह्यविमुक्तं तु सेव्यते॥२७॥

ब्रह्मणः परमं स्थानं ब्रह्मणाऽध्यासितं च यत्।
ब्रह्मणा सेवितं नित्यं ब्रह्मणा चैव रक्षितम्॥२८॥

अत्रैव सप्तभुवनं काञ्चनो मेरुपर्वतः। मनसः परमो योगः प्रीत्यर्थं ब्रह्मणः स तु॥२९॥

यह अविमुक्त क्षेत्र जगत् के सभी तीर्थों में, स्थानों में, क्षेत्रों में, श्मशानों में, कूपों में, तालाबों में, स्त्रोतों में तथा पर्वतों में श्रेष्ठ है। पुण्य कर्म करने वाले शिव के भक्तगण इस अविमुक्त की सदा सेवा करते हैं। यह ब्रह्मा का परम स्थान है, ब्रह्मा जी यहाँ पहले रह चुके हैं। वे नित्य इसमें निवास करते हैं एवं नित्य इसकी रक्षा करते हैं, यहीं पर सात भुवनों का तथा सुवर्णमय सुमेरु पर्वत का भी निवास स्थान है, ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिये मन का परम योग यहीं पर प्राप्त होता है।।२५-२९।।

ब्रह्मा तु तत्र भगवांस्त्रिसन्ध्यं चेश्वरे स्थितः।
पुण्यात्पुण्यतमं क्षेत्रं पुण्यकृद्भिर्निषेविम्॥३०॥
आदित्योपासनं कृत्वा विप्राश्चामरतां गताः।
अन्येऽपि ये त्रयो वर्णा भवभक्त्या समाहिताः॥३१॥
अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा गच्छन्ति परमां गतिम्।
अष्टौ मासान्विहारस्य यतीनां संयतात्मनाम्॥३२॥

एकत्र चतुरो मासान्मासौ वा निवसेत्पुनः। अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते॥३३॥

भगवान् ब्रह्मा यहाँ पर शिव में ध्यान लगाकर सर्वदा अवस्थित रहते हैं। यह सभी पुण्यप्रद क्षेत्रों में उत्तम हैं, पुण्यप्रद लोग सर्वदा इसमें निवास करते हैं। ब्राह्मण लोग यहीं पर आदित्य की उपासना कर देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं, अन्यान्य जो क्षत्रियादि तीन वर्णो के लोग हैं, वे शिव की भक्ति से समाधिस्थ हो इस अविमुक्त में अपने नश्वर शरीर को त्याग कर परमगति प्राप्त करते हैं। संयतात्मा यती लोगों को आठ मास तक विहार करने का विधान है या एकबारगी वे लोग चार मास का अथवा दो ही मास के विहार का नियम पालन करें। किन्तु अविमुक्त में प्रविष्ट होने पर उनके लिये विहार के नियमों का कोई बन्धन नहीं रहता।।३०-३३।।

न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रे पुरातने। मोक्षो ह्यसंशयस्तत्र पञ्चत्वं तु गतस्य वै॥३४॥

स्त्रियः पतिव्रता याश्च भवभक्ताः समाहिताः।
अविमुक्ते विमुक्तास्ता यास्यन्ति परमां गतिम्॥३५॥

अन्या याः कामचारिण्यः स्त्रियो भोगपरायणाः।
कालेन निधनं प्राप्ता गच्छन्ति परमां गतिम्॥३६॥

प्राचीन शास्त्रों में यह देखा जा चुका है कि इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग करने वाले प्राणी को पुनः शरीर नहीं मिलता, निस्सन्देह उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। शिवजी की भक्ति में तत्पर पतिव्रता स्त्रियाँ अविमुक्त क्षेत्र में विमुक्त होकर परमगति प्राप्त करती हैं। उनके अतिरिक्त अन्य जो कामुक भोग विलास में निरत रहने वाली स्त्रियाँ हैं, वे भी कालक्रम से इस अविमुक्त में मृत्यु लाभकर परमगति प्राप्त करती हैं।।३४-३६।।

यत्र योगश्च मोक्षश्च प्राप्यते दुर्लभो नरैः।
अविमुक्तं समासाद्य नान्यद्गच्छेत्तपोवनम्॥३७॥
सर्वात्मना तपः सेव्यं ब्राह्मणैर्नात्र संशयः। अविमुक्ते वसेद्यस्तु मम तुल्यो भवेन्नरः॥३८॥
यतो मया न मुक्तं हि त्वविमुक्तं ततः स्मृतम्।
अविमुक्तं न सेवन्ते मूढा ये तमसाऽऽवृताः॥३९॥

जहाँ पर जाकर मनुष्य दुर्लभ योग एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है, ऐसे अविमुक्त क्षेत्र को छोड़कर उसे अन्य तपोवनों में नहीं जाना चाहिये। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ब्राह्मणों को सभी उपायों द्वारा तप की आराधना करनी चाहिये। जो मनुष्य अविमुक्त में निवास करता है, वह मेरे समान हो जाता है। मैंने कभी भी इस क्षेत्र को नहीं छोड़ा है, अतः इसका नाम अविमुक्त (कभी न छोड़ा गया) क्षेत्र है। जो ऐसे अविमुक्त का सेवन नहीं करते, वे अज्ञानान्धकार से घिरे हुए मनुष्य हैं।।३७-३९।।

विण्मूत्ररेतसांमध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः।
कामः क्रोधश्च लोभश्च दम्भस्तम्भोऽतिमत्सरः॥४०॥
निद्रा तन्द्रा तथाऽऽलस्यं पैशुन्यमिति ते दश।
अविमुक्ते स्थिता विघ्नाः शक्रेण विहिताः स्वयम्॥४१॥
विनायकोपसर्गाश्च सततं मूर्ध्नि तिष्ठति। पुण्यमेतद्भवेत्सर्वं भक्तानामनुकम्पया॥४२॥
परं गुह्यमिति ज्ञात्वा ततः शास्त्रानुदर्शनात्। व्याहृतं देवदेवैस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥४३॥

बारम्बार उन्हें उसी मल-मूत्र-रज में निवास करना पड़ता है। स्वयं इन्द्र ने अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वालों के लिये काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, अतिमत्सर, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य और कुटिलता-इन दस विघ्नों को नियत किया है, इनके अतिरिक्त शिव के गणों के उपद्रव तो निरन्तर सिर पर सवार रहते हैं; किन्तु भक्तों के ऊपर असीम कृपा रहने के कारण ये सभी पुण्यदायी जो जाते हैं। इन बातों को अति गोपनीय समझकर शास्त्रों को देखकर देवदेव ने तथा तत्त्वदर्शी मुनियों ने स्वयं बतलाया है।।४०-४३।।

मेदसा विप्लुता भूमिरविमुक्ते तु वर्जिता। पूता समभवत्सर्वा महादेवेन रक्षिता॥४४॥
संस्कारस्तेन क्रियते भूमेरन्यत्र सूरिभिः। ये भक्त्या वरदं देवमक्षरं परमं पदम्॥४५॥

ऐसी प्रसिद्धि है कि यह सारी पृथ्वी मधुकैटभ के रक्तादि से दूषित हो चुकी है; किन्तु इस अविमुक्त क्षेत्र की पवित्र भूमि मधुकैटभ के मेद से परिप्लुत नहीं है, महादेव से सुरक्षित होने के कारण यहाँ की भूमि चारों ओर से अतिपवित्र है। यही कारण है कि पण्डित लोग अविमुक्त के अतिरिक्त अन्य स्थानों की भूमि का मांगलिक कार्यों में संस्कार करते हैं।।४४-४५।।

देवदानवगन्धर्व यक्षरक्षोमहोरगाः। अविमुक्तमुपासन्ते तन्निष्ठास्तत्परायणाः॥४६॥
ते विशन्ति महादेवमाज्याहुतिरिवानलम्। तं वै प्राप्य महादेवगीश्वराध्युषितं शुभम्॥४७॥
अविमुक्तं कृतार्थोऽस्मीत्यात्मानमुपलभ्यते। ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः॥४८॥

यतिभिर्मोक्षकामैश्च ह्यविमुक्तं निषेव्यते।
नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी॥४९॥
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्।

जो देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग, आदि भक्ति एवं निष्ठापूर्वक अक्षय परमपद देने वाले वरदायक शंकर की तथा अविमुक्त की उपासना करते हैं, वे अग्नि में आहुति की भाँति शिव के मुख में प्रविष्ट होते हैं। सभी देवताओं द्वारा पूजित कल्याणकारी उन महादेव को तथा अविमुक्त को प्राप्त कर ऋषि, देवता तथा असुरगण जप हवन में लीन रहकर अपने को कृतार्थ मानते हैं। मोक्ष की अभिलाषा करने वाले जपहोमपरायण यति, ऋषि, देवता तथा असुर आदि सर्वदा इस अविमुक्त की सेवा करते हैं। कोई भी पापी अविमुक्त में मरकर नरक को नहीं जाते, ईश्वर की असीम अनुकम्पा से वे सभी परमगति प्राप्त करते हैं।।४६-४९.५।।

द्वियोजनमथार्धं च तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम्॥५०॥
अर्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम्। वाराणसी तदीया च यावच्छुक्लनदी तु वै॥५१॥

एष क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन धीमता।
लब्ध्वा योगं च मोक्षं च काङ्क्षन्तो ज्ञानमुत्तमम्॥५२॥
अविमुक्तं न मुञ्चन्ति तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
तस्मिन्वसन्ति ये मर्त्या न ते शोच्याः कदाचन॥५३॥

योगक्षेत्रं तपःक्षेत्रं सिद्धगन्धर्वसेवितम्। सरितः सागराः शैला नाविमुक्तसमा भुवि॥५४॥

पूर्व-पश्चिम में यह क्षेत्र ढाई योजन का तथा दक्षिण-उत्तर में आधे योजन का कहा गया है। वरुणा और अस्सी के समीप शुक्ल (?) नदी पयन्त वाराणसी का विस्तार स्वयम् परम बुद्धिमान् महादेव ने बतलाया है। अविमुक्त में निष्ठा रखने वाले भक्तगण योग एवं मोक्ष को प्राप्त कर उत्तम ज्ञान की आकांक्षा से उसे कभी नहीं छोड़ते। उस क्षेत्र में जो मनुष्य निवास करते हैं, उनके लिए

कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। वह अविमुक्त योग क्षेत्र है, तपःक्षेत्र है, सिद्ध एवं गन्धर्वों का निवास स्थान है, नदी, समुद्र एवं पर्वतों में कोई भी अविमुक्त के समान इस धरातल में नहीं है।।५०-५४।।

भूर्लोके चान्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि च।
अतीत्य वर्तते चान्यदविमुक्तं प्रभावतः।।५५।।
ये तु ध्यानं समासाद्य युक्तात्मानः समाहिताः।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं जपन्ति शतरुद्रियम्।।५६।।
अविमुक्ते स्थिता नित्यं कृतार्थास्ते द्विजातयः।
भवभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः।।५७।।
संहृत्य शक्तितः कामान्विषयेभ्यो बहिः स्थिताः।
शक्तितः सर्वतो मुक्ताः शक्तितस्तपसि स्थिताः।।५८।।
करणानीह चाऽऽत्मानमपुनर्भवभाविताः। तं वै प्राप्य महात्मानमीश्वरं निर्भयाः स्थिताः।।५९।।

इस भूलोक में, आकाश में, तथा स्वर्ग में जितने भी तीर्थ हैं, उन सबका अपने अनुपम प्रभाव से अतिक्रमण करके यह अविमुक्त क्षेत्र अवस्थित है। जो ब्राह्मणादि द्विजाति वर्ग इस अविमुक्त क्षेत्र में समाधि लीन हो अन्तरात्मा एवं इन्द्रियों को अधीन रख शतरुद्री का नित्य पाठ करते हैं, वे सफल मनोरथ हो जाते हैं एवं शिव जी की भक्ति को प्राप्तकर निश्चिन्त हो सदा विहार करते हैं। जो अपनी शक्ति के अनुरूप इच्छाओं का निरोध कर, विषयों से बाहर हो सभी विकारों से उन्मुक्त हो तपस्या में सदा निरत रहते हैं एवं सभी इन्द्रियों को स्ववश रख पुनर्जन्म न होने की अभिलाषा से यहाँ अवस्थित रहते हैं, वे उन महान् आत्मा भगवान् शंकर को प्राप्त कर भयरहित हो जाते हैं।।५५-५९।।

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। अविमुक्ते तु गृह्यन्ते भवेन विभुना स्वयम्।।६०।।
उत्पादितं महाक्षेत्रं सिध्यन्ते यत्र मानवाः। उद्देशमात्रं कथिता अविमुक्तगुणास्तथा।।६१।।
समुद्रस्येव रत्नानामविमुक्तस्य विस्तरम्। मोहनं तदभक्तानां भक्तानां भक्तिवर्धनम्।।६२।।

सैकड़ों कोटि कल्पों में भी कभी उनका पुनर्जन्म नहीं होता, भगवान् भव स्वयं उन्हें इस अविमुक्त में अपने में धारण कर लेते हैं। इस प्रकार अति महिमामय इस क्षेत्र को भगवान् ने उत्पन्न किया है, यहाँ पर आकर मानव की सारी अभिलाषायें सिद्ध हो जाती हैं। संक्षेप रूप में अविमुक्त के गुणों का मैंने वर्णन किया है। समुद्र स्थित रत्नों की भाँति इसके भी गुणों की कोई गणना नहीं की जा सकती, जो भक्तिरहित मनुष्य हैं, उनको तो ये अविमुक्त के गुण अज्ञान एवं वितर्क में डालने वाले हैं और जो भक्त हैं, उनकी भक्ति के बढ़ाने वाले हैं।।६०-६२।।

मूढास्ते तु न पश्यन्ति श्मशानमिति मोहिताः।
हन्यमानोऽपि यो विद्वान्वसेद्विघ्नशतैरपि।।६३।।

स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।
जन्ममृत्युजरामुक्तः परं याति शिवालयम्॥६४॥
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्येत पण्डितः॥६५॥
न दानैर्न तपोभिर्वा न यज्ञैर्नापि विद्यया। प्राप्यते गतिरिष्टा या ह्यविमुक्ते तु लभ्यते॥६६॥

वितर्की एवं अज्ञानी मूर्ख हैं, अतः अविमुक्त के उन महान् गुणों को न देखकर 'केवल श्मशान है इसी अज्ञान में वे भूले रहते हैं। सैकड़ों विघ्नों से व्याकुल होकर भी जो विद्वान् पुरुष इस अविमुक्त का सेवन करते रहते हैं, वे उस परमपद की प्राप्ति करते हैं, जहाँ जाकर किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह जाती जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापा-इन तीनों कष्टदायिनी अवस्थाओं से मुक्त होकर वे मनुष्य शिव के लोक को प्राप्त करते हैं। मोक्ष की अभिलाषा करने वालों की वग गति पुनः मृत्यु को प्राप्त करने वाली नहीं है, पण्डित लोग उस दशा को इस प्रकार मानते हैं कि 'उस उत्तम गति को प्राप्त कर मनुष्य वास्तव में कृतकृत्य हो जाता है।' सारांश यह कि इस अविमुक्त क्षेत्र में वह शुभ गति प्राप्त होती है, जो कभी दान, तपस्या, यज्ञाराधन एवं विद्याध्ययन से नहीं प्राप्त हो सकती।।६३-६६।।

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डाला ये जुगुप्सिताः।
किल्बिषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैः पातकैस्तथा॥६७॥
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः। जात्यन्तरसहस्रेषु ह्यविमुक्ते म्रियेत यः॥६८॥
भक्तो विश्वेश्वरे देवे न स भूयोऽभिजायते। यत्र चेष्टं हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥६९॥
सर्वमक्षयमेतस्मिन्नविमुक्ते न संशयः।

अनेक जातियों से उत्पन्न, वर्णसंकर, चाण्डाल एवं घृणित कर्म करने वाले, पाप कर्मों में सर्वदा निरत रहकर घोर पातकों से भरे हुए मनुष्यों के लिए भी परम उपयोगी ओषधि रूप में यह अविमुक्त क्षेत्र सेवन करने योग्य है-ऐसा बुद्धिमान् लोग जानते हैं। सहस्रों अन्य नीच जातियों से भी यदि कोई इस अविमुक्त में मृत्युलाभ करता है तो देवेश्वर भगवान् की भक्ति के कारण वह पुनः उत्पन्न नहीं होता। जिस अविमुक्त क्षेत्र में जपे हुए जप, हवन, दान, तपस्या तथा सत्कर्म सभी अक्षयरूप में कर्त्ता को प्राप्त होते हैं, उसके विषय में कोई भी संशय नहीं किया जा सकता।।६७-६९.५।।

कालेनोपरता यान्ति भवे सायुज्यमक्षयम्॥७०॥
कृत्वा पापसहस्राणि पश्चात्सन्तापमेत्य वै।
योऽविमुक्ते वियुज्येत स याति परमां गतिम्॥७१॥

कालक्रम से मृत्यु को प्राप्त होने वाला प्राणी शिव की अक्षय समीपता को प्राप्त करता है।

सहस्त्रों पातकों के करने के उपरान्त पश्चात्ताप कर जो मनुष्य इस अविमुक्त में शरीर त्याग करता है, वह परमगति प्राप्त करता है।।७०-७१।।

उत्तरं दक्षिणं चापि अयनं न विकल्पयेत्।
सर्वस्तस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते म्रियेत यः।।७२।।
न तत्र कालो मीमांस्यः शुभो वा यदि वाऽशुभः।
तस्य देवस्य माहात्म्यात्स्थानमद्भुतकर्मणः।।
सर्वेषामेव नाथस्य सर्वेषां च विभोः स्वयम्।।७३।।
श्रुत्वेदमृषयः सर्वे स्कन्देन कथितं पुरा। अविमुक्ताश्रमं पुण्यं भावयेत्करणैः शुभैः।।७४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९९६७।।

उत्तरायण या दक्षिणायन का जो विकल्प न करके अविमुक्त में मरता है, उसके लिए सभी समय शुभदायी है। अविमुक्त क्षेत्र में समय की मीमांसा नहीं करनी चाहिए, चाहे शुभ मुहर्त हो या अशुभ मुहूर्त हो, सभी समय उस अद्भुत माहात्म्यशाली देवता शंकर की कृपा से मृत्यु प्राप्त करने वाले का वहाँ कल्याण होता ही है। शंकर जगत् के सभी चराचर जीवों के स्वामी हैं तथा सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् हैं। प्राचीन काल में स्कन्द के मुख से इस सब कथा को सुनकर सभी ऋषियों ने यह निश्चय किया था कि अवश्य ही वह अविमुक्त क्षेत्र अतिपुण्यप्रद क्षेत्र है, शुद्ध इन्द्रियों द्वारा सब को सदा उसका सेवन करना चाहिए।।७२-७४।।

।।एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८४।।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्यास को अमर्ष और काशी का विचित्र माहात्म्य

सूत उवाच

अविमुक्ते महापुण्ये चाऽऽस्तिकाः शुभदर्शनाः। विस्मयं परमं जग्मुर्हर्षगद्गदनिस्वनाः।।१।।
ऊचुस्ते हृष्टमनसः स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम्। ब्रह्मण्यो देवपुत्रस्त्वं ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः।।२।।
ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मविद्ब्रह्मा ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मलोककृत्। ब्रह्मकृद्ब्रह्मचारी त्वं ब्रह्मादिर्ब्रह्मवत्सलः।।३।।
ब्रह्मतुल्योद्भवकरो ब्रह्मतुल्य नमोऽस्तु ते। ऋषयो भावितात्मानः श्रुत्वेदं पवनं महत्।।४।।

सूत ने कहा–ऋषिगण! इस प्रकार महापुण्यप्रद अविमुक्त के विषय में अति श्रद्धासम्पन्न आस्तिक बुद्धिवाले सुन्दर स्वरूप भक्तिमान् ऋषिगण ऐसे अविमुक्त के परमपवित्र माहात्म्य को सुनकर परम विस्मित हुए एवं अति हर्ष से गद्‌गद वाणी में, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्ध से बोले- 'स्कन्द! तुम ब्राह्मणों के रक्षक हो, महादेव के पुत्र हो, ब्रह्मज्ञानी हो, ब्राह्मणों के प्रिय हो, ब्रह्मनिष्ठ हो, ब्रह्म को जानने वाले हो, स्वयं ब्रह्मा हो, ब्रह्मा से भी बढ़कर हो, ब्रह्मलोक के कर्ता हो, ब्रह्म के निर्माणकर्त्ता, ब्रह्मचारी, ब्रह्मा से ज्येष्ठ तथा ब्रह्मा पर दया करने वाले हो, ब्रह्म के समान हो, तुम्हें हम लोग प्रणाम करते हैं।।१-४।।

तत्त्वं तु परमं ज्ञातं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामो भूर्लोकं शङ्करालयम्।।५।।
यत्रासौ सर्वभूतात्मा स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः। सर्वलोकहितार्थाय तपस्युग्रे व्यवस्थितः।।६।।

तुम्हारी ही कृपा से हम लोगों ने ऐसे परमतत्व की प्राप्ति की है, जिसे जानकर अमरत्व प्राप्त किया जाता है, तुम्हारा कल्याण हो, अब हम लोग भूलोक में शंकर के उस निवास स्थान अविमुक्त को जायेंगे, जहाँ पर सर्वभूतात्मा सृष्टि से स्थाणु रूप भगवान् शंकर सभी लोक की रक्षा के लिए उग्र तपस्या में निरत हो योग द्वारा अपनी रुद्र (भयानक) विभूति सम्पन्न देह में अवस्थित रह अपने ही समान अनुपम गुणवाले गुह्यकों से घिरे हुए अपने वास्तविक स्वरूप में विद्यमान हैं'।।५-६।।

संयोज्य योगेनाऽऽत्मानं रौद्रीं तनुरुपाश्रितः। गुह्यकैरात्मभूतस्तु आत्मतुल्यगुणैर्वृतः।।७।।
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः। विज्ञप्तः परया भक्त्या त्वत्प्रसादाद्‌गणेश्वर।।८।।
वस्तुमिच्छाम नियतमविमुक्ते सुनिश्चिताः। एवं गुणे तथा मर्त्या ह्यविमुक्ते वसन्ति ये।।९।।
धर्मशीला जितक्रोधा निर्ममा नियतेन्द्रियाः।
ध्यानयोगपराः सिद्धिं गच्छन्ति परमाव्ययाम्।।१०।।

इस प्रकार कहकर बह्मा आदि देवता, सिद्ध तथा महर्षिगण परम भक्तिपूर्वक स्कन्द से पुनः निवेदन करने लगे, 'गणेश्वर! तुम्हारी कृपा से हम सब लोग सुनिश्चित होकर इस प्रकार उपयुक्त अनुपम गुणों वाले उस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने को इच्छुक हैं, जिसमें धर्मशील, जितक्रोध, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय, ध्यान एवं योग के अभ्यासी मनुष्य निवास करते हैं तथा परम अव्यक्त गति को प्राप्त करते हैं।।८-१०।।

योगिनो योगसिद्धाश्च योगमोक्षप्रदं विभुम्।
उपासते भक्तियुक्ता गुह्यं देवं सनातनम्।।११।।
अविमुक्तं समासाद्य प्राप्तयोगान्महेश्वरात्।
सप्त ब्रह्मर्षयो नीता भवसायुज्यमागताः।।१२।।

एतत्तु परमं क्षेत्रमविमुक्तं विदुर्बुधाः। अप्रबुद्धा न पश्यन्ति भवमायाविमोहिताः॥१३॥

वे भक्तियुक्त मनुष्य योगाराधन में लीन हो योग में सिद्धि प्राप्त कर योग एवं मोक्ष को देने वाले सनातन एकान्तप्रिय भगवान् की उपासना करते हैं। इस प्रकार परमयोगी महेश्वर के प्रसाद से उस अविमुक्त क्षेत्र को प्राप्त कर सातों ब्रह्मर्षिगण भव की समीपता को प्राप्त हुए। बुद्धिमान् लोग इस अविमुक्त को परमक्षेत्र मानते हैं। संसार की माया से विमुग्ध हुए मूर्ख लोग अविमुक्त की उस विशेषता को नहीं देखते।।११-१३।।

तेनैव चाभ्यनुज्ञातास्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा शान्ता योगगतिं गताः॥१४॥
स्थानं गुह्यं श्मशानानां सर्वेषामेतदुच्यते। न हि योगादृते मोक्षः प्राप्यते भुवि मानवैः॥१५॥
अविमुक्ते निवसतां योगो मोक्षश्च सिध्यति। एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि॥
अनेन जन्मनैवेह प्राप्यते गतिरुत्तमा॥१६॥

उन्हीं शंकर की आज्ञा से वे उनके भक्तगण, जो सर्वदा उन्हीं के चरणों का ध्यान करते रहते हैं, उस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग कर शान्ति प्राप्तकर योगियों की गति प्राप्त करते हैं। वह अविमुक्त सभी स्थानों की अपेक्षा परम एकान्त तथा गोपनीय है। यह प्रसिद्ध है कि पृथ्वी तल पर बिना योग के मोक्ष की प्राप्ति मनुष्य को नहीं हो सकती; किन्तु अविमुक्त में निवास करने वाले को योग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति एक ही साथ होती है। परमेश्वरि! इस अविमुक्त क्षेत्र का यह एक विशेष प्रभाव अथवा महत्त्व है कि इसमें इसी (एक) जन्म में मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर सकता है।।१४-१६।।

अविमुक्ते निवसता व्यासेनामिततेजसा।
नैव लब्धा क्वचिद्भिक्षा भ्रममाणेन यत्नतः॥१७॥

एक समय की बात है कि इसी अतिमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले अमित तेजस्वी जी प्रयत्न करने पर भी भ्रमण करते हुए एक बार कहीं से भिक्षा नहीं प्राप्त कर सके।।१७।।

क्षुधाविष्टस्ततः क्रुद्धोऽचिन्तयच्छापमुत्तमम्।
दिनं दिनं प्रति व्यासः षण्मासं योऽवतिष्ठति॥१८॥
कथं ममेदं नगरं भिक्षादोषाद्धतं त्विदम्।

तब क्षुधा से पीड़ित होकर उसे घोर शाप देने का वे विचार करने लगे। उन्होंने सोचा कि एक-एक दिन करके मेरे छः मास व्यतीत हो गये पर क्या कारण है कि मेरा यह नगर भिक्षा के दोष से हतप्राय हो गया अर्थात् कोई भी भिक्षा देने वाला नहीं दिखाई पड़ रहा है।।१८.५।।

विप्रो वा क्षत्रियो वाऽपि ब्राह्मणी विधवाऽपि वा॥१९॥
संस्कृताऽसंस्कृता वाऽपि परिपक्वाः कथं नु मे।
प्रयच्छन्ति वै लोका ब्राह्मणाश्चर्यकारकम्॥२०॥

एषां शापं प्रदास्यामि तीर्थस्य नगरस्य तु।

क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या विधवा, क्या सम्भ्रान्त, क्या असम्भ्रान्त-किसी ने भी मुझे भिक्षा नहीं दी, इसका क्या कारण है? यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है यहाँ के लोग ब्राह्मण को भिक्षा नहीं देते। अतएव अब मैं इन सबों को शाप दे रहा हूँ, साथ ही इस तीर्थ तथा नगर को शाप देता रहा हूँ।।१९-२०.५।।

तीर्थं चातीर्थतां यातु नगरं शापयाम्यहम्।।२१।।
मा भूत्त्रिपौरुषी विद्या मा भूत्त्रिपौरुषं धनम्।
मा भूत्त्रिपौरुषं सख्यं व्यासो वाराणसीं शपन्।।२२।।
अविमुक्ते निवसतां जनानां पुण्यकर्मणाम्।
विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्न विद्यते।।२३।।

यह तीर्थ अब तीर्थ न रहे। नगर को शाप दे रहा हूँ कि इस नगर में निवास करने वालों की विद्या तीन पीढ़ी तक न चले, धन तीन पीढ़ी तक न रहे, मित्रता तीन पीढ़ी तक न चले-इस प्रकार वाराणसी को शाप देते हुए व्यास ने 'अविमुक्त में निवास करने वाले इन पुण्यकर्मा मनुष्यों को भी विघ्नपूर्ण कर दूँ, जिससे उन्हें किसी प्रकार की कभी सिद्धि न मिले'।।२१-२३।।

व्यासचित्तं तदा ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः।(भीतभीतस्तदा गौरीं तां प्रियां पर्यभाषत।।२४।।
शृणु देवि वचो मह्यं यादृशं प्रत्युपस्थितम्। कृष्णद्वैपायनः कोपाच्छापं दातुं समुद्यतः।।२५।।

इस प्रकार का विचार किया। देवदेव उमापति व्यास के इस मनोभाव को देखकर अति भयभीत हुए और अपनी प्रियतमा गौरी से कहने लगे- 'देवि! यह एक दुःखपूर्ण विषय जिस प्रकार उपस्थित हो गया है, उसे सुनो, कृष्णद्वैपायन व्यास क्रोध के कारण मुझे शाप देने को उद्यत हो गये हैं।।२४-२५।।

देव्युवाच

किमर्थं शपते क्रुद्धो व्यासः केन प्रकोपितः। किं कृतं भगवंस्तस्य येन शापं प्रयच्छति।।२६।।

देवी ने कहा-भगवन्! किसने व्यास जी को इस प्रकार कुपित कर दिया है? आपने उनका क्या ऐसा अपकार किया है, जिससे वे शाप दे रहे हैं?।।२६।।

देवदेव उवाच

अनेन सुतपस्तप्तं बहून्वर्षगणान्प्रिये। मौनिना ध्यानयुक्तेन द्वादशाब्दान्वरानने।।२७।।
ततः क्षुधा सुसञ्जाता भिक्षामटितुमागतः।
नैवास्य केनचिद्भिक्षा ग्रासार्धमपि भामिनि।।२८।।
एवं भगवतः काल आसीत्षाण्मासिको मुनेः। ततः क्रोधपरीतात्मा शापं दास्यति सोऽधुना।।२९।।

यावन्नैष शपेत्तावदुपायस्तत्र चिन्त्यताम्। कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रिये।।३०।।

देवदेव ने कहा–प्रिये! इस व्यास ने बारह वर्षों तक समाधिलीन हो मौन व्रत रख करके घोर तपस्या की है। तपस्या से उठने पर इसे क्षुधा लगी, जिससे भिक्षाटन करते हुए वह यहाँ आये, भामिनी! किन्तु यहाँ पर इसे किसी ने आधे ग्रास की भी भिक्षा नहीं दी। इस प्रकार मुनि के छः मास व्यतीत हो गये, जिससे अति क्रोधयुक्त होकर यह शाप देने जा रहे हैं। जब तक शाप नहीं देते हैं, तब तक कोई उपाय निश्चित कर लो। प्रिये! इस कृष्णद्वैपायन व्यास को नारायण रूवरूप ही समझो।।२६-३०।।

कोऽस्य शापान्न बिभेति ह्यपि साक्षात्पितामहः। अदैवं दैवतं कुर्याद्दैवं चाप्यपदैवतम्।।३१।।

आवां तु मानुषौ भूत्वा गृहस्थाविहवासिनौ।
तस्य तृप्तिकरीं भिक्षां प्रयच्छावो वरानने।।३२।।

भला इनके शाप से कौन है ऐसा जो भयभीत न हो जाये? साक्षात् पितामह भगवान् ब्रह्मा भी इसके शाप से भयभीत हो जायेंगे। इनके शाप से दैव के अधीन जो कार्य होगा वह भी हो सकता है और जो नहीं अधीन होगा वह भी हो सकता है। वरानने? इसलिये आओ हम दोनों यहाँ के निवासी बनकर गृहस्थ के वेश में उन्हें तृप्ति करने वाली भिक्षा का दान करें।' भगवान् शंकर ने इस प्रकार पार्वती से उस समय कहा।।३१-३२।।

एवमुक्ता ततो देवी देवेन शम्भुना तदा)।
व्यासस्य दर्शनं दत्त्वा कृत्वा वेषं तु मानुषम्।।३३।।
एह्येहि भगवन्साधो भिक्षां ग्राहय सत्तम।
अस्मद्गृहे कदाचित्त्वं नाऽऽगतोऽसि महामुने।।३४।।

ऐसा विचार निश्चित करने के उपरान्त भगवान् शंकर तथा पार्वती मनुष्य का वेश धारणकर व्यास जी के सम्मुख उपस्थित हुए और बोले–'साधु'! आओ, यहाँ मेरे पास आओ! श्रेष्ठ! यह भिक्षा ग्रहण करो। महामुने! तुम तो इतने दिनों तक रहकर भी हमारे यहाँ कभी नहीं आये'।।३३-३४।।

एतच्छ्रुत्वा प्रीतमना भिक्षां ग्रहीतुमागतः।
भिक्षां दत्त्वा तु व्यासाय षड्सामममृतोपमाम्।।३५।।
अनास्वादितपूर्वा सा भक्षिता मुनिना तदा।
भिक्षां व्यासस्ततो भुक्त्वा चिन्तयन्हृष्टमानसः।।३६।।

ववन्दे वरदं देवं देवीं च गिरिजां तदा। व्यासः कमलपत्राक्ष इदं वचनमब्रवीत्।।३७।।

देवो देवी नदी गङ्गा मिष्टमन्नं शुभा गतिः।
वाराणस्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचते।।३८।।

शंकर की ऐसी बातें सुन व्यास जी प्रसन्नचित्त हो भिक्षा ग्रहण करने के लिए वहाँ गये।

षड्रस व्यंजन समेत उत्तम भिक्षा को देकर पार्वती तथा शंकर वहीं खड़े रहे। मुनिवर व्यास उस अपूर्व स्वादिष्ट भिक्षा का भोजन ग्रहण कर अति हर्षित हो चिन्तन करने लगे कि 'यह ऐसी अपूर्व भिक्षा कहाँ से प्राप्त हो गई?' थोड़ी देर बाद कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले व्यास ने पार्वती तथा वरदायी शंकर की वन्दना की और यह कहा-'भगवान् महादेव ऐसे देवता, पार्वती ऐसी देवी, भगवती गंगा ऐसी नदी, ऐसा सुस्वादु अन्न, मरने पर उत्तम गति-विशाल नेत्रों वाली! ऐसे सुखद साधनों से सम्पन्न वाराणसी नगरी में भला किसे निवास करना न रुचेगा?।।३५-३८।।

एवमुक्त्वा ततो व्यासो नगरीमवलोकयन्।
चिन्तयानस्ततो भिक्षां हृदयानन्दकारिणीम्।।३९।।
अपश्यत्पुरतो देवं देवीं च गिरिजां तदा। गृहाङ्गणस्थितं व्यासं देवदेवोऽब्रवीदिदम्।।४०।।
इह क्षेत्रे न वक्तव्यं क्रोधनस्त्वं महामुने। एवं विस्मयमापन्नो देवं व्यासोऽब्रवीद्वचः।।४१।।

ऐसा कहकर व्यास उस नगरी को देखते हुए तथा हृदय को आनन्द देने वाली उस अपूर्व स्वाद वाली भिक्षा को सोचते हुए अपने सम्मुख खड़े हुए भगवान् शंकर और भगवती पार्वती की ओर देखा। घर के आँगन में खड़े हुए व्यास को देखकर देवाधिदेव ने कहा- 'महामुने! तुम तो बड़े क्रोधी हो, अतः इस वाराणसी नगरी में तुम निवास मत करो।' शिव की ऐसी वाणी सुन व्यास अति विस्मित हुए और शंकर से बोले।।३९-४१।।

व्यास उवाच

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं दातुमर्हसि। एवमस्त्वित्यनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत।।४२।।
न तद्गृहं न सा देवी न देवो ज्ञायते क्वचित्।
एवं त्रैलोक्यविख्यातः पुरा व्यासो महातपाः।।४३।।
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान्सर्वान्स्थितस्तस्यैव पार्श्वतः।
एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं शंसन्ति पण्डिताः।।४४।।
अविमुक्तगुणान्सर्वान्कः समर्थो वदिष्यति। देवब्राह्मणविद्विष्टा देवभक्तिविडम्बकाः।।४५।।

व्यास ने कहा-'देव! केवल चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को मुझे यहाँ प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दीजिए।' तदनन्तर शिव तथा पार्वती 'ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्हित हो गए। व्यास ने देखा कि न तो वहाँ वह घर दिखाई पड़ रहा है न पार्वती जी हैं और न शिव जी। सूत ने कहा-इस प्रकार प्राचीन काल में तीनों लोकों में सुविख्यात महातपस्वी व्यास जी ने अविमुक्त क्षेत्र के उत्तम गुणों को जानकर उसी के बगल में अपना निवास स्थान निश्चित किया था। पण्डित लोग इस प्रकार काशी के समीप में व्यास को अवस्थित जान उस क्षेत्र की प्रशंसा किया करते हैं।।४२-४५।।

ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च तथा नैष्कृतिकाश्च ये।
लोकद्विषो गुरुद्विषस्तीर्थायतनदूषकः।।४६।।

सदा पापरताश्चैव ये चान्ये कुत्सिता भुवि।
तेषां नास्तीति वासो वै स्थितोऽसौ दण्डनायकः॥४७॥
रक्षाणार्थं नियुक्तं वै दण्डनायकमुत्तमम्।
पूजयित्वा यथाशक्त्या गन्धपुष्पादिधूपकैः॥४८॥

ऐसे अविमुक्त के गुणों की प्रशंसा करने करने में कौन समर्थ हो सकता है? देवता तथा ब्राह्मणों से विद्वेष करने वाले, देवभक्ति की उपेक्षा करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, कृतघ्न, निष्कर्मण्य, लोकद्वेषी, गुरुद्वेषी, तीर्थ एवं देवमन्दिरों को दूषण देने वाले, सर्वदा पाप कर्म में निरत, इनके अतिरिक्त अन्य नीच प्रकृति के वे व्यक्ति, जो पृथ्वी पर अत्यन्त कुत्सित कर्मों में सदा लीन रहते हैं–सबके लिए अविमुक्त क्षेत्र में निवास स्थान नहीं है; क्योंकि दण्डनायक (भैरव)- वहाँ पर रक्षार्थ नियुक्त किये गये हैं।।४६-४८।।

नमस्कारं ततः कृत्वा नायकस्य तु मन्त्रवित्। सर्ववर्णावृते क्षेत्रे नानाविधसरीसृपे॥४९॥
ईश्वरानुगृहीता हि गतिं गाणेश्वरीं गताः। नानारूपधरा दिव्या नानावेषधरास्तथा॥५०॥
सुरा वै ये तु सर्वे च तन्निष्ठास्तत्परायणाः। यदिच्छन्ति परं स्थानमक्षयं तदवाप्नुयुः॥५१॥

मंत्रज्ञाता लोग सुगन्धित हव्य पुष्पादि तथा धूप आदि पूजन की सामग्रियों से यथाशक्ति दण्डनायक की पूजा तथा प्रणाम कर सभी वर्णों के लोगों से घिरे हुऐ अनेक प्रकार के सर्पादि जन्तुओं से आकीर्ण अविमुक्त में ईश्वर के अनुग्रहवश गणेश्वर की गति प्राप्त करते हैं, अनेक प्रकार के रूपों को धारणकर विविध वेशों में देवगण इस अविमुक्त क्षेत्र में शिव जी में भक्ति तथा निष्ठा रखते हुए, जिस-जिस मुख्य पद की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, उस-उस पद को अक्षय रूप में प्राप्त करते हैं।।४९-५१।।

परं पुरं दैवपुराद्विशिष्यते तदुत्तरं ब्रह्मपुरात्पुरः स्थितम्।
तपोबलादीश्वरयोगनिर्मितं न तत्समं ब्रह्मदिवौकसालयम्॥५२॥
मनोरमं कामगमं ह्यनामयमतीत्य तेजांसि तपांसि योगवत्॥५३॥

यह शिव जी का पुर देवपुरी अमरावती से भी विशेषता रखने वाला है, इसका उत्तरी भाग ब्रह्मपुरी की अपेक्षा भी विशेष पुण्यदायी है, यह शंकर के तपोबल एवं योगाराधना द्वारा इस प्रकार सुव्यवस्थित है। इसकी बराबरी में ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं के निवास स्थान भी नहीं हो सकते। यह अति मनोहारि इच्छा को पूर्ण करने वाला, रोगरहित तथा योग की भाँति सभी तपस्या एवं तेजों का अतिक्रमण करने वाला हैं।।५२-५३।।

अधिष्ठितस्तु तत्स्थाने देवदेवो विराजते। तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च य॥५४॥
सर्वतीर्थाभिषेकं तु सर्वदानफलानि च। सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यमविमुक्ते तदाप्नुयात्॥५५॥
अतीतं वर्तमानं च अज्ञानाज्ज्ञानतोऽपि वा। सर्वं तस्य च यत्पापं क्षेत्रं दृष्ट्वा विनश्यति॥५६॥

इस अविमुक्त के ऐसे परमपवित्र क्षेत्र में देवाधिदेव शंकर जी सदा विराजमान रहते हैं, इसमें जो तपस्या की जाती है तथा जिन नियमों का पालन किया जाता है, वह अन्यत्र की अपेक्षा अक्षय फलदायी होता है। सभी तीर्थों में स्नानादि करने का जो फल है, सभी दानों के देने का जो पुण्य है, सभी यज्ञों से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब अविमुक्त में निवासमात्र से प्राप्त होता है। भूतकाल में अथवा वर्तमान काल में जो कुछ भी पाप कर्म ज्ञान से अथवा अज्ञान से हो जाते हैं, वे सभी इस पुण्य क्षेत्र के दर्शन मात्र से निवृत हो जाते हैं!।।५४-५६।।

शान्तैर्दान्तैस्तपस्तप्तं यत्किञ्चिद्धर्मसंज्ञितम्।
सर्वं च तदवाप्नोति अविमुक्ते जितेन्द्रियः।।५७।।

अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः। कल्पकोटिशतैश्चापि नास्ति तस्य पुनर्भवः।।५८।।
अमरा ह्ययक्षयाश्चैव क्रीडन्ति भवसन्निधौ। क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं न संशयः।।५९।।
अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्तुवन्ति वै। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते तिष्ठन्त्यजरामराः।।६०।।

मन एवं इन्द्रियों को स्ववश रख शान्त चित्त से जो अन्यत्र तपस्या की जाती है अथवा धर्म के नाम से जो भी आचरण किये जाते हैं, वे सभी अविमुक्त में केवल इन्द्रियों को स्ववश रखने से प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र में जाकर शिव लिंग की पूजा करते हैं, उनका सैकड़ों कोटि कल्पों में भी पुनर्जन्म नहीं होता तथा वे अमर एवं अक्षय रूप में शिव के समीप क्रीड़ा करते हैं। सारांश यह कि यह अविमुक्त क्षेत्र संसार के अन्य क्षेत्रों तथा तीर्थों का उपनिषत्स्वरूप है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, जो अविमुक्त में महादेव जी की पूजा करते हैं तथा स्तुति करते हैं, वे सभी पापों से निर्मुक्त होकर वृद्धावस्था तथा मृत्यु से भी छुट्टी पा जाते हैं।।५७-६०।।

सर्वकामाश्च ये यज्ञाः पुनरावृत्तिकाः स्मृताः।
अविमुक्ते मृता ये च सर्वे ते ह्यनिवर्तकाः।।६१।।

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम्। अविमुक्ते मृतानां तु पतनं नैव विद्यते।।६२।।
कल्पकोटिसहस्रैस्तु कल्पकोटिशतैरपि। न तेषां पुनरावृत्तिर्मृता ये क्षेत्र उत्तमे।।६३।।
संसारसागरे घोरे भ्रमन्तः कालपर्ययात्। अविमुक्तं समासाद्य गच्छन्ति परमां गतिम्।।६४।।
ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम्। अविमुक्तं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि।।६५।।
अविमुक्तं प्रविष्टस्तु यदि गच्छेत्ततः पुनः। तदा हसन्ति भूतानि अन्योन्यकरताडनैः।।६६।।

कामक्रोधेन लोभेन ग्रस्ता ये भुवि मानवाः।
निष्क्रमन्ते नरा देवि दण्डनायकमोहिताः।।६७।।

सभी मनोरथों के पूर्ण करने के लिए प्रसिद्ध जो यज्ञादि हैं, उनके करने से भी मनुष्य को पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ता है; किन्तु जो अविमुक्त में केवल प्राणत्याग देते हैं, वे पुनः लौटकर कभी नहीं आते। ग्रहों, नक्षत्रों एवं ताराओं का पतन तो काल योग से कभी हो सकता है; किन्तु

अविमुक्त में मरने वाला कभी नहीं गिरता। इस उत्तम क्षेत्र में जो मरते हैं, वे सैकड़ों कोटि कल्पों में क्या सहस्रोंकोटि कल्पों में भी कभी पुनर्जन्म नहीं करते। इस घोर संसार क्षेत्र में जो मरते हैं, इस घोर संसार-सागर में कालक्रम से भ्रमण करता हुआ प्राणी जब अविमुक्त को प्राप्त कर लेता है, तब परम गति को प्राप्त करता है। इस घोर हाहाकारमय अचेतन कलियुग को जानकर जो प्राणी अविमुक्त को नहीं छोड़ते, वे ही पृथ्वी में कृतार्थ होते हैं। जो अविमुक्त में प्रविष्ट होकर पुनः बाहर जाने लगता है, उसे देख सभी जीव ताली पीटकर हँसने लगते हैं। हे देवि! जो मनुष्य काम, क्रोध तथा लोभ से ग्रस्त होते हैं, वे प्राणी दण्डनायक की माया से विमोहित होकर इस अविमुक्त से बाहर जाते हैं।।६१-६७।।

जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम्। ततो दुःखहतानां च गतिर्वाराणसी नृणाम्।।६८।।

तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने।
दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः।।६९।।
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका।
एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम्।।७०।।

एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि। एकेन जन्मना देवि मोक्षं पश्यन्त्यनुत्तमम्।।७१।।

एतद्वै कथितं सर्वं देव्यै देवेन भाषितम्।
अविमुक्तस्य क्षेत्रस्य तत्सर्वं कथितं द्विजाः।।७२।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१००३८।।

जप एवं ध्यान न करने वाले अज्ञानी एवं दुःख से पीड़ित व्यक्तियों के लिए काशी ही एक मात्र गति है। विश्वेश के इस आनन्द कानन अविमुक्त में पाँच तीर्थ समरूप हैं, दशश्वमेध, लोलार्क, केशव, विन्दुमाधव तथा सर्वश्रेष्ठ मणिकर्णिका। इन्ही पाँच अतिउत्तम तीर्थों से अविमुक्त की प्रशंसा होती है। परमेश्वरि! इस अविमुक्त क्षेत्र की एक विशेषता है कि मनुष्य इसमें आकर एक जन्म से ही उत्तम गति एवं मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। ऋषिगण! पार्वती के प्रति महादेव जी से कहे गये अविमुक्त क्षेत्र के इस माहात्म्य को मैं आप लोगों को सुना चुका।।६१-७२।।

।।एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८५।।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदा का अद्भुत माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत्कथितं त्वया। इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यं वद सत्तम॥१॥
यत्रोंकारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य च। अमरेशस्य चैवाऽऽहुर्माहात्म्यं पापनाशनम्॥२॥
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा। मार्कण्डेयश्च भगवान्न विनष्टस्तदा किल॥
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद॥३॥

ऋषियों ने कहा-श्रेष्ठ सूत जी! अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य तो तुम विस्तारपूर्वक हम लोगों को सुना चुके, अब उस नर्मदा के माहात्म्य को सुनाइये, जिसके साथ-साथ ओंकार तीर्थ का माहात्म्य, कपिला संगम का माहात्म्य तथा अमरेश पर्वत का माहात्म्य पापों के विनाश करने वाले कहे गये हैं? प्रलय काल आने पर भी प्राचीन काल में नर्मदा का नाश क्यों नहीं हुआ? क्या ऐसा कारण है कि उस समय मार्कण्डेय ऋषि भी विनष्ट होने से बच रहे, तुम यद्यपि इन बातों को कह चुके हो, पर विस्तार-पूर्वक इन्हीं सब बातों को पुनः कहो।।१-३।।

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना। नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः॥४॥
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्थो वनवासिना। पृष्टः पूर्वां महागाथां धर्मपत्रेण धीमता॥५॥

सूत ने कहा-ऋषिगण! प्राचीन काल में वन में निवास करते समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने इसी नर्मदा के माहात्म्य की लम्बी कथा को परम तपोनिष्ठ वनवासी महामुनि मार्कण्डेय जी से एक बार पूछा था।।४-५।।

युधिष्ठिर उवाच

श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम। भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत॥६॥
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता। नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा- द्विजोत्तम! अच्छे व्रत करने वाले! तुम्हारी कृपा से मैंने विविध प्रकार के धर्मों का उपदेश सुना है और पुनः श्रवण करना चाहता हूँ, मुझसे बताओ। हे महामुनि जी! क्यों कर यह महापुण्य प्रदायिनी सर्वत्र विख्यात नर्मदा इतनी सुप्रसिद्ध हुई? इस बात को मुझसे बताओ।।६-७।।

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी। तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥८॥
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्। तदेतद्धि महाराज तत्सर्वं कथयामि ते॥९॥

मार्कण्डेय ने कहा–सभी पापों का विनाश करने वाली, सभी नदियों में श्रेष्ठ यह नर्मदा नदी स्थावर-जंगम-सभी प्रकार के जीवों को तारने वाली है। हे महाराज! नर्मदा के माहात्म्य को, जैसा कि पुराणों में सुन चुका हूँ, यथावत् रूप में आप से निवेदित कर रहा हूँ॥८-९॥

पुण्या कनखले बङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती। ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥१०॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्। सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥११॥
कलिङ्गदेशे पाश्चार्थे पर्वतेऽमरकण्टके। पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा॥१२॥

कनखल तीर्थ में गंगा पुण्य प्रदायिनी है, कुरुक्षेत्र में सरस्वती का अधिक माहात्म्य है; किन्तु नर्मदा तो क्या ग्राम क्या जंगल सभी स्थानों पर परमपवित्र मानी गयी हैं। सरस्वती का जल तीन दिनों में, यमुना का जल सात दिनों में, गंगा का जल शीघ्र ही तथा नर्मदा का जल दर्शन करते ही मनुष्य को पवित्र करता है। कलिंग देश के पृष्ठ भाग में अमरकण्टक पर्वत पर तीनों लोकों में परमपवित्र, रमणीय एवं मनोहारिणी नर्मदा की अवस्थिति है॥१०-१२॥

सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः। तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां गताः॥१३॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्॥१४॥
जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम्॥१५॥

हे महाराज! वहाँ पर देवता, असुर, गन्धर्व आदि के समस्त परमतपस्वी महर्षिगण तपस्या कर परम सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं। हे राजन्! उक्त स्थान पर स्नान कर जितेन्द्रिय तथा नियम पूर्वक रहने वाला मनुष्य एक रात उपवास करके अपने सौ कुल को तारता है। जलेश्वर नामक तीर्थ में स्नान कर जो मनुष्य विधिपूर्वक पितरों को पिण्ड दान करता है, उसके पितर महाप्रलय तक सन्तुष्ट रहते हैं॥१३-१५॥

पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता। स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः॥१६॥
प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः। पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः॥१७॥

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यं च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः॥१८॥
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत्पितृदेवताः।

वहाँ पर्वत के चारों ओर एक करोड़ रुद्रों की प्रतिष्ठापना हुई है, जो कोई पुरुष वहाँ स्नान कर सुगन्धित द्रव्य पुष्प तथा चन्दनादि सामग्रियों से पूजन करता है, उसके ऊपर कोटिरुद्र शंकर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें तनिक सन्देह नहीं। उस पर्वत की पश्चिम दिशा के छोर पर स्वयं देव महेश्वर का पुण्य अधिष्ठान है, वहाँ पर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर जितेन्द्रिय तथा पवित्र मन होकर जो

स्नान कर पितरों का श्राद्धादि कार्य करता है और उसी स्थान पर तिल मिश्रित जल से पितरों का तर्पण करता है।।१६-१८.५।।

आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव॥१९॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। अप्सरोगणसङ्कीर्णे सिद्धचारणसेविते॥२०॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले॥२१॥

हे पाण्डपुत्र! उस मनुष्य का सातवाँ कुल तक इस पुण्य कार्य से स्वर्गलोक में आनन्द लाभ करता है और वह स्वयं सिद्धों तथा चारणों से सेवितः अप्सराओं के समूहों से आकीर्ण स्वर्गलोक में साठ सहस्र वर्षों तक पूजित होता है। तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर दिव्य सुगन्धित द्रव्यों को अंगों में लगाकर दिव्य अलंकारों से अलंकृत हो सम्पन्न कुल में जन्म धारण करता है।।१९-२१।।

धनवान्दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते। पुनः स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते॥२२॥
कुलानि तारयेत्सप्त रुद्रलोकं स गच्छति। योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा॥२३॥

उस जन्म में भी वह धनवान् दानशील तथा धार्मिक प्रवृत्ति का होता है और पुनः उक्त तीर्थ का स्मरण कर वहाँ की यात्रा के लिए इच्छुक होता है, सात कुलों को तारता है तथा रुद्रलोक को प्राप्त करता है। वह पवित्र तथा उत्तम नर्मदा नदी सौ योजन से अधिक ही सुनाई पड़ती है।।२२-२३।।

विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता। षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च॥२४॥
सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके। ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥२५॥
सर्वाहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः। एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥२६॥
तस्य पुण्यफलं राजञ्शृणुष्वावहितो मम।

राजेन्द्र! विस्तार में दो योजन की चौड़ी मानी गयी है। साठ करोड़ तथा साठ सहस्र तीर्थ उसके चारों ओर अमरकण्टक में अवस्थित हैं। जो कोई मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर, पवित्र मन हो क्रोध को जीतकर, इन्द्रियों को वश में रख, सभी प्रकार की हिंसाओं से निवृत्त हो सभी जीवों के कल्याण में निरत हो अपने प्राणों को वहाँ छोड़ता है, राजन्! उस पुरुष के पुण्य का फल सावधान होकर सुनिये। २४-२६.५।।

शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदते पाण्डव॥२७॥
(अप्सरोगणसङ्कीर्णे सिद्धचारणसेविते। दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः॥२८॥
क्रीडते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्॥२९॥
गृहं तु लभते वै स नानारत्नविभूषितम्। स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैडूर्यभूषितैः॥३०॥
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम्।

पाण्डुपुत्र! इस प्रकार की विधि से नियम पालन करने वाला पुरुष एक लाख वर्ष तक अप्सराओं के समूहों से आकीर्ण, सिद्धों तथा चारणों से सुशोभित स्वर्ग लोक में स्वर्गीय पुष्पों से सुशोभित तथा दिव्य सुगंधित द्रव्यों तथा चन्दनों का लेपकर आनन्द का अनुभव करता है। देवलोक में स्थित हो देवताओं के साथ विहार करता है, तदनन्तर स्वर्ग से पुण्य क्षीण हो जाने पर पृथ्वी पर पराक्रमी राजा होता है एवं अनेक रत्नों से विभूषित दिव्य हीरा-वैदूर्य आदि मणियों से सुशोभित खम्भों पर बने हुए कारीगरी से युक्त, दासी-दासों के समूहों से समन्वित राजभवन को प्राप्त करता है। मतवाले हाथी के चिग्घाड़ तथा घोड़ों की हिनहिनाहट से उसका राजद्वार सर्वदा इन्द्र के द्वार की भाँति क्षुब्ध रहता है।।२७-३१.५।।

मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां ह्रेषितेन च।।३१।।
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारमिन्द्रस्य भवनं यथा। राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः।।३२।।
तस्मिन्गृह उषित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते। जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः।।३३।।
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके।
अग्नौ विषजले वाऽपि तथा चैव ह्यनाशके।।३४।।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा। पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप।।३५।।
कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे। तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च।।
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम्)।।३६।।

राजाधिराज, श्रीसम्पन्न, सभी स्त्रियों का प्रिय होकर वह ऐसे विविध क्रीड़ा के साधनों वाले भवन में निवास करता हुआ सभी रोगों से रहित हो सौ वर्षों तक जीवित रहता है। अमरकण्टक पर्वत पर जो प्राणी मरता है, उसे इस प्रकार का आनन्द उपयोग करने को मिलता है। अग्नि में, विष में, जल में तथा अनशन में-सर्वत्र उसकी ऐसी स्वच्छन्द गति रहती है, जैसी वायु की आकाश में रहती है। हे राजन्! जो प्राणी इस अमरेश पर्वत से अपने को गिराता है, उसके घर तीन सहस्र कन्याएँ-इनमें एक-एक के लिए अन्यान्य भी रहती हैं-उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रार्थनी रहती हैं और दिव्य योगों से सुसम्पन्न होकर वह अक्षय काल तक उनके साथ क्रीड़ा करता है।।३२-३६।।

पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते। यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ पर्वतेऽमरकण्टके।।३७।।
तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे। ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।३८।।
तत्र पिण्डप्रदानेन संध्योपासनकर्मणा। पितरो दश वर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै।।३९।।

नृपश्रेष्ठ! इस अमरकण्टक पर्वत पर जिस प्रकार की विशेषता से युक्त यह तीर्थ अवस्थित है। ऐसा कोई अन्य तीर्थ समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वी मण्डल में भी नहीं हो सकता। उतने ही प्रभावशाली तीर्थ पर्वत के पश्चिमी भाग में जानना चाहिए। वहाँ तीनों लोकों में विख्यात जलेश्वर

नामक एक सरोवर है, जहाँ पिण्डदान तथा सन्ध्योपासन करने से पितरगण दस वर्ष तक तृप्त रहते हैं॥३७-३९॥

दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी। सकलार्जुनसञ्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥४०॥

साऽपि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर॥४१॥

दाहिने तट पर कपिला नामक एक नदी है, जो बिल्कुल उसी के समीप में श्वेत अर्जुन के वृक्षों से ढकी हुई बहती है। वह महाभाग्यशालिनी नदी भी तीनों लोकों में अमित पुण्यप्रदायिनी विख्यात है। युधिष्ठिर! उसमें भी सौ कोटि तीर्थों का निवास है॥४०-४१॥

पुराणे श्रूयते राजन्सर्वं कोटिगुणं भवेत्।
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्॥४२॥
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा॥४३॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्त्वा विशल्यो भवति क्षणात्।

राजन्! पुराणों में ऐसा सुना गया है कि वहाँ पर किये गये सभी पुण्यकर्म कोटिगुण फलदायी होते हैं। उस नदी के किनारे कालक्रम से गिरने वाले वृक्ष भी नर्मदा के जल-स्पर्श से परमगति प्राप्त करते हैं। दूसरी एक विशल्यकरणी नामक शुभ नदी है, जिसमें स्नानकर मनुष्य तत्क्षण ही पीड़ा रहित हो जाता है॥४२-४३.५॥

तत्र देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः॥४४॥

यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः। सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके॥४५॥

तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।
नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्या नाम नामतः॥४६॥

उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी। तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥४७॥

उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्। कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम॥४८॥

वहाँ किन्नरों एवं महासर्पों समेत देवगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण-सभी अमरकण्टक पर्वत पर सर्वदा एकत्र होते हैं तथा उन सबों के साथ परम तपस्वी ऋषिवृन्द नर्मदा तट पर उपस्थित होते हैं। राजन्! सभी पापों को नष्ट करने वाली महाभाग्यशालिनी यह नदी है, इसमें यदि ब्रह्मचारी मनुष्य इन्द्रियों को वश में रखकर स्नान करे तथा एक रात्रि का भी उपवास करे तो अपने सौ कुलों को तारता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ! ऐसी कपिला और विशल्या नामक दो नदियाँ सुनी गयी हैं॥४४-४८॥

ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्॥४९॥

अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥५०॥
नर्मदायास्तु राजेन्द्र पुराणे यन्मया श्रुतम्।
यत्र यत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत्॥५१॥

ईश्वर ने प्राचीन काल में लोक के कल्याण की भावना से इन दोनों का ऐसा माहात्म्य स्वयं बतलाया था। राजन्! इसमें स्नान कर मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। नराधिप! इस पवित्र तीर्थ में जो व्यक्ति अनशन करता है, वह सभी पापों से निर्मुक्त एवं विशुद्ध आत्मा हो शिवलोक को प्राप्त करता है। राजेन्द्र! पुराण में जो माहात्म्य मैंने सुना है, वह यह है कि यहाँ स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥४९-५१॥

ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते। सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर॥५२॥
समं स्नानं च दानं च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत्। परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके॥५३॥
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते।

जो इसके उत्तरी तट पर निवास करते हैं, वे रुद्रलोक में निवास करते हैं। युधिष्ठिर! गंगा, सरस्वती तथा नर्मदा इन तीन नदियों में स्नान करने एवं दान का समान फल है, जैसा कि शंकर जी ने मुझे बतलाया है। जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत पर अपने प्राणों को छोड़ता है, वह शतकोटि वर्षों तक रुद्रलोक में पूजित होता है। ५२-५३.५॥

नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिभिरलङ्कृतम्॥५४॥
पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते। नर्मदा च सदा पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी॥५५॥
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया। एवं रम्या च पुण्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन॥५६॥

नर्मदा के फेनिल लहरों से सुशोभित जल अति पवित्र पुण्यकारी एवं सिर से प्रणाम करने योग्य है, उसके प्रभाव से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। वह नर्मदा सर्वदा अति पुण्य प्रदायिनी तथा ब्रह्महत्या के पाप को भी दूर करने वाली है। उनके पवित्र किनारे पर मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रि का उपवास कर ब्रह्महत्या सरीखे घोर पापों से भी छुटकारा पा जाता है। हे पाण्डुनन्दन! सचमुच नर्मदा इतनी मनोहारिणी तथा पुण्यप्रदायिनी है॥५४-५६॥

त्रयाणामपि लोकानां पुण्या ह्येषा महानदी।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने॥५७॥
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः संशितव्रताः। श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसङ्गमे॥५८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१००९६॥

संक्षेप में यह महानदी तीनों लोकों में सर्वाधिक पुण्यप्रदायिनी है। हे ऋषिवृन्द! महापुण्यप्रद वटेश्वर तीर्थ में तथा तपोवन गंगाद्वार में निवास का उत्तम माहात्म्य बताया गया है; किन्तु नर्मदा और समुद्र के संगमस्थल पर उपर्युक्त सभी स्थानों की अपेक्षा दस गुना अधिक पुण्य मिलता है।।५७-५८।।

।।एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८६।।

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदा माहात्म्य प्रसंग में बाण और अनौपम्या से नारद का संवाद

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा तु नदी श्रेष्ठा पुण्या पुण्यतमा हिता।
मुनिभिस्तु महाभागैर्विभक्ता मोक्षकाङ्क्षिभिः।।१।।
यज्ञोपवीतमात्राणि प्रविभक्तानि पाण्डव। तेषु स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२।।
जलेश्वरं परं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। तस्योत्पत्तिं कथयतः शृणु त्वं पाण्डुनन्दन।।३।।
पुरा सुरगणाः सर्वे सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः। स्तुवन्ति ते महात्मानं देवदेवं महेश्वरम्।।
स्तुवन्तस्ते तु सम्प्राप्ता यत्र देवो महेश्वरः।।४।।
विज्ञापयन्ति देवेशं सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः। भयोद्विग्ना विरूपाक्षं परित्रायस्व नः प्रभो।।५।।

मार्कण्डेय ने कहा–पाण्डुपुत्र! श्रेष्ठ नर्मदा नदी पुण्य से भी अति पुण्यप्रदा है। मोक्ष की अभिलाषा करने वाले महाभाग्यशाली मुनियों ने सर्वदा इसका सेवन किया है। इसकी धारा यज्ञोपवीत की भाँति प्रवाहित होती है, राजेन्द्र! नर्मदा की धाराओं में स्नान कर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। तीनों लोकों में विख्यात जलेश्वर नामक अति उत्तम तीर्थ स्थान है। हे पाण्डुपुत्र! मैं उसकी उत्पत्ति बतला रहा हूँ, सुनो। प्राचीन काल में इन्द्र तथा मरुद्गण के समेत सभी देवताओं ने देवदेव महादेव की स्तुति की थी। स्तुति करते हुए वे वहाँ पहुँचे थे, जहाँ महादेव जी का निवास स्थान था। वहाँ पहुँच कर इन्द्र तथा मरुद्गणों के साथ देवताओं के विरूपाक्ष महादेव से प्रार्थना की थी कि 'प्रभो। हम लोग भय से अति चिन्तित हैं, हम सब की रक्षा कीजिए'।।१-५।।

भगवानुवाच

स्वागतं तु सुरश्रेष्ठाः किमर्थमिह चाऽऽगताः। किं दुःखं को नु सन्तापः कुतो वा भयमागतम्।।६।।

कथयध्वं महाभागा एवमिच्छामि वेदितुम्। एवमुक्तास्तु रुद्रेणाकथयन्संशितव्रताः॥७॥

भगवान् शंकर ने कहा-'श्रेष्ठ देवगण! आप सबका हम स्वागत करते हैं। कहिए, किस प्रयोजन से आप लोग यहाँ पधारे हैं? क्या दुःख है? कौन-सा सन्ताप है ? किससे आप लोगों को भय हो रहा है? महाभाग्यशालियो! कहिये, आप लोग किस प्रयोजन से यहाँ आये हुए हैं? उसे हम जानने के इच्छुक हैं। शिव के ऐसा पूछने पर तपस्वी ऋषियों ने कहा-॥६-७॥

ऋषय ऊचुः

अतिवीर्यो महाघोरो दानवो बलदर्पितः। बाणो नामेति विख्यातो यस्य वै त्रिपुरं पुरम्॥८॥
गगने सततं दिव्यं भ्रमते तस्य तेजसा। ततो भीता विरूपाक्ष त्वामेव शरणं गताः॥९॥
त्रायस्व महतो दुःखात्त्वं हि नः परमा गतिः। एवं प्रसादं देवेश सर्वेषां कर्तुमर्हसि॥१०॥
येन देवाः सगन्धर्वाः सुखमेधन्ति शङ्कर। परां निर्वृतिमायान्ति तत्प्रभो कर्तुमर्हसि॥११॥

ऋषियों ने कहा-एक अतिबलशाली, महाघोर, बलवान् बाण नामक विख्यात असुर है, जिसका त्रिपुर नामक महान् दुर्ग है। उसके अनुपम तेज से वह दिव्य त्रिपुर निरन्तर आकाश में घूमता रहता है, विरूपाक्ष! उसी से हम लोग अत्यन्त भयभीत होकर तुम्हारी शरण में आये हुए हैं। महान् दुःख से हम लोगों को उबारिये, तुम्हीं हम लोगों की परम गति हो, देवेश! हम सभी के ऊपर ऐसी महती कृपा करो, जिससे गन्धर्वों समेत सब देवगण सुख प्राप्त कर सकें, प्रभो! जिस प्रकार से हम लोग परम सन्तोष का लाभ करें वैसा करने की कृपा कीजिये॥८-११॥

भगवानुवाच

एतत्सर्वं करिष्यामि मा विषादं गमिष्यथ। अचिरेणैव कालेन कुर्यां युष्मत्सुखावहम्॥१२॥
आश्वास्य स तु तान्सर्वान्नर्मदातटमाश्रितः। चिन्तयामास देवेशस्तद्वधं प्रति मानद॥१३॥
अथ केन प्रकारेण हन्तव्यं त्रिपुरं मया। एवं संचिन्त्य भगवान्नारदं चास्मरत्तदा॥
स्मरणादेव सम्प्राप्तो नारदः समुपस्थितः॥१४॥

भगवान् ने कहा-'देवगण! जैसा कि आप लोग कह रहे हैं, मैं वह सब करूंगा, विषाद मत करते जाईये। थोड़े ही काल में तुम सबको मैं सुखी बनाऊँगा।' मानियों को मान देने वाले! इस प्रकार उन सभी देवताओं को आश्वासन देकर देवदेव शंकर ने नर्मदा के तट पर अवस्थित हो उस बाण के संहार की चिन्ता की, कि 'किस उपाय द्वारा मुझे इस त्रिपुर का विनाश करना चाहिए'? इस प्रकार विचार करते हुए भगवान् ने नारद का स्मरण किया। स्मरण करते ही नारद वहाँ उपस्थित हो गये॥१२-१४॥

नारद उवाच

आज्ञापय महादेव किमर्थं च स्मृतो ह्यहम्। किं कार्यं तु मया देव कर्तव्यं कथयस्व मे॥१५॥

नारद ने कहा–देवदेव! कहिये, किसलिए आपने मेरा स्मरण किया है। देव! मेरे लिए क्या करना है, उसे बतलाईये ?।।१५।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छ नारद तत्रैव यत्रैतत्त्रिपुरं महत्। बाणस्य दानवेन्द्रस्य शीघ्रं गत्वा च तत्कुरु।।१६।।
ता भर्तृदेवतास्तत्र स्त्रियश्चाप्सरसां समाः। तासां वै तेजसा विप्र भ्रमते त्रिपुरं दिवि।।१७।।
तत्र गत्वा तु विप्रेन्द्र मतिमन्यां प्रचोदय। देवस्य वचनं श्रुत्वा मुनिस्त्वरितविक्रमः।।१८।।
स्त्रीणां हृदयनाशाय प्रविष्टस्तत्पुरं प्रति। शोभते यत्पुरं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम्।।१९।।

श्रीभगवान् ने कहा–'नारद जी! तुम वहाँ जाओ जहाँ यह महान् त्रिपुर अवस्थित है, दानवेन्द्र बाण के पास जाकर जैसा मैं कह रहा हूँ वैसा करो। उसकी स्त्रियाँ पति को ही देवता मानने वाली हैं, वे सुन्दरता में सभी अप्सराओं के समान हैं। विप्र उन्हीं के तेजोबल से यह त्रिपुर आकाश में घूमता है। विप्रेन्द्र! अतः तुम वहाँ जाकर उनकी बुद्धि को विकृत बना दो।' महादेव की बातें सुन नारद जी तुरन्त ही त्रिपुर निवासिनी स्त्रियों के हृदयंगत भावों को नष्ट करने के लिए उस दिव्य त्रिपुर में प्रविष्ट हुए। वह त्रिपुर अनेक रत्नों से सुशोभित हो रहा था।।१६-१९।।

शतयोजनविस्तीर्णं ततो द्विगुणमायतम्। ततोऽपश्यद्धि तत्रैव बाणं तु बलदर्पितम्।।२०।।
मणिकुण्डलकेयूरमुकुटेन विराजितम्। हेमहारशतै रत्नैश्चन्द्रकान्तविभूषितम्।।२१।।
रशना तस्य रत्नाढ्या बाहू कनकमण्डितौ। चन्द्रकान्तमहावज्रमणिविद्रुमभूषिते।।२२।।
द्वादशार्कद्युतिनिभे निविष्टं परमासने। उत्थितो नारदं दृष्ट्वा दानवेन्द्रो महाबलः।।२३।।

उसकी चौड़ाई सौ योजन तथा लम्बाई दो सौ योजन में थी। वहाँ पहुँचकर नारद ने बल से उद्धत बाण को देखा, जो उस समय मणिजनित कुण्डल, केयूर तथा मुकुट से शोभायमान था। रत्नजटित सुवर्ण के सैकड़ों हार तथा चन्द्रकान्त मणि से शोभित हो रहा था, उसकी करधनी रत्नों से सुशोभित थी, दोनों विशाल बाहु सुवर्ण से विभूषित थीं, उसमें चन्द्रकान्त, महावज्र मणि तथा मूँगे भी सुशोभित हो रहे थे। बारह सूर्य के समान उच्च एवं तेजस्वी आसन पर बैठा हुआ था। नारद को देखकर महाबलशाली दानवेन्द्र बाण उठ खड़ा हुआ।।२०-२३।।

बाण उवाच

देवर्षे त्वं स्वयं प्राप्तो ह्यर्घ्य पाद्यं निवेदये।
सोऽभिवाद्य यथान्यायं क्रियतां किं द्विजोत्तम।।२४।।
चिरात्त्वमागतो विप्र आस्यतां मुनिपुङ्गव। एवं सम्भाषयित्वा तु नारदमृषिसत्तमम्।।
तस्य भार्या महादेवी ह्यनौपम्या तु नामतः।।२५।।

बाण ने कहा–'देवर्षे! आपने स्वयमेव हमारी पुरी में पदार्पण किया है–अर्घ्य एवं पाद्य मैं निवेदित कर रहा हूँ।' इस प्रकार का अभिवादन कर बाण ने कहा– 'द्विजोत्तम! मुझे क्या आज्ञा है,

विप्र! बहुत दिनों बाद यहाँ आये हुए हैं, विप्रेन्द्र! आयें यहाँ विराजमान हों', इस प्रकार आदरपूर्ण शब्दों में नारद का सत्कार बाण ने किया। उसकी स्त्री का नाम अनौपम्या था, जो वास्तव में महादेवी थी।।२४-२५।।

अनौपम्योवाच

भगवन्मानुषे लोके केन तुष्यति केशवः। व्रतेन नियमेनाथ दानेन तपसाऽपि वा।।२६।।

अनौपम्या ने कहा–भगवन्! मर्त्यलोक में भगवान् केशव किस व्रत, नियम, तपस्या अथवा दान द्वारा लोगों पर सन्तुष्ट होते हैं? कृपया, यह मुझे बतलाइये।।२६।।

नारद उवाच

तिलधेनुं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे। ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी।।२७।।
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः। मोदते चाक्षयं कालं यावच्चन्द्रार्कतारकम्।।२८।।
आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च। कदम्बचम्पकाशोकपुंनागविविधद्रुमान्।।२९।।
अश्वत्थपिप्पलं चैव कदलीवटदाडिमान्। पिचुमन्दं मधूकं च उपोष्य स्त्री ददाति या।।३०।।
स्तनौ कपित्थसदृशावूरू च कदलीसमौ।

नारद ने कहा–जो मनुष्य वेदों के पारगामी ब्राह्मण को तिल समेत धेनु का दान देता है, उसने मानों समस्त सागरों तथा वनों समेत पृथ्वी का दान दे दिया है। करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली विमानों द्वारा अक्षय काल तक, जब तक कि सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण अवस्थित रहते हैं, आनन्द का अनुभव करता है। आम, इमली, कैथा, बेर, कदम्ब, चम्पक, अशोक, पुन्नाग एवं विविध प्रकार के वृक्षों को, पीपल, केला, बरगद, अनार, नीम, महुआ, आदि के वृक्षों को जो स्त्री उपवास कर दान देती है, उसके दोनों स्तन कैथे के समान तथा दोनों ऊरु भाग कदली के समान शोभायुक्त हो जाते हैं।।२७-३०.५।।

अश्वत्थे वन्दनीया च पिचुमन्दे सुगन्धिनी।।३१।।
चम्पके चम्पकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता। मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका।।३२।।
बदरी सर्वदा स्त्रीणां महासौभाग्यदायिनी। कुक्कुटी कर्कटी चैव द्रव्यषष्ठी न शस्यते।।३३।।
कदम्बमिश्रकनकमञ्जरीपूजनं तथा। अनग्निपक्वमन्नं च पक्वान्नानामभक्षणम्।।३४।।
फलानां च परित्यागः संध्यामौनं तथैव च।

अश्वत्थ के देने पर वह वन्दनीय होती है। नीम के देने पर सुगन्धिपूर्ण रहती है, चम्पक के देने पर चम्पक के समान दिखाई पड़ती है, अशोक के देने पर शोक से रहित हो जाती है, महुवे के देने पर मिष्टभाषिणी होती है, बरगद के देने पर मनोहर शरीर वाली होती है। बेर तो स्त्रियों को सर्वदा महासौभाग्य प्रदान करने वाली है। कर्कटी (ककड़ी) और कुक्कुटी का दान स्त्रियों को प्रशंसनीय नहीं माना गया है, इसी प्रकार कदम्ब से मिश्रित कनकमञ्जरी द्वारा पूजा एवं बिना अग्नि का पका

हुआ अन्न तथा पके अन्न समूहों का अभक्षण, फलों का परित्याग, सन्ध्या काल में मौन साधन भी अप्रशंसनीय है।।३१-३४.५।।

प्रथमं क्षेत्रपालस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः।।३५।।
तस्या भवति वै भर्ता मुखप्रेक्षी सदाऽनघे। अष्टमी च चतुर्थी च पञ्चमी द्वादशी तथा।।३६।।
सङ्क्रान्तिर्विषुवच्चैव दिनच्छिद्रमुखं तथा।
एतांस्तु दिवसान्दिव्यानुपवसन्ति याः स्त्रियः।।
तासां तु धर्मयुक्तानां स्वर्गवासो न संशयः।।३७।।
कलिकालुष्यनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः उपवासरतां नारीं नोपसर्पति तां यमः।।३८।।

किसी भी पूजा के पहले प्रयत्नपूर्वक क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए। निष्पापे! इस प्रकार पूजा करने वाली स्त्री का पति सर्वदा उसका मुँह जोहने वाला होता है। अष्टमी, पंचमी, चतुर्थी तथा द्वादशी तिथि, संक्रान्ति तथा उस दिन, जब कि दिन तथा रात्रि बराबर होते हैं, तथा उस दिन, जब कि सूर्य का मुख छिद्र हो चुका हो ....?, को जो स्त्रियाँ व्रत रहती हैं, उन धर्मपरायणा स्त्रियों का निवास स्वर्ग में होता है- इसमें सन्देह नहीं। कलि के दोषों से तथा सभी प्रकार के पाप कर्मों से उन्मुक्त उन उपवास करने वाली स्त्रियों के पास यमराज कभी नहीं जाता।।३५-३८।।

अनौपम्योवाच

अस्मिन्कृतेन पुण्येन पुराजन्मकृतेन वा। भवदागमनं जातं किञ्चित्पृच्छाम्यहं व्रतम्।।३९।।
अस्ति विन्ध्यावलिर्नाम बलिपत्नी यशस्विनी।
श्वश्रूर्ममापि विप्रेन्द्र न तुष्यति कदाचन।।४०।।
श्वशुरोऽपि सर्वकालं दृष्ट्वा चापि न पश्यति।
अस्ति कुम्भीनसी नाम ननदा पापकारिणी।।४१।।
दृष्ट्वा चैवाङ्गुलीभङ्गं सदाकालं करोति माम्।
दिव्येन तु पथा याति मम सौख्यं कथं वद।।४२।।
ऊषरे न प्ररोहन्ति बीजाङ्कुराः कथञ्चन। येन व्रतेन चीर्णेन भवन्ति वशगा मम।।
तद्व्रतं ब्रूहि विप्रेन्द्र दासभावं वज्रामि ते।।४३।।

अनौपम्या ने कहा–महर्षे! मेरे इस जन्म के तथा पूर्व जन्म के सत्कर्मों के पुण्य फल से आपका शुभागमन यहाँ मेरे पुर में हुआ है। कुछ अन्य व्रतों को भी आप से पूछ रही हूँ। विप्रेन्द्र! यशश्विनी विन्ध्यावली नामक बलि की पत्नी, जो मेरी सास लगती हैं, मुझसे कभी सन्तुष्ट नहीं रहतीं, मेरे ससुर भी उनके उस व्यवहार को सर्वदा देखते हुए भी यह मालूम पड़ता है कि कुछ नहीं देखते या कुछ नहीं जानते, पाप कर्म में निरत रहने वाली कुम्भीनसी नामक मेरी ननद भी मुझे देखकर बराबर अँगुली तोड़ती रहती है। अतः तुम यह बताओ कि ऐसी विषम स्थिति में किस सत्पथ द्वारा

मुझे सौख्य की प्राप्ति हो सकती है? मैं जानती हूँ कि ऊसर खेत के बीजों के अंकुर किसी प्रकार भी नहीं उग सकते; किन्तु फिर भी विप्रेन्द्र! जिस व्रत के पालन करने से ये मेरे वश में हो, उसे मुझे बतलाईये, मैं आपकी दासी हूँ।।३९-४३।।

नारद उवाच

यदेतत्ते मया पूर्वं व्रतमुक्तं शुभानने। अनेन पार्वती देवी चीर्णेन वरवर्णिनि।।४४।।
शङ्करस्य शरीरस्था विष्णोर्लक्ष्मीस्तथैव च।
सावित्री ब्रह्मणश्चैव वसिष्ठस्याप्यरुन्धती।।४५।।

नारद ने कहा-'सुन्दर मुख वाली! सुन्दरि! ऐसे व्रत का विधान मैं अभी तुम्हें बता चुका हूँ, उसी के पालन करने के कारण पार्वती शंकर के शरीर में, लक्ष्मी विष्णु के शरीर में, सावित्री (सरस्वती) ब्रह्मा के शरीर में, अरुन्धती वसिष्ठ के शरीर में आदर पूर्वक विराजमान रहती हैं।।४४-४५।।

एतेनोपोषितेनेह भर्ता स्थास्यति ते वशे। श्वश्रूश्वशुरयोश्चैव मुखबन्धो भविष्यति।।४६।।

इसी व्रत के पालन करने से तुम्हारा पति तुम्हारे वश में रहेगा, सास तथा ससुर को भी तुम्हें कुछ कहने का साहस नहीं होगा।।४६।।

एवं श्रुत्वा तु सुश्रोणि यथेष्टं कर्तुमर्हसि। नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत्।।४७।।
प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र दानं ग्राह्यं यथेप्सितम्। सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च।।४८।।
तव दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्लभम्। प्रगृहाण द्विजश्रेष्ठ प्रीयेतां हरिशङ्करौ।।४९।।

सुन्दर कटि वाली! तुम इस व्रत के नियम को तो सुन चुकी हो, अतः उसी का पालन करो' नारद की ऐसी बातें सुन रानी ने कहा-विप्रेन्द्र! मेरे ऊपर कृपा करो और मेरे दिये हुए दान को ग्रहण करो। सुवर्ण, मणि, विविध प्रकार के रत्न, वस्त्र तथा आभूषणादि- इन सबों के अतिरिक्त अन्य अति दुर्लभ सामग्रियों को मैं तुम्हें दान करना चाहती हूँ, द्विजश्रेष्ठ! उन सब को तुम ग्रहण करो, जिससे विष्णु तथा शंकर मुझ पर प्रसन्न हों।।४७-४९।।

नारद उवाच

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिस्तु यो द्विजः। अहं तु सर्वसम्पन्नो मद्भक्तिः क्रियतामिति।।५०।।
एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासां तु पतिव्रतात्। जगाम भरतश्रेष्ठ स्वकीयं स्थानकं पुनः।।५१।।
ततो ह्यहृष्टहृदया अन्यतोगतमानसा। पतिव्रतात्वमुत्सृज्य तासां तेजो गतं ततः।।
पुरे च्छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः।।५२।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०१४८।।

नारद ने कहा–'भद्रे! इन वस्तुओं को तुम किसी अन्य ब्राह्मण को दो, जिसे कोई वृत्ति अन्यत्र नहीं मिलती, मैं तो सभी सम्पत्तियों से भरा–पुरा हूँ, तुम केवल मुझ पर भक्ति–भाव रखो।' भरतकुलश्रेष्ठ? इस प्रकार की बातें कर नारद ने उन सभी स्त्रियों के मन को प्रतिव्रत धर्म से विचलित कर हरण कर लिया और पुनः अपने स्थान को प्रस्थान किया। तदनन्तर त्रिपुर की उन स्त्रियों के मन विचलित हो जाने के कारण अति दुःखी हुए, तथा पतिव्रत धर्म के छोड़ देने से उनके तेज नष्ट हो गये। इस प्रकार पराक्रमी बाण के उस त्रिपुर में यह एक छिद्र पैदा हो गया।।५०-५२।।

।।एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८७।।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुर विध्वंस का वर्णन और नर्मदा का माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय तन्मे कथयतः शृणु। एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थितः।।१।।

नाम्ना माहेश्वरं स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्मिन्स्थाने महादेवोऽचिन्तयत्त्रिपुरक्षयम्।।२।।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम्।
स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम्।।३।।
शल्ये चाग्निं प्रतिष्ठाप्य मुखे वायुं समर्पयन्।

मार्कण्डेय ने कहा–कुन्तीपुत्र! जिस प्रश्न को तुम मुझसे पूछ रहे थे, उसे मैं अब बतला रहा हूँ, सुनो। नारद के त्रिपुर से चले जाने के बाद भगवान् रुद्र नर्मदा के तट पर तीनों लोकों में विख्यात माहेश्वर नामक स्थान पर आये और वहाँ पर उन्होंने त्रिपुर के विध्वंस करने की बात सोची। उन्होंने मन्दराचल को गाण्डीव, वासुकि सर्प को डोरी, स्वामिकार्तिकेय को तरकस, विष्णु को एक बाण बनाया और बाण के अग्रभागों में अग्नि को स्थापित कर उनकी पुच्छों में वायु का वेग स्थापित किया।।१-३.५।।

हयांश्च चतुरो वेदान्सर्वदेवमयं रथम्।।४।।
अभीषवोऽश्विनौ देवावक्षो वज्रधरः स्वयम्।
स तस्याऽऽज्ञां समादाय तोरणे धनदः स्थितः।।५।।

यमस्तु दक्षिणे हस्ते वामे कालस्तु दारुणः। चक्रे त्वमरकोट्यस्तु गन्धर्वा लोकविश्रुताः।।६।।

चारों वेदों को रथ के घोड़े बनाकर रथ को सर्वदेवमय निर्मित किया, उसमें दोनों अश्विनी कुमारों को बागडोर तथा धुरी में साक्षात् वज्रधारी इन्द्र को नियत किया। धनाध्यक्ष कुबेर शिव की आज्ञा से पताका के स्थान पर नियत हुए, यमराज दाहिने हाथ पर तथा दारुण काल को स्थित कर चक्कों में करोड़ों देवता तथा लोकविख्यात गन्धर्वों को नियत किया।।४-६।।

प्रजापतिरथ श्रेष्ठो ब्रह्मा चैव तु सारथिः। एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम्।।७।।
सोऽतिष्ठत्स्थाणुभूतस्तु सहस्त्रपरिवत्सरान्। यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे स्थितानि वै।।८।।

तदनन्तर देवताओं में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा जी शिव के सारथी हुए। इस प्रकार सभी देवताओं के सम्पर्क से निर्मित किये गये उत्तम रथ की रचना कर शिव जी स्थाणु रूप ही सहस्त्रों वर्षों तक प्रतिक्षा करते रहे। जब तीनों योग आकाश में एक साथ उपस्थित हुए, तब उन्होंने तीन पर्वों तथा तीन फालों वाले बाण द्वारा त्रिपुर का भेदन किया।।७-८।।

त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि व्यभेदयत्। शरः प्रचोदितस्तेन रुद्रेण त्रिपुरं प्रति।।९।।
भ्रष्टतेजाः स्त्रियो जाता बलं तासां व्यशीर्यत।
उत्पाताश्च पुरे तस्मिन्प्रादुर्भूताः सहस्त्रशः।।१०।।
त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपा भवंस्तदा। अट्टहासं प्रमुञ्चन्ति हया काष्ठमयास्तदा।।११।।
निमेषोन्मेषणं चैव कुर्वन्ति चित्ररूपिणः।
स्वप्ने पश्यन्ति चाऽऽत्मानं रक्ताम्बरविभूषितम्।।१२।।

इस प्रकार जब शिव ने त्रिपुर को लक्ष्यकर अपना उक्त बाण छोड़ा, तब वहाँ की स्त्रियों का तेज नष्ट हो गया तथा उनका पराक्रम छिन्न-भिन्न हो गया। उस समय त्रिपुर में विविध प्रकार के सहस्त्रों उत्पात होते दिखाई पड़ने लगे। उस समय शिव त्रिपुर के विनाशार्थ प्रत्यक्ष काल स्वरूप हो गये, काष्ठ के बनु हुए घोड़े भीषण अट्टहास करने लगे, चित्रों में स्थित आकृतियाँ नेत्र खोलने तथा मूँदने लगीं, लोग अपने को स्वप्न में लाल वस्त्रों से विभूषित देखने लगे।९-१२।।

स्वप्ने तु सर्वे पश्यन्ति विपरीतानि यानि तु।
एतान्पश्यन्ति उत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः।।१३।।
तेषां बलं च बुद्धिश्च हरकोपेन नाशिते। ततः सांवर्तको वायुर्युगान्तप्रतिमो महान्।।१४।।
समीरितोऽनलस्तेन उत्तमाङ्गेन धावति। ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च।।१५।।
सर्वतो व्याकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम्। भग्नोद्यानानि सर्वाणि क्षिप्रं तत्प्रत्यभज्यत।।१६।।

सभी त्रिपुर निवासी स्वप्न में अपनी विपरीत अमांगलिक दशा देखने लगे। इस प्रकार वहाँ के लोग विविध प्रकार के होने वाले उपद्रवों को देखने लगे। शिव के क्रोध से सभी की बुद्धि तथा शक्ति क्षीण हो गई। उस समय सांवर्तक नामक वायु, जिस प्रकार प्रलयकाल में वेग पूर्वक बहती है, बहने लगी। उस भीषण एवं उग्र वायु से प्रज्ज्वलित अग्नि की लपटें भी त्रिपुर में उठने लगीं, जिससे

वृक्षों के समूह जलने लगे, पर्वतों की चोटियाँ ढहकर गिरने लगीं। सभी ओर से घोर हाहाकार मच गया, चराचर जगत् व्याकुल हो गया। सभी उद्यान एवं वाटिकाएँ नष्ट हो गई।।१३-१६।।

तेनैव पीडितं सर्वं ज्वलितं त्रिशिखैः शरैः।
द्रुमाश्चाऽऽरामखण्डानि गृहाणि विविधानि च॥१७॥
दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समृद्धो हव्यवाहनः। मनःशिलापुञ्जनिभो दिशो दश विभागशः॥१८॥
शिखाशतैरनेकैस्तु प्रजज्वाल हुताशनः।
सर्वं किंशुकवर्णाभं ज्वलितं दृश्यते पुरम्॥१९॥
गृहाद्गृहान्तरं नैव गन्तुं धूमेन शक्यते।

उस प्रकार तीन सिरों वाले उस भयानक रुद्र के बाण द्वारा सभी त्रिपुर जलने लगा, विविध प्रकार के वृक्ष वाले बगीचे, विचित्र बने हुए राजप्रासाद सभी ओर से लगी हुई उस प्रचण्ड अग्नि की भीषण ज्वाला में समाविष्ट हो गये। भीषण अग्नि की लपटों में दसों दिखाएँ मैनशिल के पुञ्ज की भाँति प्रदीप्त दिखाई पड़ने लगीं। जलता हुआ त्रिपुर चारों ओर से फूले हुए पलाश की भाँति दिखाई पड़ने लगा। धुएँ की अधिकता से लोग एक घर से दूसरे घर में भी नहीं जा सके।।१७-१९.५।।

हरकोपानलैर्दग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम्॥२०॥
प्रदीप्तं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम्। प्रासादशिखराग्राणि व्यशीर्यन्त सहस्रशः॥२१॥
नानामणिविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा।
गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीप्तवह्निना॥२२॥

शिव की कोपाग्नि से जलता हुआ अनेक भीषण चीत्कारों तथा दुःखपूर्ण ध्वनियों से आकुल वह त्रिपुर सभी दिशाओं में जलता हुआ दिखाई पड़ने लगा। राजप्रासादों की चोटियों सहस्त्रों भागों में छिन्न-भिन्न होकर नीचे गिरने लगीं। अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित विचित्र ढंग के बने हुए विमान तथा मनोहर भवन उदीप्त अग्नि की ज्वालाओं में भस्म होने लगे।।२०-२२।।

धावन्ति द्रुमखण्डेषु वलभीषु तथा जनाः। देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्तः प्रधाविताः॥२३॥
क्रन्दन्ति चानलप्लुष्टा रुदन्ति विविधैः स्वरैः।
गिरिकूटनिभास्तत्र दृश्यन्तेऽङ्गारराशयः॥२४॥

लोग दौड़कर वृक्षों की डालियों तथा भवनों के बारजों पर छिपने लगे। सभी ओर से दौड़कर देवालयों में शरण लेने लगे, अग्नि की प्रचण्ड लपटों से जलते हुए वे चिल्लाने तथा अति आर्त स्वर में रुदन करने लगे। इस प्रकार त्रिपुर में अंगारों की राशि ऊँचे पहाड़ की चोटियों की भाँति दिखाई पड़ने लगी।।२३-२४।।

गजाश्च गिरिकूटाभा दह्यमाना यतस्ततः। स्तुवन्ति देवदेवेशं परित्रायस्व नः प्रभो॥२५॥
अन्योन्यं च परिष्वज्य हुताशनप्रदीपिताः। स्नेहात्प्रदह्यमानाश्च तथैव विलयं गताः॥२६॥

दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः॥२७॥

इधर-उधर पर्वतों के शिखरों के समान विशाल आकृति वाले हाथी जलते हुए दिखाई पड़ने लगे। तब त्रिपुरवासी लोग देवदेव की स्तुति करने लगे कि 'हे प्रभो! हम लोगों की रक्षा कीजिए।' अग्नि की लपटों में लीन एक-दूसरे के शरीर से स्नेह के कारण लिपट कर वहाँ सैकड़ों क्या सहस्रों दानवगण मृत्यु को प्राप्त हुए।।२५-२७।।

हंसकारण्डवाकीर्णा नलिन्यः सहपङ्कजाः।
दृश्यन्तेऽनलदग्धानि पुरोद्यानानि दीर्घिकाः॥२८॥

हंस एवं कारण्डवों से शोभित, कमलों से युक्त त्रिपुर की पुष्करिणी तथा बावलियाँ भीषण अग्नि से जलकर नष्ट हो गई।।२८।।

अम्लानपङ्कजच्छन्ना विस्तीर्णा योजनायताः।
गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादा रत्नभूषिताः॥२९॥
पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव। वरस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु॥३०॥
निर्दयो व्यदहद् वह्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः। सहस्रशः प्रबुद्धाश्च सुप्ताश्च बहवो जनाः॥३१॥
पुत्रमालिङ्ग्य ते गाढं दह्यन्ते त्रिपुराग्निना।

खिले हुए कमलों के सुशोभित योजनों तक फैली हुई उन बावलियों का कहीं पता भी नहीं रह गया। विविध रत्नों से अलंकृत पर्वतों के शिखरों की भाँति दिखाई पड़ने वाले राजप्रासाद अग्नि से भस्म होकर जलरहित सरोवर की भाँति दिखाई पड़ने लगे। शिव के क्रोध से प्रेरित अग्नि की लपटें स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, गाय, पक्षी, अश्व आदि के झुण्डों को निर्ममतापूर्वक जलाने लगी। सैकड़ों व्यक्ति जागते हुए भी जल गये, कितने सोये हुए थे वैसे ही भस्म हो गये, कितनी स्त्रियाँ पुत्रों को समेटकर उस त्रिपुर की अग्नि में भस्मासात् हो गईं।।२९-३१.५।।

निदाघोऽभून्महावह्नेरन्तकाले यथा तथा॥३२॥
केचिद्गुप्ताः प्रदग्धास्तु भार्योत्सङ्गतास्तथा।
पित्रा मात्रा च सुश्लिष्टा दग्धास्ते त्रिपुराग्निना॥
अथ तस्मिन्पुरे दीप्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः॥३३॥
अग्निज्वालाहतास्तत्र ह्यपतन्धरणीतले। काचिच्छ्यामा विशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता॥३४॥
धूमेनाऽऽकुलिता सा तु पतिता धरणीतले।

उस विकराल अग्नि का ऐसा प्रचण्ड निदाघ काल हुआ, जैसा अन्तकाल (प्रलयकाल) में हुआ करता है। कितने लोग जो भवनों के भीतर छिपे हुए थे, वहीं जलकर ढेर हो गये, कितने स्त्रियों के अंक में शयन कर रहे थे, वहीं रह गये। कितने अपने पिता तथा माता की गोद में छिपे हुए जल कर चल बसे। इस प्रकार भीषण अग्नि की ज्वाला में निमग्न उस त्रिपुर में अप्सराओं के समान

सुन्दर स्त्रियाँ अग्नि की लपटों से आहत होकर पृथ्वी पर गिरने लगीं, कोई सुन्दरी, जिसके नेत्र बड़े-बड़े थे तथा मोतियों की लड़ियाँ पहिने हुई थीं, धुएँ से व्याकुल नेत्र हो पृथ्वी तल पर गिर पड़ीं।।३२-३४.५।।

काचित्कनकवर्णाभा इन्द्रनीलविभूषिता।।३५।।
भर्तारं पतितं दृष्ट्वा पतिता तस्य चोपरि। काचिदादित्यसङ्काशा प्रसुप्ता च गृहे स्थिता।।३६।।
अग्निज्वालाहता सा तु पतिता गतचेतना। उत्थितो दानवस्तत्र खड्गहस्तो महाबलः।।३७।।
वैश्वानरहतः सोऽपि पतितो धरणीतले।

कोई सुवर्ण के समान गौरांगिनी, जो इन्द्र नीलमणि से जटित आभूषण पहिने हुए थी अपने प्रिय पति को जला हुआ देख उसी के ऊपर स्वयमेव गिर पड़ी। सूर्य के समान तेज से देदीप्यमान कोई सुन्दरी अपने भवन में शयन कर रही थी, उसी समय अग्नि की ज्वाला से भस्म होकर बेहोश हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसी समय उसका पति दानव हाथों में तलवार लेकर उठा; किन्तु अग्नि की भीषण लपटों से जलकर वह भी गिर कर जमीन पर ढेर हो गया।।३५-३७.५।।

मेघवर्णाऽपरा नारी हारकेयूरभूषिता।।३८।।
श्वेतवस्त्रपरीधाना बालं स्तन्यं न्यधापयत्। दह्यन्तं बालकं दृष्ट्वा रुदति मेघशब्दवत्।।३९।।
एवं स तु दहन्नग्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः। काचिच्चन्द्रप्रभा सौम्या वज्रवैडूर्यभूषिता।।४०।।
सुतमालिङ्गय वेपन्ती दग्धा पतति भूतले।

मेघ के समान श्यामल वर्ण वाली कोई सुन्दरी जो उत्तम हार तथा केयूर से सुशोभित हो रही थी, श्वेत वस्त्र पहिने थी, अपने दुधमुँहे बच्चे को गोद में लिए हुए खड़ी-खड़ी अपने बालक को जलते देख मेघ की गर्जना के समान रोती हुई स्वयं भस्म हो गयी। इस प्रकार शिव के क्रोध से प्रेरित वह अग्नि त्रिपुर में वह भीषण काण्ड मचाने लगी। कोई चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दरी जो हीरों से जटित आभूषण धारण किये हुए थी, अपने पुत्र को गोद में ले काँपती हुई जलकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। ३८-४०.५।।

काचित्कुन्देन्दुवर्णाभा क्रीडन्ती स्व गृहे स्थिता।।४१।।
गृहे प्रज्वलिते सा तु प्रतिबुद्धा शिखार्दिता।
पश्यन्ती ज्वलितं सर्वं हा सुतो मे कथं गतः।।४२।।
सुतं सन्दग्धमालिङ्गय पतिता धरणीतले।

कोई कुन्द के पुष्प तथा चन्द्रमा के समान गौरवर्ण वाली सुन्दरी अपने भवन में क्रीड़ा कर रही थी, घर को अग्नि की लपटों में जलता हुआ देखकर वह आगाह हुई और चिल्लाने लगी कि 'हाय सबकुछ जला जा रहा है, मेरा बेटा कहाँ गया?-ऐसा कहते हुए उसने समीप में ही अपने पुत्र को जला हुआ देखा और स्वयं पृथ्वी पर गिरकर भस्म हो गयी।।४१-४२.५।।

आदित्योदयवर्णाभा लक्ष्मीवदनशोभना॥४३॥
त्वरिता दह्यमाना सा पतिता धरणीतले। काचित्सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता॥४४॥
धूमेनाऽऽकुलिता सा तु प्रसुप्ता धरणीतले।

उदयकालीन सूर्य की भाँति वर्ण वाली लक्ष्मी के समान सुन्दर मुख वाली कोई सुन्दरी जलती हुई शीघ्रता से बचाव के लिए दौड़ने लगी; किन्तु पृथ्वी पर गिर कर भस्म हो गई। कोई सुवर्ण के समान गौर वर्ण वाली सुन्दरी, जो नीलमणि से जटित आभूषण पहिने हुए थी, प्रचण्ड धुएँ से व्याकुल हो पृथ्वी पर लेट गई और वहीं भस्म हो गई।।४३-४४.५।।

अन्या गृहीतहस्ता तु सखि दह्यति बालिका॥४५॥
अनेकदिश्यरत्नाढ्या दृष्ट्वा दहनमोहिता।
शिरसि ह्यञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम्॥४६॥
भगवन्यदि वैरं ते पुरुषेष्वपकारिषु। स्त्रियः किमपराध्यन्ति गृहपञ्जरकोकिलाः॥४७॥

उसका हाथ पकड़े हुए कोई दूसरी सुन्दरी थी, वह कह रही थी, 'सखि! बेटी जली जा रही है' सभी दिशाओं में उत्पन्न होने वाले रत्नों से अलंकृत वह सुन्दरी अग्नि की भयावनी लपटों से भयभीत हो सिर पर अंजलियों को बाँधकर अग्नि से निवेदन करने लगी- 'भगवन्! यदि तुम्हारा वैर अपकार करने वाले त्रिपुर के पुरुषों से है तो घर रूपी पिंजरे में रहने वाली कोकिल रूपी विवश बालाओं ने तुम्हारा क्या अपराध किया है?।।४५-४७।।

पाप निर्दय निर्लज्ज कस्ते कोपः स्त्रियः प्रति।
न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौर्यवर्जित॥४८॥
अनेन ह्यपसर्गेण तूपालम्भं शिखिन्यदात्।
किं त्वया न श्रुतं लोके ह्यवध्याः शत्रुयोषितः॥४९॥
किं तु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनोत्सादनं प्रति।
न कारुण्यं भयं वाऽपि दाक्षिण्यं न स्त्रियः प्रति॥५०॥

पाप! निर्लज्ज! स्त्रियों के साथ तुम्हारा कब का वैर है, न तो तुम्हें कुछ विवेक है, न लज्जा है, न तुममें सत्य है, न पराक्रम बचा है। इस प्रकार की आक्षेपपूर्ण बातों से वे लपटों में अग्नि की भर्त्सना करती हुई स्वयं भस्म होने लगीं। 'क्या तुमने यह नहीं सुना है कि शत्रु की स्त्रियों पर प्रहार नहीं करना चाहिए; किन्तु इस क्रुर दहनकर्म एवं स्त्रियों के प्राण हरण में वे गुण रूप में तुझमें दिखाई पड़ रहे हैं, न तो तुझमें दया है, न किसी का भय है, न स्त्रियों के प्रति समुचित व्यवहार करने का विवेक ही है।।४८-५०।।

दयां कुर्वन्ति म्लेच्छापि दहन्तीं वीक्ष्य योषितम्।
म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवारो ह्यचेतनः॥५१॥

एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति। आसामपि दुराचार स्त्रीणां किं ते निपातने॥५२॥
दुष्ट निर्घृण निर्लज्ज हुताशिन्मन्दभाग्यक। निराशत्वं दुरावास बलाद्दहसि निर्दय॥५३॥

म्लेच्छ लोग भी स्त्रियों को जलती हुई देख दयाभाव प्रदर्शित करते हैं; किन्तु तू तो म्लेच्छों से भी कष्टदायी हो, दुर्दमनीय हो और जड़ हो! इस प्रकार निर्दयतापूर्वक जलाने तथा मारने का नीचतापूर्ण काम तुझे नहीं शोभा देता। दुराचारी! इन स्त्रियों को जलाने से तुझे भला क्या मिलेगा? दुष्ट! निर्दयी! निर्लज्ज! दुरात्मा! आभागे! क्रूरात्मा! पामर! तू क्यों बलपूर्वक हम सबों को जला रहा है?'॥५१-५३॥

एवं विलपमानास्ता जल्पन्त्यश्च बहून्यपि।
अन्याः क्रोशन्ति संक्रुद्धा बालशोकेन मोहिताः॥५४॥
दहते निर्दयो वह्निः संक्रुद्धः पूर्वशत्रुवत्। पुष्करिण्यां जलं दग्धं कूपेष्वपि तथैव च॥५५॥
अस्मान्सन्दह्य म्लेच्छ त्वं कां गतिं प्रापयिष्यसि।
एवं प्रलपितं तासां श्रुत्वा देवो विभावसुः॥
मूर्तिमान्सहसोत्थाय वह्निर्वचनमब्रवीत्॥५६॥

इस प्रकार भर्त्सना करती हुई त्रिपुर की सुन्दरियाँ अनेक उपालम्भपूर्ण बातें करती हुई जलने लगीं। उनमें से कुछेक तो अपने बालकों के जल जाने के शोक से मूर्च्छित थीं, कुछ चिल्ला चिल्लाकर कह रही थीं कि 'अरे पूर्वशत्रु की भाँति क्रुद्ध होकर यह दुष्ट शत्रु अग्नि हम सबों को जला रहा है, पुष्करिणयों का जल भस्म हो गया, कूपों के जल भी जल गये। हे म्लेच्छ! इस प्रकार हम लोगों को जलाकर तू भला कौन-सी गति प्राप्त करेगा'? इस प्रकार त्रिपुर की सुन्दरियों की भर्त्सनापूर्ण बातें सुन अग्निदेव मूर्तिमान् हो प्रत्यक्ष हुए तथा शीघ्रतापूर्वक आसन से उठकर बोलें।॥५४-५६॥

अग्निरुवाच

स्ववशो नैव युष्माकं विनाशं तु करोम्यहम्।
अहमादेश कर्ता वै नाहं कर्ताऽस्म्यनुग्रहम्॥५७॥
रुद्रकोधसमाविष्टो विचरामि यथेच्छया। ततो बाणो महातेजास्त्रिपुरं वीक्ष्य दीपितम्॥५८॥
सिंहासनस्थः प्रोवाच ह्यहं देवैर्विनाशितः। अल्पसत्त्वैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितम्॥५९॥

अग्नि के कहा-'अपने वश में होकर मैं आप लोगों का विनाश नहीं कर रहा हूँ, मैं तो आज्ञापालन करने वाला हूँ, भला मैं अनुग्रह किस प्रकार कर सकता हूँ? रुद्र के क्रोध के कारण मैं आप लोगों के इस त्रिपुर में इच्छापूर्वक विचरण कर रहा हूँ। अग्नि की ऐसी बातें सुन तथा त्रिपुर को इस प्रकार जलते देख महातेजस्वी सिंहासन पर बैठे हुए बाणासुर ने कहा- अहो देवताओं ने हमारा विनाश कर दिया, उन अल्प बलशाली तथा दुराचारियों ने शंकर से प्रार्थना कर ऐसा कार्य सम्पन्न कराया है।॥५७-५९॥

अपरीक्ष्य त्वहं दग्धः शङ्करेण महात्मना।
नान्यः शक्तस्तु मां हन्तुं वर्जयित्वा त्रिलोचनम्॥६०॥

महात्मा शंकर ने हम लोगों की बिना परीक्षा किये ही त्रिपुर का विध्वंस किया है। त्रिलोचन शंकर को छोड़कर कोई अन्य देवता मुझे मारने की शक्ति नहीं रखता'॥६०॥

उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम्।
निर्गतः स पुरद्वाराज्परित्यज्य सुहृत्सुतान्॥६१॥
रत्नानि यान्यनर्घाणि स्त्रियो नानाविधास्तथा।
गृहीत्वा शिरसा लिङ्गं गच्छन्नागनमण्डलम्॥६२॥
स्तुवंश्च देवदेवेशं त्रिलोकाधिपतिं शिवम्। त्यक्ता पुरी मया देव यदि वध्योऽस्मि शङ्कर॥६३॥
त्वत्प्रसादान्महादेव मा मे लिङ्गं विनश्यतु।

ऐसा कहकर सिर पर त्रिभुवन के स्वामी शंकर के लिंग को धारण कर अमूल्य रत्नों, अनेक प्रकार की सुन्दरी स्त्रियों, मित्रों तथा परिवार के लोगों को उसी विपत्ति में छोड़ पुरद्वार से बाहर निकला। उस समय शिवलिंग को सिर पर रख आकाश मार्ग से देवाधिदेव त्रिलोक के अधीश्वर शिव की स्तुति करते हुए पुर से बाहर हुआ और बोला- 'हे देव शंकर! यदि सचमुच मैं मारने योग्य हूँ तो अब मैं इस पुरी को छोड़ रहा हूँ। देव! तुम्हारी कृपा से इस लिंग का विनाश न हो॥६१-६३.५॥

अर्चितं हि मया देव भक्त्या परमया सदा॥६४॥
त्वत्कोपाद्यदि वध्योऽहं तदिदं मा विनश्यतु। श्लाघ्यमेतन्महादेव त्वत्कोपाद्दहनं मम॥६५॥
प्रतिजन्म महादेव त्वत्पादनिरतो ह्यहम्। तोटकच्छन्दसा देव स्तौमि त्वां परमेश्वर॥६६॥

देव! मैंने सर्वदा परम भक्ति से आपकी आराधना की है, यदि तुम्हारे क्रोध से मैं सचमुच विनाश का पात्र हूँ तो कोई हर्ज नहीं है। मेरे इस आराध्य लिंग का विनाश न हो- मैं यही चाहता हूँ। महादेव! तुम्हारे कोप के कारण यह मेरा जलना भी प्रशंसनीय है; किन्तु यह मैं चाहता हूँ कि अपने प्रत्येक जन्मों में मैं तुम्हारे चरणों में लगा रहूँ। परमेश्वर! इन तोटक छन्दों से मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ॥६४-६६॥

शिव शङ्कर शर्व हराय नमो भव भीम महेश्वर शर्व नमः।
कुसुमायुधदेहविनाशकर त्रिपुरान्तक अन्धकशूलधर॥६७॥
प्रमदाप्रिय कान्त विरक्त नमः ससुरासुरसिद्धगणैर्नमित।

शिव! शंकर! हर! शर्व! हर! भव! भीम! महेश्वर! सर्व! कुसुमायुध के शरीर को विनष्ट करने वाले त्रिपुर के शत्रु! अन्धक के विनाशक! त्रिशूलधारी! स्त्रियों के प्रिय! मनोहर वेशवाले! विरक्त सुरासुर तथा सिद्धों के समूहों द्वारा नमस्कृत! तुझे मैं प्रणाम करता हूँ॥६७.५॥

हयवानरसिंहगजेन्द्रमुखैरतिह्रस्वसुदीर्घविशालमुखैः ॥६८॥
उपलब्धुमशक्यतरैरसुरैः प्रथितोऽस्मि च बाहुशतैर्बहुभिः।
प्रणतोऽस्मि भवं भवभक्तिरतश्चलचन्द्रकलाङ्कुर देव नमः॥६९॥
न च पुत्रकलत्रहयादि धनं मम तु त्वदनुस्मरणं शरणम्।
व्यथितोऽस्मि शरीरशतैर्बहुभिर्गमिता च महानरकस्य गतिः॥७०॥
न निवर्तति जन्म न पापमतिः शुचिकर्मनिबद्धमपि त्यजति।
अनुकम्पति विभ्रमति त्रसति मम चैव कुकर्म निवारयति॥७१॥

आश्व, वानर, सिंह तथा हाथी के समान बहुत छोटे तथा बहुत बड़े अत्यन्त तेजोमय दीर्घ तथा विशाल मुख वाले! तुम्हारे चरणों को प्राप्त करने में असमर्थ असुरों तथा सैकड़ों बाहुओं से युक्त मैं तुम्हें प्रणाम कर रहा हूँ। हे चंचल चन्द्रमा की कला से सुशोभित देव! तुम्हें हमारा प्रणाम है। अब पुत्र, स्त्री तथा अश्वादि की मेरे मन में इच्छा नहीं है, मेरी तो एकमात्र गति तुम्हारी शरण ही है, मैं इस सैकड़ों वीरों जितने बलवान् शरीर को प्राप्तकर के भी व्यथित हूँ, इसके द्वारा मैं महानरक में जाऊंगा, न तो जन्म लेने से छुटकारा मिलेगा न पाप कर्म से बुद्धि ही निवृत्त होगी, चंचल मन निश्चय किये हुए भी पुण्य कर्मों को छोड़ देता है, बराबर डाँवाडोल रहता है, भ्रमता है, डरता है, मेरे कुकर्म मुझे सत्कर्मों से निवारण करते हैं।।६८-७१।।

यः पठेत्तोटकं दिव्यं प्रयतः शुचिमानसः। बाणस्येव यथा रुद्रस्तस्यापि वरदो भवेत्॥७२॥
इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः। प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं वचनमब्रवीत्॥७३॥

जो मनुष्य इस दिव्य तोटक का पाठ मन को वश में रख तथा पवित्र मन से पाठ करता है, उसको भी बाण के समान शंकर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं। इस महादिव्य स्तोत्र को सुनकर देवदेव महादेव जी अति प्रसन्न हुए तथा स्वयं बाण से बोले।।७२-७३।।

महेश्वर उवाच

न भेतव्यं त्वया वत्स सौवर्णे तिष्ठ दानव। पुत्रपौत्रसुहृद्बन्धुभार्याभृत्यजनैः सह॥७४॥
अद्यप्रभृति बाण त्वमवध्यस्त्रिदशैरपि। भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव॥७५॥
अक्षयश्चाव्ययो लोके विचरस्वाकुतोभयः। ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तदा॥७६॥

महेश्वर ने कहा- 'वत्स! तुम मत डरो, अपने पुत्र, पौत्र, सुहृद्, परिवार वर्ग, स्त्री तथा नौकर के साथ सुवर्ण निर्मित त्रिपुर में निवास करो। बाण! आज से तुम्हारा संहार देवता लोग भी नहीं कर सकते। पाण्डव! इस प्रकार देवाधिदेव ने उसे पुनः वरदान दिया कि तुम नाशरहित हो, सभी लोकों में इच्छापूर्वक विचरण करो, कहीं भी तुम्हें भय का लेश नहीं हैं'। बाण से ऐसा कहकर शिव ने अग्नि को त्रिपुर दाह से रोक दिया।।७४-७६।।

तृतीयं रक्षितं तस्य शङ्करेण महात्मना। भ्रमत्तुगगने दिव्यं रुद्रतेजः प्रभावतः॥७७॥

एवं तु त्रिपुरं दग्धं शङ्करेण महात्मना। ज्वालामालाप्रदीप्तं तत्पतितं धरणीतले॥७८॥
एकं निपतितं तत्र श्रीशैले त्रिपुरान्तके। द्वितीयं पतितं तस्मिन्पर्वतेऽमरकण्टके॥७९॥
दग्धेषु तेषु राजेन्द्र रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता। ज्वलत्तदपतत्तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः॥८०॥

इस प्रकार शंकर बाण के तीसरे पुर की रक्षा की। तब से रुद्र के तेज प्रभाव से रक्षित वह तीसरा पुर गगनमण्डल में घूमने लगा। महात्मा शंकर ने इसी प्रकार त्रिपुर का दहन किया था। ज्वालाओं के इस समूह से घिरे हुए त्रिपुर के दो पुर आकाशमण्डल से पृथ्वी तल पर गिरे थे, जिनमें से एक त्रिपुरान्तक के श्रीशैल पर तथा दूसरा अमरकण्टक पर्वत पर गिरा था। राजेन्द्र! उनके जल जाने पर वहाँ रुद्रकोटि की प्रतिष्ठापना हुई थी। जलते हुए आकाश से गिरने के कारण उसका ज्वालेश्वर नाम पड़ा॥७७-८०॥

ऊर्ध्वेन प्रस्थितास्तस्य दिव्यज्वाला दिवं गताः।
हाहाकारस्तदा जातो देवासुरकृतो महान्॥८१॥
शरमस्तम्भयद्रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे। एवं वृत्तं तदा तस्मिन्पर्वतेऽमरकण्टके॥८२॥

उससे उठने वाली दिव्यज्वाला स्वर्ग लोक को चली, जिससे देवताओं तथा असुरों में महान् हाहाकार मच गया। रुद्र ने अपने माहेश्वर के उत्तम पुर पर चलाये गये बाण को स्तम्भित कर दिया। उस समय अमरकण्टक पर्वत पर इस प्रकार की घटना घटित हुई थी॥८१-८२॥

चतुर्दशाख्यं भुवनं स भुक्त्वा पाण्डुनन्दन।
वर्षकोटिसहस्त्रं तु त्रिंशत्कोट्यस्तथाऽपराः॥८३॥
ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः।
पृथिवीमेकच्छत्रेण भुङ्क्ते स तु न संशयः॥८४॥

पाण्डुनन्दन! इस प्रकार ऊपर कही हुई विधि से पूजन करने वाला प्राणी चौदहों भुवनों का तीस करोड़ तथा सहस्त्रकोटि वर्षों तक उपभोग करता है। तदनन्तर पृथ्वी तल पर उत्पन्न होकर परम धार्मिकराज के कुल में उत्पन्न होता है तथा समस्त पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य करता है-इसमें तनिक भी सन्देह नहीं॥८३-८४॥

(एवं पुण्यो महाराज पर्वतोऽमरकण्टकः। चन्द्रसूर्योपरागे तु गच्छेद्योऽमरकण्टकम्॥८५॥
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः। स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र महेश्वरम्॥८६॥

महाराज! इस प्रकार का पुण्यदायी वह अमरकण्टक पर्वत है। चन्द्रमा तथा सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो अमरकण्टक की यात्रा करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ से दस गुना अधिक फल होता है। पण्डितों ने ऐसा कहा है कि वहाँ परमेश्वर का दर्शन कर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है॥८५-८६॥

ब्रह्महत्या गमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे। तदेवं निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके॥८७॥

मनसाऽपि स्मरेद्यस्तं गिरिं त्वमरकण्टकम्। चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः)॥८८॥

राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने के अवसर पर जो प्राणी वहाँ जाता है, उसकी ब्रह्महत्या छुट जाती है, समस्त अमरकण्टक की सीमा भर में ऐसा माहात्म्य कहा जाता है। जो व्यक्ति मन से भी उस अमरकण्टक पर्वत का स्मरण करता है, वह सौ चान्द्रायण व्रत का पुण्यफल प्राप्त करता है- इसमें सन्देह नहीं। यह अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है, यह सिद्ध तथा गन्धर्वों के समूहों से सेवित अति पवित्र श्रेष्ठ पर्वत है।।८७-८८।।

त्रयाणामपि लोकानां विख्यातोऽमरकण्टकः। एष पुण्यो गिरिश्रेष्ठः सिद्धगन्धर्वसेवितः॥८९॥
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः। मृगव्याघ्रसहस्रैस्तु सेव्यमानो महागिरिः॥९०॥
यत्र सन्निहितो देवो देव्या सह महेश्वरः। ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह॥९१॥
ऋषिभिः किन्नरैर्यक्षैर्नित्यमेव निषेवितः। वासुकिः सहितस्तत्र क्रीडते पन्नगोत्तमैः॥९२॥

अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ इस पर फैली हुई हैं। विविध रंग के फूल खिले रहते हैं। इस महापर्वत में सहस्रों मृग तथा बाघ घूमा करते हैं। देवी पार्वती के साथ इस पर्वत पर भगवान् शंकर विराजमान है, उनके साथ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा विद्याधरों के समूह भी इस पर्वत पर सन्निहित रहते हैं। ऋषि, किन्नर तथा यक्षगण नित्य इस महागिरि में निवास करते हैं। बड़े-बड़े सर्पों के साथ नागराज वासुकि भी उस पर क्रीड़ा करता है।।९०-९२।।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके। पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥९३॥

तत्र ज्वालेश्वरं नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥९४॥

जो मनुष्य इस महागिरी अमरकण्टक की प्रदक्षिणा करता है, वह पौण्डरीक नामक यज्ञ का पुण्यफल प्राप्त करता है। उस अमरकण्टक पर ज्वालेश्वर नामक सिद्धों से सेवित पवित्र तीर्थ है। उसमें स्नान करने वाला जीव मृत्यु के बाद पुनर्जन्म नहीं लेता।।९३-९४।।

ज्वालेश्वरे महाराज यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। चन्द्रसूर्योपरागेषु तस्यापि शृणु यत्फलम्॥९५॥
सर्वकर्मविनिर्मुक्तो ज्ञानविज्ञानसंयुतः। रुद्रलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥९६॥
अमरेश्वरदेवस्य पर्वतस्य उभे तटे। तत्र ता ऋषिकोट्यस्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रत॥९७॥

समन्ताद्योजनक्षेत्रो गिरिश्चामरकण्टकः॥९८॥

अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले। स्नात्वा मुच्येत पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥९९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्येऽष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०२४७।।

हे महाराज! उस ज्वालेश्वर तीर्थ में जो मनुष्य चन्द्र तथा सूर्यग्रहण के अवसर पर अपने प्राणों को छोड़ता है, उसे भी जो फल होता है सुनो, सभी कर्मों से विनिर्मुक्त ज्ञान तथा विज्ञान से संयुक्त वह रुद्रलोक में महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है। हे सुव्रत! इस अमरेश्वर पर्वत के पवित्र दोनों तटों पर कोटि-कोटि ऋषिगण तपस्या करते हैं, चारों ओर से एक योजन के परिमाण में यह अमरकण्टक क्षेत्र विस्तृत है। किसी विशेष कामना के अथवा निष्काम भाव से जो मनुष्य नर्मदा के पवित्र जल में स्नान करता है, वह सभी पापकर्मों से मुक्त होकर रुद्रलोक की प्राप्ति करता है।।९५-९९।।

।।एक सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त।।१८८।।

अथ एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय से ऋषियों का कावेरी संगम का माहात्म्य पूछना, कुबेर की तपस्या, शंकर द्वारा कुबेर को वर प्राप्ति

सूत उवाच

पृच्छन्ति ते महात्मानो मार्कण्डेयं महामुनिम्। युधिष्ठिरपुरोगास्ते ऋषयश्च तपोधनाः।।१।।
आख्याहि भगवंस्तथ्यं कावेरीसङ्गमं महत्।
लोकानां च हितार्थाय अस्माकं च विवृद्धये।।२।।
सदा पापरता ये च नरा दुष्कृतकारिणः। मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमं पदम्।।
एतदिच्छाम विज्ञातुं भगवन्वक्तुमर्हसि।।३।।

सूत ने कहा-ऋषिवृन्द! युधिष्ठिर को प्रमुख बनाकर उस महात्मा तपस्वी ऋषियों ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा- 'भगवन्! हम लोगों की अभिवृद्धि तथा लोक के मंगल की कामना से तुम कावेरी के उस महान् संगम का माहात्म्य बतलाओ, जिसके प्रभाव से सर्वदा पापाचरण में निरत दुष्कर्मी नर सभी पापों से निर्मुक्त होकर परमपद की प्राप्ति करते हैं। हे भगवन्! इसे जानने को हम लोगों की बड़ी इच्छा है, बतलाओ'।।१-३।।

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्त्ववहिताः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः। अस्ति वीरो महायक्षः कुबेरः सत्यविक्रमः।।४।।
इदं तीर्थमनुप्राप्य राजा यक्षाधिपोऽभवत्। सिद्धिं प्राप्तो महाराज तन्मे निगदतः शृणु।।५।।
कावेरी नर्मदा यत्र सङ्गमो लोकविश्रुतः। तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः।।६।।
तपोऽतप्यत यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत्। तस्य तुष्टो महादेवः प्रादाद्वरमनुत्तमम्।।७।।

भो भो यक्ष महासत्त्व वरं ब्रूहि यथेप्सितम्। ब्रूहि कार्यं यथेष्टं तु यत्ते मनसि वर्तते॥८॥

मार्कण्डेय ने कहा–युधिष्ठिर तथा ऋषिगण! सब लोग सावधानपूर्वक सुनिये, सत्यपराक्रमी कुबेर नामक यक्षों का स्वामी, इसी तीर्थ की यात्रा कर यक्षों का स्वामी हुआ। महाराज! जिस प्रकार उसने इस सिद्धि की प्राप्ति की है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये। लोकविख्यात कावेरी तथा नर्मदा का पवित्र संगम जिस स्थान पर हुआ है, उसी स्थान पर स्नान कर सत्य पराक्रम कुबेर ने पवित्र मन हो सौ वर्षों तक तपस्या की, जिससे सन्तुष्ट होकर महादेव जी ने उसे उत्तम वरदान देते हुए कहा- 'महापराक्रमी यक्षराज! जो वरदान चाहते हो उसे माँग लो'। जो कुछ भी तुम्हारे मन में अभिलाषा हो उसे बतलाओ'?॥४-८॥

कुबेर उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम। अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिपो भवे॥९॥
कुबेरस्य वचः श्रुत्वा परितुष्टो महेश्वरः। एवमस्तु ततो देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१०॥
सोऽपि लब्धवरो यक्षः शीघ्रं लब्धफलोदयः।
पूजितः स तु यक्षैश्च ह्यभिषिक्तस्तु पार्थिव॥११॥
कावेरीसङ्गमं तत्र सर्व पापप्रणाशनम्। ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः॥१२॥

कुबेर ने कहा–देव! यदि सचमुच आप मेरे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो यह वरदान मुझे दीजिए कि मैं आज से सभी यक्षों का स्वामी हो जाऊँ। कुबेर की बात सुन शंकर जी अति सन्तुष्ट हुए और 'ऐसा ही होगा' कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये। कुबेर भी शंकर जी के वरदान को प्राप्त कर तथा वरदान के फल को शीघ्र ही अधिगत कर यक्षों द्वारा पूजित तथा स्वामित्व पद पर अभिषिक्त हुए। उस सभी पापों को नष्ट करने वाले कावेरी के पवित्र संगम पर जो मनुष्य नहीं जाता सचमुच वह वंचित रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं॥९-१२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः। कवेरी च महापुण्या नर्मदा च महानदी॥१३॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ह्यर्चयेद्वृषभध्वजम्। अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते॥१४॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्याद्यश्च कुर्यादनाशकम्।
अनिवर्त्या गतिस्तस्य यथा मे शङ्करोऽब्रवीत्॥१५॥

अतः सभी प्रयत्नों द्वारा मनुष्य को वहाँ स्नान करना चाहिए। हे राजेन्द्र! जहाँ पुण्य प्रदायिनी कावेरी तथा महानदी नर्मदा का समागम हुआ है, वहाँ स्नान कर वृषभध्वज शंकर की पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से मनुष्य अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त कर रुद्रलोक में पूजित होता है। वहाँ पर जो मनुष्य अग्नि में प्रवेश करता है, तथा अनशन करता है, उसकी सभी स्थानों में अप्रतिहत गति है–ऐसा ही शंकर जी ने मुझसे कहा है॥१३-१५॥

सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडते दिवि रुद्रवत्। षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथा पराः॥१६॥

मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र तत्रैव गच्छति। पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥१७॥
भोगवान्दानशीलश्च महाकुलसमुद्भवः।
तत्र पीत्वा जलं सम्यक्चान्द्रायणफलं लभेत्॥१८॥
स्वर्गं गच्छन्ति ते मर्त्या ये पिबन्ति शुभं जलम्।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्फलं प्राप्नुयान्नरः॥
कावेरीसङ्गमे स्नात्वा तत्फलं तस्य जायते॥१९॥
एवमादि तु राजेन्द्र कावेरीसङ्गमे महत्। पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम्॥२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्य एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०२६७॥

वह पुरुष सुन्दर अंगनाओं से सुसेवित होकर स्वर्ग में शंकर के समान साठ करोड़ तथा साठ सहस्र वर्षों तक क्रीड़ा करता है, रुद्रलोक में विहार करता हुआ सभी स्थानों में जाने की गति रखता है, पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर भी धार्मिक राजा होता है, सभी योग्य सामग्रियों का उपभोक्ता होता है, दानशील तथा उच्चकुल में जन्म ग्रहण करता है। उस कावेरी के संगम स्थल पर जल का पान कर मनुष्य विधिवत् किये गये चान्द्रायण का फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य वहाँ के सुन्दर जल का पान करते हैं, वे गंगा, यमुना के संगम का फल प्राप्त करते हैं। हे राजेन्द्र! इस प्रकार कावेरी के संगम स्थल की यात्रा महाफलदायिनी पुण्यप्रद तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाली है॥१६-२०॥

॥एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त॥१८९॥

❖❖❖

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

यन्त्रेश्वर और धारा आदि तीर्थों का वर्णन, नर्मदा स्तोत्र

मार्कण्डेय उवाच

नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं योजनविस्तृतम्। यन्त्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम्॥१॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते। पञ्च वर्षसहस्राणि क्रीडते कामरूपधृक्॥२॥
गर्जनं च ततो गच्छेद्यत्र मेघचयोत्थितः। इन्द्रजिन्नाम सम्प्राप्तस्तस्य तीर्थप्रभावतः॥३॥

मार्कण्डेय ने कहा—उस नर्मदा के उत्तरी किनारे पर एक योजन विस्तृत यन्त्रेश्वर नामक सभी पापों को दूर करने वाला उत्तम तीर्थ है, हे राजन्! उसमें स्नानकर मनुष्य देवताओं के साथ

इच्छानुरूप स्वरूप धारण कर, पाँच सहस्र वर्षों तक आनन्द करते हैं, यन्त्रेश्वर से मनुष्य को गर्जन नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघों के समूह उठे हुए दिखाई पड़ते हैं, उसी तीर्थ के प्रभाव से मेघनाद ने इन्द्रजित् का पद प्राप्त किया था।।१-३।।

मेघनादं ततो गच्छेद्यत्र मेघानुगर्जितम्। मेघनादो गणस्तत्र परमां गणतां गतः॥४॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्त्रफलं लभेत्॥५॥
नर्मदोत्तरतीरे तु धारातीर्थं तु विश्रुतम्। तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः॥६॥
सर्वान्कामनावाप्नोति मनसा ये विचिन्तिताः।

तदनन्तर मेघनाद की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पर मेघों की गर्जना सुनाई पड़ती है, वहीं पर मेघ नामक शिव के गण ने गणाध्यंक्षता प्राप्त की थी। हे राजेन्द्र! तदनन्तर आम्रातकेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। वहाँ स्नान कर मनुष्य सहस्त्र गोदान का फल प्राप्त करता है। नर्मदा के उत्तरी किनारे पर धारातीर्थ का नाम विख्यात है, उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य को पितरों तथा देवताओं का तर्पण करना चाहिए, इससे वह मन से सोचे गये मनोरथों को प्राप्त करता है।।४-६.५।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम्॥७॥
तत्र सन्निहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठिर। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ब्रह्मलोके महीयते॥८॥
ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः। सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥९॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् ब्रह्मावर्त तीर्थ की यात्रा करे, ये युधिष्ठिर! जहाँ पर नित्य ही भगवान् ब्रह्मा का सन्निधान रहता है। हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। तदनन्तर अंगारेश्वर तीर्थ की यात्रा नियत आहार एवं निश्चल चित्त होकर करनी चाहिए। ऐसा करने से वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है।।७-९।।

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्कपिलादानमाप्नुयात्॥१०॥
गच्छेत्करञ्जतीर्थं तु देवर्षिगणसेवितम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोलोकं समवाप्नुयात्॥११॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम्। तत्र सन्निहितो रुद्रस्तिष्ठते ह्युमया सह॥१२॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र स वन्द्यस्त्रिदशैरपि।

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिला नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करने से मनुष्य कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् देवताओं तथा ऋषियों के समूहों से सेवित करंज नामक तीर्थ की यात्रा करें, हे राजन्! वहाँ पर स्नान करने से गोलोक की प्राप्ति होती है। हे राजन्! तत्पश्चात् कुण्डलेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे। वहाँ पर पार्वती के साथ भगवान् शंकर का निवास रहता है। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान कर मनुष्य देवताओं से भी वन्दनीय हो जाता है।।१०-१२.५।।

पिप्पलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥१३॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र रुद्रलोके महीयते। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्॥१४॥
तत्र देवशिला रम्या चेश्वरेण विनिर्मिता। तत्र प्राणपरित्यागाद्रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥१५॥
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र हीन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥१६॥

तदनन्तर सभी पापों को नष्ट करने वाले पिप्पलेश तीर्थ की यात्रा करे, हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान कर मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ भगवान् शंकर द्वारा निर्मित एक मनोहर शिला है, वहाँ प्राणत्याग करने से मनुष्य रुद्रलोक की प्राप्ति करता है। तत्पश्चात् पुष्करिणी तीर्थ में जाकर स्नान करे, वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य इन्द्र का आधा आसन प्राप्त करता है।।१३-१६।।

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता। तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥१७॥
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना। कथिता ऋषिसङ्घेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः॥१८॥
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी। रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥१९॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता। संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥२०॥
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनी। नमस्ते पापनिर्दाहे नमो देवि वरानने॥२१॥
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते नमोऽस्तु ते शङ्करदेहनिःसृते।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने॥२२॥

नदियों में श्रेष्ठ रुद्र के शरीर से निकली हुई नर्मदा सभी स्थावर तथा जंगम जीवों का उद्धार करने वाली है। सभी देवताओं की अधि देवता भगवान् शंकर ने स्वयं इस बात को ऋषियों के समूहों में विशेषकर मुझसे बतलाई है। इस परमपवित्र एवं श्रेष्ठ नर्मदा नदी की स्तुति मुनि लोग करते हैं, लोक की मंगल कामना से यह रुद्र के शरीर से निकली हुई है, सभी देवतागण इसको प्रणाम करते हैं। यह सभी पापों को दूर करने वाली है, देवता, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूह सर्वदा इसकी स्तुति करते हैं। 'हे पुण्य जल वाली, सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली समुद्रगामिनी, नर्मदे! तुम्हें प्रणाम है। हे सुन्दर मुखवाली! पापकर्मों को जलाने वाली! तुम्हें हमारा प्रणाम स्वीकार हो, हे ऋषिवृन्दों द्वारा सेवित! तुम्हें प्रणाम है। हे शंकर के शरीर से निकलने वाली! हे धर्मिष्ठ प्राणियों को वरदान देने वाली! तुम्हें प्रणाम करता हूँ, हे सभी को पवित्र एवं निष्पाप करने वाली! तुम्हें हमारा प्रणाम स्वीकार हो'।।१७-२२।।

यस्त्विदं पठते स्तोत्रं नित्यं श्रद्धासमन्वितः।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत्॥२३॥
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभां गतिम्। अर्थार्थी लभते ह्यर्थं स्मरणादेव नित्यशः॥२४॥

नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः। तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०२९२॥

जो कोई मनुष्य इस स्तोत्र को नित्य श्रद्धायुक्त हो पाठ करता है, वह यदि ब्राह्मण है तो वेद का ज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय है तो संग्राम में विजयी होता है, वैश्य है तो व्यापार में लाभ प्राप्त करता है, शूद्र हो तो शुभ गति प्राप्त करता है। धन की इच्छा रखने वाला इस स्तोत्र के नित्य स्मरण मात्र करने से अर्थ की प्राप्ति करता है। इस पवित्र नर्मदा नदी का नित्य स्वयं शंकर जी सेवन करते हैं। उसी से यह पवित्र नदी ब्रह्महत्या जैसे कठोर पापों को भी दूर करने वाली जाननी चाहिये॥२३-२५॥

॥एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त॥१९०॥

❖❖❖

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

शूलभेद, रावणेश्वर, पिंगलेश्वर, एरण्डी, स्कन्द, वटेश्वर, कोटि, गर्गेश्वर, संगमेश्वर आदि तीर्थों का माहात्म्य वर्णन, ईश्वर द्वारा शुक्ल तीर्थ की महत्ता का वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः। सेवन्ते नर्मदां राजनागक्रोधविवर्जिताः॥१॥

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्! तभी से इस पवित्र नदी का सेवन ब्रह्मा आदि तपस्वी ऋषिगण क्रोध, राग आदि से रहित होकर करते हैं॥१॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्निपतितं शूलं देवस्य तु महीतले। तत्र पुण्यं समाख्याहि यथावन्मुनिसत्तम॥२॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ! इस पृथ्वी तल पर किस तीर्थ में महादेव जी का शूल गिरा था, उस पवित्र तीर्थ का यथावत् माहात्म्य हमें बताईये॥२॥

मार्कण्डेय उवाच

शूलभेदमिति ख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत्। तत्र स्नात्वाऽर्चयेद्देवं गोसहस्रफलं लभेत्॥३॥

त्रिरात्रं कारयेद्यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्यते॥४॥

भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नारदेश्वरमुत्तमम्। आदित्येशं महापुण्यं स्मृतं किल्बिषनाशनम्।।५।।
नन्दिकेशं परिष्वज्य पर्याप्तं जन्मनः फलम्। वरुणेशं ततः पश्येत्स्वतन्त्रेश्वरमेव च।।
सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात्।।६।।

मार्कण्डेय ने कहा–वह अति पुण्यदायी शूलभेद नामक विख्यात तीर्थ है, वहाँ पर स्नान कर जो शिव जी की पूजा करता है, वह सहस्त्र गोदान का फल प्राप्त करता है। हे नराधिप! जो इस तीर्थ में तीन रात्रि निवास कर महादेव जी की पूजा करता है, वह पुनर्जन्म नहीं ग्रहण करता। उसके पश्चात् मनुष्य को भीमेश्वर तथा उत्तम नारदेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। आदित्येश अति पुण्यदायी महाघोर पातकों को विनष्ट करने वाला तीर्थ बताया गया है। तदनन्तर नन्दिकेश्वर की यात्रा कर जन्म धारण करने का पर्याप्त फल प्राप्त करता है, तदनन्तर वरुणेश का दर्शना करना चाहिए, उसके बाद स्वतन्त्रेश्वर नामक तीर्थ को जाना चाहिये। पंचायतन के दर्शन करने से उस मनुष्य को सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होता है।।३-६।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र युद्धं यत्र सुसाधितम्। कोटितीर्थं तु विख्यातमसुरा यत्र मोहिताः।।७।।
यत्रैव निहता राजन्दानवा बलदर्पिताः। तेषां शिरंस्यगृह्णन्त सर्वे देवाः समागताः।।८।।
तैस्यु संस्थापिता देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः। कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरः स्मृतः।।९।।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमारुहेत्। यदा त्विन्द्रेण क्षुद्रत्वाद्वज्रं कीलेन यन्त्रितम्।।१०।।
तदाप्रभृति लोकानां स्वर्गमार्गो निवारितः।

हे राजेन्द्र! तदनन्तर वहाँ जाना चाहिए, जहाँ पर युद्ध रचा गया था, वह कोटि तीर्थ नामक स्थान है, वहीं पर असुरगण मोहित हुए थे। हे राजन्! उसी स्थान पर बड़े-बड़े बलवान् दानव मारे गये थे, वहीं पर आकर सभी देवताओं ने दैत्यों के सिरों को लिया था। वहीं पर वृषभध्वज शूलपाणि शिव की प्रतिष्ठापना हुई है। वहीं पर एक करोड़ दानवों का संहार हुआ था, अतः उसका कोटिश्वर नाम कहा जाता है। उस पवित्र तीर्थ के दर्शन करने से प्राणी सदेह स्वर्ग का आरोहण करता है। जिस समय इन्द्र ने क्षुद्रता के कारण वज्र को कील द्वारा बाँध दिया। तभी से लोगों का स्वर्ण जाने का मार्ग निवारित हो गया।।७-१०.५।।

यः स्तुतं श्रीफलं दद्यात्कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणाम्।।११।।
पर्वतं सहदीपं तु शिरसा चैव धारयेत्। सर्वकामसुसम्पन्नो राजा भवति पाण्डव।।१२।।
मृतो रुद्रत्वमाप्नोति ततोऽसौ जायते पुनः।
स्वर्गादित्य भवेद्राजा राज्यं कृत्वा दिवं व्रजेत्।।१३।।
बहुनेत्रं ततः पश्येत्त्रयोदश्यां तु मानवः। स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत्।।१४।।

जो मनुष्य इस पवित्र तीर्थ की प्रदक्षिणा कर प्रार्थनापूर्वक बेल का दान करता है, वह दीपदान कर पर्वत को सिर से धारण करता है (प्रणाम करता है), हे पाण्डव! वह सभी मनोरथों को

प्राप्त कर राजा होता है, मृत्यु को प्राप्त कर रुद्रलोक को प्राप्त करता है, तदनन्तर पुनः उत्पन्न होता है तथा स्वर्ग से उतरकर राजा होता है तथा राज्यसुख का अनुभव कर स्वर्णलोक को जाता है। तदनन्तर त्रयोदशी तिथि को मनुष्य को बहुनेत्र तीर्थ का दर्शन करना चाहिए, वहाँ पर स्नान मात्र करने से मनुष्य सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करता है॥११-१४॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम्। नराणां पापनाशाय ह्यगस्त्येश्वरमुत्तमम्॥१५॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते। कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥१६॥
घृतेन स्नापयेद्देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः। एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात्पदात्॥१७॥
धेनुमुपानहौ छत्रं दद्याच्च घृतकम्बलम्। भोजनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥१८॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् परम रमणीक मनुष्यों के समस्त पापों को दूर करने वाले उत्तम अगस्त्येश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को मनुष्य इन्द्रियों को स्ववश रख समाहित चित्त से घृत द्वारा महादेव जी को स्नान कराये। ऐसा करने से वह महादेव जी के सुन्दर स्थान से इक्कीसवीं पीढ़ी तक कभी नीचे नहीं गिरता। उस स्थान पर गाय, जूता, छाता, घृत तथा कम्बल का दान तथा ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि गुना अधिक फल होता है॥१५-१८॥

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र बलाकेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनपतिर्भवेत्॥१९॥
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्। उपोष्य रजनीमेकां स्नानं तत्र समाचरेत्॥२०॥
स्नानं कृत्वा यथान्यायमर्चयेच्च जनार्दनम्।
गोसहस्रफलं तस्य विष्णुलोकं स गच्छति॥२१॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् उत्तम बलाकेश्वर की यात्रा करें। हे राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्य सिंहासन का स्वामी होता है। नर्मदा के दाहिने किनारे पर इन्द्र का विख्यात तीर्थ है, वहाँ एक रात का उपवास कर विधिवत् स्नान तथा जनार्दन की पूजा करे, ऐसा करने वाले को एक सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है तथा वह अन्त समय में विष्णु लोक को जाता है॥१९-२१॥

ऋषितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं नृणाम्। स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकं च गच्छति॥२२॥
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्। स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥२३॥
देवतीर्थं ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते॥२४॥
अमरकण्टकं गच्छेदमरैः स्थापितं पुरा। स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥२५॥
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र रावणेश्वरमुत्तमम्।
नित्यं चाऽऽयतनं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥२६॥

तदनन्तर मनुष्यों के सभी पापों को हरने वाले ऋषितीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्नान मात्र करने से मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है। वहीं पर नारद जी का अति सुन्दर तीर्थ है,

वहाँ स्नान मात्र करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् प्राचीनकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित देवतीर्थ की यात्रा करें। राजन्! वहाँ पर स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। तदनन्तर प्राचीन काल में देवताओं द्वारा स्थापित अमरकण्टक की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! उसके बाद उत्तम रावणेश्वर नामक तीर्थ को जाय, वहाँ मन्दिर का प्रतिदिन दर्शनकर, मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है।।२२-२६।।

ऋणतीर्थं ततो गच्छेदृणेभ्यो मुच्यते ध्रुवम्।
वटेश्वरं ततो दृष्ट्वा पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥२७॥
भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम्। स्नातमात्रो नरो राजन्सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥२८॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तुरासङ्गमनुत्तमम्। तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयन्सिद्धिमाप्नुयात्॥२९॥

वहाँ से ऋणतीर्थ जाये। वहाँ जाने से निश्चय ही मनुष्य ऋणों से मुक्त हो जाता है, वहाँ से वटेश्वर तीर्थ की यात्रा करे, जिससे जन्म लेने का पर्याप्त फल प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् सभी प्रकार की व्याधियों को नष्ट करने वाले भीमेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे। हे राजन्! वहाँ के स्नान मात्रा से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम तुरासंग नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ जाकर महादेव की पूजा करने से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है।।२७-२९।।

सोमतीर्थं ततो गच्छेत्पश्येच्चन्द्रमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्भक्त्या परमया युतः॥३०॥
तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्थः शिववन्मोदते चिरम्। षष्टिर्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥३१॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्। अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्॥३२॥

तदनन्तर सोमतीर्थ जाकर उत्तम चन्द्रमा का दर्शन करे, हे राजन्! वहाँ अति भक्तिपूर्वक स्नान करने से प्राणी उसी क्षण दिव्य शरीर धारण कर शिव के समान चिरकाल तक आनन्द का अनुभव करता है तथा साठ सहस्रवर्षों तक रुद्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् उत्तम पिंगलेश्वर की यात्रा करे, वहाँ दिन-रात के उपवास से तीन दिन-रात के उपवास का फल प्राप्त होता है।।३०-३२।।

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च॥३३॥
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप॥३४॥
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ। नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठेयुर्ये नरोत्तमाः॥३५॥
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।
सुरेश्वरं ततो गच्छेन्नाम्ना कर्कोटकेश्वरम्॥३६॥
गङ्गाऽवतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः।

हे राजेन्द्र! उस पवित्र तीर्थ में जो मनुष्य कपिला गौ का दान करता है, उस गौ के जितने रोयें होते हैं, उतने सहस्त्र वर्षों तक उस दानी के वंश एवं कुल के लोग रुद्रलोक में पूजित होते हैं। हे नराधिप! जो कोई प्राणि उस पवित्र तीर्थ में प्राणों को छोड़ता है, वह अक्षयकाल पर्यन्त-जब तक कि सूर्य तथा चन्द्रमा रहते हैं-आनन्द का अनुभव करता है। जो मनुष्य उत्तम नर्मदा के पवित्र तट पर निवास करते हैं, वे मरने पर जिस प्रकार सुकृती तथा सन्त जन स्वर्ग जाते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग को जाते हैं, तत्पश्चात् कर्कोटकेश्वर नामक विख्यात सुरेश्वर यात्रा करनी चाहिए, उस पवित्र दिन में उस तीर्थ में गंगा उतरती हैं, इसमें सन्देह नहीं।।३३-३६.५।।

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।।३७।।
तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते। ततो दीपेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थं तपोवनम्।।३८।।
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी। हुङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता।।३९।।
प्रदक्षिणां तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।४०।।

तदनन्तर नन्दी तीर्थ जाये और वहाँ स्नान करे, जिससे नन्दीश्वर भगवान् शंकर सन्तुष्ट होते हैं और स्नान करने वाला चन्द्रलोक में पूजित होता है। तत्पश्चात् व्यास के तपोवन दीपेश्वर तीर्थ की यात्रा करे। प्राचीनकाल में उसी स्थान पर व्यास से डरकर महानदी पीछे को लौट पड़ी थी, उनके हुँकारने पर वह दाहिनी ओर से बहने लगी थी। हे नराधिप! जो मनुष्य उस पवित्र तीर्थ में जाकर प्रदक्षिणा करता है, वह अक्षयकाल तक-जबतक कि सूर्य तथा चन्द्रमा विद्यमान हैं- आनन्द का अनुभव करता है।।३७-४०।।

व्यासस्तस्य भवेत्प्रीतः प्राप्नुयादीप्सितं फलम्।
सूत्रेण वेष्टयित्वा तु दीपो देयः सवेदिकः।।४१।।
क्रीडते चाक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव च। गतो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्।।४२।।
सङ्गमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
ऐरण्डी त्रिषु लोकेषु विख्याता पापनाशिनी।।४३।।

ऐसा करने वाले के ऊपर व्यास प्रसन्न होते हैं और वह अपने मनोवांछित को प्राप्त करता है। एक सूत्र से बाँधकर वेदी बनाकर वहाँ जाकर दीप दान करना चाहिये, जो मनुष्य ऐसा करता है, वह रुद्र के समान अक्षय काल पर्यन्त क्रीड़ा करता है! हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् उत्तम एरण्डी तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। संगम स्थल पर स्नान कर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। यह एरण्डी पाप को नष्ट करने वाली तीनों लोकों में विख्यात है।।४१-४३।।

अथवाऽऽश्वयुजे मासि शुक्लपक्षे तु चाष्टमी। शुचिर्भूत्वा नरः स्नात्वा सोपवासपरायणः।।४४।।
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता। ऐरण्डीसङ्गमे स्नात्वा भक्तिभावानुरञ्जितः।।
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य ह्यवगाह्य च वै जलम्।।४५।।

नर्मदोकसम्मिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः। प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप॥४६॥
प्रदक्षिणीकृत तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।

उस एरण्डी तीर्थ में आश्विन मास की शुक्ल अष्टमी तिथि को मनुष्य पवित्र मन से उपवास कर यदि एक ब्राह्मण को भोजन करा देता है तो मानो उसने एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन करा दिया। एरण्डी के पवित्र संगम स्थल पर भक्तिभाव में डूबा हुआ मनुष्य स्नान कर सिर पर मिट्टी रख पुनः जल में अवगाहन कर, नर्मदा के जल से मिश्रित होने के कारण वह सभी पापों से छूट जाता है। हे नराधिप! जो मनुष्य उस तीर्थ में प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपों वाली वसुन्धरा की मानो प्रदक्षिणा कर ली।।४४-४६.५।।

ततः सुवर्णसलिले स्नात्वा दत्त्वा तु काञ्चनम्॥४७॥
काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके महीयते।
ततः स्वर्गाच्च्युतः कालाद्राजा भवति वीर्यवान्॥४८॥
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सङ्गमम्।
त्रैलोक्यविश्रुतं दिव्यं तत्र सन्निहितः शिवः॥४९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गाणपत्यमवाप्नुयात्।
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥५०॥
आजन्म जनितं पापं स्नानमात्राद्व्यपोहति।

ऐसा करने के बाद उसके सुवर्णवत सुन्दर जल में स्नान कर सुवर्ण का दान देकर मनुष्य सुवर्ण के सुन्दर विमान में बैठकर रुद्रलोक में पूजित होता है और पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत हो पुनः कालक्रम से पराक्रमशाली राजा होता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर इच्छु नदी के संगम की यात्रा करे, यह पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है, वहाँ सदाशिव जी का सन्निधान रहता है। हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्य गणों का स्वामित्व प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी पापों को दूर करने वाले स्कन्ध तीर्थ की यात्रा करे। उसकी यात्रा कर केवल स्नान करने से जन्म भर का किया हुआ पाप छूट जाता है।।४७-५०.५।।

लिङ्गसारं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥५१॥
गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते। भङ्गतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥५२॥
तत्र गत्वा तु राजेन्द्र स्नानं तत्र समाचरेत्। सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥५३॥
वटेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमनुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥५४॥

उसके बाद लिंगसार नामक तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करने से एक सहस्र गोदान का फल होता तथा वह रुद्रलोक में पूजित होता है। तत्पश्चात् सभी पापों को नष्ट करने वाले भृङ्गतीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। ये राजेन्द्र! वहाँ जाकर स्नान करे। इसमें सन्देह नहीं

कि वहाँ स्नान करने से सात जन्म के किये हुए पापों से छुटकारा मिल जाता है। तदनन्तर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ बटेश्वर तीर्थ की यात्रा करे। हे राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है।।५१-५४।।

सङ्गमेशं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम्। स्नातमात्रान्नरस्तत्र चेन्द्रत्वं लभते ध्रुवम्।।५५।।
कोटितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं परम्। तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः।।५६।।
तत्र तीर्थं समासाद्य दत्त्वा दानं तु यो नरः। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत्।।५७।।
अथ नारी भवेत्काचित्तत्र स्नानं समाचरेत्।
गौरीतुल्या भवेत्साऽपि त्विन्द्रपत्नी न संशयः।।५८।।
अङ्गारेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते।।५९।।

तत्पश्चात् सभी देवताओं से नमस्करणीय संगमेश तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य निश्चय ही इन्द्रत्व की प्राप्ति करता है। तदनन्तर सभी पापों को हरने वाले परमपवित्र कोटि तीर्थ को जाये, जहाँ स्नान कर मनुष्य राज्य प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। उस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य दान देता है, तीर्थ के प्रभाव से उसका सौ कोटि गुना महत्व बढ़ जाता है। यदि कोई स्त्री वहाँ पर स्नान करती है तो वह भी गौरी के समान अथवा इन्द्र की पत्नी के समान हो सकती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। तत्पश्चात् अंगारेश की यात्रा कर वहाँ स्नान करे। वहाँ के स्नान करने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है।।५५-५९।।

अङ्गारकचतुर्थ्यां तु स्नानं तत्र समाचरेत्। अक्षयं मोदते कालं शुचिः प्रयतमानसः।।६०।।
अयोनिसम्भवे स्नात्वा न पश्येद्योनिसङ्कटम्।
पाण्डवेशं तु तत्रैव स्नानं तत्र समाचरेत्।।६१।।
अक्षयं मोदते कालमवध्यस्त्रिदशैरपि। विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडते भोगसंयुतः।।६२।।

अंगारक चतुर्थी को वहाँ स्नान करना चाहिये। पवित्र एवं मन को वश में रख वहाँ जो स्नान करता है, वह अक्षयकाल पर्यन्त आनन्द करता है। अयोनिसम्भव नामक तीर्थ में स्नान कर मनुष्य योनि संकट (जन्म कष्ट) नहीं देखता। वहीं पर पाण्डवेश नामक तीर्थ है, वहाँ जाकर जो मनुष्य स्नान करता है, वह देवताओं से भी अबध्य होकर अक्षय काल तक आनन्द प्राप्त करता है, तथा विष्णु लोक में जाकर अनेक भोग की प्राप्ति करता है।।६०-६२।।

तत्र भुक्त्वा महाभोगान्मर्त्यराजोऽभिजायते।
कण्ठेश्वरं ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत्।।६३।।
उत्तरायणसम्प्राप्तौ यदिच्छेत्तस्य तद्भवेत्।
चन्द्रभागां ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत्।।६४।।
स्नातमात्रो नरो राजन्सोमलोके महीयते। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्।।६५।।

पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्दानं दत्त्वा तु काञ्चनम्॥६६॥
अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत्। वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसुतिकुलेषु च॥६७॥
तावद्वर्षसहस्राणि नरो हरपुरे वसेत्। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्॥६८॥

वहाँ अति उत्तम भोगों का उपभोग कर राजा होता है। तत्पश्चात् कण्ठेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान करे। उत्तरायण के समय यदि वहाँ मनुष्य जाता है तो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे प्राप्त करता है। तत्पश्चात् चन्द्रभागा में जाकर वहाँ स्नान करे। हे राजन्! वहाँ जाकर स्नान करने मात्र से मनुष्य चन्द्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् इन्द्र के प्रसिद्ध तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जो स्वयम् देवराज इन्द्र द्वारा पूजित एवं नमस्कृत है। हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर जो स्वयम् देवराज इन्द्र द्वारा पूजित एवं नमस्कृत है। हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर जो सुवर्ण का दान देता है अथवा नीले रंग के बैल को छोड़ता है', वह मनुष्य वृषभ के जितने रोयें होते हैं, उतने सहस्र वर्षों तक अपने कुल परिवार समेत शिवलोक में निवास करता है। तदनन्तर वहाँ से पुण्यक्षीण हो जाने पर पराक्रमी राजा होता है।।६३-६८।।

अश्वानां श्वेतवर्णानां सहस्राणां नराधिप। स्वामी भवति मर्त्येषु तस्य तीर्थप्रभावतः॥६९॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमनुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजंस्तर्पयेत्पितृदेवताः॥७०।
उपोष्य रजनीमेकां पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।

राजन्! ऐसा करने वाला मनुष्य श्वेतवर्ण के सहस्रों अश्वों का अधिपति होता है। उस तीर्थ के अद्भुत प्रभाव से मनुष्यों में वह राजा होता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त अति उपरान्त ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन्! वहाँ स्नान कर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे, रात भर का उपवास करे विधिपूर्वक पिण्डदान करे।।६९-७०.५।।

कन्यागते तथाऽऽदित्ये अक्षयं स्यान्नराधिप॥७१॥
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्कपिलां यः प्रयच्छति॥७२॥
सम्पूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्। नर्मदेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥७३॥

सूर्य के कन्या राशि पर स्थित होने के अवसर पर ऐसा करने से उसका पुण्य प्रभाव कभी नष्ट नहीं होता। हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् उत्तम कपिला तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन्! इस कपिला तीर्थ में जाकर जो मनुष्य कपिला गौ का दान करता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी दान करके जो फल प्राप्त होता है, वह फल प्राप्त करता है। नर्मदेश अति उत्तम तीर्थ स्थान है, उसके समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा।।७१-७३।।

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्। नर्मदादक्षिणे कूले सङ्गमेश्वरमुत्तमम्॥७४॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वं यज्ञफलं लभेत्। तत्र सर्वोद्यतो राजा पृथिव्यामेव जायते॥७५॥

सर्वलक्षंणसम्पूर्णः सर्वव्याधिविवर्जितः। नर्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्॥७६॥

आदित्यायतनं दिव्यमीश्वरेण तु भाषितम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दानं दत्त्वा तु शक्तितः॥
तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम्॥७७॥

हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर उत्तम संगमेश्वर नामक तीर्थ है, हे राजन्! उसमें स्नान कर मनुष्य सभी यज्ञों को करने का फल प्राप्त करता है, वहाँ स्नान करने से मनुष्य इसी पृथ्वी तल पर ही सभी कार्यों में उद्योगशील राजा होता है, सभी राजलक्षण से युक्त तथा सभी व्याधियों से रहित रहता है। नर्मदा के उत्तरी किनारे पर अति रमणीक आदित्यायतन नामक दिव्य तीर्थ है, जिसकी चर्चा स्वयम् शिव ने की है। हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर जो यथाशक्ति दान दिया जाता है, वह उस तीर्थ के माहात्म्य से अक्षय हो जाता है॥७४-७७॥

दरिद्रा व्याधिता ये तु ये तु दुष्कृतकर्मिणः।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं तु यान्ति ते॥७८॥

माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमी। वसेदायतने तत्र निराहारो जितेन्द्रियः॥७९॥

न जराव्याधितो मूको न चान्धो बधिरोऽथवा।
सुभगो रूपसम्पन्नः स्त्रीणां भवति वल्लभः॥८०॥
एवं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्।
ये न जानन्ति राजेन्द्र वञ्चितास्ते न संशयः॥८१॥

जो लोग दरिद्र है, व्याधियों से पीड़ित हैं, पाप कर्म में निरत रहने वाले हैं, वे भी उस तीर्थ के प्रभाव से सभी पापों से छूट कर सूर्यलोक को चले जाते हैं। माघ के मास में शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को उस आयतन में निराहार तथा जितेन्द्रिय हो निवास करे, ऐसा करने से न तो वृद्धावस्था से पीड़ित हो सकता है, न गूँगा हो सकता है, न अन्धा न बहिरा, प्रत्युत सुन्दर रूपवान् तथा स्त्रियों का प्रिय होता है। इस प्रकार के अति पुण्यप्रद तीर्थ की चर्चा मार्कण्डेयजी ने की थी। हे राजेन्द्र! जो इनको नहीं जानते वे सचमुच जगत् में वंचित रह जाते हैं॥७८-८१॥

गर्गेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥८२॥

मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। समीपतः स्थितं तस्य नागेश्वरतपोवनम्॥८३॥

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नागलोकमवाप्नुयात्।
बह्वीभिर्नागकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम्॥८४॥

तदनन्तर गर्गेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है तथा स्वर्गलोक में तबतक निवास करता है, जबतक

चौदहों इन्द्र रहते हैं। उसी तीर्थ के समीप में नागेश्वर नामक तपोवन है। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से नागलोक की प्राप्ति होती है तथा वहाँ जाकर वह प्राणी अनेक नागकन्याओं के साथ अक्षयकाल पर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है।।८२-८४।।

कुबेरभवनं गच्छेत्कुबेरो यत्र संस्थितः। कालेश्वरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः।।८५।।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वसम्पदमाप्नुयात्। ततः पश्चिमतो गच्छेन्मारुतालयमुत्तमम्।।८६।।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः।
काञ्चनं तु ततो दद्याद्यथाशक्ति सुबुद्धिमान्।।८७।।
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति।

तत्पश्चात् कुबेरभवन नामक तीर्थ की यात्रा करे, जहाँ पर कुबेर का निवास है, वहीं पर कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थ भी है, जहाँ कुबेर सन्तुष्ट किये गये थे। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से मनुष्य को सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। तदनन्तर उससे पश्चिम अतिश्रेष्ठ मारुतालय नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! वहाँ पवित्र तथा समाहित चित्त हो स्नान का बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण का दान करे तो उसके प्रभाव से वह पुष्पक विमान द्वारा वायुलोक को जाता है।।८५-८७.५।।

यवतीर्थं ततो गच्छेन्माघमासे युधिष्ठिर।।८८।।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत्। नक्तभोज्यं ततः कुर्यान्न पश्येद्योनिसङ्कटम्।।८९।।
अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यप्सरोभिः प्रमोदते।।९०।।
अहल्या च तपस्तप्त्वा तत्र मुक्तिमुपागता।

हे युधिष्ठिर! तदुपरान्त माघ मास में यव नामक तीर्थ की यात्रा करे और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ स्नान करे और रात में भोजन करे ऐसा करने से वे जन्म लेने के संकट को नहीं देखता। तत्पश्चात् अहल्या-तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य अप्सराओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है। उसी पवित्र तीर्थ में अहल्या ने तपस्या कर मुक्ति की प्राप्ति की थी।।८८-९०.५।।

चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी।।९१।।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत्। यत्र यत्र नरोत्पन्नो नरस्तत्र प्रियो भवेत्।।९२।।
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः।
अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं रामस्य विश्रुतम्।।९३।।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते। सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।।९४।।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते। सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं नृणाम्।।९५।।

चैत्र मास के आने पर शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि को, जबकि कामदेव का दिन पड़ता है, जो उस तीर्थ में अहल्या की पूजा करता है, वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है, वहाँ-वहाँ सर्वसाधारण का प्रेमपात्र होता है, लक्ष्मीयुक्त हो दूसरे कामदेव की भाँति स्त्री का वल्लभ होता है। राम के प्रसिद्ध अयोध्या तीर्थ में जाकर मनुष्य केवल स्नान करने से सभी पापों से छुटकारा पाता है। तदनन्तर सोमतीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नानमात्र करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है। हे राजेन्द्र! उस सोमग्रह में मनुष्यों का सभी पाप नष्ट हो जाता है।।९१-९५।।

त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्।
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।।९६।।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति।
अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवाऽपि ह्यनाशके।।९७।।
सोमतीर्थे मृतो यस्तु नासौ मर्त्येऽभिजायते।

हे राजन्! यह सोमतीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है, उसके प्रभाव एवं फल अमित हैं। हे नराधिप! जो मनुष्य उस तीर्थ में चान्द्रायण व्रत का पालन करते हैं, वे सभी पापों से उन्मुक्त एवं विशुद्धात्मा हो सोमलोक जो जाते हैं। अग्नि प्रवेश कर, जल में डूबकर अथवा अनशन कर जो मनुष्य इस तीर्थ में प्राणत्याग करते हैं, वे पुनः मृत्युलोक में जन्म नहीं धारण करते। तदनन्तर शुभ तीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नानमात्र के करने से मनुष्य गोलोक में पूजित होता है।।९६-९८.५।।

शुभतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।।९८।।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोलोके तु महीयते। ततो गच्छेच्च राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्।।९९।।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम्।
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः।।१००।।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः प्रीतो भवेदिह। अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।।१०१।।

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम विष्णु तीर्थ की यात्रा करे, वह स्थान योधनीपुर नाम से विख्यात है, तथा भगवान् विष्णु का उत्तम निवास स्थान है, भगवान् वासुदेव ने उसी स्थान पर करोड़ों असुरों से युद्ध किया था, तभी से वह पवित्र तीर्थ प्रचलित हुआ है। वहाँ की यात्रा से विष्णु प्रसन्न होते हैं, एक दिन तथा रात्रि का उपवास करने से वह तीर्थ ब्रह्महत्या से छुड़ा देता है।।९९-१०१।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम्। हरिणी व्याधसंत्रस्ता पतिता यत्र सा मृगी।।१०२।।
जले प्रक्षिप्तगात्रा तु अन्तरिक्षं गता च सा।
व्याधो विस्मितचित्तस्तु परं विस्मयमागतः।।१०३।।
तेन तापेश्वरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम तापसेश्वर की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पर कि एक व्याघ से भयभीत होकर मृगी गिर पड़ी थी तथा जल में शरीर को गिराकर स्वर्ग को चली गयी थी। ऐसा देख वह व्याध अति विस्मित हुआ था। वहीं तापेश्वर नामक वह तीर्थ है, जैसा कि न तो कोई था न होगा।।१०२-१०३.५।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्।।१०४।।
अमोहकमिति ख्यातं पितृंश्चैवात्र तर्पयेत्।
पौर्णमास्याममायां तु श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि।।१०५।।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृपिण्डं तु दापयेत्।
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिता।।१०६।।
तस्यां तु दापयेत्पिण्डं वैशाख्यां तुं विशेषतः। तृप्यन्ति पितरस्तत्र यावत्तिष्ठति मेदिनी।।१०७।।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र सिद्धेश्वरमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गणपत्यन्तिकं व्रजेत्।।१०८।।

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम ब्रह्मेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वह अमोहक नामक तीर्थ से विख्यात है, वहाँ जाकर पितरों का ही तर्पण करे तथा पूर्णिमा और अमावस्या तिथि को विधिपूर्वक श्राद्ध करे, हे राजन्! वहाँ स्नान कर पितरों को पिण्ड दान करे। वहाँ हाथी के आकार की एक शिला जल के मध्यभाग में प्रतिष्ठित है, विशेषकर वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को वहाँ पिण्डों का दान करे। ऐसा करने से उसके पितर तब तक तृप्त रहते हैं, जब तक इस पृथ्वी का अस्तित्व रहता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम सिद्धेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन्! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य गणपति के समीप प्राप्त होता है।।१०४-१०८।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र लिङ्गं यत्र जनार्दनः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते।।१०९।।

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त जहाँ पर जनार्दन का लिंग है, वहाँ की यात्रा करे। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक में पूजित होता है।।१०९।।

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्। कामदेवः स्वयं तत्र तपोऽतप्यत वै महत्।।११०।।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु शङ्करं पर्युपासत। समाधिभङ्गदग्धस्तु शङ्करेण महात्मना।।१११।।
श्वेतपर्वा यमश्चैव हुताशः शुक्रपर्वणि। एते दग्धास्तु ते सर्वे कुसुमेश्वरसंस्थिताः।।११२।।

नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर परमरमणीय एक तीर्थ है, वहाँ पर स्वयं कामदेव ने सहस्र दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या की थी और वही पर भगवान् शंकर के समाधि भंग के कारण उत्पन्न क्रोध से वह दग्ध भी हुआ था। उस कुसुमेश्वर तीर्थ में अवस्थित होकर श्वेतवर्मा, यम, हुताश तथा शुक्रपर्वा एक अवसर पर दग्ध हो गये थे।।११०-११२।।

दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्वरः। उपया सहितो रुद्रस्तुष्टस्तेषां वरप्रदः॥११३॥
मोक्षयित्वा तु तान्सर्वान्नर्मदातटमास्थितः। ततस्तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागताः॥११४॥

ऊचुश्च परया भक्त्या देवदेवं वृषभध्वजम्।
त्वत्प्रसादान्महादेव तीर्थं भवतु चोत्तमम्॥
अर्धयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं दिक्षु समन्ततः॥११५॥

एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो जाने पर उन लोगों पर भगवान् शंकर सन्तुष्ट हुए थे और सन्तुष्ट होकर पार्वती समेत वरदान देने को इच्छुक हुए थे। शंकर सभी को मोक्ष प्रदान कर नर्मदा के तट पर अवस्थित हुए और वे लोग तीर्थ के प्रभाव से पुनः देवत्व को प्राप्त हुए तथा अति भक्ति पूर्वक देवदेव वृषभध्वज से बोले- 'हे महाराज! यह स्थान आपकी कृपा से चारों ओर आधे योजन के परिमाण से उत्तम तीर्थ हो जाये।।११३-११५।।

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा चोपवासपरायणः। कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते॥११६॥

वैश्वानरो यमश्चैव कामदेवस्तस्था मरुत्।
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र परां सिद्धिमवाप्नुयुः॥११७॥

अङ्कोलस्य समीपे तु नातिदूरे तु तस्य वै। स्नानं दानं च तत्रैव भोजनं पिण्डपातनम्॥११८॥

अग्निप्रवेशऽथ जले अथवा तु ह्यनाशके।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य मृतस्यामुत्र जायते॥११९॥

उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर तथा उपवास कर मनुष्य कामदेव का स्वरूप धारण कर रुद्रलोक में पूजित होते हैं। राजेन्द्र! उस तीर्थ में वैश्वानर, यम, कामदेव तथा मरुत्-इस सबों ने तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्ति की थी। अंकोल के समीप तथा उस तीर्थ के थोड़ी दूर पर स्नान, दान भोजन तथा पिण्ड दान करना चाहिए। अग्नि में प्रवेश कर जल में डूबकर तथा अनशन कर प्राण त्यागने वाले प्राणी की इस क्षेत्र में सर्वत्र बे-रोकटोक गति होती है।।११६-११९।।

त्र्यम्बकेण तु तोयेन यश्चरुं श्रपयेन्नरः।
अङ्कोलमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि॥१२०॥

तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ। उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतस्नानं करोति यः॥१२१॥

पुरुषो वाऽथ स्त्री वाऽपि वसेदायतने शुचिः।
सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रातः पूजां प्रकल्पयेत्॥१२२॥
स यां गतिमवाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः।

जो मनुष्य त्र्यम्बक तीर्थ के जल के द्वारा चरु को पकाता है तथा अंकोल की जड़ में विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसके पितर जबतक सूर्य तथा चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है, तब तक तृप्त रहते हैं। जो व्यक्ति सूर्य के उत्तरायण होने पर घृत स्नान करता है, वह चाहे स्त्री हो या

पुरुष, यदि शुचि मन हो आयतन में निवास करता है तथा प्रातः काल सिद्धेश्वर देव की पूजा करता है तो वह जिस उत्तम गति को प्रदान करता है, वैसी उत्तम गति को कोई सभी महायज्ञों द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकता।।१२०-१२२.५।।

यदाऽवतीर्णः कालेन रूपवान्सुभगो भवेत्॥१२३॥

मर्त्ये भवति राजा च त्वासमुद्रान्तगोचरे। क्षेत्रपालं न पश्येत्तु दण्डपाणिं महाबलम्॥१२४॥

वृथा तस्य भवेद्यात्रा ह्यदृष्ट्वा कर्णकुण्डलम्।
एवं तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः॥
मुञ्चन्ति कुसुमैर्वृष्टिं तेन तत्कुसुमेश्वरम्॥१२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्य एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०४१७।।
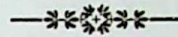
कालयोग से जब कभी वह पुनर्जन्म ग्रहण करता है तो सुन्दर होता है, मर्त्यलोक में आकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का राजा होता है। जो मनुष्य क्षेत्रपाल महाबलवान् दण्डपाणि का दर्शन नहीं करता, कर्ण कुण्डल को नहीं देखता, उसकी सारी यात्रा नष्ट हो जाती है। इस प्रकार उस तीर्थ की अति उत्तम महिमा के प्रभाव से वहाँ सभी देवगण उपस्थित होते हैं तथा पुष्पों की वृष्टि करते हैं- इसी कारण उनका कुसुमेश्वर नाम है।।१२३-१२५।।

।।एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९१।।

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ईश्वर द्वारा शुक्ल तीर्थ में स्नानादि करने का फल कथन

मार्कण्डेय उवाच

भार्गवेशं ततो गच्छेद्भग्नो यत्र जनार्दनः। असुरैस्तु महायुद्धे महाबलपराक्रमैः॥१॥
हुङ्कारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयं गताः। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२॥

मार्कण्डेय ने कहा- तदनन्तर भार्गवेश तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ महाबलवान् असुरों से युद्ध करते हुए भगवान् जनार्दन भग्न हुए थे, हे राजेन्द्र! वहाँ देव के हुंकार से दानवगण नष्ट हो गये थे। उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाता है।।१-२।।

शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन। हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते॥३॥

तरुणादित्यसङ्काशे तप्तकाञ्चनसप्रभे। वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले॥४॥
जाम्बूनदमये दिव्ये नानापुष्पोपशोभिते। तत्राऽऽसीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम्॥५॥
लोकानुग्रहकर्तारं गणवृन्दैः समावृतम्। स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः॥
उमया सहितं देवं मार्कण्डेयः पर्यपृच्छत॥६॥

हे पाण्डुनन्दन! अब तुम शुक्ल तीर्थ की उत्पत्ति सुनो! एक बार अनेक प्रकार की धातुओं से रंग-बिरंगे हिमवान् पर्वत के मनोहर शिखर पर, मध्यकालीन सूर्य की भाँति देदीप्यमान, तपाये हुए सुवर्ण के समान दिखाई पड़ने वाले स्फटिक तथा वज्र की सीढ़ियों वाले विचित्र रंग के दिव्य सुवर्णमय शिला पट्ट पर, जो विविध प्रकार के पुष्पों से सुशोभित था, विराजमान अव्यय सर्वज्ञ पार्वती समेत लोकानुग्रहकर्ता भगवान् महादेव से मार्कण्डेय मुनि ने पूछा। उस समय से भगवान् गणों से परिवेष्टित थे तथा समीप में स्कन्द, नन्दीश्वर, महाकाल, वीरभद्र प्रभृति प्रमुख प्रमथगण खड़े थे।।३-६।।

देवदेव महादेव ब्रह्मविष्णिवन्द्रसंस्तुत। संसारभयभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे॥७॥
भगवन्भूतभव्येश सर्वपापप्रणाशनम्। तीर्थानां परमं तीर्थं तद्वदस्व महेश्वर॥८॥

देवाधिदेव! महादेव! ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र द्वारा वन्दनीय! मैं संसार के भय से भयभीत हूँ, अतः सुख प्राप्ति के उपाय मुझे बताईये। हे भगवान्! भूत और भविष्य के भी स्वामी महेश्वर! सभी तीर्थों में जो उत्तम स्थान हो तथा सभी पापों को नष्ट करने वाला हो उसे मुझे बतलाइये।।७-८।।

ईश्वर उवाच

शृणु विप्र महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। स्नानाय गच्छ सुभग ऋषिसङ्घैः समावृतः॥९॥
मन्वत्रिकश्यपाश्चैव याज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः। यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती॥१०॥
नारदो गौतमश्चैव सेवन्ते धर्मकाङ्क्षिणः।
गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गयाम्॥११॥
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे। दिवा वा यदि वा रात्रौ शुक्लतीर्थं महाफलम्॥१२॥
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव स्नानाद्दनात्तपोजपात्।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थं महाफलम्॥१३॥

ईश्वर ने कहा-सभी शास्त्रों में विशारद! महाबुद्धिमान्! सुभग! ऋषि समूहों के साथ स्नान के लिए प्रस्थान करो। मनु, अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, भृगु, अंगिरा, यम अपास्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, नारद तथा गौतम-ये भी ऋषिगण धर्म की अभिलाषा करने वाले हैं। कनखल में गंगा अति पुण्यदायिनी हैं। प्रयाग, पुष्कर तथा गया तीर्थ भी अति पवित्र हैं। राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने पर कुरुक्षेत्र का विशेष महत्व है, क्या रात क्या दिन-सभी समय में शुक्लतीर्थ महाफलदायी है।।९-१३।।

शुक्लतीर्थ महापुण्यं नर्मदायां व्यवस्थितम्।
चाणक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः॥१४॥
एवत्क्षेत्रं सुविपुलं योजनं वृत्तिसंस्थितम्। शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥१५॥
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति। जगतीदर्शनाच्चैव भ्रूणहत्या व्यपोहति॥१६॥

यह महापवित्र शुक्लतीर्थ नर्मदा नदी पर है, वहीं पर चाणक्य नामक राजर्षि को सिद्धि प्राप्त हुई थी। यह क्षेत्र एक योजन के परिमाण में गोलाकार अवस्थित है, यह शुक्लतीर्थ महापुण्यदायी तथा सभी पापों को नष्ट करने वाला है। वृक्ष के अग्रभाग पर अवस्थित होकर देखने पर यह ब्रह्महत्या को दूर कर देता है। पृथ्वीतल से देखने पर भ्रूणहत्या का पाप छूट जाता है।।१४-१६।।

अहं तत्र ऋषिश्रेष्ठ तिष्ठामि ह्युमया सह। वैशाखे चैत्रमासे तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥१७॥
कैलाशाच्चापि निष्क्रम्य तत्र सन्निहिते ह्यहम्।
दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरस्तथा॥१८॥
गणाश्चाप्सरसो नागाः सर्वे देवाः समागताः।
गगनस्थास्तु तिष्ठन्ति विमानैः सार्वकामिकैः॥१९॥
शुक्लतीर्थं तु राजेन्द्र ह्यागता धर्मकाङ्क्षिणः।
रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा॥२०॥

ऋषिश्रेष्ठ! मैं उस पवित्र तीर्थ में पार्वती के साथ निवास करता हूँ, वैशाख तथा चैत्र मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को मैं कैलाश से भी आकर वहाँ निवा करता हूँ। दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, मेरे प्रमथगण, अप्सराएँ, नाग तथा सभी देवगण आकाशमण्डल में सर्वत्र चलने वाले विमानों पर बैठकर उस तीर्थ में सदा अवस्थित रहते हैं। हे राजेन्द्र! यह शुक्लतीर्थ धर्म के इच्छुकों के आजन्म किये गये पापों को, जिस प्रकार धोबी के धोने से मलिन वस्त्र श्वेत हो जाता है, उसी प्रकार नष्ट कर देता है।।१७-२०।।

आजन्मजनितं पापं शुक्लं तीर्थं व्यपोहति। स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्ड ऋषिसत्तम॥२१॥
शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः॥२२॥
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति। तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः॥२३॥
देवार्चनेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि। कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥२४॥
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम्। एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात्पदात्॥२५॥
शुक्लतीर्थं महापुण्यमृषिसिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥२६॥

हे ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेय! वहाँ का स्नान तथा दान अति पुण्यदायी है। इस शुक्लतीर्थ से

बढ़कर न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा। मनुष्य अपने पूर्व जन्मों में किये गये पापों को वहाँ के केवल एक दिन-रात के उपवास से नष्ट कर देता है। इस पवित्र तीर्थ में तपस्या, ब्रह्मचर्य-पालन, यज्ञाराधन, दान अथवा देवार्चन से जो पुष्टि होती है, वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होती हैं। कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को उपवास कर पमरेश्वर शंकर को घृत द्वारा स्नान कराये, ऐसा करने वाला इक्कीस पीढ़ियों समेत कभी महादेव जी के स्थान से च्युत नहीं होता। यह शुक्ल-तीर्थ ऋषियों तथा सिद्धों द्वारा सुसेवित महापुण्यमय एवं पवित्र तीर्थ है। हे राजन्! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य फिर जन्म नहीं ग्रहण करता॥२१-२६॥

स्नात्वा वै शुक्लतीर्थे तु ह्यर्चयेद्वृषभध्वजम्।
कपालपूरणं कृत्वा तुष्यत्यत्र महेश्वरः॥२७॥
अर्धनारीश्वरं देवं पटे भक्त्या लिखापयेत्। शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च सद्द्विजैः॥२८॥
जागरं कारयेत्तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः। प्रभाते शुक्लतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम्॥२९॥
आचार्यान्भोजयेत्पश्चाच्छिवव्रतपराञ्शुचीन्।
दक्षिणां च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्॥३०॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत्। एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु॥३१॥

उस शुक्लतीर्थ में स्नान कर वृषभध्वज की पूजा करे तथा कपाल को पूर्ण करे, इससे महेश्वर सन्तुष्ट होते हैं। भक्तिपूर्वक अर्धनारीश्वर महादेव की वस्त्र या लेख्य पत्र पर प्रतिमा बनवाये, ब्रह्म (वेद) का उच्चारण करते हुए ब्राह्मणों एवं शंख, तुरुही आदि वाद्यों के साथ नृत्य गीत-आदि कराते हुए रातभर जागरण करे। प्रातःकाल शुक्लतीर्थ में स्नानकर महादेव की पूजा करे, पश्चात् शिव की भक्ति करने वाले पवित्र आचरण आचार्यों को भोजन कराये, कृपणता छोड़कर यथाशक्ति दक्षिणा दे, पश्चात् प्रदक्षिणा कर धीरे से देव के समीप जाये। इस प्रकार विधानपूर्वक जो इस व्रत का पालन करता है, उसके पुण्य का फल सुनो॥२७-३१॥

दिव्ययानं समारूढो गीयमानोऽप्सरोगणैः। शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम्॥३२॥
शुक्लतीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम्। घृतेन स्नापयेद्देवं कुमारं चापि पूजयेत्॥३३॥
एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं शृणु।
मोदते शर्वलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥३४॥

वह पुरुष दिव्य रथ पर समासीन हो, गाती हुई अप्सराओं के साथ शिव के समान अतुलित बलयुक्त हो महाप्रलय पर्यन्त स्थित रहता है। इस शुक्लतीर्थ में जो स्त्री सुवर्ण का दान करती है, घृत से देव को स्नान कराती है तथा स्वामिकार्तिकेय की पूजा करती है, उसके पुण्य का फल सुनो, वह स्त्री जब तक चौदहों इन्द्र वर्तमान रहते हैं, तब तक शिव के लोक में आनन्द का अनुभव करती है॥३२-३४॥

पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां सङ्क्रान्तौ विषुवे तथा।
स्नात्वा तु सोपवासः सन्विजितात्मा समाहितः॥३५॥
दानं दद्याद्यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशङ्करौ। एवं तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥३६॥
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा। उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु॥३७॥
यावत्तद्रोमसंख्या च तत्प्रसूतिकुलेषु च। तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०४५५॥

पूर्णिमा, चतुर्दशी, संक्रान्ति तथा विषुव के अवसर पर उपवास कर इन्द्रियों को स्ववश में रख समाहित चित्त हो जो स्नान करके यथाशक्ति दान देता है, उसके ऊपर भगवान् शंकर तथा विष्णु प्रसन्न रहते हैं। इस तीर्थ के प्रभाव से उसके सभी दान अक्षय परिणाम देने वाले हो जाते हैं। इस तीर्थ में जो अनाथ, दुर्गतिग्रस्त अथवा सनाथ ही, ब्राह्मण का विवाह करवा देता है, उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे सुनो। उसके जितने रोयें हैं, उसके वंश में उत्पन्न होने वालों में जितने रोयें हैं, उतने सहस्र वर्षों तक वह मनुष्य शिव लोक में पूजित होता है॥३५-३८॥

॥एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त १९२॥

❖❖❖

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनरक एवं गंगेश्वर तीर्थ माहात्म्य वर्णन, शिव का भृगु के समक्ष प्रकट होना एवं भृगु द्वारा शंकर की स्तुति करना एवं भृगु को वर प्रदान करना

मार्कण्डेय उवाच

ततस्त्वनरकं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र नरकं च न पश्यति॥१॥
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र यस्यास्थीनि विनिक्षिपेत्॥२॥
विलयं यान्ति पापानि रूपवाञ्जायते नरः। गोतीर्थं तु ततो गत्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते॥३॥

मार्कण्डेय ने कहा-तदनन्तर अनरक तीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे। वहाँ के स्नान

करने मात्र से मनुष्य नरक का दर्शन नहीं करता। हे पाण्डुनन्दन! उस अनरक तीर्थ के माहात्म्य को तुम सुनो। हे राजेन्द्र! उस पवित्र तीर्थ में जिसकी हड्डियाँ फेंकी जाती हैं, वह मनुष्य पुनर्जन्म में अतिरूपवान् होता है तथा उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर गोतीर्थ की यात्रा कर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१-३।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्त्रफलं लभेत्।।४।।

ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलां यः प्रयच्छति।।५।।
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम्।
सघृतं श्रीफलं जग्ध्वा दत्त्वा चान्ते प्रदक्षिणम्।।६।।

घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति। शिवतुल्यबलो भूत्वा नैवासौ जायते पुनः।।७।।
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः। पूजयेत्तु शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम्।।८।।
अङ्गारकनवम्यां तु अमायां च विशेषतः। स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत्।।९।।

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिला तीर्थ की यात्रा करे। हे राजन्! उस तीर्थ के स्नान करने से मनुष्य सहस्त्र गोदान का फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ के मास में- विशेषतः चतुर्दशी तिथि को- उस तीर्थ में उपवास रख जो मनुष्य कपिला गाय का दान देता है, घृत से दीपक जला घृत द्वारा शिव का स्नान करा, घृत समेत बेल का भोजन कर अन्त में प्रदक्षिणा कर, घण्टा एवं सभी आभूषणों से आभूषित कपिला का दान दे, भक्तिपूर्वक शिर की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन कराता है, विशेषकर अंगारक की नवमी तथा अमावस्या को स्नान कराता है, वह भावी जन्म में सुन्दर आकृति वाला होता है।।४-९।।

घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद्भक्तितो द्विजान्। पुष्पकेण विमानेन सहस्त्रैः परिवारितः।।१०।।
शैवं पदमवाप्नोति यत्र चाभिमतं भवेत्। अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव सः।।११।।
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः। राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवाञ्जायते कुले।।१२।।

घृत द्वारा लिंग का स्नान करा भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा कर मनुष्य सैकड़ों की भीड़ के साथ पुष्पक विमान द्वारा शिव जी का स्थान प्राप्त करता है, जहाँ जाकर उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं और अक्षयकाल पर्यन्त जिस प्रकार शिवजी विहार करते हैं, उसी प्रकार वह भी विहार करता हैं। फिर जब कर्मों के संयोग से मृत्यु लोक में आता है परमोच्चकुल में अति स्वरूपवान् तथा धर्मिष्ठ राजा होता है।।१०-१२।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ऋषितीर्थमनुत्तमम्। तृणबिन्दुर्नाम ऋषिः शापदग्धो व्यवस्थितः।।१३।।
तत्तीर्थस्य प्रभावेण शापमुक्तोऽभवद्द्विजः। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गङ्गेश्वरमनुत्तमम्।।१४।।
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी। स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते।।१५।।

पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात्।

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त अति उत्तम ऋषितीर्थ की यात्रा करे, जहाँ तृणबिन्दु नामक ऋषि शाप के कारण दग्ध हुए थे; किन्तु उस तीर्थ के प्रभाव से वे वहाँ शापमुक्त हुए थे। हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गंगेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे। श्रावण के मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है, वहाँ पर पितरों का तर्पण कर मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त होता हैं।।१३-१५.५।।

गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम्।।१६।।
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।।१७।।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा व्रजेद्वै यत्र शङ्करः। सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्।।१८।।
पितृणां तर्पणं कृत्वा ह्यश्वमेधफलं लभेत्। प्रयागे यत्फलं दृष्टं शङ्करेण महात्मना।।१९।।
तदेव निखिलं दृष्टं गङ्गावदनसङ्गमे।

गंगेश्वर तीर्थ के समीप में उत्तम गंगावदन नामक तीर्थ है, वहाँ किसी विशेष कामना से अथवा विष्काम भावना से मनुष्य स्नान कर अपने जन्म भर के पापों से छुटकारा पाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य वहाँ जाता है जहाँ शंकर का निवास है। सर्वदा पर्व के दिनों में वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ पितरों का तर्पण करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। महात्मा शंकर ने प्रयाग में स्नानादि का जो फल देखा है, वही सब गंगावदन के संगम तीर्थ में भी देखा है।।१६-१९.५।।

तस्यैव पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः।।२०।।
दशाश्वमेधजननं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा।।२१।।
अमायां च नरः स्नात्वा व्रजते यत्र शङ्करः। सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्।।२२।।
पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत्।
दशाश्वमेधात्पश्चिमतो भृगुर्ब्राह्मणसत्तमः।।२३।।
दिव्यं वर्षसहस्त्रं तु ईश्वरं पर्युपासते। वल्मीकवेष्टितश्चासौ पक्षिणां च निकेतनः।।२४।।
आश्चर्यं सुमहज्जातमुमायाः शङ्करस्य च। गौरी पप्रच्छ देवेशं कोऽयमेवं तु संस्थितः।।
देवो वा दानवो वाऽथ कथयस्व महेश्वर।।२५।।

उस तीर्थ के पश्चिम ओर, अधिक दूर पर नहीं, दशाश्वमेधजनन नामक तीनों लोकों में विख्यात तीर्थ है, भाद्रपद मास की आमावस्या तिथि को एक रात्रि का उपवास कर मनुष्य वहाँ जाता है, जहाँ कि शंकर का निवास है। सर्वदा पर्व के दिनों में वहाँ स्नान करना चाहिये। पितरों का तर्पण कर वहाँ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। दशाश्वमेध तीर्थ की पश्चिम दिशा में

ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भृगुजी ने सहस्त्र दिव्य वर्षों तक शिव जी की आराधना की थी, उस समय उनका शरीर बिलों से जर्जरित तथा पक्षियों का घोसला-सा बन रहा था। उन्हें ऐसा देख पार्वती तथा शंकर जी परमविस्मित हुए थे। पार्वती ने देवदेव से पूछा-'हे महेश्वर! इस प्रकार स्थित यह कौन है? कोई देवता हैं या दानव हैं?।।२०-२५।।

महेश्वर उवाच

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठ ऋषीणां प्रवरो मुनिः। मां ध्यायते समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये।।२६।।
ततः प्रहसिता देवी ईश्वरं प्रत्यभाषत। धूमवत्तच्छिखा जाता ततोऽद्यापि न तुष्यसे।।
दुराराध्योऽसि तेन त्वं नात्र कार्या विचारणा।।२७।।

महेश्वर ने कहा-'हे प्रिये! यह ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भृगु नामक मुनि हैं, समाधिलीन हो ये मेरा ध्यान कर रहे हैं। शिव जी की बात सुन देवी ने हँसते हुए महादेव से कहा- 'तपस्या करते-करते इनकी शिखा धुएँ के समान हो गई है; किन्तु तब भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो रहे हो, अतः इससे निस्सन्देह यह सिद्ध हो होता है कि तुम कितनी कठिनाई से अनुकूल बनाये जा सकते हो!।।२६-२७।।

महेश्वर उवाच

न जानासि महादेवि ह्ययं क्रोधन वेष्टितः। दर्शयामि यथातथ्यं प्रत्ययं ते करोम्यहम्।।२८।।
ततः स्मृतोऽथ देवेन धर्मरूपो वृषस्तदा। स्मरणात्तस्य देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः।।
वदंस्तु मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो।।२९।।

महेश्वर ने कहा-हे महादेवि! तुम यह नहीं जानती, ये क्रोध से भरे हुए हैं। देखों, इनके क्रोध को दिखला कर तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। ऐसा कह महादेव ने धर्मरूप वृष का स्मरण किया। स्मरण करते ही वृषभ शीघ्र उपस्थित हुआ और मनुष्य वाणी में बोलते हुए कहा- 'हे प्रभो! मेरे लिए क्या आज्ञा कर रहे हो'?।।२८-२९।।

भगवानुवाच

वल्मीकं त्वं खनस्वैनं विप्रं भूमौ निपातय।
योगस्थस्तु ततो ध्यायन्भृगुस्तेन निपातितः।।३०।।
तत्क्षणात्क्रोधसन्तप्तो हस्तमुत्क्षिप्य सोऽशपत्।
एवं सम्भाषमाणस्तु कुत्र गच्छसि भो वृष।।
अद्याह संप्रकोपेण प्रलयं त्वां नये वृष।।३१।।
धर्षितस्तु तदा विप्रश्चान्तरिक्षं गतो वृषम्। आकाशे प्रेक्षते विप्र एतदद्भुतमुत्तमम्।।३२।।
तत्र प्रहसितो रुद्रऋषिरग्रे व्यवस्थितः। तृतीयलोचनं दृष्ट्वा वैलक्ष्यात्पतितो भुवि।।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम्।।३३।।

भगवान् ने कहा-इस विल को तुम खन डालो और इस ब्राह्मण को नीचे पृथ्वीतल पर गिरा दो।' शिव के ऐसे आदेश पर योगमुद्रा में लीन भृगु को उस वृषभ ने नीचे ढकेल कर गिरा दिया, जिससे उसी क्षण अति क्रुद्ध एवं सन्तप्त हो हाथ को उठा उन्होंने वृषभ को 'अरे वृषभ! कहाँ जा रहे हो?' ऐसा कहते हुए यह शाप दे दिया कि 'आज मैं अति क्रोध से तुम्हारा नाश किये देता हूँ। मुनिवर भृगु जी इस प्रकार अपमानित हुए और वृषभ ऊपर आकाश में चला गया। उसे आकाश में जाते देख ब्राह्मण ने सोचा कि यह क्या अद्भुत बात? उसी अवसर पर ऋषि के आगे हँसते हुए भगवान् रुद्र उपस्थित हुए। शिव के तीसरे नेत्र को देख मुनि विह्वल हो पृथ्वी पर गिर पड़े और दण्ड की भाँति पृथ्वी पर पड़े-पड़े परमेश्वर की स्तुति करने लगे।।३०-३३।।

प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं त्वामहं दिव्यरूपम्।
भवातीतो भुवनपते प्रभो तु विज्ञापये किञ्चित्।।३४।।
त्वद्गुणनिकरान्वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाम। वासुकिरपि हि कदाचिद्वदनसहस्त्रं भवेद्यस्य।।३५।।
भक्त्या तथाऽपि शङ्कर भुवनपते त्वत्तुतौ मुखरः।
वदतः क्षमस्व भगवन्प्रसीद मे तव चरणपतितस्य।।३६।।

'हे भुवनों के स्वामी! प्रभो! तुम संसार के अतीत पुरुष हो, सभी भूतों के स्वामी भवोद्भव, दिव्यस्वरूप तुमसे मैं कुछ विज्ञापित (निवेदित) कर रहा हूँ। भुवनपते तुम्हारे गुणों के समूहों का कौन मनुष्य वर्णन कर सकता है, सर्पराज वासुकि की भाँति कोई किसी तरह सहस्रसुख भी हो जाय, तब भी तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। हे शंकर! यह जानते हुए भी मैं भक्ति के कारण तुम्हारी स्तुति करने को उद्यत हुआ हूँ! हे भगवान्! मैं आप के चरणों में पड़ा हूँ, मेरी यह, ढिठाई क्षमा कीजिए।।३४-३६।।

सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्त्योर्विनाशने देव।
त्वां मुक्त्वा भुवनपते भुवनेश्वर नैव दैवतं किञ्चित्।।३७।।
यमनियमयज्ञदानवेदाभ्यासाश्च धारणा योगः।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति हि कलासहस्त्रांशम्।।३८।।
उच्छिष्टरसरसायनखड्गाञ्जनपादुकाविवरसिद्धिर्वा।
चिह्नं भवव्रतानां दृश्यति चेह जन्मनि प्रकटम्।।३९।।

हे देव! तुम सत्त्व, रज एवं तम-तीनों गुणों से युक्त सुष्टि की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाश करने वाले हो। हे भुवनेश्वर! भुवनपते! तुम्हें छोड़कर जगत् में अन्य कोई देवता ऐसा नहीं है। यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा अथवा योग- ये सभी आपकी भक्ति के सहस्रवें अंश की भी बराबरी नहीं सकते? उच्छिष्टरस, रसायन, खड्ग, अंजन, पादुका, विवर-सिद्धि आदि चिह्न इस जन्म में शिव के व्रत करने वालों के प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।।३७-३९।।

शाठ्येन नमति यद्यपि ददासि त्वं भूतिमिच्छतो देव।
भक्तिर्भवभेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ॥४०॥
परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसन्तप्तम्।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि॥४१॥

देव! यद्यपि तुम्हारा भक्त तुम्हें दुष्टता के भाव से अभिभूत हो कर प्रणाम करता है, पर तुम उसकी अभिलाषाओं को तो पूरा करते ही हो। हे नाथ! इस सांसारिक दुःखों एवं द्वन्द्वों को दूर करने वाली एवं मोक्ष प्राप्ति की साधनरूप भक्ति को तुमने बना दिया है। दूसरे की स्त्री तथा दूसरे के धन के लोलुप एवं दूसरे से अपमान जनित सन्ताप से सन्तप्त, परमुखापेक्षी मेरे जैसे की हे परमेश्वर! आप रक्षा करें।।४०-४१।।

मिथ्यभिमानदग्धं क्षणभङ्गुरदेहविलसितं क्रूरम्।
कुपथाभिमुखं पतितं त्वं मा पापात्परित्राहि॥४२॥
दीने द्विजगणसार्थे बन्धुजनेनैव दूषिता ह्याशा।
तृष्णा तथाऽपि शङ्कर किं मूढं मां विडम्बयति॥४३॥
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं प्रदत्स्व यावदासिनीं नित्यम्।

मिथ्या अभिमान में जले हुए क्षणभर में नष्ट होने वाले शरीर से शोभित, क्रुर कर्म में नियत रहने वाले, कुमार्ग की ओर अभिमुख तथा गिरे हुए मुझको तुम पाप कर्म से बचाओ। हे शंकर! मुझ जैसे ब्राह्मणों के साथी दीन को, भी जिसकी सभी आशाएँ बन्धुवर्गों ने ही दूषित कर दी है, तृष्णा इतना क्यों परेशान कर रही है? तुम इस तृष्णा को शीघ्र ही हर लो और नित्य निवास करने वाली (चिरस्थायीनी) लक्ष्मी (शान्ति) मुझे दो।।४२-४३.५।।

छिन्धि महमोहपाशानुत्तारय मां महादेव॥४४॥
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम्।
यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य तुष्येद्भृगोर्यथा च शिवः॥४५॥

मद एवं मोह के पाशों को मेरे समीप से काटकर अलग कर दो, हे महादेव! मेरा निस्तार करो'। इस करुणाभ्युदय नामक सभी अभिलाषओं को पूर्ण करने वाले दिव्य स्तोत्र का पाठ जो भक्तियुक्त होकर करता है, उसकें ऊपर शिव जी उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे भृगु के ऊपर प्रसन्न हुए थे।।४४-४५।।

ईश्वर उवाच

अहं तुष्टोऽस्मि ते वत्स प्रार्थयस्वेप्सितं वरम्। उमया सहितो देवो वरं तस्य ह्यदापयत्॥४६॥

ईश्वर ने कहा-'वत्स! मैं तुम पर परम प्रसन्न हूँ, मनोवाञ्छित वरदान माँगो'। ऐसा कह पार्वती समेत भगवान् शंकर ने भृगु को वरदान देने का निश्चय किया।।४६।।

भृगुरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम। रुद्रवेदी भवेदेवमेतत्सम्पादयस्व मे॥४७॥

भृगु ने कहा–हे देवेश! यदि आप सचमुच मुझपर सन्तुष्ट हैं और वास्तव में वरदान देना चाहते हैं तो हे देव! मैं रुद्र का भली-भाँति जानने वाला हो जाऊँ तथा यह तीर्थ स्थान मेरे नाम से प्रसिद्ध हो जाय।।४७।।

ईश्वर उवाच

एवं भवतु विप्रेन्द्र क्रोधस्त्वा न भविष्यति। न पितापुत्रयोश्चैव त्वैकमत्यं भविष्यति॥४८॥
तदाप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे देवाः सकिंनराः। उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः॥४९॥
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते।
अवशाः स्ववशा वाऽपि म्रियन्ते यत्र जन्तवः॥५०॥
गुह्यातिगुह्या सुगतिस्तेषां निःसंशयं भवेत्। एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्॥५१॥

ईश्वर ने कहा–'विप्रेन्द्र! ऐसा ही होगा अब तुम्हें क्रोध नहीं होगा। तुम्हारे पिता और पुत्र में कभी कलह नहीं होगा, अब ऐक्य स्थापित होगा'। तभी से ब्रह्मा आदि सभी देवगण किन्नरों के साथ इस भृगु के तीर्थ स्थान की, जहाँ साक्षात् शिव जी सन्तुष्ट हुए थे, उपासना करते हैं। उस तीर्थ के दर्शन मात्र करने से वे शीघ्र ही अपने कर्मों से छुटकारा पा जाते हैं। अपने अधीन रहने वाले या पराधीन रहने वाले–कोई भी जन्तु यदि वहाँ मृत्यु लाभ करते हैं तो गुह्य से अति गुह्य उनकी गति होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। यह विपुल क्षेत्र सभी पापकर्मों का विनाश करने वाला है।।४८-५१।।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
उपानहौ च च्छत्रं च देयमन्नं च काञ्चनम्॥५२॥
भोजनं च यथाशक्त्या ह्यक्षयं च तथा भवेत्। सूर्योपरागे यो दद्याद्दानं चैव यथेच्छया॥५३॥
दीयमानं तु तद्दानमक्षयं तस्य तद्भवेत्। चन्द्रसूर्योपरागेषु यत्फलं त्वमरकण्टके॥५४॥
तदेव निखिलं पुण्यं भृगुतीर्थे न संशयः।

उस भृगुतीर्थ में स्नान करने वाले प्राणी स्वर्ग प्राप्त करते हैं, जो वहाँ मरते हैं, वे पुनः जन्म नहीं धारण करते। उस तीर्थ में जाकर जूते, अन्न, सुवर्ण तथा भोजन का यथाशक्ति दान करना चाहिये, वहाँ देने से वे सभी अक्षयफल प्रदान करने वाले हो जाते हैं। सूर्यग्रहण के अवसर पर जो प्राणी अपनी इच्छा से दान करता है, उसे दान अक्षय फल प्रदान करने वाला हो जाता है। चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो फल अमरकण्टक तीर्थ में प्राप्त होता हैं, वे ही सब भृगुतीर्थ में भी होने हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।।५२-५४.५।।

क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानतपः क्रियाः॥५५॥

न क्षरेत्तु तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर। यस्य वै तापसोग्रेण तुष्टेनैव तु शम्भुना॥५६॥

दान, कर्म, यज्ञ तथा तपस्या-सभी नष्ट होने वाली है; किन्तु हे युधिष्ठिर! उन भृगु के तीर्थ में की गई तपस्या कभी नष्ट होने वाली नहीं है, जिनकी उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर शंकर जी ने वरदान दिया था॥५५-५६॥

सान्निध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे नराधिप। प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु यत्र तुष्टो महेश्वरः॥५७॥
एवं तु वदतो देवीं भृगुतीर्थमनुत्तमम्। न जानन्ति नरा मूढा विष्णुमायाविमोहिताः॥५८॥

हे राजन्! वह भृगु का परमपवित्र तीर्थ, जहाँ पर भगवान् महेश्वर सन्तुष्ट हुए थे, तीनों लोकों में विख्यात है। वहाँ महादेव जी का सन्निधान बतलाया जाता है। महादेव जी ने इस प्रकार की बातें पार्वती जी से कही थी कि इस अति उत्तम भृगुतीर्थ को जो मनुष्य नहीं जानते, वे विष्णु की माया से विमोहित हैं, मूढ़ हैं॥५७-५८॥

नर्मदायां स्थितं दिव्यं भृगुतीर्थं नराधिप।
भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः क्वचित्॥५९॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्॥६०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः। काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते॥६१॥

हे राजन्! यह दिव्य भृगु तीर्थ नर्मदा नदी पर अवस्थित हैं। इस भृगुतीर्थ के माहात्म्य को जो मनुष्य सुनता है, वह सभी पापकर्मों से छुटकारा पाता है तथा शिवलोक को जाता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम गौतमेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन्! वहाँ स्नान कर उपवास में परायण रह मनुष्य सुवर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥५९-६१॥

धौतपापं ततो गच्छेत्क्षेत्रं यत्र वृषेण तु। नर्मदायां कृतं राजन्सर्वपातकनाशनम्॥६२॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः॥६३॥
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च शिवतुल्यबलो भवेत्। वसेत्कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः॥६४॥
कालेन महता प्राप्तः पृथिव्यामेकराड्भवेत्।

हे राजन्! तदनन्तर धौतपाप नामक क्षेत्र की यात्रा करनी चाहिये, जिसका निर्माण नर्मदा में शिव के नान्दी ने किया था, वह तीर्थ सभी पाप कर्मों से मुक्ति दिलाने वाला है। उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्या सरीखे घोर पापों से छूट जाता है। हे राजन्! उस तीर्थ में जो मनुष्य प्राणत्याग करता है, वह चतुर्भुज एवं त्रिनेत्र होकर शिव के समान पराक्रमशाली होता है। इस प्रकार शिव के तुल्य पराक्रमशाली हो वह दस सहस्र कल्पों तक स्वर्ग में निवास करता है। इस दीर्घ कालीन अवधि को समाप्त करने के बाद वह पृथ्वी मण्डल का एकच्छत्र सम्राट् होता है॥६२-६४.५॥

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्॥६५॥

प्रयागे यत्फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम्। तत्फलं लभते राजन्स्नातमात्रो हि मानवः॥६६॥
मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। उपोष्य रजनीमेकां तस्मिन्स्नानं समाचरेत्।
यमदूतैर्न बाध्येत रुद्रलोकं स गच्छति॥६७॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर अतिश्रेष्ठ ऐरण्डी नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। मार्कण्डेय जी ने प्रयागतीर्थ के माहात्म्य में जितने पुण्य का वर्णन किया है, हे राजन्! वे सब पुण्य स्नान करने मात्र से इस तीर्थ में मनुष्य को मिलते हैं। भाद्रपद मास में शुक्ल चतुर्दशी तिथि को एक रात का उपवास रख उस तीर्थ में स्नान करे, ऐसा करने वाले को यमदूत नहीं बाँधते और वह रुद्रलोक को प्राप्त करता है।।६५-६७।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः। हिरण्यद्वीपविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥६८॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्धनवान्रूपवान्भवेत्। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं कनखलं महत्॥६९॥
गरुडेन तपस्तप्तं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति॥७०॥
क्रीडते योगिभिः सार्धं शिवेन सह नृत्यति। तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते॥७१॥

हे राजेन्द्र! सभी पापों को नष्ट करने वाले हिरण्यद्वीप नाम के विख्यात उस तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ भगवान् जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी। राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान करने वाला प्राणी धन तथा रूप से युक्त होता है। हे राजन्! तदनन्तर अति महान् कनखल नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे नराधिप! उस पवित्र तीर्थ में गरुड़ ने तपस्या की थी, वह तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध तीर्थ है, वहीं योगिनियों का निवास स्थल है, जो योगियों के साथ क्रीड़ा करती हैं तथा शिव के साथ नृत्य करती हैं। हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है।।६८-७१।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम्। हंसास्तत्र विनिर्मुक्ता गता ऊर्ध्वं न संशयः॥७२॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः। वाराहं रूपमास्थाय अर्चितः परमेश्वरः॥७३॥
वराहतीर्थे नरः स्नात्वा द्वादश्यां ततु विशेषतः।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरकं न च पश्यति॥७४॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।

हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम हंस तीर्थ की यात्रा करे, वहीं पर हंसगण मुक्त होकर स्वर्ग को गये थे, इसमें सन्देह नहीं। हे राजेन्द्र! तदनन्तर वाराह तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये जहाँ पर परमेश्वर जनार्दन को सिद्धि मिली थी और वे वाराह रूप में पूजित हुए थे। विशेषकर द्वादशी तिथि को वाराह तीर्थ में स्नानकर मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है तथा नरक का कभी दर्शन नहीं करता। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम चन्द्रतीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। विशेषकर पूर्णिमा तिथि को वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ के स्नान मात्र के करने से मनुष्य चन्द्रलोक में पूजित होता है।।७२-७५.५।।

पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्।।७५।।
स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते। दक्षिणेन तु द्वारेण कन्यातीर्थं तु विश्रुतम्।।७६।।
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत्। प्रणिपत्य तु चेशानं बलिस्तेन प्रसीदति।।७७।।
हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे च दृश्यते। शक्रध्वजे समावृत्ते गुप्ते नागरिकेतने।।७८।।
नर्मदासलिलौघेन तरुन्सम्प्लावयिष्यति।
अस्मिन्स्थाने निवासः स्याद्विष्णुः शङ्करमब्रवीत्।।७९।।

नर्मदा के दक्षिणी द्वार पर कन्या नामक विख्यात तीर्थ है, शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को वहाँ स्नान कर ईशान शिव को प्रणाम करे, ऐसा करने से बलि प्रसन्न होते हैं। उस स्थान से आकाश मण्डल में दिव्य हरिश्चन्द्रपुर उस समय दिखाई पड़ता है, जिस समय आकाश इन्द्रधनुष से आच्छन्न रहता है और सभी नागरिकों? .... के शरीर गुप्त? .... हो जाते हैं। नर्मदा की जलराशि वृक्षों को डुबा देगी और इसी स्थान पर मेरा निवास होगा–ऐसा विष्णु भगवान् ने शंकर से कहा था।।७६-७९।।

द्वीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद्बहु सुवर्णकम्। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कन्यातीर्थे सुसङ्गमे।।८०।।
स्नातमात्रो नरस्तत्र देव्याः स्थानमवाप्नुयात्। देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमनुत्तमम्।।८१।।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते। ततो गच्छेच्च राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम्।।८२।।
यत्तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्। अपरपक्षे त्वमायां तु स्नानं तत्र समाचरेत्।।८३।।
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता।

इस द्वीपेश्वर नामक तीर्थ में स्नान कर मनुष्य पर्याप्त सुवर्ण प्राप्त करता है। राजेन्द्र! तदनन्तर कन्या तीर्थ के सुन्दर संगम की यात्रा करे, वहाँ के केवल स्नान करने से मनुष्य पार्वती का उत्तम लोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी तीर्थों में श्रेष्ठ देव तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। हे राजेन्द्र! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति पवित्र शिखितीर्थ की यात्रा करे, वहाँ पर जो दान दिया जाता है, वह सब कोटि गुना फल देने वाला होता है, अमावस्या तिथि के तीसरे पहर में वहाँ स्नानकर, यदि एक ब्राह्मण को भोजन कराये तो उससे कोटि ब्राह्मणों के भोजन कराने का पुण्य प्राप्त होता है।।८०-८३.५।।

भृगुतीर्थे तु राजेन्द्र तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता।।८४।।
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नानं समाचरेत्। अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते।।८५।।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो भृगुस्तु मुनिपुङ्गवः। अवतारः कृतस्तत्र शङ्करेण महात्मना।।८६।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०५४१।।
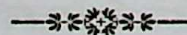
हे राजेन्द्र! उस भृगुतीर्थ में एक कोटि तीर्थों की अवस्थिति है, जो कोई मनुष्य निष्काम भावना से अथवा किसी विशेष कामना से युक्त हो वहाँ स्नान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है तथा देवताओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है। उस पवित्र तीर्थ में मुनिपुङ्गव भृगु को परमसिद्धि प्राप्त हुई थी, महात्मा शंकर वहीं अवतार धारण करते हैं।।८५-८६।।

।।एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९३।।

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अंकुशेश्वर, मनोहर, पैतामह, सावित्री, आषाढ़, जामदग्न्य एवं विघटन तीर्थ का वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ह्यङ्कुशेश्वरमुत्तमम्। दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः।।१।।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोके महीयते।।२।।
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। सुभगो दर्शनीयश्च भोगवाञ्जायते नरः।।३।।

मार्कण्डेय ने कहा–हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति पवित्र अंकुशेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्थित देव का दर्शन मात्र करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ को जाय, राजन्! वहाँ स्नान करने से मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है। तदनन्तर अश्वतीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ पर स्नान करे, ऐसा करने वाला मनुष्य सुन्दर, दर्शनीय तथा सभी धन-धान्यों से युक्त होता है।।१-३।।

पैतामहं ततो गच्छेद् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डं तु दापयेत्।।४।।
तिलदर्भविमिश्रं तु ह्युदकं तत्र दापयेत्। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्।।५।।
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत्। विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते।।६।।

तत्पश्चात् प्राचीन काल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित पैतामह नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ जाकर मनुष्य स्नानकर भक्तिपूर्वक पितरों को पिण्डदान करे। वहाँ पितरों के उद्देश्य से तिल तथा कुश से विमिश्रित जलाञ्जलि दे। उस तीर्थ के प्रभाव से वहाँ के सभी कार्य अक्षय पुण्यदायी होते हैं। जो मनुष्य सावित्री तीर्थ में पहुँचकर स्नान करता है, वह अपने समस्त पापों को नष्टकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है।।४-६।।

मनोहरं ततो गच्छेत्तीर्थं परमशोभनम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृलोके महीयते।।७।।

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मानसं तीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते॥८॥

तदनन्तर परमरमणीक मनोहर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्यों पितरों के लोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति पवित्र मनोहर तीर्थ की यात्रा करे, राजन्! उसमें स्नान करने से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है।।७-८।।

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कुञ्जतीर्थमनुत्तमम्। विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणशनम्॥९॥

यान्यान्कामयते कामान्पशुपुत्रधनानि च।
प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप॥१०॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति पवित्र कुञ्जतीर्थ की यात्रा करे, जो तीनों लोकों में सभी पापों को विनष्ट करने वाला विख्यात है। हे नराधिप! जिन-जिन कामनाओं की अभिलाषा, पशु, पुत्र एवं धन प्राप्त करने की आकांक्षाएँ मनुष्य को उस पवित्र तीर्थ में होती है, वे सभी उस तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होती हैं।।९-१०।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र त्रिदशज्योतिविश्रुतम्।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः॥११॥

भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः। प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः॥१२॥
विकृताननबीभत्सुर्व्रती तीर्थमुपागतः। तत्र कन्या महाराज वरयन्परमेश्वरः॥१३॥
कन्यामृषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम्। तीर्थं तत्र महाराज ऋषिकन्येति विश्रुतम्॥१४॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर त्रिदशज्योति नाम से विख्यात पवित्र तीर्थ की यात्रा करे, जहाँ पर ऋषि की कन्याओं ने अति उत्तम व्रतों को निभाते हुए परम तपश्चर्या की थी, उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि सबों के पति अव्यय भगवान् शंकर ही हों। उन सबकी तपस्या से सुप्रसन्न हो दण्डधारण कर विकृत मुख महादेव जी उस तीर्थ को पहुँचे थे और उन कन्याओं को वरण किया था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कन्याओं का वरण करने वाले ऋषियों से 'कन्यादान करो', ऐसा स्वतः अनुरोध किया था। महाराज! वह पवित्र तीर्थ ऋषि-कन्या के नाम से विख्यात है।।११-१४।।

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र स्वर्णबिन्दु त्विति स्मृतम्॥१५॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्दुर्गतिं न च पश्यति। अप्सरेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥१६॥
क्रीडते नागलोकस्थोऽप्सरोभिः सह मोदते। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नरकं तीर्थमुत्तमम्॥१७॥
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं च न पश्यति। भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरा जनः॥१८॥
एततीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्। अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते॥१९॥

हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान कर प्राणी सभी पापों से मुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! तदुपरान्त स्वर्णबिन्दु नाम से विख्यात पवित्र तीर्थ की यात्रा करे, राजन् उस तीर्थ के स्नान करने से मनुष्य

कभी दुर्गति नहीं देखता। तत्पश्चात् अप्सरेश नामक तीर्थ में जाकर स्नान करे, वहाँ पर स्नान करने वाला प्राणी अप्सराओं के साथ नागलोक में विहार करता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति पवित्र नरक नामक तीर्थ को जाये और स्नानकर महादेव की पूजा करे, ऐसा करने से वह नरक का दर्शन नहीं करता। तदुपरान्त उपवास करते हुए मनुष्य भारभूति नामक तीर्थ की यात्रा करे, इस पवित्र तीर्थ में, जो शंकर का पवित्र तीर्थ है, पहुँच कर जो विरूपाक्ष की पूजा कर मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है।।१५-१९।।

अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूतौ महात्मनः।
यत्र यत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः।।२०।।
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्। अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः।।२१।।
दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णं तु दापयेत्। विमानैः सूर्यसङ्काशैर्व्रजते यत्र शङ्करः।।२२।।

इस पवित्र भारभूति में स्नानकर जहाँ कहीं भी प्राण त्यागकर देने वाले को गणों की अध्यक्षता प्राप्त होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। कार्तिक के मास में महेश्वर की अर्चना करने वाले को अश्वमेध से दसगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है, ऐसा पण्डित लोग कहते हैं। उस पवित्र तीर्थ में घृतपूर्ण सौ दीपों का दान करे, ऐसा करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी विमानों पर अधिरूढ़ हो शंकर के लोक को प्राप्त करते हैं।।२०-२२।।

वृषभं यः प्रयच्छेत्तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम्। वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति।।२३।।
धेनुमेकां तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च।।२४।।
यथाशक्त्या च राजेन्द्र ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत्।।२५।।

इस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य शंख, कुन्द के पुष्प अथवा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के वृषभ का दान करता है, वह वृष युक्त यान पर सवार होकर रुद्र लोक जाता है। हे नराधिप! इस पवित्र तीर्थ में मनुष्य एक धेनु का दान करता है, तथा दूध में बनाये गये मधुसंयुक्त चावल तथा अन्यान्य विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को खिलाता है, वह सब इस तीर्थ के प्रभाव से कोटिगुना अधिक फल देने वाला हो जाता है।।२३-२५।।

नर्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम्।
दुर्गतिं च न पश्यन्ति तस्य तीर्थप्रभावतः।।२६।।
एतत्तीर्थं समासाद्य वस्तु प्राणान्विमुञ्चति। सर्वपापविनिर्मुक्तो व्रजेद्वै यत्र शङ्करः।।
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।।२७।।
हंसयुक्तेन यानेन ब्रह्मलोकं स गच्छति। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः।।२८।।
गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत्स्वर्गे महीयते।

पुण्यसलिला नर्मदा का जल पान कर वृषभध्वज शंकर की पूजा कर मनुष्य उस तीर्थ के प्रभाव से किसी भी दुर्गति को नहीं देखता। इस पवित्र तीर्थ में आकर जो प्राणी प्राणों को छोड़ते हैं, वे सभी पापकर्मों से मुक्त होकर शंकर के लोक को प्राप्त करते हैं। हे नराधिप! उस पवित्र तीर्थ में जो प्राणी जल में प्रवेश करता है, वह हंसयुक्त यान द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है और तब तक स्वर्ग में पूजित होता जब तक चन्द्रमा, सूर्य, हिमवान् पर्वत तथा समुद्र विद्यमान हैं एवं गंगा आदि नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं।।२६-२८.५।।

अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप॥२९॥
गर्भवासे तु राजेन्द्र न पुनर्जायते पुमान्। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र आषाढीतीर्थमुत्तमम्॥३०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्धासनं लभेत्।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥३१॥
तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः।

हे नाराधिप! उस पवित्र तीर्थ में जो प्राणी अनशन करता हैं, राजेन्द्र फिर वह कभी गर्भ में निवास नहीं करता। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम आषाढ़ी तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजन्! उस आषाढ़ी तीर्थ में स्नानकर मनुष्य इन्द्र का आधा आसन ग्रहण करता है। तदुपरान्त स्त्रियों के परमपवित्र सभी पापों को दूर करने वाले तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। वहाँ पर स्नान करने से निश्चय ही गणों के स्वामित्व की प्राप्ति होती है।।२९-३१.५।।

ऐरण्डीनर्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम्॥३२॥
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः॥३३॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया। ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमम्॥३४॥
जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः।
यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत्॥३५॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमे। त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥३६॥

ऐरण्डी तथा नर्मदा नदी का संगम तीर्थ तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है, वह अति पुण्यदायी तथा सभी पापों का नाश करने वाला है। हे राजेन्द्र! वहाँ जाकर नित्य कर्मों को सम्पन्न कर उपवास करता हुआ प्राणी ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् पुण्यसलिला नर्मदा तथा समुद्र के संगम स्थल की यात्रा करे, जो जामदग्न्य तीर्थ के नाम से सुप्रसिद्ध है, वहीं पर भगवान् जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी, वहीं पर इन्द्र ने अनेक महान् यज्ञों का अनुष्ठान कर देवताओं के स्वामित्व की प्राप्ति की थी। हे राजेन्द्र! उस नर्मदा तथा समुद्र के संगम स्थल पर स्नान कर प्राणी अश्वमेध के तिगुने पुण्य को प्राप्त करता है।।३२-३६।।

पश्चिमस्योदधेः सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम्। तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः॥३७॥

आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते॥३८॥

पश्चिम के समुद्र की सन्धिभूमि पर स्वर्गद्वार विघटन नामक तीर्थ है। हे राजन्! वहाँ पर गन्धर्वों समेत सभी देवगण, ऋषिवृन्द, सिद्ध तथा चारण तीनों सन्ध्याओं में देवदेव विमलेश्वर महादेव की आराधना करते हैं। वहाँ पर स्नान करने वाला प्राणी रुद्रलोक में पूजित होता है॥३७-३८॥

विमलेशात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम्॥३९॥

सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा यान्ति शिवालयम्।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कौशिकीतीर्थमुत्तमम्॥४०॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः। उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः॥४१॥
एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया। सर्वतीर्थाभिषेकं तु यः पश्येत्सागरेश्वरम्॥४२॥

उस विमलेश्वर देव से बढ़कर प्रभावशाली कोई तीर्थ न तो था और न होगा, वहाँ पर उपवास रखकर जो प्राणी विमलेश्वर का दर्शन करते हैं, वे सात जन्म में किये गये पापों से मुक्त होकर शिव के लोक को प्राप्त करते हैं। हे राजेन्द्र! तदुपरान्त अति उत्तम कौशिकी नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। हे राजन्! वहाँ पर स्नान कर एक रात का उपवास रख जो प्राणी मन तथा आहारेच्छा को वश में रख निवास करता है, वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्महत्या से छुटकारा पाता है। जो मनुष्य सागरेश्वर तीर्थ का दर्शन मात्र कर लेता है, वह सभी तीर्थों के स्नान का पुण्य प्राप्त करता है॥३९-४२॥

योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्ते संस्थितः शिवः।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः॥४३॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति। नर्मदासङ्गमं यावद्यावच्चामरकण्टकम्॥४४॥

अत्रान्तरे महाराज तीर्थकोट्यो दश स्मृताः।

उस पवित्र तीर्थ के एक योजन विस्तार तक भवरों में शिव जी का निवास रहता है यही कारण है कि उसके देखने से निस्सन्देह सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होता है। ऐसा करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो शिव के लोक को प्राप्त करता है। हे राजन्! नर्मदा के पवित्र संगम से लेकर अमरकण्टक पर्वत तक कुल दस करोड़ तीर्थ कहे गये हैं॥४३- -४४.५॥

तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्र ऋषिकोटिनिषेवितम्॥४५॥

साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः। सेविताऽनेन राजेन्द्र त्वीप्सितार्थप्रदायिका॥४६॥

यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽपि भावतः।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चति पाण्डव॥४७॥

नर्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः। प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः॥४८॥

एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ के अन्तर में करोड़ों विद्वान् ऋषिगण ध्यान में निमग्न रहकर

अग्निहोत्र आदि करते हैं। हे राजेन्द्र! उन परम विद्वान् ऋषिगणों से सेवित ये दस करोड़ तीर्थ अभीसिप्त कार्यों की पूर्ति करने वाले हैं। जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक इन तीर्थों के माहात्म्य का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, हे पाण्डव! उसको समस्त तीर्थवृन्द स्वयमेव स्नान करवाते हैं तथा पुण्यसलिला नर्मदा सर्वदा प्रसन्न रहती हैं-इसमें सन्देह नहीं। उसके ऊपर शिव जी तथा महामुनिमार्कण्डेय भी सन्तुष्ट रहते हैं।।४५-४८।।

बन्ध्या चैव लभेत्पुत्रान्दुर्भगा सुभगा भवेत्।
कन्या लभेत भर्तारं यश्च वाञ्छेत्तु यत्फलम्।।
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा।।४९।।

ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत्। वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम्।।५०।।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। नरकं च न पश्येत्तु वियोगं च न गच्छति।।५१।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्यं चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०५९२।।

यदि बन्ध्या स्त्री इसका पाठ या श्रवण करती है तो वह पुत्र प्राप्त करती है, कुरूप स्त्री सुन्दरी जो जाती है, कन्या को पति की प्राप्ति होती है और भी जो कोई जिस फल की इच्छा रखते हैं, इससे वह सब प्राप्त करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह का अवसर नहीं है। ब्राह्मण वेदज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य व्यापार में लाभ पाता है, शूद्र को सङ्गति प्राप्त होती है, मूर्ख विद्यावान् होता है। जो कोई मनुष्य इस माहात्म्य के तीनों सन्ध्या के अवसरों पर पाठ करता है, वह कभी नरक का दर्शन नहीं करता तथा अपने प्रियजनों से कभी वियुक्त नहीं होता।।४९-५१।।

।।एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९४।।

❖❖❖

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृगुवंश प्रवर कीर्तन

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओंकारस्याभिवर्णनम्। ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे।।१।।

सूत जी ने कहा- ऋषिवृन्द! इस प्रकार ओंकार का वर्णन सुन मनु ने उस समुद्र में मत्स्य रूप से अवस्थित देवदेव भगवान् विष्णु से पूछा-।।१।।

मनुरुवाच

ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा। प्रवाराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद्वद॥२॥
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवेऽन्तरे। तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्तय॥३॥
दाक्षायणीनां च तथा प्रजाः कर्तय मे प्रभो। ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम्॥४॥

मनु ने कहा–हे प्रभो! मुझसे ऋषियों का नाम, गोत्र, वंश अवतार तथा प्रवरों की समानता तथा विषमता विस्तारपूर्वक बताईये। स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव के शाप से जब ऋषिगण शापित हुए थे तब उनकी वैवस्वत मन्वन्तर में पुनः उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इसे मुझे बताईये। दक्ष प्रजापति के सन्तानों से उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का वर्णन मुझसे कीजिये तथा उसी प्रसंग में भृगु के वंश का विस्तार किस प्रकार हुआ–इसका वर्णन कीजिए॥२-४॥

मत्स्य उवाच

मन्वन्तरेऽस्मिन्संप्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा। चरित्रं कथ्यते राजन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥५॥
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा। ऋषयश्च समुद्भूता हुते शुक्रे महात्मना॥६॥

मत्स्य ने कहा–राजन्! इस मन्वन्तर में तथा इसके पूर्ववर्ती वैवस्वत में घटित हुए परमेष्ठी ब्रह्मा के चरित्र का वर्णन मैं कर रहा हूँ। महादेव के शाप से स्वयमेव अपने-अपने शरीरों को त्याग कर ऋषिगण पुनः महात्मा ब्रह्मा के अग्नि में हवन किये गये शुक्र से उत्पन्न हुए हैं॥५-६॥

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च। स्कन्नं शुक्रं महाराज ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥७॥
तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात्। ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः॥८॥

अङ्गारेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः॥९॥

राजन्! प्राचीन काल में एक बार देवताओं की माताओं तथा देवांगनाओं को देखकर परमेष्ठी ब्रह्मा का वीर्य क्षरण हुआ था, उसे ब्रह्मा ने अग्नि में हवन कर दिया था, जिससे सर्वप्रथम महातेजस्वी तपोनिधि भृगुऋषि की उत्पत्ति हुई थी। अंगारों में अंगिरा ऋषि हुए थे, अग्नि की लपटों से अत्रि तथा किरणों से महातपस्वी मरीचि उत्पन्न हुए थे॥७-९॥

केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः।
केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततो जातो महातपाः॥१०॥

वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः। भृगुः पुलोम्नस्तु सुतां दिव्यां भार्यामविन्दत॥११॥

तस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादश याज्ञिकाः।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा॥१२॥
क्रतुर्वसुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह।
प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽथ द्वादशस्तथा॥१३॥

केशों से कशिप वर्ण के महातपस्वी पुलस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए थे। लटकते हुए लम्बे केशों से महातपस्वी पुलह ऋषि पैदा हुए थे। अग्नि के वसु (सार भाग) से तपानिधि वसिष्ठ जी उत्पन्न हुए थे। महर्षि भृगु ने पुलोमा ऋषि की सुन्दरी कन्या को स्त्री रूप में ग्रहण किया था। उसमें भृगु के बारह यज्ञ करने वाले देव स्वरूप पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे थे भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु, मूर्द्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय तथा दक्ष। ये बारहों पुत्र भृगु के नाम से पुकारे जाते हैं।।१०-१३।।

इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः। पौलोम्यां जनयन्विप्रा देवानां तु कनीयसः।।१४।।
च्यवनं तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च। आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः।।१५।।
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम्। तत्र गोत्रकरान्वक्ष्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः।।१६।।

तदनन्तर भृगु ने पौलोमीं में देवताओं से कुछ अवच श्रेणी से ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था। उनके नाम महाभाग्यशाली च्यवन तथा आप्नुवान है। आप्नुवान के पुत्र और्व, तथा और्व के पुत्र जमदग्नि हुए। इन भृगु के समस्त पुत्रों से उत्पन्न होने वाले महाभाग्यशाली ऋषियों के गोत्रकर्ता और्व ही कहे जाते हैं। अति तेजस्वी भृगु के गोत्रकर्ता उन ऋषियों का वर्णन कर रहा हूँ।।१४-१६।।

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः।।१७।।
वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः। शौनकायनजीवन्तिरावेदः कार्षणिस्तथा।।१८।।

भृगु, च्वयन, आप्नुवान, आवै, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, आवेद, कार्षणि, वैहीनरि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सावर्णिक।।१७-१८।।

वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्च सः।।१९।।
विष्णुः पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः। मृगमार्गेयमार्कण्डजविनो नीतिनस्तथा।।२०।।
मण्डमाण्डव्यमाण्डूकफेनपाः स्तनितस्तथा। स्थलपिण्डः शिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैव च।।२१।।
जालधिःसौधिकःक्षुभ्यःकुत्सोऽन्यो मौद्गलायनः।
माङ्कायनो देवपतिः पाण्डुरोचिः सगालवः।।२२।।

विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्तभागिन, मृग, मार्गेय, मार्कण्डेय, जविन, नीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माडूण्क, फेनप, स्तनित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कराक्षि, जालधि, सौधकि, क्षुभ्य, कुत्स, मौद्गलायन, माङ्कायन, देवपति, पाण्डुरोचि, गालव।।१९-२२।।

सांकृत्यश्चातकिः सार्पिर्यज्ञपिण्डायनस्तथा।
गार्ग्यायणो गायनश्च ऋषिर्गार्हायणस्तथा।।२३।।
गोष्ठायनो बाह्यायनो वैशम्पायन एव च। वैकर्णिनिः शार्ङ्गरवो याज्ञेयिर्भ्राष्ट्रकायणिः।।२४।।

लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ।
आलुकिः सौचकिः कौत्सस्तथाऽन्यः पैङ्गलायनिः॥२५॥
सात्यायनिर्माल्यायनिः कौटिलिः कौचहस्तिकः।
सौहःसोक्तिः सकौवाक्षिःकौसिश्चान्द्रमसिस्तथा॥२६॥

सांकृत्य, चातकि, सार्पि, यज्ञपिण्डायन, गार्ग्यायण, गायन, गार्हायण, गोष्ठायन, विह्वायन, वैशम्पायन, वैकर्णिना, शार्ङ्गरव, याज्ञेयि, भार्ष्ट्रकायणि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैंगलायनि, सात्यायनि, माल्यायनि, कौटलि, कौचहस्तिक, सौह, सोक्ति, कौसि, चान्द्रमसि।।२३-२६।।

नैकजिह्वो जिह्वकश्च व्याधाज्यो लौहवैरिणः।
शारद्वतिकनेतिष्यौ लोलाक्षिश्चलकुण्डलः॥२७॥
वाङ्गायनिश्चानुमतिः पूर्णिमागतिकोऽसकृत्।
सामान्येन यथा तेषां पञ्चैते प्रवरा मताः॥२८॥

नैकजिह्व, जिह्वक, व्याधाज्य, लौहवैरिण, शारद्वतिक, नेतिष्य, लोलाक्षि, चलकुण्डल, वांगायनि, आनुमति, पूर्णिमागतिक तथा असकृत्। साधारणः इन ऋषियों के ये पाँच प्रवर कहे गये हैं-भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व तथा जमदग्नि।।२७-२८।।

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च। और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मताः॥२९॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान्भृगूद्वहान्। जमदग्निर्बिदश्चैव पौलस्त्यो बैजभृत्तथा॥३०॥
ऋषिश्चोभयजातश्च कायनिः शाकटायनः।
और्वेया मारुताश्चैव सर्वेषां प्रवराः शुभाः॥३१॥
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥३२॥

अब इसके बाद अन्यान्य भृगु वंश में उत्पन्न होने वाले का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! जमदग्नि, बिद, पौलस्त्य, बैजभृत, उभयजात, कायनि, शाकटायन, और्वेय तथा मारुत। इनके तीन निम्नलिखित शुभ प्रवर कहे जाते हैं, भृगु, च्यवन तथा आप्नुवान। इस ऋषियों के वंशों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है।।२९-३२।।

भृगुदासो मार्गैपथो ग्राम्यायणिकटायनी।
आपस्तम्बिस्तथा बिल्विर्नैकशिः कपिरेव च॥३३॥
आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेव च।
आश्वायनिस्तथा रूपिःपञ्चाऽऽर्षेयाः प्रकीर्तिताः॥३४॥
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च।
आर्ष्टिषेणस्तथा रूपिः प्रवराः पञ्च कीर्तिताः॥३५॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। यस्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथा दमः॥३६॥

जैवन्त्यायनिर्मौञ्जिश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा।
भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः॥३७॥
बालपिः श्रमदागेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च।
गार्गीयिस्त्वथ जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो ह्यृषिः॥३८॥

रामोदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः। भृगुश्च वीतिहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ॥३९॥

भृगुदास, मार्गपथ, ग्राम्यायणि, कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि, आर्ष्टिषेण, गार्दभि, कार्दमायनि, आश्वायनि तथा रूपि। इनके प्रवर निम्न पाँच ऋषियों के कहे गये हैं-भृगु, च्यवन, आप्नुवान्, आर्ष्टिषेण तथा रूपि। इन पाँचों प्रवर वालों में परस्पर विवाह निषिद्ध है। यस्क, वीतिहव्य, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदागेपि, सौर, तिथि, गार्गीय जाबालि, षोष्ण्यायन तथा रामौद। इन वंश वालों के ये निम्न ऋषि प्रवर कहे गये हैं-भृगु, वीतिहव्य, रैवस तथा वैवस॥३३-३९॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। शालायनिः शोकटाक्षो मैत्रेयः खाण्डवस्तथा॥४०॥
द्रौणायनो रौक्मायणिरापिशिश्चापिकायनिः। हंसजिह्वस्तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः॥४१॥

भृगुश्चैवाथ वद्ध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥४२॥
एकायनो यज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च।
प्रत्यहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः॥४३॥

तथा गृत्समदो राजन्सनकश्च महानृषिः। प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः॥४४।
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्तितौ। परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥४५॥

एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृपगोत्रकाराः।
एषां तु नाम्नां परिकीर्तनेन पापं समग्रं विजहाति जन्तुः॥४६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भृगुवंशप्रवरकीर्तनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०६३८॥

इनमें परस्पर विवाह नहीं होते। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रौणायन, रौक्मायणि, आपिशि, आपिकायनि तथा हंसजिह्व। इनके निम्न ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं- भृगु, वद्ध्र्यश्व तथा दिवोदास। इसमें परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। हे राजन्! एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यह, सौरि, चौक्षि, कार्दमायनि, गृत्समद तथा महान् ऋषिसनक-इन वंश वालों के प्रवर निम्न दो

ऋषियों के हैं। भृगु तथा गृत्समद-इस दोनों ऋषियों के वंश वालों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। हे राजन्! यही भृगु वंश में उत्पन्न महानुभाव ऋषियों के गोत्रकारों का वर्णन है, जिसे मैं तुम्हें सुना चुका। इनके नामों के कीर्तन से प्राणी अपने किये हुए समग्र पापों से छूट जाता है।।४०-४६।।

।।एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९५।।

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

आङ्गिरसवंश कीर्तन

मत्स्य उवाच

मरीचितनया राजन्सुरूपा नाम विश्रुता। भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः।।१।।
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदः प्राणस्तथैव च। हविष्मांश्च गविष्ठश्च ऋतः सत्यश्च ते दश।।२।।
एते चाऽऽङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिनः। सुरूपा जनयामास ऋषीन्सर्वेश्वरानिमान्।।३।।

मत्स्य भगवान् ने कहा-राजन्! मरीचि ऋषि की सुरूपा नामक कन्या अंगिरा ऋषि की स्त्री थी, जिसके दस पुत्र देवता माने गये हैं। आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋत तथा सत्य। ये दस अंगिरा के पुत्र सोमरस पान करने वाले देवता कहे गये हैं। इन सर्वेश्वर ऋषियों को सुरूपा ने उत्पन्न किया था।।१-३।।

बृहस्पतिं गौतमं च संवर्तमृषिमुत्तमम्। उतथ्यं वामदेवं च अजस्यमृषिजं तथा।।४।।
इत्येते ऋषयः सर्वे गोत्रकाराः प्रकीर्तिताः। तेषां गोत्रसमुत्पन्नान्गोत्रकारान्निबोध मे।।५।।
उतथ्यो गौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा।
सार्धनेमिः सलौगाक्षिः क्षीरः कौष्टिकिरेव च।।६।।
राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैरातिः सामलोमकिः। पौषाजितिर्भार्गवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा।।७।।
कारोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ। वाहिनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः।।८।।
सोमोऽत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवास्तथा।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च।।९।।
क्षणविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च। आर्षेयाःप्रवराश्चैव तेषां च प्रवराञ्छृणु।।१०।।

बृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य, ऋषिज-ये सभी ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं, इनके गोत्रों में उत्पन्न होने वाले गोत्रकारों को मैं बतला रहा हूँ, सुनिये! उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्टिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि,

पौषाजिति, भागवत, चैरीडव, कारोटक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषी, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कासोरु, कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, रेवाग्नि, मूलप, पाण्डू, क्षण, विश्वकर, अरि तथा पारिकारारि-ये सभी ऋषि कहे जाते हैं, इनके प्रवरों को सुनो।।४-१०।।

अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥११॥

आत्रेयायणिसौवेष्ट्यावग्निवेश्यः शिलास्थलिः।
बलिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा॥१२॥
सौटिश्च तृणकर्णिश्च प्रावहिश्चाऽऽश्वलायनिः।
वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च॥१३॥
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः।
कौचकिर्धमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च॥१४॥

सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा। देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकर्णिः सरिद्भुविः॥१५॥
प्रातेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः। मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलाहारस्तथैव च॥१६॥
गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च। नायकिजैत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च॥१७॥
आपस्तजम्बिमौञ्जवृष्टिर्मार्ष्टिपिङ्गलिरेव च। पैलश्चैव महातेजाः शालङ्कायनिरेव च॥१८॥

द्वयाख्येयो मारुतश्चैषां सर्वेषां प्रवरो नृप।
अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः॥१९॥

तृतीयश्च भरद्वाज; प्रवराः परिकीर्तिताः। परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥२०॥

वे थे अंगिरा, सुवचोतथ्य तथा महान् ऋषि उशज। इन ऋषियों के वंशवाले परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं करते। आत्रेयायणि, सौवेष्ठिय, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, चैकेपि, वाराहि, बाष्कलि, सौटि, तृणकर्णि, प्रावहि, आश्वालायनि, वाराहि बर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि, उडुपति, कौचकि, धर्मित, पुष्पान्वेषि, सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवरारि, देवस्थानि, हारिकर्णि, सरिद्भुवि, प्रातेपि, साद्यसुग्रीवि, गोमेदगन्धिक, मत्स्याच्छाद्य, मूलहर, फलाहार, गांगोदधि, कौरुपति, कौरुक्षेत्रि, नायकि, जैत्यद्रोणि, जैह्वलायनि, आपस्तम्बि, मौञ्जवृष्टि, मार्ष्टिपिङ्गलि, पैल, शाङ्कालयनि द्वयाख्येय तथा मारुत। हे नृप! इन ऋषियों के प्रवर प्रथम अंगिरा दूसरे बृहस्पति तथा तीसरे भारद्वाज ऋषि हैं-यही तीन इनके प्रवर कहे हैं, इन गोत्र वालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होते।।११-२०।।

काण्ड्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणः।
भ्राष्ट्रकृद्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः॥२१॥
क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः।
लावकृद्गालविद्गाथी मार्कटिः पौलिकायनिः॥२२॥

स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा।
बलाकिः साहरिश्चैव पञ्चाऽऽर्षेयाः प्रकीर्तिताः॥२३॥
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः। भरद्वाजस्तथा गर्ग सैत्यश्च भगवानृषिः॥२४॥

काण्ड्वायन, कोपचय, वात्स्यतरायण, भ्राष्ट्रकृत्, राष्ट्रपिण्डी, लैन्द्राणि, सायकायनि, क्रोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत, मधुरावह, लावकृद्, गालविद्, गाथी, मार्कटि पौलिकायनि, स्कन्दस, चक्री, गार्ग्य, श्यामायनि, बलाकि तथा साहरि-इनके निम्य पाँच ऋषि प्रवर कहे गये हैं। महातेजस्वी अंगिरा, देवाचार्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग तथा परमतेजस्वी सैत्य ऋषि।।२१-२४।।

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिः शक्तिः पतञ्जलिः॥२५॥
भूयसिर्जलसंधिश्च विन्दुर्मादिः कुसीदकिः।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा॥२६॥
शालिश्च कलशीकण्ठ ऋषिः कारीरयस्तथा।
काट्यो धान्यायनिश्चैव भावास्यायनिरेव च॥२७॥
भरद्वाज़िः सौबुधिश्च लघ्वी देवमतिस्तथा।

इन ऋषियों के वंश वालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, विन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशि, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ठ, कारीरय, काट्य, धान्यायनि, भावस्यायनि, भरद्वाजि, सौबुधि, लघ्वी तथा देवमति।।२५-२७.५।।

त्र्योर्षेयोऽभिमतश्चैषां प्रवरो भूमिपोत्तम॥२८॥
अङ्गिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥२९॥
संस्कृतिश्च त्रिमार्ष्टिश्च मनुः सम्बधिरेव वा।
तण्डिश्चेनातकिश्चैव तैलका दक्ष एव च॥३०॥
नारायणिश्चार्षिणिश्च लौक्षिर्गार्ग्यहरिस्तथा। गालवश्च अनेहश्च सर्वेषां प्रवरो मतः॥३१॥
अङ्गिराः संस्कृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥३२॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ! इन ऋषियों के तीन प्रवर बतलाये गये हैं, अंगिरा, दमवाह्य तथा उरुक्षय-इनके गोत्र वालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। संकृति, त्रिमार्ष्टि, मनु, संबधि, तण्डि, एनातकि, तैलकदक्ष, नारायणि, आर्षिणि, लौक्षि, गार्ग्य, हरि, गालव तथा अनेह। इन सब के प्रवर अंगिरा, संकृति तथा गौरवीति माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता।।२८-३२।।

कात्यायनो हरितकः कौत्सः पिङ्गस्तथैव च।
हण्डिदासो वात्स्यायनिर्माद्रिमौलिः कुबेरणिः॥३३॥
भीमवेगः शाश्वदर्भिः सर्वे त्रिप्रवराः स्मृताः।
अङ्गिरा बृहदश्वश्च जीवनाश्वस्तथैव च॥३४॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिप्रवरा मताः॥३५॥
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च। परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥३६॥
कुत्सगोत्रोद्भवाश्चैव तथा त्रिप्रवरा मताः। अङ्गिराश्च सदन्युश्च पुरुकुत्सस्तथैव च॥
कुत्साः कुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः॥३७॥
रथीतराणां प्रवरास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः। अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतरः॥
रथीतरा ह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः॥३८॥

कात्यायन, हरितक कौत्स, पिङ्गं, हण्डिदास, वात्स्यायनि, माद्रि, मौलि, कुबेरणि, भीमवेग तथा शाश्वदर्भि, इन सभी के तीन प्रवर कहे गये जाते हैं-अंगिरा, बृहदश्व तथा जीवनाश्व, इन ऋषियों के वंश वालों में परस्पर विवाह नहीं होता। बृहदुक्थ तथा वामदेव ये भी तीन प्रवर वाले हैं, इनके प्रवर-अंगिरा, बृहदुक्थ तथा वामदेव हैं, इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। कुत्सगोत्र में उत्पन्न होने वालों के तीन प्रवर हैं-अंगिरा, सदन्यु तथा पुरुकुत्स, प्राचीन लोग बतलाये गये हैं कि कुत्सगोत्र वालों से कुत्स गोत्र वालों का विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता। रथीतर के वंश में उत्पन्न होने वाले के भी तीन प्रवर है-अंगिरा, विरूप, तथा रथीतर, ये लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते।।३३-३८।।

विष्णुसिद्धिः शिवमतिर्जतृणः कत्तृणस्तथा। पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायणः॥३९॥
त्र्यार्षेयोऽभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप। अङ्गिराश्च विरूपश्च वृषपर्वस्तथैव च॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥४०॥

विष्णुसिद्धि, शिवमति, जतृण, कतृण, महातेजस्वी पुत्रव तथा वैरपरायण। हे राजन्! ये सभी तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं, अंगिरा विरूप तथा वृषपर्व। इन ऋषियों के वंश में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता।।३९-४०।।

सात्यगुग्रिर्महातेजा हिरण्यस्तम्बिमुद्गलौ। त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप॥४१॥
अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपाः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥४२॥
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडपः।
अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ता विमौद्गलाः॥४३॥
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपाः॥४४॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।

महातेजस्वी सात्यगुग्रि, हिरण्यस्तम्बि तथा मुद्गल ये सभी तीन इन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं। अंगिरा, मत्स्यदग्ध तथा महातपस्वी मुद्गल। इन ऋषियों के गोत्रों में उत्पन्न होने वाले परस्पर विवाह नहीं कर सकते। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यस्त तथा विमौद्गल। ये सभी तीन प्रवर वाले कहे गये हैं, अंगिरा, ताण्डि तथा महातपस्वी मौद्गल्य इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होता।।४१-४४.५।।

अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीयः शाकटायनः। ततः प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरणः शिवः॥४५॥
कटुर्मर्कटपश्चैव तथा नाडायनो ह्यृषिः। श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेयाः प्रवराः शुभाः॥४६॥
अङ्गिराश्चाजमीढश्च कट्यश्चैव महातपाः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥४७॥
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषिः। त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः॥४८॥
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कपिभूश्च महानृषिः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥४९॥

अपाण्डु, गुरु, शाकटायन-प्रागाथमा नारी? मार्कण्ड, मरण, शिव, कटु, मर्कटप, नाडायन तथा श्यामायन- ये सभी तीन ऋषियों के प्रवर वाले हैं। अंगिरा, अजमीढ तथा महातपस्वी कट्य- इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। तित्तिरि, कपिभू, महाऋषि, गार्ग्य-इन सब के अंगिरा, त्तित्तिरि तथा कपिभू नामक तीन प्रवर कहे गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है।।४५-४९।।

अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान्मानवस्तथा। ऋषिर्मैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः॥५०॥
अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः। ऋषिर्मित्रवरश्चैव ऋषिवान्मानवस्तथा॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥५१॥
भारद्वाजो हुतः शौङ्गः शैशिरेयस्तथैव च। इत्येते कथिताः सर्वे ह्यामुष्यायणगोत्रजाः॥५२॥
पञ्चाऽऽर्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः।
अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः॥५३॥
मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥५४॥
एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥५५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽङ्गिरोवंशकीर्तनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०६९३।।

ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवृन्द, मानव तथा मैत्रवर इनके अंगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, ऋषि मित्रवर, ऋषिवान् तथा मानव नामक पाँच प्रवर हैं, इनमें विवाह कर्म निषिद्ध है। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग तथा शैशिरेय-ये सभी द्व्यामुष्यायण गोत्र में उत्पन्न कहे जाते हैं। इन सबके अंगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्गल्य तथा शैशिर नामक पाँच ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। इन अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न होने वाले महानुभाव ऋषियों के गोत्र-प्रवर्तकों का वर्णन मैं तुमसे कर चुका, जिनके नाम का उच्चारण करने से पुरुष अपने सभी पाप कर्मों से छुटकारा पाता है।।५०-५५।।

।।एक सौ छियानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९६।।

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अत्रिवंश वर्णन

मत्स्य उवाच

अत्रिवंशसमुत्पन्नान्गोत्रकारान्निबोध मे। कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये॥१॥
उद्दालकिः शौणकर्णिरथौ शौक्रतवश्च ये। गौरग्रीवा गौरजितस्तथा चैत्रायणाश्च ये॥२॥
अर्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः। कर्णजिह्वो हरप्रीतिर्लैद्राणिः शाकलायनिः॥३॥
तैलपश्च सवैलेयो अत्रिर्गोणीपतिस्तथा। जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः॥४॥
छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः। श्यावाश्वश्च तथाऽत्रिश्च आर्चनानश एव च॥५॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। दाक्षिर्बलिः पर्णविश्च ऊर्णनाभिः शिलार्दनिः॥६॥
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः। भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः॥७॥
अत्रिर्गविष्ठरश्चैव तथा पूर्वातिथिः स्मृतः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥८॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–अब महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न हुए गोत्रकर्ता ऋषियों का वर्णन मुझसे सुनो। शारायण, उद्दालकि, शौणकर्णिरथ, शौक्रतव, गौरग्रीवा, गौरजित, चैत्रायण, अर्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, तकिबिन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, लैद्राणि, शाकलायनि, तैल, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति, जलद, भगपाद, महातपस्वी सौपुष्पि तथा छन्दोगेय ये कमर्दगायन शाखा से उत्पन्न हुए ऋषि हैं, इनके प्रवर श्यावाश्य, अत्रि तथा अर्चनानश- ये तीन ऋषि कहे गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। दाक्षि, बलि, पर्णवि, उर्णनाभि, शिलार्दनि, बीजवापी, शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर तथा भलन्दन; इन ऋषियों के अत्रि गविष्ठिर तथा पूर्वातिथि- ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध हैं।।१-८।।

आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ध्वं निबोध मे। कालेयाश्च सबालेया वामरथ्यास्तथैव च॥९॥
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैव महानृषिः॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥१०॥
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवोक्ता महानुभावा नृप गोत्रकाराः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽत्रिवंशानुकीर्तनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०७०४।।

इसके पश्चात् अत्रिवंशोद्भव ऋषियों की कन्याओं से उत्पन्न होने वाले ऋषियों का विवरण मुझसे सुनो कालेय, बालेय, वामरथ्य, धात्रेय तथा मैत्रेय, इनके अत्रि, वामरथ्य तथा पौत्रि- ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इन ऋषियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध माना गया है। हे राजन्! इन अत्रि वंश में उत्पन्न होने वाले गोत्रकार महानुभाव ऋषियों का नाम मैं तुम्हें सुना चुका, जिनके पवित्र नाम संकीर्तनमात्र से मनुष्य अपने सभी पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है।।९-११।।

।।एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९७।।

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वामित्र की वंश परम्परा का वर्णन

मत्स्य उवाच

अत्रेरेवापरं वंशं तव वक्ष्यामि पार्थिव। अत्रेः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवो नृप।।१।।
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान्। तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु।।२।।

मत्स्य भगवान् ने कहा–हे राजन्! अब इसके उपरान्त उन्हीं अत्रि ऋषि के अन्य वंशधरों का वर्णन मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। उन महर्षि अत्रि के पुत्र श्रीमान् सोम हुए, जिनके वंश में उत्पन्न होने वाले विश्वामित्र जी हुए, जिन्होंने अपने तप के माहात्म्य से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की थी, उन्हीं के वंश का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो।।१-२।।

विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः। वतण्डश्च शलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः।।३।।
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः।बाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्या अथ संश्रुताः।।४।।
उलूपा औपहावाश्च पयोदजनपादपाः। खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः।।५।।
त्र्यार्षेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्तिताः। विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः।।६।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।

विश्वामित्र, देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवल्क्य, जाबाल, वभ्रव्य, करीष, संश्रुत्य, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरवाच, हलमय, साधित तथा वास्तुकौशिक। इस सब ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने वाले के विश्वामित्र, देवरात तथा महायशस्वी उद्दाल ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्धि है।।३-६.५।।

देवश्रवाः सुजातेयाः सौमुकाः कारुकायणाः।।७।।
तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप। त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः।।८।।

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥९॥

हे नराधिप! देवश्रुव, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण, वैदेहरात तथा कुशिक इन सभी ऋषियों के वंशों में देवश्रवा, देवरात, तथा विश्वामित्र-ये तीन प्रवर माने जाते हैं। इन ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने वालों में परस्पर विवाह नहीं होता।।७-९।।

(धनञ्जयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव।
पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः॥१०॥
विश्वामित्रस्तथाऽऽद्यश्च माधुच्छन्दस एव च।
त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्तिताः॥११॥

विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः)॥१२॥

राजन्! धनंजय, कपर्देय, परिकूट तथा पाणिनि-इन वंशों में सबके विश्वामित्र, धनंजय तथा माधुच्छन्दस ये तीन प्रवर माने गये हैं, विश्वामित्र, मधुच्छन्द तथा अघमर्षण इन तीन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होते।।१०-१२।।

कामलायनिजश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च। वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः॥१३॥
विश्वामित्रश्चाश्वरथो वञ्जुलिश्च महातपाः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥१४॥

विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा।
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौ प्रवरौ स्मृतौ॥१५॥

परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम्। लोहिता अष्टकाश्चैषां त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥१६॥

कामलायनिज, अश्मरथ्य तथा वञ्जुलि इनके वंशधर ऋषियों के विश्वामित्र, अश्मरथ तथा महातपस्वी वञ्जुलि-ये तीन प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध माने गये हैं। विश्वामित्र, लोहित, अष्टक तथा पूरण- इनके विश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। लोहित और अष्टक वंशधरों के तीन ऋषियों के प्रवर माने गये हैं, विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक। इनमें अष्टक वंश वालों का लोहित वंश वालों के साथ परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है।।१३-१६।।

विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः।
अष्टका लौहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम्॥१७॥

उदरेणुः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा। आर्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः स्मृतः॥१८॥
ऋणवान्गातिनश्चैव विश्वामित्रस्तथैव च। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥१९॥
उदुम्बरः सैषिरिटिर्ऋषिस्त्राक्षायणिस्तथा। शाठ्यायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी॥
मौञ्जायनिश्च भगवांत्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥२०॥

खिलिखिलिस्तथा विद्यो विश्वामित्रस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥२१॥
एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र महानुभावाः सततं द्विजेन्द्राः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने विश्वामित्रवंशानुवर्णनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०७२६॥

उदरेणु, कुथक, ओदावहि-इन सब के ऋणवान्, गतिन तथा विश्वामित्र ये तीन प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह नहीं होता। उदुम्बर, सैषिरिटि, त्राक्षायणि, शाठ्यायनि, करीराशी, शांकलायनि, लावकि तथा मौञ्जायति- इन ऋषियों के वंशधरों खिलिखिलि, विद्य तथा विश्वामित्र- ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। हे नरेन्द्र! इन कुशिक नाम से प्रसिद्ध महानुभाव ऋषिगणों के नामों को मैं तुससे बता चुका। जिनके पवित्र नाम के कीर्तन से मनुष्य अपने समग्र पापकर्मों को छोड़ देता है।।१७-२२।।

।।एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त।।१९८।।

❖❖❖

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कश्यप वंश वर्णन

मत्स्य उवाच

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले। गोत्रकारानृषीन्वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु॥१॥
आश्रायणिर्ऋषिगणो मेषकीरिटकायनाः। उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणाः॥२॥
शालाहलेयाः कौरिष्टाः कन्यकाश्चाऽऽसुरायणाः।
मन्दाकिन्यां वै मृगयाः श्रोतना भौतपायनाः॥३॥
देवयाना गोमयाना ह्यधश्छायाभयाश्च ये। कात्यायनाः शक्रयणा बर्हियोगगदायनाः॥४॥
भवनन्दिर्महाचक्रिर्दाक्षपायण एव च। योधयानाः कार्तिवयो हस्तिदानास्तथैव च॥५॥
वात्स्यायना निकृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा। प्रागायणाः पैलमौलिराश्ववातायनस्तथा॥६॥
कौबेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणाश्च ये। मेषयाः कैकरसपास्तथा चैव तु बभ्रवः॥७॥
प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च। श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैवोद्बलायनाः॥८॥

काष्ठाहारिणमारीचा आजिहायनहास्तिकाः। वैकर्णेयाः काश्यपेयाः सासिसाहारितायनाः॥९॥
मातङ्गिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः। वत्सरः कश्यपश्चैव निध्रुवश्च महातपाः॥१०॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।

मत्स्य भगवान् ने कहा–हे राजन्! महर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप हुए, अब उन्हीं कश्यप के कुल में उत्पन्न होने वाले गोत्रकार ऋषियों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। आश्रायणि ऋषिगण, मेषकीरिटाकायन, उदग्रज, माठर, भोज, विनयलक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में उत्पन्न, मृगय, श्रोतन, भौतपायन, देवयान, गोमयान, अधश्छाय, अभय, कात्यायन, शक्रयण, बर्हियोग, गदायन, भवनन्दि, महाचक्रि, दाक्षपायण, योधयान, कार्तिवय, हस्तिदान, वात्स्यायन, निकृतज, अश्वलायनिन्, प्रागायण, पैलमौलि, आश्ववातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैकरसप, बभ्रव, प्राचेय, ज्ञानसंज्ञेय, आग्न, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासिस, हारितायन, मातंगिन् तथा भृगु–इन वंशों में उत्पन्न होने वाले ऋषिगण तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं। उन तीनों के नाम ये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी निध्रुव। इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह निषिद्ध है।।१–१०.५।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान्॥११॥
अनसूयो नाकुरयः स्नातपो राजवर्तपः। शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्री रौपसेवकिः॥१२॥
यामुनिः काद्रुपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्तथैव च।
दिवावष्टाश्च इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः॥१३॥
त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। वत्सरः कश्यपश्चैव वसिष्ठश्च महातपाः॥१४॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।

इसके उपरान्त द्व्यामुष्यायण के गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषियों के नामों को बतला रहा हूँ। अनसूय, नाकुरय, स्नातप, राजवर्तप, शैशिर, उदवहि, सैरन्ध्री, रौपसेवकि, यामुनि, काद्रुपिंगाक्षि, जातम्बि तथा दिवावष्ट इनको भक्तिपूर्वक कश्यप के गोत्र में उत्पन्न जानना चाहिये। इन सभी ऋषियों के वंशधरों के निम्नलिखित तीन ऋषि प्रवर कहे गये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी वसिष्ठ। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है।।११–१४.५।।

संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः॥१५॥
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीमुखः। हिरण्यबाहुकैरातावुभौ कश्यपगोभिलौ॥१६॥
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः। निदाघमसृणौ भत्स्यां महान्तः केरलाश्च ये॥१७॥
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा वै देवजातयः। पैप्पलादिः सप्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः॥१८॥
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥१९॥

ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलं प्रसूतम्।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमुत्तरं तु॥२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने कश्यपवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०७४६॥

संयति, दोनों नभ नामक ऋषि, पिप्पल्य, जलंधर, भुजातपूर, पूर्य, कर्दम, गर्दभीमुख, हिरण्यबाहु, कैरात, काश्यप, गोभिल, कुलय, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, महान् केरल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति तथा पैप्पलादि। इन सभी ऋषियों के तीन आर्ष प्रवर कहे गये हैं, असित, देवल तथा महातपस्वी कश्यप-इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। हे मनुसिंह राजन्! दाक्षायणी के संयोग से ऋषियों में प्रमुख कश्यप द्वारा इस समग्र जगत् की उत्पत्ति हुई है, अतः उनके वंश का यह विवरण अति पुण्यदायक है। अब इसके अनन्तर मैं किस पवित्र कथा को तुसमे कहूँ?॥१५-२०॥

॥एक सौ निन्याबेवाँ अध्याय समाप्त॥१९९॥

❖❖❖

अथ द्विशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ वंश वर्णन

मत्स्य उवाच

वसिष्ठवंशजान्विप्रान्निबोध वदतो मम। एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः॥१॥

वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः।
व्याघ्रपादा औपगवा वैक्लवाः शाद्वलायनाः॥२॥
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्च शठाः कठाः।
गौपायना बोधपाश्च दाकव्या ह्यथवाह्यकाः॥३॥
बालिशयाः पालिशयास्ततो वाग्ग्रन्थयश्च ये।
आपस्थूणाः शीतवृत्तास्तथा ब्राह्मपुरेयकाः॥४॥
लोमायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिगौंडिनिस्तथा।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च॥५॥

चौलिर्वौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च। पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेया महर्षयः॥६॥

वसिष्ठ एषां प्रवरो ह्यवैवाह्याः परस्परम्।

मत्स्य भगवान् ने कहा–हे राजन्! इसके बाद अब तुम वसिष्ठ के गोत्र में उत्पन्न हुए ऋषियों के नाम मुझसे सुनो। वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषियों का प्रवर एक मात्र वसिष्ठ ही हैं। इन वसिष्ठ के वंशजों का विवाह वसिष्ठ गोत्रजों में निषिद्ध है। व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गोपायन, बोधप, दाकव्य, बाह्यक, बालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थि, आपस्थूण, शतीवृत्त, ब्राह्मपुरेयक' लोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौडव यथा याज्ञवल्क्य–ये सभी महर्षि एक ऋषि प्रवर वाले हैं, इन सबों के प्रवर एकमात्र वसिष्ठ जी हैं। इनके वंशधर परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं स्थापित करते।।१–६.५।।

शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा।।७।।
कपिञ्जला वालखिल्या भागवित्तायनाश्च ये। कौलायनः कालशिखः कोरकृष्णाः सुरायणाः।।८।।
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्च ये। शाकायना उहाकाश्च अथ माषशरावयाः।।९।।
दाकायना बालवयो वाकयो गोरथास्तथा। लम्बायनाः श्यामवयो ये च क्रोडोदरायणाः।।१०।।
प्रलम्बायनाश्च ऋषयः औपमन्यव एव च।
सांख्यायनाश्च ऋषयस्तथा व वेदशेरकाः।।११।।
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः। मातेया ब्रह्ममलिनः पन्नगारिस्तथैव च।।१२।।
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा। भगीवसुर्वसिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेव च।।१३।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।

शैलालय, महाकर्ण, कौरव्य, क्रोधिन, कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधिय, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण प्रलम्बायन, औपमन्यव, संख्यायन, वेदशेरक, पौलंकायन, उद्गाह, बलेक्षु, मातेय, ब्रह्ममलिन, तथा पन्नगारि– इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे जाते हैं। भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमदि। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है।।७–१३.५।।

औपस्थलास्वस्थलयो बालो हालो हलाश्च ये।।१४।।
माध्यंदिनो माक्षतयः पैप्पलादिर्विचक्षुषः। त्रैशृङ्गायणसैबल्काः कुण्डिनश्च नरोत्तम।।१५।।
त्र्योर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः।।१६।।
दानकाया महावीर्या नागेयाः परमास्तथा।
आलम्बा वायनाश्चापि ये चक्रोडादयो नराः।।१७।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।

हे नरोत्तम! औपस्थल, अस्वस्थलय, बाल, हाल, हल, माध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्पलादि, विचक्षुष, त्रैश्रृंगायण, सैबल्क तथा कुण्डिन-इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे गये हैं, वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डिन। दानकाय, महावीर्य, नागेय, परम आलम्ब, वायन तथा चक्रोडादि-इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है।।१४-१७.५।।

शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च॥१८॥
त्र्योर्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा। जातूकर्ण्यो वसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥१९॥
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने वसिष्ठगोत्रानुवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः।।२००।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०७६६।।

शिवकर्ण, वय तथा पादप-इन सभी के तीन प्रवर कहे गये हैं। जातूकर्ण्य, वशिष्ठ तथा अत्रि। इसमें परस्पर विवाह नहीं होते। हे राजन्! महर्षि वसिष्ठ के गोत्र में उत्पन्न होने वाले श्रेष्ठ ऋषियों के नामों को मैं आप से बता चुका, जिनके परमपवित्र नामों के संकीर्तन मात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा जा जाता है।।१८-२०।।

।।दो सौवाँ अध्याय समाप्त।।२००।।

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पराशरवंश वर्णन

मत्स्य उवाच

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः पूर्वपुरोहितः। बभूवुः पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञास्तस्य समन्ततः॥१॥
श्रान्तात्मा पार्थिवश्रेष्ठ विशश्राम तदा गुरुः। तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वर्चनमब्रवीत्॥२॥
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मां याजय मा चिरम्। तमुवाच महातेजा वसिष्ठः पार्थिवोत्तमम्॥३॥
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः।
श्रान्तोऽस्मि राजन्विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप॥४॥

मत्स्य भगवान् ने कहा-हे राजाओं में श्रेष्ठ! प्राचीन काल में वसिष्ठमुनि राजा निमि के

पुरोहित थे, राजा निमि यज्ञों का बहुत अनुष्ठान किया करते थे। एक बार मुनि यज्ञ कराते-कराते थक कर विश्राम कर रहे थे कि उनके पास राजाओं में श्रेष्ठ निमि ने पहुँच कर निवेदन किया- 'हे भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः शीघ्र ही उसे पूरा कराइये'। राजा की यह बातें सुन महातेजस्वी वसिष्ठ जी ने राजा से कहा- हे राजन्! कुछ समय तक अभी प्रतीक्षा कीजिए, आपके निरन्तर चलने वाले बड़े-बड़े यज्ञों से मैं बहुत परेशान हो गया हूँ कुछ दिन तक सुस्ता कर फिर तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा।।१-४।।

एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तमः। पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत्।।५।।
न च मे सौहृदं ब्रह्मन्कृतान्तेन बलीयसा। धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम्।।६।।
धर्मपथ्योदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते।

वसिष्ठ की ऐसी बाते सुन राजा ने कहा कि-'हे मुनि जी! पारलौकिक कार्य में भला कौन ऐसा मनुष्य है, जो प्रतीक्षा कर सकता है? ब्रह्मन्! महापराक्रमी काल से मेरी कोई मित्रता नहीं है कि मेरे लिए वह रुका रहेगा, धर्म के कार्य में मनुष्य को शीघ्रता करनी चाहिये; क्योंकि यह जीवन अति चंचल है। धर्मरूप ओदन का पथ्य करने वाला मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होकर भी सुख प्राप्त करता है।।५-६.५।।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम्।।७।।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं चास्य न वा कृतम्। क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम्।।८।।
वृकीवोरामासाद्य मृत्युरादाय गच्छति। न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते।।९।।

मनुष्य को सर्वदा कल का काम आज और तीसरे पहर किया जाने वाला काम सबेरे के पहर में करना चाहिये; क्योंकि मृत्यु किसी की इसलिए प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपने अभीष्ट कार्यों को समाप्त कर लिया है या नहीं। खेत, दूकान और घर में आसक्त रहने वाले अथवा कहीं अन्यत्र मन को लगाने वाले प्राणी को मृत्यु इस प्रकार पकड़ कर ले भागती है, जैसे विगवा की स्त्री भेड़ को पकड़ कर भागती है। इस संसार में काल का न तो कोई मित्र न कोई शत्रु।।७-९।।

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम्। प्राणवायोश्चलत्वं च त्वया विदितमेव च।।१०।।
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन्क्षणमात्रं तदद्भुतम्। शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने।।११।।
अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि सङ्कटे। सोऽहं सम्भृतसम्भारो भवन्मूलमुपागतः।।१२।।
न चेद्याजयसे मां त्वमन्यं यास्यामि याजकम्।
एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः।।१३।।

आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर बलात् मनुष्य को हर लेती है, प्राणवायु की चंचलता तो तुम जानते ही हो। हे ब्रह्मन्! इस जगत् में, ऐसी स्थिति में जितना कुछ जीवन है, वही आश्चर्यमय है, इस नश्वर शरीर को विद्याध्ययन तथा धन के अर्जन में कभी विनाशशील नहीं मानना चाहिये;

किन्तु धर्मकार्य में तो इसे नश्वर ही मानना चाहिये। इस संकट पूर्ण परिस्थिति में मेरे ऊपर अभी ऋण शेष है, इसी विचार से मैं आपकी सेवा में आया हुआ हूँ। यदि आप इस समय मेरा यज्ञ नहीं करा रहे हैं तो मैं दूसरे ऋषि के पास जा रहा हूँ। उस समय राजा निमि ने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से इस प्रकार की बातें कहीं।।१०-१३।।

शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम्।।१४।।
धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि। निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे।।१५।।
विघ्नं करोषि नान्येन याजनं च तथेच्छसि।
शापं ददामि तस्मात्त्वं विदेहोऽथ भविष्यसि।।१६।।

तब वसिष्ठ जी ने राजा निमि को शाप दे दिया कि 'तू' विदेह (शरीर-रहित) हो जा' इसलिये कि मुझे छोड़कर धर्म की मर्यादा जानते हुए तथा राजा होकर भी अन्य पुरोहित के पास यज्ञ कराने के लिए जाना चाहते हो।' वसिष्ठ के उक्त पाप को सुनकर राजा निमि ने कहा कि- 'हे मुने! आपने धर्म कार्य करते हुए मुझको विघ्न पहुँचाया है और दूसरे से भी मुझे यज्ञ कराने की अनुमति नहीं दे रहे हो, अतः तुम्हें मैं शाप दे रहा हूँ कि तुम भी विदेह हो जाओ।।१४-१६।।

एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ। देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः।।१७।।
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मा वचनमब्रवीत्। अद्यप्रभृति ते स्थानं निमे जीव ददाम्यहम्।।१८।।
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां मनुष्याणां भविष्यसि।
त्वत्सम्बन्धात्तथा तेषां निमेषः सम्भविष्यति।।१९।।

इस प्रकार की बातें कहने के उपरान्त वे राजा तथा ब्रह्मर्षि-दोनों विदेह हो गये और शरीर से हीन होकर उनके जीव ब्रह्मा के पास जा पहुँचे। उन दोनों को आया देख ब्रह्मा ने निमि से कहा कि- हे 'निमि के जीव! आज से तुम्हें मैं अलग स्थान दे रहा हूँ। तू सभी मनुष्यों के नेत्रों की पलकों पर रहा करो, तुम्हारे संयोग से उनकी पलकें भंजने लगेंगी।।१७-१९।।

चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः। एवमुक्तो मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः।।२०।।
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात्स्वयम्भुवः। वसिष्ठजीवं भगवान्ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।।२१।।
मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ त्वं भविष्यसि। वसिष्ठेति च ते नाम तत्रापि च भविष्यति।।२२।।
जन्मद्वयमतीतं च तत्रापि स्मरिष्यसि। एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा।।२३।।
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम्।

और वे सब आज से नेत्रों के पंखों को चलाते रहा करेंगे' ऐसा कहने पर सभी मनुष्यों के नेत्रों के पलकों पर स्वयम्भू ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से निमि के जीव ने अपना स्थान बनाकर प्रस्थान किया, तब वसिष्ठ के जीव से भगवान् ब्रह्मा ने कहा। हे वसिष्ठ! तुम मित्रावरण के पुत्र होंगे,

वहाँ भी तुम्हारा नाम वसिष्ठ रहेगा, बीते हुए जन्मों का वृत्तान्त तुम्हें स्मरण होगा।' ठीक इसी अवसर पर मित्र और वरुण- ये दोनों देवता बदरी आश्रम के समीप घोर तपश्चर्या में निरत थे।।२०-२३.५।।

तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ॥२४॥
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे दयितमारुते। उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम्॥२५॥
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथं गता। तां दृष्ट्वेन्दुमुखीं सुभ्रूं नीलनीरजलोचनाम्॥२६॥

इस प्रकार उग्र तपस्या में उन दोनों के लीन रहने पर कभी वसन्त का समय आया, सभी वृक्ष तथा लताएँ पुष्पों से लद गयीं, सुखकारी वायु बहने लगी और वहाँ उर्वशी नामक परमसुन्दरी अप्सरा पुष्पों को चुनती हुई पहुँच गयी, उस समय वह अति सूक्ष्म लाल रंग का सुन्दर वस्त्र पहिने हुए थी, धीरे-धीरे वह फूल चुनते हुए उन दोनों तपस्वियों के सामने आ गई। चन्द्रमुखी, नीलकमल के समान मनोहर नेत्रों वाली सुन्दर भौंहों वाली उर्वशी को देखकर दोनों तपस्वी उसके अनुपम रूप-सौन्दर्य से विमोहित होकर परमक्षुब्ध हो गये और मृगचर्म के आसन पर तपस्या में निरत उन दोनों का वीर्य स्खलित हो गया।।२४-२६।।

उभौ चुक्षुभतुर्देवौ तद्रूपपरिमोहितौ। तपस्यतोस्तयोर्वीर्यमस्खलच्च मृगासने॥२७॥
स्कन्नं रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीता वराप्सरा। चकार कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे॥२८॥
तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसाऽप्रतिमौ भुवि।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोः सुतौ॥२९॥
वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भगिनीं नारदस्य तु। अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत्॥३०॥

शाप के भय से डरी हुई उर्वशी ने उन महानुभाव ऋषियों के मृगासन पर स्खलित हुए वीर्य को देख जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य को उठाकर रख लिया। उसी घट से अनुपम तेजस्वी वसिष्ठ तथा अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए, जो मित्र और वरुण के पुत्र कहे जाते हैं। वसिष्ठ ने नारद की बहिन परमसुन्दरी अरुन्धती के साथ विवाह किया, जिसके संयोग से उन्हें शक्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शक्ति के पराशर नामक पुत्र हुए। उन पराशर ऋषि के वंश का वर्णन अब मुझसे सुनो।।२७-३०।।

शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निबोध मे। यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत॥३१॥
प्रकाशो जनितो येन लोके भारतचन्द्रमाः। येनाज्ञानतमोन्धस्य लोकस्योन्मीलनं कृतम्॥
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम्॥३२॥

उन्हीं पराशर ऋषि के स्वयं विष्णु भगवान् द्वैपायन (व्यास) रूप धारण कर पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस लोक में महाभारत रूपी चन्द्रमा का शुभ्र निर्मल प्रकाश उत्पन्न किया। जिस प्रकाश ने अज्ञानान्धकार में निमग्न लोक की आँखों को खोल दिया। उन्हीं पराशर ऋषि के पवित्र वंश का वर्णन सुनो।।३१-३२।।

काण्डशयो वाहनपो जैह्यपो भौमतापनः। गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः॥३३॥

प्रपोहया वाह्यमयाः ख्यातेयाः कौतुजातयः।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः॥३४॥

कार्ष्णायनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः॥३५॥

श्राविष्ठायनबालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये।
इषीकहस्तश्चैते वै पञ्च श्वेताः पराशराः॥३६॥

वाटिको बादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः।
क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः॥३७॥

खल्यायना वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः॥३८॥

पराशराणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः। पराशरश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः॥

परस्परमवैवाह्या सर्व एते पराशराः॥३९॥

उक्तास्तवैते नृप वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्रभावाः।
येषां तु नाम्नां परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने पराशरवंशवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०८०६॥

काण्डशय, वाहनप, जैह्याप, भीमतापन ये चार तथा पाँचवें गोपालि ये पाँच गौर पराशर कहे जाते हैं। प्रपोहय, वाह्यमय, ख्यातेय, कौतुजातय ये चार तथा पाँचवें हर्यश्वि-इन पाँचों को नील पराशर जानना चाहिये। कार्ष्णायन, कपिमुख, काकेयस्थ, जपातय- ये चार तथा पाँचवें पुष्कर इनको कृष्ण पराशर जानना चाहिये। श्राविष्ठायन बालेय, स्वायष्ट उपय- ये चार तथा पाँचवें इषीकह- इनको श्वेत पराशर जानना चाहिये। वाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन-ये चार तथा पाँचवें क्षैमि-ये पाँच श्याम पराशर हैं, खल्यायन, वार्ष्णायन, तैलेय, यूथप- ये चार तथा पाँचवें तन्ति-ये पाँच धूम्र पराशर कहे गये हैं। इन सभी पराशरों के तीन ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं, पराशर, शक्ति तथा महातपस्वी वसिष्ठ। इन ऋषियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। हे राजन्! तुमको मैं सूर्य के समान प्रभाव शाली गोत्रकर्ता पराशर वंशवाले इन ऋषियों के नामों को बता चुका, जिनके पवित्र नामों के संकीर्तन से मनुष्य समग्र पापों से मुक्त हो जाता है।।३३-४०।।

।।दौ सौ एक अध्याय समाप्त।।२०१।।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अगस्त्यवंश वर्णन

मत्स्य उवाच

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान्द्विजान्।
अगस्त्यश्च करम्भश्च कौशल्याः शकटास्तथा॥१॥
सुमेधसो मयोभुवस्तथा गान्धारकायणाः। पौलस्त्या पौलहाश्चैव क्रतुवंशभवास्तथा॥२॥
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः॥३॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। पौर्णमासाः पारणाश्च त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥४॥
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः। परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणैः॥५॥
एवमुक्त ऋषीणां तु वंश उत्तमपौरुषः। अतः परं प्रवक्ष्यामि किं भवानद्य कथ्यताम्॥६॥

मत्स्य भगवान् ने कहा- हे राजन्! इसके उपरान्त मैं अगस्त्य के वंश में उत्पन्न होने वाले ब्राह्मणों का वर्णन कर रहा हूँ। अगस्त्य, करम्भ, कौशल्य, शकट, सुमेधस, मयोभुव, गान्धारकायण, पौलस्त्य, पौलह तथा क्रतु के वंश में उत्पन्न होने वाले- इस सभी ऋषियों के तीन प्रवर ऋषि गये हैं-अगस्त्य, महेन्द्र तथा मयोभुव। इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। पौर्णमास तथा पारण इन दोनों ऋषियों के तीन प्रवर हैं, अगस्त्य, पौर्णमास तथा महातपस्वी पारण। जिनमें परस्पर पौर्णमास लोग पौर्णमास वालों से विवाह के अयोग्य हैं। इस प्रकार प्रशंसनीय पराक्रमशाली ऋषियों के उत्तम वंश का वर्णन मैं कर चुका, अब इसके बाद आप बतलाईये कि मैं क्या कहूँ?॥१-६॥

मनुरुवाच

पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैव महात्मनः। अगस्त्यस्य तथा चैव कथं वंशस्तदुच्यताम्॥७॥

मनु ने कहा-पुलह, पुलस्त्य तथा महात्मा क्रतु के वंशधरों का सम्बन्ध अगस्त्य ऋषि के वंश से किस प्रकार हुआ? इसे बतलाइये॥७॥

मत्स्य उवाच

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे। इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः॥८॥
अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञमागस्त्याः क्रतवस्ततः। पुलहस्य तथा पुत्रस्त्रश्च पृथिवीपते॥९॥
तेषां तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि।
पुलहस्तु प्रजां दृष्ट्वा नातिप्रीतमनाः स्वकाम्॥१०॥

अगस्त्यजं दृढास्यं तु पुत्रत्वे वृतवांस्ततः।
पौलहाश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः॥११॥
पुलस्त्यान्वयसम्भूतान्दृष्ट्वा रक्षः समुद्भवान्।
अगस्त्यस्य सुतं धीमान्पुत्रत्वे वृतवांस्ततः॥१२॥
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः।
सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः॥१३॥
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभावा नृप वंशकाराः।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०८२०॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–वैवस्वत मन्वन्तर में यह बात प्रसिद्ध थी कि महर्षि क्रतु को कोई सन्तति नहीं थी, अतएव उन्होंने अगस्त्य के धर्मिष्ठ पुत्र इध्मवाह को पुत्र रूप में स्वीकार नहीं किया था, इसीलिये अगस्त्य के वंशज भी क्रतु के वंशज कहलाये। हे पृथ्वीपते! महर्षि पुलह के तीन पुत्र थे जिनका वर्णन मैं आगे विस्तार पूर्वक करूँगा; किन्तु इन तीनों पुत्रों के होने पर भी महर्षि पुलह सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने भी अगस्त्य के पुत्र ऋषि दृढ़ास्य को पुत्र रूप में स्वीकार किया था। हे राजन्! इसीलिए पुलह के वंशज अगस्त्य के वंशज कहलाये। महर्षि पुलस्त्य के अपने वंशधरों को राक्षसकर्म में निरत होता देख अगस्त्य के पुत्र को पुत्र रूप में वरण किया। इसीलिए हे राजन्! पुलस्त्य के वंशज भी अगस्त्य के वंशज कहलाये। ये सभी सगोत्र होने के कारण आपस में विवाह के अयोग्य हैं। हे राजन्! इस प्रकार मैं इन महानुभाव गोत्रकर्ता ऋषियों के प्रवरों का वर्णन तुमसे कर चुका जिनके नामों के कीर्तन से मनुष्य अपने किये गये समस्त पापकर्मों से छुटकारा पा जाता है॥८-१४॥

॥दो सौ दोवाँ अध्याय समाप्त॥२०२॥

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्मवंश वर्णन

मत्रय उवाच

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव। दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम्॥१॥

पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप। अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे॥२॥
अष्टौ च वसवः पुत्राः सोमपाश्च विभोस्तथा।
धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानलानिलौ॥३॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।

मत्स्य भगवान् ने कहा- हे राजन्! अब मैं दक्ष की कन्याओं में धर्मराज के संयोग से उत्पन्न होने वाले इस वैवस्वत मन्वन्तर के उत्तम देववंशों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! हे नराधिप! इस वैवस्वत मन्वन्तर में धर्मराज के संयोग से अरुन्धती के पर्वतादि तथा महादुर्ग के समान विशाल शरीर वाले सोमपायी आठ वसुगण उत्पन्न हुए थे। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष तथा प्रभास ये उन आठ वसुओं के नाम कहे गये हैं। १-३.५॥

धरस्य पुत्र द्रविणः कालः पुत्रो ध्रुवस्य तु॥४॥
कालस्यावयवानां तु शरीराणि नराधिप। मूर्तिमन्ति च कालाद्धि सम्प्रसूतान्यशेषतः॥५॥
सोमस्य भगवान्वर्चाः श्रीमांश्चाऽऽपस्य कीर्त्यते।
अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्य तु॥६॥
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः। विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्धकिः॥७॥
समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव।
लम्बापुत्रः स्मृतो घोषो भानोः पुत्राश्च भानवः॥८॥

धर के पुत्र का नाम द्रविण तथा ध्रुवपुत्र का नाम काल हुआ। हे नराधिप! उसी काल से मूर्तिमान् काल के समस्त अवयवों (वर्ष-मास आदि) की उत्पत्ति हुईं। सोम के प्रभावशाली वर्चा नामक पुत्र हुए, आपके पुत्र का श्रीमान् नाम कहा जाता है। अनल के पुत्र का नाम अनेक जन्मजनन है, अनिल का पुत्र पुरोजव तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल हुआ। प्रभास का पुत्र देवताओं का बढ़ई विश्वकर्मा हुआ। नागवीथी आदि नव सन्तानें इच्छाओं को पूर्ण करने वाली थीं। लम्बा के पुत्र का नाम घोष था तथा भानु के पुत्र भानुगण (बारह आदित्य) हुए॥४-८॥

ग्रहर्क्षाणां च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम्। मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः सर्वे पुत्राः प्रकीर्तिताः॥९॥
सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पस्तथा पुत्रः प्रकीर्तितः।
मुहूर्ताश्च मुहूर्तायाः साध्याः साध्यासुताः स्मृताः॥१०॥
मनोर्मनुश्च प्राणश्च नरोषा नोच वीर्यवान्।
चित्तहार्योऽयनश्चैव हंसो नारायणस्तथा॥११॥
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः।
विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वे देवाः प्रकीर्तिताः॥१२॥

क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो मुनिस्तथा। कुरजो मनुजो वीजो रोचमानश्च ते दश॥१३॥
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः सङ्क्षेपतः पार्थिववंशमुख्य।
व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति राजन्विना वर्षशतैरनेकैः॥१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धर्मवंशवर्णने धर्मप्रवरानुकीर्तनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०८३४॥

सभी ग्रह तथा नक्षत्र एवं अन्य अमित प्रभावशाली ज्योतिःपुञ्ज मरुत्वान् गणों की उत्पत्ति मरुत्वती से कही जाती है। संकल्पा के संकल्प, मुहूर्ता के मुहूर्त एवं साध्या के साध्यगण पुत्र कहे जाते हैं। मनु से, मनु, (मंत्र) प्राण, नरोष, नोच, वीर्यवान् चित्तहार्य, अयन, हंस, नारायण, विभु और प्रभु- ये बारह साध्य कहे जाते हैं। विश्वा के पुत्र विश्वेदेव के नाम से प्रख्यात हुए। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, मुनि, कुरज, मनुज, बीज तथा रोचमान- ये दस उनके नाम हैं। राजकुल में श्रेष्ठ! यह धर्मराज के वंश का वर्णन संक्षेप में मैं तुम्हें सुना चुका। राजन्! इनका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेक सैकड़ों वर्षों के बिना व्यास भी नहीं कर सकते अर्थात् व्यास भी अनेक सौ वर्षों में विस्तारपूर्वक इनका वर्णन नहीं कर सकते हैं॥९-१४॥

॥दो सौ तीन अध्याय समाप्त॥२०३॥

❖❖❖

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्ध अभिलाषी पितरों की इच्छाओं का वर्णन

मत्स्य उवाच

एतद्वंशभवा विप्राः श्राद्धे भोज्याः प्रयत्नतः। पितृणां वल्लभं यस्मादेषु श्राद्धं नरेश्वर॥१॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितृभिर्याः प्रकीर्तिताः। गाथाः पार्थिवशार्दूल कामवद्भिःपुरे स्वके॥२॥

मत्स्य ने कहा—नरेश्वर! इन उपर्युक्त ऋषिवंश में उत्पन्न ब्राह्मणों से श्राद्धकर्म में प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये; क्योंकि इन्हें भोजन कराने से पितरों को प्रसन्नता होती है। हे राजसिंह! इसके उपरान्त मैं अपने पुर में अवस्थित श्राद्ध के अभिलाषी पितरों से कही हुई पवित्र कथा को तुमसे कह रहा हूँ॥१-२॥

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम्।
नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः॥३॥

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यः श्राद्धं नित्यमाचरेत्।
पयोमूलफलैर्भक्ष्यैस्तिलतोयेन वा पुनः॥४॥
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां वर्षासु च मघासु च॥५॥
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं खड्गमांसेन यः सकृत्।
श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन कालशाकेन वा पुनः॥६॥

पितर लोग कहते हैं कि "क्या हमारे वंश में ऐसा कोई भाग्यशाली जन्म लेगा, लोगों को जलांजलि-विशेषतया अगाध एवं शीतल जलवाली नदी की जलाजंलि-देगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई भाग्यशाली जन्म लेगा जो नित्य श्राद्धकर्म-दुग्ध, मूल, फल, अन्य खाद्य सामग्री, अथवा तिलमिश्रित जल से ही करेगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई पुण्यशील पैदा होगा हो जो वर्षा-ऋतु के मघा नक्षत्र की त्रयोदशी तिथि को मधु एवं घृत से मिश्रित दुग्ध में पका हुआ खाद्य पदार्थ हमें देगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई पुण्यवान् उत्पन्न होगा जो एक बार तलवार से काटे गये मांस से अथवा कालशाक ही से प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करेगा?।।३-६।।

कालशाकं महाशाकं मधु मुन्यन्नमेव च। विषाणवर्जा ये खड्गा आसूर्यं तदशीमहि॥७॥
गयायां दर्शने राहोः खड्गमांसेन योगिनाम्।
भोजयेत्कः कुलेऽस्माकं छायायां कुञ्जरस्य च॥८॥
आकल्पकालिकी तृप्तिस्तेनास्माकं भविष्यति।
दाता सर्वेषु लोकेषु कामचारो भविष्यति॥९॥
आभूतसंप्लवं कालं नात्र कार्या विचारणा।

कालशाक, महाशाक, मधु एवं अन्य मुनिजनोचित अन्न तथा सींग से रहित तलवार द्वारा काटा गया मांस-इन सब पदार्थों का हम लोग जब तक सूर्य उदित रहते हैं, तब तक भोजन करते हैं। गया तीर्थ में राहु के दिखाई पड़ने के अवसर (सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के अवसर) पर एवं गजच्छाया योग में गैंडे के मांस से योगियों को हमारे कुल में कौन खिलायेगा? इन पदार्थों द्वारा हम लोगों की कल्पपर्यन्त की तृप्ति होगी और देने वाला सभी लोकों में महाप्रलय पर्यन्त अपनी इच्छा के अनुकूल विचरण करने वाला होगा, इसमें सन्देह नहीं।।७-९.५।।

यदेतत्पञ्चकं तस्मादेकेनापि वयं सदा॥१०॥
तृप्तिं प्राप्स्याम चानन्तां किं पुनः सर्वसम्पदा।
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं दद्यात्कृष्णाजिनं च यः॥११॥
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं कश्चित्पुरुषसत्तमः।
प्रसूयमानां यो धेनुं दद्याद्ब्राह्मणपुङ्गवे॥१२॥

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं वृषभं यः समुत्सृजेत्।
सर्ववर्णविशेषेण शुक्लं नीलं वृषं तथा॥१३॥

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यः कुर्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः। सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च॥१४॥

इन पाँच प्रकार के विधानों में एक विधान के करने से भी हम लोग सर्वदा अनन्त तृप्ति का लाभ करते हैं, तो फिर सभी के करने की तो बात ही क्या है?" पितर आगे कहते हैं कि "क्या हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न होगा जो कृष्णमृगचर्म का दान देगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई भाग्यशाली नररत्न उत्पन्न होगा, जो ब्यायी हुई गाय को श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिए दान देगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई होगा जो वृषभ-विशेषकर सभी वर्णों में श्वेत तथा नील वर्ण- का उत्सर्ग (छोड़ना) करेगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई सत्पुरुष उत्पन्न होगा जो श्रद्धापूर्वक सुवर्ण पृथ्वी तथा गौ का दान करेगा?॥१०-१४॥

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं कश्चित्पुरुषसत्तमः। कूपारामतडागानां वापीनां यश्च कारकः॥१५॥

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं सर्वभावेन यो हरिम्। प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम्॥१६॥

अपि नः स कुले भूयात्कश्चिद्विद्वान्विचक्षणः।
धर्मशास्त्राणि यो दद्याद्विधिना विदुषामपि॥१७॥

एतावदुक्तं तव भूमिपाल श्राद्धस्य कल्पं मुनिसम्प्रदिष्टम्।
पापापहं पुण्यविवर्धनं च लोकेषु मुख्यत्वकरं तथैव॥१८॥

इत्येतां पितृगाथां तु श्राद्धकाले तु यः पितॄन्। श्रावयेत्तस्य पितरो लभन्ते दत्तमक्षयम्॥१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृगाथाकीर्तनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०८५३॥

क्या हमारे कुल में ऐसा कोई नररत्न उत्पन्न होगा, जो कूप, बगीचा, सरोवर एवं बावलियों का निर्माण करायेगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न होगा जो सभी भावों से मधु दैत्य के उन्मूलन करने वाले देवाधिदेव भगवान् विष्णु की शरण में जायेगा? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई विद्वान् विचारक पुरुष उत्पन्न होगा, जो विधि पूर्वक विद्वानों को भी धर्मशास्त्रो की व्यवस्था दे सकेगा?" हे पृथ्वीपति! मुनि द्वारा कही गयी श्राद्धकर्म की इतनी विधि, जो पापों का नाश तथा पुण्य की वृद्धि करने वाली एवं लोकों में प्रमुखता प्रदान करने वाली है, मैं तुम्हें बता चुका। इस पवित्र पितरों की गाथा को श्राद्धकाल में पितरों को सुनाता है, उसके पितर दिये गये पदार्थों को अक्षय रूप में प्राप्त करते हैं॥१५-१९॥

॥दो सौ चार अध्याय समाप्त॥२०४॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धेनु-दान माहात्म्य

मनुरुवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुङ्गवे। विधिना केन धर्मज्ञ दानं दद्याच्च किं फलम्॥१॥

मनु ने कहा–धर्म के तत्वों को जानने वाले! श्रेष्ठ ब्राह्मण को ब्याही हुई गाय के दान देने की चर्चा जो आपने की है, उसका विधान क्या है? अर्थात् किस विधि से इसका दान किया जाता है? तथा उसका फल क्या है?।।१।।

मत्स्य उवाच

स्वर्णशृङ्गो रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम्। कांस्योपदोहनां राजन्सवत्सां द्विजपुङ्गवे॥२॥
प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत्। यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति॥३॥
तावद्वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना। प्रसूयमानां यो दद्याद्धेनुं द्रविणसंयुताम्॥४॥
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना। चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः॥५॥

मत्स्य ने कहा–राजन्! उत्तम कुलोत्पन्न ब्राह्मण को सुवर्ण जटित सींगों वाली, चाँदी से मढ़े हुए खुरों वाली, मोतियों से सुशोभित पूँछ वाली सवत्सा गौ को काँसे के बने हुए दोहनपात्र से युक्त कर दान देना चाहिये। इस विधि से ब्यायी हुई गाय को दान कर लोग महत्पुण्य प्राप्त करते हैं। जब तक बछड़ा योनि के अन्दर रहता है, जब तक गाय गर्भ का प्रजनन नहीं कर देती। तब तक उसे पर्वत एवं जंगल समेत पृथ्वी जाननी चाहिये। जो कोई ब्यायी हुई गाय को द्रव्य समेत दान देता है, वह मानों सभी समुद्र, गुफा, पर्वत एवं जंगलों समेत चतुर्दिशा युक्त पृथ्वी का दान कर चुका, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।।२-५।।

यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप। तावत्सङ्ख्यं युगगणं देवलोके महीयते॥६॥
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्। उद्धरिष्यत्यसन्देहं नरकाद्भूरिदक्षिणः॥७॥
घृतक्षीरवहाः कुल्या दधिपायसकर्दमाः। यत्र तत्र गतिस्तस्य द्रुमोश्चेप्सितकामदाः॥
गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव॥८॥
स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यरूपाः।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्या भजन्त्यजस्त्रं नलिनाभनेत्राः॥९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धेनुदानं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०८६२।।

हे नराधिप! उस बछड़े के तथा गौ के शरीर में जितने रोयें रहते हैं, उतने ही युगों पर्यन्त दाता देवलोक में पूजित होता है। प्रचुर दक्षिणा को प्रदान करने वाला मनुष्य निश्चय ही अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह को इस संसार-सागर से उबार लेता है।, वह भूरि दक्षिणा प्रदान करने वाला मनुष्य गोलोक में, जहाँ घृत तथा क्षीर से युक्त नदियाँ बहा करती हैं, दही पायस (दुग्ध मिश्रित खाद्य) के कीचड़ रहते हैं, मनोवाञ्छित को प्रदान करने वाले वृक्ष रहते हैं-सुविधापूर्वक विहार करता है। हे राजन्! उसके लिए ब्रह्मलोक भी सुलभ है। उस दान देने वाले पुरुष की वहाँ पर चन्द्रमा के समान मनोहारी, मुख वाली, तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्ण वाली, दीर्घ नितम्बिनी, पतली कमर वाली, कमल के समान नेत्रों वाली सुन्दरियाँ निरन्तर सेवा करती हैं।।६-९।।

।।दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त।।२०५।।

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

कृष्ण मृगचर्म की दान विधि एवं माहात्म्य

मनुरुवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालौ ममानघ।
ब्राह्मणं च तथाऽऽचक्ष्व तत्र मे संशयो महान्।।१।।

मनु ने कहा- निष्पाप! कृष्ण मृगचर्म के प्रदान करने की विधि, समय तथा कैसे ब्राह्मण को दान देना चाहिये? इसका विधान मुझसे बतलाईये; क्योंकि इस विषय में मुझे अभी बड़ा सन्देह है।।१।।

मत्स्य उवाच

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणे शशिसूर्ययोः।
पौर्णमासी तु या माघी ह्याषाढी कार्तिकी तथा।।२।।
उत्तरायणे च द्वादश्यां तस्यां दत्तं महाफलम्। आहिताग्निर्द्विजो यस्तु तद्देयं तस्य पार्थिव।।३।।
यथा तेन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु।

मत्स्य ने कहा-राजन्! वैशाख मास की पूर्णिमा, चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण के अवसर, माघ मास की पूर्णिमा, आषाढ़ तथा कार्तिक की पूर्णिमा, सूर्य के उत्तरायण में आने पर द्वादशी तिथि-इन तिथियों में कृष्ण मृगचर्म दान का महाफल कहा गया है। जो ब्राह्मण नित्य अग्न्याधान करने वाला हो उसे ही इसका दान करना चाहिये। जिस प्रकार जिस विधान से दान देना चाहिये, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो।।२-३.५।।

गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप॥४॥
आदावेव समास्तीर्य शोभनं वस्त्रमाविकम्। ततः सशृङ्गं सखुरमास्तरेत्कृष्णमार्गकम्॥५॥
कर्तव्यं रुक्मशृङ्गं तद्रौप्यदन्तं तथैव च। लाङ्गूलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च॥६॥
तिलैः सुपूरितं कृत्वा वाससाऽऽच्छादयेद्बुधः। सुवर्णनाभं तत्कुर्यादलं कुर्याद्विशेषतः॥७॥
रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत्।
कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद्यथाक्रमम्॥८॥

हे नराधिप! पवित्र देश में गोबर से लिपी हुई पृथ्वी पर सर्वप्रथम भेड़ के वस्त्र (अर्थात् कम्बल) को बिछा दे, फिर खुर तथा सींगों समेत कृष्ण मृग के चर्म को बिछा दे। उस मृग चर्म की सींगों को सुवर्ण से, दाँतों को चाँदी से, पूँछ को मोतियों से अलंकृत कर तिल से छुपा दे। बुद्धिमान् पुरुष तिलों से उस मृगचर्म को पूरित कर वस्त्र से ढँक दे, उसकी नाभि को सुवर्णमय बनाकर अपनी शक्ति के अनुकूल रत्नों तथा सुगन्धियों से विशेषतया अलंकृत कर दे। फिर क्रमानुसार चार कांसे से बने हुए पात्रों को दे॥४-८॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम्। घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दद्याद्यथाविधि॥९॥
चम्पकस्य तथा शाखामव्रणं कुम्भमेव च।
बाह्योपस्थानकं कृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत्॥१०॥
सूक्ष्मवस्त्रं शुभं पीतं मार्जनार्थं प्रयोजयेत्। तथा धातुमयं पात्रं पादयोस्तस्य दापयेत्॥११॥
यानि कानि च पापानि मया लोभात्कृतानि वै।
लोहपात्रादिदानेन प्रणश्यन्तु ममाऽऽशु वै॥१२॥

फिर पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः चार मिट्टी के पात्रों में घृत, दुग्ध, दही तथा मधु रखकर विधिवत् दान करे, तदुपरान्त चम्पक की एक शाखा तथा बिना फूटा हुआ एक घट बाहर में पूर्व की ओर मंगल भावना से युक्त होकर स्थापित करे। फिर स्नान के लिए सूक्ष्म (महीन) पीला वस्त्र दे तथा एक लोहे का बना हुआ पात्र उसके दोनों चरणों के पास रखे और यह कहे कि 'जिन किन्हीं भी पापों को मैंने लोभ में पड़कर किया है, वे लौहमय पात्रादि के दान करने से शीघ्र ही नष्ट हो जायँ॥९-१२॥

तिलपूर्णं ततः कृत्वा वामपादे निवेशयेत्।
यानि कानि च पापानि कर्मोत्थानि कृतानि च॥१३॥
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा। मधुपूर्णं तु तत्कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत्॥१४॥
परापवादपैशून्याद्वृथा मांसस्य भक्षणात्। तत्रोत्थितं च मे पापं ताम्रपात्रात्प्रणश्यतु॥१५॥

फिर काँसे के पात्र को तिलों से भरकर बायें पैर के पास रखे और यह कहे कि कर्म के प्रसंग में मैंने जिन किन्हीं पापों को किया है, वे सर्वदा मेरे इस काँसे के बने हुए पात्रों के दान से नष्ट

हो जायें। फिर ताम्र के पात्र में मधु भरकर दाहिने पैर के पास रखे और कहे कि 'दूसरे की निन्दा या चुगली करके अथवा बिना किसी विधि के मांस का भक्षण करके मैंने जो पाप किया है, वह सब मेरे इस ताम्र पात्र के दान करने से नष्ट हो जायँ।।१३-१५।।

कन्यानृताद्‌गवां चैव परदाराभिमर्षणात्। रौप्यपात्रप्रदानाद्धि क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे।।१६।।
ऊर्ध्वपादे त्विमे कार्यं ताम्रस्य रजतस्य च। जन्मान्तरसहस्त्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना।।१७।।
सुवर्णपात्रदानात्तु नाशयाऽऽशु जनार्दन। हेममुक्ता विद्रुमं च दाडिमं बीजपूरकम्।।१८।।
प्रशस्तपात्रे श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च। एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च।।१९।।

कन्या अथवा गौ के लिये मिथ्या कहने में तथा परकीया स्त्री के साथ स्पर्शादि करने में जो मैंने पाप किये हों, वे इस चाँदी के पात्रदान से शीघ्र ही नष्ट हो जायँ।' चाँदी तथा ताँबे के बने हुए इन दोनों पात्रों को ऊपर के पैर के पास रखना चाहिये। जनार्दन! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धि द्वारा सहस्त्रों जन्मों में जो पाप कर्म किये हैं, उन सबको इस सुवर्ण पात्र के दान से शीघ्र ही नष्ट कर दीजिये।' यह मंत्र सुवर्ण पात्र को दान करने समय कहे। सुवर्ण, मोती, मूँगा, अनार, बिजौरा नींबू-इन सब को उस मृगचर्म के प्रशस्त कान पर तथा खुर पर सिंगारा (एक जलीय फल) का दान करे। इस प्रकार के विधान में सभी प्रकार के पाक तथा फलों को भी रखे।।१६-१९।।

तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः। स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्त्या चाप्यलं कृतः।।२०।।
प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते। तत एवं समीपे तु मन्त्रमेनमुदीरयेत्।।२१।।

इन दानों को लेने वाला ब्राह्मण विद्वान् तथा नित्य अग्न्याधान करने वाला हो, स्नान किये हुये हो, दो सुन्दर वस्त्रों से विभूषित हो तथा अपनी शक्ति के अनुरूप अलंकारों के द्वारा विभूषित किया गया हो। हे राजन्! उस मृगचर्म का दान पुच्छ देश में प्रशस्त है। तत्पश्चात् उसके समीप स्थित हो निम्न प्रकार के मंत्रोच्चारण करे।।२०-२१।।

(कृष्णाजिनेति कृष्णान्हिरण्यं मधुसर्पिषी। ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्।।२२।।
यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सखुरं शृङ्गसंयुतम्।
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्ववस्त्रैरलङ्कृतम्।।२३।।
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु विशिखायां विशेषतः। ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना।।२४।।
सप्तद्वीपान्विता दत्ता पृथिवी नात्र संशयः।
कृष्णकृष्णाङ्गलो देवः कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते।।२५।।
सुवर्णदानात्त्वद्दानाद्धुतपापस्य प्रीयताम्।

'कृष्णाजिन .....' इत्यादि वेद मंत्र का उच्चारण कर कृष्ण चर्म, सुवर्ण, मधु, घृत को जो ब्राह्मण को दान करता है, वह सभी दुष्कर्मों से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य खुर तथा सींगों समेत कृष्ण मृगचर्म को तिलों से आच्छदित कर तथा सभी प्रकार के वस्त्रों से अलंकृत कर वैशाख

मास की पूर्णमासी तिथि को-विशेषकर विशाखा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा को-दान करता है, वह मानो सभी पर्वतों व जंगलों समेत सातों द्वीपों संयुक्त समस्त पृथ्वी का दान करता है। 'हे कृष्णाजिन्! देव कृष्णस्वरूप! तुम्हें हमारा प्रणाम है, इस सुवर्ण के दान से तथा तुम्हारे दान से मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायँ, तुम प्रसन्न हो जाओ।।२२-२५.५।।

त्रयस्त्रिंशत्सुराणां त्वमाधारत्वे व्यवस्थितः।।२६।।

कृष्णोऽसि मूर्तिमान्साक्षात्कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते। सुवर्णनाभिकं दद्यात्प्रीयतां वृषभध्वजः।।२७।।

कृष्णः कृष्णगलो देवः कृष्णाजिनधरस्तथा। तद्दानाद्धूतपापस्य प्रीयतां वृषभध्वजः।।२८।।

अनेन विधिना दत्त्वा यथावत्कृष्णमार्गकम्।
न स्पृश्योऽसौ द्विजो राजंश्चितियूपसमो हि सः।।२९।।
तं दाने श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत्।

तुम तैंतीस देवताओं के आधार रूप में व्यवस्थित हो, तुम साक्षात् मूर्तिमान् कृष्ण हो। हे कृष्णाजिन्! तुम्हें हमारा प्रणाम है, इस सुवर्णयुक्त नाभि के समेत मैं तुझे दान कर रहा हूँ, इससे वृषभध्वज शंकर मुझ पर प्रसन्न हों। कृष्ण, कृष्ण गलेवाले, (नीलकण्ठ) कृष्ण चर्म धारण करने वाले वृषभध्वज शंकर! इस कृष्णाजिन् के दान देने से मुझ नष्ट पाप वाले के ऊपर प्रसन्न हो' इस उपर्युक्त विधि से कृष्ण मृगचर्म का दान देकर हे राजन्! उस प्रतिगृहीत ब्राह्मण का स्पर्श चिता के खूंटों के समान नहीं करना चाहिये, श्राद्धकाल एवं दानकाल में उस ब्राह्मण को दूर ही रखे।।२६-२९.५।।

स्वगृहात्प्रेष्य तं विप्रं मङ्गलस्नानमाचरेत्।।३०।।

पूर्णकुम्भेन राजेन्द्र शाखया चम्पकस्य तु। कृत्वाऽऽचार्यश्च कलशं मन्त्रेणानेन मूर्धनि।।३१।।

आप्यायस्व समुद्रज्येष्ठा ऋचा संस्नाप्य षोडश।
अहते वासती वीत आचान्तः शुचितामियात्।।३२।।

तद्वासः कुम्भहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे। ततो मण्डलमाविशेत्कृत्वा देवान्प्रदक्षिणम्।।३३।।

उस ब्राह्मण को अपने घर से बिदा कर फिर मंगलस्नान करे। हे राजेन्द्र! उस चम्पक की शाखा तथा पूर्ण कुम्भ द्वारा स्नान कर आचार्य बनाकर उक्त विधि से पूजन करे। धिर 'अप्यायस्व .....' तथा 'समुद्र ज्येष्ठा .....' आदि सोलह ऋचाओं से सिर पर अभिषेचन कर उपरान्त दो बिना फटे हुए वस्त्र पहिनकर आचमन करे, तब दाता पवित्र होता है। उस वस्त्र को कलश समेत ले जाकर चौराहे पर छोड़ आवे, तब देवताओं की प्रदक्षिणा कर मण्डल में प्रवेश करे।।३०-३३।।

पीते वृत्ते सपत्नीकं मार्जयेद्याज्यकं द्विजः। मार्जयेन्मुक्तिकामं तु ब्राह्मणेन घटेन वै।।३४।।

श्रीकामं वैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव। राज्यकामं तथा मूर्ध्नि ऐन्द्रेण कलशेन तु।।३५।।

द्रव्यप्रतापकामं तु आग्नेयघटवारिणा। मृत्युञ्जयविधानाय याम्येन कलशेन तु।।३६।।

ब्राह्मण को चाहिये कि वह पीत वस्त्र धारण किये हुये यज्ञ करने वाले को, यदि वह मुक्ति की

कामना करने वाला हो तो ब्रह्मा के कलश से उसका मार्जन करे। हे राजन्! यदि यज्ञकर्ता लक्ष्मी का अभिलाषी है तो वैष्णव कलश द्वारा उसका मार्जन करे, राज्य की कामना करने वाला है तो उसके सिर पर इन्द्र के कलश द्वारा मार्जन करे, द्रव्य और प्रताप की इच्छा करने वाला है तो उसका मार्जन अग्नि देवता के घट के जल द्वारा करे। मृत्यु के जीतने के लिए यम के कलश से मार्जन करे।।३४-३६।।

ततस्तु तिलकं कार्यं ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम्।
दत्त्वा तत्कर्मसिद्ध्यर्थं ग्राह्याऽऽशीस्तु विशेषतः।।३७।।
कृतेनानेन या तुष्टिर्न स शक्त्या सुरैरपि। वक्तुं हि नृपतिश्रेष्ठ तथाऽप्युद्देशतः शृणु।।३८।।

मार्जन के उपरान्त यजमान तिलक लगाये फिर ब्राह्मणों को दक्षिणा दे, दक्षिणा-दान के उपरान्त इस समस्त मृगचर्म दान के विधान की सिद्धि के लिए विशेष आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार बताये गये विधान से करने पर जो सिद्धि प्राप्त होती है, उसके वर्णन की सामर्थ्य यद्यपि देवताओं को भी नहीं है। तथापि मैं संक्षेपतः आप से बतला रहा हूँ, सुनिये।।३७-३८।।

समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्।
सर्वाल्लोकांश्च जयति कामचारी विहङ्गवत्।।३९।।
आभूतसंप्लवं तावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्। न पिता पुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह।।
धनदेशपरित्यागं न चैवेहाऽऽप्नुयत्क्वचित्।।४०।।
कृष्णोप्सितं कृष्णमृगस्य चर्म दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं तत्।।४१।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णाजिनप्रदानं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०९०४।।

❖❖❖

इस कृष्णचर्म के दान करने से दाता, निश्चय ही समग्र पृथ्वी के दान करने का फल प्राप्त करता है, सभी लोकों को जीतता है, पक्षी के समान सर्वत्र इच्छानुकूल विचरण करता है तथा निश्चय ही महाप्रयल काल पर्यन्त स्वर्गलोक में स्थित रहता है, कभी पिता तथा पुत्र के मरण का दुःखदायी अवसर नहीं देखता, न कभी स्त्री से वियुक्त होता है और न मर्त्यलोक में जन्म लेने पर कभी धन तथा देश के वियोग का दुःखदायी अवसर ही झेलता है। इस प्रकार जो मनुष्य समाहितचित्त हो कुलीन ब्राह्मण को श्री कृष्ण जी की प्रिय वस्तु इस कृष्ण मृग के चर्म का दान करता है, वह कभी मृत्यु के प्रति शोकग्रस्त नहीं हो सकता, वरन् अपने मनोनुकूल सभी फलों को प्राप्त करता है।।३९-४१।।

।।दो सौ छठवाँ अध्याय समाप्त।।२०६।।

❖❖❖

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

वृषभ लक्षण

मनुरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि वृषभस्य च लक्षणम्। वृषोत्सर्गविधिं चैव तथा पुण्यफलं महत्।।१।।

मनु ने कहा-भगवन्! अब मैं वृषोत्सर्ग की विधि तथा वृषभ के लक्षणों को और वृषोत्सर्ग के करने से जिस महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसे सुनना चाहता हूँ।।१।।

मत्स्य उवाच

धेनुपादौ परीक्षेत सुशीलां च गुणान्विताम्। अव्यङ्गामपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीम्।।२।।
स्निग्धवर्णां स्निग्धखुरां स्निग्धशृङ्गीं तथैव च।
मनोहराकृतिं सौम्यां सुप्रमाणामनुद्धताम्।।३।।
आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्तां दक्षिणतस्तथा। वामावर्तैर्वामतश्च विस्तीर्णजंघनां तथा।।४।।
मृदुसंहतताम्रोष्ठीं रक्तग्रीवासुशोभिताम्। अश्यामदीर्घा स्फुटिता रक्तजिह्वा तथा च या।।५।।
विस्रावामलनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढैः। वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुदसन्निभैः।।६।।
रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः। सप्तचतुर्दशदन्ता तथा वा श्यामतालुका।।७।।
षडुन्नता सुपार्श्वोरुः पृथुपञ्चसमायता। अष्टायतशिरोग्रीवा या राजन्सा सुलक्षणा।।८।।

मत्स्य ने कहा-राजन्! सर्वप्रथम धेनु की परीक्षा करनी चाहिए। सुशीला, गुणवती, सभी अंगों से युक्त, सरल स्वभाव वाली, मोटी-ताजी, जिसके बछड़े जीते हों, रोग रहित, मनोहर रंगों वाली, चिकने खुर वाली, चिकनी सींगों वाली, मनोहारिणी, सुदृश्य, न अधिक छोटी, न अधिक ऊँची, अचंचल, भँवरी वाली, विशेषतः दाहिनी ओर की भँवरी वाली, बायीं ओर बायीं भँवरी से युक्त, विस्तृत जंघों वाली, मुलायम, संहत तथा लाल होठों वाली, लाल कंधे से सुशोभित, काली नहीं प्रत्युत लम्बी स्फुटित लाल जिह्वा एवं अश्रुरहित निर्मल नेत्रों वाली, दृढ़ तथा घने खुरों वाली, वैदूर्य, मधु अथवा जल के बूँद-बूँद के समान रंगों वाली हो, लाल तथा चिकने नेत्र और लाल कनीनिका से युक्त सात अथवा चौदह दाँत तथा श्यामवर्ण की तालु से युक्त हो। छः स्थानों पर उच्च, पाँच स्थानों पर समान तथा विस्तृत तथा आठ स्थानों पर आयत तथा बगल और उरु देश में सुन्दर हो। सिर और कंधे के समान जिस गाय के हों, वह ऐसे कार्यों में शुभ लक्षणों से युक्त मानी गयी है।।२-८।।

मनुरुवाच

षडुन्नताः के भगवन्के च पञ्च समायताः। आयताश्व तथैवाष्टौ धेनूनां के शुभावहाः।।९।।

मनु ने कहा–भगवन्! आप ने जो यह बतलाया कि उस गाय को छः स्थानों को उन्नत, पाँच स्थानों को सम तथा आयत तथा आठ स्थानों को आयत होना चाहिये, सो वे कौन से शुभ लक्षण हैं?॥९॥

मत्स्य उवाच

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षी श्रोणी च वसुधाधिप। षडुन्नतानि धेनूनां पूजयन्ति विचक्षणाः॥१०॥

कर्णौ नेत्रे ललाटं च पञ्च भास्करनन्दन।
समायतानि शस्यन्ते पुच्छं सास्ना च सक्थिनी॥११॥
चत्वारश्च स्तना राजञ्ज्ञेया ह्यष्टौ मनीषिभिः।
शिरो ग्रीवायताश्चैते भूमिपाल दश स्मृताः॥१२॥

मत्स्य ने कहा- हे वसुधाधिप! उरु, पीठ, सिर, दोनों कोख तथा कमर, धेनु के इन छः उन्नत स्थानों की विचक्षण लोग पूजा करते हैं। हे सूर्यपुत्र! दोनों कान, दोनों नेत्र तथा ललाट- ये पाँच स्थान सम तथा आयत प्रशंसित हैं। पूंछ, गले के पास झूलने वाला चमड़ा तथा दोनों सक्थियों और चारों स्तन–ये आठ तथा सिर और कंधा–ये दो, कुल मिलाकर दस स्थान विस्तृत श्रेष्ठ माने गये हैं॥१०-१२॥

तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितम्। उन्नतस्कन्धककुदमृजुलाङ्गूलकम्बलम्॥१३॥
महाकटितटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम्। प्रवालगर्भशृङ्गाग्रं सुदीर्घपृथुवालधिम्॥१४॥

नवाष्टादशसङ्ख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः।
मल्लिकाक्षश्च मोक्तव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः॥१५॥

ऐसे सर्वलक्षण सम्पन्न धेनु के बछड़े को, जो सभी शुभ लक्षणों से संयुक्त हो, जिसका कंधा तथा ककुद् (डिल) ऊँचा हो, पूँछ और गले के नीचे का कम्बल (लटकता हुआ चमड़ा) कोमल हो, कटि तट तथा स्कन्ध विशाल हो, वैदूर्यमणि के समान नेत्रों वाला हो, सींगों के अग्रभाग पर प्रवाल (मूँगे) के भीतर की भाँति हो, पूँछ लम्बी तथा मोटी हो, अग्रभाग पर नव या अट्ठारह नोकीले सुन्दर दाँत हों, मल्लिका के पुष्पों की भाँति आँख हो, ऐसा वृषोत्सर्ग करने से गृह में धन-धान्य एवं सम्पत्ति की वृद्धि होती है॥१३-१५॥

वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते। श्वेतो रक्तश्च कृष्णश्च गौरः पाटल एव च॥१६॥

मद्रिणस्ताम्रपृष्ठश्च शबलः पञ्चवालकैः।
पृथुकर्णो महास्कन्धः श्लक्ष्णरोमा च यो भवेत्॥
रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तशृङ्गतलो भवेत्॥१७॥
श्वेतोदरः कृष्णपार्श्वो ब्राह्मणस्य तु शस्यते।
स्निग्धो रक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते॥१८॥

ब्राह्मण के लिए ताम्र के समान लाल अथवा कपिल वर्ण के वृषभ की प्रशंसा की जाती है। सफेद, लाल, काला, भूरा, पाटल वर्ण का, पीठ पर लाल रंग का, अनेक रंगों का, पाँच प्रकार के बालों वाला, विशाल कान वाला, विशाल स्कन्ध वाला, चिकने रोमों वाला, लाल आँखों वाला, कपिल, लाल सींग व नीचे भाग में लाल रंग वाला, सफेद पेट वाला- ऐसा वृषभ ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ कहा गया है। लाल रंग के चिकने रोम वाला वृषभ क्षत्रिय जाति के लिए प्रशंसित है।।१६-१८।।

काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णेनाप्यन्त्यजन्मनः।
यस्य प्रागायते शृङ्गे भ्रूमुखाभिमुखे सदा।।१९।।
सर्वेषामेव वर्णानां सर्वः सर्वार्थसाधकः। मार्जारपादः कपिलो धन्यः कपिलपिङ्गलः।।२०।।
श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्यो मणिनिभेक्षणः। करटः पिङ्गलश्चैव श्वेतपादस्तथैव च।।२१।।

वैश्य के लिये सुवर्ण के समान वर्णवाला वृषभ प्रशंसित है। शूद्रों के लिए काले बैल का विधान है। जिस वृषभ के सींग आगे की ओर विस्तृत तथा भौंह मुख की ओर झुकी हुई हों, वह सभी वर्णों के लिए सर्वार्थ सिद्ध करने वाला होता है। बिल्ली के समान पैरों वाला कपिल तथा कपिल व पीले रंग का मिश्रित वर्ण वाला वृषभ धन्य होता है। श्वेत रंग का बिल्ली के समान पैरों वाला, मणि के समान आँखों वाला वृषभ धन्य है। जो वृषभ श्वेत व पीले रंग का तथा पैरों में श्वेत रंग का हो वह भी धन्य होता है।।१९-२१।।

सर्वपादसितो यश्च द्विपादश्वेत एव च। कपिञ्जलनिभो धन्यस्तथा तित्तिरिसन्निभः।।२२।।

जो वृषभ सभी पैरों में श्वेतवर्ण का अथवा दो पैरों में श्वेतवर्ण का, रंग में कपिंजल अथवा तीतर के रंग का होता है, वह भी धन्य होता है।।२२।।

आकर्णमूलं श्वेतं तु मुखं यस्य प्रकाशते। नन्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः।।२३।।
श्वेतं तु जठरं यस्य भवेत्पृष्ठं च गोपतेः। वृषभः स समुद्राक्षः सततं कुलवर्धनः।।२४।।
मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुङ्गवः।
कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति भाग्यदः।।२५।।
अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः।
एते धन्यास्तथाऽधन्यान्कीर्तयिष्यामि ते नृप।।२६।।

जिस वृषभ का मुख कान तक श्वेत दिखाई पड़ता है तथा जो विशेषतः लालवर्ण का होता है, वह नन्दीमुख वृषभ कहलाता है। जिस वृषभ का पेट तथा पीठ श्वेतवर्ण का होता है, वह समुद्राक्ष नामक वृषभ सर्वदा परिवार को समृद्धि देने वाला होता है। मल्लिका के पुष्पों के समान चितकबरे रंग वाला बैल धन्य है। कमल के मण्डल के समान विचित्र रंग वाला बैल भी भाग्यदायी होता है। अलसी के फूल समान नीले रंग वाला बैल तो अति शुभदायी कहा गया है। राजन्! उत्तम वृषभों के इन लक्षणों को मैंने आप से बतलाया, अब अशुभ लक्षण सम्पन्न वृक्षभों का वर्णन कर रहा हूँ।।२३-२६।।

कृष्णताल्वोष्ठवदना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये।
अव्यक्तवर्णा ह्रस्वाश्च व्याघ्रसिंहनिभाश्च ये॥२७॥
ध्वाङ्क्षगृध्रसवर्णाश्च तथा मूषकसन्निभाः।
कुण्ठाः काणास्तथा खञ्जाः केकराक्षास्तथैव च॥२८॥
विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा।
नैते वृषाः प्रमोक्तव्या न च धार्यास्तथा गृहे॥२९॥
भोक्तव्यानां च धार्याणां भूयो वक्ष्यामि लक्षणम्।

काली तालु, ओंठ और मुख वाले, रूखे सींगों व खुरोंवाले, जिनके रंग प्रकट न होते हों (धूमिल या मटमैला), छोटा, बाघ तथा सिंह के समान भयानक और खूँखार, कौवे और गृध्र के समान मनहूस रंग वाले, मूषक के समान असुन्दर एवं अल्पकाय, मन्द प्रकृति वाले (कायर), काने, लंगड़े, नीची-ऊँची आँखों वाले, छोटे-बड़े या तीन या एक पैरों में श्वेत रंग वाले, बड़े चंचल नेत्रों वाले ऐसे वृषभों का उत्सर्ग न तो करना चाहिये और न गृहस्थों के कार्यों के लिए अपने घर पालना ही चाहिये। फिर से उत्सर्ग करने योग्य तथा पालने योग्य वृषभों का लक्षण तुमसे बतला रहा हूँ।।२७-२९.५।।

स्वस्तिकाकारशृङ्गाश्च तथा मेघौघनिस्वनाः॥३०॥
महाप्रमाणाश्च तथा मत्तमातङ्गगामिनः। महोरस्का महोच्छ्राया महाबलपराक्रमाः॥
शिरः कर्णौ ललाटं च वालधिश्चरणास्तथा॥३१॥
नेत्रे पार्श्वे च कृष्णानि शस्यन्तेचन्द्रभासिनाम्।
श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः॥३२॥

जिनके सींग स्वस्तिक के आकार के हों, जिनके स्वर बादलों की गर्जना के समान गम्भीर हों, जो बहुत लम्बे हों, मतवाले हाथी के समान चलने वाले हों, विशाल छातीवाले हों, ऊँचे हों, अति बलवान् तथा पराक्रमी हों, सिर दोनों कान, ललाट, पूंछ, चारों पैर, दोनों नेत्र तथा दोनों बगलें काले वर्ण की हों-ये लक्षण चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के वृषभों के हों तो वे प्रशंसनीय है। ये उपर्युक्त लक्षण या चिह्न यदि श्वेत हों तो काले वृषभों के लिए प्रशंसनीय हैं।।३०-३२।।

भूमौ कर्षति लाङ्गूलं प्रलम्बस्थूलवालधिः। पुरस्तादुद्यतो नीलो वृषभश्च प्रशस्यते॥३३॥

जो वृषभ पृथ्वी को अपनी सींगों से खनता हो, उसकी विशाल पूँछ पृथ्वी तक लम्वी हो और मोटी हो, जो आगे की ओर उन्नत हो और रंग में नीले वर्ण की हो वह वृषभ प्रशंसनीय माना गया है।।३३।।

शक्तिध्वजपताकाढ्या येषां राजी विराजते।
अनड्वाहस्तु ते धन्याश्चित्रसिद्धिजयावहाः॥३४॥
प्रदक्षिणं निवर्तन्ते स्वयं ये विनिवर्तिताः। समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते यूथवर्धनाः॥३५॥

रक्तशृङ्गाग्रनयनः श्वेतवर्णो भवेद्यदि। शफैः प्रवालसदृशैर्नास्ति धन्यतरस्ततः॥३६॥

जिस वृषभ के शरीर में शक्ति, ध्वजा अथवा पताकाओं की रेखा-सी बनी हो वे अनड्वाह (अंडू) वृषभ विचित्र सिद्धियों के प्रदान करने वाले कहे जाते हैं। जो वृषभ प्रदक्षिणा करके (घूम करके) लौटते हों, या स्वयं बिना कहे ही लौट पड़ते हों, जिनके सिर व कंधे समुन्नत हों, वे धन्य तथा अपने समूह की वृद्धि करने वाले हैं। सींगों के अग्रभाग पर लाल चिह्न वाला बैल यदि श्वेत वर्ण का हो और उसके खुर प्रवाल के समान लालवर्ण के हों तो उससे बढ़कर अति भाग्यशाली कोई वृषभ नहीं होते।।३४-३६।।

एते धार्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः।
धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यप्रवर्धनाः॥३७॥

चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः। लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥३८॥

ऐसे वृषभों को प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़कर पालना चाहिये अथवा उत्सर्ग करना चाहिये। दोनों दशाओं में ये धनधान्य को बढ़ाते हैं। जिस वृषभ के चारों चरण, मुख तथा पूँछ श्वेत वर्ण के हों तथा शेष शरीर का रंग लाक्षा के रस के समान हो उसे नीलवृषभ कहते हैं।।३७-३८।।

वृष एव स मोक्तव्यो न सन्धार्यो गृहे भवेत्। तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी॥३९॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
गौरीं चाप्युद्वहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥४०॥

एवं वृषं लक्षणसम्प्रयुक्तं गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन्।
मुक्त्वा न शोचेन्मरणं महात्मा मोक्षं गतश्चाहमतोऽभिधास्ये॥४१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृषभलक्षणं नाम सप्ताहिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०९४५।।

ऐसे वृषभ यदि मिलें तो उनका उत्सर्ग करना चाहिये, घर पर पालना नहीं चाहिये, क्यों कि ऐसे भाग्यशाली वृषभ के उत्सर्ग के लिए पितरों की एक ऐसी सनातन गाथा प्रचलित है कि बहुतेरे पुत्रों की कामना करनी चाहिये; क्योंकि यदि उनमें से एक भी गया की यात्रा करेगा, या गौरी (आठ वर्ष की) कन्या का दान करेगा या नीले वृषभ का उत्सर्ग करेगा, तो हम धन्य होंगे'। हे राजन्! ऐसे सर्व लक्षण सम्पन्न वृषभ का-चाहे यह घर पर उत्पन्न हुआ हो या क्रय किया गया हो-उत्सर्ग करके महात्मा पुरुष कभी मृत्यु के प्रति शोकग्रस्त नहीं होता तथा मृत्यु को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है इसलिए मैंने इसको आपसे बतलाया है।।३९-४१।।

।।दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त।।२०७।।

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्री वन प्रवेश

सूत उवाच

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः। पतिव्रतानां माहात्म्यं तत्सम्बद्धां कथामपि॥१॥

सूत ने कहा–तदनन्तर अमित पराक्रमशाली राजा मनु ने देवाधिदेव मत्स्य भगवान् से पतिव्रता स्त्रियों के माहात्म्य तथा तत्सम्बन्धी कथा को पूछा।।१।।

मनुरुवाच

पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कया मृत्युः पराजितः। नामसङ्कीर्तनं कस्याः कीर्तनीयं सदा नरैः॥
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे॥२॥

मनु ने कहा- पतिव्रता स्त्रियों में कौन श्रेष्ठ है? किस स्त्री ने मृत्यु को पराजित किया था? किस भाग्यशालिनी का नामोच्चारण सर्वदा मनुष्यों को करना चाहिये? सभी पापों को नष्ट करने वाली इस कथा को मुझे सुनाइये।।२।।

मत्स्य उवाच

वैलोम्यं धर्मराजोऽपि नाऽऽचरत्यथ योषिताम्।
पतिव्रतानां धर्मज्ञ पूज्यास्तस्यापि ताः सदा॥३॥
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
यथा विमोक्षितो भर्ता मृत्युपाशगतः स्त्रिया॥४॥

मत्स्य भगवान् ने कहा- धर्म के महत्व को जानने वाले! धर्मराज भी स्त्रियों के प्रतिकूल कोई व्यवहार नहीं कर सकते, पतिव्रता स्त्रियाँ उनसे भी सर्वदा सम्मानीय कही गई हैं। इस विषय में तुम्हें मैं पापों को नष्ट करने वाली एक कथा को सुना रहा हूँ कि किस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री ने मृत्यु के पाश में गये हुए अपने प्रिय पति के प्राणों की रक्षा की थी।।३-४।।

मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा। अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम्॥५॥
आराधयति सावित्रीं लक्षितोऽसौ द्विजोत्तमैः।
सिद्धार्थकैर्हूयमानां सावित्रीं प्रत्यहं द्विजैः॥६॥
शतसंख्यैश्चतुर्थ्यां तु मासाद्दशदिने गते। काले तु दर्शयामास स्वां तनुं मनुजेश्वरम्॥७॥

प्राचीन काल में मद्रदेश में शाकल अश्वपति नामक एक राजा था, जिसके कोई पुत्र नहीं था, अतः पुत्र की कामना से उस ब्राह्मणों के कहने पर उसने सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाली सावित्री देवी की आराधना की और प्रतिदिन सैकड़ों ब्राह्मणों द्वारा सावित्री देवी की

प्रसन्नता के लिए सफेद सरसों का हवन करवाया इस प्रकार दस मास बीत जाने पर चतुर्थी तिथि को सावित्री देवी ने अपनी मूर्ति राजा को दिखलाया अर्थात् दर्शन दिया।।५-७।।

सावित्र्युवाच

राजन्भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा।
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम्।।८।।

सावित्री ने कहा- राजन्! मैं जानती हूँ कि तू नित्य मेरी भक्ति में लगा रहता हैं। अतः मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, तुझे सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या प्राप्त होने का वरदान मैं दे रही हूँ।।८।।

एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव। जगामादर्शनं देवी खे तथा नृप चञ्चला।।९।।
मालती नाम तस्याऽऽसीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता।
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः।।१०।।
सावित्र्या हुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा। सावित्री च भवत्वेषा जगाद नृपतिर्द्विजान्।।११।।

राजन्! इतना कहकर प्रणत हुए राजा के सम्मुख सावित्री देवी आकाश में बिजली की भाँति न जाने कहाँ अन्तर्हित हो गई। राजा की पतिव्रता पत्नी का नाम मालती था, अवसर आने पर रानी के रूप एवं सौन्दर्य में सावित्री की ही भाँति एक सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। राजा के कन्या की उत्पत्ति के बाद ब्राह्मणों से कहा कि यह मेरी कन्या हवन से प्रसन्न सावित्री देवी की दी हुई है और स्वरूप में भी उन्हीं के समान है, अतः इसका भी नाम सावित्री होगा।।९-११।।

नामाकुर्वन्द्विजश्रेष्ठाः सावित्रीति नृपोत्तम। कालेन यौवनं प्राप्ता ददौ सत्यवते पिता।।
नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम्।।१२।।
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः।।१३।।
तथाऽऽपि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे। सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे।।१४।।
नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा। शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशुरयोर्वने।।१५।।

राजन्! राजा के इस प्रस्ताव पर ब्राह्मणों ने भी उस पुत्री का नाम 'सावित्री' ही रखा। समय आने पर सावित्री युवती हुई, पिता ने उसका सत्यवान् के लिए वाग्दान कर दिया। तदनन्तर एक बार कभी नारद ने आकर अमित तेजस्वी राजा से कहा कि 'यह तुम्हारा जामाता सत्यवान् तो एक ही वर्ष में क्षीणायु होने के कारण मर जायेगा। ' नारद की ऐसी अमंगल वाणी सुनकर भी राजा ये यह सोचकर कि 'कन्यादान एक ही बार होता है' अपनी कन्या सावित्री को द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को ही ब्याहा। सावित्री भी अपने भवन में पतिदेव प्राप्त कर नारद की उस अशुभ वाणी से काँपते हुए हृदय द्वारा काल यापन करने लगी। वन में अपने सास-ससुर तथा पतिदेव की वह बड़ी शुश्रूषा करती थी।।१२-१५।।

राजाद्भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः। न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम्॥१६॥
चतुर्थेऽहनि मर्तव्यं तथा सत्यवता द्विजाः। श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुताऽपि सा॥१७॥
चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने। दारुपुष्पफलाहारी सत्यवांस्तु ययौ वनम्॥१८॥

श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा।
सावित्र्यपि जगामाऽऽर्ता सह भर्त्रा महद्वनम्॥१९॥

किन्तु उसका ससुर राजा अपने राज्य से च्युत होने एवं अंधा होने के कारण यथोक्त सर्वगुणसम्पन्न एवं सेवापरायण राजपुत्री को पुत्रवधु रूप में प्राप्त करके भी सन्तुष्ट नहीं होता था। 'आज के चौथे ही दिन सत्यवान् मर जायेगा' ऐसा ब्राह्मणों के कहने एवं ससुर की भी आज्ञा प्राप्त कर राजपुत्री धर्मपरायण सावित्री ने तीन रात के व्रत का अनुष्ठान किया। उस चौथे दिन जब सत्यवान् ने लकड़ी एवं आहार की टोह में जंगल को प्रस्थान किया, तब सास-ससुर की आज्ञा लेकर डरी हुई सावित्री भी अपने पति के पीछे उस जंगल को गई।।१६-१९।।

चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम्। वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशांस्तथा॥२०॥

आश्वासयामास स राजपुत्रीं क्लान्तां वने पद्मविशालनेत्राम्।
सन्दर्शनेनाथ द्रुमद्विजानां तथा मृगाणां विपिने नृवीरः॥२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने सावित्रीवनप्रवेशो नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१०९६६।।

प्रार्थना के भंग होने पर राजपुत्री को बहुत कष्ट होगा-ऐसा विचार कर ससुर ने भी उसे साथ जाने की आज्ञा दे दी थी। नारद के वचन का ध्यान कर चित्त में अति कष्ट होते हुए भी उसने अपने महान् भय को पतिदेव से व्यक्त नहीं किया; किन्तु मन बहलाव के लिए वन में छोटे-बड़े वृक्षों में झूठ-मूठ पूछताछ करती रही। उस भीषण वन में विशाल वृक्षों, पक्षियों एवं पशुओं को दिखला-दिखला कर थकी हुई, पद्म के समान विस्तृत लोचनों वाली सावित्री को मनुष्यों में वीर एवं श्रेष्ठ सत्यवान् ने सान्त्वना देकर आश्वस्त रखा।।२०-२१।।

।।दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त।।२०८।।

❖❖❖

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्री देवी का वरदान, सत्यवान से सावित्री का विवाह, वन में सावित्री के साथ सत्यवान का विचरण, वन का प्राकृतिक दृश्य

सत्यवानुवाच

वनेऽस्मिञ्शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम्। नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्ते रतिवर्धनम्॥१॥
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम्। वसन्तो हसतीवायं मामेवाऽऽयतलोचने॥२॥
दक्षिणे दक्षिणेनेतां पश्य रम्यां वनस्थलीम्। पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः॥३॥

सत्यवान् ने कहा–विशाल नेत्रों वाली! इस हरित भूमि में शोभित वन में वसन्त में रति की वृद्धि करने वाले, नेत्र तथा नासिका को सुख प्रदान करने वाले, मनोहर आम के वृक्षों को देखो। इस लालिमामय फूले हुए अशोक को इस वन में देखकर मालूम होता है कि यह वसन्त मेरा ही परिहास कर रहा है। दाहिनी ओर दक्षिण दिशा में जलते हुए अंगारों के समान शोभायमान फूले हुए किंशुक वृक्षों से युक्त इस मनोहारिणी वनस्थली की ओर देखो।।१-३।।

सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः। करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम्॥४॥
पश्चिमेन विशालाक्षि कर्णिकारैः सुपुष्पितैः। काञ्चनेन विभात्येषा वनराजी मनोरमा॥५॥
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली। रम्या सा चारुसर्वाङ्गि कुसुमोत्करभूषणा॥६॥

सुगन्धित पुष्पों की सुरभि से समन्वित वनपंक्तियों से हम लोगों की ओर निकलकर आती हुई वायु, मालूम पड़ रहा है, हमारे परिश्रम के क्लेश को हरने के लिए स्वागत करने आ रही है। हे विशाल नेत्रों वाली! इधर पश्चिम दिशा में फूले हुए कनेर के पुष्पों से युक्त स्वर्णिम शोभा वाली वनपंक्ति विराजमान हो रही है, देखो! वृक्षों पर से गिरी हुई लताओं के जालों से वनस्थली के मार्ग रुंध गये हैं। सर्वाङ्गसुन्दरी! देखो पुष्पों के समूहों से वहाँ की पृथ्वी कितनी मनोहारिणी लग रही है।।४-६।।

मधुमत्तालिझङ्कारव्याजेन वरवर्णिनि। चापाकृष्टिं करोतीव कामः पान्थजिघांसया॥७॥
फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता। विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली॥८॥
कोकिलश्चाम्रशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः। गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव॥९॥
पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनुसरन्वने। कुसुमं कुसुमं याति कूजन्कामी शिलीमुखः॥१०॥

वरवर्णिनी! मधु से उन्मत हुए भ्रमर समूहों की गुञ्जार से मालूम पड़ता है कि कामदेव हम जैसे पथिकों को मारने के लिए अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर टंकार कर रहा है। नाना प्रकार के

पुष्पों के सुस्वादु से सुप्रसन्न मुख वाले पुरुष कोकिल के सुरम्य स्वर से निनादित एवं सतिलका (मनोहर तिलक वृक्षों से विभूषित) यह वन स्थली तुम्हारी ही भाँति शोभायमान हो रही है। आम की ऊँची डाली पर बैठी हुई कोकिला मंजरी (बौर) की धूल से पीत वर्ण होने के कारण केवल अपने सुरीले शब्दों से ही अपना पता दे रही है, जैसे चेष्टा दिखा कर कुलीन पुरुष अपनी सूचना देते हैं। काम में अनुरक्त मधुप पुष्पों की धूलि से धूसरित अपनी प्रियतमा का अनुसरण करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर उड़-उड़कर जा रहे हैं।।७-१०।।

मञ्जरीं सहकारस्य कान्ता चञ्च्वग्रखण्डिताम्।
स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने।।११।।
काकः प्रसूतां वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रकाम्।।१२।।
भूभागं निम्नमासाद्य दयितासहितो युवा।
नाऽऽहारमपि चाऽऽदत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः।।१३।।

देखो! पुरुष कोकिल इस अनेक प्रकार के पुष्पों से सुसमृद्ध इस वन में अपनी प्रियतमा की चोंच के अग्रभाग से उच्छिष्ट आम की मञ्जरी का ही स्वाद ले रहा है। कौआ, पंखों से बच्चे को छिपाकर बैठी हुई अपनी प्रसूता प्रिया को वृक्ष के अग्रभाग पर बैठकर अपनी चोंच से प्रसन्न कर रहा है। नीचे के भूभाग पर अपनी प्रिया के साथ बैठा हुआ यह कपिंजल (तीतर) कामासक्त होने के कारण आहार को भी नहीं ग्रहण कर रहा है।।११-१३।।

कलविङ्कस्तु रमयन्प्रियोत्सङ्गं समास्थितः। मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि उत्कण्ठयति कामिनः।।१४।।
वृक्षशाखां समारूढः शुक्रोऽयं सह भार्यया।
करेण लम्बयञ्छाखां करोति सफलामिव।।१५।।
वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः। शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी।।१६।।
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्दरसंस्थितम्। ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहा भिन्नेव लक्ष्यते।।१७।।

हे विशालाक्षि! यह कलविंक (चटक) पक्षी अपनी प्रिया के अंकों में स्थित हो बारम्बार रमण करता हुआ कामियों को उत्कण्ठित कर रहा है। अपनी प्रिया के साथ वृक्ष की डाली पर बैठा हुआ यह शुक अपने हाथों से टहनी को नीचे करता हुआ उसे सफल सा कर रहा है। इन वन में मांस का आहार कर तृप्त हो यह युवा सिंह निद्रा में लीन हो शयन कर रहा है और उसकी प्रियतमा उसके पैरों के मध्य भाग में शयन कर रही है। पर्वत की कन्दरा में बैंठे हुए बाघ के दम्पत्ति को देखो, जिनके नेत्र की कान्ति से होने वाले प्रकाश में यह गुफा अन्य गुफाओं से भिन्न-सी दिखाई पड़ रही है।।१४-१७।।

अयं द्वीपो प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः।
प्रीतिमायाति च तया लिह्यमानः स्वकान्तया।।१८।।

उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम्। जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी॥१९॥
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम्। नखैर्दन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा॥२०॥

देखो, यह गैंडा अपने प्रिया को जीभ के अग्रभाग से चाट रहा है और प्रिया के चाटने पर स्वयं आनन्द अनुभव कर रहा है। देखो, वह वानरी अपने अंक में सिर करके सोते हुए प्रियतम के अंग से ढील को निकाल-निकाल कर आनन्दित कर रही है। देखो, वह बिलाव पृथ्वीतल पर लेटी हुई पेट को दिखाती अपनी प्रिया बिल्ली को अपने नखों और दांतों से मालूम पड़ रहा है कि काट रहा है; परन्तु वास्तव में वह पीड़ा नहीं दे रहा है।।१८-२०।।

शशकः शशकी चोभे संसुप्ते पीडिते इमे। संलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते॥२१॥
स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः।
सम्भावयति तन्वङ्गि मृणालकवलैः प्रियाम्॥२२॥
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी। करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगाम्॥२३॥

देखो, पीड़ित होकर ये खरगोश और खरगोशिनी अपने पैरों को पेट में छिपाकर कैसे सो रहे हैं, पर इनके दोनों कान किस प्रकार ऊपर उठकर इनकी सूचना दे रहे हैं। हे सुन्दरि! कमलों से सुसमृद्ध सरोवर में यह कामार्त्त हाथी स्नान करके कमलों के डण्ठलों से अपनी प्रिया को सन्तुष्ट कर रहा है। पीछे चलने वाले अपने बच्चों के साथ यह शूकरी अपने प्रियतम के सूड़ों द्वारा खनकर बाहर किये गये मोथों को पति के पीछे-पीछे चलती हुई खाती जा रही है।।२१-२३।।

दृढाङ्गसंधिर्महिषः कर्दमाक्ततनुर्वने। अनुव्रजति धावन्तीं प्रियामुद्धतमुत्सुकः॥२४॥
पश्य चार्वङ्गि सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः।
सभार्यं मां हि पश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम्॥२५॥
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम्। स्नेहार्द्रभावात्कर्षन्ती भर्तारं शृङ्गकोटिना॥२६॥
द्रागिमां चमरीं पश्य सितवालामगच्छतीम्।
अन्वास्ते चमरः कामी मां च पश्यति गर्वितः॥२७॥

देखो, इस वन में दृढ़ अंगों वाला कामार्त्त यह महिष अंगों में कीचड़ों से लथपथ हुआ अपनी भागती हुई प्रिया के पीछे-पीछे दौड़ रहा है। सुन्दरि! इस अपनी प्रिया के सहित मृग को देखो, जो कौतूहल युक्त अपने मनोहर कटाक्षों से ताक रहा है। देखो, वह रोही मृगी अति स्नेहयुक्त हो अपनी सींगों के अग्रभाग से प्रियतम को ढकेलती हुई अपने पिछले पैरों से मुख को खुजला रही है। अरे शीघ्र उस श्वेत बालों वाली चमरी गाय को तो देखो, जो खड़ी हुई है और जिसके पीछे कामार्त्त चमर गर्वित नेत्रों से मुझको ताक रहा है।।२४-२७।।

आतपे गवयं पश्य प्रहृष्टं भार्यया सह। रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकं ककुदि वारयन्॥२८॥
पश्याजं भार्यया सार्धं न्यस्ताग्रचरणद्वयम्। विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया॥२९॥

हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम्। सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन्॥३०॥
सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः। करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरि॥३१॥

उस धूप में खड़े हुए नीलगाय को देखो जो अपनी प्रिया के साथ आनन्द युक्त हो डाल पर बैठे हुए कौवे को निवारित करता हुआ जुगाली कर रहा है। लम्बे बेर के वृक्ष की शाखा पर फलों को खाने की इच्छा से अगले दोनों पैरों को उठाकर खड़े हुए अपनी प्रिया के साथ उस बकरे को तनिक देखो। सरोवर में विहार करते हुए उस हंसिनी समेत हंस को देखो, जो सुप्रकाशित चन्द्रमा के बिम्ब की शोभा धारण कर रहा है। हे सुन्दरि! देखो वह चक्रवाक अपनी प्रिया के साथ इस कमलों से सुशोभित तथा समृद्ध सरोवर में अपनी प्रिया को फूली हुई पद्मिनी के समान कर रहा है।।२८-३१।।

मया फलोच्चयः सुश्रु त्वया पुष्पोच्चयः कृतः। इन्धनं न कृतं सुभ्रु तत्करिष्यामि साम्प्रतम्॥३२॥
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता। क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनी॥३३॥

ऐसा कहकर सत्यवान् ने फिर कहा- 'हे सुभ्रु! मैं फलों को एकत्र कर चुका तथा तुम पुष्पों को एकत्र कर चुकी, अभी ईंधन का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, अतः अब उसे एकत्र करना चाहिये। सुन्दरि! तुम तब तक इस सरोवर के तट पर वृक्ष की छाया में बैठकर क्षणमात्र प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करो, तब तक मैं ईंधन एकत्र किये लेता हूँ।।३२-३३।।

सावित्र्युवाच

एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया। दूरं कान्त न कर्तव्यो बिभेमि गहने वने॥३४॥

सावित्री ने कहा-कान्त! यदि तुम कह रहे हो तो मैं वैसा ही करूंगी; परन्तु तुम मेरी आँखों के सामने से दूर मत जाओ; क्योंकि इस विकराल तथा घने वन में अकेले डरती हूँ।।३४।।

मत्स्य उवाच

ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम्।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं मेने च सा तं मृतमेव राजन्॥३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने वनदर्शनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११००१।

मत्स्य ने कहा-राजन् सावित्री के ऐसा करने पर सत्यवान् राजपुत्री के सम्मुख ही उस सरोवर से थोड़ी ही दूर पर काष्ठ एकत्र करने लगा; परन्तु राजपुत्री उतनी ही दूर जाने पर भी उसे मरा हुआ सा मानने लगी।।३५।।

।।दो सौ नवाँ अध्याय समाप्त।।२०९।।

अथ दशाधिकाद्विशततमोऽध्यायः

सत्यवान के शिर में पीड़ा और यमराज का आगमन, सावित्री का अनुगमन और यम से संवाद

मत्स्य उवाच

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना। स वेदनार्तः सङ्गम्य भार्यां वचनमब्रवीत्॥१॥
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना। तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन॥२॥
त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि साम्प्रतम्।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिव॥३॥

मत्स्य ने कहा–राजन्! काष्ठ काटते हुए उस सत्यवान् के सिर में पीड़ा होने लगी, जिससे विह्वल हो कर वह अपनी प्रिया के समीप आकर कहने लगा–'इस परिश्रम के करने से मेरे सिर में बहुत पीड़ा हो रही है, मालूम पड़ रहा है कि मैं अंधकार में घुसा जा रहा हूँ, दर्द के मारे कुछ भी मुझे सूझ नहीं रहा है। अब मैं अंक में सिर रखकर तुम्हारे पास सोना चाहता हूँ।' राजपुत्री से इस प्रकार बातें कर सत्यवान् उसके अंक में सिर रख कर सो गया।।१-३।।

तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाऽऽविललोचनः। पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका॥४॥
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम्। नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम्॥५॥
विद्युल्लतानिबद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम्। किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलाभ्यां विराजितम्॥६॥
हारभारार्पितोरस्कं तथाऽङ्गदविभूषितम्। तथाऽनुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना॥७॥

इस प्रकार उसके अंक में सिर रखकर जब सत्यवान् निद्रा में निमग्न हो गया, तब महाभाग्यशालिनी पतिव्रता राजपुत्री सावित्री ने वहाँ पर आये हुए धर्मराज को देखा, जो नीले कमल के समान श्यामल वर्ण के थे तथा पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे उस समय बिजली की लता से सुशोभित बादल के सामन शोभायमान हो रहे थे, उनके सिर पर सूर्य के समान देदीप्यमान मुकुट सुशोभित था तथा दोनों कानों में कुण्डल विराज रहे थे, विशाल वक्षस्थल पर हार सुशोभित था, हाथों में अंगद थे, उनके पीछे-पीछे महाकाल और मृत्यु भी थे।।४-७।।

स तु सम्प्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा। अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं पाशबद्धं वशं गतम्॥८॥
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा। सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम्॥९॥
अनुवव्राज गच्छन्तं धर्मराजमतन्द्रिता। कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता॥१०॥

उस स्थान पर पहुँचकर धर्मराज ने सोये हुए सत्यवान् के शरीर में अँगूठे जितने लम्बे पुरुष को अपने पाश में बाँधकर वश में किया और दक्षिण दिशा की ओर मुख कर शीघ्र ही प्रस्थान

किया। तब सुन्दरी सावित्री भी पति के शरीर को निर्जीव देख, जाते हुए धर्मराज के पीछे-पीछे बिना आलस के चली और काँपते हृदय से अंजलि बाँधकर धर्मराज से बोली-"माता की भक्ति से इस लोक में पिता की भक्ति से मध्यम लोक में तथा गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक में आनन्द की प्राप्ति होती है।।८-१०।।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्। गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते।।११।।

सर्वे तस्याऽऽदृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः।।१२।।

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्। तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः।।१३।।
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदा चरेत्। तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः।।
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते।।१४।।

जिस प्राणी ने इन तीनों धर्मों का पालन किया है, उसका इन तीनों लोको में आदर होता है तथा जिसने इन तीनों का अनादर किया है, उसकी सारी सत्क्रिया निष्फल ही समझनी चाहिये। जब तक ये तीन जगत् में जीवित रहते हैं, तब तक किसी अन्य प्रकार के धर्म को करने की आवश्यकता नहीं है। उनके प्रिय एवं सुख के लिए मनुष्य को उनकी शुश्रुषा में सर्वदा निरत रहना चाहिये। उन्हें किसी प्रकार का भी क्लेश न हो-इस प्रकार विचार कर जब कभी किसी की दासता भी करे तो मनसा, वाचा, कर्मणा जो कुछ मिले, वह सब भी उन्हें ही निवेदित कर दे। माता, पिता और गुरु-इन तीनों के प्रति मनुष्य को सर्वदा इसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये।।१-१४।।

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्तयाऽऽशु धर्मो न तेभ्योऽपि हि उच्यते च।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।।१५।।
गुरुपूजारतिर्भर्ता त्वं च साध्वी पतिव्रता। विनिवर्तस्व धर्मज्ञे ग्लानिर्भवति तेऽधुना।।१६।।

यम ने कहा–तुम हमसे जिस कामना को पूर्ण करना चाहती हो, उसे छोड़ दो। सचमुच संसार में माता–पिता तथा गुरु से बढ़कर कोई धर्म नहीं हैं। किन्तु इस कार्य में तुम्हारे पीछे-पीछे आने से हमारे काम में विघ्न पड़ रहा है और तुम भी बेकार में परेशान हो रही हो, इसलिए अब मैं तुमसे ऐसा कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ। हे धर्म के तत्त्व को जानने वाली! तुम्हारा पति सचमुच गुरुजनों की पूजा में प्रेम करने वाला था और तुम भी पतिव्रता और साध्वी हो; किन्तु अब यहाँ हमारे पीछे-पीछे आने से तुम्हारे परेशानी बढ़ रही है, अतः मैं चाहता हूँ कि तुम लौट जाओ।।१५-१६।।

सावित्र्युवाच

पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः।।१७।।

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य प्रदातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥१८॥
नीयते यत्र भर्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति। मयाऽपि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम॥१९॥
पतिमादाय गन्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्॥२०॥
मनस्विनी तु या काचिद्वैधव्याक्षरदूषिता। मुहूर्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता॥२१॥

सावित्री ने कहा–स्त्रियों का पति ही देवता है, पति ही उसको एकमात्र शरण देने वाला है। प्राणपति प्रियतम के साथ ही साध्वी स्त्रियों को भी अनुगमन करना चाहिये। कन्या को उसका पिता सीमित अल्प सम्पत्ति देता है, भाई तथा पुत्र भी अल्प सम्पत्ति देता है, सर्वदा अमित के देने वाले अपने प्राणनाथ की कौन पतिव्रता पूजा न करेगी? जहाँ पर मेरे प्राणेश्वर ले जाये जा रहे हैं, अथवा स्वयमेव जा रहे हैं, हे सुरोत्तम! अपनी शक्ति भर मुझे भी वहाँ जाना चाहिये हे देव! अपने प्राणपति को ले जाते हुए तुम्हारे पीछे-पीछे यदि मैं नहीं चल पाऊँगी तो मैं भी अपने प्राणों को छोड़ दूँगी। जो मनस्विनी स्त्री वैधव्य के अक्षरों से दूषित करके पुकारी जाने लगती है, वह सभी आभूषणों के योग्य होकर भी असुन्दरी तथा भाग्यहीन है।।१७-२१।।

यम उवाच

पतिव्रते महाभागे परितुष्टोऽस्मि ते शुभे। विना सत्यवतः प्राणैर्वरं वरय मा चिरम्॥२२॥

यम ने कहा–हे महाभाग्यशालिनि! पतिव्रते! कल्याणि! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर जिस किसी वरदान की तुझे अभिलाषा हो, उसे शीघ्र ही मांग लो।।२२।।

सावित्र्यु उवाच

विनष्टचक्षुषो राज्यं चक्षुषा सह कारय। च्युतराज्यस्य धर्मज्ञ श्वशुरस्य महात्मनः॥२३॥

सावित्री ने कहा–हे धर्मराज! नष्ट हो गया है राज्य जिनका–ऐसे महनीय आत्मा मेरे श्वसुर को, जिन्हें आँख भी नहीं है, आँख तथा राज्य–दोनों से संयुक्त कर दीजिये।।२३।।

यम उवाच

दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि॥२४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने प्रथमवरलाभो नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१०।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११०२५।।

यमराज ने कहा–हे कल्याणि! तुम बहुत दूर चली आई हो, अतः लौट जाओ। तुम्हारी यह

अभिलाषा सत्य होगी। इस प्रकार मेरे पीछे आने से मेरे कार्य में विघ्न पड़ रहा है और तुम्हें भी परेशानी उठानी पड़ रही है, इसलिये मैं अब तुमसे यह कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ।।२४।।

।।दो सौ दसवाँ अध्याय समाप्त।।२१०।।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्री को वापस करने की यम की कोशिश, सावित्री की पतिभक्ति की पराकाष्ठा और दो वरदानों की प्राप्ति

सावित्र्युवाच

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे।
सतां तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम।।१।।

साधूनां वाऽप्यसाधूनां सन्त एव सदा गतिः। नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः।।२।।

सावित्री ने कहा–सुरोत्तम! सत्यपुरुषों के समागम में कैसा परिश्रम और कैसी परेशानी ? इसलिये आप जैसे महानुभावों के समीप में मुझें भी ग्लानि नहीं अनुभव हो रही है। साधु प्रकृति के प्राणी हों, अथवा असाधु प्रकृति के हों-सभी के निर्वाहकर्ता सत्पुरुष ही होते हैं, असज्जन पुरुष न तो सज्जनों के काम आ सकते हैं, न सत्पुरुषों का उनसे कोई कार्य सध सकता है और न वे स्वयं अपना ही कल्याण साधन कर सकते हैं।।१-२।।

विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम्। अकारणजगद्वैरिखिलेभ्यो जायते यथा।।३।।

सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा।
तथाऽसन्तोऽपि संत्यज्य परपीडासु तत्पराः।।४।।

त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद्यस्य कारणात्। परोपघातशक्तास्तं परलोकं तथाऽसतः।।५।।

विष, अग्नि, सर्प तथा शस्त्र इन सबों से भी संसार को उतना भय नहीं होता, जितना भय निष्कारण क्रोध करने वाले दुष्टों से होता है। सत्पुरुष अपने प्राणों की बाजी लगाकर परोपकार करते हैं; किन्तु असज्जन पुरुष अपने प्राणों को देकर भी दूसरे की हानि करते हैं। जिस परलोक की प्राप्ति के लिए सत्पुरुष लोग अपने प्राणों को भी तुच्छ तृण की भाँति होम देते हैं, उस परलोक की पराये की हानि में निरत रहने वाले असज्जन कुछ भी परवाह नहीं करते।।३-५।।

निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः। असतामुपघाताय राजानं ज्ञातवान्स्वयम्।।६।।

नरान्परीक्षयेद्राजा साधून्सम्मानयेत्सदा। निग्रहं चासतां कुर्यात्स लोके लोकजित्तमः।।७।।

निग्रहेणासतां राजा सतां च परिपालनात्। एतावदेव कर्तव्यं राजा स्वर्गमभीप्सुना॥८॥

जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा ने प्रत्येक स्थानों या नर समूहों में असत्पुरुषों के निग्रहार्थ या मरणार्थ राजा को बनाया है। राजा सर्वदा सच्चे तथा तुच्चे पुरुषों की परीक्षा करे। सज्जन हो तो उनका आदर करे, दुष्ट हो तो उन्हें दण्ड दे, जो ऐसा करता है, वह सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं। सत्पुरुषों को सम्मान देने तथा दुष्टों के निग्रह करने के कारण ही राजा, स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक राजा को इन दोनों बातों पर ध्यान रखना चाहिये।।६-८।।

राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते। असतां निग्रहादेव सतां च परिपालनात्॥९॥

राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान्।
तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे॥१०॥
जगत्तु धार्यते सद्भिः सतामग्र्यस्तथा भवान्।
तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमो देव न विद्यते॥११॥

हे जगत् के स्वामी! राजा लोगों के लिए सत्पुरुषों के परिपालन तथा दुष्टों के नियमन से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। उन राजाओं से भी जो दुष्ट शासित नहीं किये जा सकते। ऐसे असज्जनों को भी आप शासित करने वाले हैं, इसी कारण आप सभी देवताओं से अधिक महत्व एवं विशेषतापूर्ण मुझे मालूम पड़ते हैं। यह समस्त जगत् सत्पुरुषों द्वारा धारण किया गया है, उन सत्पुरुषों के आप अगुवा हैं, हे देव! यही कारण है कि आपके पीछे चलते हुए मुझे भी क्लेश नहीं हो रहा है।।९-११।।

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसङ्गतैः। विना सत्यवतः प्राणाद्वरं वरय मा चिरम्॥१२॥

यमराज ने कहा-हे विशाल नेत्रों वाली! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातों को सुनकर मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर तुम्हें जिस किसी भी पदार्थ को प्राप्त करने की अभिलाषा हो, उसके लिए शीघ्र मुझसे वरदान माँग लो, देर न करो।।१२।।

सावित्र्युवाच

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो। अनपत्यः पिता प्रीतं पुत्रलाभात्प्रयातु मे॥१३॥
तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते। और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर॥१४॥
नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः। पतिव्रताऽसि तेन त्वं मुहूर्त्तं मम यास्यसि॥१५॥

सावित्री ने कहा- हे प्रभो! मैं अपने सौ सहोदर भाई होने की अभिलाषिणी हूँ बिना किसी पुत्र के दुखी मेरे पिता इस शत-पुत्र-लाभ से प्रसन्न हों।" सावित्री की ऐसी प्रार्थना सुनकर यमराज ने कहा- हे अनिन्दिते! अब तुम वहाँ चली जाओं जहाँ से आई हो और अपने पति को और्ध्वदेहिक (शवसंस्कार आदि) क्रियाओं को जाकर सम्पन्न करो। अब यह दूसरे लोक में आ गया है, अतः

तुम इसके पीछे नहीं चल सकती, चूँकि, पतिव्रता हो, अतःएक मुहूर्त तक चल मेरे साथ चल सकती हो।।१३-१५।।

गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे तथा सत्यवता महत्। पुण्यं समर्जितं येन नयाम्येनमहं स्वयम्॥१६॥
एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता। मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि॥१७॥

हे कल्याणि! सत्यवान् ने गुरुजनों की शुश्रूषा करके महान् पुण्य अर्जित किया था, अतः मैं स्वयं इसे ले जा रहा हूँ। हे सुन्दरि! विद्वान् पुरुष को इतना तो अवश्य ही करना चाहिये कि वह अपनी माता, पिता अथवा गुरु की सेवा में सदा तत्पर रहे।।१६-१७।।

तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने। पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयाऽनेन चिरं शुभे॥१८॥
तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे। पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा॥१९॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
न चैतेऽप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥२०॥
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः॥२१॥

वन में निवास कर सत्यवान् ने इन तीनों की बड़ी शुश्रूषा की है। हे कल्याणि! इसके साथ-साथ निवास करके तुमने भी स्वर्ग को जीत लिया है। हे शुभे! लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य, अग्नि और गुरु की शुश्रूषा कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, विशेषतया ब्राह्मणा को अपने आचार्य, पिता, माता तथा बड़े भाई का तो कभी अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता पृथ्वी की मूर्ति है तथा भाई स्वयं अपनी प्रतिमूर्ति है।।१८-२१।।

जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्। न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥२२॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा। तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥२३॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते। न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥२४॥

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव च त्रयो वेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः॥२५॥

मनुष्यों को उत्पन्न करने समय माता और पिता अपार कष्ट सहन करते हैं, उस महान् कष्ट से पुत्र का सैकड़ों वर्षों में भी निस्तार नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को माता-पिता तथा आचार्य का सर्वदा प्रिय कार्य करना चाहिये, उन्हीं तीनों के सन्तुष्ट होने पर सभी तपस्या को सफल और सम्पन्न समझना चाहिये। इन तीनों की शुश्रूषा ही परम तपस्या कही गयी है, उन लोगों की आज्ञा के बिना मनुष्य को किसी अन्य प्रकार के धर्म का पालन नहीं करना चाहिये। मनुष्य के लिए वे तीनों ही लोक हैं, तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं तथा तीनों अग्नियाँ हैं।।२२-२५।।

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः। गुरुराहवनीयश्च साऽग्निस्त्रेता गरीयसी॥२६॥

त्रिषु प्रमाद्यते नैषु त्रींल्लोकाञ्जयते गृही। दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते॥२७॥
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि॥२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने द्वितीयवरलाभो नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२११।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११०५३।।

पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि तथा गुरु आह्वनीयाग्नि है, ये तीनों अग्नियों की उपासना मनुष्य के लिए गौरव की वस्तु है। जो गृहस्थाश्रमी इन तीनों गुरुजनों की सेवा में कभी असावधानी नहीं करता, वह तीनों लोकों को जीतता है तथा अपने दीप्यमान शरीर से स्वर्ग में देवताओं के समान काल यापन करते हुए आनन्द का अनुभव करता है। हे कल्याणि! अब तुम अपने शेष मनोरथ को त्याग दो और लौट जाओ, जिन प्रार्थनाओं को तुमने किया है, वे सभी सफल होंगी। इस प्रकार हमारे पीछे आने से कार्य में विघ्न पड़ता है और तुम भी परेशान हो रही हो, अतः मैं अब तुमसे यही कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ'।।२६-२८।।

।।दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।।२११।।

❖❖❖

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्री की तृतीय वर-प्राप्ति

सावित्र्युवाच

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा। त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम्॥१॥
धर्मार्जनं तथा कार्यं पुरुषेण विजानता। तल्लाभः सर्वलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते॥२॥

सावित्री ने कहा-देवश्रेष्ठ! धर्म के कार्यों में कैसी ग्लानि अथवा कैसा क्लेश? तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा तो परमधर्म का मूल है। हे देव! ज्ञानी पुरुष को सर्वदा धर्म-कार्यों में लगे रहना चाहिये; क्योंकि उसका लाभ सभी लाभों से विशेष महत्त्वपूर्ण है।।१-२।।

धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनःफलम्।
धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभो॥३॥

धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा। धर्म एकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचनगामिनम्॥४॥
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति। एको हि जायते जन्तुरेक एव विपद्यते॥५॥

हे प्रभो! संसार में जन्म लेने का फल धर्म, अर्थ एवं काम-इन तीनों की प्राप्ति करना है, जो पुरुष धर्म से हीन है, उसको अर्थ एवं काम की प्राप्ति बन्ध्या के पुत्र के समान कभी नहीं हो सकती। धर्म से अर्थ एवं काम दोनों की प्राप्ति होती है, तथा धर्म से ही इस लोक और परलोक-दोनों की प्राप्ति होती है। एक धर्म ही ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के पीछे-पीछे चाहे वह जहाँ कहीं भी जाय-चलता है। संसार की अन्य सभी वस्तुएँ शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती है। मनुष्य इस नश्वर संसार में अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है।।३-५।।

धर्मस्तमनु यात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः। क्रिया सौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते।।६।।
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रशर्वेन्द्रयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम्। वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः।।७।।
धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक। मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च।।८।।
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिकाः। नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानि यानि च।।९।।
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठं तथा नरैः।
विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरसः शुभाः।।१०।।

एक धर्म ही उसके साथ-साथ चलता है, मित्र एवं परिवार के लोग भी उसका अनुसरण नहीं करते। कार्यों में सफलता-सौभाग्य एवं सौन्दर्य सबकुछ धर्म से ही प्राप्त होते हैं। पुरुषान्तक! ब्रह्मा, इन्द्र विष्णु शिव, चन्द्रमा, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, वसुगण, अश्विनीकुमार एवं कुबेर प्रभृति देवताओं के लोक, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं, मनुष्य उन सबको धर्म द्वारा ही प्राप्त करता है। मनोहर द्वीपों एवं सुखदायी वर्षों (देशों) को मनुष्य धर्म द्वारा ही प्राप्त करते हैं, नन्दनादि देवताओं के मुख उद्यानों को भी वह धर्म से ही प्राप्त करते हैं। मनुष्यों को धर्म द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वहाँ पर उसे विचित्र ढंग के विमान तथा कल्याणदायिनी अप्सराओं की प्राप्ति होती है।।६-१०।।

तैजसानि शरीराणि सदा पुण्यवतां फलम्।
राज्यं नृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेप्सिता।।११।।
संस्काराणि च मुख्यानि फलं पुण्यस्य दृश्यते।
रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च।।१२।।
चामराणि सुराध्यक्ष भवन्ति शुभकर्मणाम्। पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना।।१३।।
धार्यतां याति च्छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा।

पुण्यशाली मनुष्यों के शरीर सदा तेजोमय रहते हैं, उन्हें राज्य की प्राप्ति होती है, राजा लोग उनकी पूजा करते हैं, उनके सभी मनोरथ सफल होते हैं तथा सर्वदा उनका अभ्युदय होता है। पुण्य का फल सर्वदा ही ऐसा देखा जाता है। हे सुराध्यक्ष! उन भाग्यशाली पुण्यवान् पुरुषों को स्वर्ग में सुवर्ण तथा वैदूर्य के बने हुए डण्डे वाले सूर्य की प्रखर किरणों के समान तेजोमय चँवर डुलाये जाते

हैं तथा पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान शुभ्र एवं रत्नजटित वस्त्र से सुशोभित छत्र को वहाँ मनुष्य निज मांगलिक कर्मों द्वारा प्राप्त करता है।।११-१३.५।।

जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधानिः स्वनैः।।१४।।
वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणः। वरान्नपानं गीतं च भृत्यमाल्यानुलेपनम्।।१५।।
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः। रूपौदार्यगुणोपेताः स्त्रियश्चातिमनोहराः।।१६।।
वासाः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणाम्। सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः।।१७।।
वहन्ति तुरगा देव नरं पुण्येन कर्मणा।

विजय की सूचना देने वाले शंखों के स्वरों तथा मागध और वन्दियों की मांगलिक ध्वनियों के साथ अभिनन्दित होते हुए सुन्दर सिंहासन पर समासीन होने का सत्यपरिणाम पुण्य कर्मों का ही है। लाभकारी अन्न, गीत, आज्ञाकारी, अनुचर, मालाएँ, चन्दन, रत्न, सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्र-ये सभी पुण्य कर्मों के फल हैं। सुन्दरी एवं दयावती अति मनोहर स्त्रियाँ तथा उच्च महलों की छतों पर सुखपूर्ण निवास-ये भी शुभ कर्म करने वाले को प्राप्त होते हैं। उस भाग्यशाली मनुष्य को शुभ कर्म के प्रभाव से सुवर्ण के बने हुए घूँघरों से सुशोभित, चँवर तथा माला से सुशोभित तुरंग वहन करते हैं।।१४-१७.५।।

हैमकक्षैश्च मातङ्गैश्चलत्पर्वतसन्निभैः।।१८।।
खेलद्भिः पादविन्यासैर्यान्ति पुण्येन कर्मणा। सर्वकामप्रदे देवसर्वाघदुरितापहे।।१९।।
वहन्ति भक्तिं पुरुषाः सदा पुण्येन कर्मणा। तस्य द्वाराणि यजनं तपो दानं दमः क्षमा।।२०।।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यं तीर्थानुसरणं शुभम्। स्वाध्यायसेवा साधूनां सहवासः सुरार्चनम्।।२१।।
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम्। इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम्।।२२।।

चलते हुए पर्वतों के समान, सुवर्ण निर्मित अम्बारी से सुशोभित मत्तगयन्दों अचञ्चल पादविन्यास पर वह भाग्यशाली अपने पुण्य कर्म के प्रभाव से वहन किये जाते हैं। हे देव! सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले, सभी पापों एवं दुश्चरितों को दूर करने वाले स्वर्ग में वह पुरुष उपर्युक्त सुख-साधनों से सम्पन्न होकर विराजमान होते हैं। मानव अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से ही भक्ति को प्राप्त करते हैं। उस भक्ति के द्वार यज्ञ, तपस्या, दान, इन्द्रिय निग्रह, क्षमाशीलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, मांगलिक तीर्थों की यात्रा, स्वाध्याय, सेवा, सत्पुरुषों की संगति, देवार्चन, गुरुजनों की शुश्रूषा, ब्राह्मणों की पूजा, इन्द्रियों को स्ववश रखना, ब्रह्मचर्य तथा निरहंकारिता- ये सब हैं।।१८-२२।।

तस्माद्धर्मः सदा कार्यो नित्यमेव विजानता। न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्।।२३।।
बाल एव चरेद्धर्ममनित्यं देव जीवितम्। को हि जानाति कस्याद्य मृत्युरेवाऽऽपतिष्यति।।२४।।
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम्। अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम।।२५।।

इस कारण से उस भक्ति के महत्व को जानने वाले मानव को सर्वदा धर्माचरण करना

चाहिये। मृत्यु किसी की यह प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने जीवन में अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है या नहीं। हे देव! इसलिए मनुष्य को शैशव से ही धर्माचरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिये; क्योंकि यह जीवन नश्वर है। कौन जानता है कि आज ही किसी की मौत आ धमकेगी? हे सुरोत्तम! आँख से देखते हुए भी लोगों के सम्मुख उसकी मृत्यु खड़ी रहती है; किन्तु तिसपर भी वह अमरों (मृत्युरहित देवता) की भाँति आचरण करता है-यह महान् आश्चर्य है।।२३-२५।।

युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा। मृत्योरुत्सङ्गमारुढः स्थविरः किमपेक्षते॥२६॥
तत्रापि विन्दतस्त्राणं मृत्युना तस्य का गतिः। न भयं मरणादेव प्राणिनामभयं क्वचित्॥
तत्रापि निर्भयाः सन्त सदा सुकृतकारिणः॥२७॥

युवक की अपेक्षा बालक और वृद्ध की अपेक्षा युवक अपने को मृत्यु से दूर मानता है; किन्तु मृत्यु के अंक में बैठा हुआ वृद्ध किसकी अपेक्षा करते हुए गहरी नींव देने की बातें सोचा करता है? इतने पर भी मृत्यु से रक्षा के उपायों को सोचते एवं प्राप्त करते हुए उसकी कौन-सी गति होती है? प्राणधारियों को इस जगत् में केवल मृत्यु से ही भय नहीं, बल्कि यह कहना चाहिये कि उसे अभय कहाँ है ? इतना सब कुछ होने पर भी सुकृतजन सर्वदा निर्भय होकर संसार में जीवित रहते हैं।।२६-२७।।

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसङ्गतैः। विना सत्यवतः प्राणान्वरं वरय मा चिरम्॥२८॥

यमराज ने कहा-हे विशाल नेत्रों वाली! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातों से मैं विशेष सन्तुष्ट हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर तुम्हें अन्य किसी पदार्थ की कामना हो उसे अविलम्ब माँग सकती हो।।२८।।

सावित्र्युवाच

वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम्। अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते॥२९॥

सावित्री ने कहा-हे देव! मैं तुमसे अपनी कोख से उत्पन्न होने वाले सौ पुत्रों का वरदान माँग रही हूँ; क्योंकि बिना सन्तति के यह प्रसिद्ध है कि किसी को सद्गति नहीं प्राप्त होती।।२९।।

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे भविष्यतीदं सफलं यथोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि॥३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने तृतीयवरलाभो नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११०८३।।

यमराज ने कहा–हे कल्याणि! अब तुम शेष जिस मनोरथ की मुझसे कामना करती हो उसे छोड़कर लौट जाओ, तुम्हारी यह याचना भी सफल होगी। इस प्रकार तुम्हारे अनुगमन से मेरे कार्यों में विघ्न होगा और तुम्हें भी बेकार की परेशानी उठानी पड़ेगी, इसलिए मैं कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ।।३०।।

।।दो सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त।।२१२।।

अथ त्र्योदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सत्यवान को जीवन लाभ

सावित्र्युचवाच

धर्माधर्मविधानज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक। त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनो यमः।।१।।
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः। तस्माद्वै प्रोच्यसे देव यम इत्येव नामतः।।२।।
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो। तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते।।३।।

सावित्री ने कहा–धर्म-अधर्म दोनों के विधानों के जानने वाले! सभी धर्मों के प्रवर्त्तक! तुम्हीं जगत् के स्वामी तथा समस्त प्रजात्मकसृष्टि के नियमन करने वाले हो! हे देव! तुम सभी प्राणियों को उनके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार नियमन (दण्ड आदि की व्यवस्था) करते हो, इसलिए लोग तुम्हें 'यमराज' कहते हैं। हे प्रभो! धर्मपूर्वक इन सभी चराचर जगत् को तुम प्रसन्न करते हो, इसलिये सत्पुरुष तुम्हें धर्मराज' कहते हैं।।१-३।।

सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जनाः। त्वत्सकाशं मृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे।।४।।

लोग सत् तथा असत् कर्मों को आगे कर तुम्हारे समीप मृत्यु प्राप्ति करने पर, जाते हैं, इसलिए मृत्यु भी तुम्हारा नाम कहा जाता है।।४।।

कालं कलार्धं कलयन्सर्वेषां त्वं हि तिष्ठति।
तस्मात्कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः।।५।।

सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान्। तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते।।६।।
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमः परिकीर्तितः। तस्माद्वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यसे।।७।।
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभं जनम्। तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणहरेति वै।।८।।

संसार के सभी जीवों के काल एवं कला आदि काल के परिमाणों के अर्धभाग तक की स्मृति तथा गणना करते हो, इसलिए तत्त्वदर्शी लोग तुम्हें 'काल' नाम से भी पुकारते हैं। हे महाद्युति!

संसार के सभी चराचर जीवों के तुम संहार करने वाले हो, इसलिए सभी देवगण तुम्हें 'अन्तक' भी कहा करते हैं। विवस्वान् भगवान् सूर्य के तुम प्रथम पुत्र हो, अतः सभी लोकों में लोग तुम्हें वैवस्वत नाम से भी पुकारते हैं। आयु एवं कर्म-इन दोनों के क्षीण हो जाने पर तुम लोगों को जबरदस्ती अपने पास घसीट लेते हो, इसी कारण लोक में सर्वप्राणहर नाम से भी लोग तुम्हें पुकारते हैं।।५-८।।

तव प्रसादाद्देवेश त्रयीधर्मो न नश्यति। तव प्रसादाद्देवेश धर्मे तिष्ठन्ति जन्तवः।।
तव प्रसादाद्देवेश सङ्करो न प्रजायते।।९।।
सतां सदा गतिर्देव त्वमेव परिकीर्तितः। जगतोऽस्य जगन्नाथ मर्यादापरिपालकः।।१०।।
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ दुःखितां शरणागतम्। पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ।।११।।

हे देवेश! तुम्हारी ही कृपा से इस जगत् में ऋक्, साम एवं यजुः- इन तीनों वेदों द्वारा प्रतिपादित धर्म का विनाश नहीं होता और हे देवेश! तुम्हारी ही महिमा से सभी प्राणी अपने-अपने धर्मों में निरत रहा करते हैं। और भी, हे देवेश! तुम्हारी ही सत्कृपा से वर्णशंकर सन्तति की उत्पत्ति नहीं होती। हे देव! सत्पुरुषों के तुम सर्वदा एकमात्र शरण देने वाले कहे गये हो। हे जगन्नाथ! इस जगत् की मर्यादा के तुम एकमात्र परिपालन करने वाले हो। हे सभी देवताओं में श्रेष्ठ! अपनी शरण में आई हुई मुझ भाग्यरहित की तुम रक्षा करो। इस राजपुत्र (सत्यवान्) के माता और पिता बहुत दुःखी हैं।।९-११।।

यम उवाच

स्तवेन भक्त्या धर्मज्ञे मया तुष्टेन सत्यवान्।
तव भर्ता विमुक्तोऽयं लब्धकामा व्रजाबले।।१२।।
राज्यं कृत्वा त्वया सार्धं वत्सराशीतिपञ्चकम्।
नाकपृष्ठमथाऽऽरुह्य त्रिदशैः सह रंस्यते।।१३।।
त्वयि पुत्रशतं चापि सत्यवाञ्जनयिष्यति।
ते चापि सर्वे राजानः क्षत्त्रियास्त्रिदशोपमाः।।१४।।
मुख्यास्तवन्नाम पुत्रास्ते भविष्यन्ति हि शाश्वताः।

यमराज ने कहा-हे धर्म के महत्त्वों को जानने वाली! तुम्हारी इस स्तुति से तथा तुम्हारी इस अगाध भक्ति से मैं परम सन्तुष्ट होकर तुम्हारे पति सत्यवान् को छोड़ देता हूँ। अब तू सफल मनोरथ हो गई, हे अबले! अब तो तू जा। तुम्हारे साथ यह सत्यवान चार सौ वर्षों तक राज्य सुख का अनुभव कर अन्तकाल में स्वर्गलोक की प्राप्ति कर देवताओं के साथ विहार करेगा। तुम्हारे संयोग से सत्यवान् को सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, वे सबके सब देवताओं के समान तेजस्वी तथा उच्च क्षत्रिय स्वभाव सम्पन्न राजा होंगे और चिरकार तक जीवित रहते हुए तुम्हारे ही नामों से प्रसिद्ध होंगे।।१२-१४.५।।

पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि॥१५॥
मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः॥१६॥
स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे कल्यमुत्थाय यस्तु माम्।
कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति॥१७॥

तुम्हारे पिता को भी तुम्हारी माता के संयोग से सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और वे भी मालती में उत्पन्न होने के कारण मालव नाम से विख्यात होंगे और चिरकाल तक जीवित रहते हुए-पौत्रादि से सुखी होंगे और देवताओं के समान ऐश्वर्य सम्पन्न होकर क्षत्रियोचित गुणों का पालन करेंगे। हे धर्मज्ञे! जो कोई पुरुष प्रातः काल उठकर इस स्तोत्र द्वारा मेरा कीर्तन करेगा, वह भी दीर्घायु की प्राप्ति करेगा।।१५-१७।।

मत्स्य उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा।
अदर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्धं सह मृत्युना च॥१८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने सत्यवज्जीवितलाभो नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११२०१।।

—❦—

मत्स्य भगवान् ने कहा-इतनी बातें सावित्री से कर महात्मा यमराज उस राजपुत्र सत्यवान् को वहीं छोड़कर काल तथा मृत्यु के समेत अदृश्य हो गये।।१८।।

।।दो सौ तेरहवाँ अध्याया समाप्त।।२१३।।

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सास और ससुर की सावित्री की प्रसन्नता

मत्स्य उवाच

सावित्री तु ततः साध्वी जगाम वरवर्णिनी। पथा यथागतेनैव यत्राऽऽसीत्सत्यवान्मृतः॥१॥
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः। कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे॥२॥
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः। उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा-इस प्रकार यमराज के अदृश्य हो जाने के बाद सुन्दरी पतिव्रता

सावित्री वहाँ से उस स्थान पर वापस लौट आई जहाँ पर सत्यवान् की मृत्यु हुई थी और अपने अंक में पति के शिर को स्थापित कर पूर्ववत् वहाँ बैठ गई। उस समय भगवान् भास्कर अस्ताचल पर प्रस्थित हो चुके थे। धर्मराज के पास से छूटकर धीरे-धीरे सत्यवान् भी अपनी आँखें मींजते हुए धीरे-धीरे पलकों को खोलकर ताकने लगे और उनके हृदय स्थल पर पुनः प्रस्फुरण होने लगा।।१-३।।

ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत्। क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति।।४।।
न जानामि वरारोहे कश्चासौ पुरुषः शुभे।
वनेऽस्मिंश्चारुसर्वाङ्गि सुप्तस्य च दिनं गतम्।।५।।
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिताभवती मया। अस्यद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा।।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु गमने त्वरिता भव।।६।।

इस प्रकार पुनः चेतनायुक्त होकर सत्यवान् ने प्रियतमा सावित्री से कहा- 'वह पुरुष कहाँ गया जो मुझे खींचे लिये जा रहा था? हे सुन्दरि! मैं उसे बिल्कुल नहीं पहचानता था कि वह कौन था? हे सभी अंगों से सुन्दरि! इस निर्जन वन में सोते हुए मैंने पूरा दिन बिता दिया और उपवास से थकी हुई तुमको विशेष कष्ट दिया। मुझ दुर्हृदय ने माता और पिता को भी कष्ट दिया। हे सुन्दर भौंहों वाली! मैं अब तुम्हें पुनः देखना चाहता हूँ, चलो, जल्दी करो।।४-६।।

सावित्र्युवाच

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो। आश्रमं तु प्रयास्यावः श्वशुरौ हीनचक्षुषौ।।७।।
यथावृत्तं च तत्रैव तव वक्ष्याम्यथाऽऽश्रमे। एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ।।८।।

सावित्री ने कहा-'हे प्रभो! यदि तुम्हें चलने की इच्छा है तो सूर्य के अस्त हो जाने पर मैं उस आश्रम को चलूँगी जहाँ पर नेत्रविहीन हमारी सास और ससुर बैठे हुए हमारी प्रतीक्षा करते होंगे और वहीं आश्रम में चलकर जो घटना घटित हुई है, उसे भी सुनाऊँगी'। इस प्रकार की बातें कर सावित्री ने पति के साथ वहाँ से आश्रम की ओर प्रस्थान किया।।७-८।।

आससादाऽऽश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा। एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः।।९।।
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव। प्रियपत्रपश्यन्वै स्नुषां चैवाथ कर्शिताम्।।१०।।
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह काननात्।।११।।

अनन्तर पतियुक्त राजपुत्री वहाँ पहुँची जहाँ श्वसुर का आश्रम था। इतने ही अवसर में राजा द्युमत्सेन अपनी स्त्री के साथ नेत्र ज्योति प्राप्त कर अति प्रसन्न हो रहे थे। हे भार्गव! इस प्रकार वहाँ पर उन्होंने आये हुए अपने प्रिय पुत्र और दुर्बलांगी पुत्रवधू को देखा। अति हर्ष में सने हुए तपस्वियों द्वारा सान्त्वना दिये जाते हुए राजा ने जंगल से पुत्रवधू के साथ आये हुए अपने प्रियपुत्र को देखा।।९-११।।

सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा। ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्त्रपुङ्गवम्॥१२॥
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान्राजनन्दनः।
अभिवाद्य ततः सर्वान्वने तस्मिंस्तपोधनान्॥१३॥

उस समय सुन्दरी राजपुत्री सावित्री ने सत्यवान् के साथ पत्नी समेत क्षत्रपति राजा द्युमत्सेन को प्रणाम किया। सभी धर्मों के महत्त्वों को जाननेवाले राजा ने दौड़कर अपने प्रियपुत्र सत्यवान् को गले लगाया और तदनन्तर उस वनप्रान्त में निवास करने वाले समस्त तपस्वियों को अभिवादन कर उन सबों के साथ उस रात वहीं पर निवास किया।।१२-१३।।

उवास तत्र तां रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित्। सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता॥१४॥
व्रतं समापयामास तस्यामेव तदा निशि। ततस्तूर्यैस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः॥१५॥
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे।
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम्॥१६॥
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम्। अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन्पुरे नृपः॥१७॥

रात में अनिन्दित चरित्र एवं सौन्दर्यशालिनी सावित्री ने उस घटना को, जैसे-जैसे घटित हुई थी, सुनाया और उसी रात में अपने व्रत को समाप्त भी किया। तदनन्तर उसी रात को जब तीसरा पहर बीत चुका था राजा की सारी प्रजा तुरुही आदि बाजों को बजाते हुए पुनः राज्य करने के लिए निमंत्रण देने को आई और यह सूचना दी कि राज्य में आपका शासन अब पूर्ववत् हो गया है। नेत्रहीन आपके राज्य को जिस राजा ने लड़कर जीत लिया था, उसे उसी आपके पुर में मन्त्रियों ने मिलकर मार डाला।।१४-१७।।

एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेन चतुरङ्गिणा।
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान्महात्मनः॥१८॥
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यापि वराङ्गना।

ऐसे सुखदायक समाचार को सुनकर राजा ने चतुरंगिणी सेना को साथ ले महात्मा धर्मराज के माहात्म्य से पुनः अपने समस्त राज्य को प्राप्त किया। सुन्दरी सावित्री ने भी अपने सौ भाईयों को प्राप्त किया।।१८.५।।

एवं पतिव्रता साध्वी पितृपक्षं नृपात्मजा॥१९॥
उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च। मोचयामास भर्तारं मृत्युपाशवशं गतम्॥२०॥
तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः।
तासां राजन्प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम्॥२१॥
तासां तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु।
तस्मात्सदा ताः परिपूजनीयाः कामान्समग्रानभिकामयानैः॥२२॥

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं सावित्र्याख्यानमुत्तमम्।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः॥२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११११२४॥

इस प्रकार राजा द्युमत्सेन की पुत्री पतिव्रता सावित्री ने अपने पिता तथा पति-दोनों के वंश वालों का उद्धार किया और मृत्यु के पाश में बँधे हुए अपने प्रति के प्राणों को बचाया। इसलिए हे राजन्! मनुष्यों को साध्वी पतिव्रता स्त्रियों की देवताओं के समान सर्वदा पूजा करनी चाहिये, उन्हीं की कृपा से यह त्रैलोक्य ठहरा हुआ है। उन पतिव्रता स्त्रियों के वाक्य इस चराचर जगत् में कभी भी मिथ्या नहीं होते। इसलिए जगत् में सभी मनोरथों की कामना करने वालों को सर्वदा इनकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस सावित्री के आख्यान को नित्य सुनता है, वह सभी प्रयोजनों की सफलता प्राप्त कर सुख का अनुभव प्राप्त करता है और कभी दुःख नहीं झेलता॥१९-२३॥

॥दो सो चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥२१४॥

❖❖❖

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजा की सहायक सम्पत्ति

मनुरुवाच

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किं नु कृत्यतमं भवेत्।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्ति यतो भवान्॥१॥

मनु ने कहा-हे भगवान्! अभिषेक होने के बाद राजा को उस समय क्या करना चाहिये? उन सब कार्यों को हमें बतलाईये; क्योंकि आप इस विषय को भली-भाँति जानने वाले हैं॥१॥

मत्स्य उवाच

अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना। सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम्॥२॥

मत्स्य भगवान् ने कहा-राजन्! राज्य की चिन्ता करने वाले राजा को चाहिये कि वह अभिषेचन काल के जल से सिर पर भीगते ही सहायकों (मन्त्रियों) की नियुक्ति करे; क्योंकि राज्य तो उन्हीं पर प्रतिष्ठित रहता है॥२॥

यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्। पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम्॥३॥

तस्मात्सहायान्वरयेत्कुलीनान्नृपतिः स्वयम्। शूरान्कुलीनजातीयान्बलयुक्ताञ्छ्रियाऽन्वितान्॥४॥

इस संसार में जो सबसे छोटा कार्य है, वह भी एक निस्सहाय व्यक्ति से दुष्करणीय है तो फिर राज्य जैसे महान् उत्तरदायित्वपूर्ण विषय के लिए क्या कहा जा सकता है? इसलिए राजा को चाहिये कि वह स्वयमेव उत्तम कुलोत्पन्न, शूर, उच्च जाति वाले, बलवान् श्रीमान् सहायकों की नियुक्ति करे।।३-४।।

रूपसत्त्वगुणोपेतान्सज्जनान्क्षमयाऽन्वितान्। क्लेशक्षमान्महोत्साहान्धर्मज्ञांश्च प्रियंवदान्॥५॥
हितोपदेशकालज्ञान्स्वामिभक्तान्यशोर्थिनः। एवं विधान्सहायांश्च शुभकर्मसु योजयेत्॥६॥
गुणहीनानपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम्। कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः॥७॥

रूपवान्, बलवान्, गुणवान, सज्जन, क्षमाशील, कष्टसहिष्णु, महोत्साही, धर्मज्ञ, प्रिय बोलने वाले, कल्याण का उपदेश करने वाले, स्वामिभक्त तथा यश के अभिलाषी-सहायकों को मांगलिक कर्मों से नियुक्त करना चाहिये। राजा को चाहिए कि जो कुछ गुणहीन भी सहायक हों; किन्तु अन्य गुण उनमें पाये जाते हैं, उन्हें भी उनके योग्य कार्यों में स्वयं नियुक्त करे।।५-७।।

कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषिता॥८॥
निमित्ते शकुनज्ञाने वेत्ता चैव चिकित्सते। कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसहस्त्वृजुः॥९॥
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित्।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्त्रियोऽथवा॥१०॥
प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः। चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते॥११॥

उत्तम कुलोत्पन्न, शीलवान्, धनुर्वेद में प्रवीण, हाथी और अश्व की शिक्षा में कुशल, मृदुभाषी, शकुन और अन्यान्य शुभाशुभ कारणों को जानने वाला, औषधियों को जानने वाला, कृतज्ञ, शूर, कर्मों में प्रवीण, कष्टसहिष्णु, सरल सेना की व्यूह रचना आदि तत्त्वों को जानने वाला, निस्तत्व एवं सार वस्तुओं एवं विषयों को समझने वाला, ब्राह्मण हो अथवा क्षत्त्रिय हो-ऐसे पुरुष को राजा को सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये। आकृति में लम्बे, रूपवान्, सभी कार्यों में दक्ष, प्रियवक्ता, अचंचल, सभी के चित्त को मोह लेने वाले को प्रतीहारी बनाना चाहिये।।८-११।।

यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः।
शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित्॥१२॥
विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः।
वक्ता नयस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत्॥१३॥

जैसा संदेश हो वैसा ही कहने वाला एवं देशी भाषाओं में जो पटु हो उसे दूत बनाना

चाहिये। वह दूत सामर्थ्यशाली, क्लेश सहिष्णु के विभाग को जानने वालादेशकालज्ञ भी हो। जो मौका आने पर स्वयं भी नीति की बातें कर सके, वह राजा का दूत हो सकता है।।१२-१३।।

प्रांशवोऽशयनाः शूरा दृढभक्ता निराकुलाः।
राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः॥१४॥
अनाहार्योऽनृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे।
ताम्बूलधारी भवति नारी वाऽप्यथ तद्गुणा॥१५॥

आकार में लम्बे, कम सोने वाले, शूरवीर, राजा में दृढ़भक्ति रखने वाले, कभी व्याकुल न होने वाले, कष्ट-सहिष्णु, हित में नियत रहने वाले-ऐसे पुरुषों को अंगरक्षा के कार्य में राजा को नियुक्त करना चाहिये। जो दूसरों से किसी प्रकार भी फोड़े न जा सकें, क्रूर स्वभाव के न हों, राजा में अगाध भक्ति रखने वाले हों-ऐसे पुरुष ताम्बूलवाहक के पद पर नियुक्त किये जा सकते हैं, अथवा इतने गुणों से विशिष्ट स्त्री भी हो तो वह भी रखी जा सकती है।।१४-१५।।

षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः।
सान्धिविग्राहिकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः॥१६॥
कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता। आयव्ययज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः॥१७॥
सुरूपस्तरुणः प्रांशुर्दृढभक्तिः कुलोचितः।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः॥१८॥

नीतिशास्त्र में कहे गये छः गुणों की विधियों के तत्त्वों को जानने वाला, देशी भाषाओं के विशारद, नीतिज्ञों को सन्धि एवं विग्रह का अधिकार देना चाहिये। नौकरों के किये गये और न किये गये कार्मों का लेखा रखने वाला, आय और व्यय को जानने वाला लोगों की वास्तविक स्थिति को जानने वाला, देशों की उपज का उचित ज्ञान रखने वाला, देशरक्षक बनाने योग्य होता है। सुन्दर आकृति वाला, युवक, लम्बे कद का, राज्य में अगाध भक्ति रखने वाला, कुलीन, शूरवीर तथा कष्टसहिष्णु को खड्गधारी बनाना चाहिये।।१६-१८।।

शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः। धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः॥१९॥
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः। हयायुर्वेदतत्त्वज्ञो भुवो भागविचक्षणः॥२०॥
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियंवदः। शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्तितः॥२१॥

शूरवीर, बलवान्, हाथी और घोड़ों की विशेषताओं को जानने वाला सभी प्रकार क्लेशों को सहन करने में समर्थ तथा पवित्र व्यक्ति को राजा को धनुर्धारी बनाना चाहिये। शुभाशुभ सूचक शकुनों को जानने वाले, अश्वशिक्षा में विशारद, अश्वों के आयुर्विज्ञान के वेत्ता, पृथ्वी के समस्त भागों की विशेषताओं को जानने वाले, रथियों के बल एवं निर्बलता को जानने वाले, स्थिर दृष्टि, प्रियवचन बोलने वाले, शूरवीर तथा विद्वान् पुरुष को योग्य सारथी कहा गया है।।१९-२१।।

अनाहार्यः शुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदां वरः। सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते॥२२॥

सूदशास्त्रविधानज्ञाः पराभेद्याः कुलोद्गताः।
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः॥२३॥
समःशत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः।
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणो भवेत्॥२४॥

किसी प्रकार भी दूसरों के कहने में न आने वाले, पवित्र, प्रवीण, औषधियों के गुणों और दोषों को जानने वालों में श्रेष्ठ, भोजन शास्त्र की विशेषताओं के वेत्ता को भोजनाध्यक्ष बनाना चाहिये। भोजन सम्बन्धी विधानों के जानने वाले, दूसरों से न फूटने वाले, वंश परम्परा से चले आने वाले पुरुषों को रसोई घर में भोजन बनाने का काम सौंपना चाहिये, उनके नख तथा केश साफ तथा कटे हुए होने चाहिये। शत्रु और मित्र में समता का व्यवहार करने वाले, सभी शास्त्रों के विशारद, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ एवं कुलीन व्यक्ति को धर्माध्यक्ष का पद सौंपना चाहिये।।२२-२४।।

कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः। सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥२५॥
लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै। शीर्षोपेतान्सुसम्पूर्णान्समश्रेणिगतान्समान्॥२६॥

अक्षरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः।

ऊपर कही हुई विशेषताओं से विशिष्ट श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सभासद नियुक्त करना चाहिये। जो सभी देशों के अक्षरों के अच्छे जानकार हो तथा सभी शास्त्रों में पटु हों, उन्हें सभी विभागों में लेखक का काम सौंपना चाहिये। ऊपर की शिरोरेखा से युक्त, सभी प्रकार से पूर्ण, समानान्तर तथा सीधी रेखा में लिखे गये, आकृति में बराबर अक्षरों को जो लिखता है, वही अच्छ लेखक कहा जाता है।।२५-२६.५।।

उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः॥२७॥
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम।
वाक्याभिप्रायतत्त्वज्ञो देशकालविभागवित्॥२८॥
अनाहार्ये भवेत्सक्तो लेखकः स्यान्नृपोत्तम।
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञः प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः॥२९॥
धर्माधिकारिणः कार्या जना दानकरा नराः।
एवंविधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जनाः॥३०॥

हे राजन्! अच्छे लेखक को उपाय सम्बन्धी वाक्यों में प्रवीण, सभी शास्त्रों में विशारद, अधिक प्रयोजन को थोड़े शब्दों में कहने की क्षमता रखने वाला, होना चाहिये। हे नृपोत्तम! उसी प्रकार अच्छे लेखक को वाक्यों के वास्तविक अभिप्राय को जानने वाला, देश और काल के विभाग का अच्छा ज्ञाता तथा किसी दूसरे के भेद की बातों को न बताने वाला होना चाहिये। हे

राजन्! मनुष्यों के हृदय की बातों तथा भावों को परखने वाले, दीर्घकाय, निर्लोभी तथा दानशील व्यक्तियों को धर्माधिकारी का पद देना चाहिये। एवं राजा को उसी प्रकार के योग्य मनुष्यों को द्वारपाल का पद भी सौंपना चाहिये।।२७-३०।।

लोहवस्त्राजिनादीनां रत्नानां च विधानवित्।
विज्ञाता फल्गुसाराणामनाहार्यः शुचिः सदा॥३१॥
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्षः प्रकीर्तितः॥३२॥
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नराः। व्ययद्वारेषु च तथा कर्तव्याः पृथिवीक्षिता॥३३॥

लौह, वस्त्र, मृगचर्मादि तथा रत्नों की परख करने वाला, मूल्यावान् तथा व्यर्थ दोनों प्रकार की वस्तुओं का जानकार, दूसरों से न फूटने वाला, सर्वदा पवित्र रहने वाला, निपुण, धैर्यशाली तथा विवेकी व्यक्ति को धनाध्यक्ष बनना चाहिये। आय के सभी विभागों में धनाध्यक्ष के समान पुरुषों को नियुक्त करना चाहिये। उसी प्रकार व्यय के सभी स्थानों पर भी राजाओं के उपर्युक्त गुणों वाले व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए।।३१-३३।।

परम्परागतो यः स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते। अनाहार्यः स वैद्यः स्याद्धर्मात्मा च कुलोद्गतः॥३४॥
प्राणाचार्यः स विज्ञेयो वचनं तस्य भूभुजा।
राजन्राज्ञा सदा कार्यं यथा कार्यं पृथग्जनैः॥३५॥
हस्तिशिक्षविधानज्ञो वनजातिविशारदः। क्लेशक्षमस्तथा राज्ञो गजाध्यक्षः प्रशस्यते॥३६॥

वंशपरम्परा से होने वाले आठों अंगों की चिकित्सा में सुविज्ञ हो, दूसरों से फूट न सके, धर्मात्मा तथा सत्कुलोत्पन्न हो-ऐसे व्यक्ति को वैद्य बनाना चाहिये। हे राजन्! उस वैद्य को प्राणाचार्य जानना चाहिये और सर्वसाधारण की भाँति राजा को उसके वचनों का सर्वदा पालन करना चाहिये। जंगली जाति वालों के रीति-रस्मों का अच्छा ज्ञाता, हस्ती की शिक्षा का विशेषज्ञ एवं दुःख सहन करने में समर्थ व्यक्ति राजा का प्रशंसनीय गजाध्यक्ष होता है।।३४-३६।।

एतैरेव गुणैर्युक्तःस्थविरश्च विशेषतः। गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते॥३७॥
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः। अश्वाध्यक्षो महीभर्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते॥३८॥
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः।
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु॥३९॥

इन्हीं उपर्युक्त गुणों से युक्त-विशेषकर अवस्था में वृद्ध-व्यक्ति को राजाओं के सभी कार्यों में गजारोही (पीलवान) बनाना अच्छा कहा गया है। अश्वों को शिक्षा में प्रवीण, अश्वों की चिकित्सा में विशारद एवं स्थिर आसन में बैठने वाले व्यक्ति को राजाओं का श्रेष्ठ अश्वाध्यक्ष कहा गया है। शत्रुओं से न फूटने वाला, शूरवीर, बुद्धिमान्, सत्कुलीन एवं सभी कार्यों में उत्सुक व्यक्ति को राजा को दुर्गाध्यक्ष (गढ़पति) बनाना चाहिये।।३७-३९।।

वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः। दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थापितः परिकीर्तितः॥४०॥

यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते।

अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते॥४१॥

वास्तु-विद्या में प्रवीण, परिश्रमी, हस्तलाघव दिखाने वाला, दीर्घदर्शी तथा शूर व्यक्ति को स्थपति (कारीगर) के पद पर नियुक्त करना चाहिये। यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, विमुक्त, मुक्तधारित इत्यादि अस्त्रों के परिचालन की विशेषताओं में सुनिपुण एवं अव्यग्र व्यक्ति को अस्त्राचार्य के पद पर रखना चाहिये।।४०-४१।।

वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः।

राज्ञामन्तः पुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते॥४२॥

एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे। परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु॥

स्थापनाजातितत्त्वज्ञाः सततं प्रतिजागृताः॥४३॥

वृद्ध, सत्कुलोत्पन्न, मधुरभाषी, पिता तथा पितामह से उसी कार्य पर नियुक्त होने वाले पवित्र तथा विनीत व्यक्ति को राजाओं के अन्तःपुर के अध्यक्ष पर पर नियुक्त करना चाहिये। राजाओं के इन सात अधिकार के पदों पर भली-भाँति परखकर सभी कार्यों में परीक्षा करके तथोक्त गुणों वाले सातों व्यक्तियों को अधिकारी बनाना चाहिये। राजाओं के सभी कार्यों में नियुक्त किये गये व्यक्तियों को सतत उद्योगशील, जागरूक तथा सभी कार्यों में पटु होना चाहिये।।४२-४३।।

राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः। कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह॥४४॥

उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः। उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत्॥४५॥

नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात्।

हे राजन्! राजाओं के अस्त्रागार में नियुक्त व्यक्ति को भी दक्ष तथा उद्यमशील होना चाहिये। राजाओं के कार्यों की गणना नहीं की जा सकती, इसलिए उसे चाहिये कि उत्तम, मध्यम तथा अधम कार्यों को भली-भाँति समझबूझ कर तदनुकूल उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुषों पर सौंपना चाहिए। इसी सौंपे गये कार्यों के उलट-फेर हो जाने से-अर्थात् अधम व्यक्ति को उत्तम कार्य तथा उत्तम व्यक्ति को अधमकार्य सौंप देने से-राजा विनाश को प्राप्त होता है।।४४-४५.५।।

नियोगं पौरुषं भक्तिं श्रुतं शौर्यं कुलं नयम्॥४६॥

ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता। पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वससारनिबन्धनात्॥४७॥

बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रं पृथक्पृथक्।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम्॥४८॥

राजा को चाहिये कि अपने पुरुषों के निश्चय (लगन), पौरुष भक्ति, शास्त्रज्ञान, शूरता, कुल तथा नीति को भली-भाँति जान बूझकर उनका वेतन निश्चित करे। कोई दूसरा व्यक्ति न जानने

पावे-इस अभिप्राय से राजा को अपने मतलब की बात में अनेक मन्त्रियों से अलग-अलग सम्मति लेनी चाहिये, एक मन्त्री से भी दूसरे मन्त्री की दी गई सम्मति को नहीं बतलाना चाहिये।।४६-४८।।

क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम्।
निश्चयस्तु सदा मन्त्रे कार्य एकेन सूरिणा।।४९।।
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात्।
एकस्यैव महीभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः।।५०।।
ब्राह्मणान्पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान्।
नासच्छास्त्रवतो मूढांस्ते हि लोकस्य कण्टकाः।।५१।।

राजा को सर्वदा किसी भी व्यक्ति का विश्वास नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् राजा को चाहिये की सम्मति लेने पर वह सर्वदा अकेले ही निश्चय करे कि उसे क्या करना चाहिये? अथवा दूसरे लोगों की बुद्धि के सहारे से भी निश्चय की प्राप्ति हो जाती है। उस अकेले किये गये निश्चय में भी राजा को चाहिये कि फिर से विचार कर ले। राजा को तीनों वेदों के पारगामी ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिये। जो शास्त्रों के जानने वाले नहीं हैं, उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वे कण्टक रूप से लोक को हानि पहुँचाने वाले हैं।।४९-५१।।

वृद्धान्हि नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
तेभ्यः शिक्षेत् विनयं विनीतात्मा च नित्यशः।।
समग्रां वशगां कुर्यात्पृथिवीं नात्र संशयः।।५२।।

पवित्र आचरण वाले, वेदवेत्ता, वृद्ध ब्राह्मणों की राजाओं को नित्य सेवा करनी चाहिये, उन्हीं ब्राह्मणों से विनयावनत होकर राजा को नित्यशः विनय की शिक्षा भी लेनी चाहिये। ऐसा करने से वह समग्र वसुन्धरा को अपने वश में कर सकता है-इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।५२।।

बहवोऽविनयाद् भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः।
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे।।५३।।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः।।५४।।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।५५।।

अविनय के कारण बहुतेरे राजा लोग अपने परिजन एवं अनुचरों के साथ नष्ट हो गये और अनेक भाग कर वन में निवास करने वाले राजाओं ने विनय से पुनः अपने राज्यश्री को प्राप्त किया। राजाओं को तीनों विद्याओं के सुविज्ञों द्वारा तीनों विद्या- दण्डनीति, शाश्वती, आन्वीक्षिकी तथा आत्मविद्या की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये तथा सर्वसाधारण से लौकिक वाताओं की सूचना

प्राप्त करनी चाहिये। उसे सर्वदा रात और दिन में अपनी इन्द्रियों पर अधिकार रखना चाहिये। जितेन्द्रिय राजा ही अपनी प्रजाओं को वश में रख सकता है।।५३-५५।।

यजेत राजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च।।५६।।
सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्।
स्यात्स्वाध्यायपरो लोके वर्तेत पितृबन्धुवत्।।५७।।
आवृत्तानां गुरुकुलादि्द्वजानां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्योऽभिधीयते।।५८।।

राजा को अनेक प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये और धर्मार्थ ब्राह्मणों को विविध योग्य सामग्रियाँ तथा सम्पत्ति का दान देना चाहिये। बुद्धिमान् कर्मचारियों द्वारा राजा को चाहिये कि अपने राष्ट्र से वार्षिक कर वसूल करे। उसे सर्वदा स्वाध्याय में लीन रहना चाहिये तथा लोगों के साथ पिता और भाई का-सा व्यवहार रखना चाहिये। राजा को गुरुकुल से विद्याध्ययन समाप्त कर लौटे हुए ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। राजाओं की यह अक्षय ब्रह्मविधि कही गई है।।५६-५८।।

तं च स्तेना न वाऽमित्रा हरन्ति न विनश्यति।
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्रह्मो वै ह्यक्षयो विधिः।।५९।।
शमोत्तमाधमै राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः। न निवर्तेत सङ्ग्रामात्क्षात्त्रं व्रतमनुस्मरन्।।६०।।

उसके ऐसा करने से चौर तथा शत्रुगण उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते, न किसी अन्य कारण से ही उसका विनाश हो सकता है। इसलिए राजा को इस अक्षय ब्रह्मविधि का पालन तो अवश्यमेव करना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह अपने उत्तम, मध्यम तथा अधम अनुचरों द्वारा प्रजा का, जब जैसी आवश्यकता पड़े पालन करे और अपने छात्रधर्म का स्मरण कर संग्राम से भी कभी विचलित न हो।।५९-६०।।

सङ्ग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां निःश्रेयसं परम्।।६१।।
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम्। योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत्।।६२।।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथा कार्यं विशेषतः। स्वधर्मप्रच्युतान्राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा।।६३।।
आश्रमेषु तथा कार्यमन्नं तैलं च भाजनम्।
स्वयमेवाऽऽनयेद्राजा सत्कृतान्नावमानयेत्।।६४।।

संग्राम भूमि से विचलित न होना, प्रजाओं का विधिवत् परिपालन एवं ब्राह्मणों की शुश्रूषा-ये तीन धर्म राजाओं के लिए परम कल्याणकारी हैं। दुरावस्था में पड़े हुए असहाय, वृद्ध एवं विधवा

स्त्रियों- के योगक्षेम एवं जीविका का प्रबन्ध राजा को करना चाहिये। विशेष रूप से वर्णाश्रम की व्यवस्था का ध्यार रखना चाहिये। राजा को चाहिये कि अपने धर्म से भ्रष्ट हुए लोगों को अपने-अपने धर्मों में पुनः स्थापित करे, इसी प्रकार चारों आश्रमों पर भी उसे देख-रेख करनी चाहिये। अतिथि के लिए अन्न, तैल तथा पात्रों की व्यवस्था उसे स्वयमेव करनी चाहिये। सम्माननीय व्यक्तियों का अपमान नहीं करना चाहिये।।६१-६४।।

तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मानमेव च। निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत्।।६५।।
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः।

तपस्वी के लिए राजा को चाहिये कि अपने सभी कर्मों को, राज्य को तथा अपने आप को समर्पित करके और प्रयत्नपूर्वक उसकी देवता के समान चिरकार तक पूजा करे।।।६५।।

वक्रां ज्ञात्वा न सेवेत प्रतिबाधेत चाऽऽगताम्।।६६।।
नास्य च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु। गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः।।६७।।

मनुष्यों से दो प्रकार की सरल और कुटिल बुद्धियों का पाठ सीखना चाहिये, जिनमें से कुटिल बुद्धियों को जान तो ले; पर उसका प्रयोग न करे, केवल दूसरे द्वारा प्रयुक्त की गई कुटिलता को व्याहत करने के लिए उसका प्रयोग करे। राजा के छिद्र को दूसरा कोई न जान सके; किन्तु वह दूसरे के छिद्रों तक पहुँच सके। वह कछुए के अंगों की भाँति अपने छिद्रों को अपने ही विवर में समेटकर रखे।।६६-६७।।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।।६८।।
विश्वासयेच्चाप्यपरं तत्त्वभूतेन हेतुना। बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत्।।६९।।
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत्। दृढप्राहरी च भवेत्तथा शूकरवन्नृपः।।७०।।
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत्।
तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः।।७१।।

कभी अविश्वसनीय व्यक्ति का विश्वास न करे, विश्वसनीय भी हो तो उसका अतिविश्वास न करे; क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ जो भय है, वह मूलसमेत नाश का कारण होता है। यथार्थ कारण को प्रकाशित करते हुए दूसरों को अपनी बात पर विश्वास दिलाना चाहिये। बकुले की भाँति उसे सर्वदा की चिन्ता में लीन रहना चाहिये, सिंह की भाँति पराक्रम दिखलना चाहिये। राजा गीदड़ की भाँति अवसर पाते ही पलायन करे तथा खरगोश की भाँति कूद-कूद कर चले तथा सुग्गे की तरह दृढ़ प्रहार करने वाला बने। राजा मोर की भाँति विचित्र आकार वाला हो, कुत्ते की भाँति दृढ़ भक्ति करे तथा कोकिल की भाँति मृदुभाषी हो।।६८-७१।।

काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत्। नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं व्रजेत्।।
वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तमम्।।७२।।

न गाहेज्जनसम्बाधं न चाज्ञातजलाशयम्। अपरीक्षितपूर्वं च पुरुषैराप्तकारिभिः॥७३॥
नाऽऽरोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत्॥७४॥

राजा को चाहिये कि वह सर्वदा कौऐ की भाँति सशंकित रहे, दूसरे लोग जिस स्थान को जान सकें ऐसे स्थान पर निवास करे, बिना एक बार परीक्षा किये हुए भोजन तथा स्थान को ग्रहण न करे। हे मनुजश्रेष्ठ! इसी प्रकार उसे वस्त्र, पुष्प, अलंकार एवं अन्यान्य दैनिक आवश्यक सामग्रियों को एक बार परीक्षा कर लेने के बाद काम में लाना चाहिये। बहुत-सी भीड़ जहाँ पर इकट्ठी हो, वहाँ पर स्नान न करे, न उस जलाशय में स्नान करे, जो पहले से विश्वस्त पुरुषों द्वारा परीक्षित न हो अथवा अज्ञात हो। दुष्ट हाथी अविनीत तथा अशिक्षित अश्व पर आरोहण न करे, न बिना जानी हुई स्त्री से समागम करे। वह देवोत्सव के अवसर पर देवालयों में निवास भी न करे॥७२-७४॥

नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राताऽश्रान्तो भवेन्नृपः।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः॥७५॥
राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता।

हे धर्मज्ञ! राजा को सर्वदा राज्यलक्ष्मी (राज्यचिह्न) से सुसम्पन्न, दीनरक्षक तथा उद्यमी होना चाहिये। पृथ्वी को जीतने की इच्छा रखने वाले राजा को सर्वदा सरल स्वभाव वाले अनुचरों का पालन, पोषण तथा सम्मान करना चाहिये और उन्हें ही सहायक रखना चाहिये। धार्मिक कार्यों में धर्मिक, संग्राम में शूरवीर, आय के विभागों में उसके विशेषज्ञ तथा सच्चरित्र एवं पवित्र आचरण वाले सहायकों को सर्वत्र नियुक्त करना चाहिये। यह नपुंसकों को स्त्रियों के साथ तथा निर्दयों को क्रूर कार्यों में रखे॥७५-७७.५॥

यथार्हं चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत्॥७६॥
धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सङ्ग्रामकर्मसु। निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन्॥७७॥
स्त्रीषु षण्डं नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणकर्मसु। धर्मे चार्थे च कामे च नये च रविनन्दन॥७८॥
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम्।
समतीतोपदान्भृत्यान्कुर्याच्छस्तवनेचरान् ॥७९॥
तत्पादान्वेषिणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत्।
एवमादीनि कर्माणि नृपैः कार्याणि पार्थिव॥८०॥
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः। कर्माणि पापसाध्यानि यानि राज्ञो नराधिप॥८१॥
सन्तस्तानि न कुर्वन्ति तस्मात्तानि त्यजेन्नृपः।

हे रविनन्दन! धर्म, अर्थ, काम तथा निति के कार्यों में गुप्त पारिश्रमिक आदि देकर अनुचरों की परीक्षा ले, फिर परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले को प्रशंसनीय वनचर संन्यासी आदि के वेश में

नियुक्त कर यथार्थ बातों का पता लगाता रहे और उनके कार्यों की देखरेख रखने वालों को उनका अध्यक्ष बनाये। राजन्! इस प्रकार राजा को राज्य के कार्यों का संचालन करना चाहिये। राजा लोगों को सर्वदा तीखे स्वभाव तथा उग्र कर्मों वाला नहीं होना चाहिये, हे राजन्! जिन कर्मों को राजा पापाचरण द्वारा सिद्ध कर सकता है; किन्तु सत्पुरुष लोग जिसे नहीं करते, उसे राजा को भी छोड़ देना चाहिये।।७८-८१.५।।

नेष्यते पृथिवीशानां तीक्ष्णोपकरणक्रिया।।८२।।
यस्मिन्कर्माणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम्।
तस्मिन्कर्मणि तं राजा परीक्ष्य विनियोजयेत्।।
पितृपैतामहान्भृत्यान्सर्वकर्मसु योजयेत्।।८३।।
विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समागताः। राजा दायादकृत्येषु परीक्ष्य तु कृतान्नरान्।।
नियुञ्जीत महाभाग तस्य ते हितकारिणः।।८४।।
परराजगृहात्प्राप्ताञ्जनसङ्ग्रहकाम्यया। दुष्टान्वाऽप्यथवाऽदुष्टानाश्रयीत प्रयत्नतः।।८५।।

राजाओं को तीखे व्यवहार एवं उग्र कर्मों को तो नहीं ही करना चाहिये; क्योंकि उनसे प्रजावर्ग में असन्तोष फैलता है। जिस कार्य को करने में जो व्यक्ति विशेषता रखता है, उस कार्य में राजा को चाहिये कि परीक्षा लेकर उसी को नियुक्त करे। प्रायः सभी कार्यों में उन्हीं लोगों को नियुक्त करना चाहिये, जिनके पिता तथा पितामह उस काम को करते आये हैं, पर अपने जातीय कार्यों में उन्हें नहीं रखना चाहिये; क्योंकि उसमें तो परिवार के लोग ही रहते आये हैं। महाभाग! राजा को परिवारिक कार्यों में अपने बन्धुजनों को ही नियुक्त करना चाहिये; क्योंकि वे भी उसके कल्याण करने वाले होते हैं। अनुचरों को एकत्र करने की भावना से राजा को चाहिये कि जो अनुचर दूसरे राजा की ओर से उसके यहाँ आये हुए हैं-चाहे वे दुष्ट हों अथवा सज्जन हों-उनको प्रयत्नपूर्वक अपने यहाँ आश्रय दे।।८२-८५।।

दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्र भूमिपः। वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसङ्ग्रहकाम्यया।।८६।।
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद्भृशम्। ममायं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत्।।८७।।

किन्तु उनमें से दुष्टों को परखकर उनका विश्वास न करे, पर अनुचर संग्रह की कामना से जीविका का प्रबन्ध तो उनका भी करना चाहिये। राजा को चाहिये कि दूसरे देश से अपने यहाँ आये हुए व्यक्ति की विशेष आवभगत करे ओर यह समझकर उसे अतिशय सम्मान दे कि यह मेरे देश में आया हुआ व्यक्ति है।।८६-८७।।

कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप।
न च वाऽसंविभक्तांस्तान्भृत्यान्कुर्यात्कथञ्चन।।८८।।
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति चैकतः। भृत्या मनुजशार्दूल रुषिताश्च तथैकतः।।८९।।

तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञाय नित्यशः।
गुणिनां पूजनं कुर्यान्निर्गुणानां च शासनम्॥
कथिताः सततं राजनाजानश्चारचक्षुषः॥९०॥

नराधिप! राजा को अपने कार्यों के लिए स्वयं उद्योगी होना चाहिये, उसके लिए अनुचरों के समूह की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये और अपने यहाँ उन अनुचरों को, जो पहले अपने पद से पृथक् कर दिये गये हैं, कभी न नियुक्त करे। नरशार्दूल! शत्रुगण, अग्नि, विष, सर्प तथा नंगी तलवान- ये तो एक तरफ हैं तथा क्रुद्ध अनुचर एक तरफ हैं। राजा को चाहिये कि अपने गुप्तचरों द्वारा नित्य अनुचरों के चरित्र की देखरेख करता रहे और उनमें गुणवानों की पूजा तथा निर्गुणों को अनुशासित करता रहे। राजन्! इसी कारण राजा लोग सर्वदा चारचक्षु (गुप्तचर ही जिनकी आँखें हैं) कहे जाते हैं।।८८-९०।।

स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान्विचक्षणान्।
अनाहार्यान्क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथा चरान्॥९१॥
जनस्याविदितान्सौम्यांस्तथाऽज्ञातान्परस्परम्।
वणिजो मन्त्रकुशलान्सांवत्सरचिकित्सकान्॥
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान्राजा विनियोजयेत्॥९२॥
नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्चारस्यापि सुभाषितम्।
द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्तदा॥९३॥
परस्परस्याविदितौ यदि स्यातां च तावुभौ।
तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान्नियोजयेत्॥९४॥

अपना देश हो या किसी दूसरे राजा का देश हो- सभी स्थानों में ज्ञानी, विवेकशील, निर्लोभी एवं दूसरे से अपने अभिप्राय को न प्रकट करने वाले तथा कष्टसहिष्णु चरों को नियुक्त करना चाहिये। साधारण जनता जिन्हें न पहचानती हो, देखने में जो सरल दिखाई पड़ते हों, आपस में जो एक-दूसरे से परिचित हों (न परिचित हों) तथा वणिक्, मन्त्री, ज्योतिषी, वैद्य तथा संन्यासी के वेश में भ्रमण करने वाले हों, ऐसे गुप्तचरों को राजा को नियुक्त करना चाहिये। राजा एक चर की बात पर, यदि वह अच्छी लगने वाली भी हो, तब भी विश्वास न करे। उस समय उसे दो चरों की बातें तथा उनके आपसी सम्बन्ध को जानकर ही विश्वास करना चाहिये, ये वे दोनों आपस में अपरिचित हों, तब विश्वास करना चाहिये। इसलिये राजा को अतिगुप्त रहने वाले चरों को नियुक्त करना चाहिये।।९१-९४।।

राज्यस्य मूलमेनावद्या राज्ञश्चारदर्शिता। चाराणामपि यत्नेन राज्ञा कार्यं परीक्षणम्॥९५॥
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान्। सर्वं राज्ञां चरायत्तं तेषु यत्नपरो भवेत्॥९६॥

कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते। विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता॥९७॥
अनुरागकरं लोके कर्म कार्यं महीक्षिता। विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः॥९८॥

जनानुरागप्रभवा हि लक्ष्मी राज्ञां यतो भास्करवंशचन्द्र।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु॥९९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राज्ञां सहायसम्पत्तिर्नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११२२३।।

उन गुप्तचरों के कार्यों पर भी राजा को देखरेख करनी चाहिये। राज्य में अनुचरों का अनुराग एवं वैर तथा उनके गुण और अवगुण-इन सबकी देखरेख का कार्यभार राजाओं के गुप्तचरों पर ही है, अतः गुप्तचरों पर राजा को विशेष ध्यान रखना चाहिये। राजा को यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिये कि मेरे किस काम से लोग मुझसे अनुरक्त होंगे और किस काम से विरक्त हो जायेंगे, ऐसा समझकर उसे विशेषकर उन कामों से बचना चाहिये जो लोगों में विरक्त के कारण हों। हे सूर्यकुलश्रेष्ठ! राजाओं की समृद्धि उनकी प्रजाओं के अनुराग पर निर्भर मानी गई है, इस कारण से अच्छे राजाओं को पृथ्वी पर राज्य करते हुए सभी लोगों में अपने प्रति अनुराग उत्पन्न करना चाहिये।।९५-९९।।

।।दो सौ प्रन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।।२१५।।

❖❖❖

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भृत्य व्यवहार वर्णन

मत्स्य उवाच

यथाऽनुवर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविभिः। तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम॥
ज्ञात्वा सर्वात्मना कार्यं स्वशक्त्या रविनन्दन। राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्यं तत्प्रयत्नतः॥१॥

मत्स्य ने कहा-मनुजी! अब मे। उस बात को तुमसे बतला रहा हूँ कि राजा के अनुचरों को उसके साथ किस प्रकार के बर्ताव रखना चाहिये? सुनो।।१।।

आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः॥२॥
अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि। रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं तद्धितं भवेत्॥३॥

हे रविनन्दन! इन बातों को भली-भाँति समझकर अनुचरों को चाहिये कि वे भरसक

उनका पालन करें। राजा जो बात कह रहा हो उसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये, बीच में उसे टोककर अथवा उसकी बातों पर आक्षेप करते हुए नहीं बोलना चाहिये, राजसभा से अथवा जहाँ पर अन्य लोग जुटे रहते हैं, राजा के अनुकूल और प्रिय लगने वाली बातें करनी चाहिये, कल्याणकारी भी बात हो, यदि वह सुनने में अप्रिय मालूम हो तो उसे राजा जब एकान्त में रहे, तब कहे।।२-३।।

परार्थमस्य वक्तव्यं स्वस्थे चेतसि पार्थिव। स्वार्थः सुहृद्भिर्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन।।४।।
कार्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः। न च हिंस्यं धनं किञ्चिन्नियुक्तेन च कर्मणि।।५।।

नोपेक्ष्यस्तस्य मानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत्।
राज्ञश्च न तथा कार्यं वेषभाषितचष्टितम्।।६।।
राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विष्टं च वर्जयेत्।
राज्ञः समोऽधिको वा न कार्यो वेषो विजानता।।७।।

राजन्! दूसरे के मतलब की बातें जिस समय राजा का चित्त स्वस्थ और प्रसन्न हो, उस समय कहे, अपने मतलब की बातें अपने मित्रों से कहलाये, स्वयमेव कभी न कहे। सभी कार्यों के करते समय यह ध्यान रखे कि उसमें किसी प्रकार की क्षति न हो और किसी कार्य में नियुक्ति होने पर धन का अपव्यय न करे। राजा के समान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, सर्वदा कार्य करते समय राजा की प्रसन्नता की चिन्ता करनी चाहिये, कभी भूलकर भी राजा से वेश-भूषा, बातचीत एवं आकार-प्रकार की नकल नहीं करनी चाहिये। कभी राजा के क्रिया-कलापों का अनुसरण भी नहीं करना चाहिये, अर्थात् सभी कार्यों में उसके अप्रिय विषयों को वर्जित करना चाहिये। ज्ञानवान् पुरुष को राजा के समान अथवा उससे बढ़कर अपनी वेश-भूषा नहीं बनानी चाहिये।।४-७।।

द्यूतादिषु तथैवान्यत्कौशलं तु प्रदर्शयेत्। प्रदर्श्य कौशलं चास्य राजानं तु विशेषयेत्।।८।।
अन्तःपुरजनाध्यक्षैर्वैरिदूतैर्निराकृतैः। संसर्गं न व्रजेद्राजन्विना पार्थिवशासनात्।।९।।

निःस्नेहतां चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत्।
यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत्।।१०।।

द्यूतक्रीड़ा आदि में राजा की अपेक्षा अपने हस्तकौशल आदि का प्रदर्शन करे और उसी प्रसंग में अपनी-अपनी विशेषता प्रकट करे। हे राजन्! बिना राजा की अनुमति से अन्तपुरः के अध्यक्षों, शत्रुओं के दूतों तथा निकाले हुए अनुचरों के साथ न जाय। अपने प्रति राजा को स्नेहहीनता तथा अपमान के भाव-इन दोनों को प्रयत्नपूर्वक लोगों से छिपावे और राजा की गोपनीय बातें सर्वसाधारण के सम्मुख न प्रकाशित करे।।८-१०।।

नृपेण श्रावितं यत्स्याद्वाच्यावाच्यं नृपोत्तम।
न तत्संश्रावयेल्लोके यथा राज्ञोऽप्रियो भवेत्।।११।।

आज्ञाप्यमाने वाऽन्यस्मिन्समुत्थाय त्वरान्वितः।
किमहं करवाणीति वाच्यो राजा विजानता॥१२॥
कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत्।
सततं क्रियमाणेऽस्मिँल्लाघवं तु व्रजेद्ध्रुवम्॥१३॥
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि न चात्यर्थं पुनः पुनः।
न हास्यशीलस्तु भवेन्न चापि भृकुटीमुखः॥१४॥

हे नृपोत्तम! जो बात-चाहे वह सर्वसाधारण से कहने योग्य हो अथवा अयोग्य हो-राजा ही से कहनी हो, उसे कभी भूलकर भी अन्य लोगों से न बतलावे, ऐसा करने से राजा अप्रसन्न होता है। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि जिस समय राजा दूसरे व्यक्ति से किसी काम के लिए कह रहा हो, उस समय जल्दी से स्वयमेव उठकर राजा से कहे कि "मेरे लिए क्या आज्ञा है, मैं क्या करूँ?" पर ऐसी बात कार्य की अवस्था देखकर ही करना चाहिये, बराबर ऐसा कहते रहने से निश्चय ही राजा की दृष्टि में वह हेय हो जाता है। जो बातें राजा को प्रिय लगती हों, उन्हें उसके सामने बारम्बार नहीं करते रहना चाहिये, न तो उसके सामने अधिक हँसना ही चाहिये और न कभी भृकूटी हीताननी चाहिये।।११-१४।।

नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सकिरस्तथा।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन॥१५॥
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत्क्वचित्।

न बहुत बोलने रहना चाहिये, न अति गम्भीरता दिखाते हुए मौन ही रहना चाहिए, लापरवाही भी नहीं दिखानी चाहिये। और न कभी आत्मसम्मानी होने का भाव ही प्रदर्शित करना चाहिये। राजा के दुष्कर्म की चर्चा भूलकर भी नहीं करना चाहिये।।१५-१५.५।।

वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राजा दत्तं तु धारयेत्॥१६॥
औदार्येण न तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता। न चैवात्यशनं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत्॥१७॥

राजा जिन वस्त्रों, अलंकारों को समर्पित करे उन्हें बराबर धारण किये रहे, कल्याण की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि उन वस्त्रादि सामग्रियों को कभी भी उदारता वश किसी दूसरे को न दे डाले। राजा के सम्मुख कभी यदि भोजन का अवसर लगे तो अधिक नहीं करना चाहिये, न तो उसके सम्मुख कभी दिन में शयन ही करना चाहिये।।१६-१७।।

नानिर्दिष्टे तथा द्वारे प्रविशेत्तु कथञ्चन। न च पश्येत्तु राजानामयोग्यासु च भूमिषु॥१८॥
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा। पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनं तु विगर्हितम्॥१९॥
जृम्भां निष्ठीवनं कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम्।
भृकुटिं वान्तमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत्॥२०॥

कभी उस द्वार से राजभवन में प्रवेश नहीं करना चाहिये, जिससे प्रवेश का निर्देश नहीं किया गया है और न कभी अयोग्य स्थान पर स्थित राजा से साक्षात्कार ही करना चाहिये। राजा की दाहिनी बगल अथवा बाई बगल-जहाँ उपयुक्त हो- बैठना चाहिये, उसके सम्मुख या पीछे की ओर बैठना निषिद्ध माना गया है। जंभाई लेना, थूंकना, खखारना, खाँसना, क्रोधित होना, आसन पर तकिया लगाकर बैठना, ऊठँगकर रहना, भृकुटी चढ़ाना, कै करना या उद्गार निकालना- इन सब कार्यों को राजा के समीप वर्जित रखना चाहिये।।१८-२०।।

स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः।
स्वगुणाख्यापने युक्त्या परमेव प्रयोजयेत्।।२१।।
हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः। अनुजीविगणर्भाव्यं नित्यं राज्ञामतन्द्रितैः।।२२।।
शाठ्यं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा।
चापल्यं च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः।।२३।।
श्रुतेन विद्याशीलैश्च संयोज्याऽऽत्मानमात्मना।
राजसेवां ततः कुर्याद्भूतये भूतिवर्धनीम्।।२४।।

बुद्धिमान् पुरुष भूलकर भी राजा के सम्मुख अपने गुणों की प्रशंसा न करे, उसे यदि यह करना ही है तो युक्ति बल से दूसरों के द्वारा राजा के कानों में अपने गुणों की चर्चा डाले। सर्वदा हृदय को निर्मल रखने वाले, परमभक्तिमान, निरालस अनुचरों द्वारा राजा को अपना काम चलाना चाहिये। राजाओं के अनुचरों को सर्वदा दुष्टता, लोभ, छल, नास्तिकता, क्षुद्रता तथा चंचलता आदि दुर्गुणों से दूर रहना चाहिये। उनके अनुचरों को सर्वदा विद्या एवं सुजनता द्वारा आत्मसंयमपूर्वक मंगल कामना से राजा की कल्याण करने वाली सेवा करनी चाहिये।।२१-२४।।

नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः।
सचिवैश्चास्य विश्वासो न तु कार्यः कथञ्चन।।२५।।
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात्कामं ब्रूयात्तथा यदि।
हितं तथ्यं च वचनं हितैः सह सुनिश्चितम्।।२६।।
चित्तं चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना।
भर्तुराराधनं कुर्याच्चित्तज्ञो मानवः सुखम्।।२७।।
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता।
त्यजेद्विरक्तं नृपतिं रक्तादवृत्तिं तु कारयेत्।।२८।।

राजा के पुत्र, उसके प्रिय परिजन तथा मन्त्रिवर्ग को मिलने पर प्रणाम करना चाहिये; किन्तु उसके मन्त्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। बिना पूछे किसी भी बात को राजा से न

कहे, यदि कहे तो ऐसी बात हो जो राजा के हित करने वाले मनुष्यों से निश्चित कर ली गयी हो और वास्तव में सत्य तथा हित करने वाली भी हो। राजा के अनुचरों को नित्य ही उसकी वास्तविक मनोदशा का पता लगा लेना चाहिये। मनोभावों को परखने वाला अनुचर अपने स्वामी की सुखपूर्वक सेवा कर सकता है। अपने कल्याण की कामना करने वाला अनुचर को अपने ऊपर राजा के अनुराग एवं क्रोध–दोनों का पता लगाते रहना चाहिये और इस प्रकार जानकार विरक्त राजा की सेवा नहीं करनी चाहिये तथा अनुरक्त की सेवा में तत्पर रहना चाहिये।।२५-२८।।

विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा। आशावर्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च।।२९।।

अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्कलः।

वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै।।३०।।

प्रदेशवाक्यमुदितो न च सम्भावयेत्तथा। आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते।।३१।।

कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च। लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसङ्कीर्तनेऽपि च।।३२।।

क्योंकि विरक्त जो राजा है, वह अपना नाश कर विपक्षियों को उन्नत बनाता है, अपने को आशा देकर भी परिणाम का विनाश करता है। बिना क्रोध को अवसर आने पर भी वह क्रुद्ध की भाँति दिखाई पड़ता है तथा प्रसन्न होकर भी कुछ फल नहीं देता। जब कभी बातें करता है तो मदभरी हुई। इस प्रकार जीविका का उच्छेद भी कर देता। प्रदेश की बातों से प्रसन्न होकर भी वह पूर्ववत् सम्मान नहीं देता और सभी सेवाओं को करते समय उपेक्षा का भाव दिखाता है। कोई बात छिड़ने पर बीच में आक्षेप करता है तथा मध्य में ही भंग कर देता है, गुणों का कीर्तन करने पर भी विमुख होकर देखता है।।२९-३२।।

दृष्टिं क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि। विरक्तलक्षणं चैतच्छृणु रक्तस्य लक्षणम्।।३३।।

दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चाऽऽदरात्।

कुशलादिपरिप्रश्नं सम्प्रयच्छति चाऽऽसनम्।।३४।।

विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते। जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम्।।३५।।

काम करते समय अपनी आँखें दूसरी ओर किये रहता है–उपर्युक्त लक्षण विरक्त राजा के हैं। अब अनुरक्त राजा के लक्षण सुनो। अनुरक्त राजा भृत्य को देखकर प्रसन्न होता है, कही जाने वाली बात को आदरपूर्वक ग्रहण करता है और कुशल वार्ता पूछकर आसन देता है। एकान्त में अथवा निर्जन (अन्तःपुर) प्रदेश में भी उसे देखकर कभी सशंकित नहीं होता और वहाँ भी उसकी बातें सुनकर प्रसन्नमुख होता है।।३३-३५।।

अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते। उपायनं च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा।।३६।।

कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा। इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह।।

आपत्सु न त्यजेत्पूर्वं विरक्तमपि सेवितम्।।३७।।

मित्रं न चाऽऽपत्सु तथा च भृत्यं त्यजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम्।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम्॥३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मेऽनुजीविवर्तनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११३६१॥

उसकी अप्रिय बातों का भी अभिनन्दन करता है और थोड़ी-सी भी भेंट आदरपूर्वक स्वीकार करता है, दूसरी कथा के प्रसंग पर भी उसका स्मरण करता है और सर्वदा उसे देखकर प्रसन्नमुख रहता है। हे सूर्य कुलोत्पन्न! ये उपर्युक्त लक्षण अनुरक्त राजा के हैं, ऐसे राजा की सेवा करनी चाहिये। किन्तु विरक्त भी राजा आपत्तिकाल में पड़ गया हो तो सेवक को चाहिये कि पूर्वकाल की सेवा के नाते उस आपत्ति में उसका साथ न छोड़े। जो मनुष्य अपने अतिनिर्गुण भी मित्र, भृत्य तथा स्वामी को विशेषकर आपत्ति के अवसर पर नहीं छोड़ते, वे देवताओं के समूहों द्वारा सेवित देवराज इन्द्र के धाम को जाते हैं॥३६-३८॥

॥दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥२१६॥

❖❖❖

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजा के दुर्ग में औषधि आदि का संचय वर्णन

मत्स्य उवाच

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम्। रम्यमानतसामन्तं मध्यमं देशमावसेत्॥१॥
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथा परैः। किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरं तथा॥२॥

मत्स्य ने कहा—अपने अंगरक्षकों तथा सहायकों समेत राजा अपने राज्य के मध्य में, उस प्रदेश में निवास करे, जहाँ प्रचुर मात्रा में घास तथा ईंधन विद्यमान हो, रमणीय हो, जहाँ पर सामन्तगण विनम्र भाव से एकत्र रहते हों, वैश्य तथा शूद्रजन भी हों तथा जिस स्थान को शत्रुगण छीन न सकें। वहाँ कुछ ब्राह्मणगण निवास करते हों, कार्य करने वाले लोग भी अधिक संख्या में मिलें॥१-२॥

अदेवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम्। करैरपीडितं चापि बहुपुष्पफलं तथा॥३॥
अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि। समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम्॥४॥

अदेवमातृक हो, जहाँ के निवासी अति अनुरक्त हों, कर के भार से जहाँ लोग पीड़ित न हों,

पुष्पों तथा फलों की उत्पत्ति जहाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हो। शत्रुओं की सेना जहाँ पहुँच न सके– ऐसे स्थान पर राजा को आपत्तिकाल में निवास करना चाहिये। दुःख तथा सुख में समान रूप से सहायता पहुँचाने वाले प्रिय अनुचरगण जहाँ पर सर्वदा राजा की सेवा के लिए समुपस्थित रहते हों।।३-४।।

सरीसृपविहीनं च व्याघ्रतस्करवर्जितम्। एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत्।।५।।
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात्षण्णामेकतमं बुधः। धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च।।६।।
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव। सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते।।७।।

साँप आदि जन्तु, बाघ, सिंह आदि हिंसक पशु तथा चोर जहाँ न हों, ऐसे स्थान में राजा जिस प्रकार प्राप्त कर सके, आवास स्थान निश्चित करे। ऐसे उपर्युक्त साधनों से युक्त उत्तम स्थान को चुनकर बुद्धिमान् राजा नीचे लिखे गये छः दुर्गों में से किसी एक की रचना करे। धनुदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग तथा गिरिदुर्ग। हे राजन्! ये छः दुर्ग बताये गये हैं; किन्तु इन छहों दुर्गों में गिरिदुर्ग सबसे अच्छा माना गया है।।५-७।।

दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम्। शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्।।८।।
गोपुरं सकपाटं च तत्र स्यात्सुमनोहरम्। सपताकं गजारूढो येन राजा विशेत्पुरम्।।९।।

वह गिरि दुर्ग परिखा, खाई तथा ऊँची अट्टालिकाओं से युक्त रहे। उसके चारों ओर सैकड़ों तोपें रखी गयी हों। उस दुर्ग में एक कपाट के समेत अति मनोहर प्रवेश द्वार हो जिसमें से हाथी पर बैठा हुआ राजा अपनी पताका के समेत दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हो सके।।८-९।।

चतस्रश्च तथा तत्र कार्यास्त्वायतवीथयः। एकस्मिंस्तत्र वीथ्यग्रे देववेश्म भवेद्दृढम्।।१०।।
वीथ्यग्रे च द्वितीये च राजवेश्म विधीयते। धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके।।११।।
चतुर्थे त्वथ वीथ्यग्रे गोपुरं च विधीयते। आयतं चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम्।।१२।।

उस पुर में खूब चौड़ी, चार बीथियाँ बनवाये, जिसमें से एक बीथी के अग्रभाग में किसी देवता के सुदृढ़ मन्दिर हो, दूसरी वीथी के अग्रभाग में राजा का निवासस्थान हो, तीसरी वीथी के अग्रभाग में धर्माधिकारी का आवास स्थान हो, चौथी बीथी के अग्रभाग में दुर्ग का मुख्य प्रवेश द्वार हो। उस दुर्ग को चौकोना आयताकार अथवा वृत्ताकार बनवाना चाहिये।।१०-१२।।

मुक्तिहीनं त्रिकोणं च यवमध्यं तथैव च। अर्धचन्द्रप्रकारं च वज्राकारं च कारयेत्।।१३।।
अर्धचन्द्रं प्रशंसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन्। अन्यत्र तन्न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता।।१४।।
राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः। तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते।।१५।।
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्या वाऽप्युदङ्मुखी।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते।।१६।।

अथवा मुक्तिहीन (?) त्रिकोण, यवमध्य, अर्धचन्द्राकर तथा वज्राकार बनवाये। अर्धचन्द्रकार

दुर्ग को नदी के किनारे बनवाने में ही प्रशंसा की गयी है, दूसरे स्थानों पर विद्वानों को प्रयत्नपूर्वक उसे बनवाना चाहिये। राजभवन के दक्षिण भाग में राजा कोषगृह का निर्माण कराये और उसके दाहिने भाग में गजशाला निर्मित कराये। गजों की शाला पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होनी चाहिये। राजभवन में अग्निकोण में आयुधागार बनवाना चाहिये।।१३-१६।।

महानसं च धर्मज्ञ कर्मशालास्तथा पराः। गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः।।१७।।
मन्त्रिवेदविदां चैव चिकित्साकर्तुरेव च। तत्रैव च तथाभागे कोष्ठागारं विधीयते।।१८।।
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च। उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते।।१९।।
दक्षिणाभिमुखा वाऽथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः।
तुरगास्ते तथा धार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः।।२०।।

हे धर्म के तत्त्वों को जानने वाले! उसी कोने पर रसोईघर तथा अन्य कर्मशालाओं की भी रचना करानी चाहिये। राजभवन की बाईं ओर पुरोहित का भवन बनवाना चाहिये। उसी स्थल पर मन्त्रियों, वेदज्ञों तथा वैद्यों का भी निवास स्थान हो। और वहीं कोषागार की भी रचना हो। उसी स्थान के समीप गौओं तथा अश्वों के निवास की भी व्यवस्था हो। अश्वों की पंक्ति उत्तराभिमुख करनी चाहिये, अथवा दक्षिणाभिमुख हो सकती है; किन्तु अन्य दिशाओं में तो वर्जित ही रहे। अश्वों का जहाँ निवास हो, वहाँ रातभर तक दीपक का प्रकाश रहे।।१७-२०।।

कुक्कुटान्वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः।
धारयेदश्वादिशालासु सवत्सां धेनुमेव च।।२१।।
अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः।।२२।।
अस्तं गते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।

मुर्गे, बन्दर अथवा विशेषकर मर्कटों को घुड़साल में अवश्य बाँधना चाहिये तथा बछड़े सहित गौ भी बाँधी जाय। अश्वों का कल्याण चाहने वालों को चाहिये कि अश्वों की शाला में प्रयत्नपूर्वक बकरियों को भी रखें। गौ, हाथी, अश्वादि की शालाओं में से उनके गोबर, लीद आदि के निकालने की भी व्यवस्था देवाधिदेव भगवान् भास्कर के अस्त हो जाने पर न की जाय।।२१-२२.५।।

तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन्।।२३।।
दद्यादावसथास्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः। योधानां शिल्पिनां चैव सर्वेषामविशेषतः।।२४।।
दद्यादावसथान्दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान्। गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैव च।।२५।।
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः। कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते।।२६।।

उन-उन स्थानों में, उन-उन पशुओं के सारथियों को भी राजा स्थान देकर क्रमशः टिकाने की व्यवस्था करा दे तथा योद्धा, शिल्पी और समय-समय पर उपयुक्त सम्मति देने वालों को तो

सभी लोगों से बढ़कर सुविधा देकर राजा को टिकाना चाहिये। उसी प्रकार कल्याण करने वाले गौ, अश्व तथा हाथी के रोगों तथा औषधियों के विशेषज्ञ वैद्यों को राजा अधिक संख्या में अपने दुर्ग में आश्रय दे; क्योंकि दुर्ग में रोगों की प्रबलता रहती है। स्तुति-पाठ करने वाले चारणों तथा ब्राह्मणों की भी दुर्ग में रहने की व्यवस्था हो।।२३-२६।।

न बहूनामतो दुर्गे विना कार्यं तथा भवेत्। दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः।।२७।।
सहस्त्रघातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते। दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा।।२८।।
सञ्चयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते। धनुषां क्षेपणीयानां तोमराणां च पार्थिव।।२९।।
शराणामथ खड्गानां कवचानां तथैव च। लगुडानां गुडानां च हुडानां परिघैः सह।।३०।।

अश्मनां घ प्रभूतानां मुद्गराणां तथैव च।
त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणां च पार्थिव।।३१।।
प्रासानां च सशूलानां शक्तीनां च नरोत्तम।
परश्वधानां चक्राणां वर्मणां चर्मभिः सह।।३२।।

कुद्दालरज्जुवेत्राणां पीठकानां तथैव च। तुषाणां चैव दात्राणामङ्गाराणां च सञ्चयः।।३३।।

सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां सञ्चयश्चात्र चेष्यते।
वादित्राणां च सर्वेषामोषधीनां तथैव च।।३४।।

इनके अतिरिक्त बिना कार्य के किसी भी व्यक्ति को दुर्ग में रहने का स्थान नहीं देना चाहिये। उस दुर्ग में विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र सर्वदा प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत रखने चाहिये। सभी प्रकारे अस्त्र-शस्त्रों के संग्रह की दुर्ग में विशेष प्रशंसा की गयी है। राजन्! धनुष, बाण, क्षेपणीय, तोमर, तलवार, लाठी, गुड, हुड, परिघ, पत्थर, मुद्गर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्रास (भाला), शूल, शक्ति, परश्वध, चक्र आदि शस्त्रास्त्र एवं कवच, चर्म (ढाल), कुदाल, रस्सी, बेंत, पीठक, देष (भूषा), दात्र, अंगार (कोयला) इन सबों को भी संचय रहना चाहिये। इस दुर्ग में सभी प्रकार के शिल्पियों के पात्रों का भी संचय रहना चाहिये, उसी प्रकार सभी प्रकार के बाजनों तथा औषधियों का भी संचय करना आवश्यक है।।२७-३४।।

यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः। गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानां तथैव च।।३५।।

वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह।
गोचर्मपटहानां च धान्यानां सर्वतस्तथा।।३६।।

तथैवाभ्रपटानां च यवगोधूमयोरपि। रत्नानां सर्ववस्त्राणां लोहानामप्यशेषतः।।३७।।

प्रचुर मात्रा में घास तथा ईंधन का भी संचय रहना चाहिये। गुड़, सभी प्रकार के तेल तथा गोरस का भी संचय हो। वसा, मज्जा, हड्डियाँ तथा स्नायु भाग के भी संचय रहें। गोचर्म, नगाड़े तथा सभी प्रकार के अन्नों का भी वहाँ संचय रखना चाहिये। उसी प्रकार तम्बुओं का भी संग्रह रखना

चाहिये। जव और गेहूँ, रत्न, सभी प्रकार के वस्त्र तथा सभी प्रकार के लौह का संचय करना चाहिये।।३५-३७।।

कलायमुद्गमाषाणां चणकानां तिलैः सह। तथा च सर्वसस्यानां पांसुगोमययोरपि॥३८॥
शणसर्जरसं भूर्जं जतु लाक्षा च टङ्कणम्। राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किञ्चन॥३९॥

कुम्भाश्चाऽऽशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा।
मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम्॥४०॥

कलाथ, मूँग, उड़द, चना, तिल तथा अन्यान्य प्रकार के अन्न, धूल, गोबर, सन, भोजपत्र, जस्ता, लाह, टांकी (पत्थर तोड़ने की टांकी) आदि का भी राजा अपने दुर्ग में संचय करे तथा अन्यान्य उपयोगी सामग्रियों की भी प्रचुर मात्रा में रखे। सर्पों के विषों से भरे हुए घड़े तथा बाघ और सिंह आदि हिंसक जन्तु भी दुर्ग में रखने चाहिये। सभी प्रकार के मृग तथा पक्षी भी रखे जाने चाहिये, पर यह ध्यान रहे कि उनमें कोई एक-दूसरे को किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सकें।।३८-४०।।

स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक्।
कर्तव्यानि महाभाग यत्नेन पृथिवीक्षिता॥४१॥

अतः विरोधियों को एक-दूसरे से पृथक् तथा गोपनीय रखे। महाराज! राजा को यत्नपूर्वक इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।।४१।।

उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया॥४२॥

प्रजाजन की कल्याण भावना से राजा को अपने दुर्ग में उपयुक्त तथा अन्यान्य उपयोगी वस्तुओं का संग्रह गुप्त रूप में अवश्य करना चाहिये।।४२।।

जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूषकान्। शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च॥४३॥
माषपर्णी च मेदे द्वे शारिवे द्वे बलात्रयम्। वीरा श्वसन्ती वृष्या च बृहती कण्टकारिका॥४४॥
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूर्दर्भरेणुका। मधुपर्णी विदार्ये द्वे महाक्षीरा महातपाः॥४५॥
धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डकं विषः। पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गुखर्जूरयष्टिकाः॥४६॥
शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यश्छत्रातिच्छत्रवीरणाः। इक्षुरिक्षुविकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम॥४७॥
सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम्। मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका॥४८॥

शतावरीमधूके च पिप्पलं तालमेव च।
आत्मगुप्ता कट्फलाख्या दार्विका राजशीर्षकी॥४९॥
राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा।
कालशाकं पद्मबीजं गोवल्ली मधुवल्लिका॥५०॥

शीतपाकी कुलिङ्गाक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका। पर्वतत्रपुसौ चोभौ गुञ्जातकपुनर्नवे॥५१॥
कसेरुका तु काश्मीरी बिल्वशालूककेसरम्।
शूकधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि॥५२॥

जीवक, ऋषिभक, काकोली, इमली, अड़सा, शालपर्णी, भृङ्गपार्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दोनों प्रकार के शारिवा, तीनों बलाएँ (एक ओषधि) श्वसन्ती, वृष्या, बृहती, कण्टकारिका, शृंगी, शृंगाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, कुश, रेणुका, मधुपर्णी, दोनों विदारी, महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवी, कटुक, रेड़, विष, शतपर्णी, मृद्वीका, फल्गु, खजूर, यष्टिका, शुक्र, अतिशुक्र, काश्मरी, क्षत्र, अतिक्षत्र, वीरण, ईख और ईख से होने वाली अन्यान्य वस्तुएँ, फाणितादि, सिंही, सहदेवी, विश्वेदेव, अश्वरोधक, महुआ, पुष्पहंसा, शतपुष्पा, मधूलिका, शतावरी, मधूक, पिप्पल, ताल, आत्मगुप्त, कटफल, दार्विका, राजशीर्षकी, श्वेत सरासों, धनिया ऋष्यप्रोक्त, उत्कटा, कालशाक, पङ्कवीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुलिंगाक्षी, काकजिह्वा, उरुपुष्पिका, दोनों पर्वत और त्रपुष, गुंजातक, पुनर्नवा, कसेरुका, काश्मीरी, विल्व, शालूक, कैसर सभी प्रकार की भूसियाँ, शमी तथा अन्न इन सबको दुर्ग में एकत्र करे।।४३-५२।।

क्षीरं क्षौद्रं तथा तक्रं तैलं मज्जा वसाघृतम्। नीपश्चारिष्टकक्षोडवातामसोमबाणकम्॥५३॥
एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरो गणः। राजा सञ्चिनुयात्सर्वं पुरे निरवशेषतः॥५४॥

दुग्ध, शहद, मट्ठा, तैल, घी, नीप (कदम्ब) अरिष्टिक, अक्षोट, बदाम, सोम और बाणक मधुर पदार्थों के समूह हैं-इस सब को राजा को चाहिये कि अपने दुर्ग में अवश्य संचित करे।।५३-५४।।

दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिडीकाम्लवेतसम्। भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्दकरूषकम्॥५५॥
बीजपूरककण्डूरे मालती राजबन्धुकम्। कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्रातयोरपि॥५६॥
पारावतं नागरकं प्राचीनारुकमेव च। कपित्थामलकं चुक्रफलं दन्तशठस्य च॥५७॥
जाम्बवं नवनीतं च सौवीरकरुषोदके। सुरासवं च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च॥५८॥
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमाम्लगणं द्विज।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे॥५९॥

अनार, आम्रातक, तिंतिड़ी, (इमली) अम्लवेतस, सुन्दर वैर, लकुच, करमर्द, करूषक, बिजौरा, कण्डूर, मालती, राजबन्धूक, कोककद्वय के पत्ते, भ्राम्म्रातद्वय के पत्ते, पारावत, नागरक, प्राचीन अरुक, कैथा, इमली, चुक्रफल, दन्तशठ, जामून, नवनीत, सैवीरक, रुषोदक, सुरा, आसव अन्य प्रकार सभी के मद्य, माँड, मट्ठा, दही एवं सभी प्रकार के जितने भी ऐसे शुक्ल (सफेद) पदार्थ प्राप्त हो सकें वे सब अम्ल वस्तुएँ हैं, इन सब को तथा अन्यान्य अम्ल वस्तुओं को भी राजा अपने पुर में संचित करे।।५५-५९।।

सैन्धवोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम्। कुप्यसौवर्चलाबिल्वं बालकेयं यवाह्वकम्॥६०॥

और्वं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गणः।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे॥६१॥

सैन्धव, उद्‌भिद्, पाठेय पाक्य, सामुद्र, लोमक, कूप्य, सौवर्चल, विल्व, वालकेय, यव, और्व, क्षार, कालभस्म-ये लवण के सभी भेदोपभेद हैं, इन सब को तथा अन्यान्य लवण जो उपलब्ध हो सकें, दुर्ग में संचित करे॥६०-६१॥

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्। कुबेरकं च मरिकं शिग्रुभल्लातसर्षपाः॥६२॥
कुण्ठाजमोदा किणिही हिङ्गुमूलकधान्यकम्।
कारवी कुञ्चिका याज्या सुमुखा कलमालिका॥६३॥
फणिज्झकोऽथ लशुनं भूस्तृणं सुरसं तथा।
कायस्था च वयःस्था च हरितालं मनःशिला॥६४॥
अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमं तथा।
जया एरण्डकाण्डीरं शल्लकी हञ्जिका तथा॥६५॥
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायो हरितकानि च। सङ्गतानि च मूलानि यटिश्चातिविषाणि च॥
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपत्रिका॥६६॥
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः। राजा सञ्चिनुययाद्‌दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम॥६७॥

पीपर, पीपर का मूल (पिपरामूल) चव्य, चीता, सोंठ, कुवेटक, मिरच, सहजना, भिलावा, सिरसम, कूट, अजमोदा, ओंगा, हींग, मूली, रुदन्ती, सौंफ, अजवायन, मंजीठ, जवीर, लहसुन, माला के आकार वाला जलीयतृण, हरड़, हरताल, मैनसिल, गिलोय, रोहिष, तृण, केशर, अरणी, रेड़ी, सेल्लकी, भारंगी, सम्पूर्ण हर्रेफिल, छोटी इलायची, तेजपात, इत्यादि वस्तुएँ कटु औषधियों के समूह में मानी गई हैं, इन्हें राजा प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में रखें॥६२-६७॥

मुस्तं चन्दनह्रीबेरकृतमालकदारवः। हरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम्॥६८॥
दूर्वा पटोलकटुका दन्तीत्वक्पत्रकं त्वचा। किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा॥६९॥
तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः। काकोदुम्बिरिका दिव्यास्तथा चैव सुरोद्‌भवा॥७०॥
षड्ग्रन्था रोहिणी मांसी पर्पटश्चाथ दन्तिका। रसाञ्जनं भृङ्गराजं पतङ्गी परिपेलवम्॥७१॥
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली।
तुषपर्णी व्याघ्रनखं मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला॥७२॥
रम्भा चैवाङ्कुरास्फोता तालास्फोता हरेणुका। वेत्राग्रवेतसस्तुम्बी विषाणी लोध्रपुष्पिणी॥७३॥
मालतीकरकृष्णाख्या वृश्चिका जीविता तथा। पर्णिका च गुडूची च स गणस्तिक्तसंज्ञकः॥७४॥
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे।

नागरमोथा, चन्दन, ह्रीबेर, कृतहारक, दारुहल्दी, हल्दी, नलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्ब, दूर्बा, परवल, तेजपात, वच, चिरायता, भूतुम्बी, पिषा, अतीस, तालीस पत्र, तगर, सातला, खैर, काली गूलर, दिव्या, सुरोद्भवा, षड्ग्रन्थी, रोहणी, जटामांसी, पर्पठ, दन्ती, रसांजन, भँगरा, पतंग, परिपेलव, दुःस्पर्शा, अगुरुद्वय, कामा, श्यामाकु, गन्धनाकुली, रूपपर्णी, व्याघ्रनख, मंजीठ, चतुरंगुला, केला, अंकुरास्फोता, तालास्फोता, रेणुकबीज, बेत का अग्रभाग, बेंत, तुर्बी, कँकरासींगी, लोध्रपुष्पा, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीवितापर्णिका तथा गुडुच-ये तिक्त औषधियों के समूह हैं। इन सब को राजा अपने दुर्ग में संचित रखे।।६८-७४.५।।

अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतकम्।।७५।।
प्रियङ्गुधातकीपुष्पं मोचाख्या चार्जुनसनाः।
अनन्ता स्त्री तुवरिका श्योणाकं कट्फलं तथा।।७६।।
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम्। समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम्।।७७।।
विद्रुमं समधूच्छिष्टं कुम्भिका कुमुदोत्पलम्। न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिञ्शुकाः शिंशपा शमी।।७८।।
प्रियालपीलुकासारीशिरीषाः पद्मकं तथा।
बिल्वोऽग्निमन्यः प्लक्षश्च श्यामाकं च बको धनम्।।७९।।
राजादनं करीरं च धान्यकं प्रियकस्तथा। कङ्कोलाशोकबदराः कदम्बखदिरद्वयम्।।८०।।
एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानि च।
एवमादीनि चान्यानि कषायाख्यो गणो मतः।।८१।।
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ राजा सञ्चिनुयात्पुरे।

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, माल काँगुन, धाय के फूल, मोचरस, अर्जुन, असन, अनन्ता, कामिनी, तुवरिका, श्योपाक, कायफल, भोजपत्र, शिलाजीत, पाटल वृक्ष, लोहवाम, मंजीठ, निशोथ, समंगा, त्रिवृता, मूल, कपास, गेरु, अंजन, विद्रुम, शहद, जलकुम्भी, कुमुदिनी, कमल, बरगद, गूलर, पलाश, शीशम, शमी, प्रियाल, पीलू, कासारि, शिरीष (सिरसा), पद्म (पद्माख), बेल अरणी, प्लक्ष, श्यामक, बक, घन, राजादन, करीर, धनिया, प्रियक, कंकोल, अशोक, बेर, कदम्ब दोनों प्रकार के खैर-इन वृक्षों के पत्ते सार भाग (सत्त्व), मूल तथ पुष्प काषाय माने गये हैं, हे राजाओं में श्रेष्ठ! राजा को इन काषाय औषधियों को तथा अन्यान्य काषाय औषधियों को भी प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में संचित करना चाहिये।।७५-८१.५।।

कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गतायां तथैव च।।८२।।
तातधूमाम्बुमार्गाणां दूषणानि तथैव च। धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव।।८३।।
विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा।

मारने और घायल करने वाले कीट-पंतग आदि जो शत्रु पक्ष को हानि पहँचा सकें, वायु,

धूम जल तथा मार्ग में विविध प्रकार की अवरोध पहुँचाने वाली औषधियाँ, जिन्हें आगे बतलाऊँगा, राजा को अपने दुर्ग में संचित रखनी चाहिये। राजा को प्रयत्नपूर्वक सभी विषों का संचय भी दुर्ग में करना चाहिये।।८२-८३.५।।

विचित्राश्चागदा धार्या विषस्य शमनास्तथा।।८४।।
रक्षोभूतपिशाचघ्नाः पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः।
कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः।।८५।।
भीतान्प्रमत्तान्कुपितांस्तथैव च विमानितान्।
कुभृत्यान्पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे।।८६।।
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम्।
वणिग्जनैश्चाऽऽवृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपतिः सदैव।।८७।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राज्ञामोषध्यादिसञ्चयकथनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११४४८।।

विष के प्रभाव को शान्त करने वाले रोगनाशक, राक्षस, भूत तथा पिशाचों के प्रभाव को नष्ट करने वाले, पापनाशक तथा पुष्टिकारक पदार्थ भी उसे रखने चाहिये। उसी प्रकार चौसठों कला के विशेषज्ञ पुरुषों को भी प्रयत्नपूर्वक दुर्ग में वह रखे। अपने उस दुर्ग में राजा को चाहिये कि दुष्ट प्रकृति वाले, डरकर भागे हुए, उन्मत्त, क्रुद्ध, अपमानित तथा पापी अनुचरों को भूलकर भी आश्रय न दे। सभी प्रकार के यन्त्र, अस्त्र तथा अट्टालिकाओं से सुसंगत, विविध प्रकार के अन्न तथा द्रव्यादि से सुसम्पन्न एवं वाणिज्य-व्यवसाय में सुनिपुण व्यक्तियों के साथ अपने अतिगुप्त दुर्ग में राजा सर्वदा निवास करे।।८४-८७।।

।।दो सौ सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त २१७।।

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

विषनाश के उपाय

मनुरुवाच

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा। अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृतां वर।।१।।

मनु ने कहा–हे धर्मनिष्ठों में श्रेष्ठ! राक्षसों के प्रभाव को नष्ट करने वाली, विषों को शान्त

करने वाली रोगनाशक जिन औषधियों को राजा को अपने दुर्ग में रखवाना चाहिये, अब उन्हें हमसे बतलाइये।।१।।

मत्स्य उवाच

बिल्वाटकी यवक्षारं पाटला बाह्लिकोषणा।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तो निक्वाथः प्रोक्षणं परम्।।२।।
सविषं प्रोक्षितं तेन सद्यो भवति निर्विषम्। यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम्।।३।।
कवचाभरणं छत्रं वालव्यजनवेश्मनाम्। शेलुः पाटल्यतिविषा शिग्रु मूर्वा पुनर्नवा।।४।।
समङ्गा वृषमूलं कपित्थवृषशोषितम्। महादन्तशठं तद्वत्प्रोक्षणं विषनाशनम्।।५।।

मत्स्य भगवान् ने कहा–बिल्वाटकी, जवाखार, पाटला, बाह्लिक, ऊषणा, श्रीपर्णी और सल्लकी–इन समस्त औषधियों का काढ़ा बनाकर सिंचित करने से विषाक्त जव, सैन्धव, पानीय, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, (जल) कवच, आभरण, छत्र और चामर, व्यञ्जनादि द्रव्य शीघ्र ही विषरहित हो जाते हैं। शेल, पाटला, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा समंगा वृषमूल, कपित्थ, वृषशोषित तथा महादन्त शठ- इन सभी द्रव्यों के भी काढ़ा बनाकर सेवन करने से विषनाश होता है।।२-५।।

लाक्षाप्रियङ्गुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका। यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रुपित्तेन कल्पिताः।।६।।
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले। ततः कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत्।।७।।
संस्पृष्टं सविषं तेन सद्यो भवति निर्विषम्। मनोह्वया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपाः।।८।।
कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठाः पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिताः।
शुनो गोः कपिलायाश्च सौम्याक्षिप्तोऽपरो गदः।।९।।
विषजित्परमं कार्यं मणिरत्नं च पूर्ववत्। मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्ध्वा विषापहा।।१०।।
हरेणुमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुका मधु।

लाह, प्रियंगु, मंजीठ, समान भाग में इलायची, रेणुका, जेठीमधु, मधुरा–इन सब औषधियों को नकुल के पित्त के साथ भावना देकर गाय की सींग में भरकर खनकर पृथ्वी के भीतर रख दे और सात रात्रि रहने के बाद उसे सुवर्ण तथा मणि के साथ हाथ में धारण करे, फिर तो उसे हाथ में धारण कर विष छुने से तुरन्त ही विष निर्विष हो जायेगा। जटामांसी, शमी के पत्ते, तुम्बी, श्वेत सरसों कपित्थ, कुष्ट, मंजीष्ठ–इन सब द्रव्यों को कुत्ते अथवा कपिला गौ के पित्त के साथ भावना दे, यह सौम्याक्षिप्त नामक महौषधि सभी प्रकार के विषों को शान्ति करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त मणि तथा रत्नों के साथ मूषिका अथवा लाह को हाथ में रखने से विष का नाश होता है।।६-१०.५।।

अक्षत्वक्सुरसं लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि।।११।।
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतैः प्रलेपिताः। श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्यो भवति निर्विषः।।१२।।

रेणुका, जटामांसी, हरिद्रा, मधूक, मधु, अक्षत्वक्, सुरसा लक्षा और कुत्ते का पित्त इन सब को पूर्व कथित विधि से पृथ्वी में गाड़ दे और इससे तमाम बाजनों का तथा पताकाओं को लेपन कर दे, ऐसा करने से बाजनों के शब्दों को सुनकर तथा पताका को देखकर शीघ्र ही विष का शमन हो जायेगा।।११-१२।।

त्र्यूषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम्। सूक्ष्मैला त्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी।।१३।।
मधुकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत्। तस्मादुष्णाम्बुना मात्रं प्रागुक्तं योजयेत्ततः।।१४।।
विषभुक्तं जरं याति निर्विषं पित्तदोषकृत्। शुक्लं सर्जरसोपेतं सर्षपा एलवालुकैः।।१५।।
सुवेगा तस्करसुरौ कुसुमैरर्जुनस्य तु। धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्।।१६।।
न तत्र कीटा न विषं दर्दुरा न सरीसृपाः। न कृत्या कर्मणां चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते।।१७।।

तीनों कटु (आँवला, हर्रा, बहेरा), पाँचों नमक, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी इलायची त्रिवृतापात्र, विडङ्ग, इन्द्रवारुणी, मधूक, वेतस तथा मधु-इन सब को सींग में रखकर स्थापित कर उक्त जल में पकावे, इससे खाया हुआ विष शान्त हो जाता है। श्वेत धूप, सरसों, एला बालुका, सुवेगा, तस्कर सुर और अर्जुन के पुष्प-इन सभी पदार्थों से निवास करने वाले घर में धूप देने से चर-अचर जितने भी विष होते हैं, शान्त हो जाते हैं। इस धूप के प्रयोग के उस स्थान पर कीट विष, मेढ़क, रेंगने वाले सर्पादि जीव तथा कृत्या-ये सब नहीं रह जाते।।१३-१७।।

कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः। मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकैः।।१८।।
क्वाथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुतो हितः। रोचनापत्रनेपाली कुङ्कुमैस्तिलकान्वहन्।।१९।।
विषैर्न बाध्यतेऽस्माच्च नरनारीनृपप्रियः। चूर्णैर्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः।।२०।।
दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम्।

चन्दन, दुग्ध, पलाश वृक्ष की छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसा, नाकुली, तण्डुलीयक एवं काकमाची का काढ़ा बनाने से सभी प्रकार के विष-दोषों में कल्याण होता है। गोरोचनापत्र, नेपाली केसर और तिलक-इन सभी द्रव्यों के धारण करने से विषदोष नष्ट हो जाता है और इसलिए रहने से स्त्री-पुरुष राजा के प्रिय होते हैं। हल्दी, मंजीठ, किणिही, पिप्पली और नींबू के चूर्ण का लेप करने से सभी प्रकार के विषों से पीड़ित शरीर स्वस्थ हो जाता है।।१८-२०.५।।

शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पं त्वङ्मूलमेव च।।२१।।
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः। एकवीर महौषध्यः शृणु चातः परं नृप।।२२।।

शिरिष वृक्ष का फल, पत्ता, पुष्प, छाल और जड़-ये सभी गाय के मूत्र के साथ घिसकर लगाने से सर्व-विष सम्बन्धी रोगों का नाश होता है। हे एकमात्र वीर राजन्! इसके उपरान्त अति उपयोगी सर्वश्रेष्ठ ओषधियों को बतला रहा हूँ, जिन्हें राजा को अपने दुर्ग में सदा संचित रखना चाहिये, सुनो।।२१-२२।।

वन्ध्या कर्कोटकी राजन्विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा।
शतमूली सितानन्दरा बला मोचा पटोलिका॥२३॥
सोमा पिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या।
स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका॥२४॥
चाण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या॥२५॥
कोशातकी नक्तमालं प्रियालं च सुलोचनी।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली॥२६॥
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका।
जतुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका॥२७॥
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः। जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका॥२८॥
नालं च जाली जाती च तथा च वटपत्रिका। कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुर्हंसपादिका॥२९॥
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपा सुखाकरा॥३०॥
रुजापहा वृद्धिकरी तथा चैव तु शल्यदा। पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी॥३१॥
तथाऽऽमलकवृन्दाकं श्यामचित्रफला च या।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च॥३२॥
केशिनी वृश्चिकाली च महानागा शतावरी। गरुडी च तथा वेगा जले कुमुदिनी तथा॥३३॥
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या।
उन्मादिनी सोमराजी सर्वरत्नानि पार्थिव॥३४॥
विशिखाऽमरकन्या च कीटपक्षं विशेषतः।
जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः॥३५॥

हे राजन्! वन्ध्या, कार्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमा, पिण्डा, निशा दग्ध रुहा, स्थलपद्म, विशाली शंखमूलिका, चाण्डाली, हस्तिमगधा, गोपर्णी, अजपर्णी, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, वर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, यष्टिमधु, वज्रक, पारिभद्र, सिन्दुवारक, जीवानन्दक, वसुच्छिद्र नागर, कण्टकारि, नाल, जाली, जाती, वटपत्र, सुवर्ण, महानीला, कुन्दुरु, हंसपादी, मण्डूक पर्णी, वाराही दोनों प्रकार के ताण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापहा, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाल,

यामलक, वृन्दाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीर काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, महानागा, शतावर, गरुडी, वेगा, जलकुमुदिनी, स्थलोत्पल, महाभूमिलता, उन्मादिनी, सोमराजी एवं हे राजन्! सभी प्रकार के रत्न-विशेषकर मरकतादि बहुमूल्यरत्न, अनेक प्रकार कीटज मणियाँ, जीवों से उत्पन्न होने वाली मणियाँ-सभी को प्रयत्नपूर्वक दुर्ग में संचित रखे।।२३-३५।।

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्या वैतालनाशनाः।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः।।३६।।
सर्पतित्तिरगोमायुबभ्रुमण्डुकजाश्च ये। सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसम्भवाः।।
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये।।३७।।
इत्येवमेतैः सकलैरुपेतैर्द्रव्यैः पराध्यैंः परिरक्षितः स्यात्।
राजा वसेत्तत्र गृहे सुशुभ्रे गुणान्विते लक्षणसम्प्रयुक्ते।।३८।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगदाध्यायो नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११४८६।।

इस प्रकार राक्षस, विष, कृत्या, वैताल आदि की नाशक-विशेषकर गौ, गर्दभ, ऊँट, साँप, तीतर, शृंगाल, अज, मेढक, सिंह, बाघ, रीछ, बिलाव, द्वीपि, वानर, कपिंजल, हस्ती, अश्व, महिष और हरिण-इत्यादि जीवों से सम्बन्ध रखने वाली उपयोगी वस्तुओं को भी राजा संचय रखे। इस प्रकार दुर्ग को उपर्युक्त सभी प्रकार के पदार्थों के प्रचुर परिमाण के संचय से संयुक्त रहना चाहिये एवं उसमें बने हुए अति निर्मल उपर्युक्त सभी लक्षणों से सम्पन्न भवन में राजा निवास करे।।३६-३८।।

।।दौ सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त।।२१८।।

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजरक्षा

मनुरुवाच

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत्।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि मे।।१।।

मनु ने कहा-भगवन्! राजा की रक्षा के लिए अन्यान्य जिन रहस्यपूर्ण साधनों को दुर्ग में संगृहीत अथवा प्रस्तुत करना चाहिये, उन सभी को भी मुझे बतलाइये।।१।।

मत्स्य उवाच

शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम्। क्षुद्योगः कथितो राजन्मासार्धस्य पुरातनैः॥२॥
कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा विषम्। दुर्वाक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः॥३॥
नरं शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत्। कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम्॥४॥

मत्स्य ने कहा–राजन्! शिरीष, गूलर और बिजौरा–इन तीनों को घृत में परिप्लुत करके पन्द्रह दिनों बाद सेवन करे, प्राचीन लोग इसे क्षुद्योग नाम से पुकारते हैं। कसेठ के मूल भाग तथा फल को, ईख के मूल भाग, विष, दूब, दूध, घी तथा माँड़ के साथ सिद्ध कर एक मास बाद सेवन करे, इसके सेवन करने से हथियारों से घायल जो मनुष्य होगा, वह मर नहीं सकता। उस स्थल पर विचित्र वर्ण वाले बाँस के टुकड़ों से अग्नि उत्पन्न करे।।२-४।।

गृहे त्रिरपसव्यं तु क्रियते यत्र पार्थिव। नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्या विचारणा॥५॥
कार्पासास्थिन भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत्। सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे॥६॥

हे राजन्! उस अग्नि को अपसव्य होकर तीन बार प्रदक्षिणा करे, ऐसा करने से वहाँ कोई अन्य अग्नि नहीं जल सकती–इस बात में अविश्वास करने की आवश्यकता नहीं हैं कपास के साथ भुजंग की हड्डी के जलाने से घर में सर्पो का निष्कासन होता है। घर में इस वस्तु की धूप सर्पनिष्कासन के लिए विशेष प्रसिद्ध है।।५-६।।

सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका। तयाऽनुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप॥७॥
दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः।
विषाच्च रक्ष्यो नृपतिस्तत्र युक्तिं निबोध मे॥८॥
क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिणः। अन्नं वै प्राक्परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च॥९॥

समुद्र से उत्पन्न सामुद्र, सैन्धव तथा यवा–ये तीन प्रकार के लवण, विद्युत् की ज्वाला से जली हुई मिट्टी–इन सभी वस्तुओं से जिस भवन की लिपाई हुई रहती है, हे राजन्! उस भवन को अग्नि नहीं जला सकती। दुर्ग में दिन के समय, विशेषकर जब वायु का प्रकोप हो, अग्नि की रखवाली करनी चाहिये। विष से राजा की रक्षा करनी चाहिये, उस विषय में मैं युक्ति बतला रहा हूँ, सुनो। राजा को चाहिये कि दुर्ग में क्रीड़ा के लिए कुछ पशु तथा पक्षियों को भी रखे। सर्वप्रथम उस अग्नि द्वारा अथवा अन्य किन्हीं उपायों से अपने अन्न की परीक्षा कर लेनी चाहिये।।७-९।।

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा। नापरीक्षितपूर्वं तु स्पृशेदपि महीपतिः॥१०॥

वस्त्र, पुष्प, आभरण, भोजन, आच्छादन आदि अपने नित्य व्यवहार की वस्तुओं को राजा बिना पूर्व परीक्षा के कभी स्पर्श न करे।।१०।।

स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्तः सोद्वेगं च निरीक्षते। विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते॥११॥
स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा। प्रच्छादयति चाऽऽत्मानं लज्जते त्वरते तथा॥१२॥

भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप।
कण्डूयति च मूर्धानं परिलोड्याऽऽननं तथा॥१३॥

विष को प्रदान करने वाला मनुष्य देते समय मलिनमुख, उदास, उद्वेगवान्, चंचल दृष्टि, खम्भे और भीत की छाया में अपने को छिपाने की कोशिश करने वाला, विष-दान के समय लज्जा तथा शीघ्रता करने लगता है। हे राजन्! वह पृथ्वी में चिह्न बनाने लगता है, गर्दन हिलाने लगता है, सिर खुजलाने लगता है, मुँह छिपाने या धोने की कोशिशें करता हैं।।११-१३।।

क्रियासु त्वरितो राजन्विपरीतास्वपि ध्रुवम्। एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत्॥१४॥
समीपैर्विक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयाऽन्वितः। इन्द्रायुधसवर्णं तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम्॥१५॥
एकावर्तं तु दुर्गन्धि भृशं चटचटायते। तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते॥१६॥

सविषेऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव माक्षिकाः।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा॥१७॥

हे राजन्! निश्चय ही वह विषदाता पातकी मनुष्य ऐसे विपरीत कार्यों में भी शीघ्रता करने की कोशिश करता है। अतः राजा को ऐसे लक्षणों को देखकर उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये और उसके द्वारा दिये गये अन्न को सर्वप्रथम समीपस्थ अग्नि में डाल देना चाहिये। अग्नि में विषैला अन्न पड़ते ही उसका इन्द्रधनुष के समान अनेक वर्ण मिश्रित रंग हो जाता है। तुरन्त ही सूख जाता है, स्फोट होने लगता है, एक गोलाई में होकर उसमें से चट-चट की आवाज आने लगती है। उसमें से निकलते हुए धुएँ के सूँघने वाले जीव के सिर में रोग उत्पन्न होता जाता है। हे राजन्! विषयुक्त अन्न के ऊपर मक्खियाँ नहीं बैठतीं, यदि बैठती है तो विष संयुक्त होने के कारण तुरन्त ही मर जाती है।।१४-१७।।

विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम।
विकृतिं च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप॥१८॥
गतिः स्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च॥१९॥
विक्रोशति शुको राजन्सारिका वमते ततः।
चामीकरोऽन्यतो याति मृत्युं कारण्डवस्तथा॥२०॥

मेहते वानरो राजन्ग्लायते जीवजीवकः। हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति॥२१॥

हर्षमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप।

हे पार्थिवसत्तम! विषयुक्त अन्न को देखते ही चकोर अपनी आँखें फेर लेता है, कोकिल का स्वर विकृत हो जाता है, हंस की गति लड़खड़ाने लगती है, भौरें जोर से गूँजने लगते हैं, क्रौञ्च (कुरर) मदमत्त हो जाता है, मूर्गें रोने लगते हैं। हे राजन्! उस विषयुक्त अन्न को देखते ही शुक-चें-

चें करने लगता है, सारिका वमन करने लगती है, चामीकर भाग खड़ा होता है, कारण्डव मर जाता है। हे राजन्! वानर मूत्र त्याग करता है, जीव-जीवक ग्लानियुक्त हो जाता है, नेवले के रोयें खड़े जो जाते हैं, पृषत् मृग रोने लगता है, हे राजन्! विष को देखते ही मयूर हर्षित हो जाता है; क्योंकि वह नित्य विष का भोजन करने वाला है।।१८-२१.५।।

अन्नं च सविषं राजंश्चिरेण च विपद्यते॥२२॥
तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्युषितोपमम्।
व्यापन्नरसगन्धं च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम्॥२३॥
व्यञ्जनानां तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः।
ससैन्धवानां द्रव्याणां जायते फेनमालिता॥२४॥
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यान्नीला च पयसस्तथा।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम॥२५॥
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च॥२६॥

हे राजन्! विषयुक्त अन्न चिरकाल बाद नष्ट होता है और तब भी ऐसा मालूम पड़ता है मानो पन्द्रह दिन का पुराना बना हुआ है। उस समय उसमें रस तथा गन्ध बिल्कुल नहीं रहती, देखने में ऊपर से चन्द्रिकाओं से युक्त रहता है। विष के मिलने से बना हुआ व्यंजन सूख जाता है, द्रव वस्तुओं में बुल्ले उत्पन्न होते हैं, लवण सहित पदार्थों में फेन उठने लगता हैं, अन्नों से बना हुआ भोजन ताम्रवर्ण का, दूध नीले रंग का, मदिरा तथा जल कोकिल के समान काला, अम्ल अन्न काला, कोदो कपिल, मधु श्यामल, तक्र नीले और पीले वर्ण का हो जाता है।।२२-२६।।

घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च मस्तुनः।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्य च तथाऽरुणा॥२७॥
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा॥२८॥
मृदुता कठिनानां स्यान्मृदूनां च विपर्ययः। सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता॥२९॥

घृत का वर्ण जल की भाँति, छाछ का कबूतर की भाँति, माक्षिक मधु का हरा और तैल का लाल रंग हो जाता है। विष के संसर्ग से न पके हुए फल शीघ्र ही पक जाते हैं और पका हुआ फल विकृत हो जाता है। पुष्प मलिन हो जाते हैं, कठोर वस्तु कोमल तथा कोमल वस्तु कठोर हो जाती है, विष के संयोग से सूक्ष्म वस्त्रादि वस्तुओं का रूप और सौन्दर्य नष्ट हो जाते हैं और उनमें एक दूसरी ही रंगत पैदा हो जाती है।।२७-२९।।

श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैव च। लोहानां च मणीनां च मलपङ्कोपदिग्धता॥३०॥

अनुलेपनगन्धानां माल्यानां च नृपोत्तम। विगन्धता च विज्ञेया वर्णानां म्लानता तथा॥
पीतावभासता ज्ञेया तथा राजञ्जलस्य तु॥३१॥

वस्त्रों में विशेषकर काले धब्बे मण्डलाकार पड़ जाते हैं। लोहे और मणि पर विष का प्रभाव पड़ने से ऐसा अनुभव होता है मानों वे मल अथवा कीचड़ में लपेट दिये गये हों। हे नृपोत्तम! शरीर में लेपन किये जाने वाले द्रव्यों एवं उपयोग में आने वाले पुष्पों में दुर्गन्धि आने लगती है और उनका वास्तविक रंग विकृत हो जाता हैं, हे राजन्! उसी प्रकार जल में भी पीलेपन का आभास होने लगता है।।३०-३१।।

दन्ता ओष्ठौ त्वचः श्यामास्तनुसत्त्वास्तथैव च।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम॥३२॥

तस्माद्राजा सदा तिष्ठेन्मणिमन्त्रौषधागदैः। उक्तैः संरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः॥३३॥
प्रजातरोर्मूलमिहावनीशस्यद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम्।
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र॥३४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राजरक्षा नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११५२०।।

—⁂—

हे नृपोत्तम! विष के सेवन से दाँत, ओठ, चमड़ा श्यामल वर्ण के हो जाते हैं और शरीर में क्षीणता का अनुभव होने लगता है-इस प्रकार के उपर्युक्त तथा अन्यान्य चिह्नों से भी विष के लक्षण जानने चाहिये। इसलिये हे राजन्! राजा को सर्वदा मणि, मन्त्र एवं उपयुक्त औषधियों से सम्पन्न तथा असावधानी को छोड़कर रहना चाहिये। इस पृथ्वी तल पर प्रजारूपी वृक्ष की जड़ राजा है, उसी की रक्षा से समस्त राष्ट्र की वृद्धि होती है। हे सूर्यवंश के चन्द्रमा! इसलिए सभी को राजा की उन्नति प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये।।३२-३४।।

।।दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।।२१९।।

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्म कीर्तन

मत्स्य उवाच

राजन्पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता। आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–राजन्! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये। उसकी शिक्षा के लिए नित्य पहरेदारों की देखरेख में एक आचार्य की नियुक्ति करनी चाहिये।।१।।

धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत्। रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामं कारयेत्सदा।।२।।
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाऽऽप्तैर्मिथ्याप्रियं वदेत्।

उसे धर्म, काम एवं अर्थशास्त्र तथा धनुर्वेद की शिक्षा दे और सर्वदा रथ और हाथी पर सवार होने की कुशलता सिखलाते हुये व्यायाम कराता रहे। उसे शिल्प की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करे। ऐसा प्रभाव उस पर पड़े कि गुरुजनों के सम्मुख असत्य प्रिय बातें न करे।।२-२.५।।

शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत्।।३।।
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः। तथा च विनयेदेनं यथा यौवनगोचरे।।४।।
इन्द्रियैर्नापकृष्येत् सतां मार्गात्सुदुर्गमात्। गुणाधानमशक्यं तु यस्य कर्तुं स्वभावतः।।५।।
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्। अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते।।६।।
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत्।

तात्पर्य यह कि उसे इस प्रकार की शिक्षा दे कि युवावस्था में वह अति दुर्गम सत्पुरुषों के मार्ग से गिरकर इन्द्रियलोलुप न हो जाय। जिस राजकुमार के स्वभाव की विषमता के कारण उपदेशादि द्वारा गुणों का प्रवेश करना दुष्कर समझ पड़े उसे बन्धन में डाल दे, पर वहाँ भी उसके सुख की व्यवस्था रखें; क्योंकि अविनीत राजकुमारों से ही कुल छिन्न-भिन्न हो जाता है। राजा को सभी अधिकारों पर शिक्षित एवं विनयी व्यक्तियों की नियुक्ति करनी चाहिये।।३-६.५।।

आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि।।७।।
मृगयापानमक्षांश्च वर्जयेत्पृथिवीपतिः। एतांस्तु सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः।।८।।
बहवो नृपशार्दूल तेषां सङ्ख्या न विद्यते। वृथाटनं दिवास्वप्नं विशेषेण विवर्जयेत्।।९।।
वाक्यारुष्यं न कर्तव्यं दण्डपारुष्यमेव च। परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता।।१०।।

प्रथमतः किसी व्यक्ति को छोटे पर नियुक्त करे, धीरे-धीरे उसे उन्नति के पद पर पहुँचावे। राजा शिकार, मदपान तथा द्यूतक्रीड़ा-इस सभी को वर्जित रखे; क्योंकि पूर्वकाल में इनके सेवन से बहुतेरे राजागण विनाश को पहुँच गये हैं। हे नृपशार्दूल! उनकी संख्या भी नहीं कही जा सकती। व्यर्थ की सैर, दिन में शयन–इनको तो विशेषकर राजा वर्जित करे। राजा को कभी भी कठोर वाणी नहीं बोलनी चाहिये। उसी प्रकार उसे कभी किसी को कठोर दण्ड भी नहीं देना चाहिये। राजा को परोक्ष में किसी की निन्दा भूलकर भी नहीं करनी चाहिये।।७-१०।।

अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत्। अर्थानां दूषणं चैकं तथाऽर्थेषु च दूषणम्।।११।।
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया। अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च।।१२।।
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च। अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम्।।१३।।

राजा को दो प्रकार के अर्थ दोषों से बचना चाहिये, वे हैं अर्थ दोष एवं अर्थ-सम्बन्धी दोष। उनमें से अर्थ के दोष ये कहे गये हैं, किले की दिवालों का विध्वंस, राजदुर्ग का असत्कार (विरूप करना) एवं स्फूट विषयों में द्रव्य का दुरुपयोग। राजा को इस अर्थ के दोष से बचना चाहिये। उसी प्रकार बिना देश और काल का विचार किये जो दान दिया जाता है, अयोग्य व्यक्ति को जो दान दिया जाता है एवं असत्कर्मों में जो राजा की प्रवृत्ति होती है, वह अर्थ सम्बन्धी दोष कहा गया है। राजा को इस अर्थ-सम्बन्धी दोष से बचना चाहिये।।११-१३।।

कामः क्रोधो मदो मानो लोभो हर्षस्तथैव च। एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता।।१४।।

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः।
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौराञ्जानपदाञ्जयेत्।।१५।।
कृत्वा च विजयं तेषां शत्रून्बाह्यांस्ततो जयेत्।

राजा को सर्वदा काम, क्रोध, मद, मन, लोभ तथा हर्ष-इन सबों से प्रयत्न पूर्वक बचना चाहिये। इनको अपने वश में रखकर राजा को अनुचरों को भी स्ववश करना चाहिये, इस प्रकार अनुचरों को स्ववश कर पुरवासियों तथा जनपद में निवास करने वालों पर राजा अपना अधिकार जमाये। उनको विजित करने के बाद राजा बाहरी शत्रुओं को अपने अधिकार में करे। १४-१५.५।।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः।।१६।।
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत्। पितृपैतामहं मित्रममित्रं च तथा रिपोः।।१७।।
कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते। तथाऽपि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चाऽऽदृतः।।१८।।
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्थैव च। कोशो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते।।१९।।

वे बाहरी शत्रु कई प्रकार के जानने चाहिये, जैसे समान पद वाले, भीतर से द्वेष रखने वाले तथा किन्हीं कारणों से बाहर से बने हुए। उनमें से क्रमशः एक-एक को महत्वपूर्ण समझकर यत्न करना चाहिये। अर्थात् सबसे प्रथम समान शक्ति वालों से तदनन्तर भीतर से द्वेष रखने वालों से पश्चात् बने हुए से। हे महाभाग! राजाओं के तीन प्रकार के मित्र होते हैं। सर्वप्रथम वे हैं, जो पिता, पितामह, आदि के काल से मित्ररूप में व्यवहार करते चले आये हैं, दूसरे वे हैं, जो शत्रु के शत्रु हैं, तथा तीसरे वे हैं, जो किन्हीं कारणों से पीछे मित्र कोटि में आ गये हैं-इन तीनों मित्रों में प्रथम मित्र उत्तम है तथा उसको सबसे बढ़कर आदर भी होना चाहिये। हे धर्म के महत्व को समझने वाले! स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, दण्ड, कोश तथा मित्र- ये सात अंग राज्य के क़हे गये हैं।।१६-१९।।

सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तितः।
तन्मूलत्वात्तथाऽङ्गानां स तु रक्ष्यः प्रयत्नतः।।२०।।
षडङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः। अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्य द्रोहमाचरतेऽल्पधीः।।२१।।
वधस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता। न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते।।२२।।

न भाव्यं दारुणेनातितीष्णादुद्विजते जनः। काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः॥२३॥
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत्।

पर इस सात अङ्ग के रहते हुए भी स्वामी ही राज्य का मूल कहा गया है, इसलिये सर्वदा उसी की रक्षा करना अन्य अंगों को का भी कर्तव्य है और राजा को भी अपने छः अंगों की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। इन अंगों में से यदि कोई मूर्ख किसी दूसरे अंग का द्रोह करता है तो राजा को उसको शीघ्र ही मार डालना चाहिये। राजा को कोमल वृत्ति वाला नहीं होना चाहिये, कोमल वृत्ति हो जाने से उसकी हार हो जाती है और न अत्यन्त कठोर स्वभाव वाला ही होना चाहिये; क्योंकि वैसा होने से भी लोग दुःखी होते हैं। जो राजा समय को ध्यान में रखकर मृदु तथा कठोर होता है, वह अपने दोनों लोकों की अपेक्षा करता है और वास्तव में उसे दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है॥२०-२३.५॥

भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत्॥२४॥
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशं गतम्। व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत्॥२५॥
लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनी भवेत्। शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः॥२६॥
जना विरागमायान्ति सदा दुःसेव्यभासतः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्सर्वस्यैव महीपतिः॥२७॥

राजा को अपने अनुचरों के साथ परिहास वर्जित रखना चाहिये; क्योंकि उस समय आनन्द में निमग्न राजा की अनुचर-गण अवमानना कर बैठते हैं। राजा को सभी प्रकार के व्यसनों से बचना चाहिये; किन्तु लोगों को वश में रखने के लिए कुछ कपट व्यसन तो करना ही चाहिये। गर्वीले स्वभाववाले तथा नित्य ही उद्धत स्वभाव रखने वाले राजा से लोग कठिनता से अनुकूल होने के कारण विरक्त हो जाते हैं। अतः राजा को चाहिये कि वह सभी से मन्द मुसकान पूर्वक बातें करे॥२४-२७॥

वध्येष्वपि महाभाग भ्रूकुटिं न समाचरेत्। भाव्यं धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थूललक्ष्येण भूभुजा॥२८॥
स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वा भवति मेदिनी। अदीर्घसूत्रश्च भवेत्सर्वकर्मसु पार्थिवः॥२९॥

हे महाराज! यहाँ तक कि प्राणदण्ड के अपराधी को भी वह कभी भृकुटी न दिखावे। हे धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ! राजा को सर्वदा स्थूल (महान्) लक्ष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिये, महान् लक्ष्य को सम्मुख रखने वाले के अधीन समस्त पृथ्वी हो जाती है। सभी कार्यों में उसे अविलम्बी होना चाहिये॥२८-२९॥

दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवं भवेत्। रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि॥३०॥
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते। राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम॥३१॥
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्। कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः॥३२॥

नाऽऽरब्धानि महाभाग तस्य स्याद्वसुधा वशे।
मन्त्रमूलं सदा राज्यं तस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः॥३३॥

विलम्ब करने वाले राजा के कार्य नष्ट हो जाते हैं। केवल अनुराग, दर्प, आत्मसम्मान, द्रोह, पापकर्म तथा अपने को प्रिय न लगने वाले कार्य में-राजा की दीर्घसूत्रता प्रशंसित मानी गई है। हे नृपोत्तम! राजा को सर्वदा गुप्त स्थल में सम्मति रखनी चाहिये अर्थात् अपनी सम्मति वह कभी किसी से न बतलावे, जो राजा अपनी सम्मति को गोपनीय नहीं रखता। उसके ऊपर निश्चय ही सभी आपत्तियाँ आकर गिरती हैं। जिस राजा के केवल किये कार्यों को दूसरे लोग जानते हैं तथा भविष्य में होने वाले कार्य को कोई नहीं जानते, उस राजा के वश में समस्त वसुन्धरा हो सकती है। मन्त्र ही सर्वदा राज्य का मूल है, अतः उसे सुरक्षित रखना चाहिये॥३०-३३॥

कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा। मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनां सुखावहः॥३४॥
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः। आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च॥३५॥
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः। न यस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा॥३६॥

राजाओं को मन्त्रणा देने में सुनिपुण मन्त्रियों द्वारा दिये गये मन्त्र को सर्वदा, फूट जाने के भय से, गोपनीय रखना चाहिये, वह सभी सम्पत्तियों तथा सुखों को प्रदान करने वाला होता है। मन्त्र ही के छल से पूर्वकाल में बहुतेरे राजा विनष्ट हो गये। आकृति, इशारे, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र, मुख के विकार से अन्तः स्थित मनोभावों का पता लगता है, जिस राजा के मन का पता इन उपर्युक्त उपायों द्वारा कुशल लोग भी न लगा सकें, उसके वश में सर्वदा वसुन्धरा बनी रहती है॥३४-३६॥

भवतीह महीभर्तुः सदा पार्थिवनन्दन। नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह॥३७॥
नाऽऽरोहेद्विषमां नावमपरीक्षितनाविकाम्।
ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः॥३८॥
तानानयेद्वशे सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः। यथा न स्यात्कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया॥३९॥
तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता। मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्शयत्यनवेक्षया॥४०॥
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।

राजा कभी एक जन के साथ मन्त्र न करे और न अनेक लोगों को ही साथ ले। राजा ऐसी नाव पर, जिसकी नाविक ने कभी परीक्षा नहीं ले ली है, कभी सवार न हो। राजा को, उन्हें जो उसके विरुद्ध आचरण करने वाले हों, साम दामादि चारों प्रकार के उपायों से वश में करना चाहिये। जिस प्रकार के उपायों से असावधानतावश प्रजावर्ग की दुर्बलता न बढ़े, उन्हीं उपायों से अपने राष्ट्रों की रक्षा में उसे तत्पर होना चाहिये। जो राजा अज्ञानतावश असावधानी करके अपने राष्ट्र को दुर्बल करता है, वह शीघ्र ही राज्य से च्युत हो जाता है तथा परिवार के सहित जीवन से भी हाथ धोता है॥३७--४०.५॥

भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत्॥४१॥
तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत्। यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति॥४२॥
सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम्। राष्ट्राद्धिरण्यं धान्यं च महीं राजा सुरक्षिताम्॥४३॥
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता॥४४॥

हे महाभाग! जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान होने पर कार्य करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार उसी भावना से पालन-पोषण कर समृद्ध किया हुआ राष्ट्र भी भविष्य में कार्यक्षम होता है। जो राजा अपने राष्ट्र के ऊपर अनुग्रह की दृष्टि रखता है, वस्तुतः वही राज्य की रक्षा करता है और इसी से महान् फल की प्राप्ति करता है। राजा राष्ट्र के सुवर्ण, अन्न एवं सुरक्षित पृथ्वी की प्राप्ति करता है। रक्षा में अति प्रयत्नपूर्वक तत्पर रहने वाला नृपति नित्यप्रति स्वकीय एवं परकीय-दोनों ओर की होने वाली बाधाओं से माता और पिता के समान अपने राष्ट्र की रक्षा करे।।४१-४४।।

गोपितानि सदा कुर्यात्संयतानीन्द्रियाणि च। अजस्त्रमुपयोक्तव्यं फलं तेभ्यस्तथैव च॥४५॥
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे। तयोर्दैवमचिन्त्यं च पौरुषे विद्यते क्रिया॥४६॥
एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतश्चापि परा च कीर्तिः॥४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्माऽनुकीर्तने विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११५६७।।

राजा को अपनी इन्द्रियों को संयत तथा गुप्त रखना चाहिये और सर्वदा उनका उपयोग संयत और गोपनीय करे। जीवन के सभी कार्य दैव और पुरुष इन दोनों के अधिकार में रहते हैं, उन दोनों में दैव के ऊपर तो पुरुष का कोई वश नहीं है, इसलिये उसकी चिन्ता छोड़कर पौरुष में अपना कर्तव्य निभाना चाहिये। इस प्रकार ऊपर कहे हुए ढंग से पृथ्वी का पालन करने वाले राजा के ऊपर लोगों का परम अनुराग हो जाता है एवं लोगों के अनुराग होने ही से राजा को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तथा लक्ष्मीवान् राजा को ही परम यश की प्राप्ति होती है।।४५-४७।।

।।दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त।।२२०।।

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

भाग्य तथा पुरुषार्थ वर्णन

मनुरुवाच

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तदब्रवीहि मे। अत्र मे संशयो देव च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥१॥

मनु ने कहा–हे देव! दैव (भाग्य) और पुरुषार्थ–इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है, आप मेरे इस सन्देह को सम्पूर्णतः दूर करें।।१।।

मत्स्य उवाच

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम्। तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः॥२॥
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते। मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम्॥३॥
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम। पौरुषेण विना तेषां केषांचिद्दृश्यते फलम्॥४॥
कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम्।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम्॥५॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–हे राजन्! देहान्तर में अपने द्वारा किया गया पुरुषार्थ (कर्म) ही दैव कहा गया है, इसीलिए मनीषी लोग पौरुष को ही श्रेष्ठ मानते हैं। हे मनुजोत्तम! मंगल आचरण करने वाले नित्य प्रति अभ्युदय शील पुरुषों के प्रतिकूल दैव भी पुरुषार्थ से प्रभाव रहित हो जाता है। पूर्वजन्म में जिन्होंने सात्त्विक कर्म किये हैं, उन्हीं किन्हीं को इस जन्म में पुरुषार्थ के बिना भी अच्छे फल की प्राप्ति होती देखी जाती है। लोक में राजसिक कर्म करने वाले मनुष्य को कर्म करने से ही फल की प्राप्ति होती है और तामस कार्यों के करने में बहुत कष्ट के उपरान्त फल की प्राप्ति जाननी चाहिये।।२-५।।

पौरुषेणाऽऽप्यते राजन्प्रार्थितव्यं फलं नरैः। दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः॥६॥
तस्मात्त्रिकालं संयुक्तं दैवं तु सफलं भवेत्। पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति पार्थिव॥७॥

राजन्! मनुष्यों को पुरुषार्थ द्वारा ही अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति होती है जो लोग पुरुषार्थ से हीन हैं, वे एकमात्र दैव को सबकुछ जानते हैं। अतः सर्वदा तीनों काल में पुरुषार्थ से युक्त दैव ही सफल होता है। राजन्! भाग्य से युक्त, मनुष्य का पुरुषार्थ समय आने पर फल देता है।।६-७।।

दैवं पुरुषकारश्च कालह्य पुरुषोत्तम। त्रयमेतन्मुनष्यस्य पिण्डितं स्यात्फलावहम्॥८॥
कृषिवृष्टिसमायोगाद्दृश्यन्ते फलसिद्धयः। तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवकाले कथञ्चन॥९॥
तस्मात्सदैव कर्तव्यं सधर्मं पौरुषं नरैः। विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम्॥१०॥
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न च दैवपरायणाः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पौरुषे यत्नमाचरेत्॥११॥

त्यक्त्वाऽलसान्दैवपरान्मनुष्यानुत्थानयुक्तान्पुरुषान्हि लक्ष्मीः।
अन्विश्य यत्नाद्वृणुयान्नृपेन्द्र तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम्॥१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दैवपुरुषकारवर्णनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११५७९॥

—※※※—

पुरुषोत्तम! दैव, पुरुषार्थ एवं काल–ये तीनों संयुक्त होकर मनुष्य को फल देते हैं। लोक में वृष्टि के संयोग होने पर कृषि में फल प्राप्ति देखी जाती है; किन्तु वह भी समय आने पर ही फलवती होती है, बिना समय के नहीं। इसलिए मनुष्य को सर्वदा धर्म सहित पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ में लगे हुए किसी मनुष्य को यदि इस लोक में विपतियों के पड़ जाने से फल प्राप्ति नहीं होती तो निश्चय है कि परलोक में उसे फल प्राप्ति होगी। आलसी पुरुष कभी भी अपने मनोरथ को सफल नहीं कर सकते और न भाग्य पर भरोसा रखकर बैठने वाले ही सफल हो सकते हैं। इसलिए मनुष्य को सभी प्रयत्नों से पुरुषार्थ में सर्वदा जुटे रहना चाहिये। राजेन्द्र! भाग्य पर भरोसा रखकर बैठने वालों आलसी पुरुषों को छोड़कर लक्ष्मी सर्वदा अभ्युदय में तत्पर पुरुषार्थी पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक ढूँढ़कर वरण करती हैं, इसलिए सर्वदा मनुष्य को अभ्युदय, शील एवं पुरुषार्थी होना चाहिये॥८–१२॥

॥दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥२२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामबोध वर्णन

मनुरुवाच

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान्महाद्युते। लक्षणं च तथा तेषां प्रयोगं च सुरोत्तम॥१।

मनु ने कहा–महाकान्तिमान्! सुरोत्तमम्! अब तुम मुझे सामादि उपायों को तथा उनके लक्षण और उनके प्रयोगों की विधि बतलाओ॥१॥

मत्स्य उवाच

साम भेदस्तथा दानं दण्डश्च मनुजेश्वर। उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालं च पार्थिव॥२॥
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु। द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च॥३॥
अत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते। तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम॥४॥

महाकुलीना ऋजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः।
सामसाध्या न चातथ्यं तेषु साम प्रयोजयेत्॥५॥

मत्स्य ने कहा–पार्थिव! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल ये सात प्रयोग बतलाये गये हैं, उनकी विधि तथा प्रयोग मैं बतला रहा हूँ, सुनो। साम दो प्रकार का कहा गया है, एक तथ्य और दूसरा अतथ्य। उनमें अतथ्य साम का प्रयोग तो साधु पुरुषों की नाराजगी का कारण बन जाता है। नरोत्तम! अतएव सत्पुरुष को तथ्य साम उपाय ही साध्य जानना चाहिये। अति उच्चकुल में उत्पन्न होने वाले, सरल, प्रकृति, नित्य धर्म में अभिरुचि रखने वाले जितेन्द्रिय पुरुष साम उपाय से ही साध्य होते हैं, अतः उनके लिए अतथ्य सामनीति का आश्रय नहीं लेना चाहिये।।२-५।।

तथ्यं साम च कर्तव्य कुलशीलादिवर्णनम्। तथा तदुपचाराणां कृतानां चैव वर्णनम्॥६॥
अनयैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम्। एवं साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्परः॥७॥
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः। तथाऽप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम्॥८॥
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम्। असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत्॥९॥
ये शुद्धवंशा ऋजवः प्रणीता धर्मे स्थिताः सत्यपरा विनीताः।
ते सामसाध्याः पुरुषाः प्रदिष्टा मानोन्नता ये सततं च राजन्॥१०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे सामबोधो नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११५८९।।

—❊❊❊—

तथ्य साम का प्रयोग कुल के वर्णन, उपकारों की चर्चा, सत्कर्मों की प्रशंसा तथा उसकी सेवा एवं कार्यों का विषद वर्णन करके करे और इस प्रकार युक्तिपूर्वक अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करते हुए धर्म में तत्पर रहने वालों को अपने वश में करना चाहिये। यद्यपि राक्षस भी साम नीति के द्वारा वश में किये गये हैं–ऐसी बातें प्रायः सुनी गई हैं; किन्तु इतने पर भी असत्पुरुषों के लिए इसका प्रयोग उपकारक नहीं होता है। वे असज्जन पुरुष साम की बातें करने वालों को अतिशय डरा हुआ समझते हैं, अतः उनके लिए इसका उपाय नहीं करना चाहिये। जो शुद्ध वंश में उत्पन्न, सरल प्रकृति वाले, धर्मिष्ठ, धर्मपरायण, सत्यवादी, विनयी एवं सम्मानी व्यक्ति हैं, वे ही सर्वदा साम उपाय से साध्य हो सकते हैं।।६-१०।।

।।दो सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त।।२२२।।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भेद प्रशंसा वर्णन

मत्स्य उवाच

परस्परं तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः। तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः॥१॥
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति। ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशं ततः॥२॥
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद्दर्शयेद्भयम्। एवं हि भेदयेद्भिन्नान्यथावद्वशमानयेत्॥३॥

मत्स्य ने कहा–जो परस्पर बैर रखने वाले, दुष्ट, क्रोधी, भय से डरे हुए तथा अपमानित व्यक्ति हैं, वे भेद उपाय से साध्य होते हैं, उन्हें वश में करने के लिए भेदोपाय का अवलम्ब लेना चाहिये। जो लोग जिस दोष के कारण दूसरे से अप्रसन्न रहते हैं, उन्हें उसी दोष को दिखाकर आपस में भिन्न करना चाहिये। भेद्य व्यक्ति को उसके निजी दोषों को दिखाकर अच्छी आशा तथा दूसरे से भय होने की आशंका दिखलावे, इस प्रकार एक-दूसरे से भिन्न कर उन्हें अपने वश में लाये॥१-३॥

संहता हि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहाः। भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदः॥४॥
स्वमुखेनाऽऽश्रयेद्भेदं भेदं परमुखेन च। परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम्॥५॥
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्ये हि भेदिताः।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राज्ञाऽर्थवादिभिः॥६॥

जो आपस में एकता के सूत्र में बँधे हुए शत्रु हैं, वे भेद उपाय के बिना इन्द्र से भी असाध्य होते हैं। इसीलिए नीतिज्ञ लोग ऐसे स्थलों पर भेद उपाय की ही प्रसंशा करते हैं। इस भेद उपाय का कार्य अपने मुख से अथवा दूसरे के मुख से भेद्य व्यक्ति से कहे या कहलावे; परन्तु अपने विषय में दूसरे की भेदनीति की वार्ता सुनकर भली-भाँति परीक्षा कर ले, तब सत्य मानकर विश्वास करे। शीघ्रता पूर्वक अपने कार्य के उद्देश्य से सुनिपुण नीतिज्ञों द्वारा जो भेदित किये जाते हैं, वे ही सच्चे अर्थ में भेदित कहे जाते हैं। अर्थचिन्ता में परायण राजा को इसी उपाय से शत्रुओं को भेदित करना चाहिये दूसरे उपाय से नहीं॥४-६॥

अन्तःकोपो बहिः कोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम्।
अन्तःकोपो महांस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम्॥७॥

सामन्तकोपो बाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः। महिषीयुवराजाभ्यां तथा सेनापतेर्नृप॥८॥
अमात्यमन्त्रिणां चैव राजपुत्रे तथैव च। अन्तःकोपो विनिर्दिष्टो दारुणः पृथिवीक्षिताम्॥९॥
बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिवः। शुद्धान्तस्तु महाभाग शीघ्रमेव जयी भवेत्॥१०॥

आन्तरिक कोप (घरेलू वैमनस्य) और बाहरी कोप-ये दो कोप राजाओं के सम्मुख जब उपस्थित हों तो, उनमें आन्तरिक कोप को अधिक महान् एवं प्रभावशाली जानना चाहिये, उससे राजाओं के सम्मुख जब उपस्थित हों, तो उनमें आन्तरिक कोप को अधिक महान् एवं प्रभावशाली जानना चाहिये, उससे राजाओं विनाश हो जाता है। सामन्त तथा नृपतिगणों का क्रोध बाहरी क्रोध कहा गया है तथा रानी, युवराज, सेनापति, मन्त्रीगण तथा राजकुमारों के क्रोध को आन्तरिक कोप कहते हैं। जिसका प्रभाव राज के लिये अत्यन्त भयानक बताया गया है। हे महाभाग्यशाली! अत्यन्त भीषण भी बाहरी कोप राजा के ऊपर पड़ गया हो; किन्तु यदि उसका आन्तरिक भाग वैमनस्य रहित है अर्थात् उपर्युक्त सभी उसका सहयोग कर रहे हैं तो वह शीघ्र ही विजय लाभ करता है।।७-१०।।

अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति।
सोऽन्तः कोपः प्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्ये महीभृता।।११।।
परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा। ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा।।१२।।

और इन्द्र के समान भी पराक्रमी तथा साधन सम्पन्न हो; किन्तु यदि भीतरी कलह है तो वह शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है। इसलिए राजा को आन्तरिक कोप के शमन के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। शत्रु को विजित करने वाले राजा को चाहिये कि दूसरे लोगों से क्रोध पैदा कराकर उसकी जाति में प्रबल भेद उत्पन्न कर दे और प्रयत्न पूर्वक अपनी जाति में भेद न होने दे।।११-१२।।

रक्ष्यश्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथाऽऽत्मनः। ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः।।१३।।
तथाऽपि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा।
ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्करः।।१४।।
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं विश्वसन्ति च। ज्ञातिभिर्भेदनीयास्तु रिपवस्तेन पार्थिवैः।।१५।।
भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः स्वल्पेन सैन्येन निहन्तुमाजौ।
सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्भिः।।१६।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे भेदप्रशंसा नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११६०५।।

—※※※—

यद्यपि जाति के लोग राजा की उन्नति देखकर सर्वदा परिताप की अग्नि से जलते रहते हैं, तथापि राजा को गम्भीर भाव से उनकी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये। दान तथा सम्मान देकर सर्वदा उन्हें अपने में सम्मिलित किये रहना चाहिये; क्योंकि जाति में भेदनीति बड़ी भयङ्कर होती है। जाति वालों पर प्रायः लोग अनुग्रह का भाव नहीं रखते और न उसका विश्वास ही करते हैं, इसलिए राजाओं को चाहिये कि जाति

में फूट डालकर शत्रु को उनसे अलग कर दें। इस प्रकार भेदनीति द्वारा भिन्न किये हुए अधिक शत्रुओं को भी राजा अपनी थोड़ी सेना से संग्राम में विनष्ट कर सकता है, अतएव नीति निपुण लोगों को एकता के सूत्र में बँधे हुए अनेक शत्रुओं के लिए भेदनीति का प्रयोग करना चाहिये।।१३-१६।।

।।दो सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त।।२२३।।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दान प्रशंसा वर्णन

मत्स्य उवाच

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्। सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्।।१।।
न सोऽस्ति राजन्दानेन वशगो यो न जायते। दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्।।२।।
दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्व नृपोत्तम। प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते।।३।।
दानवानचिरेणैव तथा राजा पराञ्जयेत्। दानवानेव शक्नोति संहतान्भेदितुं परान्।।४।।

मत्स्य भगवान् ने कहा-सभी प्रकार के उपायों में दान सर्वश्रेष्ठ उपाय माना गया है, दान यदि भली-भाँति समझ-बूझकर दिया गया है तो वह इह एवं पर दोनों लोकों में विजय देने वाला होता है। हे राजन्! इस पृथ्वी तल पर ऐसा कोई नहीं है जो दान द्वारा वश में न किया जा सके, यहाँ तक कि दान के द्वारा देवता लोग भी मनुष्यों के वश में होते आये हैं। हे नृपोत्तम! दान ही एक ऐसा पदार्थ है जो सभी प्रजाओं का पालन-पोषण करता है, दान देने वाला प्राणी इस पृथ्वी मात्र में सबका प्रिय हो जाता है। दानशील राजा दान द्वारा शीघ्र ही शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है और दानशील ही एकता के सूत्र में बंधे हुए शत्रुओं को परस्पर भेदित करने में समर्थ हो सकता है।।१-४।।

यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमा। न गृह्णन्ति तथाऽप्येते जायन्ते पक्षपातिनः।।५।।
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान्यथा वशे। उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः।।६।।
दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम्। दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा।।७।।
न केवलं दानपरा जयन्ति भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः।।८।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मदानप्रशंसा नाम चतुर्विशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११६१३।।

यद्यपि इस दान को निर्लोभी तथा सागर के समान गम्भीर प्रकृति वाले मनुष्य अंगीकार नहीं करते, पर वे भी इसके प्रयोग से अपने पक्ष के बन जाते हैं। आवश्यकता के अतिरिक्त दूसरे स्थानों पर भी किया गया दान दूसरे लोगों को भी अपने वश में कर देता है, इसीलिए लोग सभी उपायों में दान की अति प्रशंसा किया करते हैं। पुरुषों के लिए दान कल्याण देने वाला है तथा सभी प्रकार के उपायों से अति श्रेष्ठ है। लोक में दानशील व्यक्ति की सर्वदा पुत्र की भाँति प्रतिष्ठा होती है। दान में तत्पर रहने वाले दानवीर पुरुष ने केवल भूलोक को ही अपने वश में करते हैं प्रत्युत उस देवराज इन्द्र के लोक को भी जीत लेते हैं, जो सचमुच अति दुर्जेय तथा देवताओं का निवास है।।५-८।।

।।दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।।२२४।।

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दण्ड प्रशंसा वर्णन

मत्स्य उवाच

न शक्या ये वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु। दण्डेन तान्वशी कुर्याद्दण्डो हि वशकृन्नृणाम्।।१।।
सम्यक्प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता। धर्मशास्त्रानुसारेण सुसहायेन धीमता।।२।।
तस्य सम्यक्प्रणयनं यथा कार्यं महीक्षिता। वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निमान्निष्परिग्रहान्।।३।।
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान्। समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्व दण्डे प्रतिष्ठितम्।।४।।
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान्।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति।।५।।

मत्स्य भगवान् ने कहा–हे राजन्! उपर्युक्त तीनों उपायों द्वारा जो शत्रु वश में नहीं किये जा सकते, उन्हें दण्ड नीति से वश में करना चाहिये। दण्ड तो सभी मनुष्यों को वश में करने वाला कहा गया है। किन्तु उस दण्ड नीति का प्रयोग भली-भाँति धर्मशास्त्रानुकूल मन्त्री की सहायता से बुद्धिमान् राजा को करना चाहिये। राजा को उस दण्डनीति का प्रयोग जिस प्रकार करना चाहिये, उसे सुनो! उसे अपने देश में अथवा शत्रु के देश में वानप्रस्थाश्रमी, धर्मशील, संसार की माया से विरक्त रहने वाले, किसी से कुछ भी न लेने वाले, धर्मशास्त्र प्रवीण पुरुषों को भली-भाँति देखकर दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिये। इस दण्ड की व्यवस्था यद्यपि सबके लिए हैं; किन्तु राजा को अपने धर्म एवं आश्रम में रहने वाले वर्णाश्रम की मर्यादा को मानने वाले, पूज्य गुरु, उच्चामैंय को दण्ड नहीं देना चाहिये।।१-५।।

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकं च प्रपद्यते॥६॥
तस्माद्राज्ञा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः। दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया॥७॥

अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देकर तथा दण्डनीय पुरुषों को दण्ड न देकर राजा इस लोक में राज्य से भ्रष्ट हो ही जाता है, उसका परलोक भी नष्ट हो जाता है। इसलिए धर्मशास्त्र से अनुमोदित पथ पर चलते हुए विनयशील-राजा लोगों के ऊपर अनुग्रह की भावना से दण्ड नीति का प्रयोग करे॥६-७॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति निर्भयः।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति॥८॥

बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवा यतः। मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन्यदि दण्डं न पातयेत्॥९॥
देवदैत्योरगगणाः सर्वे भूतपतत्त्रिणः। उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत्॥१०॥

जिस राज्य में सत्प्रकृति वाले राजा की देखरेख में श्यामवर्ण एवं लाल नेत्र वाला दण्ड प्रचारित है, उस राज्य में प्रजाएँ कभी नहीं बिगड़तीं। यदि राज्य में दण्डनीति की व्यवस्था न रखी जाये तो बालक, वृद्ध, आतुर, संन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री एवं विधवा इन सबों को मछली की भाँति आपस में ही सब खा जायँ अर्थात् जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियाँ को हड़प जाती हैं, उसी प्रकार दण्ड व्यवस्था के न रहने से बलवान्, लोग इन उपर्युक्त असहायों को चूस डालें। यदि राजा दण्ड की व्यवस्था न बाँधे तो सभी देवता, दैत्य सर्पगण एवं भूत-प्रेत तथा पक्षी आदि अपनी-अपनी मर्यादा गवाँ बैठेंगे॥८-१०॥

एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च। सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति॥११॥
पूजयन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः। न ब्रह्माणं विधातारं न पूषार्यमणावपि॥१२॥
यजन्ते मानवाः केचित्प्रशान्ताः सर्वकर्मसु। रुद्रमग्निं च शक्रं च सूर्याचन्द्रमसौ तथा॥१३॥

राज दण्ड, ब्राह्मण के अभिशाप, सभी प्रकार की मारपीट एवं सभी प्रकार के पराक्रमपूर्वक क्रोध से किये गये कार्य कलापों में व्यवस्थित रहता है। दण्ड देने वाला व्यक्ति देवताओं से भी पूज्य हो जाता है और दण्ड न देने वाले की पूजा कहीं नहीं होती। लोक में भी देखिये, साधारण जनता, जगत् की सृष्टि करने वाले पितामह ब्रह्मा, जगत् के पालक पूषा तथा अर्यमा की पूजा इसलिए नहीं करते कि वे सभी कार्यों में शान्त रहते हैं। दण्ड देने वाले रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु एवं अन्यान्य देवगणों की सभी लोग पूजा करते हैं॥११-१३॥

विष्णुं देवगणांश्चान्यान्दण्डिनः पूजयन्ति च।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति॥१४॥

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः। राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते॥१५॥
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि। एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्॥१६॥

दण्ड ही सभी प्रजाओं का पालन करता है तथा वही एक मात्र सबकी रक्षा करता है, दण्ड ही एक ऐसा पदार्थ है जो सभी के सो जाने पर भी सर्वदा जागता रहता है, अतएव बुद्धिमान् लोग दण्ड को धर्म जानते हैं। राजदण्ड के भय से ही पापी लोग पापकर्म नहीं करते। इसी प्रकार कुछ पापी यमराज के दण्ड के भय से और कुछ एक-दूसरे प्रबल शत्रु के भय से पापाचरण में प्रवृत्त नहीं होते, इस प्रकार इस स्वाभाविक जगत् में सभी लोग दण्ड की व्यवस्था के अन्दर बँधे हुए हैं।।१४-१६।।

अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत्। यस्माद्दण्डो दमयति दुर्मदान्दण्डयत्यपि।।
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः।।१७।।
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागो धृतः शूलधरस्य यज्ञे।
दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वरं शिशूनां च भयाद्बलस्थम्।।१८।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रशंसा नामपञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११६३१।।

यदि राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता है तो वह अन्धतामिस्र नरक में पड़ता है। दण्ड ही एक ऐसा उपाय है जो अभिमान से उन्मत्त लोगों को वश में करके उन्हें उसका फल भी चखाता है, इसीलिए वश में करने तथा दण्ड देने के कारण दण्ड महिमा को बुद्धिमान् लोग जानते हैं। दण्ड ही के भय से डरे हुए देवताओं ने दक्ष के यज्ञ में शिव जी का भाग रखा था और दण्ड ही के भय से स्वामी कार्तिकेय को शैशवावस्था में ही सारी देवसेना का सेनापतित्व सौंपा गया था।।१७-१८।।

।।दो सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।।२२५।।

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रजापालन वर्णन

मत्स्य उवाच

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा। देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये।।१।।
(तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम्।
ततो भवति लोकेषु राजा भास्करवत्प्रभुः।।२।।
यदाऽस्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति। नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः।।३।।
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्ते काले प्रयच्छति। तथा राज्ञा विधातव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्।।४।।

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एव प्रदृश्यते। तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम्॥५॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–ब्रह्मा के दण्ड की व्यवस्था के लिए तथा सभी प्राणधारियों की रक्षा के लिए ही सभी देवताओं के अंशों को लेकर राजा की रचना की है। तेज से देदीप्यमान होने के कारण लोग जो इसे देख नहीं सकते, इसी कारण से लोकों में राजा सूर्य के समान तेजस्वी स्वामी कहा जाता है। इसके देखने से लोग प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं, अतः नेत्रों को आनन्द देने के कारण वह उस समय चन्द्रमा हो जाता है। जिस प्रकार समय आने पर यमराज मनुष्यों को कल्याण तथा दण्ड देते हैं, उसी प्रकार राजा को भी समय-समय पर प्रजा के साथ दोनों नीतियों का आश्रय लेना चाहिये–राजा का यह स्वभाव यमव्रत है। जिस प्रकार वरुण पाश में बँधे हुए दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार पापाचरण करने से प्रजा को भी राजा पाशबद्ध करता है, यह उसका वारुणव्रत है॥१-५॥

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः। तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चन्द्रप्रतिमो नृपः॥६॥
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु। दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाऽऽग्नेयव्रते स्थितः॥७॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते स्वयम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्)॥८॥
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोव्रतं नृपश्चरेत्॥९॥
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽप्यभिवर्षति।
तथाऽभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं काममिन्द्रव्रतं स्मृतम्॥१०॥
अष्टौ मासान्यथाऽऽदित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्॥११॥

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः। तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्॥१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राज्ञो लोकपालसाम्यनिर्देशो नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११६४३॥

जिस प्रकार मनुष्य पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर अति प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार जिसको देखकर प्रजा प्रसन्न होती है, वह चन्द्रमा के समान राजा ही है। पापाचरण, दुष्ट प्रकृति वाले सामन्तों तथा हिंसकों के लिए नित्य प्रतापशाली एवं तेजस्वी रूप में दण्डादि का व्यवहार करना राजा का अग्निव्रत कहा गया है। जिस प्रकार सभी जीवों को पृथ्वी अपने ऊपर धारण करती है, उसी प्रकार राजा भी सभी पापियों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर वहन करता है, यही उसका पार्थिवव्रत है। राजा को इस प्रकार इन्द्र, सूर्य, वायु, यमराज, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वी के तेज एवं धर्म का

आचरण करना चाहिये। जिस प्रकार आषाढ़ आदि चार मासों में इन्द्र वृष्टि करता है, उसी प्रकार राजा को भी अपने राष्ट्र में स्वेच्छापूर्वक दानवृष्टि करनी चाहिये—यही उसका इन्द्रव्रत कहा गया है। जिस प्रकार आठ मास तक सूर्य अपनी किरणों से जलाशयों के जलों का पान करता हैं, उसी प्रकार राजा भी राज्य से कर ग्रहण करे—यह उसका सर्वदा चलने वाला सूर्यव्रत है। जिस प्रकार वायु सभी चराचर जीवों में सर्वदा विचरण किया करता है, उसी प्रकार राजा को भी सभी प्राणियों तक गुप्तचरों द्वारा प्रविष्ट होना चाहिये—यही उसका वायुव्रत है।।७-१२।।

।।दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।।२२६।।

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दण्डनीति वर्णन

मत्स्य उवाच

निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक् तथा। वस्त्रादिकसमस्तस्य तदा धर्मो न हीयते।।१।।
यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।
तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा द्विगुणं धनम्।।२।।
उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः। ससहायः स हन्तव्यः प्रकामं विविधैर्वधैः।।३।।
यो याचितं समादाय न तद्दद्याद्यथाक्रमम्।
स निगृह्य बलाद्दाप्यो दण्ड्यो वा पूर्वसाहसम्।।४।।

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! वस्त्रादि की धरोहर को हड़प कर जाने वाले व्यक्ति को उसके मूल्य जितना दण्ड देना चाहिये, ऐसा करने से राजा का धर्म नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति बिना धरोहर रखे ही यह दावा करता है कि मैंने अवश्य रखा था और जो रखी हुई धरोहर को हड़प जाता है, वे दोनों ही चोर के सामान दण्ड पाने के पात्र हैं अथवा उनको मूल्य में द्विगुणित दण्ड दिया जाय। जो कोई मनुष्य अनेक साथियों के साथ किसी दूसरे के धन को अपहृत करता है, उसे सहायकों के साथ वध का दण्ड देना चाहिये अथवा अपनी इच्छानुसार किसी अन्य कठोर दण्ड का भाजन बनाना चाहिये। जो कोई व्यक्ति दूसरे से ली गयी वस्तु को समय पर वापस नहीं लौटाता है, राजा को चाहिये कि उसे पकड़ कर उसका निग्रह करे अथवा बलपूर्वक खूब दण्ड दे।।१-४।।

अज्ञानाद्यदि वा कुर्यात्परद्रव्यस्य विक्रयम्। निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चोरवद्वधमर्हति।।५।।
मूल्यमादाय यो विद्यां शिल्पं वा न प्रयच्छति। दण्ड्यः स मूल्यं सकलं धर्मज्ञेन महीक्षिता।।६।।

द्विजभोज्ये तु सम्प्राप्ते प्रतिवेश्मम भोजयन्।
हिरण्यमाषकं दण्ड्यः पापे नास्ति व्यतिक्रमः॥७॥

जो व्यक्ति बिना जाने हुए किसी दूसरे की वस्तु को बेंच देता है, वह तो निर्दोष है; किन्तु जो जानते हुए भी कि यह दूसरे की वस्तु है बेंचता है चोर के समान दण्डनीय है। जो व्यक्ति मूल्य देने के बाद विद्या अथवा शिल्प को दान नहीं देता, धर्म की मर्यादा को जानने वाले राजा को उसे उस सम्पूर्ण मूल्य का दण्ड देना उचित है। जो व्यक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराते समय अपने पड़ोसियों को भोजन नहीं कराता, उसे पुण्य न होकर पाप ही होता है। राजा को उसे एक माशा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। उसे दण्ड देने से राजा को कोई अपराध नहीं लगता।।५-७।।

आमन्त्रितो द्विजो यस्तु वर्तमानश्च स्वे गृहे।
निष्कारणं न गच्छेद्यः स दाप्योऽष्टशतं दमम्॥
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः॥८॥

निमन्त्रण दिये जाने पर जो ब्राह्मण अपने घर रहकर भी बिना किसी कारण के भोजन करने नहीं जाता, उसे एक सौ आठ दम का दण्ड देना चाहिये। जो किसी वस्तु के देने की प्रतिज्ञा करके भी दान नहीं करता, उसे एक सुवर्ण मुद्रा का दण्ड देना चाहिये।।८।।

भृत्यश्चाऽऽज्ञां न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम्।
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम्॥९॥
सङ्गृहीतं न दद्याद्यः काले वेतनमेव च।
अकाले तु त्यजेद्भृत्यं दण्ड्यः स्याच्छतमेव च॥१०॥

जो नौकर होकर भी स्वामी की आज्ञा को अभिमान के कारण नहीं पूर्ण करता, उसे राजा आठ कुण्डल का दण्ड दे और वेतन भी न दे। जो स्वामी अपने नौकर के संचित वेतन को समय पर नहीं दे देता और कुसमय में उसे नौकरी से निकाल देता है, उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिए।।९-१०।।

यो ग्रामदेशसस्यानां कृत्वा सत्येन संविदम्। विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥११॥
क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयी भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात्तत्साम्यं दद्याच्चैवाऽऽददीत वा॥१२॥
परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नैव दापयेत्। आददन्न ददच्चैव राजा दण्ड्यः शतानि षट्॥१३॥

जो व्यक्ति सत्यतापूर्वक किये गये ग्राम-देश और अन्न के बटवारे को लोभ के कारण फिर झूठ कहकर असत्य मानता है, उसे राजा को चाहिये कि अपने देश से निकाल दे। किसी वस्तु को खरीदने या बेंचने के बाद यदि कुछ मूल्य शेष रह जाता है तो उसे दस दिन के भीतर दे देना या ले लेना चाहिये। यदि दस दिन बीत जाने के बाद कोई शेष मूल्य को दे देने या दिला देने की व्यवस्था नहीं करता, तो राजा उन दोनों को छः सौ मुद्राओं का दण्ड दे।।११-१३।।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्॥१४॥
अकन्यैवेति यः कन्यां ब्रूयाद्दोषेण मानवः। स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन्॥१५॥

जो व्यक्ति अपनी दोष से युक्त कन्या को बिना दोष को सूचित किये किसी को दान करता है, उसे राजा स्वयं छानबें पणों का दण्ड दे। जो मनुष्य बिना दोष के ही किसी दूसरे की कन्या को दान करता है, उसे राजा स्वयं छियानबे पणों का दण्ड दे। जो मनुष्य बिना दोष के ही किसी दूसरे की कन्या को दोषमुक्त बतलाता है, वह यदि उस कन्या के दोषों को दिखाने में असमर्थ रह जाता है तो राजा उसे सौ मुद्रा का दण्ड दे। जो व्यक्ति एक कन्या को दिखलाकर विवाह समय में किसी दूसरी कन्या को दान देता है, राजा को उसे कठोर दण्ड देना चाहिए। जो वर अपने दोषों को गुप्त रखकर किसी का पाणिग्रहण करता है, वह कन्या देने के बाद भी न दी हुई के समान है, राजा उस अपराधी व्यक्ति के ऊपर दो सौ मुद्राओं का दण्ड लगावे।।१४-१५।।

यस्त्वान्यां दर्शयित्वाऽन्यां वोढुः कन्यां प्रयच्छति।
उत्तमं तस्य कुर्वीत राजा दण्डं तु साहसम्॥१६॥
वरो दोषाननाख्याय यः कन्यां वरयेदिह।
दत्ताऽप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयम्॥१७॥
प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति।
दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः॥१८॥
सत्यङ्कारेण वा वाचा युक्तं पण्यमसंशयम्।
लुब्धो ह्यन्यत्र विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति॥१९॥
दुहितुः शुल्कविक्रेता सत्यङ्कारात्तु संत्यजेत्। द्विगुणं दण्डयेदेनमिति धर्मो व्यवस्थितः॥२०॥

जो व्यक्ति एक कन्या को किसी दूसरे को दान करके फिर किसी दूसरे को दान करता है, उसे भी राजा को चाहिये कि किसी कठोर दण्ड का पात्र बनावे। जो व्यक्ति अपने मुँह से यह कहकर कि "निश्चय ही इतने मूल्य पर अमुक वस्तु आपको दे दूँगा' पर फिर भी अधिक लोभ के कारण अधिक मूल्य पर किसी दूसरे के हाथ बेंच देता है, उसे छः सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति मूल्य लेकर कन्या का विक्रय करता है अथवा सत्य वचन से टलता है, उसे लिये हुए मूल्य से द्विगुणित द्रव्य का दण्ड देना चाहिये, यह धर्म की व्यवस्था है।।१६-२०।।

मूल्यैकदेशं दत्त्वा तु यदि क्रेता धनं त्यजेत्।
स दण्ड्यो मध्यमं दण्डं तस्य पण्यस्य मोक्षणम्॥२१॥
दुह्याद्धेनुं च यः पालो गृहीत्वा भक्तवेतनम्।
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं चाप्यरक्षिता॥२२॥

दण्डं दत्त्वा तु विरमेत्स्वामितः कृतलक्षणः।
बद्धः कार्ष्णायसैः पाशैस्तस्य कर्मकरो भवेत्॥२३॥

मूल्य का कुछ भाग देने के पश्चात् यदि लेने वाला व्यक्ति उसे लेना नहीं चाहता तो उसे मध्यम दण्ड देना चाहिये और उस दिये बयाने को नहीं लौटाना चाहिये। जो गोपाल (चरवाहा) उपयुक्त वेतन लेकर गौओं को दुह लेता है अथवा उनकी ठीक से रक्षा नहीं करता है तो राजा को उसे सौ सुवर्ण मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। दण्ड देने के बाद राजा विरत हो जाय। तदनन्तर राजा द्वारा चिह्नित किया गया अपराधी काले लोहे के बने हुए पाशों से आबद्ध होकर राजा के कथनानुसार कारागार में किसी कार्य में नियुक्त किया जाय॥२१-२३॥

धनुःशतपरीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः। द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि नागरस्य तु कल्पयेत्॥२४॥
वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत्। छिद्रं वा वारयेत्सर्वं श्वशूकरमुखानुगम्॥२५॥
यत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि। न तत्र कारयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणे॥२६॥

ग्राम के बाहर चारों ओर से सौ धनुष के विस्तार में उनका निवास कराये और नगर के लिये उससे दुगुने या तिगुने में कारागार का निर्माण करे। उसके चारों ओर इतना ऊँचा घेरा रहे, जिसके भीतर की वस्तु को ऊँट भी न देख सके तथा उन सभी प्रकार के छिद्रों को भी, जिनमें कुत्ते तथा शूकर हिलकर भीतर जा सकें, बन्द करा देना चाहिये। बिना घेरे के खेत में अन्न को यदि पशुगण हानि पहुँचाते हैं तो राजा को पशु के चरवाहे को दण्ड नहीं देना चाहिये॥२४-२६॥

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषं देवपशुं तथा। छिद्रं वा वारयेत्सर्वं न दण्ड्यो मनुरब्रवीत्॥२७॥
अतोऽन्यथा विनष्टस्य दशांशं दण्डमर्हति।
पाल्यस्य पालकस्वामी विनाशे क्षत्त्रियस्य तु॥२८॥
भक्षयित्वोपविष्टस्तु द्विगुणं दण्डमर्हसि।

उस गाय द्वारा, जिसे व्याये हुए अभी दस दिन नहीं बीता है, तथा उस वृष द्वारा, जो देवता के उद्देश्य से छोड़ा गया है, यदि घेरा रहने पर भी खेत के अन्न की हानि होती है तो उसके लिए पशुपालक दण्डनीय है- ऐसा मनु ने कहा है। इन उपर्युक्त कारणों के बिना यदि अन्य प्रकार से पशुओं से खेतों के अन्नादि को हानि पहुँचाती है तो खेत के स्वामी की क्षतिपूर्ति के लिये पशुपालक तथा पशुस्वामी के ऊपर दस गुना दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई पशु उस खेत में जाकर हानि पहुँचाने के बाद भी वहीं बैठा हुआ मिलता है तो उसके स्वामी के ऊपर उक्त दण्ड से दुगुना दण्ड लगाना चाहिये॥२७-२८.५॥

विशं दण्ड्याद्दशगुणं विनाशे क्षत्त्रियस्य तु॥२९॥
गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वाऽपि समाहरन्। शतानि पञ्च दण्डः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः॥३०॥

यदि खेत का स्वामी क्षत्त्रिय है और वैश्य का पशु हानि पहुँचाता है तो उसे हानि का दस

गुना अधिक दण्ड देना चाहिये। यदि किसी के घर, तालाब, बगीचे अथवा खेत को कोई दूसरा छीन लेता है तो इसे पाँच सौ दम का तथा यदि बिना जाने इनकी हानि पहुँचाता है तो दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये।।२९-३०।।

सीमाबन्धनकाले तु सीमन्तं यो हि कारयेत्।
तेषां संज्ञां ददानस्तु जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्।।३१।।
अथैनामपि यो दद्यात्संविदं वाऽधिगच्छति।
उत्तमं सहसं दण्ड्य इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।।३२।।

किसी खेत आदि की सीमा बाँधने के समय यदि कोई व्यक्ति सीमा का उल्लंघन करता है अथवा सीमा के उल्लंघन करने की सम्मति देता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये। शपथ करके जो व्यक्ति सीमा के उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की बातों को समर्थन करता है, उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये-ऐसा स्वायम्भुव मनु ने कहा।।३१-३२।।

वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः।
अकार्यंकारिणः सर्वान्प्रायश्चित्तानि कारयेत्।।३३।।
असत्येन प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत्। दानेन च धनेनैकं सर्पादीनामशक्नुवन्।।३४।।
एकैकं स चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये। फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।।३५।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-ये तीनों वर्ण वाले बिना किसी विशेषता के समाज में अपनी स्थिति के क्रम से यदि निषिद्ध कार्य करते हैं, तो उसका प्रायश्चित्त करें। यदि असत्याचरण द्वारा कोई स्त्री किसी की हत्या करती है, तो उसे शूद्र की हत्या में जो प्रायश्चित्त किया जाता है, करना चाहिये। सर्पादि की हत्या कर धन द्वारा दान आदि के करने में असमर्थ द्विजों को पापशान्ति के लिए एक-एक कृच्छ्रव्रत का आचरण करना चाहिये। फल देने वाले वृक्षों को काटने के जो अपराधी हैं, उन्हें सौ ऋचाओं का जप करना चाहिये।।।३३-३५।।

गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्।
अस्थिमतां च सत्त्वानां सहस्त्रस्य प्रमापणे।।
पूर्णे वाऽनस्यवस्थातुं शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।।३६।।

फूली हुई लताओं, गुल्मों, वल्लियों तथा फूले हुये वृक्षों के काटने पर भी सौ ऋचाओं का जप करना चाहिये। हड्डी वाले जीवों का एक सहस्त्र की संख्या में अथवा एक गाड़ी में भर जाने भर की हत्या करने वाले को शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिये।।।३६।।

किञ्चिद्देयं च विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामैर्विशुध्यति।।३७।।
अन्नादिजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः। फलपुष्पोद्गतानां च घृतप्राशो विशोधनम्।।३८।।

कृष्टानामोषधीनां च जातानां च स्वयं वने। वृथा छेदेन गच्छेत दिनमेकं पयोव्रती॥३९॥

हड्डी वाले जानवरों की हिंसा करके ब्राह्मण को कुछ दान देना चाहिये और जो बिना हड्डी के हैं, उनकी हिंसा करने पर प्राणायाम से शुद्धि हो जाती है। अन्नादि में उत्पन्न होने वाले, रसादि से उत्पन्न होने वाले तथा फल और पुष्पों के जन्तुओं की हिंसा करने पर घृत का भोजन कर लेना चाहिये। कृषि कर्म से उत्पन्न हुई तथा वन में स्वतः जमी हुई औषधियों को बिना आवश्यकता के काटने पर एक दिन का दुग्धव्रत रखना चाहिये।।३७-३९।।

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम्। स्तेयदोषापहर्तृणां श्रूयतां व्रतमुत्तमम्॥४०॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः।
सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति॥४१॥

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य तु। कूपवापीजलानां तु शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम्॥४२॥

हिंसा से उत्पन्न पातक को इन उपर्युक्त व्रतों से दूर करना चाहिये। अब चौर कर्म से उत्पन्न हुए पाप को शान्त करने के लिए उत्तम व्रत का विधान सुनिये। धान्य, अन्न एवं धन का इच्छापूर्वक अपहरण यदि ब्राह्मण अपनी जाति वालों के घर से करता है तो वह अर्धकृच्छ्रव्रत से शुद्ध होता है। मनुष्यों तथा स्त्रियों का हरण करने तथा खेत, घर, कूप और बावली के जल का हरण करने से चान्द्रायण व्रत करने पर शुद्धि मानी गई है।।४०-४२।।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्य विशुद्धये॥४३॥

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य तु। पुष्पमूलफलानां तु पञ्चगव्यं विशोधनम्॥४४॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चैलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥४५॥
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक्॥४६॥

दूसरे के घर से थोड़ी मूल्य वाली सम्पत्ति का अपहरण करके कृच्छ्र सान्तपन व्रत से शुद्धि मिलती है। भोजन की वस्तुओं के अपहरण करने पर तथा वाहन, शय्या, आसन, पुष्प, मूल एवं फलादि की चोरी करने पर पंचगव्य से शुद्धि होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा तथा मांस की चोरी करने पर तीन रात्र तक भोजन नहीं करना चाहिये। मणि, मोती प्रवाल, तांबा, चाँदी, लोहा, कांसा तथा पत्थर की चोरी करने पर अन्न के कणों का भोजन करना चाहिये।।४३-४६।।

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च। पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः॥४७॥

एतैर्व्रतैर्व्यपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः।

सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, दो तथा एक खुरों वाले जन्तु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, ओषधि तथा रस्सी की चोरी करने पर तीन दिनों तक केवल दुग्ध का आहार करना चाहिये। इन उपर्युक्त व्रतों के करने से चोरी के पाप से द्विज जाति वालों का छुटकारा हो जाता है।।४७.५।।

अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत्।।४८।।
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।।४९।।
पैतृष्वस्त्रीयभगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च। भ्रातुर्दुहितरं चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्।।५०।।

अगम्य स्त्रियों के साथ समागम करने वालों को निम्नलिखित व्रतों का आचरण करना चाहिये। अपनी जाति में उत्पन्न हुई पराई स्त्री के साथ समागम करके गुरुतल्प व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् इसमें गुरु की स्त्री के साथ समागम करने का प्रायश्चित्त विहित है, उसी का अनुष्ठान करना चाहिये। मित्र तथा पुत्र की स्त्री के साथ, कुमारी एवं नीच जाति की स्त्री के साथ, फुफेरी तथा ममेरी बहिन के साथ, भाई की स्त्री के साथ समागम करके चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये।।४८-५०।।

एताः स्त्रियस्तु भार्यार्थे नोपगच्छेत्तु बुद्धिमान्।
ज्ञातीनां च स्त्रियो यास्तु पतितानुगताश्च याः।।५१।।
अमानुषीषु पुरुषो उदक्यायामयोनिषु। रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्।।५२।।

बुद्धिमान् पुरुष को अपनी जाति की किन्हीं स्त्रियों के साथ तथा उन स्त्रियों के साथ जो समाज से बहिष्कृत पतितों के साथ हैं, समागम नहीं करना चाहिये। जो पुरुष मनुष्य से भिन्न योनि, ऋतुमती स्त्री तथा बिना योनिद्वार के कहीं अन्यत्र, अथवा जल में वीर्यक्षरण करता है, उसे कृच्छ्रसान्तपन नामक व्रत का आचरण करना चाहिये।।५१-५२।।

मैथुनं च समालोक्य पुंसि योषिति वा द्विजः।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत्।।५३।।
चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति।।५४।।

द्विजाति पुरुष को स्त्री-पुरुष के मैथुन को देखकर तथा बैलगाड़ी पर, जल में तथा दिन में मैथुन करके वस्त्र समेत स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण यदि अज्ञान से चाण्डाल और अन्त्यज स्त्रियों के साथ सम्भोग करके, उनके यहाँ भोजन कर उनके दिये हुये दानादि को ग्रहण करता है, वह पतित हो जाता है और जानबूझकर करता है तो वह उन्हीं जाति वालों की समता में हो जाता है।।५३-५४।।

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि। यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्।।५५।।
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपमन्त्रिता।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तत्तस्याः पावनं स्मृतम्।।५६।।

ब्राह्मण द्वारा दूषित स्त्री को उसका पति एक निर्जन घर में बाँध दे और दूसरे की स्त्रियों में कामाभिलाषा रखने वाले पुरुषों को भी यही व्रत कराये। यदि ऐसा करने के बाद भी वह स्त्री पुनः किसी परकीय पुरुष के साथ दूषित होती है तो उसके लिए कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान कहा गया है। जो द्विज एक रात को शूद्र की स्त्री के साथ समागम करता है, वह केवल एक प्रकार का भोजन एक वर्ष भर करके जप करते हुए तीन वर्षों में शुद्ध होता है।।५५-५६।।

यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः। तद्भक्ष्यभुग्जपेन्नित्यं त्रिभिवर्षैर्व्यपोहति।।५७।।

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतिम्।।५८।।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनात्तुल्ययानाशनासनात्।।५९।।

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः। स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये।।६०।।

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह।

चारों जातियों के पापाचरण करने वालों के लिए यह निस्तार की बातें मैंने कही हैं। अब पतियों के संसर्ग से होने वाले पाप की निष्कृति का उपाय सुनिये। पतितों के घर यज्ञानुष्ठान, अध्यापन, यौन-सम्बन्ध, भोजन, एक वाहन पर गमन तथा समान आसन पर बैठना-इन सब कामों में संसर्ग रखने से द्विजाति एक वर्ष में पतित हो जाता है। जो मनुष्य इन सब कर्मों में पतितों का साथ देता है, वह उसी कर्म में पतितों के लिए कहे गये प्रायश्चित्त का अनुष्ठान उस ससंर्गजन्य दोष से अपनी शुद्धि के लिए करे, तब शुद्ध होता है; किन्तु तब तक उसे प्रेत की भाँति रहना चाहिये और उसके सपिण्ड में उत्पन्न होने वालों को चाहिये कि उसकी उदक क्रिया करे।।५७-६०.५।।

निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञातिभिर्गुरुसन्निधौ।।६१।।

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रतवत्सदा। अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह।।६२।।

निवर्तयेरंस्तस्मात्तु सम्भाषणसहासनम्। दायादस्य प्रमाणं च यात्रामेवं च लौकिकीम्।।६३।।

किसी निन्दित दिन को सायंकाल के समय गुरु के समीप, जाति वालों के साथ उक्त विधान होना चाहिये। दासी उक्त व्यक्ति को प्रेत की भाँति समझकर जलपूर्ण घट को ईशान कोण में रखे और वह परिवारवर्ग वालों के साथ एक रात-दिन उपवास करे और अशौचवत् व्यवहार रखे। परिवार वर्ग को उस व्यक्ति के साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये तथा साथ बैठना भी नहीं चाहिये। इस पाप कर्मों की जाति को भी उन्हें नहीं प्रकट करना चाहिये- यही लौकिक मर्यादा है।।६१-६३।।

ज्येष्ठभावान्निवर्तेत ज्येष्ठावाप्तं च यत्पुनः।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः।।६४।।
स्थापितां चापि मर्यादां ये भिन्द्युः पापकर्मिणः।
सर्वे पृथक्पृथगदण्ड्या राज्ञा प्रथमसाहसम्।।६५।।

जिस प्रकार ज्येष्ठ भाई के नहीं रहने पर उसके हिस्से की प्राप्ति छोटे भाई को होती है, उसी प्रकार अधिक गुणवान् होने पर भी छोटे भाई को उसका फल भोगना पड़ता है। जो पापाचरण करने वाले प्राणी स्थापित की गई मर्यादा को उल्लंघित करता हैं, उन सबको राजा पृथक्-पृथक् जाति क्रमानुसार उत्तम साहस का दण्ड दे।।६४-६५।।

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति। वैश्यस्तु द्विशतं राजञ्छूद्रस्तु वधमर्हति।।६६।।

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्यस्याप्यर्धं पञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः।।६७।।
क्षत्त्रियस्याऽऽप्नुयाद्वैश्यः साहसं पुनरेव च।
शूद्रः क्षत्त्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्।।६८।।

यदि क्षत्त्रिय होकर ब्राह्मण को गाली बकता है तो उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये, यदि वैश्य है तो उसे दो सौ का और शूद्र है तो उसे मृत्यु का दण्ड देना चाहिये। यदि ब्राह्मण है और क्षत्रिय को कटु बातें कहता है तो उसे पचास दम दण्ड दे और वैश्य को कटूक्ति सुना रहा है तो पच्चीस दम तथा शूद्र को तो बारह दम का दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य होकर क्षत्त्रिय को गाली बक रहा है तो उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये और शूद्र होकर क्षत्त्रिय को गाली-गलौज बक रहा है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये।।६६-६८।।

पञ्चाशत्क्षत्त्रियो दण्ड्यस्तथा वैश्याभिशंसने। शूद्रे चैवार्धपञ्चाशत्तथा धर्मो न हीयते।।६९।।

वैश्यस्याऽऽक्रोशने दण्डः शूद्रश्चोत्तमसाहसम्।
शूद्राक्रोशे तथा वैश्यः शतार्धं दण्डमर्हति।।७०।।

सवर्णाक्रोशने दण्ड्यस्तथा द्वादशकं स्मृतम्। वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत्।।७१।।

क्षत्त्रिय यदि वैश्य को बुरा-भला बक रहा है तो उसे पचास और शूद्र को बुरा-भला कह रहा है तो पचीस दम का दण्ड देना चाहिये; किन्तु ऐसा करने से उसका धर्म क्षीण नहीं होता। शूद्र यदि वैश्य को गाली बके तो उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये और वैश्य होकर शूद्र को बुरा-भला सुना रहा है तो पचास दम का दण्ड देना चाहिये। यदि कोई अपने वर्ण वालों को गाली-गलौज बकता है तो उसे बारह दम का दण्ड देना चाहिये और यदि ऐसी बातें कहता है, जो नहीं कहने योग्य हैं तो फिर वह दण्ड द्विगुणित हो जाता है।।६९-७१।।

एकजातिर्द्विजातिं तु वाचा दारुणया क्षिपन्।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यः प्रथमो हि सः।।७२।।

नामजातिगृहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः। निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलनास्य दशाङ्गुलः।।७३।।

धर्मोपदेशं शूद्रस्तु (स्य) द्विजानामभिकुर्वतः।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः।।७४।।

यदि द्विजाति से भिन्न जाति वाला किसी द्विजाति को कठोर वाणी से बुरा-भला सुनाता है तो उसकी

जीभ काट लेनी चाहिये और उसे परम नीच समझना चाहिये। नाम, जाति तथा घरेलू बातों की चर्चा करते हुए जो गाली-गलौज करता है, उसके मूँह में जलती हुई लोहे की बारह अंगुल लम्बी शलाका डाल देनी चाहिये। यदि शूद्र होकर द्विजाति के धर्म की कुचर्चा करता है तो उसके कान में तथा मुख में राजा को खौलता हुआ तेल डाल देना चाहिये।।७२-७४।।

श्रुतिं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च। वितथं च ब्रुवन्दण्ड्यो राज्ञा द्विगुणसाहसम्।।७५।।
यस्तु पातकसंयुक्तः क्षिपेद्वर्णान्तरं नरः। उत्तमं साहसं दण्डः पात्यस्तस्मिन्यथाक्रमम्।।७६।।

राज्ञो निवेशनियमं वितथं यान्ति वै मिथः।
सर्वे द्विगुणदण्ड्यास्ते विप्रलम्भान्नृपस्य तु।।७७।।
प्रीत्या मयाऽस्याभिहितं प्रमादेनाथवा वदेत्।
भूयो न चैवं वक्ष्यामि स तु दण्डार्धभाग्भवेत्।।७८।।

वेद, देश, जाति एवं शारीरिक कार्यों के सम्बन्ध में ग्लानि करने वाले को राजा द्विगुण साहस दण्ड दे। जो व्यक्ति स्वयं पापाचारी होते हुए दूसरी जाति वालों को बुरा-भला कहता है, उसे राजा उसकी जाति के अनुरूप उत्तमसाहस दण्ड का पात्र बनावे। जो राजा के बनाये हुए नियम की अवज्ञा करते हैं अथवा राजा के प्रति विरोधमूलक बातें करते हैं, उन सब को द्विगुणसाहस दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अपने अपराध को "मैंने भ्रमवश ऐसा किया है, अथवा मुझसे इस कार्य में प्रमाद हुआ अब भविष्य में ऐसा फिर न कहूँगा" ऐसा कहकर स्वीकार प्रतिज्ञा करता है तो वह आधे दण्ड का पात्र है।।७५-७८।।

काणं वाऽप्यथवा खञ्जमन्धं चापि तथाविधम्।
तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणं धनम्।।७९।।

मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम्। आक्रोशयञ्छतं दण्ड्यः पन्थानं चार्दयन्गुरोः।।८०।।

गुरुवर्ज्यं तु मानार्हं यो हि मार्गं न यच्छति।
स दाप्यः कृष्णलं राज्ञस्तस्य पापस्य शान्तये।।८१।।

काना हो, लंगड़ा हो अथवा अन्धा हो, यदि उन्हें अपमानित करने की टोन में कोई सचमुच उक्त विशेषणों से पुकारता है तो उसे एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ, भाई, श्वसुर तथा गुरु-इन सब को बुरा-भला कहने वाले तथा इन गुरुजनों के मार्ग को रोकने वाले को सौ कार्षापण का दण्ड देना चाहिये। गुरु के अतिरिक्त अन्य मान्य व्यक्तियों को, जो आगे से मार्ग नहीं देता है, उसे उसकी पाप शान्ति के लिए राजा एक कृष्णल का दण्ड दे।।७९-८१।।

एकजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नुयात्। तदेव च्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन्।।८२।।
अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ च्छेदयेन्नृपः। अवमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो गुदम्।।८३।।
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः। कट्यांकृताङ्को निर्वास्यःस्फिचं वाऽप्यस्य कर्तयेत्।।८४।।

द्विजाति से अन्य जाति वाले व्यक्ति यदि किसी द्विज जाति वाले का किसी अंग से अपकार करता

है तो राजा उसका शीघ्र ही वह अंग काट ले, इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सामने गर्वपूर्वक थूकने वाले, पेशाब करने वाले तथा अपानशब्द करने व्यक्ति को राजा क्रमशः दोनों होंठ, लिंग और गुदा द्वार काट ले। यदि कोई नीच जाति वाला व्यक्ति किसी उच्च व महान् व्यक्ति के आसन पर बैठने की इच्छा प्रकट करता है तो राजा उसकी कमर में एक चिह्न बनाकर अपने राज्य से निर्वासित कर दे अथवा उसके चुतड़ को काट ले।।८२-८४।।

केशेषु गृह्णतो हस्तं छेदयेदविचारयन्। पादयोर्नासिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च।।८५।।
त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः। मांसभेत्ता च षण्निष्कान्निर्वास्यस्त्वस्थिभेदकः।।८६।।

और इसी प्रकार यदि कोई निम्न जाति वाला किसी उच्च जाति के व्यक्ति के केशों को पकड़ता है तो उसके हाथों को बिना विचार किये ही काट ले। इसी प्रकार का दण्ड दोनों पैरों, नासिका, कण्ठ तथा अण्डकोश के पकड़ने पर भी देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसी के चमड़े को भेद देता है और उससे रक्त निकलता दिखाई पड़ता है तो उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये। मांस काट लेने पर छस निष्कों का दण्ड तथा हड्डी तोड़ने पर देश निकाला का दण्ड देना चाहिये।।८१-८६।।

अङ्गभङ्गकरस्याङ्ग तदेवापहरेन्नृपः। दण्डपारुष्यकृद्दड्यः समुत्थानव्ययं तथा।।८७।।
अर्धपादकरः कार्यो गोगजाश्वोष्ट्रघातकः। पशुक्षुद्रमृगाणां च हिंसायां द्विगुणो दमः।।८८।।

जो व्यक्ति किसी के अंगों को तोड़-फोड़ देता है राजा को चाहिये कि उसके उन अंगों को काट ले, जिसके द्वारा उसने हानि पहुँचायी है तथा उतने द्रव्य का भी उस पर दण्ड करे, जितना उस आहत व्यक्ति के उठने-बैठने के व्यय के लिये पर्याप्त हो। गाय, हाथी, अश्व एवं ऊँट की हत्या करने वाले का आधा हाथ तथा आधा पैर काट लेना चाहिये। राजा पशु तथा छोटे जानवरों की हत्या के अपराधी को उनके मूल्य का द्विगुणित दम का दण्ड करे।।८७-८८।।

पञ्चाशच्च भवेद्दण्डयस्तथैव मृगपक्षिषु।
कृमिकीटेषु दण्ड्यः स्याद्रजतस्य च माषकम्।।८९।।
तस्यानुरूपं मूल्यं च प्रदद्यात्स्वामिने तथा।
स्वस्वामिकानां सकलं शेषाणां दण्डमेव तु।।९०।।

वृक्षं तु सफलं छित्त्वा सुवर्णं दण्डमर्हति। द्विगुणं दण्डयेच्चैनं पथि सीम्नि जलाशये।।९१।।

मृग तथा पक्षियों की हत्या करने पर पचास दम का दण्ड करना चाहिये। कृमि तथा कीटों के मारने पर एक मासा चाँदी का दण्ड लगाना चाहिये और उसके अनुकूल उसके स्वामी को मूल्य भी दिलाना चाहिये। अब मैं शेष उन उपराधों के दण्डों की व्यवस्था बतला रहा हूँ, जो अपने स्वामी की वस्तुओं की हानि पहुँचाकर किये जाते हैं। फलयुक्त वृक्ष को काटने पर अपराधी को सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। यदि वह वृक्ष किसी खेत आदि की सीमा पर अवस्थित है अथवा जलाशय के समीप है तो उससे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये।।८९-९१।।

छेदनादफलस्यापि मध्यमं साहसं स्मृतम्।
गुल्मवल्लीलतानां च सुवर्णस्य च माषकम्॥९२॥
वृथाच्छेदी तृणस्यापि दण्ड्यः कार्षापणं भवेत्।
त्रिभागं कृष्णला दण्ड्याः प्राणिनस्ताडने तथा॥९३॥
देशकालानुरूपेण मूल्यं राजा द्रुमादिषु।
तत्स्वामिनस्तथा दण्ड्या दण्डमुक्तस्तु पार्थिव॥९४॥

फलरहित वृक्ष को भी काटने पर मध्यमसाहस का दण्ड देना चाहिये, गुल्मों, लताओं, तथा वल्लियों को काटने पर एक मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। बिना किसी आवश्यकता के एक तृण को भी नष्ट करने वाला व्यक्ति एक कार्षापण का दण्ड भागी होता है। और किसी प्राणी को बिना किसी कारण के दण्ड पहुँचाने वाले को तिहाई भाग कृष्णल का दण्ड देना चाहिये। वृक्षादि के काटे जाने पर राजा देश तथा काल के अनुसार उचित मूल्य का दण्ड करे और उसे स्वयं ले ले; किन्तु अपराधी उस वृक्षादि के स्वामी को भी उसका उचित मूल्य चुका दे।।९२-९४।।

यत्रातिवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो नाऽऽप्तश्चेत्प्राजको भवेत्॥९५॥
प्राजकश्च भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति।
नास्ति दण्डश्च तस्यापि तथा वै हेतुकल्पकः॥९६॥
द्रव्याणि यो हरेद्यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्यात्ततो दमम्॥९७॥

यदि किसी चालक की गलती से रथ कहीं पर गिर पड़ता है और उससे कोई हानि हो जाती है तो ऐसे अवसर पर यदि वह चालक सुनिपुण नहीं है, नौसिखिया है, तो उसके स्वामी को दण्ड देना चाहिये और यदि चालक निपुण है तो उसी के ऊपर दण्ड लगाना चाहिये; किन्तु उसे भी दण्ड नहीं देना चाहिये, यदि वह घटना किसी विशेष परिस्थिति में वहाँ घटित हुई हो। जो किसी के द्रव्य को जानकार अथवा बिना जाने हुए अपहरण करता है, वह राजा के सम्मुख दण्ड स्वीकार करके इसके स्वामी को सन्तुष्ट करे।।९५-९७।।

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च तां प्रपाम्।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च सम्प्रतिपादयेत्॥९८॥
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः।
शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत्॥९९॥
तथा भक्ष्यान्नपानानां न तथाऽऽप्यधिके वधः।

जो व्यक्ति किसी कुएँ पर से रस्सी अथवा घड़ा उठा ले जाता है अथवा उस कुएँ की कोई हानि करता है, उसके ऊपर एक मासा सुवर्ण का दण्ड करना चाहिये और उसकी क्षतिपूर्ति करानी चाहिये। दस

घड़े से अधिक अन्न चुराने वाले को वध का दण्ड देना चाहिये और यदि दस घड़े से कम अन्न चुराता है तो जितना अन्न उसने चुराया है, उसके ग्यारह गुने अधिक मूल्य का दण्ड उस पर लगाना चाहिये। उसी प्रकार दस घड़े से अधिक खाद्य सामग्री, अन्न एवं पानादि की वस्तुओं के चुराने पर भी उसी प्रकार का दण्ड देना चाहिये; किन्तु इससे अधिक के चुराने पर भी उसे वध का दण्ड नहीं देना चाहिये।।९८-९९.५।।

सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम्।।१००।।
पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः। महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च।।१०१।।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति। दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य रसस्य च।।१०२।।
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च। मृण्मयानां च सर्वेषां मृदो भस्मन एव च।।१०३।।
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत्।

सुवर्ण, चाँदी आदि के आभूषण तथा उत्तम वस्त्रादि, कुलीन पुरुष-विशेषतया कुलीन स्त्रियाँ बड़े-बड़े पशुओं, हथियारों, ओषधियों तथा रत्नादि की चोरी करने वाले को वध का दण्ड देना चाहिये। दही, दूध, तक्र, पानी, रस, बाँस, बैदल (?) पात्र, लवण, मिट्टी के पात्रादि, मिट्टी, राख आदि की चोरी करने वाले को राजा देश व समय के अनुसार दण्ड की व्यवस्था करे।।१००-१०३.५।।

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु महिषीषु तथैव च।।१०४।।
अश्वापहारकश्चैव सद्यः कार्योऽर्धपादकः।
सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च।।१०५।।
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यद्वस्तुसम्भवम्।।१०६।।
अन्येषां लवणादीनां मद्यानामोदनस्य च।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः।।१०७।।

ब्राह्मण के घर से गाय, भैंस अथवा घोड़े की चोरी करने वाले को राजा शीघ्र ही आधे पैर का बना दे। सूत, कपास (रूई) आसव, गोबर, गुड़, मछली, पक्षी तैल, घी, मांस, मधु, नमक, मदिरा, चावल एवं उनसे बनी हुई अन्यान्य वस्तुओं तथा पके हुए सभी प्रकार के अन्नों की चोरी करने वाले को उस वस्तु के द्विगुणित मूल्य का दण्ड देना चाहिये।।१०४-१०७।।

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीलतासु च। अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डः स्यात्पञ्चमाषकम्।।
परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमेलफलेषु च।।१०८।।
निरन्वये शतं दण्ड्यः सान्वये द्विशतं दमः। येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते।।१०९।।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।

पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, वल्ली तथा अधिक अन्न की चोरी करने वाले को पाँच मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। प्रचुर मात्रा में अन्न, शाक, मूल एवं फल की चोरी करने वाले को-यदि वह सन्ताहीन

है तो सौ मुद्रा का दण्ड यदि सन्तान वाला है तो दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये। जिन-जिन अंगों की सहायता से चोरी करता है अथवा चोरी करने की चेष्टा करता है, राजा उसका वह-वह अंग दण्डार्थ काट ले।।१०८-१०९.५।।

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके।।११०।।
त्रपुसोर्वारुकौ द्वौ च तावन्मात्रं फलेषु च। तथा च सर्वधान्यानां मुष्टिग्राहेण पार्थिव।।१११।।
शाके शाकप्रमाणेन गृह्यमाणे न दुष्यति। वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च।।११२।।
तृणं गोभ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्। आदेववाटिजं पुष्पं देवतार्थं तथैव च।।११३।।

यदि कोई अकिंचन ब्राह्मण पथिक मार्ग में चलते हुए दो ईख तोड़ लेता है अथवा दो मूल (कन्द, मूली आदि) उखाड़ लेता है अथवा दो खीरे या तरबूज तोड़ लेता है, अथवा दो अन्य फलों को तोड़ लेता है, या दो मुट्ठी अन्न ले लेता है, साग ले लेता है, तो वह चोरी के दोष से नहीं दूषित होता। जो व्यक्ति भोजन के लिये जंगल में उगे हुए वनस्पतियों के फल अथवा मूल को जलाने भर की लकड़ी को अथवा गौ को खिलाने के लिये घास को बिना स्वामी की आज्ञा के भी ले लेता है तो उसे मनु चोरी नहीं कहते। बिना देवता की वाटिका में उत्पन्न हुए पुष्प को तथा किसी दूसरे के खेत में उत्पन्न हुए पुष्प को यदि कोई देवता के लिए तोड़ता है तो उसे दण्ड नहीं देना चाहिये।।११०-११३।।

आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति। शृङ्गिणं नखिनं राजन्दंष्ट्रिणं च वधोद्यतम्।।११४।।
यो हन्यान्न स पापेन लिप्यते मनुजेश्वर।
गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।।११५।।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।।११६।।

हे राजन्! अपने को मारने के लिए उद्यत सींग वाले, नख वाले तथा दाढ़वाले पशुओं को जो व्यक्ति मारता है, उसे कोई पाप नहीं लगता, गुरु हो, बालक हो, वृद्ध हो, ब्राह्मण हो अथवा बहुत विद्वान् क्यों न हो, यदि वह आततायी है तो अपने समीप आते ही बिना विचार किये उसे मार डालना चाहिये; क्योंकि आततायी के मारने वाले को किसी प्रकार का पाप नहीं लगता।।११४-११६।।

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति। गृहक्षेत्राभिहर्तारस्तथाऽगम्याभिगामिनः।।११७।।
अग्निदो गरदश्चैव तथा चाभ्युद्यतायुधः।
अभिचारं तु कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम्।।११८।।
एते हि कथिता लोके धर्मज्ञैराततायिनः।

कोई व्यक्ति चाहे वह प्रकाश में कोई पाप करता है अथवा छिपकर करता है, उस दोष का भागी तो होता ही है। दूसरों के घर तथा स्त्री का अपहरण करने वाले, अगमनीय स्त्रियों के साथ समागम करने वाले, आग लगाने वाले, विष देने वाले, हथियार लेकर मारने को उद्यत, अत्याचार परायण, राजा के विरोध में विद्रोह करने वाले-इन सबको धर्मज्ञ लोग आततायी कहते हैं।।११७-११८.५।।

भिक्षुकोऽप्यथवा नारी योऽपि वा स्यात्कुशीलवः॥११९॥
प्रविशेत्प्रतिषिद्धस्तु प्राप्नुयाद्द्विगुणं दमः।
परस्त्रीणां तु सम्भाषे तीर्थेऽरण्ये गृहेऽपि वा॥१२०॥
नदीनां चैव सम्भेदे स सङ्ग्रहणमाप्नुयात्।
न सम्भाषेत्परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत्॥१२१॥
प्रतिषिद्धे समाभाष्य सुवर्णं दण्डमर्हति।

भिक्षुक, स्त्री तथा चारणादि-यदि ये निषेध करने पर भी घर में घुस जाते हैं तो उन्हें द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। तीर्थ में, जंगल में अथवा घर पर दूसरे की स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने से तथा नदी की धारा को भिन्न कर देने से संग्रहण नामक दण्ड देना चाहिये। दूसरी स्त्री के साथ तो साधारण रीति से भी वार्तालाप नहीं करना चाहिये, यदि रोके जाने पर भी दूसरी स्त्री के साथ कोई सम्भाषण करता है तो उसे एक सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये॥११९-१२१.५॥

नैष चारणदारेषु विधिरात्मोपजीविषु॥१२२॥
सज्जयन्ति मनुष्यैस्ता निगूढं वा चरन्त्युत। किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्सम्भाषेणापचारयन्॥१२३॥
प्रेष्यासु चैव सर्वासु गृहप्रव्रजितासु च। योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति॥१२४॥

किन्तु यह दण्ड चारणों, स्त्रियों तथा अन्तःपुर में प्रवेश कर नृत्य-गीतादि द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले को नहीं देना चाहिये। ऐसे लोग यदि अन्तःपुर के लोगों के साथ सम्भाषण करते हैं, अथवा वहाँ घूमते-फिरते हैं, तो कुछ नाममात्र का दण्ड देना चाहिये। घर से निकली हुई सभी दूतियों तथा दासियों के साथ ही यही व्यवहार करना चाहिये। जो व्यक्ति किसी कुमारी के साथ बलात्कार करता है, उसे शीघ्र ही वध का दण्ड देना चाहिये॥१२२-१२४॥

सकामां दूषयाणस्तु प्राप्नुयाद्द्विशतं दमम्।
यश्च संरक्षकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत्॥१२५॥
पारदारिकवद्दण्ड्यो योऽपि स्यादवकाशदः।
बलात्सन्दूषयेद्यस्तु परभार्यां नरः क्वचित्॥१२६॥
वधो दण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत्स्त्रियाः।

यदि कोई किसी कामुकी कुमारी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये। यदि उस जगह का, जहाँ पर वह व्यभिचार संभव हुआ, रखवाली करने वाला कोई पुरुष है तो उसे भी यही दण्ड देना चाहिये, जो ऐसे व्यभिचारों को सम्भव बनाने में अवकाश देता है, उसे दूसरे की स्त्री के साथ व्यभिचार करने का दण्ड देना चाहिये। जो कोई किसी दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है, उसको वध-दण्ड करना चाहिये और इस अवसर पर स्त्री का कोई भी अपराध नहीं मानना चाहिये॥१२५-१२६.५॥

रजस्तृतीयं या कन्या स्वगृहे प्रतिपद्यते॥१२७॥
अदण्ड्या सा भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम्।
स्वदेशे कन्यकां दत्त्वा तामादाय तथा व्रजेत्॥१२८॥
परदेशे भवेद्वध्यः स्त्रीचोरः स यतो भवेत्। अद्रव्यां मृतपत्नीं तु सङ्गृह्णन्नापराध्नुते॥१२९॥
सद्रव्यां तां सङ्ग्रहीता दण्डं तु क्षिप्रमर्हति।

जो कन्या तीसरी बार रजस्वला होकर पिता के घर पर ही अपने लिए पति का वरण कर लेती है, वह राजा से दण्डनीय नहीं है। अपने घर पर दी गई कन्या को यदि कोई पुरुष दूसरे देश में भगा ले जाता है तो वह स्त्री चोर है और उसे वध का दण्ड मिलना चाहिये। बिना अलंकारादि के यदि किसी की विधवा स्त्री को कोई ग्रहण करता है तो वह कोई अपराध नहीं करता; किन्तु यदि उस पति के द्रव्यादि के साथ ग्रहण करता है तो शीघ्र ही दण्ड का भागी है।।१२७-१२९.५।।

उत्कृष्टं या भजेत्कन्या देया तस्यैव स भवेत्॥१३०॥
यच्चान्यं सेवमानां च संयतां वासयेद्गृहे। उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति॥
जघन्यमुत्तमा नारी सेवमाना तथैव च॥१३१॥
भर्तारं लङ्घयेद्या स्त्री ज्ञातिभिर्बलदर्पिता।
तां च निष्कासयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥१३२॥

जो कन्या अपनी जाति तथा योग्यता से उत्कृष्ट व्यक्ति को प्रेम करती है तो पिता को चाहिये कि अपनी उस कन्या को उसे दे दे। यदि कन्या किसी अल्प योग्यतावाले को प्रेम करती है तो उसे विशेष बन्धनों में डालकर अपने घर में रखे। यदि नीची जाति वाला कोई पुरुष उत्तमजाति की कन्या के साथ प्रेम करता है तो उसे दण्ड देना चाहिये, इसी प्रकार यदि उत्तम जाति की स्त्री किसी नीच जाति के पुरुष के साथ प्रेम करती है तो वह भी दण्डनीय है। यदि कोई स्त्री अपनी जाति वालों (पिता के पक्ष वालों) के बल के अभिमान में आकर अपने पति को छोड़ देती है तो राजा को चाहिये कि उसे घर से निकाल कर सुविधा प्रद स्थान में रख दे।।१३०-१३२।।

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्।
वासयेत्स्वैरिणीं नित्यं सवर्णेनाभिदूषिताम्॥१३३॥
ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात्।
वासश्च मलिनं नित्यं शिखां सम्प्राप्नुयाद्दश॥१३४॥

समान जाति के पुरुष द्वारा दूषित स्त्री को राजा सभी अधिकारों से वंचित कर दे, वेश आदि छीनकर मलिन बना दे और उस स्वेच्छाचारिणी को केवल भोजन मात्र का प्रबन्ध कर दे। उत्तम कुल एवं जाति में उत्पन्न हुई स्त्री यदि दूषित हुई है तो उसका मुण्डन करा दे, नित्य मैला वस्त्र पहनने को दे और सिर में दस शिखाएँ रख दे।।१३३-१३४।।

ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वैश्यः क्षत्त्रविट्शूद्रयोषितः।
व्रजन्दाप्यो भवेद्राज्ञा दण्डमुत्तमसाहसम्॥१३५॥
वैश्यागमे च विप्रस्य क्षत्त्रियस्यान्त्यजागमे।
मध्यमं प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमाद्भवेत्॥१३६॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रम से क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की स्त्री के साथ दुराचरण करते हैं तो राजा उन्हें उत्तम साहस नामक दण्ड दे। ब्राह्मण वैश्य स्त्री के साथ और क्षत्रिय अन्त्यज स्त्री के साथ यदि पापाचरण करते हैं तो मध्यम साहस दण्ड देना चाहिये और वैश्य शूद्रा स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे भी पूर्वोक्त रीति के अनुसार उत्तम साहस दण्ड मिलना चाहिये।।।१३५-१३६।।

शूद्रः सवर्णागमने शतं दण्ड्यो महीक्षिता।
वैश्यस्तु द्विगुणं राजन्क्षत्त्रियस्त्रिगुणं तथा॥१३७॥
ब्राह्मणश्च भवेद्दण्ड्यस्तथा राजंश्चतुर्गुणम्।
अगुप्तासु भवेद्दण्डः सुगुप्तास्वधिको भवेत्॥१३८॥

यदि शूद्र अपनी जाति की स्त्री के साथ समागम करता है तो उसे राजा सौ मुद्राओं का दण्ड दे, इसी प्रकार वैश्य को समान वर्ण वाली स्त्री के साथ पापाचरण करने पर दो सौ, क्षत्रिय को तीन सौ तथा ब्राह्मण को चार सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। आश्रयहीन स्त्री के साथ पापाचरण करने पर ये उपर्युक्त दण्ड बताये गये हैं। जो सभी प्रकार के साधनों से सुरक्षित परकीय स्त्रियों के साथ दुराचार करते हैं, उनको तो इससे अधिक दण्ड मिलना चाहिये।।१३७-१३८।।

माता पितृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृव्यजा।
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी तथा॥
भ्रातृभार्यागमे पूर्वाद्दण्डस्तु द्विगुणो भवेत्॥१३९॥

माता, फूफी, सास, मामी, चचेरी बहन, चाची की सखी, शिष्य की स्त्री, उसकी सखी तथा भाई की स्त्री-इन सबके साथ समागम करने पर पूर्व कथित दण्ड से द्विगुणित दण्ड देना चाहिये।।१३९।।

भागिनेयी तथा चैव राजपत्नी तथैव च। तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च॥१४०॥
इत्यगम्याश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः।
शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा ततस्तु वधमर्हति॥१४१॥
चण्डालीं च श्वपाकीं च गच्छन्वधमवाप्नुयात्॥१४२॥

भांजे की स्त्री, राजा की पत्नी, संन्यासिनी तथा उच्चवर्ण की स्त्री-ये सभी अगम्य मानी गई हैं। इन सबों के साथ समागम करने वाले व्यक्ति के लिंग को कटवाकर तदनन्तर मृत्यु का दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार चाण्डाल की स्त्री तथा कुत्ते खाने वालों की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले को भी वध का दण्ड देना चाहिये।।१४०-१४२।।

तिर्यग्योनिं च गोवर्ज्यं मैथुनं यो निषेवते।
वपनं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्याश्च यवसोदकम्॥१४३॥
सुवर्णं च भवेद्दण्ड्यो गां व्रजन्मनुजोत्तम।
वेश्यागामी द्विजो दण्ड्यो वेश्याशुल्कसमं पणम्॥१४४॥
गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति। वेतनं द्विगुणं दद्याद्दण्डं च द्विगुणं तथा॥१४५॥
अन्यमुद्दिश्य यो वेश्यां नयेदन्यस्य कारणात्।
तस्य दण्डो भवेद्राजन्सुवर्णस्य च माषकम्॥१४६॥

गौ को छोड़कर अन्य तिर्यक् योनियों में सम्भोग करने वाले व्यक्ति को सुवर्ण का दण्ड लगाना चाहिये। वेश्या के साथ खुले रूप में समागम करने वाले ब्राह्मण को वेश्या को दिये हुए शुल्क जितना आर्थिक दण्ड देना चाहिये। वेश्या यदि वेतन स्वीकार करने के उपरान्त अधिक शुल्क मिलने के लोभ से अन्यत्र चली जाती है तो उसे द्विगुणित दण्ड देने के उपरान्त लिये हुए शुल्क का द्विगुणित आर्थिक दण्ड भी दिया जाय। हे राजन्! दूसरे के बहाने से यदि कोई वेश्या को किसी दूसरे के पास लाया जाता है तो उसे एक मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये।।१४३-१४६।।

नीत्वा भोगान्न यो दद्याद्दाप्यो द्विगुणवेतनम्।
राजश्च द्विगुणं दण्डं तथा धर्मो न हीयते॥१४७॥
बहूनां व्रजतामेकां सर्वे ते द्विगुणं दमम्। दद्युः पृथक्पृथक्सर्वे दण्डं च द्विगुणं परम्॥१४८॥

वेश्या को लाने के बाद जो उसके साथ सम्भोगादि नहीं करता, उसे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये और राजा को उसे द्विगुणित शुल्क दिलाना चाहिये, ऐसा करने से उसका धर्म नहीं हीन होता। यदि बहुत व्यक्ति केवल एक वेश्या के साथ समागम करने को उपस्थित हो तो राजा उन सबों को द्विगुणित दण्ड दे, ओर वे सब पृथक्-पृथक् द्विगुणित द्रव्य दण्ड रूप में उस वेश्या को अधिक दें।।१४७-१४८।।

न माता न पिता न स्त्री न ऋत्विग्याज्यमानवाः।
अन्योन्यं पतितास्त्याज्या योगे दण्ड्याः शतानि षट्॥१४९॥

माता, पिता, स्त्री, पुरोहित और यजमान- ये सब पतित होने पर भी नहीं छोड़े जाते, पर यदि कोई मनुष्य इनमें से किसी को छोड़ता है तो वह छः सौ सुवर्ण मुद्राओं का दण्डभागी होता है।।१४९।।

पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथञ्चन। गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी॥१५०॥
अधीयानोऽप्यनध्याये दण्ड्यः कार्षापणत्रयम्।
अध्यापकश्च द्विगुणं तथाऽऽचारस्य लङ्घने॥१५१॥

पतित होने पर गुरुजन भी त्याज्य हो सकते हैं; किन्तु माता नहीं छोड़ी जा सकती। गर्भकाल में धारण एवं पोषण करने के कारण माता का गौरव गुरुजनों से भी अधिक है। अनध्याय के दिन भी अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को तीन कार्षापण का दण्ड देना चाहिये और पढ़ाने वाले अध्यापक को

द्विगुणित दण्ड मिलना चाहिए, इसी प्रकार उन्हें अपने-अपने आचारों के उल्लङ्घन करने पर भी दण्ड देना चाहिये।।१५०-१५१।।

अनुक्तस्य भवेद्दण्डः सुवर्णस्य च कृष्णलम्।
भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः।।१५२।।
कृतापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा।
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गं कथञ्चन।।१५३।।
अतोऽन्यथा प्रहरतः प्राप्नुयाच्चोरकिल्विषम्।
दूतीं समाह्वयंश्चैव यो निषिद्धं समाचरेत्।।१५४।।
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा स दण्ड्यः पार्थिवेच्छया।

जिन-जिन अपराधों में केवल दण्ड की चर्चा की गई है और कोई परिमाण नहीं निश्चित किया गया है, वहाँ-वहाँ सुवर्ण का एक कृष्णल दण्ड रूप में समझना चाहिए। स्त्री, पुत्र, सेवक, शिष्य तथा सगा भाई भी यदि अपराध करता है तो रस्सी से बाँधकर बाँस की छड़ी से भी दण्ड देना चाहिए; किन्तु शरीर के पिछले भाग पर; सिर आदि अंगों पर नहीं। इन कहे गये स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर ताड़ना करने वाले को चोरी जैसा पाप लगता है। जो दूती को बुलाकर प्रकाश रूप में अथवा गोपनीय रूप में निषिद्धाचरण करता है, उसके लिए राजा अपनी इच्छा के अनुरूप दण्ड व्यवस्था करे।।१५२-१५४.५।।

वासांसि फलकैः श्लक्ष्णैर्निर्णिज्याद्रजकः शनैः।।१५५।।
अतोऽन्यथा हि कुर्वस्तु दण्ड्यः स्याद्रुक्ममाषकम्।
रक्षास्वधिकृतानां च प्रदेयं यैर्विलुप्यते।।१५६।।
कर्षकेभ्योऽर्थमादाय यः कुर्यात्करमन्यथा।
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्।।१५७।।
ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युःकार्याणि कार्यिणाम्।
निर्घृणाः क्रूरमनसः सर्वे कर्मापराधिनः।।१५८।।

धोबी को चाहिये कि वह कोमल काठ के पीठकों पर वस्त्र को धीरे-धीरे साफ करे, यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे एक मासे सुवर्ण का दण्ड देना चाहिए। राजा की ओर से रक्षा आदि स्थानों पर नियुक्त किए गए लोग यदि देय भाग को हड़प लेते हैं, राजधानी में जमा नहीं करते अथवा किसानों से कर लेकर उसे दूसरे कार्यों में लगा देते हैं, राजा उनका सर्वस्व छीन लेने के बाद निर्वासन का दण्ड दे। जो लोग अपने पद पर नियुक्त होकर अन्य कार्यार्थियों के कार्यों की हानि करते हैं, वे निर्दय क्रूरात्मा सभी उस कर्म के अपराधी हैं।।१५५-१५८।।

धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निः स्वान्कारयेन्नृपः।
कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान्।।१५९।।

स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च वध्यात्तत्सेविनस्तथा।
अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा॥१६०॥
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्।

जो लोग धन की गर्मी से बौखलाये हुए हों, अनुचित कार्य में संलग्न हों, राजा को चाहिये कि उन सभी को निर्धन बना दे। यदि राजा के सेवकगण कूटनीति से शासन करने वाले, प्रजा के वर्ग को राजा के विरुद्ध भड़काने वाले; स्त्री-बालक तथा ब्राह्मणादि के संहारक हैं तो राजा उन सभी को वध का दण्ड दे। अमात्य हो, (प्रधान मंत्री हो) अथवा प्रधान न्यायकर्ता ही क्यों न हो, यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो राजा उसके सर्वस्व को छीनकर उसे अपनी राज्य से बाहर कर दे॥१५९-१६०.५॥

ब्रह्मघ्नश्च सुपारश्च तस्करो गुरुतल्पगः॥१६१॥
एतान्सर्वान्पृथग्घिस्यान्महापातकिनो नरान्।
महापातकिनो वध्या ब्राह्मणं तु विवासयेत्॥१६२॥
कृतचिह्नं स्वदेशाच्च शृणु चिह्नाकृतिं ततः।
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः॥१६३॥
स्तेने तु श्वपदं तद्वद्ब्रह्महण्यशिराः पुमान्।

ब्रह्महत्या करने वाले, मदिरा पान करने वाले चोर तथा गुरु की स्त्री के साथ सम्भोग करने वाले-इन सब महापातकी पुरुषों को राजा पृथक्-पृथक् दण्ड दे। महापाप करने वाले लोगों को इस प्रकार राजा दण्डित करे। किन्तु यदि ब्राह्मण ऐसा घोर पाप करता है तो उसे निर्वासित करे, अपने देश से उनके शरीर में चिह्न करके निकाले। उक्त चिह्न का विवरण सुनो! यदि ब्राह्मण गुरुपत्नी के साथ समागम करता है तो उसके शरीर में भग का आकार बनाए, मदिरा पायी है तो सुराध्वज का चिह्न। उसी प्रकार चोरी के अपराध में कुत्ते के पैरों का तथा ब्रह्मघाती के शरीर में बिना सिर के पुरुष का चिह्न बनाना चाहिए॥१६१-१६३.५॥

असम्भाष्या ह्यसम्भोज्या असंवाह्या विशेषतः॥१६४॥
त्यक्तव्याश्च तथा राजज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः।
महापातकिनो वित्तमादाय नृपतिः स्वयम्॥१६५॥
अप्सु प्रवेशयेद्दण्डं वरुणायोपपादयेत्। सहोढं न विना चोरं घातयेद्धार्मिको नृपः॥१६६॥
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्।
ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चोराणां भक्ष्यदायकाः॥१६७॥
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत्।

ऐसे घोर पापियों के साथ विशेष कर सम्भाषण, सहभोज तथा विवाहादि सम्बन्धों को उनकी

जाति वाले, सम्बन्धी तथा परिवार के लोग भी न करें। महापापी पुरुषों की सम्पत्ति को राजा अपने अधीन कर ले और उसमें से दण्ड भाग को जल में वरुण के उद्देश्य से छोड़ दे। सपत्नीक चोर को राजा को मृत्यु दण्ड नहीं देना चाहिये; किन्तु चुराई हुई वस्तु के साथ ही यदि सपत्नीक भी चोर पकड़ा जाता है तो उसे भी राजा बिना किसी विचार के वध का दण्ड दे। ग्रामों में भी यदि कुछ लोग ऐसे हैं, जो चोरों की भोजनादि में सहायता करते हैं, अथवा उन्हें भोजनादि बनाने के पात्र तथा रहने का निवास देते हैं तो उन सभी को राजा वध का दण्ड दे।।१६४-१६७.५।।

राष्ट्रेषु राज्ञाऽधिकृताः सामन्ताश्चैव दूषकाः।।१६८।।
अभ्याघातेषु मध्यस्थाः क्षिप्रं शास्यास्तु चोरवत्।
ग्रामघाते मठाभङ्गे पथि मोषाभिमर्दने।।१६९।।
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः।
राज्ञः कोशापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु संस्थितान्।।१७०।।

राष्ट्र में यदि राजा के अधिकारी तथा अधीन रहने वाले सामन्तगण युद्धादि के अवसर पर तटस्थ रहते हैं तो वे भी चोरों के समान दण्ड के भागी हैं। ग्राम में किसी विनाश के उपस्थित होने पर अथवा किसी घर आदि के गिरने के अवसर पर या मार्ग में किसी रमणी के ऊपर अत्याचार होने के अवसर पर राजा का अधिकारी या सामन्त अपनी शक्ति के अनुसार नहीं दौड़ पड़ता, उसे सभी परिवार तथा साधनों के साथ निर्वासित कर देना चाहिये। राजा के कोश को अपहृत करने वाले, शत्रु पक्ष की ओर मिले रहने वाले या उनकी किसी प्रकार की सहायता करने वाले तथा शत्रु पक्ष का उपकार करने वाले लोगों को राजा विविध प्रकार का मृत्यु दण्ड दे।।१६८-१७०।।

अरीणामुपकर्तृश्च घातयेद्विविधैर्वधैः।
सन्धिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः।।१७१।।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत्। तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन तु।।१७२।।
यस्तु पूर्वं निविष्टं स्यात्तडागस्योदकं हरेत्।
आगमं चाप्यपां भिन्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम्।।१७३।।
कोष्ठागारायुधागारदेवागारविभेदकान्। पापान्पापसमाचारान्घातयेच्छीघ्रमेव च।।१७४।।

जो चोरगण रात में किसी के घर में सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजा उनके हाथों को कटवाने के बाद तीक्ष्ण-शूल के अग्रभाग पर रखवा दे। तालाब का बाँध तोड़ने वाले को राजा जल में डुबोकर मृत्युदण्ड दे। जो व्यक्ति तालाब में भरे हुए जल की चोरी करता है, अथवा उमसें जल के आने के मार्ग को रोक देता है, उसे पूर्ववत् साहसदण्ड देना चाहिये। कोष्ठागार, आयुधागार तथा देवागारों के तोड़ने वाले पापाचारी एवं जिनके विषय में पाप की कथाएँ प्रसिद्ध हो चली हों-ऐसे लोगों को राजा शीघ्र ही मृत्यु का दण्ड दे।।१७१-१७४।।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि।
स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तत्त्वमेध्यं च शोधयेत्॥१७५॥
आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव च।
परिभाषणमर्हन्ति न च शोध्यमिति स्थितिः॥१७६॥

बिना किसी आपत्ति के अवसर आने पर भी जो व्यक्ति सड़क पर मल आदि अपवित्र वस्तुओं को फेंकरकर उसे गन्दा करता है, उसे एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिये और उसी से सड़क को स्वच्छ भी करना चाहिए। जो चलने-फिरने में असमर्थ हो, वह वृद्ध, गर्भिणी स्त्री अथवा बालक- यदि ये ऐसा अपराध करते हैं तो राजा इन्हें केवल कह दे, चेतावनी भर दे; किन्तु इनमे सफाई नहीं करानी चाहिये, ऐसी मर्यादा चली आती है॥१७५-१७६॥

प्रथमं साहसं दण्ड्यो यश्च मिथ्या चिकित्सते।
पुरुषे मध्यमं दण्डमुत्तमं च तथोत्तमे॥१७७॥
छत्रस्य ध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकाः।
प्रतिकुर्युस्ततः सर्वे पञ्च दण्ड्याः शतानि च॥१७८॥
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा। मणीनामपि भेदेन दण्ड्यः प्रथमसाहसम्॥१७९॥

जो वैद्य लोग झूठी दवाएँ करते हैं अर्थात् वैद्य न होकर भी दवाएँ देते हैं, उन्हें प्रथमसाहस दण्ड, जिनकी दवाएँ निन्दित हैं, उन्हें मध्यम साहस दण्ड तथा जिनकी दवाएँ अत्यन्त अवगुणकारी हैं, उन्हें उत्तम साहसदण्ड देना चाहिये। राजा का छाता, ध्वजा, छड़ी एवं देवता की प्रतिमा- इनके तोड़ने वाले को पाँच सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये और उन्हीं से इन सबका प्रतिशोध भी कराना चाहिये, अदूषित वस्तुओं को दूषित अथवा भेदन करने वाले को तथा मणि आदि मूल्यवान् वस्तुओं के तोड़ने वाले को राजा प्रथमसाहस दण्ड दे॥१७७-१७९॥

समं च विषमं चैव कुरुते मूल्यतोऽपि वा। समाप्नुयात्स वै पूर्वं दमं मध्यममेव च॥१८०॥
बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत्।
कर्षन्तो यत्र दृश्यन्ते विकृताः पापकारिणः॥१८१॥
प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च भेदकम्।
द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात्॥१८२॥
मूलकर्माभिचारेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः। अबीजविक्रयी यश्च बीजोत्कर्षक एव च॥१८३॥
मर्यादाभेदकश्चापि विकृतं वधमाप्नुयात्।

किसी वस्तु के मूल्य में यदि कोई कमी या वृद्धि करता है तो उसे क्रमशः पूर्व और मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये। राजा को अपराधियों के सभी प्रकार के दण्डों की व्यवस्था आम सड़क पर करनी चाहिये, जिससे उस दण्ड को भुगतने वाले पापात्मा को सभी लोग देख सकें। दुर्ग की चहारदीवारी को

तोड़ने वाले, खाई को भंग करने वाले तथा द्वारों को तोड़ने वाले अपराधी को राजा तुरन्त अपने पुर से बाहर निकाल दे। वशीकरण, अभिचार आदि के करने वाले को राजा दो सौ दम का दण्ड दे। खराब बीज बेचने वाले, बोए हुए खेत को फिर से जोतकर हानि पहुँचाने वाले तथा खेतों को निर्धारित सीमा को तोड़ने वाले को राजा बुरी मृत्यु की सजा दे।।१८०-१८३.५।।

सर्वसङ्करपापिष्ठं हेमकारं नराधिप।।१८४।।
अन्याये वर्तमानं च च्छेदयेल्लवशः क्षुरैः। द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम्।।१८५।।
द्रव्याणां दूषको यस्तु प्रतिच्छन्नस्य विक्रयी।
मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्ता तथोत्तमम्।।१८६।।
राजा पृथक्पृथक्कुर्याद्दण्डं चोत्तमसाहसम्।

हे नराधिप! अच्छी धातु में किसी नकली धातु को मिलाने वाले पापात्मा सोनार को, जो अन्याय में प्रवृत्त हो गया है, छूरे से खण्ड-खण्ड काट डालना चाहिये। बनिये के समीप से वस्तु लेकर जो दाम नहीं चुकाता है, या जो अच्छी वस्तु को बुरी बतलाता है, या जो बनिया किसी वस्तु को बाजार में छिपाकर बेचता है, उन सब को मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार कूटनीति रखने वाले को उत्तम साहस दण्ड देना चाहिये। इन सभी अपराधियों को राजा अलग-अलग से उत्तम साहस दण्ड दे।।१८४-१८६.५।।

शास्त्राणां यज्ञतपसां देशानां क्षेपको नरः।।१८७।।
देवतानां सतीनां च उत्तमं दण्डमर्हति। एकस्य दण्डपारुष्ये बहूनां द्विगुणो दमः।।१८८।।
कलहो यद्गतो दाप्यो दण्डश्च द्विगुणस्ततः।
मध्यमं ब्राह्मणं राजा विषयाद्विप्रवासयेत्।।१८९।।

शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, देश, देवता तथा सती की निन्दा करने वाले पुरुष को राजा उत्तम साहसदण्ड दे। यदि बहुतेरे व्यक्ति किसी एक व्यक्ति के प्रति कठोर दण्ड अपराध करते हैं तो उन सब को द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। जिस व्यक्ति के ऊपर अपराध का आरोप है, उसे भी द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। जो ब्राह्मण अपने आचार-विचार से अधम हो गया है, उसे राजा अपने देश से निर्वासित कर दे।।१८७-१८९।।

लशुनं च पलाण्डुं च शूकरं ग्रामकुक्कुटम्।
तथा पञ्चनखं सर्वं भक्ष्यादन्यत्तु भक्षयेत्।।१९०।।
विवासयेत्क्षिप्रमेव ब्राह्मणं विषयात्स्वकात्।
अभक्ष्यभक्षणे दण्ड्यः शूद्रो भवति कृष्णलम्।।१९१।।
ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां चतुस्त्रिद्विगुणं स्मृतम्।
यः साहसं कारयति स दण्ड्यो द्विगुणं दमम्।।१९२।।

लहसुन, प्याज, सूअर, ग्रामीण मुरगे तथा पाँच नख वाले (जिनके भक्ष्य का कहीं-कहीं विधान माना गया है) तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थ को खाने वाले ब्राह्मण को अपने राष्ट्र से निर्वासित कर दे। जिन पदार्थों के भक्ष्य होने का विधान नहीं हैं, उन्हें खाने से शूद्र को एक कृष्णल का दण्ड देना चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को क्रमशः चौगुना, तिगुना, तथा दुगुना दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण में अधिक उत्साहित करता है, उसे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये।।१९०-१९२।।

यस्त्वेवमुक्त्वाऽहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम्। संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः।।१९३।।

पञ्चाशत्पणिको दण्डस्तयोः कार्यो महीक्षिता।
अस्पृश्यं च स्पृशन्नार्यो ह्ययोग्यो योग्यकर्मकृत्।।१९४।।

पुंस्त्वहर्ता पशूनां च दासीगर्भविनाशकृत्। शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः।।१९५।।

अव्रजन्बाढमुक्त्वा तु तथैव च निमन्त्रणे। एते कार्षापणशतं सर्वे दण्ड्या महीक्षिता।।१९६।।

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन्दण्ड्यस्तु कृष्णलम्।
पितापुत्रविरोधे च साक्षिणां द्विशतो दमः।।१९७।।
स्यान्नरश्च तथाऽर्यः स्यात्तस्याऽप्यष्टशतो दमः।।१९८।।

जो मनुष्य 'मैं देता हूँ' ऐसा कहकर अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण में दूसरे को प्रवृत्त करता है, उसे भी चौगुना दण्ड मिलना चाहिये। संदेश को न देने वाले, समुद्र में बने हुए अड्डे को नष्ट करने वाले व्यक्तियों को राजा पचास मुद्रा का दण्ड दे। जो व्यक्ति पवित्र होकर अस्पृश्य का स्पर्श करता है, अक्षम होकर भी दुःसाध्य कार्य में हाथ लगाता है, बैलों के पुंसत्व का अपहरण (बधिया) करता है, दासी के गर्भ को गिरवाता है, शूद्र एवं संन्यासियों के घर दैवकार्य (यज्ञादि) और पितृकार्य (श्राद्धादि) में भोजन करता है, निमन्त्रण स्वीकार करने के बाद भी नहीं जाता- उन सबको राजा सौ कार्षापण का दण्ड दे। अपने घर में पीड़ादायक वस्तु को रखने वाले को एक कृष्णल का दण्ड देना चाहिये। पिता और पुत्र के पारस्परिक विरोध में साक्षी देने वाले के ऊपर दो सौ का दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई माननीय व्यक्ति यह अपराध करता है तो उस पर एक सौ आठ दम का दण्ड लगाना चाहिये।।१९३-१९८।।

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नानकस्य च।
एभिश्च व्यवहर्ता च स दण्ड्यो दममुत्तमम्।।१९९।।
विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्।
विकर्णनासिकां व्योष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्।।२००।।
ग्रामस्य दाहका ये च ये च क्षेत्रस्य वेश्मनः।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्ते कटाग्निना।।२०१।।
ऊनं वाऽप्यधिकं चापि लिखेद्यो राजशासनम्।
पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः।।२०२।।

तराजू की डाँड़ी पर तौलते समय कूट व्यापार करने वाले को तथा बराबर इस प्रकार से व्यापार करने वाले को राजा उत्तम साहसदण्ड दे। विष देने वाली, आग लगाने वाली, पति, गुरुजन एवं अपने बच्चों की हत्या करने वाली स्त्री को राजा, कान, ओंठ और नाम काटकर पशुओं द्वारा मरवा डाले। जो गाँव को जलाने वाले, खेत तथा घर को नष्ट करने वाले तथा राजपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले अपराधी हैं, उन्हें भक-भक जलती हुई अग्नि में जलाकर भस्म कर देना चाहिये। जो राजा का अधिकारी राजाज्ञा को घटा-बढ़ाकर दूसरे की स्त्री के साथ अपराध करने वाले तथा चोरी करने वाले अपराधियों को छोड़ देते हैं, उन्हें भी उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये।।१९९-२०२।।

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्ड्य उत्तमसाहसम्।
क्षत्त्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्धकम्॥२०३॥
मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरुं ताडयतस्तथा। राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः॥२०४॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः।
तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम्॥२०५॥

जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तु खिलाकर ब्राह्मण को दूषित करता है, उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार क्षत्रिय को विधर्म करने वाले को मध्यम, वैश्य को प्रथम तथा शूद्र को अर्धसाहस दण्ड देना चाहिये। मृतक के शरीर पर लगे हुए आभूषण तथा वस्त्रादि को चुराकर बेचने वाले, गुरु को पीटने वाले, राजा के आसन पर बैठने वालों को उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति न्याय द्वारा या युद्ध में पराजित होने पर भी अपने को हारा हुआ नहीं समझता है, उसे आते ही राजा को चाहिये कि पुनः जीतकर द्विगुणित दण्ड दे।।२०३-२०५।।

आह्वानकारी मध्यः स्यादनाह्वाने तथाऽऽह्वयन्।
दाण्डिकस्य च यो हस्तादभियुक्तः पलायते॥२०६॥
हीनः पुरुषकारेण तं दण्ड्याद्दाण्डिको धनम्।
प्रेष्यापराधात्प्रेष्यस्तु स दण्ड्यश्चार्धमेव च॥२०७॥
दण्डार्थं नियमार्थं च नीयमानेषु बन्धनम्।
यदि कश्चित्पलायेत दण्डश्चाष्टगुणो भवेत्॥२०८॥

जो व्यक्ति अपराध होने पर सूचना द्वारा बुलाने से नहीं आता है और जो बिना बुलाए ही आकर सम्मुख उपस्थित होता है, तथा जो अपराधी दण्ड देने वाले के हाथ से छुड़ाकर भाग जाता है-ऐसे अपुरुषार्थी लोगों को दण्ड देने वाला न्यायकर्ता आर्थिक दण्ड दे। जो व्यक्ति दूत होने पर अपना कर्तव्य उचित रीति से नहीं निभाता, उसे उपर्युक्त दण्ड का आधा दण्ड देना चाहिये। दण्ड के लिए अथवा नियमन के लिए पकड़ कर ले जाते हुए यदि कोई अपराधी भाग जाता है तो उसे आठ गुना दण्ड देना चाहिये।।२०६-२०८।।

अनिन्दिते विवादे तु नखरोमावतारणम्। कारयेद्यः स पुरुषो मध्यमं दण्डमर्हति॥२०९॥

बन्धनं चाप्यवध्यस्य बलान्मोचयते तु यः।
वध्यं विमोचयेद्यस्तु दण्ड्या द्विगुणदण्डभाक्॥२१०॥
दुर्दृष्टयव्यवहाराणां सभ्यानां द्विगुणो दमः।
राज्ञा त्रिंशद्गुणो दण्डः प्रक्षेप्य उदके भवेत्॥२११॥

जो व्यक्ति सामान्य वाद-विवाद में किसी के नख को काट लेता है या बाल काट लेता है, उसके ऊपर मध्यम दण्ड लगाना चाहिये, जो व्यक्ति बल द्वारा अवध्य अपराधी के बन्धनों को छोड़ देता है अथवा मृत्यु दण्ड के अपराधी को छोड़ देता है, उसके ऊपर द्विगुणित दण्ड लगाना चाहिये। जो राजा के सभासद उपस्थित विषयों में पूर्ण मनोयोग नहीं देते, उन्हें द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। राजा ऐसे अपराधियों को तीस गुना अधिक दण्ड दे और जल में फेंकवा दे॥२०९-२११॥

अल्पदण्डेऽधिकं कुर्याद्विपुले चाल्पमेव च।
ऊनाधिकं तु तं दण्डं सभ्यो दद्यात्स्वकाद्गृहात्॥२१२॥

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य रक्षणे। अधर्मो नृपतेर्दृष्ट एतयोरुभयोरपि॥२१३॥

थोड़े से ही अपराध में अधिक दण्ड देने वाले तथा भीषण अपराध में अल्प दण्ड देने वाले न्यायकर्ता (जज) को जितना कम या अधिक दण्ड हो, अपने घर से पूर्ण करना या अपराधी को लौटाना चाहिये। अबध्य अपराधी के वध करने में जितना पाप लगता है, उतना ही पाप वध्य को छोड़ देने में भी लगता है, राजा को इन दोनों दशाओं में समान पापभागी होना पड़ता है॥२१२-२१३॥

ब्राह्मणं नैव हन्यात्तु सर्वपापेष्ववस्थितम्। प्रवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्समग्रधनसंयुतम्॥२१४॥

न जातु ब्राह्मणं वध्यात्पातकं त्वधिकं भवेत्।
यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां विवर्जयेत्॥२१५॥
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति॥२१६॥

ज्ञात्वाऽपराधं पुरुषस्य राजा कालं तथा चानुमतं द्विजानाम्।
दण्ड्येषु दण्डं परिकल्पयेत्तु यो यस्य युक्तः स समीक्ष्य कुर्यात्॥२१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रणयनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११८६०॥

किसी भी अपराधी में अपराधी पाये गये ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड तो नहीं देना चाहिये, उसे अपने राष्ट्र से सम्पत्ति के साथ निर्वासित कर देना चाहिये। कभी भूलकर भी ब्राह्मण का वध नहीं ही करना चाहिए, इससे अधिक पाप लगता है। इसलिए राजा को इस ब्रह्महत्या से तो बचना ही चाहिये। अदण्डनीय पुरुषों

को दण्ड देकर तथा जो दण्ड के पात्र हैं, उन्हें दण्ड न देकर राजा महान् अयश प्राप्त करता है और अन्त में नरकगामी होता है। इसलिए राजा मनुष्य के अपराध को भली-भाँति जानकर उपयुक्त समय में ब्राह्मणादि की अनुमति प्राप्त कर, जो जिस प्रकार का अपराध करता है, उसको उसी प्रकार का सचमुच दण्ड दे।।२१४-२१७।।

।।दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।।२२७।।

अथाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

महान् अद्भुत दैनिक उपद्रवों पर शान्ति का विधान

मनुरुवाच

दिव्यान्तरिक्षभौमेषु या शान्तिरभिधीयते। तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषु केशव।।१।।

मनु ने कहा-हे केशव! दिव्य, अन्तरिक्ष (आकाशीय) एवं भौम (पृथ्वी सम्बन्धी) महोत्पातों के उपस्थित होने पर जो शान्ति कही (की) जाती है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।।१।।

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिविधामद्भुतादिषु।
विशेषेण तु भौमेषु शान्तिः कार्या तथा भवेत्।।२।।
अभयाचान्तरिक्षेषु सौम्या दिव्येषु पार्थिव।

मत्स्य ने कहा-इसके उपरान्त अब मैं तुम्हारे पूछने पर उन अद्भूत उत्पातों के विषय में बतला रहा हूँ। विशेषतया पृथ्वी सम्बन्धी महोत्पातों के अवसर पर शान्ति करनी चाहिये। हे राजन्! अन्तरिक्ष उत्पातों के लिए अभया तथा दिव्य पातों के लिए सौम्या शान्ति कही गयी है।।२-२.५।।

विजिगीषुः परं राजन्भूतिकामस्तु यो भवेत्।।३।।
विजिगीषुः परानेवमभियुक्तस्तथा परैः। तथाऽभिचारशङ्कायां शत्रूणामभिनाशने।।४।।
भये महति सम्प्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते।

हे राजन्! शत्रु को जीतने की इच्छा रखने वाला, स्वकीय ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाला, सभी शत्रुओं को विनष्ट करने का इच्छुक, शत्रुओं द्वारा घिरा हुआ, शत्रु पक्ष में मारण, मोहनादि अभिचारों की शंका से सशंकित, सभी शत्रुओं को विनष्ट करने को उद्यत राजा, तात्पर्य यह कि सभी प्रकार के भीषण भय का अवसर उपस्थित हो जाने पर, अभया शान्ति करे।।३-४.५।।

राजयक्ष्माभिभूतस्य क्षतक्षीणस्य चाप्यथ।।५।।

सौम्या प्रशस्यते शान्तिर्यज्ञकामस्य चाप्यथ। भूकम्पे च समुत्पन्ने प्राप्ते चान्नक्षये तथा॥६॥
अतिवृष्ट्यामनावृष्ट्यां शलभानां भयेषु च। प्रमत्तेषु च चौरेषु वैष्णवी शान्तिरिष्यते॥७॥
पशूनां मारणे प्राप्ते नराणामपि दारुणे। भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते॥८॥

राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित होकर, किसी घाव से क्षीण होकर एवं यक्ष की कामना से सौम्याशान्ति की प्रशंसा की गई है। भूकम्प आ जाने पर, भीषण दुर्भिक्ष आ जाने पर, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि के कुअवसर पर, टिड्डियों से भय होने पर, पागल एवं चोर से भय उपस्थित होने पर वैष्णवीशान्ति करनी चाहिये। शत्रुओं तथा मनुष्यों के भीषण संहार का अवसर आ जाने पर तथा भूत, पिशाचादि के दिखलाने पर रौद्री शान्ति करनी चाहिये॥५-८॥

वेदनाशे समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके। अपूज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते॥९॥
भविष्यत्यभिषेके च परचक्रभयेऽपि च। स्वराष्ट्रभेदेऽरिवधे रौद्री शान्तिः प्रशस्यते॥१०॥

वेदों के विनाश का अवसर उपस्थित होने पर, लोगों के नास्तिक हो जाने की सम्भावना पर एवं अपूज्य लोगों की पूजा होने के अवसर पर ब्राह्मीशान्ति कही गई है। अभिषेक होने वाला हो, शत्रु की सेना से राष्ट्र को हानि पहुँचने की सम्भावना हो, अपने राष्ट्र में विभिन्नता की सम्भावना हो, शत्रु का संहार कराना हो तो ऐसे अवसर पर रौद्रीशान्ति की प्रशंसा की गई॥९-१०॥

त्र्यहातिरिक्ते पवने भक्ष्ये सर्वविगर्हिते। वैकृते वातते व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते॥११॥
अनावृष्टिभये जाते प्राप्ते विकृतिवर्षणे। जलाशयविकारेषु वारुणी शान्तिरिष्यते॥१२॥
अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथैव च।

तीन दिनों से अधिक दिन तक प्रबल अन्धड़ चल रही हो, सभी भक्ष्य वस्तुएँ विकृत होकर अभक्ष्य हो रही हों, अथवा देश भर में वातज व्याधि उपस्थित हो गई हो तो ऐसे अवसर पर वायु की शान्ति होनी चाहिये। सूखा पड़ जाने का भय हो अथवा घोर वृष्टि से अधिक हानि हो रही हो, अथवा जलाशयों में कोई विकार उत्पन्न हो गया हो तो ऐसे अवसर पर वरुण की शान्ति करानी चाहिये। अभिशाप के भय के उपस्थित होने पर भार्गव की शान्ति होनी चाहिये॥११-१२.५॥

जाते प्रसववैकृत्ये प्रजापत्या महाभुज॥१३॥
उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाष्ट्री पार्थिवनन्दन। बालानां शान्तिकामस्य कौमारी च तथा नृप॥१४॥

हे महाभुज! स्त्री के बच्चे होने के समय यदि कोई बाधा खड़ी हो गई हो तो उस समय प्रजापति की शान्ति करानी चाहिये। हे पार्थिवनन्दन! घरेलू वस्तुओं में अथवा शाक-भाजी आदि में बेकार हो जाने के अवसर पर त्वाष्ट्रीशान्ति (विश्वकर्मा) की शान्ति करानी चाहिये। हे नृप! बालकों की बाधा दूर करने के लिये कौमारीशान्ति होनी चाहिये॥१३-१४॥

कुर्याच्छान्तिमथाऽऽग्नेयीं सम्प्राप्ते वह्निवैकृते।
आज्ञाभङ्गे तु सञ्जाते तथा भृत्यादिसङ्क्षये॥१५॥

अश्वानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते।
अश्वानां कामयानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते॥१६॥

अग्नि में विकार उपस्थित होने पर अर्थात् आग लग जाने पर, आज्ञा भंग होने पर, सेवकादि के विनाश उपस्थित होने पर अग्नि की शान्ति होनी चाहिये। अश्वों की शान्ति कामना से अथवा उनके सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने के लिये अथवा अधिक संख्या में अश्व प्राप्ति की अभिलाषा से गन्धर्वों की शान्ति करनी चाहिये।।१५-१६।।

गजानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते।
गजानां कामयानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत्॥१७॥
पिशाचादिभये जाते शान्तिर्वै नैर्ऋती स्मृता।
अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्ने च तथा स्थिते॥१८॥
याम्यां तु कारयेच्छान्तिं प्राप्ते तु मारके तथा।
धननाशे समुत्पन्ने कौबेरी शान्तिरिष्यते॥१९॥
वृक्षाणां च तथाऽर्थानां वैकृते समुपस्थिते।
भूतिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीं प्रतियोजयेत्॥२०॥

हाथी की बाधा उपस्थित होने पर, उनकी कल्याण प्राप्ति की भावना से एवं गजों की प्राप्ति की अभिलाषा से आँगिरस की शान्ति करनी चाहिये। पिशाचादि का भय उपस्थित होने पर, अकाल मृत्यु के भय से तथा दुःस्वप्न देखने पर नैर्ऋति की शान्ति करानी चाहिये। मृत्यु का भय उपस्थित होने पर यमराज की शान्ति तथा धननाश का अवसर उपस्थित होने पर कुबेर की शान्ति करानी चाहिये। वृक्षों का तथा द्रव्यादि का विनाश उपस्थित होने पर तथा समृद्धि की अभिलाषा से पृथ्वी की शान्ति करानी चाहिये।।१७-२०।।

प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम।
हस्ते स्वातौ च चित्रायामादित्ये चाऽऽश्विने तथा॥२१॥
अर्यम्णि सौम्यजातेषु वाय्व्यां त्वद्भुतेषु च। द्वितीये दिनयामे तु रात्रौ च रविनन्दन॥२२॥
पुष्याग्नेयविशाखासु पित्र्यासु भरणीषु च। उत्पातेषु तथा भाग आग्नेयीं तेषु कारयेत्॥२३॥

मनुजोत्तम! दिन के पहले पहर में अथवा रात्रि के समय हस्त, स्वाती, चित्रा अथवा अश्विनी नक्षत्र के सूर्य के जाने पर वायव्यकोण में यदि अद्भुत उपद्रव दिखाई पड़ता है तो आग्नेयीशान्ति करानी चाहिये। हे रविनन्दन! दिन के दूसरे पहर में अथवा रात्रि के दूसरे पहर में सूर्य के पुष्य, भरणी और विशाखा नक्षत्र में जाने पर आग्नेय कोण अथवा दक्षिण दिशा में यदि कोई उत्पात दिखाई पड़ता है तो आग्नेयों शान्ति करानी चाहिये। २१-२३।।

तृतीये दिनयामे च रात्रौ रविनन्दन। रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे वैश्वदेवते॥२४॥

ज्येष्ठायां च तथा मैत्रे ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्। ऐन्द्री तेषु प्रयोक्तव्या शान्तीरविकुलोद्वह॥२५॥
चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ वा रविनन्दन। सार्पे पौष्णे तथाऽऽर्द्रायामहिर्बुध्न्ये च दारुणे॥२६॥
मूले वरुणदैवत्ये ये भवन्त्यद्भुतास्तथा। वारुणी तेषु कर्तव्या महाशान्तिर्महीक्षिता॥२७॥

हे रविनन्दन! दिन के तीसरे पहर में अथवा रात्रि में रोहिणी, अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में सूर्य के जाने पर यदि ईशान कोण में, पूर्व दिशा में अथवा अग्नि कोण में कोई अद्भुत उत्पात दिखाई पड़ता है तो इन्द्र की शान्ति करानी चाहिये। हे रविनन्दन! दिन अथवा रात्रि के चौथे पहर में आश्लेषा, पुष्य, आर्द्रा अथवा मूलनक्षत्र में सूर्य के जाने पर, पश्चिम दिशा में अदभुत उत्पात दिखाई पड़ने पर राजा को वरुण की महाशान्ति करानी चाहिये।।२४-२७।।

(मित्रमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्।
तत्र शान्तिद्वयं कार्यं निमित्तेषु च नान्यथा॥
निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तेनोपयुज्यते॥२८॥
बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद्राजन् नृणां सन्नहनैर्युतानाम्।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम्॥२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिर्नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११८८९।।

यदि मध्याह्न के समय कहीं पर अद्भुत उत्पात होते हैं तो उस समय दोनों प्रकार की शान्ति करानी चाहिये। इन उपर्युक्त कारणों के उपस्थित होने पर ही शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा नहीं। बिना किसी कारण के की गई शान्ति बेकार हो जाती है, राजन्! जिस प्रकार कवच से सुरक्षित शरीर वाले मनुष्यों को बाणों का प्रहार कोई हानि नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार धर्मपरायण एवं शान्ति कराने वाले मनुष्यों को दैव के प्रहार भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते।।२८-२९।।

।।दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।।२२८।।

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अद्भुत उत्पातों की शान्ति

मनुरुवाच

अद्भुतानां फलं देव शमनं च तथा वद। त्वं ह वेत्सि विशालाक्ष ज्ञेयं सर्वमशेषतः॥१॥

मनु ने कहा–देव! इन अद्भुत उत्पातों के घटित होने का परिणाम क्या होता है? और उनकी शान्ति का उपाय भी मुझे बतलाईये ? हे विशाल नेत्रों वाले! तुम इन सभी बातों के परम जानकार हो।।१।।

मत्स्य उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः। अत्रये वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्मभृतां वरः॥२॥
सरस्वत्याः सुखासीनं गर्गं स्त्रोतसि पार्थिव। पप्रच्छासौ महातेजा अत्रिर्मुनिजनप्रियम्॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–मनु! इस विषय में मैं तुम्हें यह बात बतला रहा हूँ कि जिसे महातपस्वी एवं सभी धर्मात्माओं में श्रेष्ठ वृद्ध गर्गऋषि ने अत्रि से कहा था। हे राजन्! सरस्वती के तट पर एक बार सुखपूर्वक बैठे हुए सभी मुनियों के प्रिय गर्गऋषि से महातेजस्वी अत्रि ने पूछा।२-३।।

अत्रिरुवाच

नश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे। नगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वं वदस्व माम्॥४॥

अत्रि ने कहा–महर्षे! विनाशोन्मुख मनुष्यों की, राजाओं की तथा नगरों की, विनाश के पूर्व क्या दशा होती है? उसे अविकल रूप में मुझे बताईये?।।४।।

गर्ग उवाच

पुरुषापचारान्नियतजमपरज्यन्ति देवताः। ततोऽपरागाद्देवानामुपसर्गः प्रवर्तते॥५॥
दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं संप्रकीर्तितम्। ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे॥६॥
उल्कापातो दिशां दाहः परिवेषस्तथैव च। गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता तु या॥७॥
एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत्।

गर्ग ने कहा–अत्रे! मनुष्यों के अत्याचारों से देवतागण बहुत दुःखी हो जाते हैं और उन्हीं की अप्रसन्नता से विनाशसूचक महाउत्पात प्रारम्भ होता है। यह विनाशसूचक उत्पात दिव्य आन्तरिक्ष एवं पार्थिव–इन तीन भेदों से तीन प्रकार का होता है। ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकारों के दिखाई पड़ने पर दिव्य उत्पात जानना चाहिये। आन्तरिक्ष उत्पात को मैं बतला रहा हूँ, सुनो! उल्कापात, दिशाओं का दाह, मण्डलों का उदय, आकाश में गन्धर्व नगर दिखाई पड़े, खण्ड वृष्टि, अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि होने लगे–इन्हें तथा इसी प्रकार के अन्यान्य उपद्रवों को आन्तरिक्ष उत्पात समझना चाहिये।।५-७.५।।

चरस्थिरभवो भौमो भूकम्पश्चापि भूमिजः॥८॥
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम्। भौमे त्वल्पफलं ज्ञेयं चिरेण च विपच्यते॥९॥
अभ्रजं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदम्। अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत्॥१०॥
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं निष्फलं भवेत्।

स्थावर एवं जंगम पदार्थों में विकारों का उत्पन्न होना तथा भूकम्पादि का होना, ये भौम

उत्पात हैं। जलाशयों में विकारों के उत्पन्न होने को भी भौम उत्पात मानते हैं। यह भौम उत्पात थोड़े फलों को देता है और बहुत देर में शान्त होता है। आन्तरिक्ष उत्पात मध्यमफल देने वाला होता है और मध्यमकाल में अर्थात् न बहुत शीघ्र न बहुत देर से परिणामदायी होता है। इस महोत्पात के उदय होने पर यदि कल्याणदायी वृष्टि हो जाती है, तो यह समझ लेना चाहिये कि एक सप्ताह के अन्दर उस महोत्पात का फल भी नष्ट हो जायेगा।।८-१०.५।।

अद्भुतस्य विपाकश्च विना शान्त्या न दृश्यते॥११॥
त्रिभिर्वर्षैस्तथा ज्ञेयं सुमहद्भयकारकम्। राज्ञः शरीरे लोके च पुरद्वारे पुरोहिते॥१२॥
पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने। ऋतुस्वभावाद्राजेन्द्र भवन्त्यद्भुतसंज्ञिताः॥१३॥
शुभावहास्ते विज्ञेयास्तांश्च मे गदतः श्रृणु।

किन्तु इस महान् उत्पात का अवसान बिना शान्ति कराये कभी नहीं होता। इसे तीन वर्षों के भीतर महान् भयदायक मानना चाहिये। राजा के शरीर में, अन्य लोगों के शरीर में, पुर, द्वार तथा पुरोहित के शरीर में, राजपुत्रों में तथा कोषाध्यक्ष के शरीर में उस उत्पात का दुर्विपाक होता है। राजेन्द्र! ऋतुओं के स्वभाव के कारण कुछ अद्भुत उत्पात मंगल की सूचना देने वाले होते हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो।।११-१३.५।।

वज्राशनिमहीकम्पसंध्यानिर्घातनिःस्वनाः॥१४॥
परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः। द्रुमोद्भेदकरस्नेहो बहुशः सफलोद्गमः॥१५॥
गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शुभानि मधुमाधवे।

वज्र एवं बिजली का गिरना, पृथ्वी का कम्पन, सन्ध्या के समय वज्र का शब्द, सूर्य तथा चन्द्रमा में मण्डलों का होना, धूलि और धुएँ का उद्भव, उदय एवं अस्त के समय सूर्य की अति लालिमा, वृक्षों के टूट जाने पर उनसे रस का गिरना, फलवाले वृक्षों की अधिकता, गौ, पक्षियों और मधु की वृद्धि-ये सब उत्पात यदि चैत्र और वैशाख मास में होते हैं, तो मांगलिक हैं।।१४-१५.५।।

ऋक्षोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्॥१६॥
कृष्णश्वेतं तथा पीतं धूसरध्वान्तलोहितम्।
रक्तपुष्पारुणं सान्ध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम्॥१७॥
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्।

कलुषित नक्षत्रों एवं ग्रहों के पतन, सूर्य एवं चन्द्र के मण्डलों के कपिल वर्ण का होना, सायंकालीन नभ के काले और सफेद मिश्रित, पीले, धूसरित, श्यामल, लाल वर्ण एवं लाल पुष्प के समान विशेष अरुण का होना अथवा ऐसा दिखाई पड़ना मानो विक्षुब्ध समुद्र हो, तथा नदियों के जलों का एकाएक सूखना, ये सब उत्पात यदि ग्रीष्म ऋतु में होते हैं तो इन्हें शुभ कहना चाहिये।।१६-१७.५।।

शक्रायुधपरीवेषं विद्युदुल्काधिरोहणम्॥१८॥
कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं ह्रसनं दारणं क्षितेः। नद्युदपानसरसां विधूनतरणप्लवाः॥१९॥
शृङ्गिणां च वराहाणां वर्षासु शुभमिष्यते।

इन्द्र धनुष का मण्डलाकार उदय, विद्युत् एवं उल्का के पतन, पृथ्वी में अकस्मात् कम्पन, इधर-उधर उलटना, विकृति आना, ह्रास होना, नदियों एवं तालाबों में जल की न्यूनता, नाव, जहाज एवं पुल का काँपना, सींग वाले जानवरों तथा शूकरों की वृद्धि-ये सब उत्पात वर्षा ऋतु में मंगलकारी हैं।।१८-१९.५।।

शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम्॥२०॥
रक्षोभूतपिशाचानां दर्शनं वागमानुषी। दिशो धूमान्धकाराश्च सदिशोवनपर्वताः॥२१॥
उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः।

शीतल वायु, ओले का पड़ना, पशु एवं पक्षियों का चिग्घाड़ना एवं बोलना, राक्षस, भूत और पिशाचों का दिखाई पड़ना तथा अशरीरीवाणी, धूम से अन्धकारित आकाश, वन और पर्वत सहित दिशाएँ, तीव्र सूर्योदय और सूर्यास्त ये हेमन्तऋतु में शुभ हैं।।२०-२१.५।।

दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ॥२२॥
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वगमानुषी। गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु॥२३॥
सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः।

दिव्य स्त्री, गन्धर्व और विमानों का अद्भुत दर्शन, ग्रह, नक्षत्र, तारों का दर्शन, अशरीरी वाणी वनों में और पर्वतों की चोटियों पर गाने और बाजों के शब्दों का सुनाई पड़ना, अन्नों की वृद्धि, रस की विशेष उत्पत्ति-ये सब उत्पात शरत्काल में मांगलिक हैं।।२२-२३.५।।

हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम् ॥२४॥
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्। चित्रगर्भोद्भवः स्त्रीषु गोजाश्वमृगपक्षिषु॥
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः॥२५॥
ऋतुस्वभावेन बिनाऽद्भुतस्य जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेव।
यथागमं शान्तिरनन्तरं तु कार्या यथोक्ता वसुधाधिपेन॥२६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिकोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११९१५।।

—*—

हिमवात, झंझा वायु का बहना, विरूप एवं अद्भुत उत्पातों का दर्शन, आकाश का काले कज्जल के समान दिखाई पड़ना, ताराओं एवं उल्काओं का एवं उल्काओं का गिरना, पिंजड़े के समान आकाश का दिखाई पड़ना, स्त्रियों से विचित्र सन्तानों की उत्पत्ति इस प्रकार गाय, बकरी,

घोड़ी, मृगी एवं पक्षियों से भी विचित्र प्रकार के बच्चों का पैदा होना, पत्तों, अंकुरों एवं लताओं में अनेक प्रकार के विकारों का हो जाना, ये सब उत्पात शिशिर ऋतु में शुभदायी माने गये हैं। इनके अतिरिक्त ऋतु के स्वभाव के बिना यदि अद्‌भुत उत्पात देखे जायें या सुने जायँ तो पृथ्वीपति को चाहिये कि शास्त्रानुकूल, जैसा कि उनका विधान कहा गया है, तुरन्त शान्ति करा दे।।२४-२६।।

।।दो सौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त।।२२९।।

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विविध अद्भुत उपद्रव और उनके परिणाम

गर्ग उवाच

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च। वमन्त्यग्निं तथा भूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम्।।१।।
आरटन्ति रुदन्त्येताः प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च। उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति धमन्ति च।।२।।
भुञ्जते विक्षिपन्ते वा कोशप्रहरणध्वजान्। अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च।।३।।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम्।
एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः।।
लिङ्गायतनविप्रेषु तत्र वासं न रोचयेत्।।४।।

गर्ग ने कहा–अत्रे! जब देवताओं की मूर्तियाँ नाचने लगती हैं, काँपने लगती हैं, जलने लगती हैं, अग्नि, धुआँ, तेल, रक्त, चर्बी आदि उगलने लगती हैं, जोर-जोर से चिल्लाने लगती हैं, रोने लगती हैं, पसीना बहाने लगती हैं, हँसने लगती हैं, उठने लगती हैं, बैठने लगती हैं, दौड़ने लगती हैं, मुँह बजाने लगती हैं, खाने लगती हैं, अथवा भय प्रदर्शन करने लगती हैं, कोष, हथियार, ध्वजा आदि को इधर-उधर करने लगती हैं, नीचे मुँह किये स्थित हो जाती हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करने लगती हैं, जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है, अग्नि, धूम, रक्त, चर्बी तथा तेल उगनले लगती हैं-इस प्रकार के तथा अन्यान्य आकस्मिक उत्पात यदि शिवलिंग, देवमन्दिर तथा ब्राह्मणों के पुर में दिखाई पड़ते हैं तो ऐसे स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए।।१-४।।

राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति। देवयात्रासु चोत्पातान्दृष्ट्वा देशभयं वदेत्।।५।।
पितामहस्य हर्म्येषु तत्र वासं न रोचयेत्। पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम्।।६।।
ज्ञेयं सेनापतीनां तु यत्स्यात्स्कन्दविशाखजम्। लोकानां विष्णुवस्विन्द्र विश्वकर्मसमुद्भवम्।।७।।

ऐसे उत्पातों के होने पर राजा पर या तो कोई बड़ी विपत्ति आती है अथवा उस देश का

विनाश होता है। देवता के दर्शन के लिए जाते समय यदि उपर्युक्त उत्पात दिखाई पड़े तो उस देश को भय बतलाना चाहिए। ऐसे अवसर पर उस देश में अपने पिता-पितामहादि द्वारा बनाए गये भवनों में भी निवास नहीं करना चाहिये। पशुओं के ऊपर जो उपद्रव या भय होते हैं, वे रुद्र से सम्बन्ध रखने वाले हैं, राजाओं के उपद्रव लोकपालों के कोप से होते हैं, इसी प्रकार सेनापतियों की आपत्तियाँ स्वामिकार्त्तिकेय के कोप से तथा साधारण प्रजा के ऊपर जो उत्पात होता है, वह विष्णु, वसु, इन्द्र एवं विश्वकर्मा से सम्बन्ध रखने वाले हैं।।५-७।।

विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां ये तु नायकाः। देवप्रेष्यान्नृपप्रेष्या देवस्त्रीभिर्नृपस्त्रियः।।८।।
वासुदेवोद्भवं ज्ञेयं ग्रहाणामेव नान्यथा। देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः।।९।।
देवतार्चां तु गत्वा वै स्नानमाच्छाद्य भूषयेत्।

गणों के नायकों पर जो उत्पात होते हैं, उनका कारण विनायक का कोप है, देवताओं के दूतों की अप्रसन्नता से राजदूतों पर तथा देवांगनाओं के कारण राजपत्नियों पर उत्पात घटित होते हैं। ग्रहों के ऊपर जो उपद्रव दिखाई पड़ते हैं, वे भगवान् वासुदेव से सम्बन्ध रखते हैं। देवताओं में उपर्युक्त विकारों के उत्पन्न होने पर वेदों के ज्ञाता पुरोहित देवमूर्ति के पास जाकर उसे स्नान कराए और वस्त्रादि से अलंकृत करे।।८-९.५।।

पूजयेच्च महाभाग गन्धमाल्यान्नसम्पदा।।१०।।
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम्। तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि।।
पुरोधा जुहुयाद्वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः।।११।।
विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपानैः सदक्षिणं सप्तदिनं नरेन्द्र।
प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षितिगोप्रदानैः सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम्।।१२।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावर्चाधिकारो नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११९२७।।

हे महाभाग! इस प्रकार यह वेदज्ञ ब्राह्मण उक्त मूर्ति की सुगंधि, पुष्पमाला एवं अन्यान्य पूजन की सामग्रियों से पूजा करे, तदनन्तर विधिपूर्वक मधुपर्क निवेदित करे। हे राजन्! फिर वह ब्राह्मण स.वधानतापूर्वक उक्त प्रतिमा को उसके मन्त्रों से स्थाली पाक द्वारा सात दिनों तक अग्नि में आहुति प्रदान करे। हे नरेन्द्र! उक्त सातों दिनों तक मधुर अन्न-पानादि सामग्रियों से तथा उत्तम दक्षिणा देकर ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिये और आठवें दिन पृथ्वी सुवर्ण तथा गौ के दान ब्राह्मणों को देने चाहिये, तब यह पाप शान्त होता है।।१०-१२।।

।।दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त।।२३०।।

अथैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मूर्ति आदि में अद्भुत उपद्रव और उनके परिणाम

गर्ग उवाच

अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे यस्य निरिन्धनः। न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः॥१॥
प्रज्वलेदप्सु मासं वा तदर्धं वाऽपि किञ्चन। प्राकारं तोरणं द्वारं नृपवेश्म सुरालयम्॥२॥
एतानि यत्र दीप्यन्ते तत्र राज्ञो भयं भवेत्। विद्युता वा प्रदह्यन्ते तदाऽपि नृपतेर्भयम्॥३॥

गर्ग ने कहा- जिस देश में बिना अग्नि का ईंधन जल उठता है, या बिना ईंधन के ही अग्नि जलती रहती है अथवा ईंधन लगाने पर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, वह देश राजाओं से पीड़ित होता है। जल में मांस जलने लगता है, अथवा कोई भाग जल जाता है, किले के चहारदीवारी, प्रवेशद्वार, तोरण, राजभवन एवं देवालय अकस्मात् जल उठते हैं, वहाँ पर राजा को भय होता है। यदि वे उपर्युक्त वस्तुएँ बिजली गिरने से जल जाती हैं, तब भी राजा को भय होता है।।१-३।।

अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांशुरजांसि च। धूमश्चानग्निजो यत्र यत्र विद्यान्महाभयम्॥४॥
तडित् त्वनभ्रे गगने भयं स्याद्दृक्षवर्जिते। दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत्॥५॥
ग्रहनक्षत्रवैकृत्ये ताराविषमदर्शने। पुरवाहनयानेषु चतुष्पान्मृगपक्षिषु॥६॥
आयुधेषु च दीप्तेषु धूमायत्सु तथैव च। निर्गमत्सु च कोशाच्च सङ्ग्रामस्तुमुलो भवेत्॥७॥

बिना रात्रि के ही आकाश तथा भूमण्डल में जब अंधकार छा उठता है, बिना धूलि उड़े ही आकाश धूसरित होता है, बिना अग्नि के धुएँ दिखाई पड़ते हैं, उस स्थान पर भी महाभय को उपस्थित जानना चाहिए। बिना बादलों के ही आकाश में बिजली का प्रकाश हो, रात को आकाश में बिना बादलों के भी ताराओं का अभाव हो, दिन में गगनमण्डल तारायुक्त हो, इस प्रकार के उत्पातों से भी भय की आशंका होती है। ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकार का हो जाना, ताराओं में विषमता का दिखाई पड़ना, ग्राम, वाहन, रथ, चौपाये, मृग, पक्षी तथा शस्त्रास्त्रों का अपने ही प्रज्वलित हो उठना अथवा धूमिल हो जाना, कोश से रत्नादि का निकलना तुमुल संग्राम का सूचक है।।४-७।।

विनाऽग्निं विस्फुलिङ्गाश्च दृश्यन्ते यत्र कुत्रचित्।
स्वभावाच्चापि पूर्यन्ते धनूंषि विकृतानि च॥८॥
विकारश्चाऽऽयुधानां स्यात्तत्र सङ्ग्राममादिशेत्।
त्रिरात्रोपोषितश्चात्र पुरोधाः सुसमाहितः॥९॥

समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च। होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥१०॥

दद्यात्सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च।
एवं कृते पापमुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र॥११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावग्निवैकृत्यं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११९३८॥

❖❖❖

बिना अग्नि की चिनगारियाँ कहीं यदि दिखाई पड़ने लगे, बिना खींचे स्वाभाविक ढंक से धनुष की डोरियाँ यदि चढ़ जायँ, या विकृत हो जायँ, शस्त्रास्त्रों में विकार हो जाय, तो वहाँ भी संग्राम की आशंका होती है। ऐसे उत्पात जहाँ दिखाई पड़ते हों, वहाँ का पुरोहित तीन रात्रि का उपवास कर सन्तुष्ट चित्त से दूधवाले वृक्षों की लकड़ियों से, सरसों तथा घी से अग्नि के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करवाये और दक्षिणा रूप में उन्हें सुवर्ण, गौएँ तथा पृथ्वी आदि का दान दे। हे द्विजेन्द्र! ऐसा करने से वह अग्नि विकार सम्बन्धी पाप नष्ट हो जायेगा॥८-११॥

॥दो सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३१॥

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वृक्षों में विविध उपद्रव और उनके परिणाम

गर्ग उवाच

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः। रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा रसान्बहून्॥१॥
अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चन्त्यथ द्रुमाः।
फलं पुष्पं तथाऽकाले दर्शयन्ति त्रिहायनाः॥२॥
पूर्ववत्स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथाऽन्तरे। क्षीरं स्नेहं तथा रक्तं मधु तोयं स्रवन्ति च॥३॥
शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः।
उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः॥४॥
तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्विपाकं फलमेव च।

गर्ग ने कहा—जिन ग्रामों में देवताओं द्वारा प्रेरित वृक्ष रोते हुए, हँसते हुए, प्रचुर परिमाण में रस बहाते हुए बिना किसी रोग के तथा बिना वायु के वेग के डालियाँ गिराते हैं अथवा बिना किसी

समय के तथा तीन वर्ष के पुराने वृक्षों में फल और फूल दिखाई पड़ते हैं और वृक्षों के बगीचों में कोई पूर्ववत् ऋतु काल की भाँति अपने को फलों तथा पुष्पों से लदे हुए दिखाते हैं, दुग्ध, तैल, रक्त, मधु, तथा जल बहाते हैं, बिना किसी रोग के ही शीघ्र सूख जाते हैं या सूखने पर पुनः अंकुरित होने लगते हैं, गिरकर भी उठकर खड़े हो जाते हैं तथा खड़े रहने पर भी अकस्मात् गिर पड़ते हैं तो उस स्थान पर इन उपद्रवों से जो परिणाम अथवा विनाश होता है, हे ब्रह्मन्! उसे मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, सुन!॥१-४.५॥

रोदने व्याधिमभ्येति हसने देशविभ्रमम्॥५॥
शाखाप्रपतनं कुर्यात्सङ्ग्रामे योधपातनम्। बालानां मरणं कुर्युरकाले पुष्पिता द्रुमाः॥६॥
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमथान्तरे। क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम्॥७॥
वाहनापचयं मद्ये रक्ते सङ्ग्राममादिशेत्। मधुस्त्रावे भवेद्व्याधिर्जलस्त्रावे न वर्षति॥८॥

वृक्षों के रुदन करने पर व्याधियाँ फैलती हैं, हँसने पर देश में संकट एवं सन्देह की वृद्धि होती है, शाखाओं के गिरने से संग्राम में योद्धाओं का विनाश होता है, बिना समय के फूलने से बालकों की अधिक संख्या में मृत्यु होती है। वृक्ष समूहो में से किसी-किसी के फलने-फूलने पर अपने राष्ट्र में भिन्नता होती है। गाय के दूध गिरने से चारों ओर विनाश उपस्थित होता है, तेल गिरने से महादुर्भिक्ष पड़ता है, मदिरा के गिरने से वाहनों का विनाश होता है, रक्त से संग्राम की संभावना बढ़ती है, मधु चूने से व्याधियाँ फैलती हैं, जल गिरने से वृष्टि नहीं होती।॥५-८॥

अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन्दुर्भिक्षलक्षणम्। शुष्केषु संप्ररोहस्तु वीर्यमन्नं च हीयते॥९॥
उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत्।
स्थानात्स्थानं तु गगने देशभङ्गस्तथा भवेत्॥१०॥
ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम्। एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते॥११॥

हे ब्रह्मन्! बिना किसी रोग के वृक्षों के सूख जाने को दुर्भिक्ष का लक्षण कहा जाता है, सूखे हुए वृक्ष में से हरियाली फूटने पर वीर्य (पराक्रम) एवं अन्न की हीनता बढ़ती है। गिरे हुए वृक्षों के उठने से भेदकारी भय देश में फैलता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से देशभंग होता है, वृक्षों के अकस्मात् जलने से तथा रुदन करने से सम्पत्ति का विनाश होता है, ये उपद्रव यदि पूजित वृक्षों में होते हैं तो अवश्य ही राजा पर विपत्तियाँ आती हैं।।-९-११।।

पुष्पे फले वा विकृते राज्ञो मृत्युं तथाऽऽदिशेत्।
अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः॥१२॥
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्।
वृक्षोपरि तथा छत्रं कुर्यात्पापप्रशान्तये॥१३॥
शिवमभ्यर्चयेद्देवं पशुं चास्मै निवेदयेत्। रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत्ततः॥१४॥

मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात्।
गीतेन नृत्येन तथाऽर्चयेत्तु देवं हरं पापविनाशहेतोः॥१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रशमनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११९५३॥

वृक्षों के फलों तथा पुष्पों में विकार हो जाने से राजा की मृत्यु की सूचना मिलती है, इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षों में भी उपद्रव के लक्षणों के दिखाई पड़ने पर उत्साही ब्राह्मण उस वृक्ष को ऊपर से ढँककर सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों एवं मालाओं से विभूषित करे और पाप की शान्ति के लिए वृक्ष के ऊपर छाता लगाये। तदनन्तर शिव की पूजा करे और पशु को 'रुद्रेभ्यः' इस संकल्प से निवेदित कर वृक्षों के नीचे हवन कर शिव का जप करे। मधु तथा वृक्ष से युक्त पायस से (दूध और चावल से पकायी गई खीर) ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर पृथ्वी का दान दे और उस पाप की शान्ति के लिए गीत तथा नृत्य का आयोजन कराकर भगवान् शंकर की आराधना करे॥१२-१५॥

॥दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अतिवृष्टि और अनावृष्टि के फलाफल

गर्ग उवाच

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादि भयं मतम्। अनृतौ तु दिवाऽनन्ता वृष्टिर्ज्ञेया भयानका॥१॥
अनभ्रे वैकृता चैव विज्ञेया राजमृत्यवे। शीतोष्णानां विपर्यासे नृपाणां रिपुजं भयम्॥२॥
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत्। अङ्गारपांशुवर्षेषु नगरं तद्विनश्यति॥३॥
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयं भवेत्। फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणातिभयाय तु॥४॥
पांशुजन्तूपलानां च वर्षतो रोगजं भयम्। छिद्रे वाऽन्नप्रवर्षेण सस्यानां भीतिवर्धनम्॥५॥

गर्ग ने कहा—अतिवृष्टि का होना एवं अनावृष्टि का होना इन दोनों से दुर्भिक्षादि के पड़ने का भय माना जाता है। बिना वर्षाऋतु के दिन में अनन्त वृष्टि का होना अति भयानक है। बिना बादलों के ही आकाश में उदासी एवं विकारों का दिखाई पड़ना राजमृत्यु का द्योतक है। शीतकाल में गर्मी एवं ग्रीष्म में सर्दी इससे राजाओं पर शत्रुपक्ष से भय होता है, जिस स्थान पर आकाश से रक्त की वर्षा होती है, वहाँ शस्त्रभय मानना चाहिये। अंगार एवं धूलि की वृष्टि नगर का विनाश करती है।

मज्जा, हड्डी, तेल एवं मांस की वृष्टि से प्रजावर्ग में मृत्यु का भय उपस्थिति होता है। आकाश से फल, पुष्प तथा अन्न की वृष्टि शत्रु से भय का द्योतन करती है। धूलि, जन्तु एवं ओला गिरने से रोग का भय होता है। अन्न की वृष्टि अन्न को ही भय पहुँचाने वाली है।।१-५।।

विरजस्के रवौ व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते। दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशभयं भवेत्।।६।।
निरभ्रे वाऽथ रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण तु। इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च।।७।।
दिग्दाहपरिवेषौ च गन्धर्वनगरं तथा। परचक्रभयं ब्रूयोद्देशोपद्रवमेव च।।८।।
सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद्द्विजेन्द्र।
धनानि गौः काञ्चनदक्षिणा च देया द्विजानामघनाशहेतोः।।९।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्‌भुतशान्तौ वृष्टिवैकृतिप्रशमनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११९६२।।

आकाश मण्डल में धूलि के न रहने पर भी यदि सूर्य के रहने पर परछाई नहीं दिखाई पड़ती है अथवा विपरीत दिखाई देती है, तो सारे देश को भय समझना चाहिये। बिना बादल के रात्रि में दक्षिण दिशा में अथवा उत्तर दिशा में यदि सफेद रंग का इन्द्रधनुष उदित दिखाई पड़ता है अथवा उल्कापात होता है, दिशाओं का दाह होता है, सूर्य तथा चन्द्रमा में मण्डल दिखाई पड़ते हैं, गन्धर्व नगर दिखाई पड़ते हैं तो उस समय देश पर शत्रु पक्ष की सेना से भय मानना चाहिये एवं देश में विभिन्न उपद्रवों के संगठित होने की सम्भावना जाननी चाहिये। हे द्विजेन्द्र! ऐसे अवसर पर सूर्य, चन्द्रमा, मेघ एवं वायु इनके उद्देश्य से यज्ञ करना चाहिए एवं इस महोत्पात के कारणरूप पाप के विनाश के लिए ब्राह्मणों को धन, गौएँ तथा सुवर्णादि की दक्षिणा देनी चाहिए।।६-९।।

।।दो सो तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।२३३।।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

नदियों आदि में उपद्रव का भय और शान्ति उपाय

गर्ग उवाच

नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च। नद्यो ह्रदप्रस्रवाणि विरसाश्च भवन्ति च।।१।।
विवर्ण कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसङ्कुलम्। स्नेहं क्षीरं सुरां रक्तं वहन्ते वाऽऽकुलोदकाः।।२।।
षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं भवेत्।

गर्ग ने कहा–यदि नदियाँ, सरोवर या झरने नगर से दूर हट जाते हैं, या दूर होने पर भी समीप चले आते हैं, अथवा सूख जाते हैं, मलिन हो जाते हैं, कलुषित हो जाते हैं, जल जलने लगता है, उनके फेन के समान जल-जन्तुओं का आधिक्य हो जाता है, तेल, दूध, मदिरा या रक्त उनमें बहते दिखाई पड़ने लगते हैं, जल विक्षुब्ध हो उठता है, तो उस समय से छः मास के भीतर ही उस देश पर शत्रुपक्ष की सेना से भय होने की सम्भावना होती है।।१-२.५।।

जलाशया नदन्ते वा प्रज्वलन्ति कथञ्चन।।३।।
विमुञ्चन्ति तथा ब्रह्मञ्ज्वालाधूमरजांसि च। अखाते वा जलोत्पत्तिः सुसत्त्वा वा जलाशयाः।।४।।
सङ्गीतशब्दाः श्रूयन्ते जनमारभयं भवेत्। दिव्यमम्भोभयं सर्पिर्मधुतैलावसेचनम्।।५।।
जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत्।।६।।
मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थम्।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्तथोदकुम्भाः सलिलाघशान्त्यै।।७।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ सलिलाशयवैकृत्यं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३४।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११९६९।।

यदि किसी प्रकार वे जलाशय शब्द करने लगते हैं, या जलने लगते हैं, या हे ब्रह्मन्! उनमें से आग की लपटें, धुआँ एवं धूलि निकलने लगती है, बिना खने ही भूमि पर जल निकलने लगता है, जलाशयों में बड़े-बड़े जलजीव हो जाते हैं, उनमें से संगीत की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं तो सर्वसाधारण प्रजावर्ग के मरण का भय मानना चाहिये। ऐसे अवसर पर घी, मधु, तैल से उन जलाशयों का अभिषेचन कर वरुण के मन्त्रों का जप करना चाहिये और उन्हीं मन्त्रों का उच्चारण कर जल में हवन करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजनार्थ मधु तथा घृत मिलाकर श्रेष्ठ अन्न का दान देना चाहिये एवं जल के उस उत्पातसूचक महापाप की शान्ति के लिए सफेद वस्त्रों से युक्त गौएँ और जल रखने के घड़े दान देने चाहिये।।३-७।।

।।दो सौ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त।।२३४।।

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्त्रियों की अकाल सन्तानोत्पत्ति से दुर्भाग्य सूचना

गर्ग उवाच

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा। विकृतप्रसवाश्चैव युग्मसम्प्रसवास्तथा।।१।।

अमानुषा ह्यतुण्डाश्च सञ्ज्ञातव्यसनास्तथा।
हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः॥२॥
पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्॥३॥
विवासयेत्तन्नृपतिः स्वराष्ट्रात्स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः।
किमिच्छकैर्ब्राह्मणतर्पणैश्च लोके ततः शान्तिमुपैति पापम्॥४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ स्त्रीप्रसववैकृत्यं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११९७३॥

गर्ग ने कहा—जब बिना समय पूरा हुए ही स्त्रियों से सन्ततियाँ उत्पन्न होने लगती हैं, या समय पूरा हो जाने पर भी नहीं उत्पन्न होती, उनमें विकार उत्पन्न होने लगता है अथवा जुड़वे लड़के पैदा होने लगते हैं, स्त्रियों से बच्चों को छोड़कर राक्षसादि पैदा होने लगते हैं, बिना कंधे के बच्चे उत्पन्न होने लगते हैं, मरे हुए उत्पन्न होने लगते हैं अथवा किसी अंग से हीन या किसी से अधिक अंग वाले बच्चे अधिक संख्या में पैदा होने लगते हैं, पशु एवं सर्पादि में भी इसी प्रकार के बच्चे पैदा होने लगते हैं, तब यह समझ लेना चाहिये कि उस देश का विनाश उपस्थित हो गया है। ऐसे उपद्रवों के घटित होने पर राजा अपने राष्ट्र से उन पैदा होने वाली सन्तानों को निर्वासित कर दे और स्त्रियों की विशेष पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को विधिवत् सन्तुष्ट करे, तब लोक में पाप की शान्ति होती है॥१-४॥

॥दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३५॥

❖❖❖

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रथादि में अद्भुत उपद्रव और शान्ति के उपाय

गर्ग उवाच

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति च।
चोद्यमानानि तत्र स्यान्महद्भयमुपस्थितम्॥१॥
वाद्यमाना न वाद्यन्ते वाद्यन्ते चाप्यनाहताः।
अचलाश्च चलन्त्येव न चलन्ति चलानि च॥२॥
आकाशे तूर्यनादाश्च गीतगन्धर्वनिःस्वनाः। काष्ठदर्वीकुठारादिर्विकारं कुरुते यदि॥३॥

गावो लाङ्गूलसङ्घैश्च स्त्रियः स्त्री च विघातयेत्।
उपस्कारादिविकृतौ घोरं शस्त्रभयं भवेत्॥४॥
वायोस्तु पूजां द्विजसक्तुभिश्च कृत्वा नियुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान्।
दद्यात्प्रभूतं परमान्नमत्र सदक्षिणं तेन शमोऽस्य भूयात्॥५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुपस्करवैकृत्यं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥११९७८॥

गर्ग ने कहा–जिस देश में रथादि घोड़ों के बिना जोते ही चलने लगते हैं अथवा घोड़ों के जोतने पर तथा उन्हें हाँकने पर भी नहीं चलते हैं, वहाँ पर भी यह जान लेना चाहिये कि कोई महान् भय उपस्थित हो गया है। बिना बजाये ही जब बाजन बजने लगते हैं अथवा बजाने पर भी उनसे ध्वनियाँ नहीं निकलतीं, अचल वस्तुएँ चलने लगती है तथा जो चल वस्तुएँ हैं, वे अचल हो जाती है, आकाश में तुरही की ध्वनि तथा गान-वाद्यादि का स्वर सुनाई पड़ने लगता है, काष्ठ, करछुल एवं फावड़े आदि में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। गौएँ पूँछ से एक-दूसरे को मारने लगती हैं, स्त्रियाँ एक-दूसरे की हत्या करने लगती हैं एवं घरेलू वस्तुओं में भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उस समय देश में शस्त्रास्त्रों से घोर भय जानना चाहिये। ऐसे उत्पातों के घटित होने पर सत्तू से वायु देव की पूजा करके उनके मन्त्रों का जप करना चाहिये एवं तदनन्तर दक्षिणा समेत अन्न को प्रचुर परिमाण में दान देना चाहिये। इस प्रकार शान्ति करने पर इस उत्पात के कारण स्वरूप उस महापाप का विनाश होता है।।१-५।।

।।दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।२३६।।

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पशुओं आदि का उपद्रव और फलाफल

गर्गरुवाच

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः।
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः॥१॥
स्थलजाश्च जलं यान्ति घोरं वाशन्ति निर्भयाः। राजद्वारे पुरद्वारे शिवा चाप्यशिवप्रदा॥२॥
दिवा रात्रिंचरा वाऽपि रात्रावपि दिवाचराः।
ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं च शून्यतां तस्य निर्दिशेत्॥३॥

गर्ग ने कहा–जब ग्रामों में जंगली पशु एवं पक्षी प्रवेश करते हैं या ग्राम में रहने वाले पशु-पक्षी जंगलों में चले जाते हैं अथवा जल में रहने वाले जीव भूमि पर डोलने लगते हैं, या भूमि के जीव जल में चले जाते हैं। राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर तथा गोपुर पर अमंगल की सूचना देने वाली श्रृंगालियाँ निर्भय होकर रोदन करती हैं। दिन में चलने वाले प्राणी रात्रि में तथा रात्रि में चलने वाले प्राणी दिन में इधर-उधर घूमने लगते हैं, ग्राम में रहने वाले जीव ग्राम छोड़ देते हैं, तो उन ग्रामों के सूनेपन की सम्भावना समझनी चाहिये।।१-३।।

दीप्ता वाशन्ति संध्यासु मण्डलानि च कुर्वते।
वाशन्ति विस्वरं यत्र तदाऽप्येतत्फलं लभेत्।।४।।
प्रदोषे कुक्कुटो वाशेद्धेमन्ते वाऽपि कोकिलः।
अर्कोदयेऽर्काभिमुखी शिवा रौति भयं वदेत्।।५।।
गृहं कपोतः प्रविशेत्क्रव्यादो मूर्ध्नि लीयते। मधु वा मक्षिकाः कुर्युर्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत्।।६।।

जब पशु आदि जीवगण ग्रामों में एकदम क्रोधोन्मत्त होकर मण्डल बनाकर रूखे स्वर में चिल्लाने लगते हैं, तब भी यह भय समझना चाहिये। आधीरात के समय मुर्गे चिल्लाने लगे, हेमन्त ऋतु में कोकिल बोले, सूर्योदय के समय सूर्याभिमुख होकर श्रृँगालिनी चिल्लाने लगे तो भय का आगमन कहना चाहिये। घर में कबूतर घुस आये, मस्तक पर गीध बैठ जाए, घर के भीतर मधु की मक्खियाँ मधु संचित करने लगें, तब यह जान लेना चाहिए कि उस घर के स्वामी की मृत्यु होने वाली है।।४-६।।

प्रकारद्वारगेहेषु तोरणापणवीथिषु। केतुच्छत्रायुधाद्येषु क्रव्यादं प्रपतेद्यदि।।७।।
जायन्ते वाऽथ वल्मीका मधु वा स्यन्दते यदि।
स देशो नाशमायाति राजा वा म्रियते तथा।।८।।
मूषकाञ्छलभान्दृष्ट्वा प्रभूतं क्षुद्भयं भवेत्।

रक्षा दीवाल, प्रवेश द्वार, राजभवन, तोरण, बाजार, गली, पताका, ध्वजा तथा अस्त्र-शस्त्रादि पर गृध्र पक्षी बैठ जाय, अथवा घर में बिल हो जाय, मधु छत्ते से गिरने लगे, तब उस देश का विनाश होने वाला है अथवा राजा की मृत्यु होने वाली है। मूषक और पतिंगे यदि अधिक परिमाण में दिखाई पड़ते हैं तो क्षुधा का भय होने वाला है अर्थात् दुर्भिक्ष पड़ने की सम्भावना है।।७-८.५।।

काष्ठोल्मुकास्थिशृङ्गाढ्याः श्वानो मार्कटवेदनाः।।९।।
दुर्भिक्षवेदना ज्ञेया काका धान्यमुखा यदि। जनानभिभवन्तीह निर्भया रणवेदिनः।।१०।।
काको मैथुनसक्तश्च श्वेतस्तु यदि दृश्यते।
राजा वा म्रियते तत्र स च देशो विनश्यति।।११।।

उलूको वाशते यत्र नृपद्वारे तथा गृहे। ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च॥१२॥

लकड़ी के लुवाठे, हड्डियाँ सींग वाले जानवर, कुत्ते एवं बन्दरों की अधिकता होने पर देश में व्याधियों के फैलने का भय रहता है। यदि कौआ चोंच से अन्न लेकर इधर-उधर निर्भय होकर घूमता है तो दुर्भिक्ष की सूचना जाननी चाहिये और उस समय रण छिड़ने की सम्भावना रहती है। यदि श्वेत कौआ मैथुन करते हुए दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि उस देश का राजा मरेगा और वह देश विनष्ट होगा। जब राजा के द्वार पर अथवा घर में उल्लू बोलते हैं तो उस घर के स्वामी अर्थात् राजा की मृत्यु तथा उसकी सम्पत्ति का विनाश समझना चाहिए।।९-१२।।

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम्।
देवाः कपोता इति वा जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः॥१३॥
गावश्च देया विधिवद्द्विजेभ्यः सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैर्द्विजैर्वा विनिवेदितं यत्॥१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ मृगपक्षिवैकृत्यं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११९९२।।

इस प्रकार पशुओं एवं पक्षियों में उत्पात के लक्षणों को देखकर दक्षिणा समेत यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए अथवा पाँच ब्राह्मणों को 'देवाः कपोताः .....' इस मन्त्र का जप करना चाहिए। तदनन्तर ब्राह्मणों को विधिपूर्वक सुवर्ण समेत गौओं का दान करना चाहिए। इस प्रकार के अनुष्ठान करने से पशुओं एवं पक्षियों द्वारा सूचित उत्पातों के कारणस्वरूप पाप की शान्ति होती है।।१३-१४।।

।।दो सौ सैंतिसवाँ अध्याय समाप्त।।२३७।।

❖❖❖

अथाष्टात्रिंदशधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजभवनादि द्वारा उपद्रव के लक्षण और उनकी शान्ति के उपाय

गार्ग उवाच

प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्राकारवेश्मनाम्। निर्निमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे॥१॥
रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः। आदित्यचन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये॥२॥
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः। ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्यः पूज्यते जनैः॥३॥

गर्ग ने कहा–दृढ़ बने हुए राजभवन, तोरण, अट्टालिका, प्रवेशद्वार, रक्षा दीवाल एवं अन्यान्य भवन आदि यदि बिना किसी कारण के गिर पड़ते हैं तो राजा की मृत्यु की सूचना समझनी चाहिए। जिस देश में दिशाएँ धूलि से तथा धुएँ, से भरी दिखाई पड़ती हैं एवं सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराएँ धूमिल रंग की दिखाई पड़ती हैं तो ये भी भय वृद्धि की सूचना देती हैं, जहाँ राक्षस दिखाई पड़ते हैं तथा ब्राह्मण विधर्मी हो जाते हैं, ऋतुओं का विपर्यय होता है, लोग अपूज्यों की पूजा करते हैं, नक्षत्रगण आकाश से नीचे गिरने लगते हैं, तो वहाँ ये महान् भय की सूचना देते हैं।।१-३।।

नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम्। केतूदयोपरागौ च च्छिद्रं वा शशिसूर्ययोः।।४।।
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत्।

केतु का उदय, ग्रहण, चन्द्रमा एवं सूर्य के बिम्ब में छिद्रों का दिखाई पड़ना, ग्रह एवं नक्षत्रों में विकार, ये सब भी जहाँ घटित हों, वहाँ भय की सम्भावना समझनी चाहिये।।४-४.५।।

स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान्।।५।।
क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र जायते। हूयमानस्तु यत्राग्निर्दीप्यते न च शान्तिषु।।६।।
पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति चोत्तरतस्तथा।
पूर्णकुम्भारू स्त्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते।।७।।
मङ्गल्याश्च(लाश्च)गिरो यत्र न श्रूयन्ते समन्ततः।
क्षवथुर्बाधते वाऽथ प्रसहन्ति नदन्ति च।।८।।
न च देवेषु वर्तन्ते यथावद्ब्राह्मणेषु च। मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च।।९।।
गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता नराः। ब्राह्मणान्सुहृदा मान्याञ्जनो यत्रावगम्यते।।१०।।
शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते। राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति।।११।।

स्त्रियाँ जहाँ आपस में झगड़ने लगे, बालक एक-दूसरे को मारने लगे, उचित कार्यों का विनाश हो, यज्ञादि कार्यों में आहुति देने पर भी अग्नि उद्दीप्त न हो, पिपीलिका और गृध्रों का उत्तर दिशा में होकर जाना, भरे हुए घड़े में रखी हुई वस्तुओं का चूना, घी का अभाव हो जाना, चारों ओर से मांगलिक वाणियों के सुनने का अभाव एवं लोगों में कास रोग की पीड़ा, जनता में अकारण हँसी और गाने की विशेष अभिरुचि, देवता और ब्राह्मणों की पूजा का अभाव, बाजनों में स्वरों की मंदता एवं कर्कशता, लोगों में गुरु एवं मित्रों से द्वेष तथा शत्रु की पूजा में विशेष अभिरुचि के भाव, ब्राह्मण, मित्र एवं माननीय लोगों के अपमान, शान्तिपाठ, मांगलिक यज्ञादि के अनुष्ठान, हवनादि में नास्तिकता का प्रभाव-ये सब उत्पात जहाँ दिखाई पड़े वहाँ यह जान लेना चाहिये कि या तो राजा की मृत्यु होने वाली है अथवा उस देश का विनाश होने वाला है।।५-११।।

राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे।
ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते।।१२।।

ब्राह्मणस्वानि चाऽऽदत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
न च स्मरति कृत्येषु याचितश्च प्रकुप्यति॥१३॥
रमते निन्दया तेषां प्रशंसां नाभिनन्दति। अपूर्वं तू करं लोभात्तथा पातयते जने॥१४॥

राजा के विनाश की सूचना के जो लक्षण हैं, उन्हें मुझसे सुनो। वह राजा सर्वप्रथम ब्राह्मणों से द्वेष करने लगता है, ब्राह्मणों से विरोध करता है, ब्राह्मणों की सम्पत्ति अपने अधीन कर लेता है, ब्राह्मणों के मारने का उपक्रम करता है, सत्कार्यों में उनका स्मरण नहीं करता, याचना करने पर क्रुद्ध होता है, ब्राह्मणों की निन्दा में विशेष रुचि रखता है, प्रशंसा का अभिनन्दन नहीं करता, लोभ के कारण लोगों पर नये-नये कर लगाता है-ऐसे उत्पात जब राजा में दिखाई पड़े तो यह समझ लेना चाहिये कि उसके विनाश की घड़ी आ गई।।१२-१४।।

एतेष्वभ्यर्चयेच्छक्रं सपत्नीकं द्विजोत्तम। भोज्यानि चैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा॥
सन्तो विप्राश्च पूज्याः स्युस्तेभ्यो दानं च दीयताम्॥१५॥
गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो भुवस्तथा काञ्चनमम्बराणि।
होमश्च कार्योऽमरपूजनं च एवं कृते पापमुपैति शान्तिम्॥१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुत्पातप्रशमनं नामाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२००८।।

ऐसे अवसर पर हे द्विजोत्तम! शची के समेत इन्द्र की पूजा करनी चाहिये एवं अन्यान्य देवताओं के उद्देश्य से भक्ष्य बलि देनी चाहिये। सत्पुरुषों एवं ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें दान देना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गौएँ, सुवर्ण, पृथ्वी, वस्त्रादि का दान करना चाहिये और देवताओं की पूजा कर हवन करना चाहिये। ऐसा करने से उपर्युक्त उत्पातों का मूल कारण पाप शान्त होता है।।१५-१६।।

।।दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।।२३८।।

❖❖❖

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ग्रहयज्ञ का विधान और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः। कोटिहोमोऽपि वा देव सर्वपापप्रणाशनः॥१॥

क्रियते विधिना येन यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकैः। तत्सर्वं विस्तराद्देव कथयस्व जनार्दन॥२॥

मनु ने पूछा- हे देव! जनार्दन! राजाओं को ग्रहयज्ञ किस प्रकार करना चाहिये एवं सभी पापों को नष्ट करने वाले लक्ष होम तथा कटिहोम के करने की क्या विधि है? इस यज्ञ का अनुष्ठान जिस विधि से किया जाता है तथा शान्ति की चिन्ता करने वाले जिस विधि से इसे सम्पन्न होते देखते हैं-उन सब को विस्तारपूर्वक मुझे बताईये।।१-२।।

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव त नृप। राज्ञां धर्मप्रसक्तेन प्रजानां च हितेप्सुना॥३॥
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः। नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा॥४॥
सुषमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः। गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्धं भूमिं परीक्षयेत्॥५॥
खनेत्कुण्डं च तत्रैव सुषमं हस्तमात्रकम्। द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम्॥६॥

मत्स्य भगवान् ने कहा- हे राजन्! तुम्हारे पूछने पर अब मैं बतला रहा हूँ। धर्म परायण एवं प्रजा के कल्याण के लिए तत्पर राजाओं को यह ग्रहयज्ञ सर्वदा लक्षहोम के साथ करना चाहिये, इस ग्रहयज्ञ को नदियों के संगम पर तथा देवताओं के आगे, सुन्दर, चारों ओर समतल भूमि भाग में ज्योतिषियों से भली-भाँति सम्मति लेकर कराना चाहिये। सर्वप्रथम गुरु तथा पुरोहितों को साथ ले भूमि की परीक्षा करे। तदनन्तर वहाँ एक हाथ गहरा चारों ओर से समान सुन्दर कुण्ड खने, लक्षहोम के लिए इससे द्विगुणित तथा कोटि होम के लिए इससे चतुर्गुणित परिमाण में कुण्ड खने।।३-६।।

युग्मास्तु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा॥७॥
वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च।
सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निं च समिन्धयेत्॥८॥

इस ग्रहयज्ञ के लिये दो पुरोहित बतलाये गये हैं अथवा वेदपारगामी आठ पुरोहित रहें, जो सबके सब कन्द, मूल एवं फल के आहार करने वाले तथा दही और दूध से निर्वाह करने वाले हों। यजमान राजा यज्ञवेदी पर विविध प्रकार के रत्न उन पुरोहितों द्वारा स्थान-स्थान पर स्थापित करवाये। तदनन्तर बालू द्वारा वेदी के चारों ओर मण्डल बनाकर अग्नि प्रज्वलित कराये।।७-८।।

गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः। त्रिंशद्ग्रहाणां मन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः॥९॥
कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश। होतव्या दशसाहस्त्र बादरैर्जातवेदसि॥१०॥
श्रियो मन्त्रेण होतव्याः सहस्राणि चतुर्दश।
शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः॥११॥
हुत्वा शतसहस्रं तु पुण्यस्नानं समाचरेत्। कुम्भैः षोडशसंख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः॥१२॥

फिर गायत्री मन्त्र द्वारा सहस्त्र, 'मानस्तोके.....' इस मन्त्र द्वारा छः सहस्त्र, नवग्रहों के मन्त्रों से तीस सहस्त्र, विष्णु देवता के मन्त्रों से चार सहस्त्र, कुष्माण्ड द्वारा पाँच सहस्त्र, पुष्प आदि द्वारा सोलह, तथा बेर के फलों द्वारा दस सहस्त्र आहुति अग्नि में देनी चाहिये। इसी प्रकार लक्ष्मी के मन्त्रों से चौदह सहस्त्र आहुतियाँ करनी चाहिये और शेष पाँच सहस्त्र आहुतियाँ इन्द्र देवता के मन्त्रों से देनी चाहिये। एक लाख आहुतियों की समाप्ति हो जाने के बाद सुवर्ण तथा मांगलिक द्रव्यों से युक्त सोलह कलशों द्वारा पुण्य स्नान करे।।९-१२।।

स्नापयेद्यजमानं तु ततः शान्तिर्भविष्यति। एवं कृते तु यत्किंचिद्ग्रहपीडासमुद्भवम्।।१३।।
तत्सर्वं नाशमायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता।।१४।।
हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च। अनडुहगोशतं दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम्।।१५।।
यथाविभवसारं तु वित्तशाठ्यं न कारयेत्। मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप।।१६।।

इस प्रकार पुरोहित जब यजमान को स्नान कराता है, तब शान्ति की प्राप्ति होती है। ऐसा करके तथा अन्त में दक्षिणा प्रदान कर ग्रहों आदि के कारण जो पीड़ा होती है, उन सबको राजा विनष्ट कर देता है। यही कारण है कि यज्ञ के सभी कार्यों में दक्षिणा का बहुंत अधिक महत्व कहा गया है। उस समय राजा अपनी शक्ति के अनुकूल हाथी, रथ, घोड़े, भूमि, वस्त्र के जोड़े, सौ बैल तथा गौएँ आदि दक्षिणा के साथ पुरोहितों को दे, इसमें कृपणता न करे। हे नराधिप! इस प्रकार की विधि से एक मास में लक्षहोम समाप्त होता है।।१३-१६।।

लक्षहोमस्य राजेन्द्र विधानं परिकीर्तितम्। इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम्।।१७।।
गङ्गातटेऽथ यकुनासरस्वत्योर्नरेश्वर। नर्मदादेविकायास्तु तटे होमो विधीयते।।१८।।
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन षोडश। सर्वहोमे तु राजर्षे दद्याद्विप्रेऽथवा धनम्।।१९।।
ऋत्विगाचार्यसहिता दीक्षां सांवत्सरीं स्थितः।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः।।२०।।
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप।

हे राजेन्द्र! यह लक्षहोम का विधान मैं आपको बता चुका, अब कोटिहोम का विधान सुनो, मैं बतला रहा हूँ। हे नरेश्वर! गंगा के तट पर, यमुना तथा सरस्वती के तट पर, नर्मदा और देविका के तट पर यह हवन किया जाता है। हे रविनन्दन! इस कोटिहोम में सोलह पुरोहित बनाने चाहिये। हे राजर्षे! इस प्रकार सभी हवन कार्यों में ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर राजा-पुरोहित तथा आचार्य के साथ दीक्षा ग्रहण करे, यह विधि एक साल की है। नृप! चैत्र के मास में अथवा कार्तिक के मास में इस यज्ञ को प्रारम्भ करना चाहिए और इसी प्रकार प्रतिवर्ष इसका अनुष्ठान करना चाहिये।।१७-२०.५।।

यजमानः पयोभक्षी फलाशी च तथाऽनघ।।२१।।

यवादिव्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः।
पालाशाः समिधः शस्ता वसोर्धारा तथोपरि॥२२॥
मासेऽथ प्रथमे दद्यादृत्विग्भ्यः क्षीरभोजनम्।
द्वितीये कृसरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधनीम्॥२३॥
तृतीये मासि संयावो देयो वै रविनन्दन। चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन्॥२४॥

हे अनघ! अनुष्ठान के समय यजमान को दुग्ध का अथवा फल का आहार करना चाहिये। यव आदि अन्न, उड़द, तिल और सरसों एवं पलाश की लकड़ी ये सब होम में प्रशंसित हैं। इसके ऊपर वसु की धारा छोड़नी चाहिये। पहिले मास में पुरोहितों को दुग्ध का भोजन कराना चाहिये, दूसरे मास में खिचड़ी, जोकि धर्म, काम एवं अर्थ सबकी साधक है, देनी चाहिये। हे रविनन्दन! तीसरे मास में घी से गेहूँ का चूर्ण बनाकर यवागू बनवाए और पुरोहितों को दे। चौथे मास में ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए उन्हें भोजनार्थ लड्डू देना चाहिये॥२१-२४॥

पञ्चमे दधिभक्तं तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम्। पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः॥२५॥
षष्ट्योदनं च नवमे दशमे यवषष्टिका। एकादशे समाषं तु भोजनं रविनन्दन॥२६॥
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वह। षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम्॥२७॥

पाँचवें मास में दही और भात तथा छठवें मास में सत्तू का भोजन देना चाहिये। सातवें मास में पूप तथा आठवें में घी का पुआ देना चाहिये। नवें महीन में साठी का भात तथा दसवें में यव और साठी का भोजन दे। हे रविनन्दन! ग्यारहवें मास में पुरोहितों को उड़द युक्त भोजन देना चाहिये। इसी प्रकार हे सूर्य कुलोत्पन्न! बारहवें मास के आने पर उन्हें छहों रसों से युक्त सभी मनोरथों की पूर्ति करने वाला सुन्दर भोजन देना चाहिए॥२५-२७॥

देया द्विजानां राजेन्द्र मासि मासि च दक्षिणाः।
अहतवासः संवीतो दिनार्धे होमयेच्छुचिः॥२८॥
तस्मात्सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः।
इन्द्राद्यादिसुराणां च प्रीणनं सार्वकामिकम्॥२९॥
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र पशुघातसमन्वितम्। सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमं च कारयेत्॥३०॥

हे राजेन्द्र! उन ब्राह्मणों को प्रतिमास दक्षिणा भी देने चाहिये और मध्याह्न के समय पवित्र वस्त्र धारण कर हवन करना चाहिये। इस कार्य के लिये यजमान को सर्वदा पुरोहितों के साथ प्रातः काल ही उठना चाहिए और इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली है। हे राजेन्द्र! फिर देवताओं के उद्देश्य से पशु-बलि देकर सभी प्रकार के दान कर्मों को सम्पादित करे और फिर अग्निष्टोम का अनुष्ठान करे॥२८-३०॥

एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते। सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम्॥३१॥

पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थे च ऋत्विजैः।
युक्तो वसन्मानवैश्च पुनः प्राप्तार्चनान्द्विजान्॥३२॥
प्रीणयित्वा सुरान्सर्वन्पितृनेव ततः क्रमात्।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानां च समर्पणम्॥३३॥

इस प्रकार विधिपूर्वक पूर्णाहुति करे। शतहोम में दो सौ, सहस्रहोम में उसका दुगुना तथा लक्षहोम तक इसी प्रकार पूर्व की संख्या से दुगुना करते हुए पूर्णाहुति करनी चाहिए। तदनन्तर देवताओं के लिए पुरोहितों द्वारा पुरोडाश का दान कराना चाहिये और उन्हें उन्हीं आगत मनुष्यों में ही उपस्थित समझना चाहिए। फिर पूजित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके पितरों की तृप्ति के लिए शास्त्रोक्त विधि से पिण्डदान करना चाहिए। इस होम के समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए॥३१-३३॥

समाप्तौ तस्य होमस्य विप्राणामथ दक्षिणाम्। समां चैव तुलां कृत्वा बद्ध्वा शिक्यद्वयं पुनः॥३४॥
आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीं चैव द्वितीयकाम्।
सुवर्णेन तथाऽऽत्मानं रजतेन तथा प्रियाम्॥३५॥
तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः। ददेच्छतसहस्त्रं तु रूप्यस्य कनकस्य च॥३६॥
सर्वस्वं वा ददत्तत्र राजसूयफलं लभेत्। एवं कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत्॥३७॥
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः। तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत्॥३८॥

तदनन्तर राजा को चाहिए कि कृपणता को छोड़ कर तराजू में दो पलड़े बाँधकर अपने आप को अपनी पत्नी को तौले। उसे अपने को सुवर्ण से तथा पत्नी को चाँदी द्वारा तोलना चाहिये और तौलने के बाद ब्राह्मण को दान करना चाहिये। तदनन्तर चाँदी तथा सुवर्ण की बनी हुई एक लक्ष मुद्रा का दान करना चाहिए अथवा अपने सर्वस्व का दान कर देना चाहिए। इस प्रकार उसे राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ की समाप्ति कर, तब ब्राह्मणों को विसर्जित करे और कहे 'कमलनेत्र भगवान् विष्णु जो सभी यज्ञों के स्वामी हैं, प्रसन्न हों, उनके सन्तुष्ट होने पर समस्त जगत् सन्तुष्ट होता हैं और प्रसन्न होने पर सभी प्रसन्न होते हैं॥३४-३८॥

एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते। इयं शान्तिस्तवाऽऽख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत्॥३९॥
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे। सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्॥
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप॥४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहयज्ञविधानं नामैकोनचत्वरिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२०४८॥

सभी प्रकार की आधिदैविक तथा मनुष्य द्वारा उपस्थित होने वाली बाधाओं के आने पर

इस शान्ति को करना चाहिये, जिसे मैं तुम्हें बता चुका, इस शान्ति के अनुष्ठान को करके मनुष्य सुकृती होता है और जन्म तथा मृत्यु के विषय में उसे फिर कोई सोच नहीं रहती और न उचित एवं अनुचित कार्यों में विचार में ही वह मोहित होता है। सभी तीर्थों के स्नान करने से तथा सभी यज्ञों के अनुष्ठान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, हे नृप! उस पुण्य को इन तीनों यज्ञों को करने वाला मनुष्य प्राप्त करता है।।३९-४०।।

।।दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२३९।।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजाओं की दिग्विजय यात्रा के शुभ मुहूर्त, शुभशकुन, विजय यात्रा किस तरह की जाय

मनुरुवाच

इदानीं सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। यात्राकालविधानं मे कथयस्व महीक्षिताम्।।१।।

मनु ने कहा–ये सभी धर्मों के तत्त्वों को जानने वाले! सभी शास्त्रों में विशारद! भगवन्! अब मुझे राजाओं की यात्रा के सम्बन्ध में आवश्यक विधानों को बतलाईये।।१।।

मत्स्य उवाच

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा। पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽरिस्तदा यात्रां प्रयोजयेत्।।२।।

मत्स्य भगवान् ने कहा–जब राजा को किसी भयंकर युद्ध से घिरा हुआ समझे और वह जान ले कि पड़ोस की सीमा का शत्रु पराजित हो चुका है, उस समय अपनी विजय यात्रा करे।।२।।

योधान्मत्वा प्रभूतांश्च च बलं मम। मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदा यात्रां प्रयोजयेत्।।३।।

अशुद्धपार्ष्णिर्नृपतिर्न तु यात्रां प्रयोजयेत्।
पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यं मूले निक्षिप्य च ब्रजेत्।।४।।

और वह उस समय भी वह यात्रा करे, जब यह समझ ले कि हमारे पास अधिक संख्या में योद्धागण मौजूद हैं, हमारी सेना अति बलवान् तथा बहुसंख्यक है और मैं अपने दुर्ग की रक्षा करने में समर्थ हूँ। जिस राजा की सीमा शत्रु के कारण शान्त नहीं है, अर्थात् पड़ोसी राजा बलवान् है तथा अपने राज्य पर दृष्टि लगाये हुए हैं, उस समय वह यात्रा न करे। उस समय वह जितने सामन्त शत्रुगण हैं, उनसे अधिक संख्या में सेना को राजधानी में नियुक्त करने के बाद विजय के लिए यात्रा करे।।३-४।।

चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः।
चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टिं च शारदीम्॥५॥

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः। शत्रोर्वा व्यसने यायात्काल एव सुदुर्लभः॥६॥

राजा को चैत्र की अथवा मार्गशीर्ष की पूर्णिमा तिथि को विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। चैत्र की पूर्णिमा को यात्रा करने वाला निदाघ का दर्शन करेगा तथा शरद्काल के शीत के भय से उन्मुक्त रहेगा; क्योंकि निदाघ से शीत का विनाश हो चुका रहेगा। ठीक इसी के समान मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के अवसर पर यात्रा करने से राजा को सुविधा प्राप्त होती है। अथवा शत्रु के आपत्ति में फँसने पर राजा विजय यात्रा करे, यह समय तो यात्रा के लिये अति दुर्लभ है।।५-६।।

दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडितं परम्। षडक्षपीडासन्तप्तं पीडितं च तथा ग्रहैः॥७॥

ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं यां च प्रपद्यते।
भूकम्पोल्कादि संयाति यां च केतुः प्रसूयते॥८॥

दिव्य, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के उत्पातों से अतिशय, पीड़ित, हाथ-पैर आदि छः प्रकार की इन्द्रियों के भंग होने के कारण अति संतप्त एवं ग्रहों द्वारा पीड़ित शत्रु पर राजा को विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। जिस दिशा में आकाश मण्डल से जलती हुई उल्का गिरती है तथा भूकम्प एवं उल्का पतन आदि जिस दिशा में अधिक होते हैं, तथा जिस दिशा में पुच्छल तारा उदित होता है राजा को उसी दिशा में विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये।।७-८।।

निर्घातश्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिपः। स्वबलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीडितम्॥९॥

सम्भूतान्तरकोपं च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः। यूकामाक्षीकबहुलं बहुपङ्कं तथाऽऽविलम्॥१०॥

नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथाऽमङ्गलवादिनम्। अपेतप्रकृतिं चैव निःसारं च तथा जयेत्॥११॥

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम्। व्यसनासक्तनृपतिं बलं राजाऽभियोजयेत्॥१२॥

जिस स्थान पर वज्रपात होता हो वहाँ भी राजा यात्रा करे। जो राजा अपनी सेना के विद्रोह के कारण विपन्न हो, जिस राजा का देश दुर्भिक्ष से पीड़ित हो, जिस राजा के प्रजावर्ग में आन्तरिक विद्रोह की प्रबलता हो रही हो, ऐसे शत्रु राजा के देश पर राजा तुरन्त यात्रा कर दे। जिस देश में ढील, यूक, मधूमक्खी की अधिकता हो, अधिक कीचड़ हो, देश मलिन एवं अपवित्र हो, जहाँ का राजा नास्तिक हो, अपनी मर्यादाओं को भंग करने वाला हो, फूहड़ एवं अमांगलिक बातें कहने वाला हो, दुश्चरित्र तथा पराक्रमहीन हो-ऐसे शत्रु को राजा शीघ्र ही स्ववश करे। जिस राजा के सेनानी उससे द्वेष रखते हों, सेनाओं में परस्पर विद्वेष फैला हो, ऐकमत्य न हो, राजा किसी आफत अथवा दुर्व्यसन में फँसा हो, जिसकी सेना बलवान् न हो, ऐसे शत्रु के ऊपर राजा उसी समय शीघ्र ही आक्रमण कर दे।।९-१२।।

सैनिकानां न शस्त्राणि स्फुरन्त्यङ्गानि यत्र च। दुःस्वप्नानि च पश्यन्ति बलं तदभियोजयेत्॥१३॥

उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा। तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत्॥१४॥
शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने। निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत्॥१५॥
ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च। प्रश्नकाले शुभे जाते परान्यायान्नराधिपः॥१६॥

जिस देश के राजा के सैनिकों के अस्त्र एवं अंग युद्धभूमि में आकर प्रस्फुटित न होते हों, तथा रात में बुरे स्वप्न देखते हों, उनके ऊपर राजा अपनी सेना से धावा बोल दे। उत्साह एवं पराक्रम से संयुक्त अपने ऊपर अनुराग करने वाली विशाल सेना से सुसज्जित होकर सन्तुष्टचित्त हो राजा शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करे। अच्छे अंगों के स्फुरण हो रहे हों, दुःस्वप्नों के विनाशक शुभ मांगलिक लक्षण आगे दिखाई पड़ रहे हों, मांगलिक शकुन आगे पड़ रहे हों, ऐसे शुभ समय में राजा को शत्रु पर यात्रा करनी चाहिये। जन्म आदि छहों नक्षत्र शुभ योग में हों, ग्रहों की स्थिति अनुकूल दशा में हो, प्रश्न करने पर सुखदायक उत्तर मिला हो, ऐसे अवसर पर राजा शत्रुओं पर आक्रमण करे।।१३-१६।।

एवं तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः। देशकालोपपन्नां तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः॥१७॥
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे। उलूकस्य निशि ध्वाङ्क्षः स च तस्य दिवा वशे॥१८॥
एवं देशं च कालं च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत्। पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत्॥१९॥

इस प्रकार दैवबल तथा अपने पराक्रम से संयुक्त होकर राजा देश एवं समय के अनुरूप शत्रु पर अपनी यात्रा प्रारम्भ करे। स्थल भाग में मगर हाथी के वश में होता है; किन्तु जल में जाकर हाथी भी मगर के वश में हो जाता है, इसी प्रकार रात्रि में काक, उल्लू के आधीन हो जाता है; किन्तु दिन में उलूक ही काक के वश में रहता है, इसी प्रकार राजा देश एवं समय दोनों की स्थिति में बलाबल का विचार कर शत्रु पर अपनी यात्रा आरम्भ करे। यदि वर्षा ऋतु में उसे आक्रमण करना है तो पैदल और हाथी इन दोनों की सेना में अधिकता होनी चाहिये।।१७-१९।।

हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम्। खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः॥२०॥
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ। सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपतेः॥२१॥
अभियोज्यो भवेत्तेन शत्रुर्विषममाश्रितः। गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुं तथैव च॥२२॥
किञ्चित्पङ्के तथा यायाद् बहुनागो नराधिपः।

हेमन्त और शिशिर ऋतु में अधिक रथ और घोड़े से युक्त सेना को विजयार्थ साथ ले जाना चाहिये। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में राजा गधे और ऊँटों की संख्या में वृद्धि करके शत्रु पर आक्रमण करे। वसन्त और शरद् इन दोनों ऋतुओं में चतुरंगिणी सेना से युक्त होकर आक्रमण करना चाहिये। जिस राजा की सेना में पैदल की अधिक संख्या हो वह दुर्गम प्रदेश में स्थित शत्रु पर आक्रमण करे। अधिक वृक्षों से युक्त देश में जाने के लिए अथवा ऐसे देश में अवस्थित शत्रु पर आक्रमण करने के लिये अथवा कुछ कीचड़ वाले देश में आक्रमण करने के लिये राजा अधिक संख्या में हाथियों को अपने साथ ले जाय।।२०-२२.५।।

रथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समपथस्थितम्॥२३॥
तमाश्रयन्तो बहुलास्तांस्तु राजा प्रपूजयेत्। खरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः॥२४॥
बन्धनस्थोऽभियोज्योऽरिस्तथा प्रावृषि भूभुजा।
हिमपातयुते देशे स्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयेत्॥२५॥

समतल भूमि में अवस्थित शत्रु पर आक्रमण के लिये राजा रथ और घोड़ों की अधिक संख्या साथ ले जाय। जो सैनिक युद्धभूमि में राजा की सहायता अथवा अङ्गरक्षा के लिए नियुक्त हों, उन्हें राजा दान-सम्मान आदि से खूब सम्मानित करे। वर्षा ऋतु में यदि अधिक संख्या में गधे और ऊँट की सेना रखने वाला राजा शत्रु पक्ष से बाँध भी उठता है, तब भी उसे युद्ध करते रहना चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से विजय की सम्भावना रहती है। जिस देश में बरफ गिरता हो वहाँ पर राजा ग्रीष्म ऋतु में आक्रमण करे।।२३-२५।।

यवसेन्धनसंयुक्तः लालः पार्थिव हैमनः। शरद्वसन्तौ धर्मज्ञ कालौ साधारणौ स्मृतौ॥२६॥
विज्ञाय राजा द्विजदेशकालौ दैवं त्रिकालं च तथैव बुद्ध्वा।
यायात्परं कालविदां मतेन सञ्चिन्त्य सार्धं द्विजमन्त्रविद्भिः॥२७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकालयोज्यचिन्ता नामचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२०७५।।

—❧❦❧—

काष्ठ तथा घास आदि साधनों से युक्त होकर हेमन्त काल में राजा को आक्रमण करना चाहिये। धर्म के मर्म को जानने वाले! इसलिये शरत् और वसन्त ये दोनों समय आक्रमण के लिए साधरण रूप से उपयोगी होते हैं। राजा देश एवं काल अर्थात् भूत भविष्यत् तथा वर्तमान की परिस्थिति पर भली-भाँति विचार विमर्श करने के बाद ज्योतिषियों की सम्मति से तथा मन्त्र जानने वाले ब्राह्मणों के साथ शत्रु पर विजयार्थ प्रस्थान करे।।२६-२७।।

।।दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४०।।

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अपशाकुन, अंगों के फड़कने से शुभाशुभ की सूचना

मनुरुवाच

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च। सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ त्वं हि सर्वविदुच्यसे॥१॥

मनु ने कहा–सभी धर्मज्ञों में श्रेष्ठ! अब मुझे शुभ तथा अशुभसूचक शकुनों को बताईये। आप सबकुछ जानने वाले कहे जाते हैं।।१।।

मत्स्य उवाच

अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फरणं भवेत्। अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च।।२।।

मत्स्य ने कहा–मनुष्य के शरीर के दाहिने भाग का स्फुरण प्रशंसनीय तथा बाएँ भाग, पीठ और हृदय का स्फुरण अशुभसूचक माना गया है।।२।।

मनुरुवाच

अङ्गानां स्पन्दनं चैव शुभाशुभविचेष्टितम्। तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यां तद्विदो भुवि।।३।।

मनु ने कहा–हे भगवन्! सभी अंगों के स्फुरण, जो शुभाशुभ की सूचना देने वाले कहे गये हैं, मुझे विस्तार से बतलाये, जिससे मैं पृथ्वी तल पर उनका जानने वाला बन जाऊँ।।३।।

मत्स्य उवाच

पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्ध्नि ललाटे रविनन्दन। स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसङ्गमः।।४।।
भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः। उत्कण्ठोपगमो मध्ये दृष्टं राजन्विचक्षणैः।।५।।

मत्स्य ने कहा–हे रविनन्दन! मूर्धा के स्फुरण होने से पृथ्वी का लाभ होता है ललाट के स्फुरण से स्थान की वृद्धि होती है, भौंह और नासिका के स्फुरण से प्रियजनों का समागम होता है, आँखों के स्फुरण से सेवक की प्राप्ति होती है, आँखों के समीप स्फुरण होने से धन की प्राप्ति होती है। आँख के मध्य भाग में स्फुरण होने से उत्कण्ठा बढ़ती है, हे राजन्! विचक्षणों ने ऐसा देखा है।।४-५।।

दृग्बन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात्। योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियश्रुतिः।।६।।
नासिकायां प्रीतिसौख्यं प्रजाप्तिरधरोष्ठजे।
कण्ठे तु भोगलाभः स्याद्भोगवृद्धिरथांसयोः।।७।।

आँखों की पलकों के फड़कने से संग्राम में शीघ्र ही विजय होती है, अपांग के स्फुरण से स्त्री के साथ संम्भोग एवं कान के फड़कने से प्रियवार्ता सुनाई पड़ती है। नासिका के स्फुरण से प्रीति एवं सौख्य की प्राप्ति होती है, नीचे के होंठ के फड़कने से सन्तान-प्राप्ति होती है, कण्ठ के स्फुरण से भोग लाभ एवं दोनों कंधों के स्फुरण के भोग वृद्धि होती है।।६-७।।

सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः। पृष्ठे पराजयः सद्यो जयो वक्षःस्थले भवेत्।।८।।
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने। स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चैव धनागमः।।९।।

बाहुओं के स्फुरण से मित्र-स्नेह की प्राप्ति तथा हाथ के स्फुरण से धन की प्राप्ति होती है। पीठ के फड़कने से शीघ्र ही युद्ध में पराजय एवं छाती के फड़कने से शीघ्र ही विजय प्राप्ति होती है।

दोनों कुक्षियों के स्फुरण से प्रीति की वृद्धि कही गयी है तथा स्तन के स्फुरण से स्त्री से सन्तानोपत्ति होती है। नाभि के स्फुरण से स्थान से च्युत होना पड़ता है तथा आँत के फड़कने से धन की प्राप्ति होती है।।८-९।।

जानुसन्धौ परैः संधिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप। देशैकदेशनाशोऽथ जङ्घाभ्यां रविनन्दन॥१०॥
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप। सलाभं चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप॥११॥
लाञ्छनं पिटकं चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा।

जानु के सन्धि भाग के स्फुरण से बलवान् शत्रुओं से भी सन्धि की बातचीत चलने लगती है। हे रविनन्दन! जाँघों के स्फुरण होने से अपने देश के किसी भाग का विनाश होता है। इसी प्रकार हे नृप! दोनों पैरों के स्फुरण से उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है। हे राजन्! पैरों के तलुओं के स्फुरण से लाभयुक्त यात्रा होती है। स्फुरण के समान ही चिह्न एवं पिटकों (वे लक्षण तथा मांस-पिण्डादि जो जन्म के समय से ही बालकों के अंगों में उत्पन्न हो जाते हैं।) के भी फलाफल कहे गये हैं।।१०-११.५।।

विपर्ययेण विहितः सर्वः स्त्रीणां फलागमः॥१२॥
अप्रशस्ते तदा वामे त्वप्रशस्तं विशेषतः। दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः॥१३॥
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणं स्यात्॥१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकदेहस्पन्दनं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२०८९।।
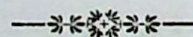
ये ऊपर जो फल कहे गये हैं, वे पुरुषों के लिये हैं, स्त्रियों के लिये इनके विपरीत फल घटित होते हैं, अर्थात् पुरुषों के जिन अंगों के स्फुरण होने से शुभ फल मिलता है, स्त्रियों के उन्हीं अंगों के स्फुरण से अशुभ फल मिलता है। बाएँ अंगों के स्फुरण, जोकि अशुभफल की सूचना देने वाले कहे गये हैं; यदि यात्राकाल में होते हैं तो उनसे विशेष अशुभ होने की सम्भावना होती है, इसी प्रकार शुभसूचक दाहिने अंग के स्फुरण यात्रा में विशेष शुभदायक होते हैं। ये शुभाशुभ के सूचक जो अंगों के स्फुरण कहे गये हैं, उनका शुभ तथा अशुभ फल निश्चित ही घटित होता है, अनिष्ट सूचक अङ्गों में स्फुरण होने पर ब्राह्मणों को सुवर्ण दान देकर सन्तुष्ट करना चाहिये।।१२-१४।।

।।दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४१।।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्रा एवं स्वप्न के शुभाशुभ दृश्य, अशुभ स्वप्नों की शान्ति कैसे, राज्यप्रद शुभ स्वप्न

मनुरुवाच

स्वप्नाख्यानं कथं देव गमने प्रत्युपस्थिते। दृश्यन्ते विविधाकाराः कथं तेषां फलं भवेत्॥१॥

मनु ने कहा–देव! यात्रा समय एवं स्वप्न में विविध प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ते हैं, उनका क्या फल घटित होता है? कृपा कर उन्हें कहिये॥१॥

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने। नाभिं विनाऽन्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः॥२॥
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा। मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता॥३॥
उच्चात्प्रपतनं चैव दोलारोहणमेव च। अर्जनं पङ्कलोहानां हयानामपि मारणम्॥४॥
रक्तपुष्पद्रुमाणां च मण्डलस्य तथैव च। वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चाऽऽरोहणक्रिया॥५॥
भक्षणं पक्षिमत्स्यानां तैलस्य कृसरस्य च। नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च॥६॥
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम्। स्त्रोतोवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा॥७॥
पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ। मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च॥८॥
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः। दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम्॥९॥
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च। आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणां च मैथुनम्॥१०॥
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया। दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाऽभिभवस्तथा॥११॥
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च। गृहाणां चैव पातश्च गृहसम्मार्जनं तथा॥१२॥
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि। परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः॥१३॥
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत्स्त्रीक्रीडनं तथा। स्नेहपानावगाहो च रक्तमाल्यानुलेपनम्॥१४॥
एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत्।
एषां सङ्कथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनं तथा॥१५॥

मत्स्य भगवान् ने कहा- हे मनु! मैं तुम्हें स्वप्नों के फलों को बतला रहा हूँ। नाभि के बिना अन्य अंगों में तृण वृक्ष आदि का उगना, मूर्धा पर कांसे के चूर्णों का गिरना, मुण्डन, नंगा होना, मलिन वस्त्रों का पहनना, तेल लगाना, कीचड़ में गिरना, ऊँचे स्थान से गिरना, झूले पर चढ़ना, कीचड़ और लोहे को इकट्ठा करना, घोड़ों को मारना, लाल पुष्प वाले वृक्षों की श्रेणी, शूकर, रीछ, गधे और ऊँटों पर चढ़ना, पक्षी और मछलियों का भोजन करना, तैलयुक्त भोजन करना, खिचड़ी

खाना, नाचना, हँसना, विवाह होने देखना, गायन, वीणा को छोड़कर अन्य वाद्यों से स्वागत करना, जल के स्रोते में स्नान करना, गोबर से युक्त जल में स्नान करना, इसी प्रकार कीचड़ युक्त जल में तथा पृथ्वी के थोड़े जल में नहाना, माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर चढ़ना, इन्द्र की (धनुष) ध्वजा का गिरना, चन्द्रमा और सूर्य का पतन, दिव्य आन्तरिक्ष तथा भौम उत्पातों का दर्शन, देवता, द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोधित होना, कुमारी स्त्री का आलिंगन, पुरुषों का सम्भोग, अपने ही शरीर की हानि, विरेचन, वमन, दक्षिण दिशा की यात्रा, किसी व्याधि से पीड़ित होना, फलों की हानि, पुष्पों की हानि, घरों का गिरना, घरों की सफाई होना, लिपाई-पुताई करते हुए घरों को देखना, शत्रु से पराजित होना या उसकी ओर से किसी प्रकार की उद्विग्नता होना, काषाय वस्त्रधारी होना, उसी प्रकार की स्त्री के साथ क्रीड़ा करना, तेल का पान करना या उसी में स्नान करना, लाल पुष्प एवं लालचन्दन को धारण करना, ये उपर्युक्त तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे दुःस्वप्न कहे गये हैं। इन्हें देखने के बाद साथियों से कह देना तथा पुनः शयन करना शुभदायक कहा गया है।।२-१५।।

कल्कस्नानं तिलैर्होमो ब्राह्मणानां च पूजनम्।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम्॥१६॥
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम्। स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः॥१७॥
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके। चतुर्थे मासमात्रेण पश्यतो नात्र संशयः॥१८॥
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत्।

कल्क द्वारा स्नान, तिल से हवन, ब्राह्मणों का पूजन, भगवान् वासुदेव की स्तुति अथवा उनकी पूजा, गजेन्द्रमोक्ष की कथा का श्रवण-ये सब उपाय दुःस्वप्न के नाशक बताये गये हैं। वे स्वप्न जो रात्रि के पहले पहर में दिखाई पड़ते हैं, एक वर्ष में फल देते हैं। दूसरे पहर में छः मास में फल देते हैं। तीसरे में तीन मास में तथा चतुर्थ पहर में देखने पर एक ही मास में फल देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सूर्योदय के समय देखा गया स्वप्न दस दिन में फल देता है।।१६-१८.५।।

एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥१९॥
पश्चाद्दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत्।
तस्माच्छोभनके स्वप्ने पश्चात्स्वप्नो न शस्यते॥२०॥
शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम्।

यदि एक ही रात में शुभ तथा अशुभ दो प्रकार के स्वप्न दिखाई पड़ते हैं तो उनमें से पीछे का स्वप्न फलित होता है। इसलिये शुभ स्वप्न देखने पर मनुष्य को फिर से सोना नहीं चाहिये। पर्वत, राजमहल, हाथी, घोड़ा, वृषभ-इन पर आरोहण करना शुभदायक है।।१९-२०.५।।

द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज॥२१॥

द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता। तथैव बहुशीर्षत्वं फलितोद्भव एव च॥२२॥
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता। चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च॥२३॥
शक्रध्वजालिङ्गनं च तदुच्छ्रायक्रिया तथा। भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां च वधक्रिया॥२४॥
जयो विवादे द्यूते च सङ्ग्रामे च तथा द्विज।
भक्षणं चाऽऽर्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च॥२५॥
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च। सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथ वा॥२६॥
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा। मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम्॥२७॥
सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च। प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः॥२८॥

हे द्विज! उसी प्रकार गमनकाल में श्वेत पुष्पवाले वृक्षों पर आरोहण करना शुभप्रद है। उसी प्रकार नाभि में वृक्ष एवं तृण की उत्पत्ति होना तथा अनेक बाहुओं का होना, अनेक सिरों का होना, फलवाले उद्भिज्जों का दर्शन, सुन्दर सफेद माला धारण करना, सफेद वस्त्र पहिनना, चन्द्रमा, सूर्य एवं ताराओं को हाथों से पकड़ना या उन्हें स्वच्छ करना, इन्द्रधनुष का आलिंगन करना, या उसे ऊपर उठाना, पृथ्वी एवं समुद्रों को निगलना, शुत्र का संहार करना, हे द्विज! संग्राम, विवाद एवं जुए में जीतना, कच्चे मांस का खाना, मछलियों का खाना, दूध की बनी हुई खीर को खाना, रक्त का दर्शन अथवा रक्त से स्नान करना, मदिरा, रक्त तथा दुग्ध का पीना, अपनी आँतों से पृथ्वी को बाँधना, निर्मल आकाश को देखना, भैंस तथा गायों को मुहँ द्वारा दुहना, उसी प्रकार सिंहनी, हथिनी तथा घोड़ियों को भी मुँह से दुहना, देवता गुरु तथा ब्राह्मणों की प्रसन्नता-ये सभी स्वप्न शुभदायक होते हैं।।२१-२८।।

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गस्रुतेन वा।
चन्द्राद्भ्रष्टेन वा राजञ्ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः॥२९॥
राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसस्तथा। मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु॥३०॥
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम्॥३१॥
हस्तिनीवडवानां च गवां च प्रसवो गृहे। आरोहणमथाश्वानां रोदनं च तथा शुभम्॥३२॥
वरस्त्रीणां तथा लाभस्तथाऽऽलिङ्गनमेव च। निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम्॥३३॥

जल द्वारा अभिषेचन होना, अथवा गाय की सींग से चूने वाले जल द्वारा अभिषेक होते अपने को देखना, अथवा चन्द्रमा के समीप से अपने को गिरते हुए देखना-हे राजन्! यह सब राज्य देने वाले स्वप्न कहे गये हैं। अपना राज्याभिषेक होते देखना, सिरों को काटते देखना, मृत्यु, अग्नि दाह, घर में आग लगना, राज्यचिह्नों की प्राप्ति, वीणा का स्वर सुनाई पड़ना, उसी प्रकार जल में तैरना, दुर्गम स्थानों को पार करना, घर में हथिनी, घोड़ी तथा गायों का बिआना, घोंड़ों पर सवार होना तथा रोना, ये सब स्वप्न भी शुभदायक होते हैं।।२९-३३।।

जीवतां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम्। दर्शनं देवतानां च विमलानां तथाऽम्भसाम्॥३४॥

शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद्ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ व्याधेर्विमोक्षं च तथाऽऽतुरोऽपि॥३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते स्वप्नाध्यायो नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२१२४॥

—※※※—

सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति, उसका आलिंगन, अपने को जंजीरों में बाँधते हुए देखना तथा मल का लेपन होते हुए देखना, जीवित राजाओं तथा मित्रों का दर्शन, देवताओं तथा निर्मल जल का दर्शन-ये सभी प्रकार के स्वप्न मनुष्यों को शुभ देने वाले कहे गये हैं, इनके देखने से बिना परिश्रम के ही निश्चित अर्थ की प्राप्ति होती है। हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ! इन स्वप्नों को देखने वाला आतुर व्यक्ति भी सभी प्रकार की व्याधियों से मुक्त होता है॥३३-३५॥

॥दौ सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विजय यात्रा में शुभशकुन

मनुरुवाच

गमनं प्रति राज्ञां तु सम्मुखादर्शन च किम्। प्रशस्तांश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्च कीर्तय॥१॥

मनु ने कहा- राजा की विजय-यात्रा के अवसर पर किन-किन वस्तुओं का दर्शन शुभ माना गया है, उन सभी को मुझे बतलाइये॥१॥

मत्स्य उवाच

औषधानि त्वयुक्तानि धान्यं कृष्णं च यद्भवेत्।
कार्पासश्च तृणं राजन्शुष्कं गोमयमेव च॥२॥
इन्धनं च तथाऽङ्गारं गुडं तैलं तथाऽऽशुभम्।
अभ्यक्तं मलिनं मुण्डं तथा नग्नं च मानवम्॥३॥

मुक्तकेशं रुजार्तं च काषायाम्बरधारिणम्। उन्मत्तकं तथा सत्त्वं दीनं चाथ नपुंसकम्॥४॥

अयःपङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च। तथैवोद्धतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च॥५॥

चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः। वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च॥६॥

तुषभस्मकपालास्थि भिन्नभाण्डानि यानि च।
रिक्तानि चैव भाण्डानि मृतं शार्ङ्गिकमेव च॥७॥
एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने।

मत्स्य ने कहा–हे राजन्! अनुपयुक्त औषधियाँ, काले अन्न, कपास, तृण, सूखा गोबर, ईंधन, अंगार, गुड़, तेल–ये सब अशुभ वस्तुएँ हैं। तेल लगाये हुए मनुष्य, मुण्डन कराये हुए मनुष्य, नंगे मनुष्य, बाल छोड़े हुए मनुष्य, रोगपीड़ित, काषाय वस्त्रधारी, पागल, दीन तथा नपुंसक व्यक्ति, लोहा, कीचड़, चमड़ा, केश का बन्धन, खली आदि वे वस्तु ँ जिनसे सारभाग खींच लिया गया है, चाण्डाल, कुत्ते खाने वाली जातियों के लोग, बन्धन में डालने वाले राजा के कर्मचारी, फाँसी देने वाले जल्लाद, पाप करने वाले,गर्भिणी स्त्री, भूसी, राख, खपड़ोई, हड्डियाँ, टूटे हुए पात्र, छूँछे पात्र, मरे हुए सींगों वाले जीव–ये सब राजा के यात्राकाल में यदि दिखाई पड़े तो अमंगलकारी कहे गये हैं॥२–७.५॥

अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः॥८॥
पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः। गच्छेति पश्चाद्धर्मज्ञ पुरस्तात्तु विगर्हितः॥९॥
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य तु।
अन्ये शब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि॥१०॥

बाजनों के वे शब्द, जो एकदम भयानक तथा बिना ताल आदि के रूखे ढंग से बज रहे हों, भी अशुभ सूचक कहे गये हैं। सामने से यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि 'आओ' तो शुभ है, पीछे से यदि कोई बुलाता है तो वह अशुभ है। इसी तरह हे धर्मज्ञ! पीछे से यदि कोई कहे कि 'जाओ,तो वह शुभसूचक है; किन्तु आगे से यदि कोई ऐसा कहे तो वह अशुभ है। 'कहाँ जा रहे हो, रुको, बैठो मत जाओ, तुम्हारे वहाँ जाने से क्या लाभ? इसी प्रकार के शब्द जो अनिष्ट के सूचक हों, यदि यात्रा काल में सुनाई पड़ते हैं तो सभी विपत्ति करने वाले होते हैं॥८–१०॥

ध्वजादिषु तथा स्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम्।
स्खलनं वाहनानां च वस्त्रसङ्गस्तथैव च॥११॥
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता।
छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनं च तथाऽशुभम्॥१२॥

ध्वजा पताका आदि पर मांसभक्षी पक्षियों का बैठना भी निन्दित माना गया है, वाहनों पर से गिरना अथवा वस्त्र का अँटक जाना भी अमंगल सूचक माना गया है। द्वार आदि से निकलते समय यदि सिर में चोट लगती है अथवा छाता, ध्वजा एवं वस्त्रादि नीचे गिर पड़ते हैं तो वे भी अशुभकारी हैं॥११–१२॥

दृष्टे निमित्ते प्रथमममङ्गल्यविनाशनम्। केशवं पूजयेद्विद्वान्स्तवेन मधुसूदनम्॥१३॥

द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद् गृहम्। अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथाऽनघ॥१४॥

प्रथम बार अमंगलसूचक शकुन के सामने घटित होने पर विद्वान् राजा को चाहिये कि अमंगल के विनाशार्थ केशव की पूजा करे तथा मधु दैत्य के शत्रु उन भगवान् विष्णु की प्रार्थना करे, जो सभी अमंगलों के विनाशक है। किन्तु यदि दूसरी बार भी अशुभ-सूचक शकुन सम्मुख दिखाई पड़ता है तो अपने घर में प्रवेश करे और यात्रा स्थगित रखे। अब शुभसूचक शकुनों का वर्णन कर रहा हूँ, जो मंगल कार्यों को करने वाले कहे गये हैं।।१३-१४।।

श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च।
जलजाः पक्षिणश्चैव मांसमत्स्याश्च पार्थिव॥१५॥
गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एकः पशुस्त्वजः।
त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः॥१६॥
गणिका च महाभाग दूर्वा चाऽऽर्द्रं च गोमयम्।
रुक्मं रूप्यं तथा ताम्रं सर्वरत्नानि साप्यथ॥१७॥

औषधानि च धर्मज्ञ यवाः सिद्धार्थकास्तथा। नृवाह्यमानं यानं च भद्रपीठं तथैव च॥१८॥

खड्गं छत्रं पताका च मृदश्चाऽऽयुधमेव च।
राजलिङ्गानि सर्वाणि शवं रुदितवर्जितम्॥१९॥
घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च।
स्वस्तिकं वर्धमानं च नन्द्यावर्त सकौस्तुभम्॥२०॥

वादित्राणां सुखः शब्दो गम्भीरः सुमनोहरः। गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वराः॥२१॥

हे राजन्! सफेद फूल, भरे हुए कलश, जलजीव, पक्षी, मांस-मछलियाँ, गौएँ, घोड़े, हाथी, बंधे हुए पशुओं में केवल बकरा, देवता, मित्र ब्राह्मण, जलती हुई अग्नि, वेश्या, दूर्वा, गीला गोबर, सुवर्ण, चाँदी, तांबा, सभी प्रकार के रत्न, हे धर्मज्ञ! अच्छी औषधियाँ, यव, पीली सरसों, मनुष्यों को ढोते जाता हुआ वाहन, सुन्दर, सिंहासन, तलवार, छत्र, पताका, मिट्टी, हथियार, सभी प्रकार के राजचिह्न, रुदनवर्जित शव, घी, दही, दूध, विविध प्रकार के फल, स्वस्तिक के चिह्न से युक्त झज्झर, नदी के भँवरे, कौस्तुभ मणि विविध प्रकार के बाजों के सुखदायी शब्द जो गम्भीर और मनोहारी हों, गान्धार, षड्ज, ऋषभ के स्वर जो प्रशंसनीय हैं शुभदायक माने गये हैं।।१५-२१।।

वायुः सशर्करो रूक्षः सर्वत्र समुपस्थितः। प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद्द्विज॥२२॥

हे द्विज! बालू के कणों से युक्त यदि रूखी वायु सामने से बह रही हो अथवा अति प्रचण्ड वेग से बह रही हो तो वह भयकारी है।।२२।।

अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः।
रूक्षा रूक्षस्वरा भद्राः क्रव्यादाः परिगच्छताम्॥२३॥

मेघाः शस्ता घनाः स्निग्धा गजबृंहितनिःस्वनाः।
अनुलोमास्तडिच्छस्ताः शक्रचापं तथैव च॥२४॥

इसी प्रकार अनुकूल दिशा में बहने वाली मृदु, शीतल, मन्द एवं सुगन्धित वायु सुख देने वाली होती है। एवं मांस खाने वाले, रूखे स्वर में बोलने वाले जीव भी जो देखने में भद्र मालूल पड़े सुखदायी होते हैं। अति सघन जलयुक्त मेघों के दर्शन भी सुखदायी माने गये हैं, जो हाथियों के समान गम्भीर शब्द कर रहे हों। पीछे से चमकने वाली बिजली का प्रकाश एवं इन्द्रधनुष भी यात्राकाल में प्रशंसनीय है।।२३-२४।।

अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे। अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वक्पतिस्तु विशेषतः॥२५॥
आस्तिक्यं श्रद्दधानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम्।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यच्च स्यान्मनसः प्रियम्॥२६॥

यात्रा में सूर्य एवं चन्द्रमा के मण्डल यदि दिखाई पड़े तो अशुभ की सूचना समझनी चाहिये। अनुकूल दिशा में उदित हुए ग्रहों को शुभसूचक कहा गया है, विशेषकर बृहस्पति का उदय। हे धर्मज्ञ! इसी प्रकार यात्राकाल में अस्तिकता, श्रद्धा के भाव, पूज्यों के प्रति पूज्यभाव के प्रदर्शन एवं वे मनोभाव, जिनमें अपनी विशेष रुचि हो, प्रशंसनीय माने गये हैं।।२५-२६।।

मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम्। एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः॥२७॥
यानोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणं च राजञ्ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि॥२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते मङ्गलाध्यायो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२१५२।।

सारांश यह कि यात्राकाल में मन का सन्तोष ही विजय का लक्षण है। तुलना में एक ओर सभी प्रकार के शुभ शकुन हैं और एक ओर अपने मन का सन्तोष। हे राजन्! वाहनों की उत्सुकता और मन आनन्द का अतिरेक- ये भी शुभ का लाभ एवं विजय की वार्ता प्राप्त करने वाले हैं। इन उपर्युक्त मांगलिक वस्तुओं का दर्शन अथवा इनके नामों का श्रवण, इन सब को नित्य विजय की सूचना देनेवाला जानना चाहिये।।२७-२८।।

।।दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४३।।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वामनावतार की कथा

ऋषय ऊचुः

राजधर्मस्त्वया सूत कथितो विस्तरेण तु। तथैवाद्‌भुतमङ्गल्यं स्वप्नदर्शनमेव च॥१॥
विष्णोरिदानीं माहात्म्यं पुनर्वक्तुमिहार्हसि। कथं स वामनो भूत्वा बबन्ध बलिदानवम्॥२॥
क्रमतः कीदृशं रूपमासील्लोकत्रये हरेः॥

ऋषियों ने कहा–हे सूत! तुम मुझे विस्तारपूर्वक राजधर्म का वर्णन सुना चुके, अद्‌भुत मंगलदायी शकुनों को तथा स्वप्नों के विषय में भी कुछ बातें बता चुके। अब पुनः भगवान् विष्णु के माहात्म्य को सुनाईये। किस भगवान् ने वामन का स्वरूप धारण कर दानव राज बलि को बाँधा था और किस प्रकार क्रमशः धीरे–धीरे भगवान् का वह शरीर बढ़कर तीनों लोकों में व्याप्त हो गया था?॥१–२॥

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः कुरुक्षेत्रे तपोधनः। शौनकस्तीर्थयात्रायां वामनायतने पुरा॥३॥
यदा समयभेदित्वं द्रौपद्याः पार्थिवं प्रति। अर्जुनेन कृतं तत्र तीर्थयात्रां तदा ययौ॥४॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे वामनायतने स्थितः। दृष्ट्वा स वामनं तत्र अर्जुनो वाक्यमब्रवीत्॥५॥

सूत ने कहा –हे मुनिगण! इसी वृत्तान्त को प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र के वामनायतन में अर्जुन ने उस समय तपस्वी शौनक जी से पूछा था जिस समय द्रौपदी के साथ सहवास नियम का उल्लंघन कर उन्होंने युधिष्ठिर के प्रति पापाचरण किया था और पाप की शान्ति के लिए तीर्थयात्रा की थी, उस समय धर्मक्षेत्र के वामनायतन में अवस्थित अर्जुन ने वामन भगवान् को देखकर इस प्रकार पूछा था॥३–५॥

अर्जुन उवाच

किं निमित्तमयं देवो वामनाकृतिरिज्यते। वराहरूपी भगवान्कस्मात्पूज्योऽभवत्पुरा॥
कस्माच्च वामनस्येदमिष्टं क्षेत्रमजायत॥६॥

अर्जुन ने कहा–हे ऋषि! किस प्रयोजन से इन भगवान् की इस वामनाकृति मूर्ति में पूजा की जाती है और प्राचीन काल में वाराह रूपधारी भगवान् की पूजा किस कारण हुई थी और किसलिए यह क्षेत्र वामन भगवान् का प्रिय क्षेत्र हुआ है?॥६॥

शौनक उवाच

वामनस्य च वक्ष्यामि वराहस्य च धीमतः। त्यक्त्वाऽतिविस्तरं भूयो माहात्म्यं कुरुनन्दन॥७॥

पुरा निर्वासिते शक्रे सुरेषु विजितेषु च। चिन्तयामास देवानां जननी पुनरुद्भवम्॥८॥
अदितिर्देवमाता च परमं दुश्चरं तपः। तीव्रं चचार वर्षाणां सहस्त्रं पृथिवीपते॥९॥
आराधनाय कृष्णस्य वाग्यता वायुभोजना। दैत्यैर्निराकृतान्दृष्ट्वा तनयान्कुरुनन्दन॥१०॥
वृथापुत्राऽहमस्मीति निर्वेदात्प्रणता हरिम्। तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परमार्थावबोधिनी॥
देवदेवं हृषीकेशं नत्वा सर्वगतं हरिम्॥११॥

शौनक ने कहा–हे कुरुनन्दन! भगवान् वामन एवं वाराह के माहात्म्य को संक्षेप में फिर तुमसे बतला रहा हूँ, सुनो। प्राचीन काल में दानवों द्वारा देवताओं के पराजित हो जाने पर तथा इन्द्र के अपने पद से निर्वासित कर दिये जाने पर देवताओं की माता अदिति ने अपने पुत्रों की पुनः उन्नति के विषय में चिन्ता की और यही सोच कर उसने अतिघोर तपस्या की। हे राजन्! एक सहस्त्र वर्षों तक उसने इसी के लिए घोर तपस्या की। इन्द्रियों को स्ववश कर वायु पान करती हुई अदिति ने दैत्यों द्वारा निष्कासित तथा अपमानित अपने पुत्रों को देखकर यह सोचा कि मुझ पुत्रवती का जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार की ग्लानि से युक्त होकर उसने भगवान् की वन्दना की और परमार्थ की चिन्ता करती हुई प्रिय वाणियों से उनकी वन्दना की और देवाधिदेव सर्वान्तरयामी भगवान् हृषीकेश को प्रणाम कर इस प्रकार कहा॥७-११॥

अदितिरुवाच

नमः सर्वार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने। नमः परमकल्याणकल्याणायाऽऽदिवेधसे॥१२॥
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये। श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे॥१३॥
नमः पङ्कजसम्भूतिसम्भवायाऽऽत्मयोनये। नमः शङ्खासिहस्ताय नमः कनकरेतसे॥१४॥
तथाऽऽत्मज्ञानविज्ञानयोगिचिन्त्यात्मयोगिने। निर्गुणायाविशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे॥१५॥

अदिति ने कहा–सभी प्रकार की आपत्तियों के विनाश करने वाले, कमलधारी परमकल्याण को भी कल्याणदायक हरि को हमारा प्रणाम है। आदिकर्त्ता, कमलनेत्र, पद्मनाभ, ब्रह्मा के उत्पत्ति स्थान, स्वयम्भू शंख, खड्ग को धारण करने वाले हरि को हमारा प्रणाम है। श्री के स्वामी, परम उपकारक, चक्र धारण करने वाले भगवान् को हम प्रणाम करती हूँ। हे भगवन्! तुम सुवणरिता हो, आत्मज्ञानी हो, परम विज्ञानमय हो, योग द्वारा चिन्तन करने योग्य हो, आत्मयोगी हो, निर्गुण हो, अविशेष हो, हरि हो, ब्रह्मरूपी हो, तुम्हें हम प्रणाम करती हूँ॥१२-१५॥

जगत्प्रतिष्ठितं यत्र जगता यो न दृश्यते। नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शङ्खिने॥१६॥
यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः।
अपश्यद्भिर्जगत्यत्र स देवो हृदि संस्थितः॥१७॥
तस्मिन्नेव विनश्येत यस्यैतदखिलं जगत्। तस्मै समस्तजगतामाधाराय नमो नमः॥१८॥

जिसमें समस्त जगत् स्थित है, जगत् जिसे नहीं देख सकता, जो अतिस्थूल तथा परमसूक्ष्म

है, जो शंख धारण करने वाला है-ऐसे तुम्हें हम प्रणाम करती हूँ। जिस परब्रह्म को सभी मनुष्य समस्त चराचर संसार को देखते हुए भी नहीं देख पाते, हृदय में स्थित रहकर भी जो जगत् को दृष्टिपथ नहीं आता, जिसमें इस समस्त चराचर जगत् का अवसान होता है, जिसका यह समस्त जगत् है, उस समस्त जगत् के आधार रूप भगवान् तुमको हमारा प्रणाम है।।१६-१८।।

आद्यः प्रजापतिपतिर्यः प्रभूणां पतिः परः। पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे॥१९॥
यः प्रवृत्तौ निवृत्तौ च इज्यते कर्मभिः स्वकैः। स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते॥२०॥
यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति। नमस्तस्मै विशुद्धाय पराय हरिवेधसे॥२१॥

जो सभी प्रजापतियों में अग्रगण्य हैं, सभी प्रभुओं का भी प्रभु है, जगत् में सब से परे है, सभी देवताओं का स्वामी है, उस आदिकर्ता कृष्ण को हम प्रणाम करती हूँ। जो प्रवृत्ति एवं निवृत्ति विषयों में मनुष्यों से अपने-अपने कर्मों द्वारा उपासित होता है, उस स्वर्ग अपवर्ग के प्रदाता गदाधर भगवान् को हमारा प्रणाम है। जो मनुष्यों द्वारा मन से भी चिन्तित होने पर शीघ्र ही पापों को दूर करने वाला है, उस आदिकर्त्ता विशुद्ध परब्रह्म विष्णु को हमारा प्रणाम स्वीकार हो।।१९-२१।।

यं बुद्ध्वा सर्वभूतानि देवदेवेशमव्ययम्। न पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति नमामि तम्॥२२॥
यो यज्ञे यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंज्ञितः। तं यज्ञपुरुषे विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥२३॥
गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां पतिः। यस्तस्मै वेदवेद्याय विष्णवे जिष्णवे नमः॥२४॥

जिस देवाधिदेव अविनाशी परब्रह्म को जानकार प्राणी पुनः जन्म, मरण के संकट को नहीं प्राप्त करता उसे हम प्रणाम करती हूँ। जो परम यज्ञकर्ता ऋषियों द्वारा यज्ञ नामधारी होकर पूजित होता है, उस यज्ञपुरुष परमप्रभु विष्णु को हमारा प्रणाम है। सभी वेदों के जानने वाले जिसे वेदों में विद्वानों का शिरोमणि मानकर यशोगान करते हैं, उस वेदों द्वारा जानने योग्य विजयशील विष्णु को हमारा प्रणाम है।।२२-२४।।

यतो विश्वं समुत्पन्नं यस्मिंश्च लयमेष्यति। विश्वागमप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने॥२५॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं येन विश्वमिदं ततम्। मायाजालं समुत्तर्तुं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥२६॥
यस्तु तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम्॥२७॥

जिससे इस चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है तथा जिसमें इस जगत् का अवसान होता है, उस विश्वाधार वेदों की मर्यादा के रक्षक महात्मा विष्णु को हमारा प्रणाम है। ब्रह्मा से लेकर छोटे तृण तक को बनाकर जिसने इस चराचर निखिल जगत् का विस्तार किया है, उस उपेन्द्र (इन्द्र के छोटे भाई) को इस मायाजाल से उबारने के लिये मैं प्रणाम करती हूँ। जो प्रभु जल स्वरूप होकर सभी जगत् का भरण-पोषण करता है,उस विश्व स्वरूप विश्व के स्वामी आदि प्रजापति विष्णु को हमारा प्रणाम है।।२५-२७।।

यमाराध्य विशुद्धेन मनसा कर्मणा गिरा। तरन्त्यविद्यामखिलां तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥२८॥
विषादतोषरोषाद्यं योऽजस्त्रं सुखदुःखजैः। नृत्यत्यखिलभूतस्थस्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥२९॥

जिस भगवान् की मनुष्य विशुद्ध मन, वचन, कर्म से आराधना कर सभी अविद्याओं के समुद्र को पार करता है, उस उपेन्द्र को हमारा प्रणाम है। जो सभी चराचर जीवों में विद्यमान होकर विषाद, सन्तोष, रोष, आदि भावों से सभी को नचाता है, उस भूपेन्द्र को हमारा प्रणाम है। मोह रात्रि में उत्पन्न असुर रूप मूर्तिमान् अंधकार को जो सूर्य रूप होकर विनाश करता है, उस उपेन्द्र को हमारा प्रणाम है।।२८-२९।।

(मूर्तं तमोऽसुरमयं तद्वधाद्विनिहन्ति यः। रात्रिजं सूर्यरूपीव तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥३०॥
कपिलादिस्वरूपस्थो यश्चाज्ञानमयं तमः। हन्ति ज्ञानप्रदानेन तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥३१॥
यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्। पश्यतः कर्म सततमुपेन्द्रं तं नमाम्यहम्॥३२॥
यस्मिन्सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम्। नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाप्ययम्॥३३॥
यच्च तत्सत्यमुक्तं मे भूयांश्चातो जनार्दनः।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः॥३४॥

कपिल आदि महर्षियों में अवस्थित होकर जो भगवान् अपने ज्ञान-दान द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करता है, उस उपेन्द्र को हमारा प्रणाम है। जिस परब्रह्म के नेत्र स्वरूप चन्द्रमा तथा सूर्य संसार के शुभाशुभ कर्मों को बराबर देखते रहते हैं, उस उपेन्द्र को हमारा प्रणाम है। जिस सर्वेश्वर के लिए मैंने इन उपर्युक्त सभी विशेषणों को सत्य ही वर्णन किया है, मिथ्या नहीं, उस अजन्मा समस्त जगत् के कर्त्ता को हमारा प्रणाम है। हे देव जर्नादन! यदि मैंने ये बातें तुम्हारे लिये सत्य रूप में कही हैं तो उस सत्य से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों।।३०-३४।।

शौनक उवाच

एवं स्तुतः स भगवान्वासुदेव उवाच ताम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः सन्दर्शने स्थितः॥३५॥

शौनक ने कहा-अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् वासुदेव, जो सभी चराचर जीवों के दर्शन-पथ में नहीं आते, उस समय दिखाई पड़े और उससे इस प्रकार बोले।।३५।।

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः॥३६॥
शृणुष्व सुमहाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः। तमाशु व्रियतां कामं श्रेयस्ते सम्भविष्यति॥
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति॥३७॥

श्री भगवान् ने कहा–अदिति! तुम जिन मनोरथों की मुझसे अभिलाषा करती हो, हे धर्मज्ञे! उन सभी को तुम मेरी कृपा से प्राप्त करोगी, इसमें सन्देह नहीं। हे महाभाग्यशालिनी! तुम्हारे हृदय में मुझसे जिस वरदान को माँगने की इच्छा है, उसे तुम शीघ्र ही माँगकर अपनी इष्टसिद्धि करो। तुम्हारा निश्चय ही कल्याण होगा। मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता।।३६-३७।।

अदितिरुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं मद्भक्त्या भक्तवत्सल।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः॥३८॥
हृतं राज्यं हृताश्चास्य यज्ञभागा महासुरैः। त्वयि प्रसन्ने वरदे तान्प्राप्नोतु सुतो मम॥३९॥
हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव। सापत्नाद्दायनिर्भ्रंशो बाधां नः कुरुते हृदि॥४०॥

अदिति ने कहा–भक्तत्सल देव! यदि तुम मेरी भक्ति से प्रसन्न हो तो मेरा पुत्र इन्द्र फिर से तीनों लोकों का स्वामी बने। महान् राक्षसों द्वारा छीना गया उसका राज्य तथा उसके यज्ञभाग तुम्हारे जैसे वरदानी के प्रसन्न हो जाने पर मेरा पुत्र पुनः प्राप्त करे। हे केशव! छीना हुआ मेरे पुत्र का राज्य मुझे उतना कष्ट नहीं दे रहा है, जितना सौतेले पुत्रों द्वारा मेरे पुत्रों का छीना गया अधिकार मेरे हृदय में चुभ रहा है।।३८-४०।।

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितः।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥४१॥
तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः। तानहं निहनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि॥४२॥

श्री भगवान् ने कहा–हे देवि! मैं तुम्हारे मन की बातें पूरी करूँगा और कश्यप तुम्हारे गर्भ में अपने अंश से ही उत्पन्न होऊँगा और तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर देवताओं के जितने भी शत्रुगण हैं, उन सभी को विनष्ट करूँगा, हे नन्दिनि! तुम सन्तोष धारण करो।।४१-४२।।

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन। नाहं त्वामुदरे देव वोढुं शक्ष्यामि केशव॥४३॥
यस्मिन्प्रतिष्ठितं विश्वं यो विश्वं स्वयमीश्वरः।
तमहं नोदरेण त्वां वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम्॥४४॥

अदिति ने कहा–देवाधिदेव! समस्त जगत् के कर्त्ता! केशव! मेरे ऊपर कृपा करो। मैं तुम्हें गर्भ में धारण करने में अपने को समर्थ नहीं पा रही हूँ, जिस तुम्हारे शरीर में यह समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है, जो तुम स्वयं विश्वस्वरूप हो, उस अतिदुर्धर तुमको मैं अपने उदर में धारण करने में सर्वथा असमर्थ हूँ।।४३-४४।।

श्रीभगवानुवाच

सत्यमात्थ महाभागे मयि सर्वमिदं जगत्।
प्रतिष्ठितं न मां शक्ता वोढुं सेन्द्रा दिवौकसः॥४५॥
किंत्वहं सकलाँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान्।
जङ्गमान्स्थावरान्सर्वांस्त्वां च देवि सकश्यपान्॥
धारयिष्यामि भद्रं ते तदलं सम्भ्रमेण ते॥४६॥
न ते ग्लानिर्न ते खेदो गर्भस्थे भविता मयि।
दाक्षायणि प्रसादं ते करोम्यन्यैः सुदुर्लभम्॥४७॥
गर्भस्थे मयि पुत्राणां तव योऽरिर्भविष्यति।
तेजसस्तस्य हानिं च करिष्ये मा व्यथां कृथाः॥४८॥

श्री भगवान् ने कहा–महाभाग्यशालिनी! तुम सच कह रही हो, सच बात है कि मुझमें समस्त चराचर जगत् की स्थिति है, मेरा भार वहन करने में इन्द्र समेत सभी देवगण भी समर्थ नहीं हो सकते। किन्तु मैं तो सभी लोकों को, देवता, राक्षस एवं मनुष्यों को–सभी चर-अचर जीव एवं कश्यप समेत तुमको–सबको वहन कर सकता हूँ, अतः तुम्हें विकल नहीं होना चाहिये। गर्भ में मेरे अवस्थित होने पर तुम्हें किसी प्रकार की ग्लानि या खेद नहीं होगा। हे दाक्षायणि! तुम्हारे लिये मेरी वह प्रसन्नता सुलभ है, जो दूसरों के लिए अति दुर्लभ है। मेरे गर्भकाल में तुम्हारे पुत्रों से जो शत्रुता करेगा, उसके भी तेजोबल को मैं विनष्ट कर दूँगा, तुम किसी प्रकार का दुःख मत करो॥४५-४८॥

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा ततः सद्यो यातोऽन्तर्धानमीश्वरः। साऽपि कालेन तं गर्भमवाप कुरुसत्तम॥४९॥
गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः।
चकम्पिरे महाशैलाः क्षोभं जग्मुस्तथाऽब्धयः॥५०॥
यतो यतोऽदितिर्याति ददाति ललितं पदम्। ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम वसुधाधिप॥५१॥
दैत्यानामथ सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने। बभूव तेजसां हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना॥५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावेऽदितिवरप्रदानं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२२०४॥

शौनक ने कहा–भगवान् ऐसा कहने के बाद तुरन्त वहीं पर अन्तर्हित हो गये। हे कुरुसत्तम! देवताओं की माता अदिति भी थोड़े दिनों बाद गर्भवती हुई। भगवान् कृष्ण (विष्णु) के गर्भस्थित होने पर सारी पृथ्वी चलायमान हो गई, बड़े-बड़े पर्वत काँपने लगे, सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। हे वसुधाधिप! जिधर-जिधर से होकर अदिति जाती थीं तथा अपने मनोहर पैरों को पृथ्वी पर रखती

थीं, उधर-उधर भार के कारण पृथ्वी विनम्र हो जाती थी। मधुसूदन भगवान् विष्णु के गर्भस्थ होने पर सभी दैत्यों के तेज बिल्कुल मन्द हो गये, जैसा कि परमेष्ठी भगवान् ने स्वयं अदिति से कहा था।।४९-५२।।

।।दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४४।।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वामन जन्म वर्णन

शौनक उवाच

निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः। प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम्।।१।।

शौनक ने कहा—दैत्यों के निस्तेज हो जाने पर बलि ने उन्हें इस प्रकार तेजोहीन देखकर अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा।।१।।

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्य निर्दग्धा इव वह्निना। किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव।।२।।
अरिष्टं किं नु दैत्यानां किं कृत्या वैरिनिर्मिता।
नाशायैषा समुद्भूता यया निस्तेजसोऽसुराः।।३।।

बलि ने कहा—हे तात! ऐसी बात है कि सभी दैत्यगण अग्नि से जले हुए की भाँति निस्तेज से हो गये हैं और क्या ऐसा कारण है कि इतने शीघ्र ही ब्रह्मदण्ड से मारे हुए की भाँति दिखाई पड़ने लगे हैं? यह दैत्यों के ऊपर कोई अरिष्ट तो नहीं आ गया है? अथवा वैरियों द्वारा कोई कृत्या तो इन पर विनाश के लिये नहीं छोड़ी गई, जो आकर पड़ी है, जिससे सभी तेजोहीन हो गये हैं?।।२-३।।

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिर्धीरः पृष्टः पौत्रेण पार्थिव। चिरं ध्यात्वा जगादैनमसुरेन्द्रं बलिं तदा।।४।।

शौनक ने कहा—हे राजन्! तब इस प्रकार बलि के पूछने पर धैर्यवान् दैत्याधिपति प्रह्लाद ने बड़ी देर तक ध्यान करके असुर नायक बलि से पूछा।।४।।

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहजां धृतिम्।
सर्वे समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः।।५।।
सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः। देवानां च परा लक्ष्मीः कारणैरनुमीयते।।६।।

महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर। न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं सुरार्दन॥७॥

प्रह्लाद ने कहा- दानवपति बलि! इस समय सभी पर्वत हिलने लगे हैं, भूमि भी अपनी स्वाभाविक क्षमता छोड़ रही है, समस्त समुद्र विक्षुब्ध हो रहे हैं, दैत्य तथा दानवगण तेजोहीन हो गये हैं, ग्रहगण जिस प्रकार पहले सूर्य का अनुगमन करते थे उस प्रकार उदित होने भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। इन कारणों से अनुमान लगता है कि देवताओं की विशेष अभ्युन्नति प्राप्त होने वाली है। हे महाबाहुवाले! यह महान् कारण दिखाई पड़ रहा है। हे देवताओं के शत्रु! इसे तुम तुच्छ कारण मत समझो।।५-७।।

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः। अत्यन्तभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्॥८॥
स ध्यानयोगं कृत्वाऽथ प्रह्लादः सुमनोहरम्। विचारयामास ततो यतो देवो जनार्दनः॥९॥

शौनक ने कहा-दानव राज बलि से इस प्रकार की बातें कर असुरों के बीच में महात्मा प्रह्लाद ने, जो भगवान् के परमभक्त थे, मन से हरि का चिन्तन किया और योगबल से ध्यान करके उन्होंने भगवान् जनार्दन का अन्वेषण किया कि वे इस समय कहाँ है? ध्यान करने पर प्रह्लाद ने अदिति के उदर में वामनरूप में विराजमान उन आदि प्रजापति भगवान् विष्णु को देखा, जिसके अन्दर सातों लोक विराजमान थे।।८-९।।

स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम्।
अन्तःस्थान्बिभ्रतं सप्त लोकानादिप्रजापतिम्॥१०॥

तदन्तःस्थान्वसूनरुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा। साध्यान्विश्वांस्तथाऽऽदित्यान्गन्धर्वोरगराक्षसान्॥११॥
विरोचनं स्वतनयं बलिं चासुरनायकम्। जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथाऽसुरान्॥१२॥
आत्मानमुर्वी गगनं वायुमम्भो हुताशनम्। समुद्रान्वै द्रुमसरित्सरांसि च पशून्मृगान्॥१३॥
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान्। समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च॥
ग्रहनक्षत्रनागांश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन्॥१४॥
स पश्यन्विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात्पुनः।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं तदा॥१५॥

उस समय प्रह्लाद ने भगवान् के अन्दर आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, उनचास मरुत्गण, साध्य देवगण, विश्वेदेवगण, आदित्यगण, गन्धर्वगण, उरगगण, राक्षस समूह, अपने पुत्र विरोचन, असुरस्वामी बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा अन्यान्य असुरपति, स्वयं अपने आप, सारी पृथ्वी, विशाल आकाश, वायु, जल अग्नि, सभी समुद्रगण, वृक्ष, नदियाँ, सरोवर, पशु, मृगगण, पक्षिगण, संसार के सभी मनुष्य, सर्पादि रेंगने वाले सभी जीव, सभी लोकों की सृष्टि करने वाले भगवान् बह्मा, शिवजी, सभी ग्रहों, नक्षत्रों, नागों एवं दक्ष आदि सभी प्रजापतियों को अति विस्मय

से व्याकुल होकर देखा और तब क्षण भर बाद पुनः स्वस्थ होकर अपने पुत्र विरोचन के पुत्र बलि से कहा॥१०-१५॥

प्रह्लाद उवाच

वत्स ज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम्। तेजसो हानिरुत्पन्ना तच्छृणु त्वमशेषतः॥१६॥
देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिकृत्। अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः॥१७॥
परावराणां परमः परः परवतामपि। प्रमाणं च प्रमाणानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः॥१८॥
प्रभुः प्रभूणां परमः पराणामनादिमध्यो भगवाननन्तः।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेष कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः॥१९॥

प्रह्लाद ने कहा—हे वत्स! मैं उस कारण को भली-भाँति जान चुका, जिसलिये आप लोगों के तेज की हानि हुई है, उसे विस्तारपूर्वक सुनो। देवाधिदेव! सभी जगत् के उत्पन्न करने वाले, सृष्टि के आदिकर्त्ता, विश्वभर में जिनसे पूर्व कोई नहीं था, जो एकमात्र सबसे प्रथम हैं, ऐसे पूज्य वरदायक भगवान् विष्णु पर से भी परम (परात्पर), प्रमाणों के भी प्रमाण, सातों लोकों के गुरु के भी गुरु हैं। प्रभु के भी प्रभु हैं, पर से भी परे हैं, अनादि हैं, अमध्य हैं, अनन्त हैं। वे भगवान् अपने अंश द्वारा इस त्रैलोक्य को सनाथ करने के लिये अदिति के गर्भ में उत्पन्न हो रहे हैं॥१६-१९॥

न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनिर्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमुख्याः।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं स वासुदेवः कलयाऽवतीर्णः॥२०॥
योऽसौ कलांशेन नृसिंहरूपी जघान पूर्वं पितरं ममेशः।
यः सर्वयोगीशमनोनिवासः स वासुदेवः कलयाऽवतीर्णः॥२१॥

हे दैत्यपति! जिनके स्वरूप को भगवान् रुद्र, पद्मयोनि ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, मरीचि प्रभृति महर्षिगण भी नहीं जान पाते, वे भगवान् वासुदेव अपने कला से उत्पन्न हो रहे हैं। जिन भगवान् ने पूर्वकाल से अपनी एक कला द्वारा नृसिंह रूप में अवतीर्ण होकर मेरे पिता का वध किया था जो सभी योगिराजों के मन में निवास करने वाले हैं, वे ही भगवान् वासुदेव अपनी कला से अवतीर्ण हो रहे हैं॥२०-२१॥

यमक्षरं वेदविदो विदित्वा विशन्ति यज्ज्ञानविधूतपापाः।
यस्मिन्प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम्॥२२॥
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम्।
लयं च यस्मिन्प्रलये प्रयान्ति तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम्॥२३॥

वेदों के जानने वाले विद्वान् लोग जिन अव्यय भगवान् को भली-भाँति जानकर प्रवेश करते हैं तथा सभी पापों से निर्मुक्त होकर प्रवेश करके पुनः इस मृत्यलोक में जन्म नहीं धारण

करते, उन भगवान् वासुदेव को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेव से सभी जीवगण समुद्र से लहरों की भाँति निरन्तर उत्पन्न होते हैं और प्रलयकाल में पुनः उसी में सन्निविष्ट हो जाते हैं, उन अचिन्त्य महिमाशाली को हमारा प्रणाम है।।२२-२३।।

न यस्य रूपं न बलप्रभावौ न यस्य भावः परमस्य पुंसः।
विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रामाम्यजस्त्रम्।।२४।।
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगिष्टा स्पर्शे ग्रहीत्री रसना रसस्य।
श्रोत्रं च शब्दग्रहणे नराणां घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तम्।।२५।।

जिस परमपुरुष के स्वरूप को, बल को, प्रभाव को एवं भाव को शिव तथा ब्रह्मा आदि देवगण भी नहीं समझ पाते, उन भगवान् वासुदेव को मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेव ने मनुष्यों को स्वरूप देखने के लिये नेत्र, स्पर्श के लिए चमड़ा, रसास्वादन के लिये जिह्वा, शब्द सुनने के लिये कान तथा सुगन्ध ग्रहण करने के लिए नासिका दी है, उन्हें हमारा प्रणाम है।।२४-२५।।

येनैकदंष्ट्राग्रसमुद्धृतेतं धराऽचलान्धारयतीह सर्वान्।
यस्मिंश्च शेते सकलं जगच्च तमीशमाद्यं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्।।२६।।
न घ्राणचक्षुःश्रवणादिभिर्यः सर्वेश्वरो वेदितुमक्षयात्मा।
शक्यस्तमीड्यं मनसैव देवं ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम्।।२७।।

जिसने अपने दाँत के अग्रभाग से इस अनन्त पृथ्वी मण्डल का उद्धार किया है, जो इन सभी पर्वतों को धारण करता है, जिसमें यह समस्त चराचर जगत् शयन करता है, उस सर्वप्रथम भगवान् विष्णु को हमारा प्रणाम है। जो सर्वेश्वर अक्षयात्मा नासिका, नेत्र एवं कान आदि इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता, केवल मन द्वारा जिसे ग्रहण किया जा सकता है, उस पूज्य परमात्मा विष्णु के सम्मुख हम विनत हैं।।२६-२७।।

अंशावतीर्णेन च येन गर्भे हृतानि तेजांसि महासुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीशमशेषसंसारतरोः कुठारम्।।२८।।
देवो जगद्योनिरयं महात्मा स षोडशांशेन महासुरेन्द्र।
स देवमातुर्जठरं प्रविष्टो हृतानि वस्तेन बलाद्वपूंषि।।२९।।

अपने अंशमात्र से अवतीर्ण होकर जिसने गर्भस्थ होते हुए भी बड़े-बड़े दैत्यों के तेजों का हरण कर लिया, जो समस्त भव-भयरूप वृक्ष के लिये कुठाररूप है, उस अनन्त परमात्मा को प्रणाम करता हूँ। हे महासुरेन्द्र! वह महान् आत्मा समस्त जगत् का उत्पत्तिकर्ता भगवान् विष्णु अपने सोलह अंशों से देवताओं की माता अदिति के उदर में प्रविष्ट हुआ है, उसी ने अपने तेज से तुम लोगों के शरीर को निस्तेज कर दिया।।२८-२९।।

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥३०॥
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च।
अयः शिराश्चाश्वशिरा भङ्गकारी महाहनुः॥३१॥
प्रतापः प्रघसः शुम्भः कुकुरश्च सुदुर्जयः। एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा॥३२॥
महाबला महावीर्या भूभाराद्धरणक्षमाः। एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्धेन सम्मितः॥३३॥

बलि ने कहा–हे तात! यह हरि नामक कौन–सा देवता है, जिससे हम लोगों को इतनी विपत्ति आ गई है? मेरे पास तो उस वासुदेव से भी अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। विप्रचित्ति, शिबि, शंकु, अयःशंकु, अयःशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकारी, महाहनु, प्रताप, प्रघस, शुम्भ, अति कठिनाई से जीतने योग्य कुकुर–ये महाबलवान् दैत्य हमारा सेना में हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों दैत्य तथा दानव भी हैं, जो महाबलवान्, महान् पराक्रमी तथा समस्त पृथ्वी के भार को उठाने समर्थ हैं, इन सबों में एक–एक के भी आधे पराक्रम से कृष्ण की समानता नहीं है।।३०–३३।।

शौनक उवाच

पौत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यपुङ्गवः। धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥३४॥

शौनक ने कहा–दैत्यपुंगव प्रह्लाद अपने पौत्र की दर्पोक्ति सुनकर भगवान् की निन्दा करने वाले उस बलि को धिक्कार है, धिक्कार हैं' ऐसा कहने लगा।।३४।।

प्रह्लाद उवाच

विनाशमुपयास्यन्ति मन्ये दैतेयदानवाः। येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान्॥३५॥
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्। त्वामृते पापसङ्कल्पः कोऽन्य एवं वदिष्यति॥३६॥
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः।
सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरानन्तभूमयः॥३७॥
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीनदम्। समुद्रद्वीपलोकाश्च न समं केशवस्य हि॥३८॥

प्रह्लाद ने कहा–मुझे मालूम हो रहा है कि ये सभी दैत्य तथा दानवगण विनाश के मुख में जाने वाले हैं; क्योंकि जिनको तुम जैसा अविवेकी एवं दुर्बुद्धि राजा मिला है। देवाधिदेव, महान् तेजस्वी एवं भाग्यशाली अजन्मा वासुदेव भगवान् को तुझ जैसे पापकर्मी को छोड़कर भला ऐसा कौन कह सकता है? तुमने इन जितने दैत्यों तथा दानवों के नाम ऊपर गिनाये हैं। वे सभी मिलकर, ब्रह्मा के समेत सभी देवगण, स्थावर–जंगम सभी जगत्, तुम, मैं, पर्वत, वृक्ष, नदियाँ और सभी नदी के समेत यह सारा संसार सभी समुद्र, द्वीप एवं सभी लोक– ये सब भगवान् केशव की समानता नहीं कर सकते।।३५–३८।।

यस्यातिवन्द्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः। एकांशेन जगत्सर्वं कस्तमेवं प्रवक्ष्यति॥३९॥

ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम्।
कुबुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम्॥४०॥
शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवस्य निन्दकः॥४१॥

जिस जगत् व्यापी अति वन्दनीयों के भी वन्दनीय परमात्मा का यह समस्त चराचर जगत् केवल एक अंश है, उसके बारे में भला कौन ऐसा है, जो तुम्हारी तरह बातें करेगा? तुम जैसे अविवेकी, विनाशोन्मुख, कुबुद्धि, अजितात्मा, वृद्धों के शासन को न मानने वाले के सिवा ऐसी अविवेकपूर्ण बातें भला कौन कर सकता है? मुझ अभागे की स्थिति अब शोचनीय हैं, जिसके घर में तुम्हारा नीच पिता उत्पन्न हुआ, जिसके तुझ जैसा देवाधिदेव विष्णु भगवान् का निन्दक पुत्र पैदा हुआ।।३९-४१।।

(तिष्ठत्वेषा हि संसारसम्भृताघविनाशिनी।
कृष्णो भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम्॥४२॥

न मे प्रियतमः कृष्णादपि देहो महात्मनः। इति जानात्ययं लोको न भवान्दितिजाधम॥४३॥
जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम। निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन्गौरवं मम॥४४॥

संसार में एकत्र घोर पापों के समूहों को नष्ट करने वाली भगवान् कृष्ण के चरणों में हमारी भक्ति अक्षुण्ण बनी रहे, मैं भले ही तुमसे अपमानित क्यों न होऊँ! उस महान् आत्मा कृष्ण से बढ़कर मेरा इस संसार में कोई भी प्रिय विषय नहीं है, अपना शरीर भी मुझे उतना प्रिय नहीं है। हे मुर्ख दैत्य! इस बात को सारा संसार जानता है; किन्तु तुम अकेले नहीं जानते। मेरे इतने प्राणों से भी प्रिय भगवान् कृष्ण को जानते हुए भी जो तुम निन्दा कर रहे हो सो मेरा सम्मान नहीं कर रहे हो।।४२-४४।।

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले। ममापि सर्वजगतां गुरोर्नारायणो गुरुः॥४५॥
निन्दां करोषि यस्तस्मिन्कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ। यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद्भ्रंशमेष्यसि॥४६॥
मम देवो जगन्नाथो बले तावज्जनार्दनः। भवत्वहमुपेक्ष्यस्ते प्रीतिमानस्तु मे गुरुः॥४७॥
एतावन्मात्रमप्येवं निन्दितस्त्रिजगद्गुरुः। नावेक्षितं त्वया यस्मात्तस्माच्छापं ददामि ते॥४८॥

हे बलि! तुम्हारा पूज्य विरोचन है और मैं उसका भी पूज्य हूँ और मेरे भी क्या समस्त संसार के पूज्य भगवान् विष्णु हैं। इस कारण जो तुम अपने पूज्य के पूज्य मेरे गुरु की निन्दा कर रहे हो, सो अवश्य ही शीघ्र तुम इस ऐश्वर्य के पद से नीचे गिरोगे। बलि! मेरे सर्वस्व, जगत् के स्वामी, भगवान् वासुदेव में हमारी प्रीति अक्षुण्ण बनी रहे, इसमें मैं तुमसे अपमानित ही रहूँगा तो कोई हानि नहीं है। तीनों लोकों के गुरु भगवान् की महिमा को जो तुमने नहीं जाना और इस प्रकार का उनका अपमान किया है, इसलिये मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ।।४५-४८।।

यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं वचः। त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥४९॥
यथा च कृष्णान्न परं परित्राणं भवार्णवे। तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥५०॥

तुम्हारी वाणी अच्युत की निन्दा करने वाली है, अतः जिस प्रकार सिर काट लेने से मुझे दुःख होता है, उसी प्रकार तुम्हारी इस कठोर एवं गम्भीर वाणी से मुझे दुःख हुआ है, अतः तू अपने राज्य से भष्ट हो जा और तुम्हारा पतन हो जाय। जिस प्रकार यह निश्चय है कि इस संसार-सागर में भगवान् कृष्ण को छोड़कर कोई अन्य शरणदायक नहीं है, उसी प्रकार शीघ्र तुमको मैं राज्य पद से च्युत हुआ देखूँ।।४९-५०।।

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा गुरोर्वचनमप्रियम्। प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥५१॥

शौनक ने कहा–दैत्यपति बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद की ऐसी शाप की अप्रिय बातें सुनकर बारम्बार प्रणाम करते हुए उन्हें प्रसन्न किया।।५१।।

बलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि। बलावलेपमत्तेन मयैतद्वाक्यमीरितम्॥५२॥

मोहोपहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम्॥५३॥
राज्यभ्रंशं वसुभ्रंशं सम्प्राप्स्यामीति न त्वहम्।
विषण्णोऽस्मि यथा तात तवैवाविनये कृते॥५४॥

त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नाति दुर्लभम्। संसारे दुर्लभास्ते तु गुरवो ये भवद्विधाः॥५५॥
तत्प्रसीद न मे कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप। त्वत्कोपदृष्ट्या ताताहं परितप्ये न शापतः॥५६॥

बलि ने कहा–हे तात! मुझ अज्ञान से मोहित के ऊपर तुम कृपा करो, क्रोध मत करो। बल के गर्व से उन्मत्त होकर मैंने वैसी दर्पोक्ति तुमको सुनाई है। हे दैत्यश्रेष्ठ! अज्ञान एवं मोह से मेरी सारी बुद्धि चौपट हो गई है, मैं बड़ा पापकर्मी हूँ। अतः मुझ जैसे दुराचारी को जो आपने यह शाप दिया है सो अच्छा ही किया है। ते तात! मैं राज्य से च्युत हो जाऊँगा, मेरी सारी सम्पत्ति विनष्ट हो जायेगी-इन बातों से मैं तनिक भी दुःखी नहीं हूँ; किन्तु मूझे इस बात से अधिक दुःख है कि मैंने आपके साथ अविनयपूर्ण व्यवहार किया है। तीनों लोकों पर साम्राज्य हो जाना एवं अति ऐश्वर्यवान् हो जाना–ये दोनों बातें इस पृथ्वी तल पर उतनी दुर्लभ नहीं है, जितनी आप जैसे परम भागवत गुरुजनों की प्रीति दुर्लभ है। हे दैत्यों के पालक! यह समझ कर कि मैं आपकी क्रोधपूर्ण दृष्टि से अति दुःखी हूँ शाप से नहीं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ, कोप न करें।।५२-५६।।

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मोहो मे जनितस्तेन ते मया। शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम॥५७॥

यदि मोहेन मे ज्ञानं नाऽऽक्षिप्तं स्यान्महासुर। तत्कथं सर्वगं जानन्हरिं किञ्चिच्छपाम्यहम्॥५८॥

प्रह्लाद ने कहा–'हे वत्स! अति कोप के कारण मैं मोहित हो गया, जिससे अभिभूत होकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया और अज्ञान ने मेरी विवेकशक्ति का बिल्कुल हरण कर लिया। हे महाअसुर! यदि अज्ञान के कारण मेरी विवेकशक्ति नष्ट न हुई होती तो सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु को जानता हुआ भी मैं शाप देने को क्यों उद्यत होता।।५७-५८।।

योऽपं शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुङ्गव। भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मान्मा त्वं विषीद वै॥५९॥
अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ। भवेथा भक्तिमानीशे स ते तात्रा भविष्यति॥६०॥
शापं प्राप्याथ मां वीर संस्मरेथाः स्मृतस्त्वया।
यथा तथा यतिष्येऽहं श्रेयसा योज्यसे यथा॥६१॥
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रं विरराम महामतिः। अजायत स गोविन्दो भगवान्वामनाकृतिः॥६२॥

हे असुरपुंगव! यह जो शाप मैंने तुम्हें दिया है, यह तो अवश्य ही घटित होगा, अतः इसके लिये तुम विषाद मत करो। आज से तुम्हारी भक्ति देवेश अच्युत भगवान् में होगी और वही तुम्हारी रक्षा करने वाला होगा। हे वीर! इस शाप के घटित होने पर जब तुम मेरा स्मरण करोंगे, तब मैं वैसा प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसी बातें कहकर महामतिमान् प्रह्लाद चुप हो गया। इसी अवसर पर अदिति के गर्भ से भगवान् गोविन्द वामन स्वरूप में भूतल पर अवतीर्ण हुए।।५९-६२।।

अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन्सर्वामरेश्वरे। देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा॥६३॥
ववुर्वाताः सुखस्पर्शा विरजस्कमभून्नभः। धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥६४॥
नोद्वेगश्चाप्यभूत्तत्र मनुजेन्द्रासुरेष्वपि। तदादि सर्वभूतानां भूम्यम्बरदिवौकसाम्॥६५॥
तं जातमात्रं भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
जातकर्मादिकं कृत्वा कृष्णं दृष्ट्वा च पार्थिव॥
तुष्टाव देवदेवेशमृषीणां चैव शृण्वताम्॥६६॥

उन सभी देवताओं के स्वामी जगन्नाथ विष्णु के अवतरित होने पर सभी देवगण दुःख से विमुक्त हो गए। विशेषकर देवमाता अदिति को बड़ी प्रसन्नता हुई, सुख-स्पर्शकारी वायु बहने लगी, आकाश धूलिरहित हो गया, सभी जीवों की धर्म में अभिरुची हो गई, मनुष्यों और राक्षसों के मन में भी तनिक विह्वलता नहीं हुई, तात्पर्य यह कि पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग इन तीनों लोकों के जीवों में तनिक भी उद्वेग नहीं हुआ। हे राजन्! भगवान् के उत्पन्न होते ही लोकपितामह ब्रह्मा ने जातसंस्कार आदि कराकर उनका दर्शन किया और सभी ऋषियों के सुनते हुए देवाधिदेव भगवान् की स्तुति की।।६३-६६।।

ब्रह्मोवाच

जयाऽऽद्येश जयाजेय जय सर्वात्मकात्मक। जय जन्मजरापेत जयानन्त जयाच्युत॥६७॥

जयाजित जयामेय जयाव्यक्तस्थिते जय। परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयाऽऽत्मनिःसृत॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा- हे सबके आदि में होने वाले! परमात्मन्! तुम्हारी जय हो! हे अजेय! सबकी आत्मा में विचरण करने वाले। जन्म एवं वृद्धता के कष्टों से विमुक्त भगवान् तुम्हारी जय हो। तुम अनन्त हो, कभी नाश को प्राप्त होने वाले नहीं हो। हे अजित! अमेय! अव्यक्त स्थिति वाले! परमात्मन्! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम परमार्थ के प्रयोजन के सर्वज्ञ हो, ज्ञान द्वारा जानने योग्य हो, स्वयं अपनी महिमा से प्रकट होने वाले हो॥६७-६८॥

जयाशेषजगत्साक्षिञ्जगत्कर्तर्जगद्‌गुरो। जगतोऽस्यन्तकृद्देव स्थितिं पालयितुं जय॥६९॥
जय शेष जयाशेष जयाखिलहृदि स्थित। जयादिमध्यान्त जय सर्वज्ञाननिधे जय॥७०॥

हे सम्पूर्ण जगत् के साक्षी! जगत् के कर्त्ता, जगत् के गुरु! इस जगत् के विनाशक देव! तुम्हीं इसको बचाने वाले तथा पालने वाले हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। मोक्ष की इच्छा रखने वालों को तुम्हारा पता नहीं लगता। तुम्हीं शेष हो, अशेष हो, अखिल प्राणियों के हृदय में स्थित हो, तुम जगत् के आदि हो, मध्य हो, अन्त हो! सर्वज्ञाननिधे! तुम्हारी जय हो, जय हो। ६९-७०॥

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य स्वयंदृष्ट जयेश्वर। योगिनां मुक्तिफलद दमादिगुणभूषण॥७१॥
जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूलजगन्मय। जय स्थूलातिसूक्ष्म त्वं जयातीन्द्रिय सेन्द्रिय॥७२॥
जय स्वमायायोगस्थ शेषभोगशयाक्षर। जयैकदंष्ट्राप्रान्ताग्रसमुद्धतवसुन्धर॥७३॥

मोक्षार्थी जन तुम्हारा पता नहीं पाते, तुम स्वयं दृष्ट हो, ईश्वर हो, योगीजनों को मुक्ति देने वालों हो, दम आदि गुणों से विभूषित हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम जगत् में सबसे स्थूल हो, सबसे सूक्ष्म हो, दुर्जेय हो, जगन्मय हो, इन्द्रियवान् हो, अतीन्द्रिय हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम अपनी योगमाया में सर्वदा स्थित रहने वाले हो, शेषनाग के फण पर शयन करने वाले हो, अव्यय हो, एक दाँत के अग्रभाग से वसुन्धरा का उद्धार करने वाले हो, तुम्हारी जय हो, जय हो॥७१-७३॥

नृकेसरिञ्जयारातिवक्षःस्थलविदारण। साम्प्रतं जय विश्वात्मञ्जय वामन केशव॥७४॥
निजमायापटच्छन्न जगन्मूर्ते जनार्दन। जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो॥७५॥

तुम नृसिंह हो, हिरण्कशिपु के वक्षः स्थल का विदारण करने वाले हो। हे विश्वालय! इस समय भी तुम्हारी जय हो। हे वामन! तुम्हारी जय हो। हे केशव! तुम्हारी जय हो। तुम अपनी ही माया से बने हुए आवरण से छिपे रहते हो। हे जगन्मूर्ते, जनार्दन अचिन्त्य, अनेक स्वरूप धारण करने वाले, प्रभो! तुम्हारी जय हो, जय हो॥७४-७५॥

वर्धस्व वर्धिताशेषविकारप्रकृते हरे। त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः॥७६॥
न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे। न ज्ञातुमीशा मुनयः शनकाद्या न योगिनः॥७७॥
त्वन्मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते। कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः॥७८॥

हे हरे! तुम सभी प्रकृति के विकारों से युक्त हो, तुम्हारी वृद्धि हो, तुझ जैसे परमात्मा में ही

इस जगत् के धर्म की मर्यादा मर्यादित हुई है। हे हरे! न भगवान् शंकर, न ब्रह्मा जी, न इन्द्रादि देवगण, न सनकादि मुनिगण, न योगी जन-अर्थात् कोई भी तुम्हारी महिमा को यथार्थतया जानने में समर्थ नहीं है। हे जगत्पते! हे सर्वेश! जगत् में तुम्हारी माया रूपी वस्त्र से लिपटा हुआ कौंन प्राणी बिना तुम्हारी कृपा के हुए तुमको जानने में समर्थ हो सकता है।।७६-७८।।

त्वमेवाऽऽराधितो येन प्रसादसुमुखप्रभो। स एव केवलो देव वेत्ति त्वां नेतरे जनाः।।७९।।
नन्दीश्वरेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व वामन। प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन्पृथुलोचन।।८०।।

हे देव! प्रसन्नता से हर्षित मुख वाले! भगवन्! जिस व्यक्ति ने तुम्हारी भली-भाँति सेवा कर ली है, वही तुम्हें जानता है अन्य लोग भला तुम्हें क्या जानेगा? हे विश्वात्मन्, दीर्घनेत्रों वाले! वामन भगवान्! नन्दीश्वरेश्वर ईशान! इस विश्व की उन्नति के लिए तुम्हारी जय हो।।७९-८०।।

शौनक उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः। प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचाब्जसमुद्भवम्।।८१।।
स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च। मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्।।८२।।
भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि प्रतिश्रुतम्।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम्।।८३।।

शौनक ने कहा- हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्मा के स्तुति करने पर वामन स्वरूपधारी भगवान् हृषीकेश ने हँसकर कमलयोनि ब्रह्मा जी से भावों से युक्त यह गम्भीर वाणी कही- 'हे ब्रह्मन्! प्राचीनकाल में इन्द्रादि देवताओं के साथ कश्यप ने तथा आपने मेरी स्तुति की थी, उसी समय मैंने आप लोगों से यह प्रतिज्ञा की थी कि यह त्रिभुवन इन्द्र का होगा, फिर अदिति ने भी मेरी तपस्या की थी और उससे भी मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि शत्रुओं को विनष्ट करके मैं इन्द्र को यह त्रैलोक्य समर्पित करूँगा।।८१-८३।।

सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः।।८४।।

सो मैं अपने उस वचन का पालन करने के लिये ऐसा उपाय करूँगा जिससे सहस्राक्ष इन्द्र जगत् के पुनः अधिपति बनेंगे, मैं यह आप लोगों से सत्य बात कर रहा हूँ।।८४।।

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान्। यज्ञोपवीतं भगवान्ददौ तस्मै बृहस्पतिः।।८५।।
आषाढमददाद्दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः। कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं वेदमथाङ्गिराः।।८६।।
अक्षसूत्रं च पुलहः पुलस्त्यः सितवाससी। उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः।।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः।।८७।।

भगवान् के ऐसा कहने के उपरान्त ब्रह्मा ने उन्हें कृष्णमृग का चर्म दिया, भगवान् बृहस्पति ने उन्हें यज्ञोपवीत दिया। ब्रह्मा के पुत्र महर्षि मरीचि ने पलाश दण्ड, वसिष्ठ ने कमण्डलु, अंगिरा ने

कुशासन तथा वेद, पुलह ने अक्षसूत्र तथा पुलस्त्य ने श्वेत वस्त्र के जोड़े समर्पित किये। फिर प्रणव 'ओंकार' के स्वरों से विभूषित वेदों ने भगवान् की स्तुति की और उसी समय सांख्य योग आदि छहो शास्त्रों ने भगवान् की स्तुति की।।८५-८७।।

स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः। सर्वदेवमयो भूप बलेरध्वरमभ्यगात्।।८८।।
यत्र यत्र पदं भूयो भूभागे वामनो ददौ। ददाति भूतिर्विवरं तत्रा तत्रातिपीडिता।।८९।।
स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन्सपर्वताम्। साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम्।।९०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावे वामनोत्पत्तिर्नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२२९४।।

हे राजन्! इस प्रकार वामन स्वरूपधारी भगवान् ने जटा, दण्ड, छत्र, कमण्डलु से विभूषित एवं समस्त देवताओं के तेज से सम्पन्न हो बलि के यज्ञभूमि की ओर प्रस्थान किया। उस समय जहाँ-जहाँ पृथ्वी तल पर वामन ने अपने चरणों को रखा वहाँ-वहाँ अति पीड़ित होने के कारण पृथ्वी में दरारें पड़ गईं। इस प्रकार धीरे-धीरे मृदुगति से चलते हुए भगवान् वामन ने उस समय अपनी गति से सभी पर्वतों, समुद्रों तथा द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी को चलायमान कर दिया।।८८-९०।।

।।दो सौ पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।२४५।।

❖❖❖

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वामन प्रादुर्भाव

शौनक उवाच

समर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा सङ्क्षोभितां बलिः। पप्रच्छोशनसं शुद्धं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।।१।।
आचार्य क्षोभमायाता साब्धिभूभृद्वना मही।
कस्माच्च नाऽऽसुरान्भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः।।२।।

शौनक ने कहा-भगवान् वामन के चलने पर पर्वतों एवं वनों समेत समस्त पृथ्वी को विक्षुब्ध होते देख बलि ने हाथ जोड़कर विशुद्धात्मा शुक्राचार्य से पूछा- 'आचार्य! किस कारण से समुद्रों, पर्वतों एवं वनों समेत यह पृथ्वी विक्षुब्ध हो रही है और असुरों के यज्ञ भागों को अग्नि ग्रहण नहीं कर रही है।।१-२।।

इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः। उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महापतिः।।३।।

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः। वामनेनेह रूपेण जगदात्मा सनातनः॥४॥
स एष यज्ञमायाति तव दानवपुङ्गव। तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही॥
कम्पन्ते गिरयश्चामी क्षुभितो मकरालयः॥५॥

बलि के ऐसा पूछने पर वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य ने बड़ी देर तक ध्यान करने के बाद दैत्याधिपति प्रह्लाद से कहा- 'कश्यप के घर जगत् के उत्पत्तिकर्ता सनातन जगदात्मा विष्णु भगवान् वामन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं, हे दानवपति! वे भगवान् तुम्हारे यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आ रहे हैं। उन्हीं के पैरों के भार के कारण पृथ्वी विक्षुब्ध होकर हिल रही है, पर्वत काँपं रहे हैं, सभी समुद्र क्षुब्ध हो रहे हैं।।३-५।।

नैनं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम्। सदेवासुरगन्धर्वयक्षराक्षसकिन्नरा॥६॥

इन जीवों के स्वामी परमात्मा को देवता, असुर, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस और किन्नरों समेत यह पृथ्वी वहन करने में सम्प्रति समर्थ नहीं है।।६।।

अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः। धारयत्यखिलान् देवो मन्वादींश्च महासुर॥७॥
इयमेव जगद्धेतोर्माया कृष्णस्य गह्वरी। धार्यधारकभावेन यया सम्पीडितं जगत्॥८॥
तत्सन्निधानादसुरा भागार्हा नासुरोत्तम। भुञ्जते नाऽऽसुरान्भागानमी तेनैव चाग्नयः॥९॥

हे महान् असुर! इन्हीं परमात्मा ने इस पृथ्वी को धारण किया है, जल, अग्नि, पवन और आकाश को भी ये ही धारण करने वाले हैं, सभी मनु आदि युगपुरुषों के स्रष्टा ये ही हैं। जगत् के लिए भगवान् कृष्ण की वह धनीभूत माया यही है, जो धार्य-धारकभाव से सारे जगत् को पीड़ित करती रहती है। हे असुरोत्तम! उन्हीं भगवान् के समीपस्थ होने के कारण अब असुरगण यज्ञ में भागों के अधिकारी नहीं हैं। यही कारण है कि ये अग्नि असुरों को दिये हुए भागों को अब नहीं ग्रहण कर रही है।।७-९।।

बलिरुवाच

धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम्।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान्॥१०॥
यं योगिनः सदा युक्ताः परमात्मानमव्ययम्। द्रष्टुमिच्छन्ति देवेशं स मेऽध्वरमुपैष्यति॥११॥
होता भागप्रदोऽयं च यमुद्गाता च गायति।
तमध्वरेश्वरं विष्णुं मत्तः कोऽन्य उपैष्यति॥१२॥
सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे मदध्वरमुपागते। यन्मया काव्य कर्तव्यं तन्ममाऽऽदेष्टुमर्हसि॥१३॥

बलि ने कहा-हे ब्रह्मन्! मैं अब धन्य हूँ, पुण्यवान् होकर मुझसे बढ़कर अन्य कोई भी पुरुष अब नहीं रहा, जिसके यज्ञ में साक्षात् यज्ञपति भगवान् उपस्थित हो रहे हैं। जिन अच्युत देवाधिदेव परमात्मा को योगी जन योगदृष्टि द्वारा देखने की लालसा करते हैं, वे ही भगवान् स्वयमेव

हमारे यज्ञ में आ रहे हैं। जिन परमात्मा का भाग प्रदान करने वाला होता तथा उद्गाता गान करते हैं, उन सभी यज्ञों के स्वामी विष्णु को मेरे सिवा अन्य कौन प्राप्त कर सकता है। अतएव हे आचार्यचरण! उन सर्वेश्वरेश्वर भगवान् कृष्ण के मेरे यज्ञ में उपस्थित होने के बाद जो कर्त्तव्य हों उन्हें मुझे बताईये।।१०-१३।।

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर। त्वया तु दानवा दैत्या मखभागभुजः कृताः॥१४॥

अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्।
विसृष्टेरनु चान्नेन स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः॥१५॥
त्वत्कृते भविता नूनं देवो विष्णुः स्थितौ स्थितः।
विदित्वैतन्महाभाग कुरु यत्नमनागतम्॥१६॥

शुक्र ने कहा—हे असुर! वेदों के प्रमाणानुसार यज्ञों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी केवल देवगण कहे गये हैं; किन्तु तूने तो दैत्यों तथा दानवों को यज्ञ भाग का अधिकारी बनाया है। ये भगवान् सभी सांसारिक जीवों में स्थित रहकर उनकी स्थिति तथा पालन करते हैं और प्रलयकाल में स्वयमेव उनको ग्रास बनाकर आत्मसात् कर लेते हैं। हे महाभाग! वे भगवान् विष्णु जो सर्वदा अपनी मर्यादा पर रहने वाले हैं। तुम्हारे ही लिये वहाँ उपस्थित हो रहे हैं, अतः इस बात को भली-भाँति जान कर भविष्य में जो कुछ करना हो, उसकी चिन्ता कीजिए।।१४-१६।।

त्वया हि दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि।
प्रतिज्ञा न हि वोढव्या वाच्यं साम वृथाफलम्॥१७॥

नालं दातुमहं देव दैत्य वाच्यं त्वया वचः। कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर॥१८॥

हे दैत्यपति! इसलिये मेरी यह सम्मति है कि थोड़ी-सी वस्तु के लिये भी इन्हें देने की प्रतिज्ञा न करना; प्रत्युत झूठी-मूठी खुशामदी की बातें बनाकर अपना काम चलाना और कहना कि- 'हे देव! मैं तुम्हें कुछ भी देने में समर्थ नहीं हूँ।' हे महान् असुर! क्योंकि वे कृष्ण भगवान् देवताओं की भलाई और अभिवृद्धि के लिये ही इस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं।।१७-१८।।

बलिरुवाच

ब्रह्मन्कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः। नास्तीति किमु देवेन संसाराघौघहारिणा॥१९॥
व्रतोपवासैर्विविधैः प्रतिसंग्राह्यते हरिः। स चेद्वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम्॥२०॥
यदर्थमुपहाराढ्यास्तपः शौचगुणान्वितैः। यज्ञाः क्रियन्ते देवेशः स मां देहीति वक्ष्यति॥२१॥

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन्! अन्य साधारण याचकों के भी प्रार्थना करने पर मैंने उन्हें कभी नाकारात्मक उत्तर नहीं दिया, वही मैं संसार के पापों को दूर करने वाले परमात्मा की याचना को कैसे इनकार कर सकता हूँ? विविध प्रकार के उपवास आदि को करके लोग जिस भगवान् गोविन्द

की आराधना करते हैं, वे आकर मुझसे जब याचना कर लेंगे तो फिर उससे बढ़कर संसार में अन्य मनः कामना क्या रह जायेगी? जिन भगवान् को प्राप्त करने के लिये विविध प्रकार के उपहारों द्वारा पवित्रता से यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है, वही भगवान् स्वयंमेव आकर मुझसे 'दो' ऐसी याचना करेंगे।।१९-२१।।

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं मम। यन्मया दत्तमीशेशः स्वयमादास्यते हरिः॥२२॥

निश्चय ही मेरा सब सुकृत फलीभूत हो गया, मेरी सुचरित्रता सफल हो गई, जो मेरे हाथों से दिये गये दान को स्वयम् भगवान् विष्णु ग्रहण करेंगे।।२२।।

नास्ति नास्तीत्यहं वक्ष्ये तमप्यागतमीश्वरम्।
यदि वञ्चामि तं प्राप्तं वृथा तज्जन्मनः फलम्॥२३॥
यज्ञेऽस्मिन्यदि यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः। निजमूर्धानमप्यत्र तद्दास्याम्यविचारितम्॥२४॥

यदि मैं उन भगवान् के स्वयम् उपस्थित हो जाने पर 'मेरे पास कुछ नहीं है, मैं आपको दान देने में असमर्थ हूँ 'ऐसा कहकर धोखे में डालूँगा तो फिर मेरे जीवन का क्या फल होगा? अतः यदि इस यज्ञ में यज्ञपति भगवान् जनार्दन आकर मुझसे याचना करेंगे तो मैं बिना विचार किये ही अपने सिर को काटकर दे सकता हूँ।।२३-२४।।

नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम्।
वक्ष्यामि कथमायाते तदनभ्यस्तमच्युते॥२५॥
श्लाघ्य एव हि वीराणां दानादापत्समागमः। नाबाधकारि यद्दानं तदमङ्गलवत्स्मृतम्॥२६॥

अन्य साधारण याचकों की याचना करने पर मैंने कभी 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा तो भला अब भगवान् के उपस्थित होने पर अनभ्यस्त शब्द को क्यों कर कह सकूँगा ? दान देने से आने वाली विपत्तियाँ वीर पुरुषों के लिए शोभनीय हैं। जो दान दे देने के बाद किसी प्रकार की विपत्ति नहीं लाता, वह मंगल न देने वाले के समान ही है अर्थात् उसके देने और न देने से कोई विशेष लाभ नहीं।।२५-२६।।

मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चाऽऽतुरः।
नाभूषितो न चोद्विग्नो न स्त्रगादिविवर्जितः॥२७॥
हृष्टतुष्टः सुगन्धिश्च तृप्तः सर्वसुखान्वितः। जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी॥२८॥

मेरे राज्य में कोई प्राणी सुखविहीन, दरिद्र, आतुर, अशोभन, उद्विग्न अथवा अलंकार तथा पुष्पमाला आदि विवर्जित नहीं है। प्रत्युत सभी लोग हृष्ट-पुष्ट सुगन्धित द्रव्यों से विभूषित सभी सुखों से समन्वित हैं। हे महाभाग्यशालिन्! मैं अपने विषय में क्या कहूँ कि सदा सुखपूर्वक रहता हूँ। हे भृगुवंश में सिंह! मेरे दान रूपी बीज का ही यह फल है, जो इस प्रकार विशिष्टदान का पात्र (दान देने योग्य व्यक्ति) मुझे प्राप्त हुआ स्पष्ट है कि यह सबकुछ मैंने आप ही की कृपा से प्राप्त किया है।।२७-२८।।

एतद्विशिष्टपात्रोऽयं दानबीजफलं मम। विदितं भृगुशार्दूल मयैत्त्वत्प्रसादतः॥२९॥
एतद्विजानतो दानबीजं पतति चेद्गुरो। जनार्दनमहापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया॥३०॥
मत्तो दानमवाप्येशो यदि पुष्णाति देवताः। उपभोगाद्दशगुणं दानं श्लाघ्यतमं मम॥३१॥

अतः हे आचार्य! यह सब जानते हुए यदि मेरा यह दान बीज जनार्दन रूप अति उपयुक्त पात्र में पड़ जाता है, तो फिर मैंने जीवन में क्या नहीं प्राप्त कर लिया अर्थात् तब मेरे जीवन की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायेंगी। यदि मेरे दान द्वारा देवताओं का पालन होता है तो उनके उपयोग से मेरा दान दस गुना अधिक प्रशंसनीय होता है।।२९-३१।।

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाऽऽराधितो हरिः। तेनाभ्येति न सन्देहो दर्शनादुपकारकृत्॥३२॥
अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधिनम्।
मां निहन्तुमनाश्चैव वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात्॥३३॥

इसमें सन्देह नहीं है कि मेरे यज्ञ से उपासित भगवान् मेरे ही कल्याण के लिये अपने साक्षात् दर्शन द्वारा उपकृत करने वाले मुझको मारने के लिए यहाँ आ रहे हैं, अथवा क्रुद्ध होकर देवभाग को अपहरण करने वाले मुझको मारने के लिये आ रहे हैं। तो फिर अच्युत भगवान् के हाथों से होने वाली वह मेरी मृत्यु भी प्रशंसनीय है।।३२-३३।।

तन्मयं सर्वमेवेदं नाप्राप्यं यस्य विद्यते। स मां याचितुमभ्येति नानुग्रहमृते हरिः॥३४॥
यः सृजत्यात्मभूः सर्वं चेतसैव च संहरेत्। स मां हन्तुं हृषीकेशः कथं यत्नं करिष्यति॥३५॥
एतद्विदित्वा न गुरो दानविघ्नकरेण मे। त्वया भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते॥३६॥

यह समस्त जगत् उस परमात्मा से ही युक्त है, सभी वस्तुओं में उसी की सत्ता है, उसके लिए जगत् में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है। वे भगवान् सिवा अनुग्रह के किसी अन्य कारण वश मेरे पास याचनार्थ नहीं आ रहे हैं। जो स्वयम्भु परमात्मा इस निखिल जगत् की सृष्टि करते हैं और केवल इच्छा से ही जो उस सबका विनाश कर देते हैं, वह हृषीकेश भला मुझे मारने के लिये क्यों इतना यत्न करेंगे? आचार्यचरण! यह सब बातें भली-भाँति सोच-विचार कर मेरे यज्ञ में गोविन्द भगवान् जगन्नाथ के उपस्थित होने पर आप किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित करेंगे-यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।।३४-३६।।

शौनक उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य सम्प्राप्तः स जगत्पतिः। सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक्॥३७॥
तं दृष्ट्वा यज्ञवाटान्तः प्रविष्टमसुराः प्रभुम्।
जग्मुः सभासदः क्षोभं तेजसः तस्य निष्प्रभाः॥३८॥

शौनक ने कहा-बलि शुक्राचार्य से उपर्युक्त बातें कह ही रहे थे कि माया से वामनरूप धारण करने वाले सर्वदेवमय भगवान् जगत्पति, जिन्हें कोई जान सकता, तब तक वहाँ पहुँच गये।

यज्ञ मण्डप में उपस्थित उन प्रभु को देखकर सभी सभासद असुरगण उनके तेज से निष्प्रभ होकर अति क्षुभित हुये।।३७-३८।।

जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे। बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः।।३९।।
ततः सङ्क्षोभमापन्नो न कश्चित्किञ्चिदुक्तवान्। प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास चेतसा।।४०।।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान्। देवदेवपतिः साक्षी विष्णुर्वामनरूपधृक।।४१।।
तुष्टाव यज्ञवह्निं च यजमानमथर्त्विजः। यज्ञकर्माधिकारस्थान्सदस्यान्द्रव्यसम्पदः।।४२।।

उस विशाल यज्ञ में आये हुये मुनिगण भगवान् का नाम जपने लगे, बलि ने तो अपना समस्त जीवन सफल मान लिया। सारी सभा क्षुब्ध हो गई, कोई किसी से कुछ भी नहीं बोल रहा था। सभी लोग ह्रदय में देवाधिदेव की प्रार्थना करने लगे। तत्पश्चात् विनीत भाव से उपस्थित बलि को तथा उन मुनिवरों को देखकर देवाधिदेव वामनरूपधारी भगवान् विष्णु ने यज्ञाग्नि की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तत्पश्चात् यजमान बलि, उसके पुरोहितों, यज्ञकर्म में उपस्थित अधिकारी सदस्यों एवं द्रव्य सम्पत्तियों की प्रशंसा की।।३९-४२।।

ततः प्रसन्नमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्। यज्ञवाटस्थितं वीरः साधु साध्वित्युदीरयन्।।४३।।
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा। पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः।।४४।।

वामन भगवान् को अति प्रसन्नमुख यज्ञमण्डप में उपस्थित देश चारों ओर से सदस्यगण 'साधु साधु' की ध्वनि उच्चारित करने लगे। अर्घ के लिए हाथों में जलपात्र लेकर पुलकायमान शरीर हो महाअसुर बलि ने गोविन्द से यह कहा।।४३-४४।।

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसङ्घातं गजाश्वममितं तथा।
स्त्रियो वस्त्राण्यलङ्कारांस्तथा ग्रामांश्च पुष्कलान्।।४५।।
सर्वस्वं सकलामुर्वी भवतो वा यदीप्सितम्।
तद्ददामि वृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः।।४६।।

बलि ने कहा-सुवर्ण एवं रत्नों के समूह, असंख्य हाथी और घोड़े, स्त्रियाँ, विविध प्रकार के वस्त्र तथा अलंकार, असंख्य ग्राम, अथवा मेरा सर्वस्व, अथवा सारा भूमण्डल-जिस किसी वस्तु की आपको अभिलाषा हो, उसे कहो, जिसके लिये मेरे अति प्रिय वामनरूप में तुम मेरे यहाँ आये हुए हो।।४५-४६।।

शौनक उवाच

इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः। प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान्वामनाकृतिः।।४७।।

शौनक ने कहा-दैत्यपति बलि के इस प्रकार प्रेमभरी बातें कहने पर कुछ मुस्ककराते हुए वमनरूपधारी भगवान् गम्भीर वाणी में बोले।।४७।।

वामन उवाच

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन्पदत्रयम्। सुवर्णग्रामरत्नानि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥४८॥

वामन ने कहा–राजन्! अपनी अग्नि की रक्षा के लिये मुझे तीन पग पृथ्वी चाहिये, सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि किन्हीं अन्य याचकों को दीजिए।।४८।।

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पादैः पदवतां वर। शतं शतसहस्त्राणां पदानां मार्गतां भवान्॥४९॥

बलि ने कहा–हे पदधारियों में श्रेष्ठ! आपका तीन पग पृथ्वी से भला क्या काम चलेगा? सौ अथवा लाख पगों के लिए आप को याचना करनी चाहिये।।४९।।

वामन उवाच

धर्मबुद्ध्या दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि तावता।
अन्येषामर्थिनां वित्तमीहितं दास्यते भवान्॥५०॥

वामन ने कहा–दैत्यपति! मैं धर्म बुद्धि से उन्हीं तीन पगों में ही कृतार्थ हो जाऊँगा, अपनी इच्छा से अनुकूल अन्य याचकों को आप धन दे-दें।।५०।।

शौनक उवाच

एतच्छुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः। ददौ तस्मै महाबाहुर्वामनाय पदत्रयम्॥५१॥
पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः। सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥५२॥

शौनक ने कहा–महात्मा वामन की ऐसी बातें सुन महाबाहु बलि ने वामन को तीन पग भूमि देने की स्वीकृति दे दी और उधर हाथ में जल के गिरते ही वामन भगवान् विराट्रूप में परिणत हो गये और अपने सर्वदेवमय स्वरूप को तत्काल उन्होंने प्रदर्शित किया।।५१-५२।।

चन्द्रसूर्यौ च नयने द्यौर्मूर्धा चरणौ क्षितिः।
पादाङ्गुल्यःपिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः॥५३॥
विश्वे देवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु सम्भूता रेखाश्चाप्सरसस्तथा॥५४॥

चन्द्रमा तथा सूर्य उनके नेत्रों में थे, आकाश मूर्द्धा पर और पृथ्वी दोनों चरण पर थी, पैरों की अंगुलियों में पिचाशगण, हाथों की उंगलियों में गुह्यक थे। विश्वेदेवगण घुटने में, देवताओं में उत्तम देवता साध्यगण दोनों जंघों में, नखों में यक्षगण तथा अप्सराएँ रेखाओं में अवस्थित थी।।५३-५४।।

दृष्टौ ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः।
तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः॥५५॥

बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः॥५६॥
प्रसादश्चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः। सत्यं तस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥५७॥
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा। स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ॥५८॥

सभी नक्षत्रगण नेत्रों में, सूर्य की किरणें केशों में, ताराएँ रोमकूपों में तथा रोमावलियों में महर्षिगण थे। उनकी बाहुएँ ही दिशााओं के कोण थे तथा उन विराट् के श्रोत्रों में दिशाएँ थी। कानों में दोनों अश्विनीकुमार तथा नासिका में वायु का निवास था। प्रसन्नता में चन्द्रमा, मन में धर्म, वाणी में सत्य तथा जिह्वा में सरस्वती का निवास था। ग्रीवा में देवमाता अदिति तथा बलय में विद्याएँ थी, स्वर्गद्वार में मैत्री, त्वष्टा और पूषा दोनों भौंह थे।।५५-५८।।

मुखं वैश्वानश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः। हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः॥५९॥
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु। सर्वसूक्तानि दशना ज्योतींषि विमलप्रभाः॥६०॥
वक्षःस्थले महादेवो धैर्ये चास्य महार्णवाः।
उदरे चास्य गन्धर्वाः सम्भूताश्च महाबलाः॥६१॥
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः।

उनके मुख में वैश्वानर अग्नि तथा अण्डकोश में प्रजापति, हृदय में परब्रह्म तथा पुंस्त्व में कश्यप मुनि थे। उनके पीठभाग में वसुदेवगण, सब सन्धिभागों में मरुत्गण दातों में सभी सूक्त, उनकी विमल कान्तियों, में सभी ज्योर्तिगण थे। वक्षस्थल में महादेव धैर्य में सारे समुद्र, उदर में महाबलवान् गन्धर्व अवस्थित हुए। लक्ष्मी, बुद्धि, धृति, कान्ति एवं सभी विद्याएँ उनके कटि प्रदेश में थीं।।५९-६१.५।।

सर्वज्योर्तीषि जानीहि तस्य तत्परमं महः॥६२॥
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्। स्तनौ कुक्षी च वेदाश्च उदरं च महामखाः॥६३॥
इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च।

अन्य जो ज्योतिष् चक्र थे उन्हें उनके तेज में स्थित जानिये। इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् का उस यज्ञ मण्डप में अनुपम तेज भासमान् हो रहा था। उस यज्ञ पुरुष के स्तनों तथा कुक्षियों में वेदों का निवास था, उदर में महायज्ञ, इष्टियाँ, पशुओं के बलिदान, ब्राह्मणों की चेष्टाएँ थीं।।६२-६३.५।।

तस्य देवमयं रूपं वृष्ट्वा विष्णोर्महाबलाः॥६४॥
उपासर्पन्त दैत्येन्द्राः पतङ्गा इव पावकम्। प्रमथ्य सर्वानसुरान्पादहस्ततलैर्विभुः॥६५॥
कृत्वा रूपं महाकायं जहाराऽऽशु स मेदिनीम्।
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे॥६६॥
नाभौ विक्रममाणस्य सक्थिदेशस्थितावुभौ।

महाबलवान् दैत्यगण भगवान् के उस सर्वदेवमय शरीर को देखकर अग्नि में पतिंगों की भाँति ऊपर फट पड़े तब परमात्मा ने उन सभी असुरों को पैरों के तलुवे तथा हाथों की हथेलियों से मसल डाला और उससे भी अति विशालकाय हो सारी पृथ्वी को शीघ्र ही उनमें हरण कर लिया। भू लोक में बढ़ते हुए भगवान् के शरीर में चन्द्रमा और सूर्य स्तनों के मध्यभाग में आ गये, उससे भी अधिक विराट् रूप धारण करते समय वे दोनों नाभि प्रदेश में तथा उरुभाग में आ गये।।६४-६६.५।।

परं विक्रमतस्तस्य जानमूले प्रभाकरौ।।६७।।
विष्णोरास्तां महीपाल देवपालनकर्मणि।
जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान्।।६८।।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः। सुतलं नाम पातालङ्गस्ताद्वसुधातलात्।।६९।।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना। अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।।७०।।

उससे भी अधिक ऊपर बढ़ते हुए भगवान् के घुटने के मूल भाग में चन्द्रमा तथा सूर्य स्थित हुए। हे महीपाल! देवताओं के पालनार्थ भगवान् ने इस प्रकार तीनों लोकों को जीतकर तथा असुरपतियों को मारकर पुरन्दर को तीनों लोकों का राज्य सौंप दिया और वसुधा तल से नीचे सुतल नामक पाताल लोक को विजयशील विष्णु ने बलि को दिया। तदनन्तर सर्वेश्वरेश्वर ने दैत्यपति से कहा।।६७-७०।।

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया। कल्पप्रमाणं तस्मात्ते भविष्यत्यायुरुत्तमम्।।७१।।
वैवस्वते तथाऽतीते बले मन्वन्तरे ह्यथ। सावर्णिके तु सम्प्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति।।७२।।

श्री भगवान् ने कहा- बले! जो तुमने मुझे जल का दान दिया है और मैंने अपनी हथेली पर स्वीकार किया है, इस कारण एक कल्प तक तुम दीर्घजीवन प्राप्त करोगे और इस वैवस्वत मनवन्तर के व्यतीत हो जाने पर सावर्णिक मन्वन्तर में इन्द्र तुम होगे।।७१-७२।।

साम्प्रतं देवराजाय त्रैलोक्यं सकलं मया। दत्तं चतुर्युगाणां च साधिका ह्येकसप्ततिः।।७३।।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः। तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले।।७४।।
सुतलं नाम पातालं त्वमासाद्य मनोरमम्। वसासुर ममाऽऽदेशं यथावत्परिपालयन्।।७५।।

इस समय तो मैंने सारे त्रैलोक्य को देवराज्य इन्द्र को दे दिया है और चारों युगों की जब तक इकहत्तर आवृत्ति नहीं हो जाती, तब तक उनके जितने भी शत्रु उत्पन्न होंगे, उन सबको वश में करूँगा। बले! क्योंकि उसने पूर्वकाल में घोर तपस्या करके मेरी उपासना की है। असुर! सुतल नामक मनोहर पाताल लोक को तुम प्राप्त कर मेरी आज्ञा का उचित ढङ्ग से पालन करते हुए निवास करो।।७३-७५।।

तत्र दिव्यवनोपेते प्रासादशतसङ्कुले। प्रोत्फुल्लपद्मसरसि स्रवच्छुद्धसरिद्वरे।।७६।।

सुगन्धिधूपस्त्रग्वस्त्रवराभरणभूषितः। स्त्रक्चन्दनादिमुदितो गेयनृत्यमनोरमे॥७७॥
पानान्नभोगान्विविधानुपभुङ्क्ष्व महासुर।
ममाऽऽज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः॥७८॥

उस दिव्य वनों से युक्त सैकड़ों राजभवनों से सुशोभित, खिले हुए पुष्पों से सुमनोहर सरोवरों वाले सुन्दर नदियों के प्रवाहों से रमणयी, सुन्दर गान एवं नृत्यों से मनोहर उस सुतल लोक में सुगन्धित पदार्थों, धूप, माला, आदि विविध सौख्य साधनों से सुसज्जित अनेक सुन्दर वस्त्रों आभूषणों से विभूषित हो तथा पुष्प चन्दनादि से प्रसन्न मन हो तुम निवास करो और विविध प्रकार के अन्न पान की सामग्रियों को उपभोग करो। मेरी आज्ञा से उपर्युक्त अवधि तक तुम सौ स्त्रियों से युक्त होकर वहाँ निवास करो॥७६-७८॥

यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं करिष्यसि। तावदेतान्महाभोगानवाप्स्यसि महासुर॥७९॥
यदा च देवविप्राणां विरोधं त्वं करिष्यसि।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वरुणास्त्वामसंशयम्॥८०॥
एतद्विदित्वा भवता मयाऽऽज्ञप्तमशेषतः। न विरोधः सुरैः कार्यो विप्रैर्वा दैत्यसत्तम॥८१॥

इस प्रकार जब तक देवताओं तथा ब्राह्मणों से तुम विरोध नहीं करते हो, हे महाअसुर! तब तक तुम इन सभी अमूल्य भोगों का उपभोग करते रहोगे। जब देवताओं तथा ब्राह्मणों से विरोध करोगे, तब निश्चय है कि वरुण के पाश तुम्हें बन्धन में डालेंगे। इस बात को भली-भाँति समझ-बूझकर आप मेरी समस्त आज्ञाओं का पालन करते रहेंगे। हे दैत्यपति! कभी भूलकर भी देवताओं तथा ब्राह्मणों से आप विरोध नहीं करेंगे॥७९-८१॥

शौनक उवाच

इत्येवमुक्तो देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना। बलिः प्राह महाराज प्रणिपत्य मुदा युतः॥८२॥

शौनक ने कहा-विजयशील वामनस्वरूप धारी भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर अति प्रमुदित चित्त हो बलि ने प्रणाम करते हुए कहा॥८२॥

बलिरुवाच

तत्राऽऽसतो मे पाताले भगवन्भवदाज्ञया। किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्॥८३॥

बलि ने कहा-हे भगवन्! आपके आदेश से पाताल लोक में निवास करते समय मुझे किन उपभोग्य वस्तुओं के ग्रहण करने का अधिकार होगा॥८३॥

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम्॥८४॥

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः। फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च॥८५॥

श्री भगवान् ने कहा–बिना विधान के दिया हुआ दान, बिना श्रोत्रिय ब्राह्मण से कराया हुआ श्राद्ध, बिना श्रद्धा के की गई आहुति, ये सब वस्तुएँ जितनी भी होंगी, सभी तुम्हें फल देंगी। बिना दक्षिणा के किया हुआ यज्ञ, बिना विधि के की गई सारी क्रियाएँ, व्रतों का परित्याग करके किया गया अध्ययन–इन सबका भी फल तुम्हें प्राप्त होगा।।८४-८५।।

शौनक उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय त्रिदिवं तथा। व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः॥८६॥
प्रशशासं यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूजितः। सिषेवे च परान्कामान्बलिः पातालसंस्थितः॥८७॥
(इहैव देवदेवेन बद्धोऽसौ दानवोत्तमः। देवानां कार्यकरणे भूयोऽपि जगति स्थितः॥८८॥
सम्बन्धी ते महाभाग द्वारकायां व्यवस्थितः। दानवानां विनाशाय भारावतरणाय च॥८९॥
यतो यदुकुले कृष्णो भवतः शत्रुनिग्रहे। सहायभूतः सारथ्यं करिष्यति बलानुजः॥९०॥
एतत्सर्वं समाख्यातं वामनस्य च धीमतः। अवतारं महावीर श्रोतुमिच्छोस्तवार्जुन॥९१॥

शौनक ने कहा–इस प्रकार बलि को वरदान तथा इन्द्र को स्वर्ग का राज्य देकर भगवान् अपने उस त्रिलोकव्यापी विराट् शरीर से अदृष्य हो गये। तीनों लोकों से पूजित इन्द्र अब पूर्ववत् अपना शासन-कार्य चलाने लगे। पाताल में अवस्थित दानवपति बलि अपने परममनोरथों का सेवन करने लगे। हे महाभाग! देवाधिदेव भगवान् से बाँधा गया दानवराज बलि यहाँ पर स्थित है और देवताओं के कार्य के लिए भगवान् फिर इस पृथ्वीतल पर अवतीर्ण हुए हैं, जो द्वारका में दानवों के विनाशार्थ एवं पृथ्वीं के भार आहरणार्थ तुम्हारे सम्बन्धी (कृष्ण) के रूप में विराजमान हैं और शत्रु को वश में करने में लगे हुए आप की सहायता के लिये यदुकुल में उत्पन्न हो वे भगवान् बलराम के अनुज के रूप में आपके सारथी होंगे। हे महावीर अर्जुन! यह सब कथा महात्मा वामन के अवतार के विषय में तुम्हें सुना चुका।।८६-९१।।

अर्जुन उवाच

श्रुतवानिह ते पृष्टं माहात्म्यं केशवस्य च। गङ्गाद्वारमितो यास्याम्यनुज्ञां देहि मे विभो॥९२॥

अर्जुन ने कहा–महाराज आपके मुख से भगवान् विष्णु के माहात्म्य को तो मैं पूछकर सुन चुका, अब यहाँ से गंगाद्वार जाने की मेरी अभिलाषा है, अतः आज्ञा प्रदान कीजिये।।९२।।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा ययौ पार्थो नैमिषं शौनको गतः)।
इत्येतद्देवदेवस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्॥
वामनस्य पठेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९३॥

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः। बलेर्विष्णाश्च कथितं यः स्मरिष्यति मानवः॥९४॥

नाऽऽधयो व्याधयस्तस्य न च मोहाकुलं मनः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन॥९५॥
च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टाप्तिं च वियोगवान्।
अवाप्नोति महाभागो नरः श्रुत्वा कथामिमाम्॥९६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावो नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२३९०॥

सूत ने कहा–ऋषिगण! ऐसी बातें करने के उपरान्त महावीर अर्जुन गंगाद्वार को प्रस्थित हुए और शौनक मुनि भी वहाँ जाने को प्रस्थित हुए। देवाधिदेव भगवान् वामन का वह माहात्म्य मैं आप लोगों को सुना चुका, जो इसको पढ़ता हैं, सभी पापों से छुटकारा पाता है। बलि और प्रह्लाद का सम्वाद, बलि और शुक्र की सम्मतियाँ, बलि और विष्णु का कथोपकथन, इन सबको जो मनुष्य स्मरण करता है, उसको किसी प्रकार की आधि-व्याधि नहीं होती और न उसे कभी आकुलता का अनुभव ही होता है। राज्य से विहीन राजा अपना राज्य एवं वियोगी अपने इष्ट की प्राप्ति इस पुण्यप्रदायिनी कथा को सुनकर प्राप्त करता है।।९२-९६।।

।।दो सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४६।।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाराह अवतार की कथा

अर्जुन उवाच

प्रादुर्भावान्पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः। सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम्॥१॥
जाने न तस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम्। न कर्म गुणसंस्थानं न चाप्यन्तं मनीषिणः॥२॥

किमात्मको वराहोऽसौ किंमूर्तिः कास्य देवता।
किंप्रमाणः किंप्रभावः किंवा तेन पुरा कृतम्॥३॥

एतन्मे शंस तत्त्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम्। यथार्हं च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः॥४॥

अर्जुन ने कहा–हे विप्र! अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णु के अवतारों को कहने वाले महानुभावों से पुराणों में हमने वाराह अवतार की कथा सुनी है; किन्तु उस अवतार के चरित्र को मैं

नहीं जानता, न उसकी कोई विधि हमें मालूम है, न विस्तार ही मालूम है। उसके कर्म, गुण, आदि, अन्त के विषय में भी हमें कुछ नहीं मालूम है। न यही मालूम है कि वे वाराह रूपधारी भगवान् किस प्रकार के है? उसकी मूर्ति कैसी है? उनके देवता कौन-से हैं? उनका प्रमाण तथा प्रभाव कैसा है? प्राचीन काल में उन्होंने अवतार धारण कर क्या कार्य किये हैं? इसलिये वाराह अवतार के विषय में जो बातें पुराणों में सुनी जाती हों विशेषतः द्विज जातियों में इस कथा का जैसा प्रचार हो, हमें विस्तारपूर्वक सुनाईये।।१-४।।

शौनक उवाच

एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम्। महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः।।५।।
यथा नारायणो राजन्वाराहं वपुरास्थितः। दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः।।६।।
छन्दोगीर्भिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलङ्कृतः।
मनः प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना।।७।।
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्। नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत्।।८।।
पुराणं वेदमखिलं सांख्यं योगं च वेद यः।
कात्स्न्येन विधिनाप्रोक्तं सोऽस्यार्थं वेदयिष्यति।।९।।

शौनक ने कहा-अर्जुन! अद्भुतकर्मी भगवान् कृष्ण के ब्रह्मसम्मित महावाराह चरित को, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, मैं आपको सुना रहा हूँ। हे राजन्! जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने वाराह रूप धारण किया, समुद्र-स्थित पृथ्वी का उन शत्रुमर्दन ने जिस प्रकार अपने एक दाढ़ से उद्धार किया, सुकोमल एवं ललित वेद की उक्तियों से छन्दों में जिस प्रकार उनका अभिनन्दन किया गया- वह सब मैं अब आप से बतला रहा हूँ प्रसन्नचित्त हो सुनो! किन्तु इस परम पुरातन, परम पुनीत, वेदों तथा शास्त्रों से सम्मित अनेक श्रुतियों से अनुमोदित महावाराह चरित को नास्तिक व्यक्तियों के सम्मुख नहीं करना चाहिये। जो सभी पुराणों, वेदों, सांख्य योगादि शास्त्रों को विधिपूर्वक जानता हैं, वही इसके तात्पर्य को जान सकेगा, समझ सकेगा, उसी से इसकी कथा भी कहनी चाहिये।।५-९।।

विश्वे देवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ।
प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः।।१०।।
मनः सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा। वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः।।११।।
दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याःशूद्रा म्लेच्छाश्च ये भुवि।।१२।।
चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिशतानि च।
जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम्।।१३।।

पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते। निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे॥१४॥
हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः।
शिखाभिर्विधमँल्लोंकानशोषयत वह्निना॥१५॥

विश्वेदेवगण, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार, प्रजापतिगण, सातों महर्षि, ब्रह्मा के मानसिक संकल्प से होने वाले सनकादि ब्रह्मर्षि, जो ऋषियों के पूर्वज नाम से विख्यात हैं, वसुगण, मरुत्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध प्रकार के जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ आदि जितनी जातियाँ पृथ्वी पर हैं, सभी चतुष्पद (चौपाये), सैकड़ों तिर्यक् योनि में जन्म लेने वाले, (पक्षी आदि) जंगम जीवगण, स्थावर-जीवगण-इन सभी को एक सहस्र युगों के व्यतीत हो जाने पर, जबकि ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है और सभी जीवों का विनाश होने लगता है एवं सृष्टि में सभी प्रकार के उपद्रव होने प्रारम्भ हो जाते हैं, तब हिरण्यरेता भगवान् जो वृषाकपि नाम से विख्यात हैं, तीन शिखाओं (ज्वालाओं) से युक्त होकर अपनी उग्र ज्वालाओं से सभी लोकों का विनाश करते हुए दग्ध कर देते हैं।।१०-१५।।

दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः। विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः॥१६॥
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः। सर्वविद्या क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः॥१७॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम्। सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तु कोटयः॥१८॥

उस अवसर पर निकलते हुए तेज की राशियों से जलते हुए एवं तेजस्वी तथा ज्वालाकुल उनके मुखों की कान्ति से फीके रंग वाले तथा जले हुए अंगों वाले होकर छहों अंगों तथा उपनिषदों के साथ वेद, इतिहास पुराणादि, सभी विद्याएँ, सभी धार्मिक क्रियाएँ तैंतीस करोड़ देवताओं के साथ ब्रह्मा को अगुवा बनाकर सभी के उत्पत्तिकर्ता भगवान् के मुख के भीतर प्रविष्ट हो गई।।१६-१८।।

तस्मिन्नहनि सम्प्राप्ते तं हंसं महदक्षरम्। प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम्॥१९॥
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते। यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह॥२०॥

उस ब्रह्मा के एक दिन व्यतीत होने के अवसर पर उन हंस, महान् अच्युत, महात्मा हरि, नारायण, प्रभु में समस्त चराचर जगत् प्रविष्ट हो गया। जिस प्रकार सर्वदा सूर्य का उदय और अस्त निश्चित रूप से हुआ करता है, उसी प्रकार पुनः-पुनः उत्पन्न होने वाले इस लोक में भी सबकी उत्पत्ति और विनाश होते रहते हैं।।१९-२०।।

पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते। यस्मिञ्जीवकृतं सर्वे निःशेषं समतिष्ठत॥२१॥
संहृत्य लोकानखिलान्सदेवासुरमानुषान्।
कृत्वा सुसंस्थां भगवानास्त एको जगद्गुरुः॥२२॥

सहस्र युग जिस समय समाप्त हो जाते हैं, उस समय एक कल्प की समाप्ति हो जाती है, जिसमें सभी जीवों के कार्य भी समाप्त हो जाते हैं। उस समय देवता, असुर, मानव आदि ये समेत,

सभी लोकों का सहांर कर अपने में समाविष्ट करके एकमात्र जगद्गुरु भगवान् विराजमान् होते हैं।।२१-२२।।

स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।
अव्ययः शाश्वतो देवो यस्य सर्वमिदं जगत्।।२३।।

प्रत्येक कल्पों की समाप्ति पर वे ही भगवान् जो अव्यय तथा शाश्वत कहे जाते हैं, एकमात्र जिन्होंने इस विशाल जगत् का विस्तार किया है, सभी जीवों की पुनः सृष्टि करते हैं।।२३।।

नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते। त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये।।२४।।
अपक्षिगणसम्पाते सर्वप्राणहरे पथि। अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसाऽऽवृते।।२५।।
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम्। प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे।।२६।।
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके। परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे।।२७।।

जब सभी लोकों में सूर्य किरणों के विनष्ट हो जाने तथा चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों के न रह जाने पर, जब कि धूम, अग्नि, पवन भी इस संसार में नहीं रह जाते, यज्ञों में वषट्कार की ध्वनि अस्त हो जाती है, पक्षीगणों का इधर-उधर फुदकना बन्द हो जाता है, अर्थात् सभी प्राणियों का अस्तित्व ही लोप हो जाता है, सभी मार्ग शून्य में विलीन हो जाते हैं, भयानक भीषणता की मर्यादा अपनी सीमा के बाहर पहुँच जाती है, चारों ओर घोर निविड़ अन्धकार में जगत् आच्छन्न हो जाता है, तात्पर्य यह कि सभी लोक अदृश्य हो जाते हैं, सभी कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाता है, विशाल जगत् में कहीं कोई भी व्यापार नहीं चलता, परस्पर के वैरभाव सर्वदा के लिए शान्त हो जाते हैं, चारों ओर घोर निस्तब्धता छा जाती है, सभी लोक नारायण के स्वरूप में संहित होकर अपने स्वभाव में विलीन हो जाते हैं, उस समय हृषीकेश भगवान्, जो परमेष्ठी कहे जाते हैं, अपने शयन का समारम्भ करते हैं।।२४-२७।।

पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीभूतसन्निभः। शिखासहस्त्रविकचजटाभारं समुद्वहन्।।२८।।
श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम्। वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स विद्युदिव तोयदः।।२९।।
पुण्डरीकसहस्त्रेण स्त्रगस्य शुशुभे शुभा। पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति।।३०।।

उस समय पीताम्बरधारी लाल नेत्र, घनश्याम कृष्ण भगवान् सहस्त्रों शिखाओं से युक्त जटा का भार सिर पर धारण किये, श्रीवत्स पद से चिह्नित लाल चन्दन से अनुलिप्त वक्षः स्थल से सुशोभित हो, बिजली से युक्त बादल की भाँति शोभायमान होते हैं। उस समय उनके वक्षःस्थल से सहस्त्र कमलों से गुथी हुई मनोहारिणी माला शोभायमान होती हैं, उस समय उनकी स्त्री लक्ष्मी स्वयं उनके शरीर को घेरे हुए विराजमान रहती हैं।।२८-३०।।

ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोकशुभावहः।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः।।३१।।

ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः। स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः॥३२॥
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत्। नरान्देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा॥३३॥

तदनुसार शान्तात्मा सभी लोकों के कल्याणकारी योगात्मा भगवान् निद्रा में निमग्न हुए और एक सहस्र युग व्यतीत होने पर देवताओं के स्वामी परमात्मा पुरुषोत्तम स्वयमेव जाग्रत होते हैं और फिर से वे लोकस्रष्टा लोक की सृष्टि का विचार करते हैं तथा अपने परमेष्ठी कर्म (विरचन शक्ति) द्वारा मनुष्यों और देवताओं की सृष्टि करते हैं।।३१-३३।।

ततः सञ्चिन्तयन्कार्यं देवेषु समितिञ्जयः। सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतां गतिः॥३४॥
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः। नारायणः परं सत्यं नारायणः परं पदम्॥३५॥
नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः। स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टा भुवनाधिपः॥३६॥

तदनन्तर सत्पुरुषों को सङ्गति प्रदान करने वाले समितिंजय हरि सभी लोकों के उत्पन्न करने का विधान करते हैं। वे ही भगवान् इस समस्त सृष्टि के कर्त्ता हैं, विकर्त्ता अर्थात् बिगाड़ने वाले हैं, संहार करने वाले हैं, प्रजापति हैं, नारायण हैं। वे नारायण ही परम पद तथा सर्वश्रेष्ठ यज्ञ हैं। वे ही परम गति, स्वयम्भू, सभी भुवनों के स्वामी तथा बनाने वाले हैं।।३४-३६।।

स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः। यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते॥३७॥
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः। प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः॥३८॥
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः।
यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्ति देवताः॥३९॥

यज्ञ स्वरूप प्रजापति भगवान् ही जगत् के सर्वस्व हैं, देवतागण जिनको 'जानने योग्य' कहते रहते हैं, वे भगवान् यही हैं। भगवान् की कृपा द्वारा जो जाना जा सकता है, उसे देवगण भी नहीं जानते हैं। सभी प्रजापति, देवतागण एवं सभी ऋषिगण उन भगवान् का अन्त नहीं पा सके- ऐसा वेदों में सुना जाता है। इन परमात्मा का परमस्वरूप है, उसे देवता लोग भी देखने में असमर्थ हैं।।३७-३९।।

प्रादुर्भावे तु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः। दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्षन्ति देवताः॥४०॥
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते। ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः॥४१॥
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च। चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः॥४२॥

उन भगवान् के प्रादुर्भाव काल में जिस स्वरूप का दर्शन होता है, देवगण उसी स्वरूप की पूजा करते हैं। वे भगवान् स्वयं अपने जिस रूप को दिखा चुके हैं, देवगण उसी को देखते रहते हैं और अपने जिस स्वरूप का दर्शन उन्होंने दिया है, उसे कौन ढूँढ़ सकता है? वे परमात्मा भी जीवों के स्वमी हैं, अग्नि और वायु को गति देने वाले हैं, तेज-तपस्या एवं अमृत के निधान हैं, चारों आश्रमों तथा धर्मों के स्वामी हैं, सभी यज्ञों के फलों का भक्षण करने वाले हैं।।४०-४२।।

चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः। तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः॥
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्ष सहस्रकम्॥४३॥
सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकः ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसंकुलं किल तदाऽसृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः॥४४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वाराहप्रादुर्भावे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२४३४॥

चारों समुद्रों तक उनकी मर्यादा स्थित है, वे ही चारों युगों की निवृत्ति करने वाले हैं। वे भगवान् इस समस्त जगत् का संहार कर तथा सबको अपने भीतर समेट कर अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार की समस्त घटनाओं के घटित होने पर सहस्र वर्षों तक उक्त स्वरूप में शयन करने वाले योगिराट् भगवान् ने एक सहस्र वर्ष से सुरक्षित एक अण्ड को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन प्रजापति भगवान् ने अपनी आत्मा से सुर, असुर, द्विज, सर्प, अप्सराओं के समूह, समस्त औषधि, पर्वत, यक्ष एवं गुह्यक से युक्त इस जगत् की उत्पत्ति की॥४३-४४॥

॥दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४७॥

❖❖❖❖

अथाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्ड वर्णन

शौनक उवाच

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम्। प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः॥१॥

शौनक ने कहा-अर्जुन! यह चराचक जगत् सर्वप्रथम हिरण्यमय दिव्य अण्ड के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। यह अण्ड ही प्रजापति की मूर्ति है- ऐसा वेदों में सुना गया हैं॥१॥

तत्तु वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः। लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं पुनः॥२॥

एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर यह अण्ड परमात्मा की प्रेरणा से ऊर्ध्व मुख में विभिन्न हुआ और पुनः लोकसृष्टि के लिए विभु ने उसे अधोमुख से भी विभिन्न किया॥२॥

भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत्। चकार जगतश्चात्र विभागं स विभागकृत्॥३॥

फिर लोकों की सृष्टि एवं जगत् के विभाग करने वाले उस परमात्मा विष्णु भगवान् से उस अण्ड को आठ ओर से विभिन्न किया और उससे समस्त जगत् का विभाग किया॥३॥

यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम्। विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम्।।४।।

जो छिद्र सर्वप्रथम ऊपर की ओर हुआ था, वह विवर (पोल के आकार में परिणत होकर आकाश हुआ, इसी प्रकार विश्वयोग परमात्मा ने नीचे की ओर होने वाले छिद्र को रसातल रूप में परिणत किया।।४।।

यदण्डमकरोत्पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया। तत्र यत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः।।५।।
शैलेः सहस्त्रैर्महती मेदिनी विषमाऽभवत्।।६।।

लोकसृष्टि की कामना से जिस अण्ड को भगवान् ने पूर्वकाल में उत्पन्न किया था, उससे जो जल नीचे चुआ था, उससे कांचन या सुमेरु गिरि हुआ और उस प्रकार के सहस्रों पर्वतों के विस्तृत हो जाने के कारण पृथ्वी विषमा अर्थात् ऊँची-नीची हो गई।।५-६।।

तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः। पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा।।७।।
महामते भूरिबलं दिव्यं नारायणात्मकम्। हिरण्मयं समुत्सृज्य तेजो वै जातरूपिणम्।।८।।
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा। पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः।।९।।
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधो मधुसूदनः।
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया।।१०।।

उन पर्वतों के समूहों से, जो अनेक योजनों तक पृथ्वीतल पर फैले हुए थे, पीड़ित तथा उनके अपार भार से पृथ्वी व्यथित हो गई। हे महामते! अति पराक्रमशाली नारायण से उत्पन्न हुए उस तेज को, जो सुवर्णमय था, पृथ्वी धारण करने में असमर्थ होकर नीचे की ओर खिसकने लगी इस प्रकार उस भगवत्तेज से पीड़ित होकर नीचे को खिसकती हुई पृथ्वी को देखकर मधुसूदन भगवान् ने कल्याण की भावना से उसके उद्धार की इच्छा की।।७-१०।।

भगवानुवाच

मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी। रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला।।११।।

श्री भगवान् ने कहा- मेरे तेज को प्राप्त कर यह तपस्विनी पृथ्वी बेचारी उसे धारण करने की असमर्थता से कीचड़ में फँसी हुई दुबली गौ की भाँति रसातल को चली जा रही है।।११।।

पृथिव्युवाच

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।।१२।।

पृथ्वी ने कहा-अमित पराक्रमशाली, त्रिविक्रम (वामन रूपधारी)! सुरोत्तम महावराह स्वरूपधारी, लक्ष्मी, धनुष, चक्र, खड्ग एवं गदाधारण करने वाले सभी देवताओं में श्रेष्ठ! आपको मेरा प्रणाम है, भगवन्! मुझ पर कृपा की दृष्टि कीजिये।।१२।।

तव देहाजगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम्। ब्रह्माणमिहलोकानां भूतानां शाश्वतं विदुः॥१३॥

परमात्मन्! तुम्हारे ही शरीर से समस्त जगत् की उत्पत्ति हुई है, तुम्हारे ही शरीर से पुष्कर द्वीप की उत्पत्ति हुई है, तुम्हारे शरीर से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने इस लोक में एवं सभी प्राणियों में सनातन की प्रतिष्ठा प्राप्त की है।।१३।।

तव प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः। तव क्रोधाद्धि बलवाञ्जनार्दन जितो बलिः॥१४॥

तुम्हारे अनुग्रह से देवराज इन्द्र स्वर्ग का उपभोग कर रहे हैं, हे जनार्दन! तुम्हारे ही क्रोध से बलवान् बलि जीता गया है।।१४।।

(धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनो घनः॥१५॥
वर्णाश्चाऽऽश्रमधर्माश्च सागरास्तरवोऽचलाः।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञा यज्ञस्य च क्रियाः॥१६॥
विद्या वेद्यं च सत्त्वं च ह्रीः श्रीः कीर्तिर्धृतिः क्षमा।
पुराणं वेदवेदाङ्गं साङ्ख्ययोगौ भवाभवौ॥१७॥

जङ्गमं स्थावरं चैव भविष्यं च भवच्च यत्। सर्वं तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितं तव॥१८॥

तुम्हीं इस निखिल ब्रह्माण्ड के धाता हो, विधाता हो एवं संहर्ता हो, तुम्हीं में समस्त जगत् स्थित है। मनु अधिपत्ति कृतान्त, अनल, पवन, मेघ, ब्राह्मणादि जातियाँ, ब्रह्मचर्यादि आश्रमधर्म, सारे समुद्र, वृक्षगण, पर्वतगण, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ, यज्ञों की क्रियाएँ, विद्या, जानने योग्य अन्य बातें, जीवगण, लज्जा, श्री, कीर्ति, धैर्य, क्षमा, पुराण, वेद, वेदांग, सांख्य योग, जन्म, मरण, जङ्गम, स्थावर, भूत, भविष्यत् - ये तीनों लोकों में तुम्हारे ही प्रभाव से विद्यमान है।।१५-१८।।

त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः। सर्वलोकमनः कान्तः सर्वसत्त्वमनोहरः॥१९॥
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः। दिव्यलोकमहास्कन्धः सत्यलोकप्रशाखवान्॥२०॥
सागराकारनिर्यासो रसातलजलाश्रयः। नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः॥२१॥
शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयो द्रुमः।

तुम ही देवताओं को उत्तम फल देने वाले हो एवं स्वर्ग की रमणियों के हृदय को जीतने वाले हो, सभी लोकों के मन को प्रिय लगने वाले हो, सभी जीवों के मन को हरण करने वाले हो, तुम महान् हो, विशाल आकाशमय महावन हो, मधुर जल की वृष्टि करने वाले बादलों से युक्त दिव्यलोक महान् स्कन्ध हैं, सत्यलोक शाखा है, सागरगण रस समूह हैं, रसातल थाल्हा है, ऐरावत वृक्ष है, निखिल जीव-जन्तुगण पक्षी हैं और तुम शील, सदाचार प्रभृति श्रेष्ठ गुणरूप, गन्धयुक्त सर्वलोकमय महाद्रुम हो।।१९-२१.५।।

द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः॥२२॥
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भो महोदधिः। सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः॥२३॥
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगझषाकुलः। पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः॥२४॥

तुम त्रैलोक्य रूप महान् उदधि हो, बारह आदित्यगण उसमें द्वीप हैं, ग्यारह रुद्रगण ग्राम एवं नगर हैं, आठों वसुगण पर्वत हैं, सिद्ध और साध्यगण उस महासमुद्र की तरंगे हैं, पक्षिराज गरुड़ के पंखों की वायु उसमें चला करती है। दैत्यों के समूह घड़ियाल हैं, राक्षस और सर्पगण मछलियाँ हैं। ब्रह्मा महान् धैर्य हैं, स्वर्ग की अप्सराएँ रत्न समूह हैं।।२२-२४।।

धी श्रीह्रीकान्तिभिर्नित्यं नदीभिरुपशोभितः। कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान्॥२५॥
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायण महार्णवः। कालो भूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः॥२६॥

बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा तथा कान्ति-ये नदियाँ उसमें जाकर गिरती हैं, काल और योग ये उसके महापर्व हैं, उत्तम यज्ञों के समूह उसमें गति हैं। हे नारायण! तुम अपने योगबल द्वारा महाबलवान हो, विशाल समुद्र हो और तुम्हीं काल बनकर स्वच्छ जल के द्वारा पुनः सृष्टि को आह्लादित करने वाले हों।।२५-२६।।

त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः॥२७॥
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे। मम भारावताराय देव त्वं हि युगे युगे॥२८॥

तुम्हीं से तीनों लोकों की सृष्टि हुई है और तुम्हीं से इसका संहार होता है, योगीजन तुम्हारी ही प्रेरणा से तुझमें प्रविष्ट होते हैं। प्रत्येक युगों में तुम प्रलयाग्नि का स्वरूप धारण करते हो और प्रति युगों में प्रलयकालीन मेघ भी तुम्हीं बनते हो, हे भगवन्! मेरे भारों को उतारने के लिए तुम्हीं प्रत्येक युगों में अवतीर्ण होते हो।।२७-२८।।

त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः।
द्वापरे रक्तसङ्काशः कृष्णः कलियुगे भवान्॥२९॥

तुम्हीं सतयुग में श्वेतवर्ण, त्रेता में चम्पा के पुष्प के समान पीतवर्ण, द्वापर में रक्त के समान एवं कलियुग में श्यामवर्ण होते हो।।२९।।

वैवर्ण्यमभिधस्ते त्वं प्राप्तेषु युगसंधिषु। वैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित्॥३०॥
भासि वासि प्रतपसि त्वं च पासि विचेष्टसे।
क्रुध्यसि क्षान्तिमायासि त्वं दीपयसि वर्षसि॥३१॥
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये॥३२॥

शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः। युगान्ताग्न्यवलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन॥३३॥
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः। च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु॥३४॥

युग की सन्धियों के आने पर तुम्हीं एक वर्ण से दूसरे वर्ण के विकार में लिप्त होने की बातें कहा करते हो, हे वेदज्ञ! उस समय सभी धर्मों में भी तुम विकार उत्पन्न कर देते हो, तुम्हीं प्रकाश करते हो, विचरण करते हो, ताप उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो, यत्न करते हो, क्रोध करते हो, शान्ति उत्पन्न करते हो, जलाते हो, वृष्टि करते हो, तुम हँसते हो, त्याग करते हो, स्थिर होते हो, मारते हो, जागते हो, प्रलय काल में काल होकर सभी जीवों को निःशेष करते हो, फिर शेष बचे हुए अपने को अकेला देखकर उत्पन्न करते हो, युगान्त की अग्नि में सभी भूतों के दग्ध हो जाने पर एक मात्र तुम्हीं शेष रहते हो अतः लोग तुम्हें शेष नाम से पुकारते हैं। बह्मा, इन्द्र, वरुणादि-देवताओं की उत्पत्ति होती है॥३०-३४॥

यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्सङ्कीर्त्यसेऽच्युतः। ब्रह्माणमिन्द्रं च यमं रुद्रं वरुणमेव च॥३५॥
निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे। सन्तानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया॥३६॥
परेण वपुषा देव तस्माच्चासि सनातनः। यस्माद् ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः॥३७॥
न तेऽन्तं त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे।

उन्हें अपने पदों से च्युत होना पड़ता है; किन्तु तुम अपने पद से कभी च्युत नहीं होते हो, अतः लोग तुम्हें अच्युत कहते हैं, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र एवं वरुण को- इन सबका निग्रह करके यतः तुम हरण करते हो, अतः लोग तुम्हें हरि कहते हैं। अपने विशाल शरीर, यश और श्री द्वारा सभी जीवों का सम्मान करते हो, अतः तुम सनातन कहे जाते हो। ब्रह्मादि देवगण, अति तेजस्वी मुनिगण तुम्हारा अन्त नहीं पाते, अतः अनन्त नाम से तुम प्रसिद्ध हो॥३५-३७.५॥

न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि॥३८॥
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च अक्षरश्च प्रकीर्तितः। विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥३९॥

सैकड़ों-करोड़ों कल्पों तक कभी तुम नष्ट नहीं होते, अपने पद से विचलित नहीं होते, अतः अविचलित होने के कारण तुम 'अक्षर' नाम से प्रसिद्ध हो। सभी स्थावर जंगमात्मक जगत् को तुम अवरुद्ध रखते हो, अतः जगत् को अवरुद्ध करने के कारण तुम विष्णु कहे जाते हो॥३८-३९॥

जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे। विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥४०॥
यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम्। व्याप्तं त्वयैव त्रैलोक्यं सचराचरम्॥४१॥
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवः।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ह्यृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥४२॥
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। युगे युगे प्रनष्टां गां विष्णो विन्दसि तत्त्वतः॥४३॥
गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसे ऋषिभिस्तथा।

नित्य सचराचर त्रैलोक्य को नियमबद्ध करते हुए तुम विराजमान हो, यज्ञों एवं गन्धर्वों के नगर, महान् सर्पों के निवास स्थान, तात्पर्य यह कि समस्त चराचर त्रैलोक्य तुम्हारे ही आश्रय से परिव्याप्त है, अतः स्वयं विष्णु भगवान् तुम्हें विष्णु नाम से पुकारते हैं। तत्त्ववेत्ता ऋषिगण 'जल का नारा' नाम कहते हैं और वही पूर्वकाल में तुम्हारा निवास स्थान था, अतः लोग तुम्हें नारायण (नारा-अयन) कहते हैं। हे विष्णो! प्रत्येक युगों में नष्ट हुई पृथ्वी तत्त्वतः तुम्हीं से बचाई जाती है, अतः ऋषिगण तुम्हें गोविन्द नाम से पुकारते हैं।।४०-४३.५।।

हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्त्वज्ञानविशारदाः ।।४४।।
ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यसे। वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये।।४५।।
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे।

तत्त्वज्ञान के विशारद लोग इन्द्रियों को हृषीक कहते हैं और तुम उन सभी इन्द्रियों के ईश हो, अतः हृषीकेश नाम से प्रसिद्ध हो। युगान्त के समय ब्रह्मादि देवता तथा जीवगण तुम्हीं में निवास करते हैं, अथवा तुम्हीं स्वयं सभी जीवों में निवास करते हो, अतः लोग तुम्हें वसुदेव नाम से पुकारते हैं।।४४-४५.५।।

सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः।।४६।।
ततः सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदैः। प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः।।४७।।
प्रविद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे।

प्रत्येक कल्पों में तुम फिर-फिर से सभी जीवों को आकर्षण कर अपने में धारण करते हो, अतः तत्त्वज्ञानी लोग तुम्हें संकर्षण नाम से पुकारते हैं। तुम्हारे ही द्वार देवता, असुर एवं राक्षसगण अपने व्यूहों में अवस्थित रहते हैं, अथवा तुम सभी धर्मों के विशेष ज्ञाता हो, अतः प्रद्युम्न नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि है।।४६-४७.५।।

निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन।।४८।।
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः। यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत्।।४९।।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च। यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च।।५०।।
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया। न हि तद्विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते।।५१।।

सभी जीवों से तुम्हारी सत्ता का कोई निरोध (निवारण) करने वाला नहीं है, अतः अनिरुद्ध नाम से पूर्वकाल से महर्षिगण पुकारते आयें हैं। तुम इस विशाल जगत् को धारण करने वाले हो, तुम्हीं इसका संहार भी करते हो, तुम्हीं सब जीवों को धारण करते हो, तुम्हीं सबका पालन करने वाले भी हो, अपने तेज तथा बल से जो कुछ तुम धारण करते हो, उसी को तुम्हारे पीछे मैं धारण करती हूँ, कोई ऐसी वस्तु मैं नहीं धारण करती जिसे आपने धारण न किया हो, कोई ऐसी वस्तु या जीव नहीं है, जिसे तुमने धारण न किया हो।।४८-५१।।

त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे। महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया॥५२॥
तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम्। त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम्॥५३॥

हे नारायण देव! तुम्हीं प्रत्येक युगों में संसार की कल्याण भावना से मेरे ऊपर पड़ने वाले असहनीय महाभारों को उबारते हो। अतः तुम्हारे ही तेज से भयभीत होकर रसातल को जाती हुई मुझको तुम बचा लो, हे सुरश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ मुझे बचा लो।।५२-५३।।

दानवैः पीड्यमानाऽहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः। त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम्॥५४॥
तावन्मेऽस्ति भयं देव यावन्न त्वां ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये॥५५॥

क्रूर दानवों से, तथा दुष्ट राक्षसों से अति पीड़ित होकर मैं तुम सनातन की शरण में आयी हुई हूँ, तुम नित्य कहे जाते हो। हे देव! मेरे लिये भय का कारण तभी तक रहता है, जब तक ककुद्भी (दिलवाले) की शरण को मन से चिन्तन नहीं करती, बिना तुम्हारी शरण में आये मैं सैकड़ों संकटों में पड़ी रहती हूँ।।५४-५५।।

उपमानं न ते शक्ताः कर्त्तुं सेन्द्रा दिवौकसः। तत्त्वं त्वमेव तद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम्॥५६॥

इन्द्रादि देवगण तुम्हारी समानता करने में असमर्थ हैं, इस तत्व के वेता एकमात्र तुम्हीं हो, इसके बाद मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगी।।५६।।

शौनक उवाच

ततः प्रीतः स भगवान्तपृथिव्यै शार्ङ्गचक्रधृक्।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान्हरिः॥५७॥
अब्रवीच्च महादेवि माधवीयं स्तवोत्तमम्।
धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभवः॥५८॥
लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यते।
एतदाश्चर्यसर्वस्वं माधवीयं स्तवोत्तमम्॥५९॥
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत्॥६०॥
मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज ममाग्रतः।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम्॥६१॥

शौनक ने कहा-पृथ्वी के इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरान्त धनुष, चक्रधारी भगवान् विष्णु अति प्रसन्न हुए और यथेष्ट रूप में उसके अभीष्टों को पूर्ण किया और बोले-हे महादेवि! तुम्हारे इस माधवीय (परम मधुर) उत्तम स्तोत्र को जो मनुष्य धारण करेगा, उसे कभी पराभव नहीं देखना पड़ेगा और वह पाप रहित वैष्णव लोकों को प्राप्त करेगा। यह तुम्हारा किया हुआ परम

माधुर्य्यमय स्तोत्र आश्चर्यजनक फल देने वाला है। इसको जानने वाला पुरुष वेदों को पढ़ने वाला तथा मुनिजनों का स्नेह भाजन होता है। हे कल्याणि! धरणि! तुम तनिक भी मत डरो, मेरे सामने ही शान्ति धारण करो, अब देखों मैं तुम्हें तुम्हारे अभिलषित स्थान पर पहुँचा रहा हूँ।।५७-६१।।

शौनक उवाच

ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्। किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम्।।६२।।
जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः।) अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंस्थितम्।।६३।।

शौनक ने कहा-ऐसी बातें पृथ्वी से कहकर महात्मा भगवान् विष्णु ने मैं कौन- सा रूप धारण कर इस पृथ्वी का उद्धार करूं?-ऐसा सोचते हुए मन में दिव्य स्वरूप का चिन्तन किया और जल-क्रिड़ा की अभिलाषा से शूकर का शरीर धारण किया, जो सभी जीव समूहों से अपमानित नहीं हो सकता था, वाङ्मय ब्रह्म (वेद) उसमें अवस्थित था।।६२-६३।।

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः। नीलजीमूतसङ्काशं मेघस्तनितनिःस्वनम्।।६४।।
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम्। विद्युदग्निप्रतीकाशामादित्यसमतेजसम्।।
पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम्।।६५।।

भगवान् का शूकर शरीर सौ योजनों में विस्तृत तथा इससे द्विगुणित परिमाण में ऊँचा था, काले बादल के समान उसकी कान्ति थी, मेघों की गड़गड़ाहट की भाँति उसका घुरघुराना था। पर्वत के समान भयानक एवं सुदृढ़ उसके अंग समूह थे, श्वेतवर्ण के दाँत थे, जिसके अग्रभाग अतितीक्ष्ण थे उस समय उस दाँतों की शोभा बिजली एवं अग्नि की भाँति हो रही थी। सूर्य के समान अनुपम तेज शरीर से भासित हो रहा था, कंधा अति पुष्ट तथा चौड़ा था, बल से उन्मत्त सिंह की भाँति गति थी।।६४-६५।।

पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम्। रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितो हरिः।।६६।।
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम्। वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः।।६७।।
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः। अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः।।६८।।
आज्यनासः स्त्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान्। सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः।।६९।।

कटिदेश अति पुष्ट तथा ऊँचा था, देखने में वृषभ के लक्षणों से युक्त दिखाई पड़ता था। इस प्रकार विशाल एवं भयानक स्वरूप को धारण कर अजित भगवान् विष्णु ने पृथ्वी के उद्धार के लिए पाताल लोक में प्रवेश किया। उन ब्रह्म शीर्ष महातपस्वी भगवान् विष्णु के चारों वेद पैर थे, यज्ञों के स्तम्भ दाढ़ थे, यज्ञ दाँत थे, यज्ञ का कुण्ड मुख था, अग्नि जीभ थी, कुश रोम थे, दिन और रात नेत्र थे, वेदों के छः अंग कर्ण के आभूषण थे, आज्य नासिका थी, स्त्रुवा मुख का थूथड़ था, सामवेद का उच्चस्वर ध्वनियाँ थीं, वे भगवान् सत्य तथा धर्म से युक्त थे, श्री सम्पन्न थे, कर्म एवं विक्रम उनका सत्कार कर रहे थे।।६६-६९।।

प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मखाकृतिः। उद्गीथहोमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः॥७०॥
वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान्॥७१॥

प्रायश्चित्त उनके विशाल एवं भयानक नख थे, पशुगण उनके जानु भाग थे, यज्ञ ही उनकी आकृति थी। उद्गीथ (सामवेद का एक भाग) द्वारा हवन उनका लिंग था, यज्ञ का महाफल बीज और औषधियाँ थीं वेदी अन्तरात्मा, अथवा वायु अन्तरात्मा अस्थियों के समूह सोमरस रक्त, वेद कन्धे, तथा हवि ही सुगन्धि थे, वे भगवान् हव्य तथा कव्य के विभाग करने वाले थे।।७०-७१।।

प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः। दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्॥७२॥

अनेक दीक्षाओं से दीक्षित परमकान्तिमान् वे भगवान् ही समस्त वंशों के आदि पुरुष थे। दक्षिणा उनका हृदय था, वे परम योगी थे, महान् यज्ञों से वे मुक्त थे, स्वयं महान् थे।।७२।।

उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः। नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः॥
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥७३॥

उपाकर्म उनके होठों के फलक थे, प्रवर्ग्य सम्पूर्ण आभूषण समस्त वेद उनके गमन के मार्ग, गोपनीय उपनिषद उनके आसन थे। छाया ही उनकी पत्नी थी, मणि के शृङ्ग की भाँति के ऊँचे उठे हुए दिख रहे थे।।७३।।

रसातलतले मग्नां रसातलतलं गताम्। प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणाज्जहार ताम्॥७४॥
ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः। मुमोच पूर्व मनसा धारितां च वसुन्धराम्॥७५॥
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात्। चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे॥७६॥

रसातल में गई, पाताल तल में मग्न उस पृथ्वी का उन भगवान् ने लोक की हितकामना से दाढ़ के अग्रभाग से उद्धार किया और तत्पश्चात् पृथ्वी के धारण करने वाले वाराह भगवान् ने अपने स्थान पर लाकर प्राचीन काल में मन से धारण की हुई वसुन्धरा को छोड़ा और तब पृथ्वी देवी प्रभु से धारण किये के कारण परमशान्ति को प्राप्त हुईं। उस कल्याणकारी भगवान् को उसने प्रणाम किया।।७४-७६।।

एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना। उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा॥७७॥
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया। पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः॥७८॥
रसां गतामेवमचिन्त्यविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक्।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः॥७९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावो नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२५१३।।

—❊❊❊—

प्राचीन काल में इस प्रकार समुद्र के जल में निमग्न हुई पृथ्वी का जीवों के कल्याण करने वाले भगवान् ने यज्ञवाराह रूप धारण कर उद्धार किया था। तत्पश्चात् पृथ्वी का उद्धार कर कमललोचन भगवान् विष्णु ने जगत् की स्थापना के लिए तथा पृथ्वी को विभक्त करने के लिये इच्छा की। अतुलित पराक्रमी, अचिन्त्य विक्रमशाली, सुरोत्तम, वृषाकपि भगवान् ने महान् वाराह का रूप धारण कर रसातल को गई हुई पृथ्वी का इस प्रकार अपनी दाढ़ी के अग्रभाग द्वारा उद्धार किया।।७७-७९।।

।।दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४८।।

अथैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अमृत मन्थन

ऋषय ऊचुः

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत यथाक्रमम्।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम्।।१।।
कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः। तपसा कर्मणा वाऽपि प्रसादात्कस्य तेजसा।।२।।

ऋषियों ने कहा–सूत जी! क्रमानुसार भगवान् नारायण के माहात्म्य को सुनते हुए भी हमें तृप्ति नहीं मिलती, अतः पुनः यह कथा बतलाइये कि प्राचीनकाल में किस प्रकार के कर्म, तपस्या अथवा किस देवता की कृपा के प्रभाव से विचक्षण देवताओं को अमरत्व की प्राप्ति हुई थी?।।१-२।।

सूत उवाच

यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक्। तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ।।३।।

सूत ने कहा- उस अमरत्व प्राप्ति के कार्य में भगवान् विष्णु एवं त्रिशूलधारी शंकर जी सभी देवताओं की सहायता में तत्पर थे, तब उन्हें अमरता की प्राप्ति हुई थी। उनके इस कार्य में ये ही सहायक कहे जाते हैं।।३।।

पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः। पुनः सञ्जीवनीं विद्यां प्रायोज्य भृगुनन्दनः।।४।।
जीवापयति दैत्येन्द्रान्यथा सुप्तोत्थितानिव। तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना।।५।।

प्राचीन काल में देवासुर-संग्राम में देवताओं द्वारा मारे गये सैकड़ों राक्षसों को भृगुनन्दन शुक्राचार्य संजीवनी विद्या के प्रभाव से पुनः जीवित कर देते थे और वे इस प्रकार फिर उठकर लड़ने लगते थे, मानो सो कर उठ पड़े हों। उन शुक्राचार्य को यह विद्या भगवान् शंकर ने अति सन्तुष्ट होकर बताई थी।।४-५।।

मृतसञ्जीवनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा। तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम्॥६॥
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुदुः सर्वदानवाः। ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता॥७॥

यह माहेश्वरी संजीवनी विद्या अति प्रभावकारी थी। महेश्वर के मुख से बताई गई उक्त संजीवनी विद्या को शुक्राचार्य में स्थित देख सभी दानवगण अति प्रमुदित हुए और उक्त विद्या के प्रभाव से ही शुक्राचार्य राक्षसों को अमरत्व की प्राप्ति करा देते थे।।६-७।।

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां यक्षरक्षसाम्। न नागानामृषीणां च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु॥८॥
तां लब्ध्वा शङ्कराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः। ततो दैवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत्॥९॥
तत्र देवैर्हतान्दैत्याञ्छुङ्क्रो विद्याबलेन च। उत्थापयति दैत्येन्द्राँल्लीलयैव विचक्षणः॥१०॥

यह संजीवनी विद्या किसी अन्य यक्ष, राक्षस, देवताओं अथवा नागनी, ऋषियों, मुनियों यहाँ तक कि ब्रह्मा और विष्णु को भी नहीं मालूम थी। ऐसी परम गोपनीय एवं उपयोगी विद्या को शंकर जी से प्राप्त कर शुक्राचार्य को परम प्रसन्नता थी। संयोगवश कभी एक बार देवताओं और राक्षसों में महान् -युद्ध छिड़ गया, उनमें देवताओं द्वारा मारे गये बड़े-बड़े दैत्यों को विचक्षण शुक्राचार्य अपनी विद्या के बल से लीलापूर्वक फिर जीवित कर उठा देते थे।।८-१०।।

एवंविधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः। हन्यमानास्तो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः॥११॥
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः। ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान्कमलोद्भवः॥
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः॥१२॥

ऐसा देख इन्द्र तथा उदारचेता बृहस्पति ने सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में देवताओं को मारा गया देख अति विषादयुक्त हुए और सभी देवगण भी चिन्ता से विकल हो गये। इस प्रकार चिन्तित होने पर जगत्पति कमलोद्भव ब्रह्मा जी ने सुमेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर अवस्थित बड़े-बड़े देवताओं से ऐसा कहा।।११-१२।।

ब्रह्मोवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम्।
क्रियतां दानवैः सार्धं सख्यमत्राभिधार्यताम्॥१३॥
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः।

ब्रह्मा ने कहा-देवगण! मेरी बातें सुनियें और उनके अनुकूल उपायों का चिन्तन कीजिये। इस कार्य में आप लोग दानवों के साथ मित्रता का सम्बन्ध जोड़ लीजिये और अमृत प्राप्ति का उद्योग करते जाइये, तथा क्षीर समूद्र का मन्थन करिये।।१३.५।।

सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम्॥१४॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रो बलिः स्वामी स्तोककालं निवेश्यताम्॥१५॥

प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः।
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलो मन्थकाय प्रवर्त्यताम्॥१६॥
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम्।

वरुण की सहायता प्राप्त कर भगवान् चक्रपाणि को उद्बोधित करते जाइये। इस मन्थन कार्य में मन्दराचल को मन्थन दण्ड बनाकर शेषनाग को उसका वेष्टन (बरेत) बनाइये, थोड़े समय के लिए इस मन्थन के कार्य में दानवेन्द्र बलि को अध्यक्ष रूप में शामिल कराइये तथा पाताल लोक में विराजमान अव्यय कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु की प्रार्थना कीजिये और मन्दराचल की भी प्रार्थना कीजिये। इन सब साधनों के प्राप्त हो जाने के बाद समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ कर दीजिये।।१४-१६.५।।

अलं विरोधेन वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना॥१७॥
क्रियताममृतोद्योगो व्रियतां शेषनेत्रकम्। त्वया चोत्पादिते दैत्य अमृतेऽमृतमन्थने॥१८॥
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः।

ब्रह्मा की बातें सुनकर देवगण दानवों के निवास स्थान को गये और कहा कि- हे बले! अब हमें आपसे विरोध करने की कोई आवश्यकता नहीं है, अब से हम लोग आपके सेवक हैं, कृपा करके अमृत प्राप्ति के लिए उद्योग कीजिये और इस कार्य में शेषनाग को हमें दीजिये। हे दैत्य! तुम्हारी सहायता से समुद्र मन्थन करके उत्पन्न किये गये अमृत से हम सभी लोग अमर हो जायँगे। तुम्हारी कृपा से हम लोगों की यह अभिलाषा पूर्ण हो जायेगी, इनमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।१७-१८.५।।

एवमुक्तस्तदा दैवैः परितुष्टः स दानवः॥१९॥
यथा वदत हे देवास्तथा कार्यं मयाऽधुना। शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम्॥२०॥
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना।

इस प्रकार देवताओं के विनीत स्वर में कहने पर बलि अति सन्तुष्ट हुआ और बोला- 'देवगण! बताईये, मैं आप लोगों की कौन-सी इस समय सहायता करूं? मैं तो अकेला ही क्षीर सागर का मन्थन करने में समर्थ हूँ। आप लोगों को अमरत्व की प्राप्ति कराने के उद्देश्य से मैं अकेला ही क्षीर-समुन्द्र से मथकर दिव्य अमृत को निकाल सकता हूँ।।१९-२०.५।।

सुदूरादाश्रयं प्राप्तान्प्रणतानपि वैरिणः॥२१॥
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति। पालयिष्यामि वः सर्वानधुना स्नेहमास्थितः॥२२॥

दूर से आश्रय के लिये आये हुए विनत वैरियों को जो व्यक्ति सम्मानि नहीं करता, सन्तुष्ट नहीं करता, वह इस लोक तथा पर-लोक दोनों में नष्ट होता है। अब मैं अति स्नेहपूर्वक तुम सभी लोगों की रक्षा करूँगा।।२१-२२।।

एवमुक्ता स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा। मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम्॥२३॥
मन्था भव त्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने। सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं यतः॥२४॥
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम। यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामि मथिष्ये वरुणालयम्॥२५॥
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद्भ्रमेण मम।

ऐसा कहकर दैत्येन्द्र बलि देवताओं के साथ के लिए मन्दराचल से प्रार्थना करते हुए बोला–'मन्दर! इस अमृत–मन्थन के कार्य में, जो कि देवताओं तथा राक्षसों सभी के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, तुम मन्थन–दण्ड बनो।' मन्दराचल ने कहा कि–'मुझे अंगीकार है, यदि हमारा आधार कोई मिले तब, जिस पर स्थित होकर मैं मन्थन कर सकूँ। ऐसा होने पर मैं वरुणालय का मंथन करूँगा; किन्तु इस कार्य में बरेत के कार्य के लिए भी, जोकि मेरे घुमाने की क्षमता रखता हो, निश्चित कर लीजिये।।२३–२५.५।।

ततस्तु निर्गतौ देवौ कूर्मशेषौ महाबलौ॥२६॥
विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ। ऊचुतुर्गर्वसंयुक्तं वचनं शेषकच्छपौ॥२७॥

मन्दर के ऐसा कहने पर महाबलवान् कूर्म तथा शेषनाग पाताल लोक से ऊपर आये, जो कि भगवान् विष्णु के चतुर्थ अंशरूप में पृथ्वी के भार को थामने के लिये नियुक्त थे। उन शेष तथा कच्छप के आकर भगवान् से गर्वीले स्वर में कहा।।२६–२७।।

कूर्म उवाच

त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते। किमु मन्दरकात्क्षुद्राद्गुटिकासन्निभादिह॥२८॥

कूर्म ने कहा–इस समस्त त्रैलोक्य को धारण करने पर भी मुझे थकावट नहीं मालूम पड़ती तो भला इस प्रकार के कार्य से छोटी गुड़िया के समान मन्दर को थामने में मुझे क्या कठिनाई पड़ेगी?।।२८।।

शेष उवाच

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा। न मे ग्लालिर्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने॥२९॥

शेष ने कहा–इस निखिल ब्रह्माण्ड के वेष्टन होने से तथा उसके मन्थन करने से जब हमारे शरीर में कोई थकावट नहीं मालूम पड़ती तो मन्दर के घुमाने से हमें कोई कष्ट नहीं होगा।।२९।।

तत उत्पाट्य तं शैलं तत्क्षणात्क्षीरसागरे।
चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधः स्थितस्तदा॥३०॥
निराधारं यदा शैलं न शेकुर्देवदानवाः। मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तदा॥३१॥
नारायणनिवासं ते जग्मुर्बलिसमन्विताः। यत्राऽऽस्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः॥३२॥

ऐसा कहकर जब नाग ने लीलापूर्वक उसी क्षण मन्दराचल को उपारकर क्षीर सागर में फेंक

दिया, तब कूर्म अधःभाग में आकर अवस्थित हुए। किन्तु समुद्र-मन्थन आरम्भ होने पर जब देवता और दानव मिलकर भी निराधार होने कारण मन्दराचल क्षीर-सागर में घुमा नहीं सके तो बलि को साथ लेकर सभी भगवान् नारायण के निवास स्थान को वहाँ गये, जहाँ पर देवाधिदेव जनार्दन स्वयं विराजमान हो रहे थे।।३०-३२।।

तत्रापश्यन्त तं देवं सितपद्मप्रभं शुभम्। योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम्।।३३।।
हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यङ्कसंस्थितम्। पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम्।।३४।।

देवताओं तथा बलि प्रभृति असुरों ने वहाँ जाकर श्वेत कमल के समान कान्तिमान कल्याणदायी उन अच्युत् भगवान् को पीताम्बर धारण किये हुए योगनिन्द्रा में निमग्न देखा। उस समय उनके अंगों में हार और केयूर विराजमान थे, सर्पों की शैय्या पर भगवान् शयन कर रहे थे और उनके चरण-कमल लक्ष्मी की गोद में नाभिमण्डल का स्पर्श कर रहे थे।।३३-३४।।

स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानं गरुत्मता। स्तूयमानं समन्ताश्च सिद्धचारणकिन्नरैः।।३५।।
आम्नायैर्मूर्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः। सव्यबाहूपधानं तं तुष्टुवुर्देवदानवाः।।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतोदिशम्।।३६।।

उस समय गरुड़ अपने पंखे की वायु से भगवान् को हवा कर रहे थे। चारों ओर से सिद्ध, चारण एवं किन्नरगण उनकी स्तुति में मग्न थे। सभी दिशाओं में मूर्तिमान आम्नाय (वेद) स्तुति कर रहे थे। बायाँ हाथ सिर से नीचे शोभायमान था, ऐसे उन शेषशायी भगवान् की देवताओं तथा दानवों ने हाथ जोड़ विनत हो चारों दिशाओं से स्तुति करनी प्रारम्भ की।।३५-३६।।

देवदानवा ऊचुः

नमो लोकत्रयाध्यक्ष तेजसः जितभास्कर। नमो विष्णो नमो जिष्णो नमस्ते कैटभार्दन।।३७।।
नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः। रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकारिणे।।३८।।

देवताओं तथा दैत्यों ने कहा—हे तीनों लोकों के स्वामी! तेज से सूर्य को पराजित करने वाले! विजयशील विष्णो! कैटभ के शत्रु! तुम्हें हमारा प्रणाम है। सृष्टि के उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा रूप तुम्हें हमारा प्रणाम है, जगत् के पालनकर्ता विष्णु रूप तुम्हें हम सब प्रणाम करते हैं, रुद्र रूपधारी जगत् के संहारकर्ता आपको हमारा प्रणाम है।।३७-३८।।

नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने। नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च।।३९।।
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकालमहानल। नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भ महाबल।।४०।।

तुम अपने त्रिशूल से भी धर्षित नहीं हो सकते। हे दानवों के विघात करने वाले! तीन पग में तीनों लोकों के उल्लंघित करने वाले! अजन्मा! तुम्हें हम लोग प्रणाम करते हैं। हे प्रचण्ड देत्येन्द्र कुल के कालरूप महाअनल! तुम्हारे नाभिरूप सरोवर से पद्म की उत्पति हुई है, तुम महाबलवान् हो तुम्हें हमारा प्रणाम है।।३९-४०।।

पद्मभूत महाभूत कर्त्रे हर्त्रे जगत्प्रिय। जनिता सर्वलोकेश क्रियाकारणकारिणे॥४१॥
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने। लक्ष्मीमुखाब्जमधुप नमः कीर्तिनिवासिने॥४२॥

तुम पद्म के उत्पत्तिकर्ता हो, महाभूत जगत् के हरण करने वाले, उत्पत्ति करने वाले तथा प्रिय हो, सभी के जनक हो, सभी लोकों के स्वामी हो, कार्य और कारण-दोनों के निर्माण करने वाले हो। अमरों के शत्रुओं का विनाश करने वाले हो, महासमर करने वाले हो, लक्ष्मी के मुख रूप कमल के मधुप हो, यश में निवास करने वाले हो! तुम्हें हम सब प्रणाम करते हैं।।४१-४२।।

अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम्। मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः॥४३॥

हम लोगों की अमरत्व प्राप्ति के लिए तुम इस विशाल मन्दराचल को, जो अयुतायुत योजन विस्तृत है, धारण करो, धारण करो।।४३।।

अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना। मथ्यताममृतं देव स्वधास्वाहार्थकामिनाम्॥४४॥
ततः श्रुत्वा स भगवान्स्तोत्रपूर्वं वचस्तदा। विहाय योगनिद्रां तामुवाच मधुसूदनः॥४५॥

हे देव! तुम्हारे भुजबल का अन्त नहीं है, अपने उन दोनों बाहुओं से उठा एक हाथ द्वारा इसे पकड़ कर स्वाहा, स्वधा के अभिलाषी देवताओं के उपकारार्थ अमृत का मंथन करो।' देवताओं तथा दैत्यों द्वारा स्तुतिपूर्वक कही गई इस बात को सुनकर मधुसूदन भगवान् ने अपनी योगनिद्रा को छोड़कर उनसे कहा।।४४-४५।।

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं विबुधाः सर्वे किमागमनकारणम्।
यस्मात्कार्यादिह प्राप्तास्तद्ब्रूत विगतज्वराः॥४६॥

श्री भगवान् ने कहा-देवगण! आप लोगों का स्वागत कर रहा हूँ, आप लोगों के यहाँ आगमन का क्या कारण है? जिस कार्य के लिए आप लोगों ने यहाँ आने का कष्ट किया है, उसे चिन्तारहित होकर बतलाइये ?।।४६।।

नारायणेनैवमुक्ताः प्रोचुस्तत्र दिवौकसः। अमरत्वाय देवेश मथ्यमाने महोदधौ॥४७॥
यथाऽमृतत्त्वं देवेश तथा नः कुरु माधव।
त्वया विना न तच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन॥४८॥

नारायण के ऐसा कहने पर स्वर्गवासी देवताओं ने कहा- देवेश! अमरत्व प्राप्ति के लिए हम लोग महोदधि का मन्थन कर रहे हैं, हे देवाधिदेव! हमें जिस प्रकार अमरत्व की प्राप्ति हो सके, वैसा उपाय आप करें। हे कैटभ के शुत्र! माधव! तुम्हारे बिना हम लोगों से वह कार्य नहीं नहीं हो सकता।।४७-४८।।

प्राप्तुं तदमृतं नाथ ततोऽग्रे भव नो विभो। इत्युक्तश्च ततो विष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः॥४९॥

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः। वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः॥५०॥
विषभीतास्ततो देवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः। मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरःसराः॥५१॥

हे नाथ! उस अमृत-प्राप्ति के कार्य में तुम हमारे अगुवा बनों। देवताओं के ऐसा कहने पर शत्रुनाशक परमऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु देवताओं के साथ वहाँ चले, जहाँ पर मन्दराचल था, उस समय वह मन्दराचल शेषनाग की फणों से लिपटा हुआ था तथा देवता और दानवगण उसे थामे हुए थे। विष के भय से भीत होकर देवगण तो शेषनाग की पूँछ की ओर पकड़े हुए थे और मुख की ओर राहु को अगुआ बनाकर दैत्यगण पकड़े हुये थे।।४९-५१।।

सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना। दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याऽऽकृष्टवांस्तथा॥५२॥
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम्। नारायणः स भगवान्भुजयुग्मद्वयेन तु॥५३॥

शेषनाग के सहस्र मुख वाले सिर को बाएँ हाथ से, तथा देह को दाहिनी हाथ से पकड़ कर दैत्येन्द्र बलि खींच रहा था। सुन्दर कन्दराओं से सुशोभित अमृत के मन्थन-दण्ड मन्दराचल को उन भगवान् विष्णु ने अपने दोनों हाथों से पकड़ा था।।५२-५३।।

ततो देवासुरैः सर्वैर्जयशब्दपुरःसरम्। दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः॥५४॥
ततः श्रान्तास्तु त सर्वे देवा दैत्यपुरःसराः।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाऽम्बुशीकरान्॥५५॥

इस प्रकार जय-जयकार करते हुये सभी देवताओं तथा दैत्यों ने मिलकर देवताओं के सौ वर्षों तक क्षीर सागर का मन्थन किया; किन्तु इसके उपरान्त वे सभी देवदानवगण बहुत थक गये। उन लोगों के थक जाने पर देवराज इन्द्र ने मेघ रूप धारण कर जल-कणों की वृष्टि की, जो अमृत के समान शीतल लगे।।५४-५५।।

ववर्षामृतकल्पांस्तान्ववौ वायुश्च शीतलः। भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलाशनः॥५६॥
मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः। अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा॥५७॥
ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम्।

शीतल वायु बहने लगी। किन्तु इतने पर भी जब देवगण बिल्कुल थककर शान्त से होने लगे, तब ब्रह्मा जी ने बारम्बार यह कहना प्रारम्भ किया कि 'अरे समुद्र को मथो, मथो! उद्योगी पुरुषों को सर्वथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उन्हें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती।' ब्रह्मा के इस प्रकार उत्साहित करने पर देवासुरगण पुनः दत्तचित्त हो समुद्र का मन्थन करने लगे।।५६-५७.५।।

भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे॥५८॥
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः। श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलद्रुमाः॥५९॥
ततः फलानां वीर्येण पुष्पौषधिरसेन च। क्षीरमम्बुधिजं सर्वं दधिरूपमजायत॥६०॥

तदुपरान्त दस सहस्र योजन विस्तृत मन्दराचल द्वारा मन्थन किये जाने पर उनके शिखरों पर

से हाथियों के समूह समुद्र में गिर पड़े, शूकर तथा शरभादि जीवगण गिर पड़े, लाखों कुत्ते तथा पुष्पों और फलों से लदे हुए वृक्ष गिर पड़े। तब उन फलों के सारभाग तथा पुष्पों और औषधियों के रस से क्षीरसागर का जल दही के रूप में परिणत हो गया।।५८-६०।।

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः। तदम्बुमेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत॥६१॥

तदुपरान्त उन गिरे हुए सहस्रों जीवों के चूर्ण हो जाने पर उनके रक्त तथा चर्बी आदि के संयोग से वह जल मदिरा के समान हो गया।।६१।।

वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः। तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन्॥६२॥
ततोऽतिवेगाज्जगृहुर्नागेन्द्रं सर्वतोऽसुराः। मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत्॥६३॥

उस वारुणी की गन्ध से देवता तथा दानव प्रमुदित हुए और उसके आस्वादन से वे देवता फिर बलवान् हो गये अर्थात् उनकी थकावट बीत गई। तब असुरों ने शेषनाग को चारों से ओर से अति वेग से पुनः पकड़ा, जिससे मन्थनदण्ड मन्दराचल एक स्थान पर अचल हो गया।।६२-६३।।

अभवच्चाग्रतो विष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः। सवासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत॥६४॥
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः। ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा॥६५॥

भगवान् विष्णु ने अग्रसर हो कर अपनी भुजाओं के बन्धन से मन्दराचल को बाँध लिया, जिससे वासुकि के फणों से सन्निहित होने के कारण वे श्यामल वर्ण से शोभित होने लगे। उस समय उनकी शोभा नीले कमलों से युक्त अतिविस्तृत ब्रह्मदण्ड की भाँति दिख रही थी। तदनन्तर समुद्र में सैकड़ों मेघों की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं।।६४-६५।।

भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम्। ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः॥६६॥

शेषनाग के दूसरे भाग में सर्वप्रथम इन्द्र थे, तदनन्तर आदित्यगण थे, उसके बाद अति उत्साहयुक्त रुद्रगण, वसुगण तथा गुह्यकों के समूह थे।।६६।।

पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ। द्विमूर्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा॥६७॥

दूसरी ओर सर्वप्रथम विप्रचित्ति, नमुचि, वृत्र, शम्बर, द्विमूर्धा, वज्रदंष्ट्र, राहु तथा बलि थे।।६७।।

एते चान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः। ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः॥६८॥
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः। अदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः॥६९॥

ये तथा अन्य बहुतेरे राक्षस एवं दानवगण शेष के मुख-भाग की ओर थे। इस प्रकार बल तथा तेज से विभूषित सभी देव-दानवगण समुद्र का मन्थन करने लगे। देवताओं तथा दानवों द्वारा मन्थन करते समय समुद्र में महान् मेघगर्जन के समान भीषण स्वर निकलने लगा।।६८-६९।।

तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा। विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः॥७०॥
वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः। पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत्॥७१॥

तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ सङ्‌घृष्टाश्च परस्परम्। न्यपतन्पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः॥७२॥

उस विशाल मन्दराचल की चोट से सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में विविध प्रकार के जलचर विनष्ट हो गये। पर्वत ने वरुणलोक में निवास करने वाले पाताल लोक के विविध प्रकार के निवासियों को विनाश के पथ पर पहुँचा दिया। मन्थन करते समय उस मन्दाराचल के ऊपर उगे हुए महान् वृक्षों के समूह परस्पर के संघर्षण से टूट-फूटकर ऊपर से पक्षियों के साथ ही समुद्र में गिरने लगे॥७०-७२॥

तेषां सङ्घर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन्मुहुः।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम्॥७३॥
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान्।
विगतासूनि सर्वाणि सत्त्वानि विविधानि च॥७४॥

तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः। वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः॥७५॥

ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि।

उनके संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई, जिसकी चिनगारियों से मन्दराचल बिजली से युक्त काले बादल की भाँति आच्छन्न हो गया। अग्नि के भय से पानी से निकलकर भागते हुए सिंहों तथा हाथियों को उस अग्नि ने भस्मसात् कर दिया तथा विभिन्न प्रकार के मरे हुए जीवों को भी उसने जलाकर राख कर दिया। जीवों को जलाने वाली उस अग्नि को देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ने बादलों की वृष्टि द्वारा चारों ओर से शान्त कर दिया, जिसके कारण ऊपर विविध प्रकार के रस समुद्र के जल में आकर गिरने लगे॥७३-७५.५॥

महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः॥७६॥

तेषाममृतवीर्याणां रथानां पयसैव च। अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः॥७७॥

बड़े-बड़े वृक्षों के गोंद तथा औषधियों के रस जल की धारा के साथ समुद्र में आकर मिल गये। उन अमृत के समान गुणकारी रसों तथा समुद्र के दुग्धवत् जल से सुवर्ण की भाँति दमकते हुए देवगण अमरत्व को प्राप्त हुये॥७६-७७॥

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः। रसान्तरैर्विमिश्रं च ततः क्षीरादभूद्घृतम्॥७८॥

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन्।
श्रान्ताः स्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतं च यत्॥७९॥

वह समुद्र का जल दुग्ध रूप में परिणत हो गया था, फिर से अनेक प्रकार के रसों के मिश्रण से वह दुग्ध से घृत के में बदल गया। तब बैठे हुए ब्रह्मा से देवताओं ने कहा-'ब्रह्मन्! हम लोग तो अब बहुत ही थक चुके है; किन्तु अमृत नहीं निकला॥७८-७९॥

ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा। चिरायितमिदं चापि सागरस्य तु मन्थनम्॥८०॥

ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत्। विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानेव परायणम्॥८१॥

हम समझते हैं कि भगवान् विष्णु को छोड़कर हम सभी देवगण तथा दैत्यगण अतिशय श्रान्त हो गये हैं और समुद्र का मन्थन भी बहुत दिनों तक कर चुके।' देवताओं तथा दैत्यों की ऐसी बात सुन ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु से कहा- भगवान्! इन सबों को बल प्रदान कीजिये, ऐसी दशा में आप ही इनकी शरण हैं।।८०-८१।।

विष्णुरुवाच

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः। क्षोभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम्॥८२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थन एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२५९५।।

विष्णु ने कहा–इस मन्थन के कार्य में जितने लोग सम्मिलित हैं, उन सब को मैं बल प्रदान कर रहा हूँ, अब इस कार्य के लिये क्रम से सभी लोग मिलकर मन्दर को परिचालित करें।।८२।।

।।दो सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त।।२४९।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

कालकूटोत्पत्ति कथन

सूत उवाच

नारायावचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधौ। तत्पयः सहिता भूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम्॥१॥
ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात्। प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः॥२॥

सूत ने कहा–भगवान् विष्णु की ऐसी बातें सुन वे बलवान् देव-दानवगण उस महासमुद्र में सम्मिलित होकर उसकी जलराशि को अत्यन्त क्षुभित करने लगे। तदनन्तर समुद्र से सौ सूर्य की भाँति तेजोमय, प्रशस्त कान्ति वाला, शीतरश्मि उज्ज्वल चन्द्रमा उद्‌भूत हुआ।।१-२।।

श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी। सुरादेवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा॥३॥
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः। मरीचिविकचः श्रीमान्नारायणउरोगतः॥४॥

उसके बाद घृत समुद्र से पीले वर्ण के वस्त्रों से शोभित लक्ष्मी उत्पन्न हुईं, फिर सुरादेवी, तदनन्तर पीला घोड़ा, फिर अमृत से उत्पन्न होने वाली दिव्य कौस्तुभ मणि, जो अपनी किरणों से सुशोभित होकर भगवान् नारायण के वक्षः स्थल में विराजमान है।।३-४।।

पारिजातश्च विकचकुसुमन्तबकाञ्चितः। अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम्।।५।।
आपूरितदिशाभागं दुःसहं सर्वदेहिनाम्। तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छिताः परिलम्बिताः।।६।।
उपाविशन्नब्धितटे शिरः सङ्गृह्य पाणिना।

तदनन्तर विकसित गुणों के गुच्छों से सुशोभित पारिजात की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त उन देवताओं तथा दैत्यों ने बादल की भाँति धूम को समुद्र से ऊपर उठते हुये देखा, जिससे सभी दिशाएँ व्याप्त हो गई थी। उस धूम को सभी प्रकार के देहधारी सहन करने में असमर्थ थे, उसे सूँघते ही देवगण मूर्च्छित हो कर गिरने लगे और कुछेक हाथ से सिर को पकड़कर समुद के तट पर बैठ गये।।५-६.५।।

ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत।।७।।
ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा।
तेनाग्निना परिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः।।८।।
दग्धाश्चाप्यर्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकलादिशः।

तदनन्तर क्रम से वह दुःसह अग्नि-सी वस्तु समुद्र से बाहर निकलती हुई दिखाई पड़ी। उसके चारों ओर विकराल ज्वालाओं का जाल फैला हुआ था, चारों ओर भीषण चिनगारियाँ छिटक रही थीं, उस भीषण अग्नि से प्रायः सभी देवता और दानवगण विक्षिप्त हो गये। कुछ बिल्कुल जले हुए तथा कुछ अधजले हुए सभी दिशाओं में भागने लगे।।७-८.५।।

प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना।।९।।
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्माड्डुण्डुभजातयः। कृष्णसर्पा महादंष्ट्रा रक्ताश्च पवनाशनाः।।१०।।
श्वेतपीतास्तथा चान्ये तथा गोनसजातयः।

प्रधान देव तथा दैत्यगण भी उस अग्नि से भयभीत हो गये। कुछ देर पश्चात् उस भीषण अग्नि से डुण्डुभ जाति वाले सर्प उत्पन्न हुए। उसी प्रकार काले सर्प, जिनकी दाढ़ बड़ी भयानक होती है, लाल सर्प, वायु पीकर रहने वाले सर्प, श्वेत वर्ण के तथा अन्यान्य गोनस जाति वाले सर्प उस अग्नि से उत्पन्न हुए।।९-१०.५।।

मशका भ्रमरा दंशा मक्षिकाः शलभास्तथा।।११।।
कर्णशल्याः कृकलासा अनेके चैव बभ्रमुः।
प्राणिनो दंष्ट्रिणा रौद्रास्तथा हि विषजातयः।।१२।।
शार्ङ्गहालाहलामुस्तवत्सकंगूरभस्मगाः। नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः।।
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गान्यपि द्रुतम्।।१३।।

तदुपरान्त मशक, भ्रमर, डँसा, मक्खियाँ, पतंगे, कर्णशल्य, गिरिगिट आदि जीव इधर-उधर घूमने लगे। इनके अतिरिक्त अति भीषण दाढ़ वाले अनेक जीवगण तथा अनेक विषों के भेदोपभेद

भी उससे उत्पन्न होकर इधर-उधर दिखाई पड़ने लगे। शार्ङ्ग, हलाहल, मुस्त, वत्स, कंगूर, भस्मग नीलपत्रादि सैकड़ों भेदोपभेद वाले विष उससे उत्पन्न हुए, जिनकी सुगन्धिमात्र से शीघ्र ही पर्वतों के शिखर भी जल उठते थे।।११-१३।।

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम्।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः।।१४।।

तदनन्तर शरीरधारियों को अतिशय भय देने वाली एक मूर्ति दिखायी पड़ी, जिसके शरीर की कान्ति नीलरस के समूह, भ्रमर अथवा कज्जल के पर्वत के समान थी, जोर-जोर से विषम श्वासें ले रही थीं, उसके अंग-प्रत्यंग समस्त लोकों में फैल रहे थे, केशों के समूह जलती हुई अग्नि की भाँति पड़ रहे थे।।१४।।

सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम्।
नीलोत्पलाभं कुसुमैः कृतार्घं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम्।।१५।।

सुवर्ण एवं मोतियों के अलंकारों से उसके अंग विभूषित थे, किरीट धारण किये हुए थी, शरीर पर पीताम्बर था, देह की कान्ति नीलकमल के समान थी, विविध प्रकार के पुष्प शरीर पर शोभायमान हो रहे थे, गम्भीर गर्जते हुए बादल के समान शब्द कर रही थी।।१५।।

अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहिभयाश्रयं तम्।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे।।१६।।

इस प्रकार समुद्र के मध्य में अवस्थित शरीरधारी विष को उन देवताओं तथा दैत्यों ने देखा! उस भीषण नेत्रवाले विष को देखकर सभी लोग अतिशय भयभीत हो गये।।१६।।

केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्त्ववाप्ता विषमामवस्थाम्।।१७।।
श्वासेन तस्य निर्दग्धास्ततो विष्णिवन्द्रदानवाः।
दग्धाङ्गारनिभा जाता ये भूता दिव्यरूपिणः।।
ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम्।।१८।।

कितने तो देखते ही चल बसे और कितने देखते ही बेहोश हो गये। कुछ लोगों के मुख से फेन गिरने लगे और कुछ लोगों की अति चिन्तनीय दशा हो गई। उस विकराल विष की श्वास से विष्णु इन्द्रादि देवता भी कुछ जल गये और थोड़ी देर पहिले जो जीवगण दिव्य रूपवाले थे, ये अब जले हुए अंगार (कोयले) के समान काले वर्ण के हो गये। तदनन्तर अति भयभीत होकर विष्णु भगवान् ने उस सुरात्मक (मूर्ति) से देवताओं की हितकामना से पूछा।।१७-१८।।

श्रीभगवानुवाच

कोभवानन्तजकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च। किं कृत्वा ते प्रियं जायेदेवमाचक्ष्व मेऽखिलम्।।१९।।

तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः।
उवाच कालकूटस्तु भिन्नदुन्दुभिनिस्वनः॥२०॥

श्रीभगवान् ने कहा–'आप महाकाल की तरह मालूम पड़ने वाले कौन हैं? क्या चाहते हैं? और कहाँ से आ रहे हैं? क्योंकि करने से आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी? इन सब बातों को मुझे बताईये।' भगवान् विष्णु की ऐसी बातें सुन प्रलयाग्नि के समान विकाराल उस कालकूट ने दुन्दुभि के समान भीषण स्वर में कहा।।१९-२०।।

कालकूट उवाच

अहं हि कालकूटाख्यो विष्णोऽम्बुधिसमुद्भवः। यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः॥२१॥
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः। सम्भूतोऽहं तदा सर्वान्हन्तुं देवान्सदानवान्॥२२॥
सर्वानहं हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः। मां वा ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम्॥२३॥

कालकूट ने कहा–'विष्णो! समुद्र से उत्पन्न होने वाले मुझको लोग कालकूट नाम से पुकारते हैं। जब परस्पर एक-दूसरे के संहार के अभिलाषी देवता तथा दैत्यगण अति उग्रअमर्ष से इस अद्भुत क्षीरसागर का मन्थन करने लगे तब मैं उस सभी का संहार करने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। संसार में जितने भी शरीरधारी है, उन सबको मैं एक क्षण में विनष्ट कर दूँगा। या तो ये लोग मुझे निगल जायँ अथवा शंकर की शरण में जो जायँ।।२१-२३।।

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः। ब्रह्मविष्णु पुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम्॥२४॥
निवेदितास्ततो द्वाःस्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः।
अनुज्ञाताः शिवेनाथ विविशुर्गिरिशान्तिकम्॥२५॥
मन्दरस्य गुहां हैमीं मुक्तामणिविभूषिताम्।
सुस्वच्छमणिसोपानां वैदूर्यस्तम्भमण्डिताम्॥२६॥
तत्र देवासुरैः सर्वैर्जानुभिर्धरणिं गतैः। ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम्॥२७॥

कालकूट की ऐसी बातें सुन भयभीत देवताओं तथा असुरों ने ब्रह्मा तथा विष्णु को अगुआ बनाकर शंकर के समीप प्रस्थान किया वहाँ पर नियुक्त गणेशों ने जाकर उन लोगों की बातें शिव से कही। तदुपरान्त आज्ञा प्राप्त कर वे लोग शिव के समीप गये। वहाँ मन्दराचल की सुवर्णमय गुफा में जो मुक्ता तथा मणियों से विभूषित थी, स्वच्छ मणिजटित सीढ़ियाँ लगी हुई थीं, वैदूर्य मणि के खम्भों से सुशोभित हो रही थीं शिव जी विराजमान थे। वहाँ जाकर सभी देवता तथा असुरगण घुटनों के बल पृथ्वी पर लेट गये और ब्रह्मा को अग्रसर बनाकर निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ करने लगे।।२४-२७।।

देवदानवा ऊचुः

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे। नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने॥२८॥

देवताओं तथा दानवों ने कहा- हे विरूपाक्ष! तुम्हें हम लोगों का प्रणाम है। तुम दिव्य आँखों वाले हो, हाथ में पिनाक धारण करने वाले हो, वज्र धारण करने वाले हो, धनुष धारण करने वाले हो, तुम्हें हमारा प्रणाम है।।२८।।

नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे। नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे।।२९।।
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे। ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे।।३०।।
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे। सांख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते।।३१।।

तुम्हारे हाथ में त्रिशूल विराजमान है, तुम दण्ड धारण करने वाले हों, जटा के रूप में त्रैलोक्य की चिन्ता धारण करने के कारण तुम धूर्जटि नाम से विख्यात हो, तुम्हीं ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र रूप हो, तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है, तुम वेद रूप हो, ब्रह्म हो, देव रूप हो, जीवों का कल्याण करने वाले हो।।२९-३१।।

मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्करः। रंहसे देवदेवाय नमस्ते वसुरेतसे।।३२।।
एकवीराय सर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने। उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने।।३३।।

हे महाकाल के क्षय करने वाले! तुम कामदेव के शरीर को भस्म करने वाले हो, वेगवान हो, एक वीर हो, वसुरेता हो, पिङ्गल वर्णवाले हो, मुण्डमाला से विभूषित! तुम्हें हमारा प्रणाम है। हे उमापते! दक्ष के यज्ञ एवं त्रिपुर के विध्वंसक तुम्हें हम सब प्रणाम कर रहे हैं।।३२-३३।।

शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे। लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे।।३४।।
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च। अग्र्याय चैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे।।३५।।

तू शुद्ध, बुद्ध एवं प्रबुद्ध हो, निवार्ण एवं मुक्ति के स्वरूप हो, तीनों लोकों की सृष्टि करने वाले हो, वरुण, इन्द्र एवं अग्निरूप हो, तुम्हें हम सब का प्रणाम है। तुम ऋक्, यजु और सामवेद स्वरूप हो, पुरुष हो, पुरुष रूप हो, परमेश्वर-रूप हो, सर्वश्रेष्ठ हो, उग्र हो, ब्राह्मण रूप हो, वेद तुम्हारी आँखें हैं, तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।।३४-३५।।

रजसे चैव सत्वाय तमसे तिमिरात्मने। अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने।।३६।।

तुम सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण स्वरूप हो, अन्धकार भी तुम्हारा एक स्वरूप है, अनित्य एवं नित्य-उभय रूप हो, नित्य चरात्मा हो, तुम्हें हम लोग प्रणाम कर रहे हैं।।३६।।

व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च।।३७।।

तुम व्यक्त हो, अव्यक्त हो, व्यक्ताव्यक्त-दोनों एक ही साथ हो, भक्तों की आपत्तियों को नष्ट करने वाले हो, नारायण भगवान् विष्णु के प्रिय हो अथवा भगवान् विष्णु तुम्हारे प्रिय हैं, तुम्हें हमारा अनकेशः प्रणाम है।।३७।।

उमाप्रियाय सर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च। ऋतुमन्वन्तरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने।।३८।।

नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने। नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने॥३९॥

उमाप्रिय, शर्व, नन्दीश्वर के मुख से सुशोभित, तुम ही ऋतु, मन्वन्तर, कल्प, पक्ष, मास एवं दिन रूप में वर्तमान हो, तुम्हें हमारा प्रणाम है। तुम विविध प्रकार के रूपों को धारण करने वाले हो, मुण्डी हो, स्थूल, दण्ड तथा वरुथ को धारण करने वाले हो, तुम्हारे हाथों में कपाल रहता है, दिशाएँ ही तुम्हारा वस्त्र हैं, शिखण्ड रखने वाले हो, तुम्हें हमारा प्रणाम है।।३८-३९।।

धन्विने रथिने चैव यतये ब्रह्मचारिणे। इत्येवमादिचरितैः स्तुत तुभ्यं नमो नमः॥४०॥

तुम धनुषधारी हो, रथी हो, यति हो, ब्रह्मचारी हो- इस प्रकार के उत्तम चरित्रों वाले तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।'।।४०।।

एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः।
उवाच वाक्यं भीतानां स्मितान्वितशुभाक्षरम्॥४१॥

देवताओं तथा राक्षसों द्वारा इस प्रकार की स्तुति किये जाने पर सृष्टि के स्थाणु स्वरूप भगवान् शंकर परमसन्तुष्ट हुए एवं उन भयभीत लोगों से मुस्कराते हुए यह बात कहने लगे।।४१।।

श्रीशङ्कर उवाच

किमर्थमागता ब्रूत त्रासम्लानमुखाम्बुजाः। किं वाभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम्॥
इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः॥४२॥

शंकर ने कहा-'हे देव तथा दानवगण! तुम लोगों के मुखकमल मुरझाये हुए हैं, तुम लोग किसलिये यहाँ आये हुए हो? क्या चाहते हो ? जल्दी कहो, आज ही मैं उसे पूरित करूँगा।' देवाधिदेव शंकर के ऐसा कहने पर सभी देवता तथा राक्षसगण बोले।।४२।।

सुरासुरा ऊचुः

अमृतार्थे महादेव मथ्यमाने महोदधौ। विषमद्भुतमुद्भूतं लोकसंक्षयकारकम्॥४३॥
स उवाचाथ सर्वेषां देवानां भयकारकः। सर्वान्वो भक्षयिष्यामि अथवा मा पिबन्त्वथ॥४४॥

देवताओं तथा राक्षसों ने कहा-'महादेव जी! अमृत के प्रयोजन से महासमुद्र को मथते समय अति उग्र एवं अद्भुत विष उत्पन्न हुआ है, जो सभी लोकों का विनाश करने वाला है। सभी देवताओं को भयभीत करने वाले उस विष ने स्वयं कहा है कि तुम सभी को मैं खा जाऊँगा अन्यथा मुझे पी जाओ।।४३-४४।।

तमशक्ता वयं ग्रस्तुं सोऽस्माञ्छक्तो बलोत्कटः।
एष निःश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः॥४५॥
विष्णुः कृष्णः कृतस्नेन यमश्च विषमात्मवान्।
मूर्च्छिताः पतिताश्चान्ये विप्रणाशं गताः परे॥४६॥

उस उत्कट एवं विकराल विष को पान करने में हम लोग सर्वथा असमर्थ हैं, वह भीषण विष हम सभी को मार सकता है। उस विकराल विष के निःश्वास मात्र से सौ चन्द्रमा के समान कान्तिमान भगवान् विष्णु कृष्णवर्ण हो गये। यमराज की उसने विषम स्थिति कर दी। अन्य देवताओं में से कुछ तो मूर्च्छित हो गये और कुछ नष्ट हो गये।।४५-४६।।

अर्थोऽनर्थक्रियां याति दुर्भगाणां यथा विभो।
दुर्बलानां च सङ्कल्पो यथा भवति चाऽऽपदि।।४७।।
विषमेतत्समुद्भूतं तस्माद्वाऽमृतकाङ्क्षया। अस्माद्भयान्मोचय त्वं गतिस्त्वं च परायणम्।।४८।।

हे भगवन्! जिस प्रकार अभाग्यशाली पुरुषों के अर्थ भी अनर्थ के कारण बन जाते हैं तथा आपत्तिकाल में दुर्बलात्मा पुरुषों के संकल्प विपरीत फल देने वाले हो जाते हैं, उसी प्रकार अकृत की अभिलाषा से मथे गये समुद्र से हम लोगों को इस विकाराल विष की प्राप्ति हुई है। इस भय से अब हम लोगों की रक्षा कीजिये, आप ही एकमात्र हमसबों के शरण दाता हैं और हम सब आप की ही शरण में आये हैं।।४७-४८।।

भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः।
यज्ञाग्रभुक्सर्वहविः सोम्यः सोमः स्मरान्तकृत्।।४९।।
त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत्। रक्षास्मान्मक्षसङ्कल्पाद्विरूपाक्ष विषज्वरात्।।५०।।
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद्भवः।।५१।।

भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, मन के भावों को जानने वाले सभी भुवनों के आदि ईश्वर! भगवान्! यज्ञों के सर्वप्रथम भाग ग्रहण करने वाले आप ही हैं, निखिल हवनीय द्रव्य भी आप ही हैं, सौम्य हैं सोम हैं, कामदेव को विनष्ट करने वाले हैं। देव! एकमात्र तुम्हीं हम सबों की शरण हो, देवताओं का कल्याण करने वाले हो, इस महाकाल सदृश कालकूट के ज्वर से हे विरूपाक्ष! हम सबों की रक्षा कीजिये।' देवताओं तथा दैत्यों की इस आर्त्तवाणी को सुन भग के नेत्रों के हरण करने वाले भगवान् शंकर ने कहा।।४९-५१।।

देवदेव उवाच

भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम्।
तथाऽन्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः।।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः।।५२।।
इत्युक्ता हृष्टरोमाणो बाष्पगद्गदकण्ठिनः। आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथा इव मेनिरे।।
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः।।५३।।

देवदेव ने कहा-देवासुरगण! मैं उस काल कूट महाविष को खा जाऊँगा। इसके अतिरिक्त अन्य जो कष्ट साध्य कार्य हो उन्हें बताईये। उसे भी हम करने को तैयार हैं। अब आप लोग चिन्ता छोड़कर स्थिर

होइये। भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर देवता तथा असुर सभी रोमांचित्त हो गये। उस सबों के कण्ठ गद्गद् हो गये। आनन्द के आँसू बह चले और उस समय वे अपने को सनाथ अनुभव करने लगे। इस प्रकार आश्वस्त चित से प्रसन्न मन वाले ब्रह्मादि सभी देवगण अति प्रसन्न हुए।।५२-५३।।

ततोऽव्रजदद्भुतगतिना ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिर्जगत्पतिः।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनैर्विचलतशुभ्रचामरैः।।
पुरःसरैःस तु शुशुभे शुभाश्रयैः शिवो वशी शिखिकपिशेर्ध्वजूटकः।।५४।।
आसाद्य दुग्धसिन्धुः तं कालकूटं विषं यतः। ततो देवो महादेवो विलोक्य विषमं विषम्।।५५।।
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामणणिना।

तदनन्तर जगत्पति शंकर जी पवन के समान द्रुत गति से ककुद्मधारी शीघ्रगामी नन्दिकेश्वर पर आरूढ होकर आकाश मार्ग से चले। उस समय उनके आगे-आगे असुर तथा सुरों के अधिपतिगण भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हो, सुन्दर चमर डुलाते हुए चल रहे थे। मंगल के आधार पर देवताओं के आगे-आगे चलने से जितेन्द्रिय भगवान् अति शोभायुक्त हो रहे थे, उनके तृतीय नेत्र की अग्नि-ज्वाला से उनकी जटाएँ पिङ्गल वर्ण की हो रही थीं। तदनन्तर महादेव जी उस क्षीर सागर पर पहुँचे, जिससे उस कालकूट विष की उत्पत्ति हुई थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने उस विषम कालकूट विष को देखा और एक छायायुक्त स्थान में जाकर अपने बाएँ हाथ से उसको पी लिया।।५४-५५.५।।

पीयमाने विषे तस्मिंस्ततो देवा महासुराः।।५६।।
जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान्। चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा।।५७।।
स्तुवन्तश्चैव देवेशं प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा। कण्ठदेशं ततः प्राप्ते विषे देवमथाब्रुवन्।।५८।।
विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः। शोभते देव कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे।।५९।।

विष के पी लेने पर इन्द्र प्रभृति देव तथा हिरण्याक्ष प्रभृति असुर खुशी से नाचने गाने लगे और अनेक बार सिंहों की भाँति दहाड़ने लगे, अतिप्रसन्न चित्त हो देवेश की स्तुति करने लगे। भगवान् शंकर के गले में जब विष पहुँचा, तब ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा बलि आदि प्रमुख असुरों ने उनसे कहा-'महाराज! कुन्द के समान पीतवर्ण आपके शरीर के कण्ठ देश में भृंगावली की भाँति काले वर्ण का यह विष अति शोभा दे रहा है।।५६-५९।।

भृङ्गमालानिभं कण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव। इत्युक्तः शङ्करो देवस्तथा प्राह पुरान्तकृत्।।६०।।
पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्तं ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः।।६१।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थने कालकूटोत्पत्तिर्नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२५०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२६५६।।
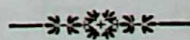
अतः उसे वहीं रहने दीजिये।' देवताओं तथा असुरों के ऐसा कहने पर त्रिपुरशत्रु शिव जी ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विषपान कर लेने के उपरान्त शंकर जी देवताओं को वहीं छोड़ पुनः अपने आश्रम मन्दराचल को चले गये और उनके चले जाने पर देवगण समुद्र को विविध प्रकार से पुनः मथने लगे।।६०-६१।।

।।दो सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त।।२५०।।

अथैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरि की उत्पत्ति, अमृत की उत्पत्ति और राहु का शिरश्छेद, असुरों का संहार, मन्द की पुनः स्थापना

सूत उवाच

मथ्यमाने पुनस्तस्मिञ्जलधौ समदृश्यत। धन्वन्तरिः स भगवानायुर्वेदप्रजापतिः।।१।।
मदिरा चाऽऽयताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी। ततोऽमृतं च सुरभिः सर्वभूतभयापहा।।२।।

सूत ने कहा—पुनः समुद्र के मथे जाने पर उसमें से आयुर्वेद के प्रजापति (आदि सृष्टिकर्ता) परमैश्वर्यशाली धन्वन्तरि दिखाई पड़े। फिर लोगों के चित्त को घुमा देनी वाली विशाल नेत्रों वाली मदिरा दिखाई पड़ी। तदनन्तर अमृत। फिर सभी जीवों के भय को दूर करने वाली कामधेनु दिखाई पड़ी।।१-२।।

जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभं च महामणिम्। गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः।।३।।
धन्वन्तरिं च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम्। छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः।।४।।

भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी को तथा महामणि कौस्तुभ को ग्रहण किया। सहस्रनेत्रों वाले इन्द्र ने गजराज को तथा उस उत्तम अश्व उच्चैः श्रवा को ग्रहण किया। सूर्य ने लोक में आरोग्य के प्रवर्त्तक धन्वन्तरी को ग्रहण किया। छत्र को वरुण ने तथा कुण्डलों को शचीपति इन्द्र ने ग्रहण किया।।३-४।।

पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा। धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत।।५।।
श्वेत कमण्डलं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति। एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः।।६।।
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम्। ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः।।७।।
स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा दानवानभिसंसृतः। ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः।।
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः।।८।।

अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च। प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान्सहिता दैत्यदानवाः॥९॥
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान्।

पारिजात वृक्ष को मुदित होकर वायु ने ग्रहण किया। तत्पश्चात् शरीर धारी धन्वन्तरि उठकर खड़े हुए उस समय वे एक श्वेतवर्ण का कमण्डलु धारण किये थे, जिसमें अमृत भरा था। इस अद्भुत कार्य करते हुए देखकर दानवों के दल में उस अमृत के लिए 'यह मेरा है, यह मेरा है', इस प्रकार का महान् कोलाहल मच गया। तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी माया का आश्रय लिया और अतिसुन्दरी स्त्री का रूप धारणकर दानवों के समीप उपस्थित हुए।।५-६.५।।

जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः॥१०॥
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा। विष्णोः सकाशात्सम्प्राप्य सङ्ग्रामे तुमुले सति॥११॥
ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम्।

उन मूढ़ों ने उस अमृत को मोहिनी के हाथों में सौंप दिया और उस सुन्दरी स्त्री के लिए सभी दानव तथा दैत्यगण अनुरक्त चित्त हो, विविध प्रकार के प्रमुख-प्रमुख-शस्त्रास्त्रों को धारण कर एकसाथ ही देवताओं से युद्धार्थ दौड़ पड़े। तब पराक्रमशाली विष्णु ने उस अमृत को नर के साथ उन दानवेन्द्रों से छीन लिया और लेकर अपने पास रख लिया। उधर सभी देवताओं ने उस तुमुल युद्ध के बीच ही विष्णु भगवान् से ले-लेकर उस अमृत का पान कर लिया।।८-११.५।।

राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत्तदा॥१२॥
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा।

चिर अभिलषित उस अमृत को पीते समय देवताओं के मध्य में देवरूपधारी राहु नामक दानव भी अमृत का पान कर रहा था। उसके कण्ठदेश तक ही अमृत पहुँचा था कि इतने ही में देवताओं की कल्याण भावना से प्रेरित हो कर चन्द्रमा तथा सूर्य ने उसके इस भेद को प्रकट कर दिया। भगवान् ने अपने चक्र से उस दानव के सिर को धड़ से अलग कर दिया।।१२-१२.५।।

आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया॥१३॥
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम्। चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा॥१४॥
तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरो महत्। चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयद्वसुधातलम्॥१५॥
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै। शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते॥१६॥

अमृत पान करते हुए उस दानव का सिर अतितीक्ष्ण चक्र द्वारा कटकर पृथ्वी पर शोभित होने लगा। चक्र द्वारा कटे हुए उस दानव के विशाल सिर पर्वत के शिखर की भाँति वसुधातल को गिरते ही विचलित कर दिया। तभी से राहु का चन्द्रमा और सूर्य के साथ वैर सम्बन्ध चला आ रहा है और वह आज भी पीड़ा पहुँचाता है। तदनन्तर विष्णु भगवान् ने अपना सुन्दरी स्त्री का रूप छोड़कर अपने अति विकराल विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से दानवों को प्रकम्पित कर

दिया। अतिविस्तृत एवं तीक्ष्ण भाले सहस्त्रों की संख्या में चारों ओर से दैत्यों की सेना पर पड़ने लगे॥१३-१६॥

विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः। नानाप्रहरणर्भीमैर्दानवान्समकम्पयत्॥
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्त्रशः॥१७॥
तेऽसुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु। असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले॥१८॥
भिन्नानि पट्टिशैश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः।
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशं तदा॥१९॥

भगवान् के चक्र से छिन्न भिन्न अंगों वाले राक्षसगण मुँह से अत्यधिक रक्त बहने लगे। तलवार, शक्ति एवं गदा की असहनीय चोटों के कारण पृथ्वी तल पर वे गिर गये। उस युद्ध में अति दारुण पट्टिशों से उनके सिर काट डाले गये। तपाये हुये सुवर्ण के समान पुष्पों से सुशोभित राक्षसों के सिर प्रचुर परिमाण में निरन्तर कट-कटकर भूतल पर गिरने लगे॥१७-१९॥

रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः। अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते॥२०॥
ततो हलहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः। अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति॥२१॥
परिघैश्चाऽऽयसैः पातैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः।
निघ्नतां समरेऽन्योन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत्॥२२॥

रक्त से भींगे हुए अंगों वाले, मारे गये, बड़े-बड़े विशाल राक्षसों के शरीर युद्धभूमि में पहाड़ों के गेरु से रंगे हुए शिखरों की भाँति सोये हुए दिखाई पड़ रहे थे। तदनन्तर संग्रामभूमि में चारों ओर से 'हल, हला' शब्द गूँजने लगा। एक-दूसरे को शास्त्रों से मारते हुए उस संग्राम भूमि में सूर्य लोहित वर्ण के दिखाई पड़ने लगे, अर्थात् सायंकाल आ गया। लोहे के बने हुए परिघों से कुछ लोग एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे-एक-दूसरे के अतिशय समीप होने के कारण कुछ मुष्टियुद्ध करने लगे। इस प्रकार एक-दूसरे को मारते हुए उन लोगों के शब्द आकाश मण्डल को छू-सा रहे थे॥२०-२२॥

छिन्दि भिन्धि प्रधावेति पातयाभिसरेति वै। विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः॥२३॥
एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये। नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम्॥२४॥
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि। चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसूदनः॥२५॥

'काटो, मारो, दौड़ो, गिराओ बढ़ो' इस प्रकार के अति घोर एवं दारुण शब्द चारों ओर से सुनाई पड़ रहे थे। इस अतितुमुल तथा परम भयानक महायुद्ध के छिड़ जाने पर युद्धभूमि में नर-नारायण देव उपस्थित हुए। दैत्यसूदन भगवान् नारायण ने नर के हाथों में दिव्य धनुष को देख सुदर्शन-चक्र का स्मरण किया॥२३-२५॥

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यविक्रमम्॥२६॥

तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयङ्करं करिकरबाहुरच्युतः।
महाप्रभं दनुकुलदैत्यदारणं तथोज्ज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम्॥२७॥
मुमोच वै तदतुलमुग्रवेगवान्महाप्रभं रिपुनगरावदारणम्।
संवर्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनःपुनर्न्यपततवेगवत्तदा॥२८॥

तदनन्तर स्मरण करते ही आकाश मार्ग से भगवान् का वह सुदर्शन चक्र, जो अमित्रों का नाश करने वाला, परम तेजोमय, महाभयानक, असह्य पराक्रमवाला था, नीचे उतरा। उसका मण्डल सूर्य के समान तेज से देदीप्यमान था। जलती हुई अग्नि के समान विकराल अति भयंकर उस सुदर्शन चक्र को आकाशमण्डल से उतरते ही हाथी के शुण्ड के समान विशाल बाहुवाले अच्युत भगवान् ने अपने हाथ में धारण किया और उस अति प्रभावाले, दानवकुल एवं दैत्यों के संहारक, जलती हुई अग्नि के समान देदीप्यमान, रिपु के नगरों का विध्वंस करने वाले, संवर्तक नामक प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र को अति उग्रभाव से वेग पूर्वक शत्रुओं पर छोड़ दिया।।२६-२८।।

व्यदारयद्दितितनयान्सहस्त्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे।
दहत्क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरितः प्रसह्य तानसुरगणानकृन्तत॥२९॥

वह भीषण चक्र बारम्बार शत्रुओं पर प्रहार करने लगा। युद्धभूमि में पुरुषोत्तम के हाथ से छोड़े गये उस सुदर्शन चक्र ने सहस्त्रों की संख्या में दैत्यों को विदारित कर दिया, कहीं पर उसने वायु से उदीप्त अग्नि की भाँति शत्रुवाहिनी को एकदम भस्मसात् कर दिया तो कहीं पर उन असुर समूहों को बलपूर्वक काट डाला।।२९।।

तत्प्रेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमयो पिशाचवत्।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तदा॥३०॥
महाबला विगलितमेघवर्चसः सहस्त्रशो गगनमहाप्रपातिनः।
अथासुरा भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः॥३१॥

भगवान् के हाथों से प्रेरित उस सुदर्शन ने बारम्बार आकाश में तथा पृथ्वी तल पर पिचाश की भाँति रक्तपान किया। तदनन्तर निर्भयचित्त असुरों ने पर्वतों द्वारा बारम्बार देवताओं की सेना को विनष्ट किया। सहस्त्रों की संख्या में वे महाबलवान् असुर समूह मेघों के समान कान्तियुक्त दिखाई पड़ रहे थे। उस समय वे आकाश मण्डल की भाँति विशाल हो रहे थे। अनेक प्रकार से विचित्र बादलों की भाँति रूप धारण करने वाले वे राक्षसगण अति भयंकर हो गये।।३०-३१।।

महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य सस्वराः।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना तदाऽद्रिपाताभिहता समन्ततः॥३२॥
परस्परं समभिनिगर्जतां मुहू रणाजिरे भृशमभिसम्प्रवर्तिते।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणर्महेषुभिः पवनपथं समावृणोत्॥३३॥

विदारयन्गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा।
ततो महीं लवणजलं च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः॥३४॥

राक्षसों से छोड़े गये, वृक्षों समेत अनेक प्रकार के मेघों के समान दिखाई पड़ने वाले वे विशाल पर्वत, जिनकी चोटियाँ छिन्न-भिन्न हो गई थीं, शब्द करते हुए एक-दूसरे पर शीघ्रता से गिरने लगे। उन पर्वतों के गिरने एवं वनों समेत सारी पृथ्वी कम्पायमान हो गई और चारों ओर से चोटों के पड़ने के कारण छिन्न-भिन्न हो गई। इस प्रकार उन दोनों वाहिनियों का जब युद्धस्थल में एक-दूसरे पर भीषण गर्जन करते हुए बारम्बार घात-प्रतिघात होने लगा और देवताओं की सेना में अति आतंक छा गया, तब नर से सुन्दर सुवर्णजटित भूषणों से आभूषित अग्रभाग वाले अपने तीक्ष्ण बाणों से वायु का मार्ग छेंक लिया और छोटे बाणों से पर्वतों के शिखरों को विदारित कर दिया। देवताओं द्वारा ताड़ित किये गये बड़े-बड़े असुर योद्धागण भय के मारे पृथ्वी में, समुद्र के खारे जल में, जहाँ कहीं ठौर पाया प्रविष्ट हो गये।।३२-३४।।

वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य च।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः॥३५॥
वितत्य खं दिवमथ चैव सर्वशस्ततो गताः सलिलधरा यथागतम्।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम्॥
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलिभिरथामरैः सह॥३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थनं नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२५१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२६९२।।

जलती हुई अग्नि के समान भीषण अति कुपित होकर आकाश में प्रहार करने वाला सुदर्शन चक्र शान्त हो गया और देवताओं ने विजय की प्राप्ति की। तदनन्तर भली-भाँति पूजाकर मन्दराचल को अपने स्थान पर स्थापित किया गया और सभी दिशाओं तथा आकाश में फैले हुए जलधर भी जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये। देवतागण इस प्रकार अमृत की रक्षा कर परम आनन्दित हुए और उसकी संचित निधि को बलवान् देवताओं के साथ किरीटी (भगवान्) की सुरक्षा के लिए सौंप दिया गया।।३५-३६।।

।।दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त।।२५१।।

❖❖❖

अथ द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वास्तुविज्ञान के आचार्य, वास्तु की उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

प्रासादभवनादीनां निवेशं विस्तराद्वद। कुर्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः॥१॥

ऋषियों ने कहा–अब हम लोगों को राजप्रासाद तथा भवन आदि के निर्माण की विधि को विस्तारपूर्वक बतलाइये और यह बतलाइये कि उन्हें किस प्रकार बनाया जाना चाहिये? वास्तु क्या है? इसे भी हम लोग जानना चाहते हैं॥१॥

सूत उवाच

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा। नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥२॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च। वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥३॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।

सूत ने कहा–भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति–ये अट्ठारह वास्तु शास्त्र के उपदेशक अथवा प्रणेता माने गये हैं॥२-३.५॥

सङ्क्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा॥४॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम्। पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः॥५॥
ललाटस्वेदसलिलमपतद्भुवि भीषणम्। करालवदनं तस्माद्भूतमुद्भूतमुल्बणम्॥६॥
(ग्रसमानमिवाऽऽकाशं सप्तद्वीपां वसुन्धराम्। ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ॥७॥

मत्स्य रूपधारी भगवान् ने संक्षेप में मनु के लिये जिस उत्तम वास्तु-विज्ञान का उपदेश किया था, उसे ही मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ। प्राचीनकाल में अन्धक के वध के भीषण अवसर पर जब शिव जी ने विकराल रूप धारण किया था, तब उनके ललाट प्रदेश से स्वेद का एक भीषण बिन्दु पृथ्वीतल पर गिरा था और गिरते ही उससे एक कराल मुख वाला एक अद्भुत प्राणी प्रादुर्भुत हुआ था, उत्पन्न होते ही वह सातों द्वीपों समेत समस्त वसुन्धरा तथा आकाश को लीलने की भाँति उद्यत हुआ और पृथ्वी पर गिरे हुए अन्धक के रक्त विन्दुओं को पान कर गया॥४-७॥

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले। तथाऽपि तृप्तिमगमन्न तद्भूतं यदा तदा॥८॥
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम्। क्षुधाविष्टं तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम्॥९॥
ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाऽऽह वै। वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं तवानघ॥१०॥

उस विकराल प्राणी ने अन्धक के युद्ध में पृथ्वीतल पर गिरे हुए समस्त रक्त का पान किया और जब पान करने पर संतुष्ट नहीं हो सका तो सदाशिव भगवान् के सम्मुख घोर तपस्या करने लगा। तीनों लोकों का आहार करने में समर्थ वह विचित्र प्राणी अति क्षुधा से व्याकुल होकर तपश्चर्या करता रहा। कुछ दिनों बाद भैरव ने सन्तुष्ट होकर उससे कहा 'हे निष्पाप! तुम्हारी जो अभिलाषा हो उसे माँग लो'।।८-१०।।

तमुवाच ततो भूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम्। भवेयं देवदेवेश तथेत्युक्तं च शूलिना॥११॥
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः। स्वदेहेनान्तरिक्षं च रुन्धानं प्रपतद्भुवि॥१२॥
भीतभीतैस्ततो देवैर्ब्रह्मणा चाथशूलिना। दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः॥१३॥
येन यत्रैव चाऽऽक्रान्तं स तत्रैवावसत्पुनः। निवासात्सर्वदेवानांवास्तुरित्यभिधीयते॥१४॥

उसने कहा- 'देवदेवेश'! मैं यह चाहता हूँ कि तीनों लोकों को ग्रस लेने की समर्थ मुझमें आ जाय।' त्रिशूलधारी शिव जी ने कहा कि 'ऐसा ही होगा'। ऐसा कहने के उपरान्त वह विचित्र प्राणी अपने विशाल शरीर से स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल एवं आकाश को छेंकते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब भयभीत चित्त देवताओं, ब्रह्मा, शिव तथा समस्त दानव, दैत्य एवं राक्षसों ने ऊपर चढ़कर चारों ओर से उसे रोक लिया। जो लोग उसे जहाँ पर आक्रान्त किये बैठे थे, वे वहीं बने रह गये। सभी देवताओं का निवास होने के कारण वह वास्तु नाम से पुकारा गया।।११-१४।।

अवष्टब्धेन तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः। प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः॥१५॥
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः। ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः॥१६॥
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्य भविष्यति।

इस प्रकार रोके गये उस विचित्र प्राणी ने सभी देवताओं से निवेदन किया- 'हे समस्त देवगण! मेरे ऊपर आप लोगों से निश्चलित किया गया मैं भला नीचे मुख किये हुए देर तक किस प्रकार अवस्थित रह सकूँगा?' उसके इस निवेदन पर ब्रह्मादि देवताओं ने कहा कि 'वास्तु के प्रसंग में जो बलि दी जायेगी, वैश्वदेव के अन्त में जो आहार चढ़ाया जायेगा, वह निश्चय ही तुम्हारा होगा।।१५-१६.५।।

वस्तूपशमनो यज्ञस्तवाऽऽहारो भविष्यति॥१७॥
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाऽऽहारो भविष्यति। वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाऽऽहारो भविष्यति॥१८॥
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाऽऽहारो भविष्यति। एवमुक्तस्ततो हृष्टः स वास्तुरभवत्तदा॥
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्ततःप्रभृति शान्तये॥१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुभूतोद्भवो नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२५२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२७११।।

वास्तु की शान्ति के लिए जो यज्ञ होगा, वह भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा। यज्ञोत्सव के प्रारम्भ में दी हुई बलि भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगी। वास्तुपूजा के न करने वाले तुम्हारे आहार होंगे। अज्ञान से किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा।' ब्रह्मादि देवताओं के ऐसा कहने पर वह वास्तु नामक प्राणी परमसन्तुष्ट एवं हर्षित हुआ। तभी से लोक में शान्त के लिए वास्तु-यज्ञ का प्रचलन हुआ।।१७-१९।।

।।दो सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त।।२५२।।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गृह-निर्माण के शुभ मुहूर्त्त, गृह-निर्माण की प्रारम्भिक विधि, वास्तु में इक्यासी पद का चक्र

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकार्यविनिर्णयम्। यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत्।।१।।
चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः। वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च।।२।।

सूत ने कहा-अब इसके उपरान्त मैं उस गृहनिर्माण के समय का निर्णय करने चल रहा हूँ, जिस शुभ समय को जानकर लोगों को सर्वदा भवन का आरम्भ करना चाहिये। जो मनुष्य चैत्र के मास में घर का बनवाना आरम्भ करता है, वह व्याधिग्रस्त होता है। वैशाख में प्रारम्भ करने वाले को धेनु एवं रत्न प्राप्त होते हैं, ज्येष्ठ में मृत्यु होती है।।१-२।।

आषाढ़े भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात्। श्रावणे भृत्यलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा।।३।।
पत्नीनाशश्चाऽऽश्वयुजे कार्तिके धनधान्यकम्।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम्।।४।।
लाभं च बहुशो विन्द्यादग्निं माघे विनिर्दिशेत्।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम्।।५।।

आषाढ़ में नौकर, चाकर एवं रत्नादि की प्राप्ति तथा पशु आदि की समृद्धि होती है। श्रावण में नौकरों की प्राप्ति तथः भाद्रपद में हानि मिलती है। आश्विन के मास में गृह निर्माण करने वाले वाले की पत्नी का नाश होता है, कार्तिक में धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष मास में अन्न की प्राप्ति तथा पूस में चोरों से भय होता है। माघ मास में अनेक प्रकार के लाभ होते हुए भी अग्नि का भय रहता है और फाल्गुन में सुवर्ण तथा अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है-यह समय के बल का विवरण है।।३-५।।

अश्विनी रोहिणो मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम्। स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते॥६॥

आदित्यभौमवर्जं तु सर्वे वाराः शुभावहाः।
वर्ज(र्ज्ये) व्याधातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः॥७॥
विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु (न) कारयेत्।

गृहारम्भ में अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती हस्त और अनुराधा-ये नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं। रविवार तथा मंगलवार को छोड़कर शेष दिन भी मंगलकारी हैं। इस गृहारम्भ के कार्य में व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कम्भ गण्ड, परिघ एवं वज्र-इन योगों को भरसक वर्जित रखना चाहिये॥६-७.५॥

स्वातौ मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे॥८॥

तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत्। चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत्॥९॥

स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्तु परिवर्जयेत्। प्रसादेष्वेवमेवं स्यात्कूपवापीषु चैव हि॥१०॥

स्वाती, अनुराधा, गान्धर्व, अभिजित्, रोहिणी, वैराज और सावित्र-इन मुहूर्तों में गृहारम्भ करना चाहिये। चन्द्रमा तथा सूर्य-इनके बलवान् होने के साथ ही साथ शुभलग्न का निरीक्षण भी करना चाहिये। सर्वप्रथम अन्यान्य कार्यों को छोड़कर स्तम्भारोपण करना चाहिये और यही विधि प्रासाद कूप एवं बावलियों के लिए भी मानी गई है॥८-१०॥

पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत्।
श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैवानुपूर्वशः॥११॥

विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षणम्। विप्राणां मधुरास्वादा कटुका क्षत्रियस्य तु॥१२॥

तिक्ता कषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते।

पहिले भूमि की परीक्षा कर पश्चात् वास्तु की कल्पना करनी चाहिये। श्वेत वर्ण, लालवर्ण, पीले वर्ण एवं काले वर्ण-इन चार वर्णों की पृथ्वी क्रमशः, ब्राह्मणादि चारों जातियों के लोगों के लिए प्रशंसित मानी गई है। इसके देख लेने के बाद फिर परीक्षण करना चाहिये। ब्राह्मणों के लिए मधुर स्वाद वाली, क्षत्रिय के लिए कड़वे स्वाद वाली, वैश्य के लिये तिक्त स्वाद वाली तथा शूद्रों के लिये कसैले स्वाद वाली पृथ्वी की प्रशंसा की गई है॥११-१२.५॥

अरत्निमात्रे वै गर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः॥१३॥

घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम्। ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम्॥१४॥

इस प्रकार की भूमि की परीक्षा जो जाने के बाद एक हाथ विस्तृत एक गड्ढा खोदकर, उसे चारों ओर से भली-भाँति लीप-पोतकर स्वच्छ कर दे। अनन्तर एक कच्चे पुरवे में घी रखकर चार बत्तियाँ उसमें जलाकर रखे, जो चारों दिशाओं की ओर हों॥१३-१४॥

दीप्तौ पूर्वादि गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः। वास्तुः सामूहिको नाम दीप्यते सर्वतस्तु यः॥१५॥

शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च। रत्निमात्रमधोगर्ते परीक्ष्यं खातपूरणे॥१६॥

यदि पूर्व की दिशा की बत्ती अधिक काल तक जलती रहे तो ब्राह्मण के लिए उसका फल शुभावह होता है, इसी प्रकार क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए कल्याणकारक समझना चाहिये। यदि सामूहिक रूप से वह वास्तु दीपक चारों ओर बराबर समय तक प्रज्वलित रहते हैं तो प्रासाद एवं साधारण गृह-दोनों के निर्माण के लिए वहाँ की भूमि चारों वर्णों के लिए शुभावह है। एक हाथ गहरे गड्ढे का निर्माण कर उसे उसकी मिट्टी से पूर्ण कर दे और इस प्रकार पृथ्वी की परीक्षा करे।।१५-१६।।

अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम्।
फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत्॥१७॥
त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्राऽऽरोहन्ति तान्यपि। ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्वर्जनीयतरा सदा॥१८॥

यदि मिट्टी अधिक मात्रा में शेष रह जाती है तो श्री की प्राप्ति होती है, न्यून हो जाने से हानि होती है तथा सम रहने से न तो हानि ही होती है और न लाभ ही होता है। अथवा हल द्वारा जुतवाई गई पृथ्वी में सभी प्रकार के बीजों को भूमि परीक्षा के लिए बो दे। यदि वे बीज तीन-पाँच तथा सात दिनों में उग आते हैं तो उनके फल इस प्रकार घटित होते हैं, तीन रात में जिस भूमि में बीज उग आते हैं, वह भूमि उत्तमा है, पाँच रात वाली मध्यमा तथा सात रात वाली कनिष्ठा है। कनिष्ठा भूमि को इन कार्यों में सर्वदा वर्जित रखना चाहिये।।१७-१८।।

पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत्।
एकाशीतिपदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन च॥१९॥
पश्चात्पिष्टेन चाऽऽलिख्य सूत्रेणाऽऽलोड्य सर्वतः।
दश पूर्वायता लेखा दश चैवोत्तरायताः॥२०॥

पञ्चगव्य एवं ओषधियों द्वारा भली-भाँति परीक्षा करने के उपरान्त भूमि को सींच दे और सुवर्ण द्वारा रेखा बनाकर इक्यासी पद का चिह्न निर्मित करे। उसके बाद सभी स्थान को चारों ओर से सूत्र द्वारा जो चूर्ण से रंगा हुआ हो, चिह्नित कर दस रेखाएँ पूर्व-पश्चिम तथा दस रेखाएँ उत्तर-दक्षिण की ओर खींचे।।१९-२०।।

सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव। एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु॥२१॥
पदस्थान्पूजयेद्देवांस्त्रिंशत्पञ्चदशैव तु। द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश॥२२॥

सभी प्रकार के वास्तु विभागों में ये नव-नव (९×९) अर्थात् इक्यासी पद का वास्तु जानना चाहिये। वास्तु शास्त्र का विज्ञाता सभी प्रकार के वास्तु सम्बन्धी कार्यों में इसका उपयोग करे। फिर पदस्थ पैंतालीस देवताओं की पूजा करे। उनमें बत्तीस तो बाहर से तथा तेरह भीतर की ओर से पूजने चाहिये।।२१-२२।।

नामस्तान्प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत। ईशानकोणादिषु तान्पूजयेद्धविषा नरः॥२३॥
शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्यः सत्यो भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च॥२४॥
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ। गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा॥२५॥
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः।
असुरः शोषपापौ च रोगोऽहिमुख्य एव च॥२६॥
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा। बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु॥२७॥

उनका नाम बतला रहा हूँ तथा उनके स्थानों को भी मुझसे सीख लीजिए। भक्त मनुष्य उन देवताओं की पूजा ईशान आदि कोणों में हवि द्वारा करे। शिखी पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्य सत्य, भृश, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गृहक्षत, दोनों यम, गन्धर्व, मृगराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, अघदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति और दिति, इन बत्तीस देवताओं की बाहरी ओर से पूजा करनी चाहिये।।२३-२७।।

ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान्पूजयेद्बुधः। आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च॥२८॥
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान्।
साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामतः शृणु॥२९॥

तदनन्तर ईशान आदि चारों कोणों में अवस्थित इन देवताओं की बुद्धिमान् पुरुष पूजा करे। आप, सावित्र, जय तथा रुद्र, ये चार चारों ओर से तथा मध्य में ९वें स्थान पर ब्रह्मा तथा उनके समीप में अवस्थित अन्य आठ देवताओं की भी पूजा करनी चाहिये- ये ही मिलकर मध्य के तेरह देवता होते हैं। ब्रह्मा के चारों ओर अवस्थित वे आठ देवता जो क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में दो-दो के क्रम से रहते हैं, साध्य देवगण के नाम से विख्यात हैं, ऐसा जानना चाहिये।।२८-२९।।

अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्॥३०॥
अष्टमश्चाऽऽपवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः।
आपश्चैवाऽऽपवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा॥३१॥
पदिकानां तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः। तन्मध्ये तु बहिर्विंशद्द्वि पदास्ते तु सर्वशः॥३२॥
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः॥३३॥

उनके नाम इस प्रकार हैं, सुनिये-अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर-ये सात तथा आठवें आपवत्स। ये आठ देवता ब्रह्मा के चारों ओर अवस्थित माने गये हैं। आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि तथा दिति ये पाँच देवताओं के वर्ग हैं, जिनकी पूजा अग्निकोण में

करनी चाहिये। उनके बाहर बीस देवता हैं, वे सभी दो पदों में रहते हैं, अर्यमा, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधर ये चार ब्रह्मा के चारों ओर रहने वाले देवता हैं, जो सभी तीन-तीन पदों में अवस्थित रहते हैं।।३०-३३।।

वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक्पृथक्।
वायुं यावत्तथा रोगात्पितृभ्यः शिखिनं पुनः।।३४।।
मुख्याद्भृशं तथा शेषाद्वितथं यावदेव तु। सुग्रीवाददितिं यावन्मृगात्पर्जन्यमेव च।।३५।।

अब मैं उन्हीं देवताओं के वंशों को जो सरल (?) हैं, पृथक्-पृथक् बतला रहा हूँ। वायु से लेकर रोग पर्यन्त, पितृगण से शिखी पर्यन्त, मुख्य से भृश पर्यन्त, शेष से वितथ पर्यन्त, सुग्रीव से अदिति पर्यन्त तथा मृग से पर्जन्य पर्यन्त-यही वंश कहे जाते हैं।।३४-३५।।

एते वंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु।
एतेषां यस्तु सम्पातः पदं मध्यं समं तथा।।३६।।
मर्म चैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणगं च यत्।
स्तम्भं न्यासेषु वर्ज्यानि तुलाविधिषु सर्वदा।।३७।।

कहीं-कहीं मृग से लेकर जयपर्यन्त वंश कहा जाता है। पद के मध्य में इनका जो संपात है, वह पद, मध्य तथा सम नाम से प्रसिद्ध है एवं त्रिशूल और कोणगामी जो हैं, वे मर्मस्थल कहे जाते हैं। सर्वदा स्तम्भन्यास एवं तुलादि विधि में इन सब को बचाना चाहिये।।३६-३७।।

कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद्यत्नतो जनः। सर्वत्र वास्तुर्निर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः।।३८।।
मूर्धन्यग्निः समादिष्टो मुखे चापः समाश्रितः।
पृथ्वीधरोऽर्यमा चैव स्कन्धयोस्तावधिष्ठितौ।।३९।।

मनुष्य को यत्नपूर्वक देवता के पदों पर कीलें गाड़ना उच्छिष्ट भोजनादि छोड़ना तथा चोटें पहुँचाना ऐसे कार्यों को वर्जित रखना चाहिये। वह वास्तु का चक्र सभी स्थलों में पितृवर्ग एवं वैश्वानर के अधीन माना गया है। उसके मुख में अग्नि का निवास माना गया है, मुख में ही जल का निवास भी है, दोनों स्कन्धों पर पृथ्वीधर तथा अर्यमा का निवास है।।३८-३९।।

वक्षःस्थले चाऽऽपवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः।
नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ श्रोतेऽदितिजयन्तकौ।।४०।।
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः। सूर्यसोमादयस्तद्वद्बाह्वोः पञ्च च पञ्च च।।४१।।

उसके वक्षःस्थल पर आपवत्स की बुद्धिमानों को पूजा करनी चाहिये। दोनों नेत्रों में दिति और पर्जन्य तथा दोनों कानों में अदिति और जयन्तक तथा दोनों कन्धों पर अवस्थित सर्प और इन्द्र की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार दोनों बाहुओं में सूर्य और चन्द्रमा से लेकर पाँच-पाँच देवता अवस्थित हैं।।४०-४१।।

रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ।
सावित्रः सविता तद्वद्धस्तं दक्षिणमास्थितौ॥४२॥
विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ। पूषा पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने॥४३॥
तथैवासुरशेषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ। पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वद्वितथः सगृहक्षतः॥४४॥

रुद्र और राजयक्ष्मा-ये दोनों देवता बाएँ हाथ पर अवस्थित हैं, उसी प्रकार सावित्र और सविता दाहिने हाथ पर स्थित रहते हैं। विवस्वान् और मित्र ये दो उदर में तथा पूषा और पापयक्ष्मा ये दोनों होथों के मणिबन्धों पर अवस्थित हैं। उसी प्रकार असुर और शेष ये दो बाएँ पार्श्व में अवस्थित हैं। दाहिने पार्श्व में वितथ और ग्रहक्षत हैं।।४२-४४।।

ऊर्वोर्यमाम्बुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ।
जङ्घयोभृङ्गसुग्रीवौ स्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः॥४५॥
जयशक्रौ तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा। मध्ये नवपदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते॥४६॥

दोनों ऊरु भागों में यम और जलाधिप, घुटनों में गन्धर्व और पुष्पक को जानना चाहिये, जंघो में भृङ्ग और सुग्रीव तथा दोनों नितम्बों पर दौवारिक और मृग हैं। लिंग स्थान पर जय तथा शक्र और दोनों पैरों पर पितृगण अवस्थित हैं, मध्य के नौ पदों में ब्रह्मा हैं, जिनकी पूजा वास्तु के हृदय में करनी चाहिये।।४५-४६।।

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः। ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा॥४७॥
बहिष्कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः।
विंशतिद्विपदाश्चैव चतुःषष्टिपदे स्मृताः॥४८॥

ब्रह्मा से प्रासाद के निर्माण में चौंसठपदों वाले वास्तु के पूजने की विधि सुनी गई है, उसमें ब्रह्मा का निवास चार पदों में रहता है, कोणों में आधे पर में देवगण अवस्थित रहते हैं, वास्तु के बाहर वाले कोणों में डेढ़ पद में देवताओं का निवास रहता है, तथा बीस देवता दो पदों में निवास करते हैं, यह चौंसठ पद वाले वास्तु के निर्माण की विधि सुनी गई है।।४७-४८।।

गृहरम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते। शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा॥४९॥
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम्।

गृहारम्भ के अवसर पर गृहपति के जिस अंग में खुजली उठे वास्तु के उसी अंग के स्थान पर गड़ी हुई शल्य अथवा कील आदि को निकाल देना चाहिये। ऐसी विधि प्रासाद एवं गृह दोनों के निर्माण के समय की है; क्योंकि शल्य समेत वास्तु की पूजा भयदायिनी मानी गई है और अशल्य की पूजा कल्याणकारिणी है।।४९.५।।

हीनाधिकाङ्गतां वास्तोः सर्वथा तु विवर्जयेत्॥५०॥

नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत्। चतुःशालं त्रिशालं च द्विशालं चैकशालकम्॥
नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः॥५१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे एकाशीतिपदवास्तुनिर्णयो नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२५३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२७६२॥

वास्तु निर्माण में अधिक अंग एवं हीन अंग न होने पावें, इनको सर्वथा वर्जित रखना चाहिये। नगर, ग्राम एवं देश सभी स्थलों पर इनका वर्जन करना चाहिये। हे ऋषिगण! अब मैं चतुःशाल, त्रिशाल, द्विशाल तथा एक शालवाले भवनों के निर्माण की विधि, नाम तथा स्वरूप का संकेत करते हुए, बतला रहा हूँ, सुनिये!॥५०-५१॥

॥दो सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त॥२५३॥

❖❖❖

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गृह-मान निर्णय

सूत उवाच

चतुःशालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपान्नामतस्तथा। चतुःशालं चतुर्द्वारंरलिन्दैः सर्वतोमुखम्॥१॥
नाम्ना तत्सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये।

सूत ने कहा–अब मैं चारशाला वाले भवनों को, उसके स्वरूप एवं नाम का संकेत करते हुए बतला रहा हूँ। वह चतुःशाल भवन चारों ओर द्वार तथा बाजों समेत यदि हो और चारों ओर से एक ही प्रकार से बना हुआ हो तो वह सर्वतोभद्र नामक चतुःशाल है, ऐसा चतुःशाल भवन देवताओं तथा राजा के निवास के लिए मंगलकारक कहा गया है।॥१.५॥

पश्चिमद्वारहीनं च नन्द्यावर्तं प्रचक्षते॥२॥
दक्षिणद्वारहीनं तु वर्धमानमुदाहृतम्। पूर्वद्वारविहीनं तत्स्वस्तिकं नाम विश्रुतम्॥३॥
रुचकं चोत्तरद्वारविहीनं तत्प्रचक्षते।

जिस चतुःशाल भवन में पश्चिम दिशा में द्वार न हो, वह नन्द्यावर्त नामक कहा जाता है, दक्षिण दिशा में जिसमें द्वार न हो, वत वर्धमान कहा जाता है, पूर्व दिशा में जिसमें द्वार न हो वह स्वस्तिक कहा जाता है। उत्तर दिशा में जिसमें द्वार न हो वह रुचक नामक चतुःशाल है।॥२-३.५॥

सौम्यशालाविहीनं यत्त्रिशालं धान्यकं च तत्॥४॥
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम्।

तीन शाल वाले भवन में यदि उत्तर दिशा की शाला न बनी हो तो उसे धान्यक कहते हैं, ऐसा भवन सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए कल्याण एवं वृद्धि करने वाला तथा अनेक पुत्रादि को देने वाला कहा गया है।।४-४.५।।

शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम्।।५।।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शोकमोहविनाशनम्।
शालया याम्यया हीनं यद्विशालं तु शालया।।६।।
कुलक्षयकरं नृणां सर्वव्याधिभयावहम्।

पूर्व दिशा की शाला जिस त्रिशाल भवन में न हो, उसे सुक्षेत्र कहते हैं, ऐसा त्रिशाल भवन धन, यश, दीर्घायु को प्रदान करने वाला तथा शोक एवं मोह का विनाशक कहा गया है। दक्षिण दिशा की शाल से विहीन जो त्रिशाल भवन होता है, उसे विशाल कहते हैं, ऐसा भवन मनुष्यों के कुल का क्षय करने वाला तथा सभी प्रकार की व्याधि एवं भयों को प्रदान करने वाला कहा गया है।।५-६.५।।

हीनं पश्चिमया यत्तु पक्षघ्नं नाम तत्पुनः।।७।।
मित्रबन्धुसुतान्हन्ति तथासर्वभयावहम्। याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम्।।८।।
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्।

इसी प्रकार पश्चिम दिशा की शाला से हीन जो भवन होता है, उसका नाम दक्षघ्न कहा गया है, वह मित्र, बन्धु एवं पुत्रों का विनाश करता है तथा सभी प्रकार के भय को उत्पन्न करने वाला है। जिस भवन में दक्षिण-पश्चिम-इन्हीं दो दिशाओं की शाला बनी हो वह धन-धान्यादि को प्रदान करने वाला कहा गया है, ऐसा भवन सर्वसाधारण के लिए कल्याण एवं वृद्धि को प्रदान करने वाला है तथा पुत्रप्रद कहा गया है।।७-८.५।।

यम सूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्।।९।।
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यम्। उदक्पूर्वे तु शाले द्वे दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत्।।१०।।
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम्।

पश्चिम और उत्तर की दिशाओं में जिस भवन में शाला बनी हुई हो वह यमसूर्य नाम से विख्यात है, जिसका फल सर्वसाधारण के लिए राजा एवं अग्नि से भय पहुँचाने वाला तथा कुछ को क्षय करने वाला कहा गया है। पूर्व और उत्तर की शाला से युक्त भवन को दण्डशाला कहते हैं, जो अकाल मृत्यु का भय देने वाला तथा शत्रुपक्ष से हानि पहुँचाने वाला कहा गया है।।९-१०.५।।

धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद्विशालकम्।।११।।
तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम्। चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी।।१२।।
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्।

जो पूर्व तथा दक्षिण की शालाओं से युक्त विशाल भवन उसे धानक्य कहते हैं, वह सर्वसाधारण को शस्त्र से भय पहुँचाने वाला तथा शत्रु से पराजित कराने वाला कहा गया है। भवन में पूर्व तथा पश्चिम की ओर बनी हुई चुल्ली (चूल्हा) गृहपति के मृत्यु की सूचना देने वाली है। उसे स्त्रियों को विधवा करने वाली तथा अनेक प्रकार का भय पहुँचाने वाली कहा गया है। उत्तर एवं दक्षिण की शालाओं से युक्त भवन को सर्वसाधारण को भय पहुँचाने वाला कहा गया है, अतः ऐसे भवन को नहीं बनवाना चाहिये। सिद्धार्थ (?) एवं वज्र (?) से वर्जित एवं शाला से रहित भवनों को बुद्धिमानों को कभी नहीं बनवाना चाहिये।।११-१३.५।।

कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम्॥१३॥
सिद्धार्थ वज्रवर्ज्यानि विशालानि सदा बुधैः। अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भवनं पृथिवीपतेः॥१४॥
पञ्चप्रकारं तत्प्रोक्तमादिविभेदतः। अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारश्चोत्तमो मतः॥१५॥
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयते चाष्टिभिः करैः। चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते॥१६॥
युवराजस्य वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्। षड्भिः षड्भिस्तथाशीतिर्हीयते तत्र विस्तरात्॥१७॥

अब इसके उपरान्त मैं पृथ्वीपति (राजा) के भवन के विषय में बतला रहा हूँ। राजा के भवन पाँच प्रकार के उत्तम आदि नामों से कहे गये हैं। एक सौ आठ हाथ की चौड़ाई वाले भवन को उत्तम माना गया है। अन्य चार भवनों में चौड़ाई क्रमशः आठ-आठ हाथ कम हो जाती है, इन पाँचों भवनों में चौड़ाई से सवाया अधिक लम्बाई कही गई है। युवराज के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ, उसमें सबसे उत्तम भवन की चौड़ाई अस्सी हाथ की होती है, अन्य चार की चौड़ाई क्रमशः छः-छः हाथ कम होती जाती है।।१४-१७।।

त्र्यंशेन चाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते। सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्॥१८॥
चतुः षष्टिस्तु विस्तारात्षड्भिः षड्भिस्तु हीयते।
पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत्॥१९॥
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्। चतुश्चतुर्भिर्हीना स्यात्करषष्टिः प्रविस्तरे॥२०॥

इन पाँचों भवनों की चौड़ाई से तिहाई अधिक लम्बाई कही गई है। सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ उसके सबसे उत्तम भवन की चौड़ाई चौंसठ हाथ की मानी गई है, अन्य चार भवनों की चौड़ाई छः-छः हाथ कम हो जाती है पाँचों की लम्बाई-चौड़ाई से छठें भाग जितनी अधिक होनी चाहिये। अब मन्त्रियों के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूं, उनमें सबसे उत्तम भवन साठ हाथ का तथा अन्य चार-चार हाथ कम चौड़े होते हैं।।१८-२०।।

अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते। सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्॥२१॥
चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात्। चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषु शस्यते॥२२॥

इन पाँचों की चौड़ाई से आठवें भाग जितनी अधिक लम्बाई कही गई है। अब सामन्त एवं

अमात्य लोगों के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ। इनमें सर्वोतम भवन की चौड़ाई अड़तालीस हाथ की कही गई है, अन्य चारों की चौड़ाई उससे चार-चार हाथ कम कही गई है, इन पाँचों भवनों की लम्बाई, चौड़ाई की अपेक्षा सवाई अधिक कही गई है।।२१-२२।।

शिल्पिनां कञ्चुकीनां च वेश्यानां गृहपञ्चकम्।
अष्टाविंशत्कराणां तु विहीनं विस्तरे क्रमात्।।२३।।
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत्। दूतीकर्मातकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्।।२४।।

शिल्पकार, कञ्चुकी एवं वेश्याओं के पाँच प्रकार के भवनों को सुनिये, इन सभी लोगों के भवनों की चौड़ाई अट्ठाइस हाथ की कही गई है, चौड़ाई में दो-दो हाथ की न्यूनता अन्य चार भवनों में हो जाती है। चौड़ाई की अपेक्षा इन भवनों की लम्बाई दुगुनी कही गई है। मध्यम भवनों के लिए भी यही नियम हैं। दूती एवं कर्मचारियों तथा परिवार के अन्य लोगों के पाँच प्रकार के भवनों को अब बतला रहा हूँ।।२३-२४।।

चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशैव तु।
अर्धार्धकरहानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात्।।२५।।
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम्। तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम्।।२६।।
चत्वारिंशत्तु विस्ताराच्चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।
पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत्।।२७।।

उनकी चौड़ाई बारह हाथ की तथा लम्बाई उसकी सवाई होती है। शेष चार गृहों की चौड़ाई क्रम से आधे-आधे हाथ न्यून होती जाती है। ज्योतिषी, गुरु, वैद्य, सभापति और पुरोहित-इन सबों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन कर रहा हूँ। उनके उत्तम भवन की चौड़ाई चालीस हाथ की होती है शेष की चौड़ाई क्रम चार-चार हाथ कम होती जाती है। इन पाँचों भवनों की लम्बाई चौड़ाई से छठें भाग जितनी अधिक होती है।।२५-२७।।

चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम्। द्वात्रिंशतः कराणां तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।।२८।।
आषोडशादिति परं नूनमन्त्यादसयिनाम्।
दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेना(णा) थ पादिकम्।।२९।।
अधिकं दैर्घ्यमित्याहुर्ब्राह्मणादेः प्रशस्यते।

अब साधारणतया चारों वर्णों के लिए पाँच प्रकार के गृहों का वर्णन कर रहा हूँ। उनमें से ब्राह्मण के घर की चोड़ाई बत्तीस हाथ की होनी चाहिये, अन्य जातियों के लिए क्रमशः चार-चार हाथ की कमी होनी चाहिये, अर्थात् ब्राह्मण के उत्तम गृह की चौड़ाई बत्तीस हाथ की हो, मध्यादि के लिए चार-चार हाथ कम चौड़ाई हो। क्षत्रिय के उत्तम गृह की २८ हाथ चौड़ाई हो। मध्यमादि की चार-चार हाथ कम हो, इसी प्रकार वैश्य के घर की २० हाथ चौड़ाई हो, तथा शूद्र के घर की १६

हाथ चौड़ाई हो। किन्तु सोलह हाथ से कम चौड़ाई अन्त्यजों के लिऐ है, इन उपर्युक्त चारों जातियों के लिए नहीं। लम्बाई के लिए बाह्मण के गृह की चौड़ाई से लम्बाई दसवें भाग जितनी अधिक, क्षत्रिय की आठवें भाग, वैश्य के तीसरे भाग एवं शूद्र के चौथाई भाग जितनी अधिक होनी चाहिये। ऐसी विधि ब्राह्मणादि के गृहों के लिए हैं।।२८-२९.५।।

सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु॥३०॥
नृपवासगृहं कार्यं भाण्डागारं तथैव च। सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे॥
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा॥३१॥
अन्तरप्रभवाणां च स्वपितुर्गृहमिष्यते। तथा हस्ताशतादर्धं गदितं वनवासिनाम्॥३२॥

सेनापति तथा राजा के अन्यान्य गृहों के भीतर राजा के रहने का गृह बनना चाहिये, उसी स्थान पर भाण्डागार भी रहना चाहिये। सेनापति के तथा चारों ब्राह्मणादि वर्णों के ग्रहों के मध्य भाग में सर्वदा राजा के पूज्य लोगों के निवासार्थ गृह बनवाना चाहिये। अन्तरजाति वालों (?) के लिए उनके पिता का घर मिलना चाहिये। वनवासियों के लिए पचास हाथ का गृह बनाना चाहिये।।३०-३२।।

सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्या सहितेऽन्विते। चतुर्दशहृते व्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः॥३३॥
पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः। तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता॥३४॥
विप्रस्य महती शाला न दैर्घ्यं परतो भवेत्। दशाङ्गुलाधिका तद्वत्क्षत्रियस्य विधीयते॥३५॥

सेनापति और राजा के गृह के परिमाण में सत्तर का योग करने से चौदह का भाग देने पर व्यास में शाला का न्यास कहा गया है। उसमें पैंतीस हाथ पर बरामदे का स्थान कहा गया है, छत्तीस हाथ सात अंगुल लम्बी ब्राह्मण की बड़ी शाला होनी चाहिए, इससे बड़ी नहीं होनी चाहिये। उसी प्रकार दस अंगुल अधिक क्षत्रिय की शाला होनी चाहिये।।३३-३५।।

पञ्चत्रिंशत्करा वैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश। तावत्करैव शूद्रस्य युता पञ्चदशाङ्गुलैः॥३६॥
शालायास्तु त्रिभागेन(ण)यस्याग्रे वीथिका भवेत्।
सोष्णीषं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत्॥३७॥
पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भं तदुच्यते। समन्ताद्वीथिका यत्र सुस्थितं तदिहोच्यते॥३८॥

वैश्य के लिए पैंतीस हाथ तेरह अंगुल लम्बी शाला होनी चाहिए। उतने ही हाथ तथा पन्द्रह अंगुल शूद्र की शाला का परिमाण है। शाला की लम्बाई में तीन भाग करके यदि सामने की ओर गली बनी हो तो, वह सोष्णीष नामक वस्तु है। पीछे की ओर हो तो श्रेयोच्छ्रय नाम पड़ता है, दोनों पार्श्वों में यदि वीथिका हो तो वह सावष्टम्भ तथा चारों ओर वीथिका हो तो सुस्थित नामक वास्तु कही जाती है।।३६-३८।।

शुभदं सर्वमेतत्स्याच्चातुर्वर्ण्ये चतुर्विधम्।
विस्तारात्षोडशो भागस्तथा हस्तचतुष्टयम्॥३९॥

प्रथमो भूमिकोच्छ्राया उपरिष्टात्प्रहीयते।

ये चारों प्रकार की बीथियाँ चारों वर्णों के लिए शुभदायी है। शाला के विस्तार का सोलहवाँ भाग तथा चार हाथ और, यह पहले खण्ड की ऊँचाई का मान है, अधिक ऊँचा करने से हानि होती है।।३९.५।।

द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः।।४०।।
पक्वेष्टका भवेद्भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात्।
दारवैरपि कल्प्या स्यात्तथा मृन्मयभित्तिका।।४१।।
गर्भमानेन मानं तु सर्ववास्तुषु शस्यते। गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः।।४२।।
संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयो भवेत्।
द्वारशाखासु बाहुल्यमुच्छ्रायकरसम्मितैः।।४३।।
अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां पृथुत्वं शस्यते बुधैः। उदुम्बरोत्तमाङ्ग च तदार्धार्धप्रविस्तरात्।।४४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु गृहमाननिर्णयो नाम चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२५४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२८०६।।

इसके बाद अन्य सभी खण्डों की बारहवां भाग जितनी ऊँचाई रखनी चाहिये। यदि पक्की ईंटों की भीत बन रही है तो गृह की चौड़ाई के सोलहवें भाग जितनी मोटाई होनी चाहिये। यह भीत लकड़ी तथा मिट्टी से भी बनाई जा सकती है। सभी वस्तुओं में भीतर के मान की लम्बाई-चौड़ाई का मान रखना चाहिये। गृह के मान से पचास अंगुल विस्तार और अट्ठारह अंगुल वेध से युक्त द्वार की चौड़ाई रखनी चाहिये और उसकी ऊँचाई चौड़ाई से द्विगुणित होनी चाहिये। जितनी ऊँचाई द्वार की हो, उतनी ही दरवाजे में लगी हुई शाखाओं (बाजुओं) की भी होनी चाहिये। ऊँचाई जितने हाथों की हो उतने ही अंगुल उन शाखाओं की मोटाई होनी चाहिए-ऐसा सभी वस्तुओं में विद्वानों ने बतलाया है। द्वार के ऊपर का उत्तमांग तथा नीचे का चौखट (देहली)-ये दोनों शाखाओं से आधे से अधिक मोटे हो अर्थात् इन्हें शाखाओं से ड्योढ़े मोटे होने चाहिये।।४०-४४।।

।।दो सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त।।२५४।।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वेध परिमार्जन

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भमानविनिर्णयम्।
कृत्वा स्वभवनोच्छ्रायं सदा सप्तगुणं बुधैः॥१॥
अशीत्यंशः पृथुत्वे स्यादग्रे नवगुणे सति। रुचकश्चतुरः स्यात्तु अष्टास्त्रो वज्र उच्यते॥२॥
द्विवज्रः षोडशास्त्रस्तु द्वात्रिंशास्त्रः प्रलीनकः।

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं स्तम्भ के मान के विषय में आप लोगों को बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि वे सर्वदा अपने गृह की ऊँचाई को सात से गुणित करके उसे अस्सीवें भाग जितनी खम्भे की मोटाई रखे, उसके मूलभाग में नवगुणित से अस्सीवें भाग जितनी मोटाई रखनी चाहिये। चार कोण वाला स्तम्भ रुचक नाम से विख्यात है, आठ कोण वाले को वज्र कहते हैं, सोलह कोण वाला द्विवज्र के नाम से विख्यात है तथा बत्तीस कोणों वाला प्रालीनक कहा जाता है।॥१-२.५॥

मध्यप्रदेशे यः स्तम्भो वृत्तो वृत्त इति स्मृतः॥३॥
एते पञ्चमहास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु। पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः॥४॥
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः॥५॥

मध्य प्रदेश में जो वृत्ताकार (गोला) स्तम्भ रहता है, उसे वृत्त नाम से पुकारते हैं। ये पाँच प्रकार के महास्तम्भ सभी प्रकार के वास्तु प्रयोगों में प्रशंसनीय हैं। ये सभी स्तम्भ पद्म, लता, वल्ली, कुम्भ पत्र एवं दर्पणादि से चित्रित रहने चाहिये। इन पद्म तथा कुम्भों में स्तम्भ के नवे अंश जितना अन्तर रहना चाहिये। स्तम्भ के बराबर ऊँचाई को तुला तथा न्यून ऊँचाई वाली को उपतुला कहते हैं।॥३-५॥

त्रिभागेन(णे)ह सर्वत्र चतुर्भागेने(ण) वा पुनः।
हीनं हीनं चतुर्थांशात्तथा सर्वासु भूमिषु॥६॥
वासगेहानि सर्वेषां प्रविशेद्दक्षिणेन तु। द्वारेण तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु॥७॥
पूर्वेणेन्द्रं जयन्तं च द्वारं सर्वत्र शस्यते।

तृतीय अथवा चतुर्थ अंश से हीन जो तुला रहती हैं, वह उपतुला कहाती है। सभी भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन उपतुला रहती है। सभी के निवास गृहों में दक्षिण (दाहिनी ओर) ओर से प्रवेश

करना चाहिये। अब गृह के उन द्वारों को जैसे बताया गया है बतला रहा हूँ। पूर्व दिशा से इन्द्र और जयन्त नामक देवताओं के पदों पर बना हुआ द्वार सभी गृहों में प्रशंसित माने गये हैं।।६-७.५।।

याम्यं च वितथं चैव दक्षिणेन विदुर्बधाः।।८।।
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणं च प्रशस्यते। उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं शुभदं भवेत्।।९।।
तथा वास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत्। द्वारे तु रथ्यया विद्धे भेवत्सर्वकुलक्षयः।।१०।।

बुद्धिमान् लोग दक्षिण दिशा में याम्य और वितथ नाम देवताओं के पदों पर द्वार को जानते हैं, पश्चिम दिशा में पुष्पदन्त और वरुण के स्थानों पर द्वार प्रशंसित हैं और उत्तर में भल्लाट तथा सौम्य इन दोनों पर शुभदायक द्वार होते हैं। सभी वस्तुओं में द्वार के वेध को वर्जित रखना चाहिये। गली, सड़क या मार्ग द्वारा द्वार के वेध होने पर सभी कुल का क्षय होता है।।८-१०।।

तरुणा द्वेषबाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते। अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा।।११।।
व्यथा प्रस्त्रवणेन स्यात्कीलेनाग्निभयं भवेत्।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृतो भवेत्।।१२।।

वृक्ष द्वारा वेध होने पर द्वेष की अधिकता होती है और कीचड़ से वेध होने पर शोक की प्राप्ति होती है। निश्चय है कि सर्वदा कूप द्वारा वेध होने पर गृहपति को मृर्गी का रोग होता है। नाबदान या जलप्रवाह से वेध होने पर व्यथा होती है, तथा कील से वेध होने पर अग्निभय होता है। देवता से विद्ध होने पर विनाश तथा स्तम्भ से वेध होने पर स्त्री द्वारा क्लेश-प्राप्ति होती।।११-१२।।

गृहभर्तुर्विनाशः स्याद्गृहेण च गृहे कृते। अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत्।।१३।।
तथा शस्त्रभयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु।
उच्छ्रायाद्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते।।१४।।
स्वयमुद्घाटिते द्वार उन्मादो गृहवासिनाम्।
स्वयं वा पिहिते विद्यात्कुलनाशं विचक्षणः।।१५।।

एक घर से दूसरे घर में वेध पड़ने पर गृहपिता का विनाश होता है। अपवित्र द्रव्यादि द्वारा वेध होने पर स्त्री वन्ध्या होती है, अन्त्यज के घर से वेध होने पर हथियार से भय होता है। गृह की ऊँचाई से दुगुनी भूमि के बाद यदि वेध पड़े तो उससे वेध का दोष नहीं होता। जिस घर के द्वार अपने आप खुल जाते हैं, उसके दुष्परिणाम से गृह वालों को उन्माद का रोग होता है, इसी प्रकार स्वयं बन्द होने जाने पर भी बुद्धिमान् लोग कुलनाश की सूचना बतलाते हैं।।१३-१५।।

मानाधिके राटभयं न्यूने तस्करतो भवेत्। द्वारोपरि च यद्द्वार तदन्तकमुखं स्मृतम्।।१६।।
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः। वज्रं तु सङ्कटं मध्ये सद्यो भर्तविनाशनम्।।१७।।
तथाऽस्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत्।

गृह के द्वार यदि अपने मान से अधिक ऊँचे हैं तो राज भय तथा यदि नीचे हैं तो चोरों का

भय जानना चाहिये। एक द्वार के ऊपर जो दूसरे द्वार पड़ते हैं, वे यमराज के मुख कहे जाते हैं। मार्ग के बीच में बने हुए जिस अतिदुर्गम गृह की चौड़ाई बहुत अधिक होती है, वह वज्र के समान है और शीघ्र ही गृहपति के विनाश का कारण है। अन्य द्वारों से पीड़ित जो मुख्य द्वार होता है, वह बहुत दोषों का करने वाला है।।१६-१७.५।।

मूलद्वारात्तथाऽन्यत्तु नाधिकं शोभनं भवेत्।।१८।।
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभिर्मूलद्वारं तु शोभयेत्।
पूजयेच्चपि तन्नित्यं बलिना चाक्षतोदकैः।।१९।।
(भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः।।२०।।

इसी प्रकार मुख्य द्वार की अपेक्षा अन्य द्वारों को अधिक शोभित नहीं करना चाहिये। घड़े, श्रीपर्णी, लता एवं वल्लियों से मूलद्वार को अधिक शोभित नहीं करना चाहिये और उसकी नित्य बलि, अक्षत एवं जल से पूजा करनी चाहिये। गृह की पूर्व दिशा में बरगद वृक्ष सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाला कहा गया है। दक्षिण भाग में गूलर का पेड़, तथा पश्चिम में पीपल का पेड़ शुभ करने वाला होता है।।१८-२०।।

प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये।
कण्टकी क्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः।।२१।।
भार्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा।
न च्छिन्द्याद्यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान्।।२२।।

इसी प्रकार उत्तर की दिशा में पाकड़ का पेड़ मंगलकारी होता है, इससे विपरीत दिशा में वे विपरीत फल देने वाले होते हैं। घर के समीप यदि काटों वाला, दूध वाला आसनादि का वृक्ष हो, जिनमें फल हों तो वे क्रम से स्त्री और सन्तान की हानि करने वाले होते हैं, यदि कोई उन्हें नहीं काटता है तो, उसे चाहिये की उनके समीप में अन्य शुभदायक वृक्षों को भी लगा दें।।२१-२२।।

पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान्। दाडिमीपिप्पलीद्राक्षास्तथा कुसुममण्डपान्।।२३।।
जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः।
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति।।२४।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु वेधपरिवर्जनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२५५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२८३०।।

वे शुभ वृक्ष ये हैं-नागकेशर, अशोक, मौलसिरी, जाँट, तिलकपुष्पी, चम्पा, अनार, पीपली,

दाख, अर्जुन, जंबीर, सुपारी, कटहल, केतकी, मालती, कमल, चमेली, नारियल, केला एवं पाटल। इन वृक्षों से संयुक्त गृह अति शुभकारी होता है।।२३-२४।।

।।दो सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त।।२५५।।

अथ षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गृह-निर्माण की सामान्य विधि, गृह-निर्माण एवं गृह-प्रवेश के समय शुभाशुभ परीक्षा

सूत उवाच

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरं तथा। परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्यात्स्तम्भोच्छ्रायं विचक्षणः।।१।।
न देवधूर्तसचिवचत्वराणां समीपतः। कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः।।२।।

सूत ने कहा–बुद्धिमान् पुरुष सर्वप्रथम उत्तर की ओर झुकी हुई अथवा समान भाग वाली भूमि की भली-भाँति परीक्षा करके पूर्व कही गई रीति से स्तम्भ की ऊँचाई आदि का निर्माण करावे। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह अपना भवन देवालय, धूर्त एवं सचिव के गृह के पास अथवा चौराहे के पास कभी न बनवाये; क्योंकि उसके समीपस्थ होने से दुःख, शोक एवं भय की प्राप्ति होती है।।१-२।।

तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः। पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावतः प्रशस्यते।।३।।
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा। सर्वकामफलो नृणां सम्पूर्णो नाम वामतः।।४।।

घर के चारों ओर प्रदेश होते हैं, उनमें अलगा भाग ...... ?।।३-४।।

एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत्। अथ सांवत्सरप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे।।५।।
रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम्।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम्।।६।।
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगः। स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम्।।७।।
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम्। ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः।।८।।

इस प्रकार के उत्तम प्रदेश को प्रयत्नपूर्वक देखभाल कर गृह निर्माण कराना चाहिये। सर्वप्रथम ज्योतिषी के कथनानुकूल शुभ मुहूर्त में सभी बीजों से युक्त शिला को रत्न के ऊपर रखकर चार ब्राह्मणों द्वारा सुपूजित स्तम्भ का निर्माण कराकर वेदों का पारगामी विद्वान् कारीगरों को साथ ले श्वेत वस्त्र धारण कर सभी औषधियों से युक्त स्नान कराये हुए उस स्तम्भ का न्यास करे।

विविध प्रकार के अक्षत से युक्त वस्त्र एवं अलंकारों से सुशोभित उस स्तम्भ को ब्राह्मणों की सुमधुर वेदध्वनि, विविध प्रकार के बाजन-नृत्य एवं मंगल ध्वनि के साथ स्थापित करे।।३-८।।

पायसं भोजयेद्विप्रान्होमं तु मधुसर्पिषा। वस्तोष्पते प्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा॥९॥
सूत्रपाते तथा कार्यमेवं स्तम्भोदये पुनः। द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा॥१०॥
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा। ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भरोपणम्॥११॥
प्रदक्षिणं च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम्।

ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराये, मधु एवं घी से 'वास्तोष्पते प्रति जानीहि' इस मन्त्र के द्वारा सर्वदा हवन करे। सूत्रपात करते समय एवं स्तम्भ के उठाते समय भी यह सब विधान पुनः करना चाहिये, इसी प्रकार द्वार का चौखट बैठाते समय तथा गृह-प्रवेश के समय भी यह समारोह करना चाहिये। वास्तु की शान्ति के समय भी यही विधान है। ये पाँच प्रकार के वास्तु यज्ञ कहे गये हैं। ईशानकोण में सूत्रपात होता है। आग्नेय कोण में स्तम्भ का आरोपण होता है, वास्तु की प्रदक्षिणा करके उनके पदों का चिह्न निर्मित किया जाता है।।९-११.५।।

तर्जनी मध्यमा चैव तथाऽङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे॥१२॥
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम्। सर्ववास्तु विभागेषु शस्तं पदविलेखने॥१३॥

दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा एवं अंगूठे से मूँगा, रत्न एवं सुवर्ण के चूर्ण से मिश्रित जल द्वारा सभी वास्तु के विभागों में उनके पद की रेखांकी बनानी चाहिये, ऐसा विधान कहा गया है।।१२-१३।।

न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः।
न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत्॥१४॥
एभिर्विलिखितं कुर्याद्दुःखशोकभयादिकम्।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत्॥१५॥
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम्।

राख, अंगार, काष्ठ, नख, शस्त्र, चर्म, सींग, हड्डियाँ, कपाल-इन सब वस्तुओं से कभी भी वास्तु रेखाएँ नहीं खींचनी चाहिये। उनके द्वारा कहे जाने पर दुःख-शोक-भयादि की प्राप्ति होती है। जिस समय गृह प्रवेश होता रहे, उस समय भी कारीगर गृह के सभी अंगों का निरीक्षण करता रहे। स्तम्भ एवं सूत्रादि के निर्माण के अवसर पर भी होने वाले शकुनापशकुन शुभ एवं अशुभ फल के देने वाले होते हैं।।१४-१५.५।।

आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः परुषं यदि॥१६॥
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः। वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नरशल्यं भयप्रदम्॥१७॥
अङ्कनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत्। तदङ्गसम्भवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षणः॥१८॥

यदि ऐसे अवसरों पर कोई पक्षी सूर्य की ओर मुख कर कठोर शब्दों में रुदन करता है अथवा यदि उस समय गृहपति अपने शरीर के किसी अंग पर हाथ रखता है तो यह समझ लेना चाहिये कि वास्तु के उसी अंग पर मनुष्य की हड्डी पड़ी हुई है, जो भय देने वाली है। सूत्र के अंकित कर देने के बाद यदि गृहपति अपने किसी अंग को स्पर्श करता है तो वास्तु के उसी अंग पर हाथी, अश्व तथा कुत्ते की हड्डियाँ हैं, बुद्धिमान् पुरुष ऐसा जान ले।।१६-१८।।

प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वा गोमायुर्विलङ्घते। तत्तु शल्यं विजानीयात्खरशब्देऽतिभैरवे॥१९॥
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः। धनं तत्र विजानीयाद्भागे वा स्वाम्यधिष्ठिते॥२०॥
सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे।

सूत्र के फैलाये जाते समय यदि उसे शृंगाल अथवा कुत्ता लांघ जाता है, तो ठीक उसी स्थान पर भी हड्डी जाननी चाहिये। अति भयानक गदहे के शब्द होने पर भी ऐसा अपशकुन समझना चाहिये। यदि सूत्रपात के समय ईशानकोण में कौवा मीठे स्वर में बोलता है तो वास्तु के उस भाग में, जहाँ पर गृहपति खड़ा है, धन जानना चाहिये। सूत्रपात के समय यदि सूत्र टूट जाता है तो गृहपति की मृत्यु समझनी चाहिये, कील के नीचे की ओर झुक जाने से व्याधि की शंका समझनी चाहिये।।१९-२०.५।।

अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम्।।२१।।
कम्बुशल्येषु जानीयात्पौश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्।)
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे।।२२।।

उस समय यदि अंगार दिखाई पड़ता है तो उन्माद का भय तथा कपाल दिखाई पड़ता है तो भयागम समझना चाहिये। वास्तु का विज्ञाता यदि शंख अथवा घोंघे की हड्डी का दर्शन करता है तो कुलांगनाओं में व्यभिचार की सम्भावना जानें। यदि भवन निर्माण के समय कारीगर को संभ्रम हो जाता है तो समझ लेना चाहिये कि गृहपति के इस गृह का निश्चय ही विनाश हो जायेगा।।२१-२२।।

स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत्। कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत्।।२३।।
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धे विदुर्बुधाः। करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः।।२४।।

यदि स्थापित किया हुआ स्तम्भ कंधे पर गिर पड़ता है अथवा कुम्भ गिर पड़ता है तो गृहपति के शिर में रोग होता है। यदि कलश टूट जाता है तो समझना चाहिये कि सभी परिवार का विनाश होने वाला है। कुंभ अपने स्थान से यदि गिर पड़ता है तो गृह स्वामी की मृत्यु तथा भग्न हो जाने पर वह बन्धन में पड़ता है; ऐसा पण्डित लोग जानते हैं। गृहारंभ के समय यदि उसके परिमाण के हाथों की संख्या नष्ट हो जाती है तो गृहपति का ही नाश समझना चाहिये।।२३-२४।।

बीजौषधिविहीने तु भूतेभ्यो भयमादिशेत्। प्राग्दक्षिणेन विन्यस्य स्तम्भे छत्रं निवेशयेत्॥
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यसेत्स्तम्भान्विचक्षणः।।२५।।

यस्माद्भयङ्करा नृणां योजिता ह्यप्रदक्षिणम्।
रक्षां कुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम्॥२६॥

बीज एवं औषधियों से विहीन होने पर भूतों से भय की प्राप्ति होती है। स्तम्भ को पूर्व तथा दक्षिण दिशा की ओर सर्वप्रथम स्थापित कर उसके ऊपर छत्र डाल देना चाहिये। तदनन्तर विचारवान् पुरुष अन्य स्तम्भों की स्थापना करे। प्रदक्षिणा के क्रम के बिना स्तम्भ की स्थापना भय देने वाली कही गयी है अर्थात् दाहिनी ओर से पहले स्थापना करनी चाहिए। अतः स्तम्भ के उपद्रवों की नाशक सभी प्रकार की रक्षाओं की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।।२५-२६।।

तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत्। प्रागुदक्प्रणवं कुर्याद्दिङ्मूढं तु न कारयेत्॥२७॥
स्तम्भं वा भवनं वाऽपि द्वारं वासगृहं तथा।)
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यान्न च संवर्धयेद्गृहम्॥२८॥

इस प्रकार के उपद्रवों के विनाशार्थ स्तम्भ के ऊपर फलों से युक्त वृक्ष की शाखा डाल देनी चाहिये, स्तम्भ को उत्तर अथवा पूर्व की ओर होना चाहिये, ऐसा बनाना चाहिये कि वह किसी भी दिशा में ठीक तरह से न कहा जा सके।, अर्थात् वह दिग्भ्रम उत्पन्न करने वाला न हो। इस बात का ध्यान भवन, स्तम्भ, निवासगृह तथा द्वार सबके लिए रखना चाहिये; क्योंकि इस दिशा की अज्ञानता से कुल का नाश होता है।।२७-२८।।

यदि संवर्धयेद्गेहं सर्वमेव विवर्धयेत्। पूर्वेण वर्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा॥२९॥
दक्षिणे वर्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः। पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारकम्॥३०॥
वर्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम्।

किसी एक दिशा में घर को अधिक बढ़ाना भी नहीं चाहिये, यदि बढ़ाना है तो चारों ओर बढ़ाना चाहिये। पूर्व दिशा से बढ़ाया गया वास्तु सर्वदा वैर पैदा करने वाला होता है, दक्षिण की ओर बढ़ने से निश्चय ही मृत्यु की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशा की ओर बढ़ी हुई जो वास्तु है, वह धनक्षय करने वाला है, इसी प्रकार उत्तर दिशा की ओर बढ़ाने से बहुत दुःख एवं सन्ताप की प्राप्ति होती है।।२९-३०.५।।

आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात्तदग्निभयदं भवेत्॥३१॥
वर्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत्। वर्धापितं तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत्॥३२॥
ईशान्यामन्नहानिः स्याद्वास्तौ संवर्धिते सदा। ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहं भवेत्॥३३॥

अग्निकोण में जिस वास्तु में वृद्धि की जाती है, उसमें अग्नि का भय होता है। नैर्ऋत्य कोण में बढ़ाने पर शिशु की हानि होती है, वायव्य कोण में बढ़ाने पर वातव्याधि का प्रकोप होता है, ईशान में अग्नि से हानि होती है, सर्वदा इस बात का विचार करना चाहिये। गृह के ईशानकोण में देवता का स्थान तथा शान्ति गृह होना चाहिये।।३१-३३।।

महानसं तथाऽऽग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम्।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थापयेद्बुधः॥३४॥
बन्धस्थानं बहिः कुर्यात्स्नानमण्डपमेव च।
धनधान्यं च वायव्ये कर्मशालां ततो बहिः॥
एवं वास्तुविशेषः स्याद्गृहभर्तुः शुभावहः॥३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यागृहनिर्णया नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२५६॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२८६५॥

अग्निकोण में रसोई का घर तथा उसी के पार्श्व में उत्तर दिशा में जल का स्थान रखना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष नैर्ऋत्यकोण में घरेलू सामग्रियों के रखने का स्थान बनायें। पशुओं आदि के बाँधने का तथा स्नानागार गृह के बाहर बनवाना चाहिये। वायव्य कोण में अन्नादि के रखने का स्थान बनावाना चाहिये। कार्य करने की शाला भी निवास स्थान से बाहर बनानी चाहिये, इस ढंग से बना हुआ भवन गृहपति के लिये मंगलकारी होता है॥३४-३५॥

॥दो सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त॥२५६॥

❖❖❖

अथ सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

काष्ठ काटने की विधि, वृक्षों द्वारा गृह के शुभाशुभ की सूचना

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम्। धनिष्ठापञ्चकं मुक्त्वा त्विष्ट्यादिकमतः परम्॥१॥
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्द्रुमं बुधः। प्रथमं बलिपूजां च कुर्याद्वृक्षस्य सर्वदा॥२॥

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं उत्तम काष्ठ को काटने की विधि बतला रहा हूँ। धनिष्ठा और पाँच नक्षत्रों को, जो पंचक नाम से विख्यात हैं, छोड़कर भद्रा आदि का विचार करके ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ दिन में बुद्धिमान् पुरुष काष्ठ काटने के लिए प्रस्थान करे। सर्वथा सर्वप्रथम उसे काटे जाने वाले वृक्ष की बलिपूजा करनी चाहिये॥१-२॥

पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते। अन्यथा न शुभं विद्याद्याम्योपरि निपातनम्॥३॥
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत्।

पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर गिरने वाले वृक्ष का काष्ठ गृह निर्माण में

मंगलकारी होता है, दक्षिण की ओर गिरे हुए वृक्ष शुभदायी नहीं होते। दूध वाले वृक्षों का काष्ठ घर में नहीं लगाना चाहिये।।३.५।।

कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीडितम्।।४।।
गजावरुग्णं च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम्। अर्धशुष्कं तथा दारु भग्नशुष्कं तथैव च।।५।।
चैत्यदेवलयोत्पन्नं नदीसङ्गमजं तथा। श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम्।।६।।
वर्जयेत्सर्वथा दारु यदीच्छेद्विपुला श्रियम्।

पक्षियों के घोंसले जिसमें हों, वायु तथा अग्नि से जिसका कुछ अंग टूट या जल गया हो, हाथी ने जिसकी डाली तोड़ दी हो, बिजली गिरने से जो किसी अंश में भग्न हो गया हो, जिसका आधा भाग सूख गया हो, अथवा कुछ अंश किसी कारण वश टूट-फूट गये हों, जो देवालय के पास हो, अथवा जिसमें किसी देवता का निवास माना जाता हो, या ग्राम भर में जिसकी प्रसिद्धि हो, जो नदी के संगम पर अवस्थित हो, श्मशानभूमि या कूप पर हो, तालाब आदि जलाशय के किनारे हो, ऐसे वृक्षों को अपनी विपुल समृद्धि एवं उन्नति की कामना करने वाले को सर्वथा वर्जित रखना चाहिये।।४-६.५।।

तथा कण्टकिनो वृक्षान्नीपनिम्बविभीतकान्।।७।।
श्लेष्मातकानाम्रतरून्वर्जयेद्गृहकर्मणि। आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः।।८।।
चन्दनं पनसं धन्यं सुरदारु हरिद्रवः। द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात्त्रिभिर्वा भुवनं शुभम्।।९।।
बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्।

इसी प्रकार गृहकार्य के लिए काँटों वाले वृक्षों को, कदम्ब को, नीम को, बहेड़ा को, ढेरा को तथा आम के वृक्षों को भी वर्जित करना चाहिये। आसन, अशोक, महुआ, सर्ज एवं शाल के काष्ठ मंगलकारी होते हैं, इसी प्रकार चन्दन, कटहल, देवदारु तथा हरिद्र-इनके भी काष्ठ शुभकारी होते हैं। दो प्रकार के, एक प्रकार के अथवा तीन प्रकार के काष्ठों से शुभ भवन का निर्माण करना चाहिये; क्योंकि अनेक प्रकार के काष्ठों से बना हुआ भवन अनेक प्रकार का भय देने वाला होता है।।७-९.५।।

एकैकशिंशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा।।१०।।
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारिकाः। स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः।।११।।

केवल एक प्रकार के काष्ठ में शीशम का काष्ठ श्रेष्ठ है। श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी को भी अकेले ही लगाना चाहिये। ये काष्ठ अन्य किसी प्रकार के काष्ठों के साथ लगाने से कभी मंगलकारी नहीं होते। इसी प्रकार स्यन्दन (?) कटहल, सरल, अर्जुन एवं पद्माक के वृक्षों के लिए भी विशेषता जाननी चाहिये, ये भी पूर्वोक्त रीति से अन्य काष्ठों के साथ संयुक्त होने से वास्तु कार्य में शुभ फल देने वाले नहीं होते।।१०-११।।

एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः। तरुच्छेदे महापीते गोधा विन्द्याद्विचक्षणः।।१२।।

माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीने सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरटं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत्॥१३॥

वृक्ष कटते समय विचक्षण पुरुष को यदि अत्यन्त पीले वर्ण का कोई चिह्न नहीं मिलता है तो भावी गृह में गोधा (गोह) का भय जानना चाहिये। मँजीठी के रंग का मिलने पर मेघों (भेक) का भय जानना चाहिये, अरुण वर्ण के चिह्न पर सरट (गिरगिट) का भय जानना चाहिये, मोती के समान श्वेत चिह्न मिलने पर शुक का भय समझना चाहिये।।१२-१३।।

कपिले मूषकान्विद्यात्खड्गाभे जलमादिशेत्। एवंविधं सगर्भं तु वर्जयेद्वास्तुकर्मणि॥१४॥
पूर्वच्छिन्नं तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनः शुभैः। व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये अष्टाभिर्वै हृते तथा॥१५॥
यच्छेषमायतं विन्द्यादष्टभेदं वदामि वः।

कपिल वर्ण के चिह्न पर मूषिका का भय तथा तलवार की भाँति चिह्न मिलने पर जल का भय जानना चाहिये। वास्तु कर्म में काष्ठों के काटते समय यदि उपर्युक्त प्रकार के चिह्न मिले तो उन्हें वर्जित रखना चाहिये। यदि पहले ही से कटा हुआ कोई वृक्ष हो तो शुभदायी शकुनों से जाँच पड़ताल कर लेने पर गृहकार्य के लिए लिया जा सकता है। वृक्ष की मोटाई तथा लम्बाई के मान से गुणा कर आठ का भाग दे, जितने हाथ शेष बचें उसके आठ भेद बतला रहा हूँ।।१४-१५.५।।

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च खरः श्वा वृष एव च॥१६॥
हस्ती ध्वाङ्क्षश्च पूर्वाद्याः करशेषा भवन्त्यमी।
ध्वजः सर्वमुखो धन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः॥१७॥
उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत्।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः॥१८॥

उनकी क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, खर, श्वा, वृषभ, हस्ती एवं काक संज्ञा जाननी चाहिये। ध्वज का चारों ओर मुख है और शुभकारी है, विशेषतया वास्तु के पश्चिम दिशा की ओर लगाने से अधिक फल होता है। सिंह का उत्तर मुख रखना चाहिये, वृषभ का पूर्व मुख एवं हस्ती का दक्षिण मुख रहता है, इस प्रकार सात (?) विभागों द्वारा इसे बता चुका।।१६-१८।।

एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः।
पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तो विकोणस्थांश्च वर्जयेत्॥१९॥
तमेवाष्टगुणं कृत्वा करराशिं विचक्षणः। सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः॥२०॥
अष्टभिर्भाजिते ऋक्षे यः शेषः स व्ययो मतः।
व्ययाधिकं न कुर्वीतयतो दोषकरं भवेत्॥
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान्हरिः॥२१॥

एक हाथ से ध्वज को, तीन हाथ से सिंह को, पाँच हाथ से वृषभ को तो कह चुका, अब

इनके अतिरिक्त जो विकोणस्थ हों, उन्हे वर्जित करना चाहिये। उक्त कर राशि अंक को आठ से गुणित कर विचक्षण पुरुष सत्ताईस का भाग देकर शेष नक्षत्र मानें और उस शेष में फिर आठ का भाग करे। जो शेष बचता है, वह व्यय माना गया है, जिस वृक्ष में व्यय अधिक निकले उसे न लगावे; क्योंकि वह अनेक दोषों का करने वाला है। आय अधिक होने पर शान्ति होती है-ऐसा भगवान् हरि ने बतलाया है।।१९-२१।।

कृत्वाऽग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभनम्।
दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु।।२२।।
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः।
सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैःशुक्लाम्बरःस्वभवनं प्रविशेत्सधूपम्।।२३।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यानुकीर्तनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२५७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२८८८।।

गृह बनकर पूर्ण हो जाने पर आगे श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आगे करके दही, अक्षत, आम के पल्लव, पुष्प तथा फलादि से सुशोभित जलपूर्ण कलश को देकर तथा अन्य ब्राह्मणों को सुवर्ण एवं सुवस्त्रादि देकर मांगलिक, शान्तिदायक निवास भवन में गृहपति को प्रवेश करना चाहिये। उस समय वेदोक्त एवं गृह्य शास्त्रोक्त विधि से बलिकर्म करके प्रासाद एवं वास्तु की शान्ति के लिए शास्त्रों में जो विधियाँ कही गई हैं, उनके अनुकूल हवन करे। सुन्दर भोजनादि द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर धूपादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ श्वेत वस्त्र धारण कर गृह प्रवेश करना चाहिये।।२२-२३।।

।।दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।।२५७।।

अथाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवप्रतिमा का निर्माण, प्रतिमा के मान एवं गठन के प्रकार, प्रतिमा के विभिन्न अंगों के गठन और मान, प्रतिमा का प्रमाण

ऋषय ऊचुः

क्रियायोगः कथं सिध्येद्गृहस्थादिषु सर्वदा। ज्ञानयोगसहस्त्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते।।१।।

ऋषियों ने कहा-गृहस्थाश्रम वालों में कर्मयोग की सिद्धि किस प्रकार सम्पन्न होती हैं; क्योंकि ज्ञानयोग की अपेक्षा सहस्त्रों गुणों से कर्मयोग विशिष्ट माना गया है।।१।।

सूत उवाच

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यलोकेषु विद्यते॥२॥
प्रतिष्ठायां सुराणां देवतार्चानुकीर्तनम्। देवयज्ञोत्सवं चापि बन्धनाद्येन मुच्यते॥३॥

सूत ने कहा–ऋषिगण! गृहस्थाश्रमियों के कर्मयोग, देवार्चन एवं नाम संकीर्तन को मैं बतला रहा हूँ, जो भोग एवं मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाला है और पृथ्वी तल को छोड़कर अन्य लोकों में जिसकी सत्ता नहीं है। देवताओं की मूर्तियों की प्रतिष्ठा, मूर्तिपूजा, नामसंकीर्तन, देवयज्ञोत्सव ये ही गृहस्थों के कर्मयोग हैं, इनके द्वारा गृहस्थाश्रमी भव-बन्धन से मुक्त होते हैं।।२-३।।

विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते। शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम्॥४॥
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम्। तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम्॥५॥

सर्वप्रथम तब तक भगवान् विष्णु के स्वरूप को बतला रहा हूँ, जैसा कि कहा गया है। शंख, चक्र गदा तथा पद्म को हाथों में धारण किये हुए, शान्त विष्णु भगवान् की प्रतिमा कही गई है। उसका सिर छत्र के आकार का होना चाहिये, शंख के समान कंधे तथा मनोहर नेत्र होने चाहिये, नासिका उठी हुई, सुडौल, कान सुतुही के आकार के तथा हाथ और वक्षःस्थल विस्तृत प्रशान्त तथा चढ़ाव-उतार वाले होने चाहिये।।४-५।।

क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम्। द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा॥६॥
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत। खड्गो गदा शरः पद्मं देयं दक्षिणतो हरेः॥७॥
धेनुश्च खेटकं चैव शङ्खचक्रे च वामतः।

इन विष्णु भगवान् की प्रतिमा कहीं तो आठ भुजाओं वाली होती है और कहीं चार भुजाओं वाली, दो भुजाओं की प्रतिमा पुरोहित द्वारा भवन में स्थापित करानी चाहिये। अष्टभुज भगवान् की निम्नलिखित वस्तुएँ इस प्रकार रहेंगी। विष्णु भगवान् के दाहिनी ओर के चारों हाथों में खड्ग, गदा, बाण और कमल रखने चाहिये और बाँए हाथों में धनुष, ढाल, शंख और चक्र रहने चाहिये।।६-७.५।।

चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवाऽऽयुधसंस्थितिम्॥८॥
दक्षिणेन गदा पद्मं वासुदेवस्य कारयेत्। वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता॥९॥
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते।

चतुर्भुज मूर्ति में शास्त्रास्त्रों की स्थिति बता रहा हूँ। उन वासुदेव भगवान् की प्रतिमा में दाहिनी ओर के दो हाथों में गदा और पद्म रखने चाहिये। समृद्धि की इच्छा रखने वाले को बायीं ओर शंख और चक्र रखने चाहिये। कृष्णावतार की प्रतिमा में बायीं ओर गदा रहनी चाहिये।।८-९.५।।

यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात्प्रकल्पयेत्॥१०॥
अधस्तात्पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः। दक्षिणे प्रणतं तद्वद्गरुत्मन्तं निवेशयेत्॥११॥
वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना। गरुत्मानग्रतो वाऽपि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता॥१२॥

प्रतिमा में अपनी इच्छा अनुरूप शंख और चक्र को ऊपर उठा हुआ निर्मित करावे, उनके दोनों पादों के मध्य में नीचे की ओर पृथ्वी की मूर्ति रहनी चाहिये और उसी प्रकार विनम्र भाव में गरुड़ की मूर्ति रहनी चाहिये। बायीं ओर से हाथों में कमल लिये हुए सुन्दर मुख वाली लक्ष्मी की स्थापना करनी चाहिये। कल्याण की कामना करने वाले गरुड़ को भगवान् के आगे भी स्थापित करा सकते हैं।।१०-१२।।

श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते। तोरणं चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम्।।१३।।
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम्। पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम्।।१४।।

प्रतिमा के दोनों ओर श्री और पुष्टि की मूर्ति रहेंगी जो हाथों में कमल धारण किये रहेंगी। प्रतिमा के ऊपर विद्याधरों के साथ तोरण का निर्माण होना चाहिये। देवताओं की दुन्दुभि तथा गन्धर्वों के दम्पत्ति की प्रतिमा भी रहनी चाहिये। पत्तों और लताओं से युक्त रहना चाहिये, सिंह और व्याघ्र की भी प्रतिमा साथ में बनानी चाहिये।।१३-१४।।

तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः। एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेणास्य पीठिका।।१५।।
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः। अतःपरं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः।।१६।।

स्तुति करते हुए बड़े-बड़े देवगण सामने खड़े हों, कल्पलता भी निर्मित हो। इस प्रकार विष्णु की प्रतिमा होगी, उसकी पीठिका विस्तार में तिहाई भाग जितनी होगी अथवा तीन ओर से होगी। देवता, दानव तथा किन्नरों की प्रतिमा नवताल (अंगूठे से लेकर मध्यमा अंगुली तक फैलाने में जितनी लम्बाई होती है, उसे ताल कहते हैं।) की होनी चाहिये। अब इसके बाद मैं प्रतिमाओं के मान एवं उन्मान की विशेषता बतला रहा हूँ, अर्थात् कितनी ऊँची, कितनी नीची, कितनी मोटी, कितनी लम्बी प्रतिमा होनी चाहिये।।१५-१६।।

जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम्। त्रसरेणुः स विज्ञेयो वालाग्रं तैरथाष्टभिः।।१७।।
तदष्टकेन लिख्या तु यूका लिख्याष्टकैर्मता। यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम्।।१८।।

जाल के भीतर से सूर्य की किरणों के प्रविष्ट होने पर जो धूलिकण दिखाई पड़ते हैं, उसे त्रसरेणु कहते हैं, उस आठ त्रसरेणु के बराबर एक बालाग्र होता है। उसके आठ गुने जितनी एक लिख्या और आठ लिख्या की एक यूका होती है। आठ यूका का एक जव होता है, उन आठ जवों से एक अंगुल होता है।।१७-१८।।

स्वकीयाङ्गुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशाङ्गुलम्। मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना।।१९।।
सौवर्णी राजती वाऽपि ताम्री रत्नमयी तथा।
शैली दारुमयी चापि लोहसीसमयी तथा।।२०।।
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा। शुभदारुमयी वाऽपि देवतार्चा प्रशस्यते।।२१।।

अपनी अंगुली के परिमाण से बारह अंगुल का मुख होता है, इसी मुख के मान के परिमाण

से भी अवयवों की कल्पना करनी चाहिये। सुवर्ण की, चाँदी की, ताँबे की, पत्थर की, लकड़ी की, लोहे की, सीसा की, पीतल की, ताँबे और काँसे से मिश्रित धातु की, अथवा अन्य शुभ काष्ठों की बनी हुई देवताओं की प्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है।।१९-२१।।

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु। गृहेषु प्रतिमा कार्या नायिका शस्यते बुधैः॥२२॥

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिकः ततः।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः॥२३॥

अंगूठे की गाँठ से लेकर बीत्ते भर तक की लम्बी प्रतिमा की स्थापना अपने घरों में करनी चाहिये, इससे बड़ी प्रतिमा बुद्धिमानों के घर के लिये नहीं पसन्द की है। बड़े भवन में सोलह अंगुल की प्रतिमा रखनी चाहिये; किन्तु इससे बड़ी कभी नहीं स्थापित करनी चाहिये। इन प्रतिमाओं को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल मध्यम, उत्तम एवं कनिष्ठ कोटि की बनानी चाहिये।।२२-२३।।

द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत्।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टं तु यद्भवेत्॥२४॥
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः।
पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता॥२५॥

प्रतिमामुखमानेन नव भागान्प्रकल्पयेत्। चतुरङ्गुला भवेद्ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः॥२६॥

प्रवेश द्वार की जो ऊँचाई हो, उसे आठ भागों में विभक्त कर दे, उसमें एक का भाग छोड़कर जो शेष बचे, उसके दो भाग जितनी लम्बाई में प्रतिमा बनवाये। बचे हुए भाग में तीन भाग करके एक भाग में पीठिका (देवताओं की मूर्तियों के नीचे का बना हुआ आसन।) बनाना चाहिये, वह पीठिका न तो बहुत नीची हो और न बहुत ऊँची हो। प्रतिमा के मुख के मान को नव भागों में विभक्त करे। उसमें चार अंगुल में ग्रीवा तथा एक भाग में हृदय होगा।।२४-२६।।

नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना।
निम्नत्वे विस्तरत्वे च अङ्गुलं परिकीर्तितम्॥२७॥

नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत्। द्विभागेनाऽऽयतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले॥२८॥

जङ्घे द्विभागे विख्याते पादौ च चतुरङ्गुलौ। चतुर्दशाङ्गुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः॥२९॥

उसके नीचे के एक भाग में सुन्दर नाभि बनानी चाहिये। उसक गहराई तथा विस्तार भी एक ही अंगुल कहा गया है। नाभि के नीचे एक भाग में लिंग बनाये, दो भागों में जंघों का विस्तार रखे। घुटनों को चार अंगुल में बनाये, जंघे दो भागों में प्रसिद्ध है, पैर चार अंगुल के हों, उसी प्रकार ऐसी मूर्ति का सिर चौदह अंगुल का बनाना चाहिये, ऐसा विधान बताया गया है।।२७-२९।।

ऊर्ध्वमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वं च निबोधत। सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः॥३०॥

चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादूर्ध्वंनासा तथैव च। द्व्यङ्गुलस्तु हनुर्ज्ञेय ओष्ठौ द्व्यङ्गुलसम्मितौ॥३१॥

अष्टाङ्गुलं ललाटं च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते।
अर्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवाऽऽनता॥३२॥

यह तो मूर्ति की ऊँचाई बताई गई, अब उसकी मोटाई या विस्तार सुनिये। हे ऋषिगण! मूर्तियों के सभी अवयवों का विस्तार सुनिये। ललाट की मोटाई चार अंगुल की होनी चाहिये, नासिका भी उतने ही अंगुल की ऊँची होनी चाहिये। दाढ़ी दो अंगुल में होनी चाहिये। ओंठ भी दो ही अंगुल के विस्तार में माने गये हैं। मूर्ति के ललाट का विस्तार आठ अंगुलों का होना चाहिये, उतने ही विस्तार में दोनों भौंहे भी बननी चाहिये। भौंहों की रेखा आधे अंगुल की मोटाई में हो, जो बीच में धनुष की भाँति वक्र हो।।३०-३२।।

उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णतीक्ष्णा प्रशस्यते।
अक्षिणी द्व्यङ्गुलायामे तदर्धं चैव विस्तरे॥३३॥
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे। तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्चभागिकी॥३४॥

दोनों छोरों पर उसके अग्रभाग उठे हुए हों, उसकी बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिये, आँखों की लम्बाई दो अंगुल की हो, चौड़ाई एक अंगुल में हो। उसके मध्य भाग में ऊँचाई होनी चाहिये, छोरों पर शुभ नेत्रों में लालिमा होनी चाहिये। तारा के आधे भाग से पाँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये।।३३-३४।।

द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्ये नासामेलमथाङ्गुलम्। नासाग्रविस्तरं तद्वत्पुटद्वयमथाऽऽनतम्॥३५॥
नासापुटबिलं तद्वदर्धाङ्गुलमुदाहृतम्। कपोले द्व्यङ्गुले तद्वत्कर्णमूलादिवनिर्गते॥३६॥

दोनों भौंहों के मध्य में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिये, नासिका का मूल भाग एक अंगुल में रहे। इसी प्रकार नासिका के अग्रभाग एवं दोनों पुटों को बनावे, जो नीचे की ओर झुके हुए हों। नासिका के पुटों के छिद्र आधे अंगुल के हों, दोनों कपोल दो अंगुल के हों जो कानों के भूलभाग से निकले हों।।३५-३६।।

हन्वग्रमङ्गुलं तद्वद्विस्तारो द्व्यङ्गुलो भवेत्। अर्धाङ्गुला भ्रुवो राजी प्रणालसदृशी समा॥३७॥
अर्धाङ्गुलसमस्यद्वद्वुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे। निष्पावसदृशं तद्वन्नासापुटदलं भवेत्॥३८॥
सृक्किणी ज्यौतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात्षडङ्गुले। कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयावूर्ध्वं तु चतुरङ्गुलौ॥३९॥

दाढ़ी का अग्रभाग एक अंगुल में तथा विस्तार दो अंगुल में होना चाहिये। आधे अंगुल में भौंहों की रेखा हो, जो काली घटा के समान श्याम बनी हुई हो। नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओंठ आधे-आधे अंगुल के बराबर हो। उसी प्रकार नासिका के दोनों पुट निष्पाव समान बनाने चाहिये। दोनों ओठों के समीपवर्ती भागों की ज्योति (?) के आकार का बनावे और उन्हें कान के मूल से छः अंगुल दूर पर बनावे। दोनों कानों की बनावट भौंहो के समान रहेगी और उनकी ऊँचाई चार अंगुल की रहेगी।।३७-३९।।

द्व्यङ्गुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रमेकां तु विस्तृतौ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशाङ्गुलम्॥४०॥
ललाटं पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशाङ्गुलम्। षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः॥४१॥
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलः। केशान्ताद्धनुका तद्वदङ्गुलानि तु षोडश॥४२॥

कानों के बगल में दो अंगुल रिक्त छोड़े उनका विस्तार एक मात्रा का हो। दोनों कानों के ऊपर मस्तक का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिये। ललाट प्रदेश से पीछे की ओर आधे भाग का विस्तार अट्ठारह अंगुल बताया गया, इस प्रकार सारे मस्तक का विस्तार छत्तीस अंगुल का होता है और केश समेत उसका विस्तार बयालीस अंगुल का होता है। केशों के अन्त प्रदेश से दाढ़ी तक का विस्तार सोलह अंगुल का होता है।।।४०-४२।।

ग्रीवामध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः। अष्टाङ्गुला भवेद्ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते॥४३॥
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा। स्तनयोरन्तरं तद्वद्द्वादशाङ्गुलमिष्यते॥४४॥

दोनों कन्धों के विस्तार का मान चौबीस अंगुल का है, ग्रीवा की मोटाई आठ अंगुल की मानी गई है। ब्रह्मा ने स्तन और ग्रीवा के अन्तर में एक ताल का मान बताया है, इसी प्रकार दोनों स्तनों में बारह अंगुल का अन्तर रहता है।।४३-४४।।

स्तनयोर्मण्डलं तद्वद्द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम्।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ॥४५॥
द्वितालं चापि विस्ताराद्वक्षःस्थलमुदाहृतम्। कक्षे षडङ्गुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे॥४६॥
चतुर्दशाङ्गुलौ पादावङ्गुष्ठौ तु त्रिर (द्विर) ङ्गुलौ।
पञ्चाङ्गुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम्॥४७॥
अङ्गुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी। तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमाङ्गुली॥४८॥
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते।
पर्वत्रयेण चाङ्गुल्यौ गुल्फौ द्व्यङ्गुलकौ मतौ॥४१॥
पार्ष्णिर्द्व्यङ्गुलमात्रस्तु कलयोच्चैः प्रकीर्तितः।
द्विपर्वाङ्गुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यङ्गुलः॥५०॥
प्रदेशिनीपरीहणाहस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः। कनिष्ठिकाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः॥५१॥

दोनों स्तनों के मण्डल दो अंगुल में कहे गये हैं, दोनों चूचक उन मण्डलों में जव जितने विस्तार में बताये जाते हैं। वक्षः स्थल की चौड़ाई दो ताल की गयी है, दोनों कक्ष प्रदेश छः अंगुल के होते हैं, जिन्हें बाहुओं के मूल भ।ग तथा स्तनों के बीच में बनाना चाहिये। दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके दोनों अंगूठे दो या तीन अंगुल के हो। अंगूठे का अग्रभाग उन्नत होना चाहिये तथा उसका

विस्तार पाँच अंगुल में रहे। उसी प्रकार अंगूठे के समान ही प्रदेशिनी अंगुली को भी लम्बी बनाना चाहिये, उससे सोलहवें अंश में अधिक मध्यमा अंगुली होगी, अनामिका अंगुली मध्यमा अंगुली की अपेक्षा आठवें भाग जितनी न्यून रहेगी। उसी प्रकार अनामिका से आठवें भाग में न्यून कनिष्ठिका अंगुली रहेगी। इन दोनों अंगुलियों में तीन पोर बनाने चाहिये। पैरों की गाँठ दो अंगुल में मानी गयी है। दोनों एड़ियाँ दो-दो अंगुल में रहे; किन्तु गाँठ की अपेक्षा उसमें एक कला अधिक ही रहे। अंगूठे में दो पोर बनने चाहिये, उसका विस्तार दो अंगुल का है, प्रदेशिनी अंगुली का विस्तार तीन अंगुल का होना चाहिये। हे ऋषिगण! कनिष्ठा अंगुली क्रमशः इससे आठवें भाग में हीन रहेगी।।४५-५१।।

अङ्गुलेनोच्छ्रयः कार्यो ह्यङ्गुष्ठस्य विशेषतः। तदर्धेन तु शेषाणामङ्गुलीनां तथोच्छ्रयः।।५२।।
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अङ्गुलानि चतुर्दश। जङ्घामध्ये परीाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुलः।।५३।।
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुलः। जानूच्छ्रयोऽङ्गुलःप्रोक्तो मण्डलं तु त्रिरङ्गुलम्।।५४।।

विशेषतया अंगूठे की मोटाई एक अंगुल की रखनी चाहिये, उसके आधे भाग जितनी अन्य शेष अंगुलियों की मोटाई रखनी चाहिये। जंघे के अग्र भाग का विस्तार चौदह अंगुल का रहे, मध्यभाग में अट्ठारह अंगुल का विस्तार रहे, जानु के मध्य भाग में इक्कीस अंगुल का विस्तार हो, जानु भाग की ऊँचाई एक अंगुल में तथा मण्डल तीन अंगुल में हों।।५२-५४।।

उरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुलः। एकत्रिंशोपरिष्टाश्च वृषणौ तु त्रिरङ्गुलौ।।५५।।
द्व्यङ्गुलं च तथा मेढ्रं परीणाहे षडङ्गुलम्। मणिबन्धादधो विद्यात्केशरेखास्तथैव च।।५६।।
मणिकोशपरीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते। विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशाङ्गुला।।५७।।

उरुओं के मध्यभाग का विस्तार अट्ठाईस अंगुल का हो, इसके ऊपर इकतीस अंगुल, अण्डकोश तीन अंगुल, लिंग दो अंगुल का हो। उसका विस्तार छः अंगुल का हो, मणिबन्ध आदि, केशों की रेखा, मणिकोश इन सबका विस्तार चार अंगुल का हो। कटिप्रदेश का विस्तार अट्ठारह अंगुल में हो।।५५-५७।।

द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ। नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः।।५८।।
पुरुषे पञ्चपञ्चाशत्कट्यां चैव तु वेष्टनम्। कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडङ्गुलौ।।५९।।
अष्टाङ्गुलां तु विस्तारे ग्रीवां चैव विनिर्दिशेत्।
परिणाहे तथाग्रीवा कला द्वादश निर्दिशेत्।।६०।।

स्त्रियों की मूर्ति में कटि का विस्तार बाईस अंगुल का तथा स्तन का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिये नाभि के मध्यभाग का विस्तार बयालीस अंगुल का होना चाहिये। पुरुष के कटि प्रदेश में पचपन अंगुल का विस्तार तथा दोनों कक्षों के ऊपर छः अंगुल विस्तार में स्कन्धों के बनने की विधि है। आठ अंगुल के विस्तार में ग्रीवा का निर्माण कहा गया है, इसकी लम्बाई बारह कला की होनी चाहिये।।५८-६०।।

आयामो भुजयोस्तद्वद्द्विचत्वारिंशदङ्गुलः। कार्यं तु बाहु शिखरं प्रमाणे षोडशाङ्गुलम्॥६१॥
ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्तं विद्यादष्टादशाङ्गुलम्। तथैकाङ्गुलहीनं तु द्वितीयं पर्व उच्यते॥६२॥
बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः। षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कलोऽग्रकरो मतः॥६३॥
सप्ताङ्गुलं करतलं पञ्च मध्याङ्गुली मता। अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते॥६४॥
तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते। मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी॥६५॥
अङ्गुष्ठस्तर्जपीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः। अङ्गुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः॥६६॥

दोनों भुजाओं की लम्बाई बयालीस अंगुल में हो, बाहु के मूलभाग को सोलह अंगुल के प्रमाण में बनावे। बाहु के ऊपरी अंश तक बारह अंगुल का विस्तार जानना चाहिये। द्वितीय पर्व इसकी अपेक्षा एक अंगुल न्यून कहा गया है, बाहु के मध्यभाग का विस्तार अट्ठारह अंगुल का होना चाहिये। प्रबाहु सोलह अंगुल की होनी चाहिये हाथ के अग्रभाग का मान छः कला में कहा गया है, हथेली का विस्तार सात अंगुल का है, उसमें पाँच अंगुलियाँ मानी गयी हैं। अनामिका अंगुली मध्यमा की अपेक्षा सातवें भाग जितनी हीन रहती है। उसमें भी पाँचवें भाग जितनी न्यून कनिष्ठा अंगुली है। मध्यमा से पाँचवें भाग जितनी न्यून तर्जनी हैं, अंगूठा तर्जनी के उद्गम से नीचे होना चाहिये; किन्तु लम्बाई में उतना ही होना चाहिये। अंगूठे का विस्तार चार अंगुल का जानना चाहिये।।६१-६६।।

शेषाणामङ्गुलीनां तु भागो भागेन हीयते। मध्यमापर्वमध्यं तु अङ्गुलद्वयमायतम्॥६७॥
यवो यवेन सर्वासां तस्यास्तस्याः प्रहीयते। अङ्गुष्ठपर्वमध्यं तु तर्जन्या सदृशं भवेत्॥६८॥
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम्। पर्वार्धे तु नखान्विद्यादङ्गुलीषु समन्ततः॥६९॥

शेष अंगुलियों के विस्तार क्रमशः एक-एक भाग से न्यून होते जाते हैं मध्यमा के पोरों के मध्यभाग में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य अंगुलियों के पोरों में एक-एक जव की कमी होती जाती है। अंगूठे के पोरों का मध्यभाग तर्जनी के समान ही रहना चाहिये। अगला पोर दो जव से अधिक कहा गया है, अंगुलियों के पूर्वार्ध में नखों को जानना चाहिये।।६७-६९।।

स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईशद्रक्तं तथाग्रतः।
निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम्॥७०॥
तथैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः॥७१॥

उन नखों को चिकना, सुन्दर तथा आगे की ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिये। मध्यम भाग में पीछे की ओर कुछ नीचा तथाा बगल में अंशमात्र ऊँचा बनावे। उसी प्रकार कन्धों के ऊपर दस अंगुल में केशों की लता का निर्माण करना चाहिये। स्त्री प्रतिमाओं को दुर्बलाङ्गिनी बनाना चाहिये। स्तन, उरु प्रदेश एवं जाँघों को स्थूल बनाना चाहिय।।७०-७१।।

चतुर्दशाङ्गुलायाममुदरं तासु निर्दिशेत्। नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चिच्छ्लक्ष्णभुजास्ततः॥७२॥
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा। नासा ग्रीवा ललाटं च सार्धमात्रं त्रिरङ्गुलम्॥७३॥

उनके उदर प्रदेश की लम्बाई चौदह अंगुल की होनी चाहिये। प्रतिमा को अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा उसकी भुजाओं को कुछ मृदु एवं मनोहारि बनाना चाहिये। मुखाकृति कुछ अपेक्षाकृत लम्बी हो, अलकावली उत्तम ढंग से बनी हुई हो, नासिका, ग्रीवा एवं ललाट साढ़े तीन अंगुल के होने चाहिये। अधर पल्ल्वों का विस्तार आधे अंगुल का प्रशस्त माना गया है॥७२-७३॥

अध्यर्धाङ्गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः। अधिकं नेत्रयुग्मं तु चतुर्भागेन निर्दिशेत्॥
ग्रीवाबलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धाङ्गुलोच्छ्रया॥७४॥
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च। नवतालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम्॥७५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवार्चानुकीर्तने प्रमाणानुकीर्तनं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२५८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२९६३॥

दोनों नेत्र अधर पल्लवों से चार गुने अधिक विस्तृत होने चाहिये एवं ग्रीवा की बलि आधे अंगुल की ऊँची बनानी चाहिये। इस प्रकार सभी देवताओं की प्रतिमाओं एवं स्त्री देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माण में उपर्युक्त नियम का पालन करना चाहिये। यह नव ताल के परिणाम की प्रतिमाओं का वर्णन पापों को नष्ट करने वाला कहा गया है॥७४-७५॥

॥दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त॥२५८॥

❖❖❖

अथ नवपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

कुछ विशेष देवताओं की प्रतिमा का वर्णन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान्विशेषतः। दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा॥१॥
वाराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः। मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा॥२॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम्।

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त देवताओं की मूर्ति के विषय में विशेषरूपेण बतला रहा हूँ। इस विषय में ब्रह्मा जी ने बताया है कि राम, विरोचन पुत्र बलि, वाराह एवं नृसिंह, इनकी मूर्तियों

का परिमाण दस ताल का होता है। वामन की परिमाण सात ताल का, तथा मत्स्य एवं सूर्य का भी सात ताल का कहा गया है। अब इसके उपरान्त रुद्रादि की आकृत का वर्णन कर रहा हूँ।।१-२.५।।

स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः।।३।।

रुद्र को पुष्ट भुजाओं, उन्नत एवं पुष्ट स्कन्धों तथा तपाये हुए सुवर्ण की भाँति गौरवर्ण का बनाना चाहिये। श्वेतवर्ण, सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान, परमतेजोमय तथा जटा में चन्द्रमा से विभूषित बनाना चाहिये। जटा एवं मुकुटधारी तथा सोलह वर्ष की इनकी आकृति होनी चाहिये।।३-४।।

शुक्लोऽर्करश्मिसङ्घातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः। जटामुकुटधारी च हृष्टवर्षाकृतिश्च सः।।४।।
बाहू वारणहस्ताभौ वृत्तजङ्घोरुमण्डलः। ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः।।५।।
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः। हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा।।६।।

दोनों बाहु हाथी के शुण्डादण्ड की भाँति होने चाहिये, जंघा एवं उसके मण्डल गोले हों। केशों को ऊपर की ओर उठा हुआ तथा नेत्रों को दीर्घ एवं विस्तृत बनाना चाहिये। व्याघ्रचर्मधारी तथा कटि भाग में तीन सूत्रों से विभूषित बनाना चाहिये। हार, केयूर से सुशोभित तथा सर्पों के आभूषण से इन्हें आभूषित बनाना चाहिये।।५-६।।

बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः। पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलंकृतः।।७।।
आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः। खेटकं वामहस्ते तु खड्गं चैव तु दक्षिणे।।८।।
शक्तिं दण्डं त्रिशूलं च दक्षिणेषु निवेशयेत्। कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च।।९।।
एकश्च वरदो हस्तस्तथाऽक्षवलयोऽपरः। वैशाखं स्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः।।१०।।

शिव की भुजाओं को विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित, कपोल एवं ऊरु भाग को पुष्ट तथा भरा हुआ और दोनों ओर दो कुण्डलों से विभूषित बनाना चाहिये। बाहुऐं जानु तक लम्बायमान, सौम्य मूर्ति, सुन्दर मुख, बायें हाथ में ढाल, दाहिने हाथ में तलवार, दाहिनी ओर शक्ति, दण्ड और त्रिशूल का निवेश करना चाहिये। बायें पार्श्व में कपाल, खट्वांग एवं नागों को रखना चाहिये, शिव जी का एक हाथ वर देने वाला है और दूसरा रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए रहता है। नन्दीश्वर पर अवस्थित हो उस समय वे नृत्य एवं अभिनय की दशा में रहते हैं।।७-१०।।

नृत्यन् दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा। तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु।।११।।
शङ्खं चक्रं गदा शार्ङ्गं घण्टा तत्राधिका भवेत्।
तथा धनुः पिनाकश्च शरो विष्णुमयस्तथा।।१२।।
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः। तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान्।।१३।।
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः।

नाचते हुए शिव की प्रतिमा दस भुजाओं वाली बनानी चाहिये, उस समय गज चर्म धारण

कराना चाहिये। त्रिपुरदाह के अवसर पर सोलह बाहु बनानी चाहिये। उस समय शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष, घण्टा, पिनाक, विष्णमय शर ये वस्तुएँ अधिक धारण करानी चाहिये। शिव जी की चतुर्भुज तथा अष्टभुज मूर्ति ज्ञानयोगेश्वर मानी जाती है। तीक्ष्ण दाँतों तथा नुकीले नासिका क अग्रभाग वाली एवं अति कराल मुखवाली मूर्ति को लोक में भैरव नाम से कहते हैं और ऐसी मूर्ति प्रत्येक देव मन्दिरों में स्थापित की जाती है।।११-१३.५।।

न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयङ्करः।।१४।।
नारसिंहो वराहो वा तथाऽन्येऽपि भयङ्करः।
नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवताः क्वचित्।।१५।।
स्वामिनं घातयेन्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिनं हन्यात्कृशा चैवार्थनाशिनी।।१६।।

कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी। वक्रनासा तु दुःखाय संक्षिप्ताङ्गी भयङ्करी।।१७।।

किन्तु मुख्य मन्दिर में भैरव की स्थापना करनी चाहिये; क्योंकि ये परम भय देने वाले देवता हैं, इसी प्रकार नृसिंह एवं वाराह आदि भी भयंकर देवता हैं। कभी देव प्रतिमाओं को हीन अंगों वाली अथवा अधिक अंगों वाली नहीं बनाना चाहिये। न्यून अंगों वाली तथा भयानक मुख वाली प्रतिमा निश्चय ही स्वामी का विनाश कर देती है, अधिक अंगों वाली प्रतिमा शिल्पकार का हनन करती है, दुर्बल प्रतिमा धन का विनाश करने वाली कही गई है। कृष्णोदरी प्रतिमा दुर्भिक्ष डालने वाली तथा मांसरहित दिखाई पड़ने वाली धननाशिनी है। टेढ़ी नासिका वाली प्रतिमा स्वामी को कष्ट देने वाली तथा सूक्ष्माङ्गी प्रतिमा भय पहुँचाने वाली मानी गयी है।।१४-१७।।

चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी। दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा।।१८।।
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्। शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत्।।१९।।

चिपटी प्रतिमा दुःख एवं शोक पहुँचाने वाली तथज्ञ बिना नेत्र की प्रतिमा नेत्रविनाशिनी कही गयी है। मुखविहीन प्रतिमा दुःखदायिनी तथा दुर्बल हाथ और पैर वाली अन्य किन्हीं अंगों से हीन तथा विशेषकर जंघे से हीन प्रतिमा मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद देने वाली कही गई हैं। सूखे हुए मुख वाली तथा कटि भाग से हीन प्रतिमा राजा को कष्ट देने वाली कही गई है।।१८-१९।।

पाणिपादविहीनो यो जायते मारको महान्। जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी।।२०।।
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या। सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा।।२१।।

हाथ एवं पाद से विहीन प्रतिमा महामारी का भय देने वाली हे जंघा एवं घुटने से विहीन प्रतिमा शत्रु को कल्याण पहुँचाने वाली कही गई है। वक्षःस्थल से विहीन प्रतिमा पुत्र एवं मित्रों का विनाश करने वाली है। सभी अंगों से परिपूर्ण जो प्रतिमा होती है, वह सर्वदा आयु एवं लक्ष्मी दोनों को देने वाली कही गई है।।२०-२१।।

एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः। स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्भवम्॥२२॥
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम्। प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः॥२३॥

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त भगवान् शंकर की प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। उनकी प्रतिमा के चारों ओर सभी देवगण को स्तुति करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये- विशेषतया इन्द्र, नन्दीश्वर एवं महाकाल से युक्त शंकर को बनाना चाहिये। चारों ओर विनम्रभाव से लोकपाल एवं गणपतिगणों को बनाना चाहिये॥२२-२३॥

नृत्यद्भृङ्गिरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः। सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम्॥२४॥

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरोगुह्यकनायकानाम्।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम्॥२५॥
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयं ददद्भिः।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम्॥२६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षण एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२५९॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१२९८९॥

नचाते एवं भृङ्गी बजाते हुए भूतों तथा वेतालों की मूर्तियाँ भी बनानी चाहिये, जो सभी हृष्ट-पुष्ट तथा परमेश्वर शिव की स्तुति में लीन हों। गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, अप्सरा एवं गुह्यकों के पति तथा महेन्द्र प्रभृति सैकड़ों देवताओं एवं श्रेष्ठ मुनिवरों से प्रणाम किये जाते हुए, अक्ष माला धारण किये हुए, सैकड़ों वृक्षों के पुष्पादि रूप उपहारों को समर्पित करते हुए, सैकड़ों गणों द्वारा पूजित, अमरों एवं मनुष्यों के पूजनीय त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर की प्रतिमा बनानी चाहिये॥२४-२६॥

॥दो सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त॥२५९॥

अथ षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अर्धनारीश्वर शिव की प्रतिमा का प्रकार, पार्वती की प्रतिमा का निर्माण, शिवनारायण की प्रतिमा का निर्माण

सूत उवाच

अधुना संप्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम्। अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम्॥१॥
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः। उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ॥२॥

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अर्धनारीश्वर शिर की सुन्दर प्रतिमा के निर्माण का प्रकार बतला रहा हूँ। देवदेव शंकर जी के आधे भाग में अति सुन्दर स्त्री का रूप निर्मित होता है। अर्ध भाग में जटा तथा बालचन्द्रमा की कला से युक्त शिव की प्रतिमा बनानी चाहिये, उमा के अर्ध भाग में सीमन्त (केशकलाप) एवं तिलक निर्मित करनी चाहिये।।१-२।।

वासुकिं दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत्। बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणे करे।।
त्रिशूलं वाऽपि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः।।३।।
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलं च विशेषतः। वामबाहुश्च कर्त्तव्यः केयूरवलयान्वितः।।४।।
उपवीतं च कर्तव्यं मणिमुक्तामयं तथा।।५।।

इस मूर्ति के दाहिने कान के समीप नागराज वासुकि तथा बायें कान के समीप कुण्डल बनाना चाहिये। उसके ऊपर की ओर केशों का आभूषण तथा बालिका (बाली) बनानी चाहिये। दाहिने हाथ में कपाल भी बनाना चाहिये, शूलधारी देवदेव शंकर के दाहिने हाथ में त्रिशूल भी बनाना चाहिये। बायीं ओर दर्पण विशेषतया कमल देना चाहिये, बायें बाहु को केयूर तथा बलय से युक्त बनाना चाहिये। मणि एवं मोतियों से संयुक्त यज्ञोपवीत की रचना करनी चाहिये।।३-५।।

स्तनभारं तथाऽर्धे तु वामे पीतं प्रकल्पयेत्। हारार्धमुज्ज्वलं कुर्याच्छ्रोण्यर्धं तु तथैव च।।६।।
लिङ्गार्ध्वमूर्धगं कुर्याद्व्यालाजिनकृताम्बरम्। वामे लम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम्।।७।।
नानारत्नसमोपेतं दक्षिणं भुजगान्वितम्।

प्रतिमा के बायें भाग की ओर स्तन का भाग निर्मित करना चाहिये, जो पीले वर्ण का हो। हार का आधा भाग उज्ज्वल वर्ण का हो, नितम्ब का आधा भाग भी उसी प्रकार श्वेतवर्ण का होना चाहिये। लिंग से ऊपर का भाग सिंह के चर्म से परिवृत बनाना चाहिये। बायें भाग को कोटि में पहने हुए तीन सूत्रों से युक्त विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित एवं लम्बे वस्त्र से सुशोभित बनाना चाहिये। दाहिने भाग को सर्पों से घिरा हुआ बनाना चाहिये।।६-७.५।।

देवस्य दक्षिणं पादं पद्मोपरि सुसंस्थितम्।।८।।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वामं भूषितं नृपुरेण तु। रत्नैर्विभूषितान्कुर्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकान्।।९।।
सालक्तकं तथा पादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा। अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम्।।१०।।
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुत द्विजाः। संस्थानं तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम्।।११।।

देव का दाहिना पैर कमल के ऊपर विराजमान रहता है, उससे कुछ ऊपर की ओर बायाँ पैर नूपुर से विभूषित रहना चाहिये, अंगुलियों में विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित अंगूठी रहनी चाहिये। सर्वदा पार्वती के चरणों को महावर के रंग से रंगा हुआ प्रदर्शित करना चाहिये। इस प्रंसग में मैं अर्धनारीश्वर के रूप का यह प्रकार आप लोगों को बता चुका। ऋषिगण! अब उमा-महेश्वर की मूर्ति के लक्षण सुनिये। उक्त क्षमा-महेश्वर की प्रतिमा मनोहर लीलाओं से युक्त होती है।।८-११।।

चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषितम्। लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम्॥१२॥
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामे कुचभरे करम्। द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम्॥१३॥
सुप्रतिष्ठं सुवेषं च तथाऽर्धेन्दुकृतासनम्। वामे तु संस्थिता देवी सस्योरौ बाहुगूहिता॥१४॥

उसे जटाओं के भार तथा चन्द्रमा से विभूषित दो अथवा चार बाहुओं से युक्त बनाना चाहिये। तीन नेत्र से युक्त शिव का एक हाथ उमा के स्कन्ध पर विराजमान बनाना चाहिये। दाहिने हाथ में कमल तथा शूल हो, तथा बायें हाथ को उमा के स्तन पर न्यस्त बनाना चाहिये। इस मूर्ति को विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित तथा व्याघ्र के चर्म से परिवृत करना चाहिये। इस मूर्ति को भली-भाँति प्रतिष्ठित सुन्दर वेशों से सुसज्जित तथा मुख भाग को आधे चन्द्रमा की भाँति मनोहर बनाना चाहिये। इस मूर्ति के बायें भाग में देवी की मूर्ति होगी, जिसके दोनों वक्ष भाग बाहुओं में निगूढ रहेंगे।।१२-१४।।

शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललितानना। सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्ज्वला॥१५॥
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित्। हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी॥१६॥
वामांसं देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः। दक्षिणं तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा॥१७॥
स्कन्धे वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलिजैः क्वचित्।

सिर के विविध आभूषणों से आभूषित अलकावलि द्वारा पार्वती की प्रतिमा का मुख भाग अतिललित बनाना चाहिये, जिसमें बालिका (बाली) से विभूषित कान एवं तिलक से विभूषित उज्ज्वल ललाट शोभायमान हो रहा हो। कहीं-कहीं मणियों से जटित कुण्डलों से कानों के आभरण बनते हैं। पार्वती की उक्त प्रतिमा में हार एवं केयूर शोभायमान हों तथा उसका ध्यान शिव के मुख की ओर हो। देवदेव शंकर के बायें भाग को लीला पूर्वक स्पर्श कर रही हो तथा उसका दाहिना हाथ दाहिने भाग से बाहर की ओर बना हुआ हो। अथवा किसी-किसी प्रतिमा में शंकर के दाहिने कंधे पर रहता है और अंगुलियों के नखों से कुक्षि प्रदेश में स्पर्श करता रहता है।।१५.१७.५।।

वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम्॥१८॥
कटिसूत्रत्रयं चैव नितम्बे स्यात्प्रलम्बकम्।
जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ॥१९॥
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान्। माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः॥२०॥

बाएँ हाथ में दर्पण तथा अति सुन्दर कमल देना चाहिये, नितम्ब में लम्बे तीन कटि-सूत्र बने रहने चाहिये। पार्वत्ती के दोनों ओर जया, विजया, स्वामिकार्तिकेय तथा गणेश को बनाना चाहिये और तोरण द्वार पर शिव के गणों तथा यक्षों को बनाना चाहिये। उसी प्रकार माला, विद्याधरों एवं वीणा से सुशोभित अप्सराओं के समूह बनाने चाहिये।।१८-२०।।

एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता। शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्॥२१॥

वामार्धे माधवं विद्याद्दक्षिणे शूलपाणिनम्। बाहुद्वयं च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम्॥२२॥

समृद्धि के चाहने वालों को उमेश शिव जी की इस प्रकार की प्रतिमा बनवानी चाहिये। अब सभी पापों के विनाशक शिवनारायण की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। इस प्रतिमा के बायीं ओर के आधे भाग में विष्णु भगवान् तथा दाहिनी ओर के आधे भाग में शूलपाणि को बनाना चाहिये। कृष्ण की दोनों भुजाएँ मणिजटित केयूर से विभूषित होनी चाहिये।।२१-२२।।

शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्ताङ्गुलिविभ्रमम्। चक्रस्थाने गदां वाऽपि पाणौ दद्यादधस्तले॥२३॥
शङ्खं चैवोत्तरे दद्यात्कट्यर्धं भूषणोज्ज्वलम्। पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम्॥२४॥
दक्षिणार्धं जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम्। भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम्॥२५॥

दोनों भुजाओं में शंख एवं चक्र धारण किये हों तथा मनोहर अंगुलियाँ लालवर्ण की बनी हुई हों। चक्र के स्थान में गदा भी दे दी जानी चाहिये, जो नीचे की ओर हो। उत्तर की ओर शंख देना चाहिये कटि के आधे भाग में उज्ज्वल आभूषण हो। पीले वस्त्र पहिनाये गये हों तथा चरण में मणिजटित आभूषण हों। उक्त मूर्ति का दाहिना भाग जटा के भार तथा आधे चन्द्रमा रूप आभूषण से विभूषित बनाना चाहिये। वर देने वाले दाहिने हाथ को भुजंगों के हार रूप वलय से विभूषित करना चाहिये।।२३-२५।।

द्वितीयं चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम्। व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम्॥२६॥
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम्। शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद्रूपमुत्तमम्॥२७॥

दूसरे हाथ को सुन्दर त्रिशूल से विभूषित बनाना चाहिये। मूर्ति में यज्ञोपवीत के स्थान पर सर्प बने हों, कटि के आधे भाग में गजचर्म परिवृत हो। नाग से विभूषित चरण मणियों तथा रत्नों से अलंकृत हों। शिवनारायण के उत्तम स्वरूप का निर्माण इस प्रकार करना चाहिये।।२६-२७।।

महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम्। तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परे॥२८॥
दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम्। विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत्॥२९॥

अब हाथ में पद्म धारण किये हुए गदाधारी महावाराह की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, उसके दांतों के अर्धभाग अतितीक्ष्ण हों, थूथन बना हुआ हो, मुख हो, बायी केहुनी पर पृथ्वी हो, दंष्ट्रा के अग्रभाग पर कमलयुक्त भयभीत उबारी हुई पृथ्वी की प्रतिमा हो, जिसका मुख अति विस्मय से सुप्रसन्न हो, ऐसी पृथ्वी को मूर्ति के ऊपर की ओर बनाना चाहिये।।२८-२९।।

दक्षिणं कटिसंस्थं तु करं तस्याः प्रकल्पयेत्। कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि॥३०॥
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत्। नारसिंहं तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम्॥३१॥
रौद्रं सिंहासनं तद्वद्विदारितमुखेक्षणम्। स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तं दितेः सुतम्॥३२॥

उस पृथ्वी का दाहिना हाथ कटि प्रदेश पर हो, नागेन्द्र के मस्तक पर तथा कूर्म पर महावाराह के एक-एक चरण अवलम्बित हों। सभी लोकपालगण स्तुति करते हुए चारों ओर बनाये

गये हों। नृसिंह की प्रतिमा आठ भुजाओं से युक्त बनानी चाहिये। उन्हीं के अनुरूप अति भयानक सिंहासन का निर्माण करना चाहिये, उनका मुख और आँखें फैली हुई होनी चाहिये। कानों तक विकाराल जटाएँ बिखरी होनी चाहिये, तथा दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु को फाड़ रहे हों-ऐसा बनाना चाहिये।।३०-३२।।

विनिर्गतान्त्रजालं च दानवं परिकल्पयेत्। वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम्।।३३।।
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित्करणबन्धनैः। परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः।।३४।।

उस दैत्य के पेट में उसकी आतें बाहर गिर पड़ी हों, मुख से रुधिर गिर रहा हो, भृकुटी, वदन एवं आँखें अति विकराल हों और कहीं-कहीं पर नृसिंह की प्रतिमा को युद्ध सामाग्रियों से युक्त दैत्यों से युद्ध करती हुई बनानी चाहिये और अतिशय थके हुए दैत्य से बारम्बार तर्जित किये जाते हुए दिखना चाहिये।।३३-३४।।

दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम्। स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः।।३५।।
तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्बणम्। पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत्।।३६।।

उस प्रतिमा में दैत्य को तलवार एवं ढाल धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये एवं विष्णु भगवान् की श्रेष्ठ देवगणों द्वारा प्रार्थना की जा रही हो-यह भी दिखाना चाहिये। त्रिविक्रम की प्रतिमा को बता रहा हूँ, जो निखिल ब्रह्माण्ड को उल्लंघित करने के लिए भयानक आकृति से युक्त रहते हैं। उनके चरणों के समीप में ऊपर की ओर बाहु का निर्माण करना चाहिये।।३६-३६।।

अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम्। दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत्।।३७।।
भृङ्गारधारिणं तद्वद्बलिं तस्य च पार्श्वतः। बन्धनं चास्य कुर्वन्तं गरुडं तस्य दर्शयेत्।।३८।।

नीचे की ओर उन्हीं की भाँति वामन को कमण्डलु के साथ बनाना चाहिये। दाहिनी ओर छोटी-सी छतरी देनी चाहिये, मुख को दीनता व्यक्त करने वाला बनाना चाहिये। उन्हीं की बगल में जल के कमण्डलु को लिए हुए बलि का निर्माण होना चाहिये और उसी स्थल पर बलि को बाँधते हुए गरुड़ को दिखाना चाहिये।।३७-३८।।

मत्स्यरूपं तथा मत्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत्।
एवंरूपस्तु भगवान्कार्यो नारायणो हरिः।।३९।।
ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः।
हंसारूढः क्वचित्कार्यः क्वचिच्च कमलासनः।।४०।।

इसी प्रकार मत्स्य (मछली) के आकार में मत्स्य भगवान् की तथा कच्छप की आकृति के समान कूर्म भगवान् की प्रतिमा बनानी चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त नियमों के साथ भगवान् विष्णु की विविध प्रतिमाओं का निर्माण करना चाहिये। ब्रह्मा को कमण्डलु लिये हुए चार मुखों वाला बनाना चाहिये, कहीं पर हंस पर बैठा हुआ, कहीं पर कमल पर विराजमान बनाना चाहिये।।३९-४०।।

वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः। कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे॥४१॥
वामे दण्डधरं तद्वत्स्रुवं चापि प्रदर्शयेत्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः॥४२॥
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीञ्छुक्लाम्बरधरं विभुम्। मृगचर्मधरं चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम्॥४३॥

उनकी प्रतिमा का रंग कमल के भीतरी भाग के समान हो, चार बाहुएँ हों, सुन्दर नेत्र हों, कमण्डलु बाएँ हाथ में हो, दाहिने हाथ में स्रुवा हो। बाएँ हाथ में भी दण्ड तथा स्रुवा धारण किये हुए प्रतिमा बनाई जाती है। उनके चारों ओर देव, गन्धर्व एवं मुनिगण स्तुति कर रहो हों-ऐसा दिखाया जाना चाहिये। ऐसा उपक्रम दिखाया जाना चाहिये मानों वे तीनों लोकों की रचना में प्रवृत्त हो रहे हैं। श्वेतवस्त्र धारण किये हुए ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्मा की ऐसी प्रतिमा बनाना चाहिये। मृगचर्मधारी तथा दिव्य यज्ञोपवीत धारी भी उन्हें बनाना चाहिये।।४१-४३।।

आज्यस्थालीं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम्॥४४॥
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्याः पैतामहे पदे। कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम्॥४५॥
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम्। दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम्॥४६॥

उनकी बगल में आज्यस्थाली (घृत की थाली), रखी गई हो तथा चारों वेदों की मूर्तियों हों। उनके बाएँ बगल में सावित्री तथा दाहिने बगल में सरस्वती की प्रतिमा बनी हुई हो। पितामह के चरणों के अग्रभाग के पास मुनियों के समूह बने हुए हों। अब मध्याह्न के सूर्य की भाँति परम तेजोमय कार्तिकेय की प्रतिमा का प्रकार बता रहा हूँ। उन सुकुमार कार्त्तिकेय को कमल के मध्यभाग के समान रंग में, उनके सुन्दर वाहन मयूर से युक्त दण्ड एवं चीर से सुशोभित बनाना चाहिये।।४४-६६।।

स्थापयेत्स्वेष्टनगरे भुजान्द्वादश कारयेत्। चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वने ग्रामे द्विबाहुकः॥४७॥
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शरः शूलं तथैव च।
वरदश्चैव हस्तः स्यादथ चाभयदो भवेत्॥४८॥
एते दक्षिणतो ज्ञेयः केयूरकटकोज्ज्वलाः।

अपने इष्ट नगर में उनकी बारह भुजाओं वाली प्रतिमा बनानी चाहिये, तुच्छ नगर में चार भुजाओं से तथा वन और साधारण ग्राम में दो बाहु वाली प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये। शक्ति, पाश, खड्ग, शर और शूल उनके हाथों में शोभायमान हों। एक हाथ अभयदान तथा वरदान देने वाला बनाना चाहिये-ये छः हाथ केयूर तथा कटक से विभूषित उज्ज्वल वर्ण के दाहिनी ओर बनाने चाहिये।।४७-४८.५।।

धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता॥४९॥
खेटकं ताम्रचूडं च वामहस्ते तु शस्यते। द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात्कुक्कुटोपरि॥५०॥

धनुष, पताका, मुष्टि, फैली हुई तर्जनी, ढाल तथा ताम्रचूड़ (मुर्गा) इन वस्तुओं तथा विशेषताओं से युक्त बायीं ओर के हाथों को उसी वर्ण का बनाना चाहिये। दो भुजाओं वाली कार्तिकेय की प्रतिमा के बाएँ हाथ में शक्ति तथा दाहिने हाथ को कुक्कुट के ऊपर न्यस्त बनाना चाहिये।।४९-५०।।

चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसिः।
वरदो भयदो वापि दक्षिणः स्यात्तुरीयकः।।५१।।

चतुर्भुज कार्तिकेय की प्रतिमा के बायीं ओर के दो हाथों में शक्ति और पाश रहने चाहिये, दाहिनी ओर के हाथ में तलवार और चौथा हाथ वरदान तथा अभयदान देने वाला होना चाहिये।।५१।।

विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्। लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम्।।५२।।
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम्। स्वदन्तं दक्षिणकर उत्पलं चापरे तथा।।५३।।

अब हाथी के मुख वाले त्रिलोचन गणेश की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, उसे लम्बे उदर वाला, चार बाहुयुक्त, सर्प का यज्ञोपवीतधारी बनाना चाहिये तथा विस्तृत कर्ण, विशाल तुण्ड, एक दाँत वाला तथा फूले हुये उदर वाला बनाना चाहिये। उनके दाहिने हाथे में अपना दाँत तथा अन्य हाथ में कमल होना चाहिये।।५२-५३।।

मोदकं परशुं चैव वामतः परिकल्पयेत्।
बृहत्त्वात्क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम्।।५४।।
युक्तं तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम्। कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा।।५५।।

प्रतिमा की बायीं ओर मोदक तथा परशु बनाने चाहिये, बृहत् होने के कारण मुख नीचे की ओर विस्तृत स्कन्ध, पाद एवं हाथ पुष्ट होने चाहिये। ऋद्धि तथा सिद्धि उनकी दोनों ओर से युक्त हों, नीचे की ओर मूषक बना हुआ हो। अब दस भुजाओं वाली कात्यायनी के रूप का वर्णन कर रहा हूँ।।५४-५५।।

त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम्। जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतलक्षणाम्।।५६।।
लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम्। अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्।।५७।।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्। सुचारुदशनां तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम्।।५८।।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्।

तीनों देवताओं की आकृतियों की अनुकरण करने वाली, जटा जूट से विभूषित, अर्धचन्द्र से परिलक्षित, तीन नेत्रों वाली, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली, अलसी के पुष्प के समान नील वर्ण वाली, तेजोमय सुन्दर नेत्रों से विभूषित, नव यौवन सम्पन्न, सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित, सुन्दर मनोहारि दाँतों से युक्त, पीन एवं उन्नत स्तनों वाली, त्रिभंगीयुक्त, महिषासुरनाशिनी की प्रतिमा बनानी चाहिये।।५६-५८.५।।

त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्खड्गं चक्रं क्रमादधः॥५९॥
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधन।
खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च॥६०॥
घण्टां व परशुं वाऽपि वामतः सन्निवेशयेत्।
(अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥६१॥

त्रिशूल को उसके दाहिने हाथ में देना चाहिये तथा खड्ग और चक्र क्रमशः उसके नीचे होने चाहिये, तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को भी बायीं ओर से जानना चाहिये। ढाल, पूर्ण धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा तथा परशु-इन सब को भी बायीं ओर से सन्निविष्ट करना चाहिये। प्रतिमा के नीचे की ओर शिरोविहीन महिषासुर की प्रतिमा बनानी चाहिये।।५९-६१।।

शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम्। हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम्॥६२॥
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फारितेक्षणम्। वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम्॥६३॥
सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया। वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्॥६४॥

फिर सिर के कटने पर शरीर से निकलता हुआ दानव दिखाना चाहिये। जिसके हाथ में खड्ग हो, हृदय शूल से भिन्न हो, बाहर निकलती हुई जिसकी आतें दिखाई पड़ रही हों, गिरते हुए रक्त से सारे अंग लाल हो रहे हों, फैले हुए लाल नेत्र दिखाई पड़ रहे हों, नागपाश से चारों ओर घिरा हुआ हो, भृकुटी तथा भीषण मुख बने हों, दुर्गा द्वारा पाशयुक्त बाएँ हाथ से पकड़ा गया हो। देवी के सिंह को मुख से रक्त वमन करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये।।६२-६४।।

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि॥६५॥
स्तूयमानं च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्)। इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः॥६६॥

देवी का दाहिना पैर समान रूप से सिंह के ऊपर स्थित हो तथा बाँया पैर कुछ ऊपर की ओर हो। उसका अंगूठा महिष के ऊपर लगा हुआ हो, देवतागण चारों ओर से स्तुति कर रहे हों-यह भी दिखाना चाहिये।।६५-६६।।

सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्। पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्॥६७॥
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्। वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्॥६८॥
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम्। छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्॥६९॥

अब सुरराज इन्द्र की प्रतिमा का प्रकार विशेषरूपेण बतला रहा हूँ। सहस्र नेत्रों वाले देवेन्द्र को मत्तगयन्द पर विराजमान बनाना चाहिये, वक्षःस्थल एवं मुख विशाल हों, स्कन्ध सिंह के समान हो, भुजाएँ विशाल हों, किरीट एवं कुण्डल धारण किये हों, जघन स्थल भुजाएँ तथा आँखें विस्तृत तथा पीवर हों, वज्र एवं कमल धारण किये हों, तथा विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित हों,

देवता तथा गन्धर्वगण पूजा कर रहे हों, अप्सराओं का समूह सेवा में लगा हो, पार्श्व में छत्र चमर धारण किये हुए स्त्रियाँ खड़ी हो, ऐसा दिखाना चाहिये।।६७-६९।।

सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुतम्। इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम्।।७०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे षष्ट्यधिकद्विशततमोध्याय:।।२६०।।

आदित: श्लोकानां समष्ट्यङ्का:।।१३०५९।।

सिंहासन पर भी स्थित देवराज की प्रतिमा गन्धर्वों के गणों से युक्त बनानी चाहिये, उसकी बायीं ओर इन्द्राणी की प्रतिमा हो, जो कमल धारण किये हुए विराजमान हो।।७०।।

।।दो सौ साठवाँ अध्याय समाप्त।।२६०।।

❖❖❖

अथैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्याय:

इन्द्रादि देवताओं की प्रतिमा का निर्माण, दिवाकर की प्रतिमा, कुबेर आदि लोकपालों की प्रतिमा, देवी की प्रतिमा

सूत उवाच

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजा:। रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम्।।१।।

सूत ने कहा–ऋषिगण! अब प्रभाकर सूर्य की प्रतिमा को सुनिये। उन सूर्यदेव को सुन्दर नेत्रों से सुशोभित, हाथ में कमल धारण किये हुए रथ पर विराजमान बनाना चाहिये।।१।।

सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत्। मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम्।।२।।
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्। स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा।।३।।

उस रथ में सात अश्व हो, एक चक्का हो। सूर्यदेव विचित्र मुकुट धारण किये हों, उनकी कान्ति कमल के मध्यवर्ती भाग के समान हो, विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित दोनों भुजाओं में वे कमल धारण किये हुये हों, वे कमल उनके स्कन्ध देश पर लीलापूर्वक सदैव धारण किये गये बनाने चाहिये।।२-३।।

चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्। वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसाऽऽवृतौ।।४।।
प्रतीहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ।
कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयो: पुरुषावुभौ।।५।।

उनका शरीर पैर तक फैले हुए वस्त्र में छिपा हुआ हो। कहीं पर चित्रों में भी उनकी प्रतिमा

प्रदर्शित की जानी चाहिये। उस समय उनकी मूर्ति दो वस्त्रों से ढकी हुई हो। दोनों चरण तेजोमय हों, मूर्ति के दोनों ओर दण्डी और पिंगल नामक दो प्रतिहारियों को रखना चाहिये, उन दोनों पार्श्ववर्ती पुरुषों के हाथों में खड्ग हो।।४-५।।

लेखनीकृतहस्तं च पार्श्वे धातारमव्ययम्। नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद्दिवाकरम्।।६।।
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभः। अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः।।७।।

एक पार्श्व में हाथ में लेखनी लिये हुए अविनाशी धाता की मूर्ति हो और चारों ओर विभिन्न-विभिन्न देवगण निर्मित किये गये हों। इस प्रकार दिवाकर की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये। इन सूर्य का सारथी अरुण है, जिसकी कान्ति पद्मिनी के पत्रों के समान है, उसके दोनों अगल-बगल के दो अश्व, जो अन्त में स्थित हैं लम्बी ग्रीवावाले तथा अतिसुन्दर बनाने चाहिये।।६-७।।

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः। पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत्।।८।।
वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम्। दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम्।।९।।
बालार्कसदृशं तस्य वदनं चापि दर्शयेत्। यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा।।१०।।

भुजङ्गों की रस्सी से बँधे हुए उन सातों अश्वों को लगाम युक्त रहना चाहिये। इस मूर्ति को पद्म पर अथवा वाहन पर अवस्थित बनाना चाहिये, उसके हाथों पर पद्म रहने चाहिये। अब सभी प्रकार के मनोरथों तथा फलों को देने वाले अग्नि के स्वरूप का लक्षण बतला रहा हूँ। अर्धचन्द्राकार आसन पर सुवर्ण के समान कान्ति वाले प्रज्ज्वलित अग्नि की प्रतिमा बनानी चाहिये, उदयकालीन सूर्य की भाँति मुख दिखाना चाहिये, यज्ञोपवीत धारी तथा लम्बी दाढ़ी वाला बनाना चाहिये।।८-१०।।

कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम्। ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्ज्वलम्।।११।।
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम्।
तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम्।।१२।।

उनके बायें हाथ में कमण्डलु तथा दाहिने हाथ में अक्षसूत्र रहना चाहिये। ज्वालाओं के मण्डल से विभूषित इनका उज्ज्वल वाहन अज बनाना चाहिये अथवा मस्तक से सात ज्वालाओं से युक्त इनकी प्रतिमा को कुण्ड के मध्य में स्थापित करना चाहिये। अब दण्ड पाशधारी ऐश्वर्यशाली यमराज की प्रतिमा के निर्माण का प्रकार बतला रहा हूँ।।११-१२।।

महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम्। सिंहासनगतं चापि दीप्ताग्निसमलोचनम्।।१३।।
महिषश्चित्रगुप्तस्य करालाः किङ्करास्तथा। समन्ताद्दर्शयेत्तस्य सौम्यासौम्यान्सुरासुरान्।।१४।।

महान् महिष पर समारूढ़ काले अंजन के समूह के समान दिखाई पड़ने वाले सिंहासन पर बैठे हुए भी प्रदीप्त अग्नि के समान विकराल नेत्रों वाले यम की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये। उनके समीप महिष, चित्रगुप्त के विकराल अनुचर वर्ग, मनोहर आकृति वाले देवताओं तथा असुन्दर आकृति वाले असुरों की आकृतियों का भी निर्माण होना चाहिये।।१३-१४।।

राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालं च नैर्ऋतम्। नरारूढं महाकायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम्॥१५॥
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम्। नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम्॥१६॥

लोकपति राक्षसेन्द्र नैर्ऋति की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। मनुष्य पर आरूढ़ महान् आकार वाले चारों ओर राक्षस समूहों से घिरा हुआ, खड्ग हाथ में लिये हुए, अति नीलवर्ण, काले कज्जलगिरी के समान दिखाई पड़ने वाले, नर समूहों से संयुक्त विमान पर समारूढ पीले रंग के आभूषणों से विभूषित बनाना चाहिये।।१५-१६।।

वरुणं च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम्। शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम्॥१७॥
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम्। वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रं तु मृगवाहनम्॥१८॥

महाबलवान् हाथ में पाश धारण करने वाले वरुण की प्रतिमा का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी कान्ति शंख अथवा स्फटिक के वर्ण की होती है, श्वेत हार तथा वस्त्र से विभूषित रहते हैं, मीन के आसन पर विराजमान, शान्त, मुकुट और अङ्गदधारण करने वाले हैं। हरिण की सवारी वाले वायु रूप धूम्र को बताऊँगा।।१७-१८।।

चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम्। मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम्॥१९॥
कुबेरं च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम्। महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम्॥२०॥
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्यग्रकरैस्तथा। हारकेयूररचितं सिताम्बरधरं सदा॥२१॥
गदाधरं च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम्। नरयुक्तविमानस्थमेवं रीत्या च कारयेद्॥२२॥
तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम्। त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम्॥२३॥

चित्र वस्त्रधारी शान्त युवक तिरछी भोंहों वाले हैं। मृग पर अधिरूढ़ वरदायक पताका एवं ध्वजा से विभूषित, दोनों ओर कुण्डलों से अंलकृत कुबेर को बतला रहा हूँ, वे महान् उदर वाले, विशालकाय एवं आठों निधियों से युक्त हैं, बहुतेरे गुह्यकगण उन्हें घेरे रहते हैं, जिनके हाथ धन सम्पत्ति से युक्त रहते हैं। कुबेर सर्वदा केयूर तथा हार से विभूषित तथा श्वेत वस्त्रधारी रहते हैं। गदाधारी भी कुबेर की प्रतिमा बनायी जानी चाहिये। उस समय उन्हें वरदान देने में तत्पर मुकुट से विभूषित तथा नर युक्त विमान पर विराजमान, इस प्रकार से निर्मित करना चाहिये। इसी प्रकार ईश, धवल नेत्रों वाले, श्वेत कान्ति वाले, हाथों में त्रिशूल लिये हुए, त्रिनेत्र वृषभारूढ़ देवाधिदेव शंकर की प्रतिमा का प्रकार भी बताया जाता है।।१९-२३।।

मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनपूर्वशः। ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा॥२४॥

अब क्रमानुसार मातृकाओं की प्रतिमाओं का लक्षण बतला रहा हूँ। ब्रह्माणी की प्रतिमा ब्रह्म के समान चार मुखों वाली तथा चार भुजाओं वाली बनानी चाहिये।।२४।।

हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः। महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता॥२५॥
जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा। कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्यचतुर्भुजा॥२६॥

उन्हें हंस पर समासीन अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से विभूषित करना चाहिये। इसी प्रकार महेश्वर की प्रतिमा के अनुरूप महेश्वरी की प्रतिमा निर्मित करनी चाहिये। इन्हें जटा एवं मुकुट से विभूषित, वृषभासीन, मस्तक में चन्द्रमा से विभूषित, तीन हाथों में कपाल, शूल एवं खट्वांग से युक्त तथा चौथे हाथ को वरदान देने के लिए फैलाया हुआ बनाना चाहिये।।२५-२६।।

कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना। रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता॥२७॥
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा। वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता॥२८॥
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा। सिंहासनगता वाऽपि बालकेन समन्विता॥२९॥

स्वामिकार्तिकेय के समान कौमारी की प्रतिमा निर्मित करनी चाहिये, जो श्रेष्ठ मयूर के आसन पर समारूढ़ हों, लाल वस्त्र तथा शूल और शक्ति धारण किये हुए हों, हार एवं केयूर से युक्त तथा हाथ में कृकवाकु (मुर्गा) धारण किये हों। वैष्णवी विष्णु के समान गरुड़ के ऊपर विराजमान हों, चार बाहु वाली हों। एक भुजा वरदान देने के लिए उद्यत-सी दिखाई पड़ती हो, तीन भुजाओं में शंख, चक्र और गदा हो, बालक से युक्त सिंहासन पर बैठी हुई भी प्रतिमा निर्मित की जाती है।।२७-२९।।

वाराहीं च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम्। वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी॥३०॥

अब महिष के ऊपर बैठी हुई वाराही की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, वे देवी वाराह के समान रहती हैं तथा सिर पर चामर धारण किये हुए रहती हैं।।३०।।

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी। इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम्॥३१॥

हाथों में गदा और चक्र धारण किये हुए बड़े-बड़े दानवों के विनाश में तत्पर रहती हैं। इन्द्राणी को इन्द्र के समान वज्र, शूल और गदा धारण किए हाथी पर विराजमान बनाना चाहिये।।३१।।

गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम्॥३२॥
तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद्वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम्।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम्॥३३॥
दंष्ट्राकरालवदनां कुर्याच्चैव कुशोदरीम्। कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम्॥३४॥

वे देवी बहुत से नेत्रों से युक्त, तपाये हुए स्वर्ण के समान कान्ति वाली, दिव्य आभूषणों से आभूषित रहती हैं, तीक्ष्ण खड्ग उनके हाथों में रहता है। उन योगेश्वरी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, जिनकी जिह्वा लम्बी, केश ऊपर की ओर उठे हुए तथा हड्डियों के टुकड़ों से जो विभूषित रहती हैं। उनके दाँत तथा मुख अतिविकराल रहते हैं। उदर को अति दुर्बल बनाना चाहिये, कपालों की मालाएँ तथा मुण्डमालाओं से विभूषित बनाना चाहिये।।३२-३४।।

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम्।
मस्तिष्काक्तं च विभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे॥३५॥

बाएँ हाथ में रक्त से भींगा हुआ कपाल रहेगा जो मांस तथा रक्त से पूर्ण रहता है। दाहिने हाथ में शक्ति रहेगी।।३५।।

गृधस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी। करालवदना तद्वत्कर्तव्या सा त्रिलोचना॥३६॥

उस योगेश्वरी की प्रतिमा गृध्र पर अथवा काक पर भी बैठी बनायी जानी चाहिये। शरीर में मांस न हो, तथा उदर अति कृश हो, मुख अतिकराल हो। उसी के अनुरूप तीन नेत्र भी बनाने चाहिये।।३६।।

चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा।
दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी॥३७॥

सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनीध्वजसंयुता। विनायकं च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा॥३८॥

वीरेश्वरश्च भगवान्वृषारूढो जटाधरः। वीणाहस्तस्त्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत्॥३९॥

चामुण्डा को घण्टा धारण किये हुए तथा बाघ के चर्म से सुशोभित बनाना चाहिये, उसी प्रकार कालिका को नग्नरूप से कपाल धारण किये हुए गधे पर अवस्थित बनाना चाहिये तथा सुन्दर लाल वर्ण के पुष्पों के आभरण तथा झाडू की ध्वजा से युक्त प्रदर्शित करना चाहिये। इन मातृकाओं के समीप सर्वदा गणेश की प्रतिमा भी रखनी चाहिये, वे वीरेश्वर भगवान् वृषभारूढ़ जटा धारण किये हुए, हाथ में वीणा धारण किये हुए त्रिशूल से सुशोभित मातृकाओं के आगे विराजमान रहते हैं।।३७-३९।।

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम्।
सुयौवनां पीनगण्डां रक्तौष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम्॥४०॥
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम्।
सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम्॥४१॥

नवीन अवस्था वाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। उन सुन्दर नवयौवन वाली लक्ष्मी को उन्नत कपोल, लाल ओष्ठ, तिरछी भौंहें, उठे हुए विशाल उरोज वाली तथा मणिजटित कुण्डल से विभूषित बनाना चाहिये। उनका मुखमण्डल अति सुन्दर तथा सिर केश-विन्यास से विभूषित रहना चाहिये।।४०-४१।।

पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुण्डलालकैः। कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ॥४२॥

नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ। पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे॥४३॥

अथवा पद्म, स्वस्तिक तथा शंखों से युक्त कुण्डल एवं अलकावलि से सुशोभित कञ्चुक शरीर में धारण किये हुये तथा दोनों स्तनों पर हार की लरें शोभित हो रही हों-ऐसा निर्मित करना चाहिये। हाथी के शुण्डादण्ड की भाँति स्थूल तथा विशाल दोनों भुजाएँ केयूर तथा कटक से विभूषित हों, बाएँ हाथ में कमल तथा दाहिने हाथ में श्रीफल देना चाहिये।।४२-४३।।

मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम्। नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम्॥४४॥

उसी प्रकार मेखला का आभूषण भी पहिनाना चाहिये, शरीर की कान्ति तपाये हुये सुवर्ण

के समान गौरवर्ण की होनी चाहिये। विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा सुन्दर मनोहारी वस्त्रों से सुशोभित करना चाहिये।।४४।।

पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चमरव्यग्रपाणयः।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता।।४५।।

उन लक्ष्मी के पार्श्व में चामर धारण किये हुए अन्य स्त्रियों की प्रतिमाएँ भी निर्मित करनी चाहिये, वे लक्ष्मी पद्म के सिंहासन पर बने हुए पद्म के आसन पर ही समासीन हों।।४५।।

करिभ्यां स्नाप्यमानाऽसौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथाऽपरौ।।४६।।
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः। तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता।।४७।।
पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः।
नागाश्चैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः।।४८।।
अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी।
फणाश्च मुर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समाः।।४९।।

ऊपर से झज्झर को शुण्डादण्ड में लिये हुए दो हाथी स्नान करा रहे हों, उन दोनों हाथियों के अतिरिक्त दो दूसरे हाथी उन हाथियों पर जल को झंझर द्वारा छोड़ रहे हों। गन्धर्व, यक्ष तथा लोकेशगण स्तुति पाठ कर रहे हों। इसी प्रकार यक्षिणी की प्रतिमा सिद्धों एवं असूरों से सेवा की जाती हुई बनानी चाहिये। उसके अगल-बगल में दो कलश रहें तथा तोरण में देवताओं और दानवों की प्रतिमा रहे। नागों की भी प्रतिमा रहे, जो खड्ग तथा ढाल धारण किये हों, नीचे की ओर उनका शरीर बनाना चाहिये, नाभि से ऊपर मनुष्य की आकृति रहनी चाहिये। सिर में बराबरी से दिखाई पड़ने वाले दो जिह्वायुक्त फण बनाने चाहिये।।४६-४९।।

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः। निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः।।५०।।
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः।
दिग्वासा जटिलस्तद्वच्छ्वगोमायूनिषेवितः।।५१।।
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशसमावृतम्। दक्षिणे शस्त्रिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम्।।५२।।

पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल आदि जातियों के लोगों को भी बनाना चाहिये जो कि देखने में अति विकृत, भयानक तथा मांसरहित दिखाई दें। क्षेत्रपाल को जटाओं से युक्त, विकृत मुख वाला, नग्न, शृगाल तथा कुत्तों से सेवित बनाना चाहिये, कपाल उसके बाँए हाथ में देना चाहिये जो सिर के केशों से घिरा हुआ हो। दाहिने हाथ में असुरों का विनाश करने वाली छूरी देनी चाहिये।।५०-५२।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम्।
पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम्।।५३।।

दक्षिणे पुष्पबाणं च वामे पुष्पमयं धनुः। प्रीतिः स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता॥५४॥
रतिश्च वामपार्श्वे तु शयनं सारसान्वितम्।

अब इसके बाद दो भुजाओं वाले कुसुमायुध कामदेव की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। उनके एक पार्श्व में मकर की ध्वजा के समेत अश्वमुख का निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथ में पुष्प का बाण तथा बायें हाथ में पुष्पमय धनुष होना चाहिये, दाहिनी ओर भोजन की सामग्रियों के साथ प्रीति की प्रतिमा होनी चाहिये। उनकी बायीं ओर रति की प्रतिमा तथा सारस से युक्त शय्या हो।।५३-५४.५।।

पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा॥५५॥
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च। सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान्कुसुमायुधः॥५६॥
संस्थानमीषद्वक्रं स्याद्विस्मयस्मितवक्त्रकम्। एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया॥
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः॥५७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने प्रतिमालक्षणं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३११६।।

उसी के बगल में वस्त्र, नगाड़ा तथा कामलोलुप खर होना चाहिये। प्रतिमा के एक बगल में जल की बावली तथा नन्दनवन हो। इस प्रकार भगवान् कुसुमायुध को प्रयत्नपूर्वक अतिसुन्दर बनाना चाहिये। प्रतिमा की मुद्रा कुछ वंकिम हो, मुख विस्मय युक्त कुछ-कुछ मुस्कराता हुआ हो। हे ऋषिगण! मैंने संक्षेप में प्रतिमाओं का यह लक्षण बतलाया है, इन्हें विस्तारपूर्वक बतलाने की क्षमता तो बृहस्पति भी नहीं रखते।।५५-५७।।

।।दो सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त।।२६१।।

❖❖❖

अथ द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पीठिका के भेद और निर्माण प्रकार

सूत उवाच

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः। पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान्षोडश कारयेत्॥१॥

सूत ने कहा- अब क्रमशः पीठिका के लक्षणों को मैं आप लोगों को बतला रहा हूँ, सुनिये! पीठिका की ऊँचाई को सोलह भागों में विभक्त करे।।१।।

भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता।
वृत्तो भागस्तथैकः स्याद्वृत्तः पटलभागतः॥२॥
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्तु भागतः।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका॥३॥
प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीं यावदेव तु। निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै शेषपट्टिका॥४॥
वारिनिर्गमनार्थं तु तत्र कार्यः प्रणालकः। पीठिकानां तु सर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम्॥५॥

उसमें एक भाग तो पृथ्वी में घुसा हो। उसके ऊपर के चार भाग जगती माने गये हैं। उनके ऊपर का एक भाग वृत्त कहलतता है, उसके ऊपर पटल भाग से लेकर एक भाग वृत्त, फिर तीन भागों में कण्ठ, उसके ऊपर तीन भागों में कण्ठपट, उसके ऊपर दो भागों में ऊर्ध्वपट्ट तथा शेष भाग को पट्टिका कहा जाता है। एक-एक भाग जगती पर्यन्त दूसरे से प्रविष्ट रहते हैं। फिर शेष पट्टिका पर्यन्त सबका निर्गम होता है। पट्टिका में जल के निकलने के लिये प्रणाली बना देनी चाहिये। यह सामान्य रूप में सभी पीठिकाओं का लक्षण है।।२-५।।

विशेषान्देवताभेदाच्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः।
स्थण्डिला वाऽथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला॥६॥
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मा वार्धशशी तथा।
त्रिकोणा दशमी तासां संस्थानं वा निबोधत॥७॥
स्थण्डिला चतुरस्त्रा तु वर्जिता मेखलादिभिः।
वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षी चैव त्रिमेखला॥८॥

हे ऋषिगण! अब विशेष रूप से देवताओं के भेद से पीठिकाओं की विशेषता सुनिये। स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी तथा त्रिकोण ये पीठिकाओं के भेद हैं। अब इनकी अवस्थिति सुनिये! स्थण्डिला, पीठिका के चार कोने होते हैं और मेखला आदि इसमें कुछ नहीं होती। वापी पीठिका वह है, जिसमें दो मेखलाएँ बनी हों, यक्षी को तीन मेखलायुक्त जानना चाहिये।।६-८।।

चतुरस्त्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत्। मण्डला वर्तुला या तु मेखलाभिर्गणप्रिया॥९॥
रक्ता द्विमेखला मध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत्।
मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्त्रा वज्रिका भवेत्॥१०॥
षोडशास्त्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रस्वा तु मूलतः। तथैव धनुषाकारा सार्धचन्द्रा प्रशस्यते॥११॥

चार पहल वाली आयताकार पीठिका वेदी कही जाती है, उसे लिंग की स्थापना में नहीं प्रयुक्त करना चाहिये। जो गोलाकार मण्डल से युक्त तथा मेखलाओं से युक्त पीठिका है, वह गणों की प्रिय कही जाती है। लाल वर्ण वाली, दो मेखलाओं से युक्त पीठिका का नाम पूर्णचन्द्रा है। तीन

मेखलाओं से युक्तः छः कोने वाली पीठिका को वज्रिक कहते हैं। मूलभाग में कुछ छोटी सोलहपहल वाली पीठिका पद्मा कही जाती है। उसी प्रकार धनुष के आकार वाली पीठिका को अर्द्धचन्द्रा कहते हैं।।९-११।।

त्रिशूलसदृशी तद्वत्त्रिकोणा ह्यूर्ध्वतो मता। प्रागुदक्प्रवणा तद्वत्प्रशस्ता लक्षणान्विता॥१२॥

परिवेषं त्रिभागेन (ण) निर्गमं तत्र कारयेत्।
विस्तारं तत्प्रमाणं च मूले चाग्रे तथोर्ध्वतः॥१३॥
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन (ण) सुशोभनः।
लिङ्गस्यार्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता॥१४॥
मेखला तस्त्रिभागेन (ण) खातं चैव प्रमाणतः।
अथवा पादहीनं तु शोभनं कारयेत्सदा॥१५॥

ऊपर की ओर से त्रिशूल के समान दिखाई पड़ने वाली पूर्व तथा उत्तर की ओर कुछ ढालू उत्तम लक्षणों से युक्त पीठिका को त्रिकोण कहते हैं, इसके तीन भाग परिधि के बाहर रहेंगे और मूल, अग्र तथा ऊपर-इन तीन भागों के विस्तार अधिक रहेंगे। त्रिभाग में सुन्दर जल निकलने की प्रणाली बनी होनी चाहिये। पीठिका को लिंग के आधे भाग की मोटाई से युक्त बनाना चाहिये एवं लिंग के तीन भाग जितने प्रमाण में मेखला का खात बनाना चाहिये अथवा चौड़ाई हीन बनाना चाहिये; किन्तु सर्वदा सुन्दर बनाने का ध्यान रखना चाहिये।।१२-१५।।

उत्तरस्थं प्रणालं च प्रमाणादधिकं भवेत्।
स्थण्डिलायामथाऽऽरोग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम्॥१६॥

गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी सम्पत्प्रदा भवेत्। मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका॥१७॥

उत्तर की ओर स्थित जल निकलने की प्रणाली प्रमाण से कुछ अधिक ही बनानी चाहिये। स्थण्डिला पीठिका के स्थापित करने से आरोग्य तथा विपुल धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है। यक्षी गौर देने वाली कही गई है, वेदी सम्पति देने वाली कही गयी है, मण्डला में कीर्ति प्राप्ति होती है, पूर्णचन्द्रिका वरदान देने वाली कही गई है।।१६-१७।।

आयुष्प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्।
पुत्रप्रदाऽर्धचन्द्रा स्यात्त्रिकोणा शत्रुनाशिनी॥१८॥

देवस्य यजनार्थं तु पीठिका दश कीर्तिताः। शैले शैलमयीं दद्यात्पार्थिवे पार्थिवीं तथा॥१९॥

वज्रा दीर्घायु प्रदान करने वाली तथा पद्मा सौभाग्यदायिनी कही गयी है, अर्धचन्द्रा पीठिका पुत्र प्रदान करने वाली तथा त्रिकोण शत्रुनाशिनी है। देवता की पूजा के लिये ये दस पीठिकाएँ कही गई हैं। पत्थर की मूर्ति में पत्थर की पीठिका स्थापित करनी चाहिये। मिट्टी की प्रतिमा में मिट्टी की पीठिका देनी चाहिये।।१८-१९।।

दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च।
नान्ययोनिस्तु कर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः॥२०॥
अर्चायामसमं दैर्घ्यं लिङ्गयामसमं तथा। यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत्॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम्॥२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने पीठिकानुकीर्तनं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२६२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३१३७॥

काष्ठ की प्रतिमा में काष्ठ की पीठिका तथा मिश्रित धातुओं की प्रतिमा में मिश्रित धातुओं की पीठिका रखनी चाहिये। मंगलफल की कामना करने वालों को दूसरे प्रकार की पीठिका नहीं देनी चाहिये। इस पीठिका की लम्बाई मूर्ति के बराबर नहीं रखी जाती। इस प्रकार लिंग की पीठिका में भी लम्बाई में समानता नहीं रखी जाती है। जिस देवता की जो पत्नी हो, उसे भी पीठ में निर्मित करना चाहिये। यह संक्षेप में मैंने आप लोगों को पीठिका का लक्षण बतलाया है॥२०-२१॥

॥दो सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त॥२६२॥

❖❖❖

अथ त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

लिङ्ग के भेद और निर्माण प्रकार

सूत उवाच

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम्। सुस्निग्धं च सुवर्णं च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः॥१॥
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते। लिङ्गमानेन वा विद्यात्प्रासादं शुभलक्षणम्॥२॥**

सूत ने कहा—अब इसके बाद उत्तम लिंग के लक्षण मैं आप लोगों को बता रहा हूँ। विचक्षण पुरुष अतिचिकना सुवर्ण का लिंग निर्मित करे। मन्दिर प्रमाण के अनुरूप लिंग का प्रमाण किया जाता है अथवा लिंग के प्रमाणानुसार प्रासाद का शुभ लक्षण जानना चाहिये॥१-२॥

**चतुरस्रे समे गर्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्। वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्चाया लिङ्गमेव च॥३॥
प्रागुत्तरेण लीनं तु दक्षिणापरमाश्रितम्। पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत्॥४॥
पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम्।**

सर्वप्रथम चार कोने वाले समान गर्त में ब्रह्मसूत्र गिराना चाहिये। उस ब्रह्म के बाईं ओर मूर्ति अथवा लिंग की स्थापना करनी चाहिये। वह पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर तो लीन (?) तथा

दक्षिण और पश्चिम की दिशा की ओर आश्रित (?) रहे। पुर के पश्चिम दिशा की ओर पूर्व द्वार की कल्पना करनी चाहिये और पूर्व दिशा की ओर पश्चिम द्वार तथा दक्षिण और उत्तर की ओर माहेन्द्र द्वार का निर्माण करना चाहिये।।३-४.५।।

द्वारं विभज्य पूर्वं तु एकविंशतिभागिकम्।।५।।
ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत्। तस्यार्धं तु त्रिधा कृत्वा भागं चोत्तरतस्त्यजेत्।।६।।

प्रथमतः पूर्व द्वार को इक्कीस भागों में विभक्त कर मध्यभाग में ब्रह्मसूत्र की कल्पना करनी चाहिये। इसके अर्द्धभाग को तीन भागों में विभक्त कर उत्तर की ओर एक भाग को छोड़ दे। इसी प्रकार दक्षिण की ओर एक भाग छोड़कर ब्रह्मस्थान की कल्पना करे। उस अर्ध भाग में लिंग की स्थापना प्रशस्त मानी गई है।।५-६।।

एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत्। भागार्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यं तदिह शस्यते।।७।।
पञ्चभागविभक्तेषु त्रिभागौ ज्येष्ठ उच्यते। भाजिते नवधा गर्भे मध्यम पाञ्चभागिकम्।।८।।
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।

पाँच भागों में विभक्त करके उसमें तीन भागों को ज्येष्ठ कहा जाता है, भीतरी मान को नव भागों में विभक्त करके उसके पंचम भाग को मध्यम कहते हैं। गर्भ के एक भाग में ही नव विभक्त करके लिंगों को स्थापित करे।।७-८.५।।

समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम्।।९।।
ज्येष्ठमर्धं कनीयोऽर्धं तथा मध्यममध्यमम्।
एवं गर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्।।१०।।
ज्येष्ठं तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमं त्रिविधं तथा। कनीयस्त्रिविधं तद्वल्लिङ्गभेदा नवैव तु।।११।।
नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः। भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भं चतुरस्त्रकम्।।१२।।

इसी प्रकार गर्भ भाग को समसूत्र में विभक्त करके ज्येष्ठ, कनिष्ठ और मध्यम इन तीन स्थल भागों में विभक्त करे। इस प्रकार गर्भ को तीन भागों में विभक्त करना चाहिये, फिर उनमें तीन प्रकार के ज्येष्ठ, तीन प्रकार के मध्यम और तीन प्रकार के कनीय ये भेद होते हैं, जिससे लिङ्गों के कुल नव प्रकार के भेद हुए। बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि नाभि के आधे भाग में समान आठ भाग करके तीन भागों को छोड़कर चार कोण वाला विष्कम्भ बनाये।।९-१२।।

अष्टास्त्रं मध्यमंज्ञेयं भागं लिङ्गस्य वै ध्रुवम्।
विकीर्णे चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद्बुधः।।१३।।
अष्टास्त्रं कारयेत्तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु। षोडशास्त्रीकृतं पश्चाद्वर्तुलं कारयेत्ततः।।१४।।
आयामं तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतं।
माहेश्वरं त्रिभागं तु ऊर्ध्ववृत्तं त्ववस्थितम्।।१५।।

अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुरस्त्रो विधीयते। अष्टास्त्रो वैष्णवो भागो मध्यस्तस्य उदाहृतः॥१६॥

लिङ्ग के मध्य भाग में आठ कोण हो, तदनन्तर बचे हुए भाग को दो कोणों से बुद्धिमानों को लांछित करना चाहिये। उसके ऊपर आठ कोणों वाला बनाये। सोलह कोणों वाले भाग को गोलाकार में परिणत करे। इन देवता की नाभि में लम्बाई कुण्डलीकृत होगी एवं माहेश्वर की त्रिभाग ऊर्ध्ववृत्त भाव से अवस्थित होगा। नीच की ओर ब्रह्मभाग वह होगा जो चार कोणों वाला होगा। मध्य भाग जो आठ कोणों वाला होगा, वह वैष्णव भाग कहा जाता है।।१३-१६।।

एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गं वृद्धिपदं भवेत्। तथाऽन्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः॥१७॥
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत्। चतुर्धा तद्विभज्याथ विष्कम्भं तु प्रकल्पयेत्॥१८॥
देवतायतनं सूत्रं भागत्रयविकल्पितम्। अधस्താच्चतुरस्त्रं तु अष्टास्त्रं मध्यभागतः॥१९॥
पूज्यभागस्ततोऽर्धं तु नाभिभागस्तथोच्यते।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से निर्मित हुआ लिङ्ग समृद्धिप्रद होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों द्वारा गर्भमान को बतला रहा हूँ। गर्भमान के प्रमाण द्वारा जो उचित लिङ्ग निर्मित होता है, उसे चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ की कल्पना करे एवं देवायतन को सूत्र द्वारा नाप करके तीन भागों में विभक्त करे। जिसमें नीचे का भाग चार कोणों वाला तथा मध्य का भाग आठ कोणों वाला हो, इसके ऊपर पूज्य भाग और नाभि भाग कहा जाता है।।१७-१९.५।।

आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्त्रके॥२०॥
चतुरस्त्रं परित्यज्य अष्टास्त्रस्य तु यद्भवेत्। तस्याप्यर्धं परित्यज्य ततो वृत्तं तु कारयेत्॥२१॥
शिरः प्रदक्षिणं तस्य संक्षिप्तं मूलतो न्यसेत्। भ्रष्टपूजं भवेल्लिङ्गमधस्ताद्विपुलं च यत्॥२२॥

लम्बाई और विस्तार के चौकोने भाग को जो प्रमाण हो, चौकोने भाग को छोड़कर आठ कोने वाले भाग का जो भाग हो, उसके आधे भाग को छोड़कर वृत्ताकार बनावे। अनन्तर शिरोभाग का प्रदक्षिणाकार तथा मूलदेश को संक्षिप्त रूप में न्यास करे, जिस लिङ्ग के नीचे का भाग विस्तृत होता है, उसकी पूजा नष्ट हो जाती है, अर्थात् वह पूजनीय नहीं रह जाता।।२०-२२।।

शिरसा च सदा निम्नं मनोज्ञं लक्षणान्वितम्।
सौम्यं तु दृश्यते यत्तु लिङ्गं तद्वृद्धिदं भवेत्॥२३॥
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणं सर्वतः समम्। एवंविधं तु यल्लिङ्गं भवेत्तत्सार्वकामिकम्॥२४॥
अन्यथा यद्भवेल्लिङ्गं तदसत्सम्प्रचक्षते। एवं रत्नमयं कुर्यात्स्फाटिकं पार्थिवं तथा॥
शुभं दारुमयं चापि यद्वा मनसि रोचते॥२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३१६२।।
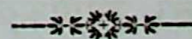
शिर की ओर से सदा निम्न, मनोहर, उत्तम लक्ष्णों से युक्त तथा सौम्य जो लिङ्ग दिखाई पड़ता है, वह समृद्धि को प्रदान करने वाला होता है। मूल भाग में तथा मध्य भाग में जो लिङ्ग एक समान रहता है, वह सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। इन उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त जो लिङ्ग नहीं होते, वे असत् कहे जाते हैं, अर्थात् वे अपूजनीय लिङ्ग हैं। इस प्रकार ऊपर बताये गये प्रमाणों से रत्नमय, स्फटिकमय, मिट्टी का, शुभ काष्ठ का भी-जिस प्रकार की रुचि हो लिङ्ग स्थापित करना चाहिये।।२३-२५।।

।।दो सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।।२६३।।

अथ चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रतिमा के स्थापन की विधि और माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्। वद सूत यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः।।१।।

ऋषियों ने कहा-सूत जी! अब इन सभी देवताओं के प्रतिमा के स्थापन करने की प्रचलित विधि बतलाइये।।१।।

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्। कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणं च यथाक्रमम्।।२।।

चैत्रे वा फाल्गुने वाऽपि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।

माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्।।३।।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने। पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा।।४।।

दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी। आसु प्रतिष्ठा विधिवत्कृता बहुफला भवेत्।।५।।

सूत ने कहा-ऋषिवृन्द! अब में आप लोगों से देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की उत्तम विधि बतला रहा हूँ; साथ ही कुण्ड, मण्डप एवं वेदी इन सबों के प्रमाणों को भी क्रमानुसार बता रहा हूँ। चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख अथवा माघ इन मासों में सभी देवताओं की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने से मंगलदायी होती है। शुभकारी शुक्ल पक्ष में, जबकि दक्षिणायन बीत चला हो, अर्थात् उत्तरायण में, पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, दशमी, पूर्णमासी तथा त्रयोदशी तिथियाँ कल्याण देने वाली कही गई हैं। इनमें की गई विधिपूर्वक प्रतिष्ठा बहुत फल देने वाली होती है।।२-५।।

आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च। ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा।।६।।

हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा। अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते॥७॥
बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रयोऽप्येते शुभग्रहाः। एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रं च प्रशस्यते॥८॥

दोनों आषाढ़ नक्षत्र अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, दोनों उत्तरा, उत्तरा भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहणी, पूर्वभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती–ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि में प्रशस्त माने गये हैं। बुद्ध, बृहस्पति तथा शुक्र–ये तीनों ग्रह शुभकारी हैं। इन तीनों ग्रहों से शुभ दृष्टि में देखी गयी लग्न तथा नक्षत्र प्रशंसनीय हैं॥६–८॥

ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च।
निमित्तशकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाऽद्भुतादिकम्॥९॥
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते। लग्न ऋक्षेः प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम्॥१०॥
अयने विषुवे तद्वत्षडशीतिमुखे तथा। एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा॥११॥
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा। मुहूर्ते स्थापनं कुर्यात्पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः॥१२॥

ग्रह और तारा–इन दोनों का बल प्राप्त कर अर्थात् जब ग्रहों एवं ताराओं की शुभ दृष्टि हो, तथा ग्रहों की पूजा करके, शुभ निमित्त शकुनादि को प्राप्त कर अद्भुत आदि बुरे योगों को वर्जित रख, शुभ योग में शुभ स्थान पर क्रूर ग्रहों को वर्जित रख शुभ लग्न एवं शुभ नक्षत्रों में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कार्यों को करना चाहिये। अयन, विषुव और षडशीति (?) मुख इनमें विधिपूर्वक अनुष्ठान द्वारा स्थापना कार्य प्रशस्त माना गया है। विचक्षण मनुष्य को चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्त में शयन, श्वेत में उत्थापन तथा ब्राह्म में स्थापन करे॥९–१२॥

प्रासादस्योत्तरे वाऽपि पूर्वे वा मण्डपो भवेत्।
हस्तान्षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः॥१३॥
मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समन्ततः।
पञ्च सप्तापि चतुरः करान्कुर्वीत वेदिकाम्॥१४॥

अपने प्रासाद के पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मण्डप का निर्माण करना चाहिये। मण्डप सोलह हाथ का बनाना चाहिये तथा बारह हाथ का ही बनवाये, उसके मध्यभाग में वेदी हो, जो चारों ओर से समान तथा पाँच, सात, अथवा चार हाथ विस्तृत हो॥१३–१४॥

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः।
प्लक्षद्वारं भवेत्पूर्वं ग्राम्ये चौदुम्बरं भवेत्॥१५॥
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे। भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये॥१६॥
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात्सुशोभनम्।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत्पुष्पपल्लवशोभितम् ॥१७॥

चतुर्मुख मण्डप के चारों ओर चार तोरण बने हों, पूर्व दिशा में पाकड़ का द्वार हो, दक्षिण में

गूलर का हो, पश्चिम की ओर पीपल का तथा उत्तर का द्वार बरगद का बना हुआ हो। तोरण भूमि में एक हाथ प्रविष्ट हों तथा ऊँचाई में चार हाथ ऊँचे हों। भूतल भली-भाँति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। विविध प्रकार के वस्त्रों से तथा पुष्प और पल्लवों से उसे सुशोभित करे॥१५-१७॥

कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारिषु विन्यसेत्। अव्रणान्कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान्॥१८॥
चूतपल्लवसंछन्नान्सितवस्त्रयुगान्वितान्। सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान्॥१९॥
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः। ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः॥२०॥

इस प्रकार मण्डप निर्माण करने के उपरान्त चारों द्वारों पर छिद्रादि रहित आठ कलशों की स्थापना करनी चाहिये, जो देदीप्यमान सुवर्ण की भाँति कान्तियुक्त, आम के पल्लवों से आच्छादित, दो श्वेत वस्त्र से युक्त, सभी औषधियों एवं फलों से युक्त तथा चन्दन मिश्रित जल से पूरित हों। इस प्रकार कलश को सुसज्जित कर मण्डप के मध्य में स्थापित कर सुगन्धित द्रव्यादि द्वारा मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि की स्थापना करनी चाहिये॥१८-२०॥

ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य॥२१॥
गन्धधूपादिकं कुर्यात्स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्।
बलिं च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत्॥२२॥
ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः।
संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः शुभाः स्मृताः॥२३॥
तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः।

प्रथमतः सभी दिशाओं में लोकपालों के लिए ध्वजा की स्थापना करनी चाहिये। मण्डप के मध्य भाग में बादल के आकार की ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये, लोकपालों की पताका स्थापित करने के बाद उनके मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें गन्ध-धूपादि समर्पित करे तथा उन्हीं मन्त्रों द्वारा बलि भी दे। ब्रह्मा के लिए ऊपर तथा शेष वासुकि के लिए नीचे पूजा का विधान कहा गया है। संहिताओं में इन देवताओं के लिए जो मन्त्र आये हैं, वे मंगलकारी माने गये हैं, उन्हीं मन्त्रों द्वारा लोकपालों की चारों ओर पूजा करनी चाहिये। तीन रात, एक रात, पाँच रात अथवा सात रात का अधिवासन करना चाहिये॥२१-२४.५॥

त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा॥२४॥
अथवा सप्तरात्रं तु कार्यं स्यादधिवासनम्। एवं सतोरणं कृत्वा अधिवासनमुत्तमम्॥२५॥
तस्याप्युत्तरतः कुर्यात्स्नानमण्डपमुत्तमम्।
तदर्धेन त्रिभागेन(ण) चतुर्भागेन(ण) वा पुनः॥२६॥

इस प्रकार तोरण तथा अधिवासन करके उक्त मण्डप की उत्तर दिशा की ओर उत्तम स्नान

मण्डप का निर्माण करना चाहिये। इसका मान उक्त मण्डप के आधे भाग, तिहाई अथवा चौथाई भाग में होना चाहिये।।२५-२६।।

आनीय लिङ्गमर्चां वा शिल्पिनः पूजयेद्बुधः।
वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः।।२७।।
क्षमध्वमिति तान्ब्रूयाद्यजमानोऽप्यतः परम्।
देवं प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत्।।२८।।

सर्वप्रथम बुद्धिमान् पुरुष लिंग अथवा मूर्ति को लोकर वस्त्र, आभूषणादि द्वारा कारीगरों की अथवा उनकी, जो उसके परिचारक हैं, पूजा करे और तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि मेरे अपराधों को क्षमा करिये। तत्पश्चात् देवता को बिछौने पर लिटाकर उनकी नेत्रज्योति संपादित करे।।२७-२८।।

अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः। सर्वतस्तु बलिं दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसैः।।२९।।
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम्।
विप्राणां वाचनं कुर्याद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्।।३०।।

आगे मैं नेत्रों तथा लिंग के उद्धार का प्रकार संक्षेप में बता रहा हूँ। सर्वप्रथम चारों ओर पीली सरसों, घृत तथा खीर द्वारा बलि प्रदान करे, श्वेत पुष्पों से अलंकृत कर घृत एवं गुग्गुल से धूप कर ब्राह्मणों का आवाहन करना चाहिये और उन्हें अपनी शक्ति के अनुकूल दक्षिणा देनी चाहिये।।२९-३०।।

गां महीं कनकं चैव स्थापकाय निवेदयेत्।
लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः।।३१।।
ओंनमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः।।३२।।
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिःष्वपि स्मृतः।

गौ, पृथ्वी तथा सुवर्ण ये वस्तुएँ स्थापना करने वाले को देनी चाहिये। ब्राह्मण भक्तिपूर्वक इस मन्त्र द्वारा लक्षण करवायें। वह मन्त्र यह है, 'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः।' अर्थात् 'हे भगवान्! विष्णो! आप ही शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता एवं विश्वरूप हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं।'' उपर्युक्त मन्त्र सभी देवताओं की प्रतिमा के नेत्रज्योति संस्कार में उपयोगी माना गया है।।३१-३२.५।।

एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चने विलेखयेत्।।३३।।
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम्। वृद्ध्यर्थं कारयेद्विद्वानमङ्गल्यविनाशनम्।।३४।।
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः।
त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षणं स्याद्विभाजकम्।।३५।।
लेखात्रयं तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम्। न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वक्रं छेदवर्जितजम्।।३६।।

इस प्रकार देवेश को आमन्त्रित कर सुवर्ण द्वारा उनको चिह्नित करे। तदुपरान्त मांगलिक वाद्य, गीत एवं ब्राह्मणों की वेद ध्वनियों का समारोह करे। विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि के लिए इस अमङ्गल के विनाशक विधान का ऐसा उपक्रम करे। अब लिंग के लक्षणोद्धरण का प्रकार बता रहा हूँ। खूब स्वस्थ चित्त होकर लिंग के तीन भाग कर विभक्त करना चाहिये और आठ जव का अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करे, वे न तो बहुत मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों और न उनमें छिद्र हुआ हो।।३३-३६।।

निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत्।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथा मध्यमके न्यसेत्।।३७।।
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः।
लम्बयेत्सप्त रेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः।।३८।।
तावत्प्रलम्बयेद्विद्वान्यावद्भागचतुष्टयम्। भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमं ततः।।३९।।
रेखयोः सङ्गमे तद्वत्पृष्ठे भागद्वयं भवेत्। एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया।।४०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३२०२।।

ज्येष्ठ लिंग में जव के प्रमाण की निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये, उसके ऊपर उससे कुछ सूक्ष्म रेखा बनी हो। फिर बुद्धिमान् पुरुष आठ भाग करके तीन भागों को छोड़ दे और दोनों पार्श्वों में समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएँ चिह्नित करे। विद्वान् पुरुष चार भागों तक रेखाएँ चिह्नित करे, पाँचवें भाग के ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देना चाहिये। यहीं पृष्ठ भाग में रेखाओं का संगम होगा। इन दो रेखाओं के संगमस्थल पर पृष्ठदेश में दो भाग हो जायेंगे। संक्षेप में मैं यह लक्षण भी आप लोगों को बता चुका।।३७-४०।।

।।दो सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त।।२६४।।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा, प्रतिष्ठापकों की योग्यता, अधिवासन समारोह

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम्। स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः।।१।।

सूत ने कहा–ऋषिगण! अब मूर्तियों की रक्षा करने वाले तथा प्रतिष्ठा कराने वालों का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये।।१।।

सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः। पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः।।२।।
कृष्णसारमये देशे य उत्पन्नः शुभाकृतिः। शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः।।३।।
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः। ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः।।४।।

वह शारीरिक सभी अवयवों से सम्पूर्ण, वेदमन्त्रों का विशारद, पुराणों का जानने वाला, तत्वदर्शी, दम्भ एवं लोभ से रहित, कृष्णसारमृग के देश में उत्पन्न हुआ हो, मनोहर आकृति का हो। नित्य शौच (पवित्रता) तथा आचार में तत्पर रहता हो, पाखण्डों से अहित तथा निःस्पृह हो, मित्र और शत्रु में समता का व्यवहार करने वाला हो, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का प्रिय हो, तर्क, वितर्क एवं तत्वों का जानने वाला हो, वास्तुशास्त्र का पारगामी विद्वान् हो।।२-४।।

आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः। मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा।।५।।

ऐसा व्यक्ति प्रतिष्ठा कराने के लिए उपयुक्त होता है। आचार्य ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिये जो सर्वदा सभी प्रकार के दोषों से दूर रहता हो, मूर्ति की रक्षा करने वाले ब्राह्मणों को सत्कुलोत्पन्न तथा सरल स्वभाव का होना चाहिये।।५।।

द्वात्रिंशत्षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः। ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपा वः प्रकीर्तिताः।।६।।
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम्। गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत्।।७।।
पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन च। शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात्।।८।।

बत्तीस, सोलह अथवा आठ ब्राह्मण इस कर्म में आवश्यक होते हैं, वे सभी वेदों के पारगामी विद्वान् हों, ज्येष्ठ, मध्य तथा कनिष्ठ-इन तीन प्रकार के भेदों से इनकी तीन श्रेणियाँ रखी गई हैं। लिङ्ग अथवा मूर्ति-जिनकी स्थापना करनी हो, स्नानागार में लाकर गीत तथा मांगलिक शब्दों से उसे स्नान करावे, पंचगव्य, पंच कषाय, मृत्तिका, भस्म जल-इन सामग्रियों द्वारा चार वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें पवित्रता से स्नान करावें।।६-८।।

समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपो दिव्येति चापरः। यासां राजेति मन्त्रस्तु आपो हिष्ठेति चापरः।।९।।
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः।
प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन (ण) अभिवस्त्रेत्युदाहृतम्।।१०।।

ये चार मन्त्र इस प्रकार आरम्भ होते हैं, "समुद्र ज्येष्ठ······" "आपो दिव्य······" "या स्मं राजा······" तथा "आपो हिष्ठां······" इत्यादि। इस प्रकार देवता की प्रतिमा स्नान करा कर सुगन्धित द्रव्य तथा चन्दनादि से पूजा कर दो वस्त्रों से ढककर शयन करावे, यह वस्त्र से ढकने की विधि है।।९-१०।।

उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते। आभूरजेति च तथा रथे तिष्ठेति चापरः।।११।।

रथे ब्रह्मरथे वाऽपि घृतां शिल्पिगणेन तु। आरोप्य चाऽऽनयेद्विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत्॥१२॥
ततः प्रास्तीर्य शय्यायां स्थापयेच्छनकैर्बुधः।
कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत्प्राङ्मुखं ततः॥१३॥
ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम्। शिरोभागे तु देवस्य जपन्नेवं निधापयेत्॥१४॥

तदनन्तर उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते, इस मन्त्र का उच्चारण कर प्रतिमा को उठावे और 'आभूरजा', 'रथे तिष्ठ' इन दो मन्त्रों से रथ पर अथवा ब्रह्मरथ पर शिल्पियों द्वारा रखाकर विद्वान् पुरुष' 'आकृष्णेन……' इत्यादि मन्त्र द्वारा मूर्ति को मन्दिर में प्रवेश करावे और शय्या पर कुश तथा पुष्पों को बिछाकर बुद्धिमान् पूर्वाभिमुख कर धीरे से स्थापित करे। तदनन्तर वस्त्र अथवा सुवर्ण समेत निद्राकलश को देवता के शिरोभाग की ओर इस मन्त्र को जपते हुए स्थापित करावे॥११-१४॥

आपो देवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान्मातरोऽपि च।
ततो दुकूलपट्टैश्च च्छाद्य नेत्रोपधानकम्॥१५॥
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः।
मधुना सर्पिषाऽभ्यज्य पूज्य सिद्धार्थैस्ततः॥१६॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण या ते रुद्र शिवेति च। उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः॥१७॥

वे मन्त्र ये हैं, "आपो देवो……" "आपोऽस्मान् मातरो……" इत्यादि। तदनन्तर रेशमी वस्त्र द्वारा नेत्रोपधाम (?) को ढँक दे अथवा विचक्षण पुरुष को चाहिये कि वह रेशमी वस्त्र को ही देवता की प्रतिमा के शिर के नीचे रख दे। फिर मधु और घृत द्वारा स्नान करा कर पीली सरसों से पूजा कराकर 'आप्यायस्व', इस मंत्र से तथा 'या ते रुद्रे शिवा' इस मन्त्र को अनन्य भाव से चारों ओर से सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्पादि से पूजा करे॥१५-१७॥

सितं प्रतिसरं दद्याद्बार्हस्पत्येति मन्त्रतः। दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापि वा॥१८॥
आच्छाद्य देवं सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम्। पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानं पुष्पसंयुतम्॥१९॥
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च। भाजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च॥२०॥
अभि त्वा शूर मन्त्रेण यथा विभवतो न्यसेत्।
क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वद्भक्ष्यभोज्यान्नपायसैः॥२१॥
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत्समन्तात्परिपूजयेत्। बलिं दद्यात्प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः॥२२॥

फिर 'बार्हस्पत्य' मन्त्र द्वारा श्वेत वर्ण का सूत का बना हुआ हाथ का कंगन अर्पित करे। तदनन्तर रेशमी सूती अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र वस्त्रों द्वारा प्रतिमा को भली-भाँति ढँक कर अगल-बगल में छत्र, चामर, दर्पण आदि सामग्रियाँ रखे और पुष्प युक्त चँदोवा स्थापित करे। विविध प्रकार के रत्न, औषधियाँ-अन्य घरेलू वस्तुएँ, विचित्र प्रकार के पात्र, शय्या, आसनादि सामग्रियाँ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुरूप 'अभित्वा शूर' इस मन्त्र का जप करते हुए रखे। दुग्ध,

मधु, घृत आदि खाद्य सामग्रियों को छहों प्रकार के रसों से संयुक्त अन्नादि एवं दुग्ध की बनी हुई अन्य वस्तुओं को भी चारों ओर रखकर पूजा करे, फिर इस मन्त्र का जप करते हुए प्रचुर परिमाण में बलि दे।।१८-२२।।

त्र्यम्बकं यजामह इति सर्वतः शनकैर्भुवि। मूर्तिमान्स्थापयेत्पश्चात्सर्वदिक्षु विचक्षणः।।२३।।
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत्। श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम्।।२४।।
तथा च शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च।
रक्षोघ्नं च तथा सूक्तं पूर्वतो बह्वृचो जपेत्।।२५।।

वह मन्त्र यह है ''त्र्यम्बकं यजामहे', इत्यादि, इस मन्त्र का धीरे-धीरे जाप हो। तदनन्तर विचक्षण पुरुष सभी दिशाओं में मूर्ति की रक्षा करने वालों को नियुक्त करे। चारों द्वारों पर चार द्वारपालों को नियुक्त करे। श्री सूक्त, पावमान, सुमंगलदाई सोमसूक्त, शान्तिकाध्याय, इन्द्रसूक्त, रक्षोघ्न इन ऋचाओं को पूर्व दिशा से बह्वच् जप करे।।२३-२५।।

रौद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम्। तथैव मण्डलाध्यायमध्वर्युर्दक्षिणे जपेत्।।२६।।
वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम्। तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम्।।२७।।
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत्।
अथर्वाङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च।।२८।।
तथाऽपराजितादेवीसप्तसूक्तं सरौद्रकम्। तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत्।।२९।।

रौद्र, पुरुष सूक्त, सशुक्रिय श्लोकाध्याय तथा मण्डलाध्याय को अध्वर्यु दक्षिण दिशा में जप करे। वामदेव्य, बृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, शान्ति समेत रुद्रसूक्त तथा भारुण्ड साम को छन्दोग पश्चिम दिशा में जप करे। इसी प्रकार अथर्वाङ्गिरस नील, रौद्र, रौद्रक समेत अपराजित देवी के सप्त सूक्त तथा शान्तिकाध्याय को अथवा उत्तर दिशा में जप करे।।२६-२९।।

शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत्।
शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः।।३०।।
पलाशोदुम्बराश्वत्था अपामार्गः शमी तथा। हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत्।।३१।।

देव प्रतिमा के शिरोभाग की ओर स्थापक व्याहृतिपूर्वक, शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हवन करे। पलाश, गूलर, पीपल, अपामार्ग (चिरचिरा) तथा शमी-इन सबकी एक सहस्र लकड़ियों में से एक-एक को छोड़ते हुए देवता के पैर का स्पर्श करे।।३०-३१।।

ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः। नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेत्पुनः।।३२।।
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम्। समेखलेषु ते कुर्युर्योनिवक्त्रेषु चाऽऽदरात्।।३३।।
वितस्तिमात्रा योनिः स्याद्गजोष्ठसदृशी तथा।
आयता छिद्रसंयुक्ता पार्श्वतः कलयोच्छ्रिता।।३४।।

कुण्डात्कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला। विस्तारेणोच्छ्रयात्तद्वच्चतुरस्रा समा भवेत्॥३५॥

इसी प्रकार प्रत्येक बार-एक-एक सहस्र हवन कर लेने के उपरान्त नाभि, मध्य, वक्षःस्थल और शिरोभाग का स्पर्श करता जाय। इस प्रकार एक हाथ के बने हुए मेखलायुक्त योनिमुख कुण्ड के ऊपर सभी दिशाओं में बैठे हुए मूर्तिस्थापकगण आदरपूर्वक हवन करें। वह योनि एक वित्ते की हो और हाथी के ओंठ के समान हो। आयताकार हो, छिद्रयुक्त हो, इधर-उधर दोनों ओर से कलायुक्त तथा ऊँची बनी हो। यह योनिकुण्ड के चारों ओर चार अंगुल ऊँची तथा उतनी ही विस्तृत और समान रूप से बनानी चाहिये तथा चतुरस्र और कलापूर्ण भी होनी चाहिये।।३२-३५।।

वेदिभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरङ्गुलैः। एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणं चैव दृश्यते॥३६॥

आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तये लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा॥३७॥

तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः। वसुधा वसुरेताश्च यजमानो दिवाकरः॥३८॥

जलं वायुस्तथा सोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेता कुण्डेषु संस्मरेत्॥३९॥

वेदी की भित्ति से तेरह अंगुल छोड़कर नवकुण्ड दूसरे बनाने चाहिये, उनसबों के भी लक्षण यही हैं, जो ऊपर वाले कुण्ड के हैं। अग्निकोण, पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशा में उत्तर की ओर मुखकर हवन करना चाहिये। शान्ति के लिए होता सावधान चित्त हो लोकपालों के लिए मूर्तियों के लिए तथा मूर्तियों के अधिदेवताओं के लिए क्रमशः हवन करे। वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम तथा आकाश-ये आठ देवताओं की मूर्तियाँ हैं, जिनका कुण्ड में स्मरण करे।।३६-३९।।

एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
पृथ्वीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च॥४०॥

यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चाऽऽदित्यमेव च। भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च॥४१॥

महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाऽऽकाशमेव च। सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येत एव च॥४२॥

एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत्। तथा शान्तिघटं कुर्यात्प्रतिकुण्डेषु सर्वतः॥४३॥

शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते।
समपादः पृथिव्यां तु प्रशान्तात्मा विनिक्षपेत्॥४४॥

आहुतीनां सु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत्। मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत्॥४५॥

स्थितं च स्नापयेत्तेन सम्पाताहुतिवारिणा। प्रतियामेषु धूपं तु नैवेद्यं चन्दनादिकम्॥४६॥

पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः। पुनःपुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा॥४७॥

सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः। विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्राङ्गुलीयकैः॥४८॥

वासोभिः शयनीयैश्च प्रतियामे च शक्तितः। भोजनं चापि दातव्यं यावत्स्यादधिवासनम्।।४९।।

अब इनके अधिपों की मूर्तियों के नामों को कह रहा हूँ, जो अति पवित्र है। शर्व सर्वदा पृथ्वी का पालन करते हैं, इसी प्रकार पशुप अग्नि की, उग्र यजमान की, रुद्र आदित्य की, भव जल की, ईशान वायु की, महादेव चन्द्रमा की और भीम आकाश की रक्षा करते हैं। सभी देवताओं की प्रतिष्ठा में ये ही मूर्तिप माने गये हैं। इनके लिए अपनी सामर्थ्य के अनुकूल वैदिक मन्त्रों द्वारा हवन करे, तथा प्रत्येक कुण्डों के लिए सभी ओर से शान्ति घटों की स्थापना करे। सौ आहुति अथवा सहस्र आहुति कर लेने के बाद सम्पूर्णाहुति करनी चाहिये, उस समय पृथ्वी के समान भाव से पद रखे हुए होता शान्तचित्त से सम्पूर्णाहुति को छोड़े और इन सभी आहुतियों के संपात को पूर्ण कुम्भों के ऊपर छोड़े, मूल, मध्य एवं सिर, इन अंगों में प्रतिमा के उसी के जल द्वारा सेवन करे और इसी आहुति के जल द्वारा वहाँ के कल्पित देवतागणों को स्नान कराये। प्रत्येक प्रहर के अन्त में पुनः-पुनः धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दनादि द्वारा पूजा किया करे तथा उसी प्रकार पुनः-पुनः हवन भी प्रारम्भ करे। इसी प्रकार यजमान को पुनः-पुनः दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये। उन सब को श्वेत वस्त्र द्वारा पूजित करना चाहिये, विचित्र प्रकार के बने हुए सुवर्ण के कटक, सुवर्ण की जंजीर तथा अंगूठी आदि विविध वस्त्रादि, शय्यासन आदि को भी प्रत्येक प्रहर में अपनी सामर्थ्य के अनुसार देते रहना चाहिये। जब तक अधिवासन न हो जाय, तब तक भोजन दान भी देना चाहिये। सामान्य जीवों के लिए सभी दिशाओं में तीनों सन्ध्याओं के अवसर पर बलिदान भी देना चाहिये।।४०-४९।।

बलिस्त्रिसन्ध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतोदिशम्। ब्राह्मणान्भेजयेत्पूर्वं शेषान्वर्णांस्तु कामतः।।५०।।
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः। सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्मयावता।।५१।।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा। सप्तरात्रमथो कुर्यात्क्वचित्सद्योऽधिवासनम्।।
सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा।।५२।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिवासनविधिर्नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३२५४।।
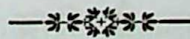
पहले ब्राह्मणों को भोजन कराये फिर अन्य वर्ण वालों को भी अपनी इच्छानुरूप भोजन कराये। रात्रि के सयम गीत, वाद्यादि को कराते हुए महान् उत्सव मनाना चाहिये, इस प्रकार जब तक चतुर्थी कर्म न हो जाय, तब तक प्रयत्न पूर्वक पूजा करते रहना चाहिये। तीन रात, एक रात अथवा यदि हो सके तो पाँच रात या सात रात तक अधिवासन करे, कहीं-कहीं सर्वदा अधिवासन किया जाता है; क्योंकि यह अधिवासन विधि सर्वदा सभी यज्ञों के फलों को देने वाली है।।५०-५२।।

।।दो सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त।।२६५।।

अथ षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवायतन का निर्माण किस प्रकार हो, एक ही आयतन में अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की विधि, शान्ति के उपाय

सूत उवाच

कृत्वाऽधिवासं देवानां शुभं कुर्यात्समाहितः। प्रासादस्यानुरूपेण मानं लिङ्गस्य वा पुनः॥१॥
पुष्पोदकेन प्रासाद्र प्रोक्ष्य मन्त्रयुतेन तु। पातयेत्पक्षसूत्रं तु द्वारसूत्रं तथैव च॥२॥

सूत ने कहा-इस प्रकार उपर्युक्त विधि से देवताओं की प्रतिमा के शुभकारी अधिवासन कर्म को करने के उपरान्त एकाग्रचित्त से यजमान प्रासाद के अनुरूप लिंग का अथवा लिंग के अनुरूप प्रासाद के मान का निरूपण करे। पुष्पमिश्रित जल से मन्दिर को धोकर मन्त्रोचारण करते हुए पक्षसूत्र तथा द्वारसूत्र को गिरावे अर्थात् नापे।।१-२।।

आश्रयेत्किञ्चिदीशानीं मध्यं ज्ञात्वा दिशं बुधः। ईशानीमाश्रितं देवं पूजयन्ति दिवौकसः॥३॥
आयुरारोग्यफलदमथोत्तरसमाश्रितम्। शुभं स्यादशुभं प्रोक्तमन्यथा स्थापनं बुधैः॥४॥

अधः कूर्मशिला प्रोक्ता सदा ब्रह्मशिलाधिका।
उपर्यवस्थिता तस्या ब्रह्मभागाधिका शिला॥५॥
ततस्तु पिण्डिका कार्या पूर्वोक्तैर्मानलक्षणैः।
ततः प्रक्षालितां कृत्वा पञ्चगव्येन पिण्डिकाम्॥६॥

कषायतोयेन पुनर्मन्त्रयुक्तेन सर्वतः। देवतार्चाश्रयं मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजयेत्॥७॥

बुद्धिमान् पुरुष मध्यभूमि जानकर कुछ ईशानकोण को आश्रय देना चाहिये; क्योंकि ईशानी दिशा में अवस्थित भगवान् शङ्कर की पूजा देवतागण करते हैं। उत्तर दिशा में अधिष्ठित देवता आयु तथा आरोग्य का फल देने वाले गये हैं और कल्याणकारी हैं। बुद्धिमानों ने इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओं की स्थापना को अशुभकारी बताया है। लिङ्ग के नीचे कूर्मशिला की स्थापना करनी चाहिये, यह ब्रह्मशिला की अपेक्षा बड़ी तथा गम्भीर होती हैं। उस कूर्मशिला के ऊपर ब्रह्मभाग से अधिक ब्रह्मशिला स्थापित होती है। उसके ऊपर पहले बताये गये परिमाणों के अनुसार पिण्डिका की स्थापना करनी चाहिये। सर्वप्रथम पञ्चगव्य द्वारा पिण्डिका को विधिवत् धोकर पुनः पञ्चकषाय के जल से मन्त्रोचारण पूर्वक उत्तमरीति से प्रक्षालन करे और देव प्रतिमा के आश्रय वाले मन्त्र से पिण्डिका को अभिमन्त्रित करे।।३-७।।

तत उत्थाप्य देवेशमुत्तिष्ठ ब्रह्मणेति च। आनीय गर्भभवनं पीठान्ते स्थापयेत्पुनः॥८॥
अर्घ्यपाद्यादिकं तत्र मधुपर्कं प्रयोजयेत्। ततो मुहूर्तं विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत्॥९॥

बज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च। पुष्परागेन्द्रनीलं च नीलं पूर्वादिदिक्क्रमात्॥१०॥
तालकं च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च।
काक्षी काशीसमाक्षीकं गैरिकं चाऽऽदितः क्रमात्॥११॥
गोधूमं च यवं तद्वत्तिलमुद्गं तथैव च। नीवारमथ श्यामाकं सर्षपं व्रीहिमेव च॥१२॥
न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम्। अगरुं चाञ्जनं चापि उशीरं च ततः परम्॥१३॥
वैष्णवीं सहदेवीं च लक्ष्मणां च ततः परम्। स्वर्लोकपालनाम्ना तु न्यसेदोंकारपूर्वकम्॥१४॥

तदुपरान्त 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणा.....' इत्यादि मन्त्र से उसे उक्त स्थान से उठाकर मण्डप के मध्य भवन में जहाँ पीठिका रहती है, उसे स्थापित करे। अर्घ्य, पाद्य एवं मधुपर्क समर्पित करे, फिर एक मुहूर्त तक विश्राम करके रत्नों का न्यास करे। वज्र, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, स्फटिक, पुखराज, इन्द्रनील और नील-इन रत्नों को पूर्व दिशा के क्रम में स्थापित करे। फिर तालक (हरताल), शिलावज्र ? (शिलाजतु), अञ्जन, श्याम, काक्षी, (मुल्तानी मिट्टी) काशी, (.......) माक्षीक (मधु) और गेरु-इन सबको आदि के क्रम से पूर्वादि दिशाओं में रखे। गेहूँ, जव, तिल, मूँग, नीवार (तीनी) सावाँ, सरसों और चावल इन सबको भी पूर्वादि दिशा के क्रम से रखकर चन्दन, लालचन्दन, अगुरु, अञ्जन, उशीर, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, लक्ष्मणा (श्वेत कटहली) इन्हें पूर्वादि दिशाओं में क्रम से स्थापित करे। प्रत्येक दिशाओं में उस दिशा के लोकपाल का नाम ओंकारोच्चारण के साथ ले लेना चाहिये।।८-१४।।

सर्वबीजानि धातूंश्च रत्नान्योषधयस्तथा। काञ्चनं पद्मरागं तु पारदं पद्ममेव च॥१५॥
कूर्मं धरां वृषं तत्र न्यसेत्पूर्वादितः क्रमात्।
ब्रह्मस्थाने तु दातव्याः संहता; स्युः परस्परम्॥१६॥
कनकं विद्रुमं ताम्रं कांस्यं चैवाऽऽरकूटकम्। रजतं विमलं पुष्पं लोहं चैव क्रमेण तु॥१७॥
काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत्। दद्याद्बीजौषधिस्थाने सहदेवीं यवानपि॥१८॥

फिर सभी प्रकार के बीज, सभी धातु, सभी प्रकार के रत्न, औषधियाँ, सुवर्ण, पद्मराग, पद्म, कूर्म, पृथ्वी तथा वृषभ-इन सबको भी पूर्वादि दिशाओं के क्रम से स्थापित करना चाहिये, ब्रह्मा के स्थान पर सभी वस्तुएँ परस्पर समुदित रूप में रखनी चाहिये। सुवर्ण, विद्रुम, ताँबा, काँसा, पीतल, चाँदी, निर्मल पुष्प और लोह-इन सबको भी क्रम से रखे। इन सभी वस्तुओं के अभाव में सुवर्ण और हरिताल को रखा जा सकता है। यदि कोई बीज और नहीं मिल रही है, तो उसके स्थान पर सहदेवी जव रखा जा सकता है।।१५-१८।।

न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह।
इन्द्रस्तु महसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान्॥१९॥
वज्रहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः। आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयः शिखी॥२०॥

धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः। यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक्सदा॥२१॥

धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः।

निर्ऋतिस्तु पुमान्कृष्णः सर्वरक्षोधिपो महान्॥२२॥

खड्गहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः।

अब न्यास करने के लिए प्रत्येक लोकपालों के क्रम से मन्त्रों को बतला रहा हूँ। पूर्व दिशा का स्वामी अति तेज से देदीप्यमान सभी देवताओं का अधिपति इन्द्र है, उसके हाथ में वज्र शोभित है, महापराक्रमी है, उसे नित्य बारम्बार प्रणाम है। सर्वदेवमय ज्वाला विभूषित आग्नेय पुरुष का वर्ण लाल है, धूम उसका केतु है, सभी शक्तियों से वह अनाधृष्य है, उसे नित्य के लिये प्रणाम है, प्रणाम है। दक्षिण दिशा का स्वामी यमराज कमल के वर्ण के समान है, किरीट धारण करने वाला है, सर्वदा दण्ड धारण किये रहता है, धर्म का साक्षी है, विशुद्धात्मा है, उसे नित्य बारम्बार प्रणाम है, निर्ऋति पुरुष कृष्णवर्ण का है, सभी राक्षसों का अधिपति है, खड्गहस्त है, महापराक्रमी है, उसे नित्य प्रणाम है।।१९-२२.५।।

वरुणो धवलो विष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः॥२३॥

पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः। वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः॥२४॥

पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्यं नमो नमः।

गौरो यश्च पूमान्सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः॥२५॥

नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः।

पश्चिम का स्वामी वरुण पुरुष श्वेतवर्ण का है, विष्णुस्वरूप है, नदियों का स्वामी है, उसके हाथ में पाश विराजमान है, वह विशाल बाहुओं वाला है, उसे हमारा नित्य का प्रणाम है। वायु पुरुष सर्व वर्ण है, सभी प्रकार के गन्ध को धारण करने वाला है, उसके हाथों में ध्वजा विराजमान है, उसे हमारा नित्य का प्रणाम है। जो सोम पुरुष गौरवर्ण का, सौम्य आकृति का तथा सभी औषधियों से समन्वित है तथा नक्षत्रों का अधिपति है, उसे नित्य का प्रणाम है।।२३-२५.५।।

ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान्॥२६॥

शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः। पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः॥२७॥

यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः।

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥२८॥

पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः। ओंकारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने॥२९॥

ईशान पुरुष शुक्ल वर्ण का, सभी विद्याओं का अधिपति तथा महान् है, उसके हाथ में शूल विराजमान है, विरूपाक्ष है, उसे नित्य प्रणाम है। जो पद्मयोनि है, चार मूर्ति वाला है, वेद जिसके वस्त्र स्वरूप हैं, ऐसे पितामह, यज्ञाध्यक्ष, चतुर्मुख ब्रह्मा को हमारा बारम्बार प्रणाम है। जो अपने

अनन्त स्वरूप द्वारा निखिल चराचर ब्रह्माण्ड को पुष्प की भाँति मस्तक पर धारण किये रहता है, उसे हम नित्य प्रणाम करते हैं। ये उपर्युक्त मन्त्र न्यास तथा बलि देते समय ओंकार समेत कहने चाहिये।।२६-२९।।

मन्त्राः स्युः सर्वकार्याणां वृद्धिपुत्रफलप्रदाः।
न्यासं कृत्वा तु मन्त्राणां पायसेनानुलेपितम्।।३०।।

पटेनाऽऽच्छादयेच्छ्वभ्रं शुक्लेनोपरि यत्नतः। तत उत्थाप्य देवेशमिष्टदेशे तु शोभने।।३१।।

ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण श्वभ्रोपरि निवेशयेत्।
ततः स्थिरीकृतस्यास्य हस्तं दत्त्वा तु मस्तके।।३२।।

ध्यात्वा परमसद्भावाद्देवदेवं च निष्कलम्। देवव्रतं तथा सोमं रुद्रसूक्तं तथैव च।।३३।।
आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम्। यस्य देवस्य यद्रूपं तद्ध्याने संस्मरेत्तथा।।३४।।

सभी कार्यों में ये मन्त्र समृद्धि तथा पुत्र का फल देने वाले कहे गये हैं। इन सम्पूर्ण मन्त्रों द्वारा न्यास करके घृत से लेपन की हुई शुभ्र प्रतिमा को श्वेत वस्त्र द्वारा यत्नपूर्वक ऊपर से आच्छादित कर दे। तदनन्तर देवेश को उठाकर शुभ इष्ट देश में अर्थात् जहाँ स्थापित करना है, वहाँ "ध्रुवा द्यौः ..... " इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए छिद्र पर स्थापित करे और स्थित करके हाथ को मस्तक से संयुक्त कर अपने को परब्रह्म का अंश मानकर जिस देवता का जैसा स्वरूप हो, वैसा ही उसका ध्यान करे।।३०-३४।।

अतसीपुष्पसङ्काशं शङ्खचक्रगदाधरम्। संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम्।।३५।।
अक्षरं दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम्। गणेशं वृषसंस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम्।।३६।।
ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम्। पितामहं महाबाहुं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम्।।३७।।
सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसंयुतम्। पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम्।।३८।।

अलसी के पुष्प के समान नीलेवर्ण के, शङ्ख-चक्र और गदाधारी देवेश जनार्दन भगवान् विष्णु को मैं देवरूप होकर स्थापित कर रहा हूँ। इसी प्रकार कभी नष्ट न होने वाले दस बाहु से सुशोभित अर्द्धचन्द्र द्वारा सिर पर अलंकृत गणों के स्वामी वृषभारूढ़ त्रिलोचन को स्थापित कर रहा हूँ। ऋषिगण जिसकी स्तुति किया करते हैं, ऐसे चार मुखोंवाले, जटाधारी, महाबाहु, कमलोद्भव ब्रह्मा की स्थापना करता हूँ। सहस्र किरणों से सुशोभित, शान्त, अप्सराओं के समूहों से संयुक्त पद्महस्त, महाबाहु वाले दिवाकर की स्थापना कर रहा हूँ।।३५-३८।।

देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान्रुद्रस्य स्थापने जपेत्।
विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वद्ब्राह्मान्वै ब्रह्मणो बुधः।।३९।।

सौराः सूर्यस्य जप्तव्यस्तथाऽन्येषु तदाश्रयाः। वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनौ।।४०।।

रुद्र की स्थापना करते समय रौद्र मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। इसी प्रकार बुद्धिमान्

पुरुष को विष्णु की स्थापना के समय वैष्णव मन्त्रों का तथा ब्रह्मा की स्थापना के समय ब्राह्म मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। सूर्य की स्थापना के समय सौर मन्त्रों का जप करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य देवताओं की स्थापना के समय उन्हीं के मन्त्रों का जप करना चाहिये; क्योंकि वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए जो प्रतिमा की प्रतिष्ठा होती है, वह आनन्ददायिनी है।।३९-४०।।

स्थापयेद्यं तु देवेशं तं प्रधानं प्रकल्पयेत्। तस्य पार्श्वस्थितानन्यान्संस्मरेत्परिवारितः।।४१।।
गणं नन्दिमहाकालं वृषं भृङ्गिं रिटिं गुहम्। देवीं विनायकं चैव विष्णुं ब्रह्माणमेव च।।४२।।
रुद्रं शक्रं जयन्तं च लोकपालान्समन्ततः। तथैवाप्सरसः सर्वा गन्धर्वगणगुह्यकान्।।४३।।
यो यत्र स्थाप्यते देवः तस्य तान्परितः स्मरेत्। आवाहयेत्तथा रुद्रं मन्त्रेणानेन यत्नतः।।४४।।

जिस देवतांश की प्रतिमा प्रमुख रूप से प्रतिष्ठापित की जाती है, वही प्रधान देवता माने जाते हैं, उनके अगल-बगल में स्थित जो अन्य देवता प्रतिष्ठापित होते हैं, उन्हें सामूहिक रूप से स्मरण करना चाहिये। गण, नन्दिकेश्वर, महाकाल, वृषभ, भृङ्गिरिटि, गुह, (स्वामिकार्तिकेय) देवी, विनायक (गणेश) विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जयन्त, लोकपाल, अप्सराओं के समूह, गन्धर्वों के समूह, यक्षगण, इनमें से सभी को उस जगह में अगल-बगल स्थापित करना चाहिये, जहाँ प्रमुख देवता की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई हो। फिर इस मन्त्र द्वारा यत्नपूर्वक रुद्र का आवाहन करना चाहिये।।४१-४४।।

यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रभूतास्तथोरगाः।
ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः।।४५।।
प्रियो गणो मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः।
नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः।।४६।।

तमहं त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम्। आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम्।।४७।।
आगच्छ भगवन्रुद्रानुग्रहाय शिवो भव। शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः।।
ओं नमः स्वागतं भगवते नमः, ओं नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु।।४८।।

जिस भगवान् शंकर के रथ में सिंह तथा व्याघ्र जुड़े हुए हैं, तथा उरग, ऋषिगण, लोकपालवृन्द, देव, स्कन्द, वृष, प्रियगण, मातृकाएँ, चन्द्रमा, विष्णु, पितामह, ब्रह्माजी, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिव्य नभचरगण जिसके पार्षद हैं, उन तीन नेत्रों वाले, ईशान, वृषभध्वज, रुद्र, उमापति को गणों समेत तथा पत्नी पार्वती समेत मैं आवाहन कर रहा हूँ। हे भगवन्। यहाँ आइये, मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये एवं कल्याणकारी होइए, शाश्वत फल देने वाले होइये एवं मेरी दी हुई पूजा को ग्रहण कीजिये, तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।।४५-४८।।

भगवन्मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाऽभिहितं नमो नमः स्वाहा।।४९।।
ततः पुण्याहघोषेण ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः। स्नापयेत्तु ततो देवं दधिक्षीरघृतेन च।।५०।।

मधुशर्करया तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन च। शिवध्यानैकचित्तस्तु मन्त्रानेतानुदीरयेत्॥५१॥

मन्त्र, "ॐ नमः स्वागतं भगवते नमः, ॐ नमः सोमाय, सगणाय, सपरिवाराय, प्रतिगृह्णातु, भगवन्। मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा" अर्थ – हे भगवन्! आपका शुभागमन हो, हे सोम! आप गणों तथा अपने परिवार वर्ग के साथ मन्त्र द्वारा पवित्र तथा ब्रह्मा द्वारा अभिनन्दित इस सकल अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसन को ग्रहण करें। आपको मैं प्रणाम करता हूँ।' तदनन्तर पुण्य दिन का उच्चारण करते हुए एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि कराते हुए, प्रतिष्ठाप्य मूर्ति को दही, क्षीर, घृत, मधु, शक्कर, पुष्प एवं सुगन्धित जल द्वारा एकाग्रचित से शिव का ध्यान करते हुए अभिसिंचित करना चाहिये।।४९-५१।।

यज्जाग्रतो दूरमुदेति ततो विराडजायत इति च॥ सहस्त्रशीर्षा पुरुष इति च॥ अभि त्वा शूर नोनुम इति च॥ पुरुष एवेदं सर्वमिति॥ त्रिपादूर्ध्वमिति॥ येनेदं भूतमिति॥

नत्वा वाँ अन्य इति॥५२॥

सर्वांश्चैतान्प्रतिष्ठासु मन्त्राञ्जाप्त्वा पुनः पुनः।

चतुष्कृत्वः स्पृशेदद्भिर्मूले मध्ये शिरस्यपि॥५३॥

स्थापिते तु ततो देवे यजमानोऽथ मूर्तिपग्।

आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥५४॥

उस समय इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। वह मन्त्र इस प्रकार प्रारम्भ होते हैं। 'यज्जाग्रतो दुरमूदेति....' ततो विराडजायत....", 'सहस्त्रशीर्षापुरुष.....", 'अभित्वाशूर नोनुम.....', 'पुरुष एवेदं सर्वं....., 'त्रिपादूर्ध्वम्......", 'येनेदं भूतम्.....", 'नत्वा वाँ अन्य.....", इत्यादि। इन उपर्युक्त मन्त्रों को बारम्बार जपते हुए चार बार प्रतिमा के मूल भाग, मध्य भाग तथा शिरोभाग में स्पर्श करे। इस प्रकार स्थापित हो जाने पर यजमान मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने वाले विद्वान् पुरुष की, तथा आचार्य की वस्त्र अलंकार एवं आभूषणों से पूजा करे।।५२-५४।।

दीनान्धकृपणांस्तद्वद्ये चान्ये समुपस्थिताः। ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत्॥५५॥

हरिद्रयाऽथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्त्वतः। चन्दनेन यवैस्यद्वत्तृतीयेऽहनि लेपयेत्॥५६॥

मनः शिलाप्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत्।

दीन, अन्ध, कृपण तथा अन्य लोग जो वहाँ उपस्थित हो, उन सबको भी सन्तुष्ट करे। तदनन्तर प्रथम दिन प्रतिमा का मधु से लेपन करे। इसी प्रकार दूसरे दिन हल्दी तथा सरसों से, तीसरे दिन चन्दन और जव से, चौथे दिन, मैनशिल तथा प्रियंगु से लेपन करे; क्योंकि यह लेपन सौभाग्य तथा मंगल को देने वाला, व्याधियों का विनाशक एवं मनुष्यों को परमप्रीति को प्रदान करने वाला है, ऐसा वेदों के जानने वाले जानते हैं।।५५-५६.५।।

सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम्॥५७॥

परं प्रीतिकरं नृणामेतद्वेदविदो विदुः। कृष्णाञ्जनं तिलं तद्वत्पञ्चमेऽपि निवेदयेत्॥५८॥
षष्ठे तु सघृतं दद्याच्चन्दनं पद्मकेसरम्। रोचनागरुपुष्पं तु सप्तमेऽहनि दापयेत्॥५९॥
यत्र सद्योधिवासः स्यात्तत्र सर्वं निवेदयेत्। स्थितं न चालयेद्देवमन्यथा दोषभाग्भवेत्॥६०॥

इसी प्रकार पाँचवें दिन काले अंजन तथा तिल से, छठें दिन घृत समेत चन्दन व पद्मकेसर से, सातवें दिन रोचना, अगरु तथा पुष्प से लेपन करना चाहिये। जिस मूर्ति की स्थापना में शीघ्र ही अधिवासन हो जाय, वहाँ इन सबको एक साथ ही लेपन में देना चाहिये। अवस्थित हो जाने पर प्रतिमा को अपने स्थान से विचलित नहीं करना चाहिये। विचलित करने वाला दोषभागी होता है।।५७-६०।।

पूरयेत्सिकताभिस्तु निश्छिद्रं सर्वतो भवेत्।
लोकपालस्य दिग्भागे यस्य सञ्चलते विभुः॥६१॥
तस्य लोकपतेः शान्तिर्देयाश्चेमाश्च दक्षिणाः।
इन्द्राय वारणं दद्यात्काञ्चनं चाल्पवित्तवान्॥६२॥
अग्नेः सुवर्णमेव स्याद्यमस्य महिषं तथा।

जहाँ कहीं छिद्र हो, वहाँ बालू लेकर मूँद देना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक छिद्ररहित कर देना चाहिये। स्थापना के बाद यदि किसी लोकपाल की दिशा की ओर देव की प्रतिमा अपने आप विचलित हो जाती है तो उस लोकपाल की शान्ति करानी चाहिये तथा निम्नलिखित नियम के अनुसार उनको प्रसन्न करने के लिए दक्षिणाएँ देनी चाहिये। इन्द्र की शान्ति के लिए हाथी देना चाहिये, निर्धन मनुष्य सुवर्ण दे। अग्नि के लिए तो सुवर्ण का ही दान करना चाहिये, यमराज के लिए महिष का दान करना चाहिये।।६१-६२.५।।

अजं च काञ्चनं दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति॥६३॥
वरुणं प्रति मुक्तानि सशुक्तीनि प्रदापयेत्।
रीतिकं वायवे दद्याद्मन्त्रयुग्मेन(ण) साम्प्रतम्॥६४॥
सोमाय धेनुर्दातव्या राजतं वृषभं शिवे।
यस्यां यस्यां सञ्चलनं शान्तिः स्यात्तत्र तत्र तु॥६५॥
अन्यथा तु भवेद्घोरं भयं कुलविनाशनम्।
अचलं कारयेत्तस्मात्सिकताभिः सुरेश्वरम्॥६६॥

नैर्ऋत राक्षस की शान्ति के लिए बकरा तथा सुवर्ण का दान करना चाहिये। वरुण के लिए सुतुहियों समेत मोतियों का दान करना चाहिये। वायु के लिए दो वस्त्रों समेत पीतल का दान करना चाहिये। चन्द्रमा के लिए गौ का दान तथा शिव के लिए चाँदी तथा वृषभ देना चाहिये। जिस दिशा में संकलन हो, उस-उस दिशा की शान्ति करानी चाहिये। शान्ति न कराने से कुल के विनाश का

घोर भय उपस्थित होता है। अतः बालू से प्रतिमा को ऐसा जकड़कर स्थापित करना चाहिये कि वह इधर-उधर विचलित न हो सके।।६३-६६।।

अन्नं वस्त्रं च दातव्यं पुण्याहजयमङ्गलम्।
त्रिपञ्च सप्तदश वा दिनानि स्यान्महोत्सवः।।६७।।
चतुर्थेऽह्नि महास्नानं चतुर्थीकर्म कारयेत्। दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रातिभक्तितः।।६८।।
देवप्रतिष्ठाविधिरेष तुभ्यं निवेदितः पापविनाशहेतोः।
यस्माद्बुधैः पूर्वमनन्तमुक्तमनेकविद्याधरदेवपूज्यम्।।६९।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३३२३।।

उक्त पुण्य दिन में अन्न तथा वस्त्र का दान करना चाहिए, पुण्यप्रद जय-जयकार एवं मांगलिक शब्दों का उच्चारण करवाना चाहिये। तीन, पाँच, सात, अथवा दस दिनों तक महान् उत्सव समारोह मनाना चाहिये। प्रतिष्ठा के चौथे दिन महास्नान तथा चतुर्थी कर्म कराना चाहिये, उक्त अवसर पर भी भक्तिपूर्वक भूरि दक्षिणा देनी चाहिये। ऋषिवृन्द! पाप के विनाशार्थ तुम लोगों को मैं देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की विधि बतला चुका, पण्डितों ने इस विषय को पूर्वकाल में ही अनेक विद्याधर तथा देवताओं से पूज्य एवं अनन्त फलदायी बतलाया है।।६७-६९।।

।।दो सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त।।२६६।।

अथ सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवप्रतिमा स्नान विधि

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम्। अर्घस्यापि समासेन शृणु त्वं विधिमुत्तमम्।।१।।
दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वास्तथा मधु। यवाः सिद्धार्थकस्तद्वदष्टाङ्गोऽर्घः फलैः सह।।२।।

सूत ने कहा-अब मैं देवप्रतिमा के उत्तम स्थान की विधि का वर्णन कर रहा हूँ एवं अर्घ्यदान की उत्तम विधि भी संक्षेप में सुना रहा हूँ, सुनो। दही, अक्षत, कुश के अग्रभाग, दुग्ध, दूर्वा, मधु, यव, सरसों तथा फल, ये आठ पदार्थ अर्घ के अंग माने गये हैं।।१-२।।

गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातमण्डलात्। अग्न्यागारात्तथा तीर्थाद् व्रजाद् गोमण्डलादपि।।३।।

कुम्भे तु मृत्तिकां दद्यादुद्द्धृताऽसीतिमन्त्रवित्।
शं नो देवीत्यपां मन्त्रमापो हिष्ठेति वै तथा॥४॥
सावित्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोति वै दधि॥५॥

तेजोऽसीति घृतं तद्वद्देवस्य त्वेति चोदकम्। कुशमिश्रं क्षिपेद्विद्वान्पञ्चगव्यं भवेत्ततः॥६॥
स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्ना शुद्धेन वै ततः। दधिक्राव्णोति मन्त्रेण कर्तव्यमभिमन्त्रणम्॥७॥

हाथी और घोड़ा के नीचे की, सड़क और बिल की, शूकर द्वारा गोड़े गये मण्डल की, अग्नि–कुण्ड के समीप की, तीर्थस्थान एवं गौओं के रुकने के समीप की मिट्टी के मन्त्रों का जानने वाला विद्वान् पुरुष कुम्भ में 'उद्धृताऽसि....' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए डाले। तत्पश्चात् 'शन्नो देवी.....' तथा 'आपोहिष्ठा' इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर जल को, गायत्री 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुवरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धीयो यो नः प्रचोदयात्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए गोमूत्र को, 'गन्धद्वार.....' मन्त्र द्वारा गोबर को, 'आप्यायस्व......' मन्त्र द्वारा दुग्ध को, 'दधिक्राव्ण.....' मन्त्र द्वारा दही को, 'तेजोऽसि.....' मन्त्र द्वारा घृत को, 'देवस्य त्वा......' इस मन्त्र द्वारा जल को, शुद्ध करके सबको मिश्रित करके कुश द्वारा छिड़के। तब वह पंचगव्य होता है, इस प्रकार पंचगव्य से स्नान कराने के उपरान्त और फिर दही द्वारा शुद्ध कर लेने पर, 'दधिक्राव्ण.....' इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करे॥३-७॥

आप्यायस्वेति पयसा तेजोऽसीति घृतेन च। मधुवातेति मधुना ततः पुष्पोदकेन च॥८॥
सरस्वत्यै भैषज्येन कार्यं तस्याभिमन्त्रणम्। हिरण्याक्षेति मन्त्रेण स्नापयेद्रत्नवारिणा॥९॥

कुशाम्भसा ततः स्नानं देवस्य त्वेति कारयेत्।
फलोदकेन च स्नानमग्न आयाहि कारयेत्॥१०॥

फिर 'आप्यायस्व....' इस मन्त्र का उच्चारण कर दुग्ध से, 'तेजोऽसि.....' इस मन्त्र द्वारा घृत से, 'मधुवात....' इस मन्त्र द्वारा मधु से तथा पुष्पमिश्रित जल से और 'सरस्वत्यै......' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए ओषधियों से उसका पुनः अभिमन्त्रण करना चाहिये। 'हिरण्याक्ष......' इस मन्त्र से रत्न मिश्रित जल से स्नान करावे। फिर 'देवस्य त्वा.....' इस मन्त्र का उच्चारण कर कुश के जल से स्नान करावे। तत्पश्चात् फलमिश्रित जल द्वारा 'अग्न आयाहि.....' इस मन्त्र का उच्चारण कर स्नान करावे॥८-१०॥

ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत्। ततो घटसहस्रेण सहस्रार्धेन वा पुनः॥११॥
तस्याप्यर्धेन वा कुर्यात्सपादेन शतेन वा। चतःषष्ट्या ततोऽर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥१२॥

चतुर्भिरथवा कुर्याद् घटानामल्पवित्तवान्।
सौवर्णै राजतैर्वाऽपि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः॥१३॥

कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वाऽपि स्नपनं शक्तितो भवेत्।
सहदेवी वचा व्याघ्री बला चातिबला तथा॥१४॥

शङ्खपुष्पी तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला। महौषध्यष्टकं ह्येतन्महास्नानेषु योजयेत्॥१५॥

तदनन्तर गायत्री मन्त्र द्वारा सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित जल द्वारा अभिमन्त्रित करे और फिर सहस्र कलशों द्वारा अथवा पाँच सौ कलशों द्वारा या उसके भी आधे अर्थात् ढाई सौ कलशों द्वारा या एक सौ पचीस कलशों द्वारा या चौंसठ कलशों द्वारा या उसके आधे बत्तीस कलशों द्वारा अथवा उसके आधे सोलह अथवा आठ या चार कलशों द्वारा अल्प वित्त वाला पुरुष स्नान-क्रिया सम्पन्न करे। यदि दो ही कलश हों तो वह सुवर्ण के, चाँदी के, ताँबे के, पीतल के, काँसे के या मिट्टी के हों, अर्थात् अपनी शक्ति के अनुकूल घटों द्वारा ही स्नान कराये। सहदेवी, वच, व्याघ्री, बला, अतिबला, शंखपुष्पी, सिंही तथा सुवर्चला-ये आठ महौषधियाँ हैं, इन्हें महास्नान के समय व्यवहार में लाना चाहिये।।११-१५।।

यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः। प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः॥१६॥
स्वस्तिकं पद्मकं शङ्खमुत्पलं कमलं तथा। श्रीवत्सं दर्पणं तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टकम्॥१७॥
एतानि गोमयैः कुर्यान्मृदा च शुभया ततः। पञ्चवर्णादिकं तद्वत्पञ्चवर्णं रजस्तथा॥१८॥
पूर्वाः कृष्णातिलान्दद्यान्नीराजनविधिर्मतः। एवं नीराजनं कृत्वा दद्यादाचमनं बुधः॥१९॥

जव, गेहूँ, नीवार, तिल, साँवा, शालि, प्रियंगु, तथा चावल-ये अन्न भी स्नान कार्य में उपयोगी कहे गये हैं। स्वस्तिक, पद्मक, शंख, उत्पल, कमल, श्रीवत्स, दर्पण और तगर-ये आठ वस्तुएँ, गोबर, मिट्टी, पाँच प्रकार के वर्ण, पाँच प्रकार के रज, दूर्वा और काला तिल-इन सब वस्तुओं को नीराजन करते समय व्यवहार में लाये। इस प्रकार नीराजन करने के उपरान्त बुद्धिमान् पुरुष आचमन करे।।१६-१९।।

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापापहं शुभम्। ततो वस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः॥२०॥
देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदानसमन्विते। सर्ववर्णे शुभे देव वाससी ते विनिर्मिते॥२१॥
ततस्तु चन्दनं दद्यात्समं कर्पूरकुङ्कुमैः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं दर्भपाणिः प्रयत्नतः॥२२॥

मन्दाकिनी का जल इस कार्य में सभी पापों का विनाश करने वाला तथा मङ्गलकारी है, तत्पश्चात् इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए जोड़े वस्त्र को समर्पित करे। 'हे देव! आपके लिए बने हुए ये युगल वस्त्र देवनिर्मित सूत्र द्वारा बने हुए, यज्ञ तथा दान से समन्वित, विविध वर्णों वाले एवं परम रमणीय हैं, इन्हें आप ग्रहण करें'। तत्पश्चात् कपूर और केशर के साथ चन्दन लगावे और हाथ में कुश ग्रहण किये हुए प्रयत्नपूर्वक इस मन्त्र का उच्चारण करे।।२०-२२।।

शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च।
मया निवेदितान्गन्धान्प्रतिगृह्य विलिप्यताम्॥२३॥

चत्वारिंशत्ततो दीपान्दद्याच्चैव प्रदक्षिणान्।
त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च॥२४॥
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ततस्त्वनेन मन्त्रेण धूपं दद्याद्विचक्षणः॥२५॥

'हे देव! आप के शरीर और चेष्टा (चेहरा) को मैं नहीं जानता, मेरे द्वारा समर्पित किये जाते हुए इन सुगन्धित द्रव्यों को आप ही ग्रहण कर अनुलेपन कर लें।' तदनन्तर चालीस दीप प्रदान करना चाहिये और प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये। 'हे देव! तुम्हीं चन्द्रमा और सूर्य-दोनों के ज्योतिःस्वरूप हो, तुम्हीं विद्युत् में प्रकाश करने वाले अग्नि रूप हो, तुम्हीं समस्त ज्योतिः पुञ्ज स्वरूप हो, मेरे इस दीप को ग्रहण करो।' तदनन्तर इस मन्त्र का उच्चारण कर विचक्षण पुरुष धूपदान करे॥२३-२५॥

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥२६॥
ततस्त्वाभरणं दद्यान्महाभूषाय ते नमः। अनेन विधिना कृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम्॥२७॥
देवकुम्भैस्ततः कुर्याद्यजमानोऽभिषेचनम्। चतुर्भिरष्टभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः॥२८॥

'हे देव! वह वनस्पतियों का अति उत्तम रस, दिव्य गन्धयुक्त, सुगन्धित द्रव्यों में श्रेष्ठ धूप मैं अति भक्तिपूर्वक आपको अर्पित कर रहा हूँ, आप इसे ग्रहण करें।' तदनन्तर 'हे महान् आभूषणों से विभूषित देव! मैं तुम्हें प्रणाम कर रहा हूँ।' इस मन्त्र द्वारा आभूषण अर्पित करे। इस प्रकार उपर्युक्त विधियों से सात रात तक महोत्सव करने के बाद देवकुम्भों द्वारा यजमान अभिषेचन करे, उनकी संख्या चार हो, आठ हो, अथवा दो हो या एक ही हो॥२६-२८॥

सपञ्चरत्नकलशैः सितवस्त्राभिवेष्टितैः। देवस्य त्वेति मन्त्रेण साम्ना चाऽऽथर्वणेन च॥२९॥
अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्मृताः। सिताम्बरधरः स्नात्वा देवान्सम्पूज्य यत्नतः॥३०॥
स्थापकं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम्॥३१॥
यच्चान्यदपि तद्गेहे तदाचार्याय दापयेत्। सुप्रसन्ने गुरौ यस्मात्तृप्यन्ति सर्वदेवताः॥३२॥

श्वेत वस्त्रों से ढँके हुए, पञ्चरत्न युक्त कलशों द्वारा 'देवस्य त्वा ......' इस मन्त्र अथवा साम या आथर्वण मन्त्र द्वारा अथवा नवग्रह के यज्ञों में अभिषेक के जो मन्त्र कहे गये हैं, उन मन्त्रों द्वारा स्नान कर यजमान श्वेत वस्त्र धारण करे एवं यत्नपूर्वक देवताओं की पूजा कर स्थापना कराने वाले की वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणों द्वारा पूजा करे और यज्ञ कार्य में आने वाले अन्य सभी पत्रादि तथा मण्डपस्थ सामग्रियों को, तथा जो कुछ भी वस्तुएँ वहाँ पड़ी हुई हो, उनको सबको भी आचार्य को दे-दे; क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर सभी देवगण प्रसन्न होते हैं॥२९-३२॥

नैतद्विशीलेन च दाम्भिकेन न लिङ्गिना स्थापनमत्र कार्यम्।
विप्रेण कार्यं श्रुतिपारगेण गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यम्॥३३॥

पाषण्डिनं यस्तु करोति भक्त्या विहाय विप्राञ्छ्रुतिधर्मयुक्तान्।
गुरुं प्रतिष्ठादिषु तत्र नूनं कुलक्षयः स्यादचिरादपूज्यः॥३४॥
स्थानं पिशाचैः परिगृह्यते वा अपूज्यतां यात्यचिरेण लोके।
विप्रैः कृतं यच्छुभदं कुले स्यात्प्रपूज्यतां याति चिरं च कालम्॥३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतास्नानं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२६७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३३५८॥

इस देवप्रतिमा के स्थापन के कार्य को दुःशील, दम्भी एवं संन्यासी आदि विशेष चिह्न धारण करने वालों द्वारा नहीं करना चाहिये, प्रत्युत श्रुतियों के पारगामी गृहस्थाश्रम में रहने वाले ब्राह्मण द्वारा कराना चाहिये। जो व्यक्ति केवल भक्ति के कारण वैदिक धर्मों में परायण विद्वान् पण्डितों को छोड़कर अपने पाषण्डी गुरु को इस कार्य में नियुक्त कर लेता है, उसका कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है तथा वह शीघ्र ही अपूज्य हो जाता हैं इस स्थान पर पिशाचों का आधिपत्य हो जाता है, प्रतिमा को लोग थोड़े ही दिनों बाद अपूज्य समझने लगते हैं। ब्राह्मणों द्वारा करायी गई स्थापना से देवप्रतिमा कल्याणकारिणी होती है और चिरकाल तक लोग उसकी पूजा करते रहते हैं॥३३-३५॥

॥दो सौ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥२६७॥

❖❖❖

अथाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वास्तुदोष शान्ति उपाय

ऋषय ऊचुः

प्रासादाः कीदृशाः सूत कर्तव्य भूतिमिच्छता। प्रमाणं लक्षणं तद्वद्वद विस्तरतोऽधुना॥१॥

ऋषियों ने कहा–सूत जी! समृद्धि के इच्छुक लोगों को प्रासादों की रचना किस प्रकार करानी चाहिये? उनका प्रमाण क्या है? लक्षण क्या है? इस विषय को अब विस्तार पूर्वक हम लोगों को बताईये॥१॥

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादविधिनिर्णयम्। वास्तौ परीक्षिते सम्यग्वास्तुदेहविचक्षणः॥२॥
वास्तूपशमनं कुर्यात्समिद्भिर्बलिकर्मणा। जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथागृहनिवेशने॥३॥
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने। द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च॥४॥

वास्तूपशमनं कुर्यात्पूर्वमेव विचक्षणः। एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये च पृष्ठतः॥५॥
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डेहस्तप्रमाणके। यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः॥६॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! अब मैं प्रासादों की विधि को बता रहा हूँ, सुनिये! वास्तु के शरीर को जानने वाला विचक्षण पुरुष वास्तु की परीक्षा कर लेने के बाद बलिकर्म तथा समिधाओं द्वारा वास्तु की शान्ति करे। जीर्ण प्रासाद के उद्धार, वाटिका के आरोपण, नूतन गृह में प्रवेश, नवीन प्रासाद अथवा भवन के निर्माण, एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद में परिवर्तन प्रासाद तथा गृहों में दूसरे द्वारा की रचना, इन सभी अवसरों पर पूर्व कथित रीति से विचक्षण पुरुष सर्वप्रथम वास्तु की शान्ति कराये। तदनन्तर वास्तु के मध्य भाग में पृष्ठ प्रदेश पर एक हाथ गहरे तथा चौड़े कुण्ड में, जो तीन मेखलाओं से युक्त बना हुआ हो, जव, काले तिल तथा दुग्धवाले वृक्षों की समिधाओं द्वारा हवन करना चाहिये।।२-६।।

पालाशैः खादिरैश्चापि मधुसर्पिःसमन्वितैः। कुशदूर्वामयैर्वाऽपि मधुसर्पिःसमन्वितैः॥७॥
कार्यस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापि वा।
होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत्॥८॥

मधु एवं घृत से संयुक्त पलाश अथवा खदिर की समिधाओं का, अथवा मधु तथा घृत से संयुक्त कुश और दुर्वा का हवन करना चाहिये। होम के अन्त में पाँच बेल के फलों द्वारा अथवा पाँच बेल के बीजों द्वारा तथा विविध प्रकार की भक्ष्य एवं भोज्य सामग्रियों द्वारा वास्तु प्रदेश में बलि देनी चाहिये।।७-८।।

तद्वद्विशेषनैवेद्यमेवं दद्यात्क्रमेण तु। ईशकोणे घृताक्तं तु शिखिने विनिवेदयेत्॥९॥
ओदनं सफलं दद्यात्पर्जन्याय घृतान्वितम्।
जयाय च ध्वजान्पीतान्पैष्टं कूर्मं च संन्यसेत्॥१०॥

तथा विशेष नैवेद्य भी तथोक्त क्रम से देना चाहिये। वह क्रम इस प्रकार है। ईशान कोण में घृत से संयुक्त नैवेद्य अग्नि के लिए समर्पित करना चाहिये, फल तथा घृत संयुक्त ओदन पर्जन्य के लिए, जय के लिए पीली ध्वजाएँ तथा आटे से बना हुआ कूर्म देना चाहिये।।९-१०।।

इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टं च कुलिशं तथा। वितानकं च सूर्याय धूम्रं सक्तुं तथैव च॥११॥
सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यं दद्याद् भृशाय च।
शष्कुलीश्चान्तरिक्षाय दद्यात्सक्तूंश्च वायवे॥१२॥
लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकौदनम्।
गृहक्षताय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनम्॥१३॥
गन्धौदनं च गन्धर्वे भृङ्गराजस्य भृङ्गिकाम्।
मृगाय यावकं दद्यात्पितृभ्यः कृसरा मता॥१४॥

दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णबलिं तथा। सुग्रीवेऽपूपकं दद्यात्पुष्पदन्ताय पायसम्॥१५॥
कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथा पद्मं च वारुणे। पिष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरा मता॥१६॥
घृतौदनं च शोषाय यवान्नं पापयक्ष्मणे। घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागे पुष्पफलानि च॥१७॥

सर्पिर्मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परम्।
भल्लाटस्थानके दद्यात्सोमाय घृतपायसम्॥१८॥
भगाय शालिकं पिष्टमदित्यै पोलिकास्तथा।
दित्यै तु पूरिका दद्यादित्येवं बाह्यतो बलिः॥१९॥

इन्द्र के लिए पाँच रत्न तथा आटे का कुलिश देना चाहिये, सूर्य के लिए धूम्रवर्ण का वितान तथा सत्तू, सत्य के लिए घी और गेहूँ, भृश को मत्स्य, अन्तरिक्ष को शष्कुली (पूड़ी), वायु को सत्तू, पूषा को लावा, वितथ को चना और ओदन, गृह नक्षत्र को मधु और अन्न, यम को मांस और ओदन, गन्धर्व को सुगन्धित ओदन, भृङ्गराज को भृङ्गिका, मृग को महावर, पितरों को खिचड़ी, दौवारिक को दन्तकाष्ठ तथा आटे की कृष्ण बलि, सुग्रीव को पुवा, पुष्पदन्त को खीर, वारुण को कुश समूह से संयुक्त पद्म, असुरगणों को सुवर्णयुक्त पिष्टक तथा मदिरा, शोष को घृत समेत ओदन, पापयक्ष्मा को जव का अन्न, रोग को घी का बना हुआ लड्डू, नाग को पुष्प और फल, मुख्य को घी तथा मूँग और ओदन, सोम के लिए भल्लाट के स्थान पर घृत और खीर, भग के लिए साठी का चावल तथा अदिति के लिए पिष्टक, पिष्टक और पोलिक तथा दिति के लिए पूरी की बलि दे-दे-यह वास्तु के बाहरी भाग की बलि का प्रकार है॥११-१९॥

क्षीरं यमाय दातव्यमापवत्साय वै दधि। सावित्रे लड्डुकान्दद्यात्समरीचं कुशौदनम्॥२०॥
सवितुर्गुडपूपांश्च जयाय घृतचन्दनम्। विवस्वते पुनर्दद्याद्रक्तचन्दनपायसम्॥२१॥
हरितालौदनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतम्। घृतौदनं च मित्राय रुद्राय घृतपायसम्॥२२॥

आमं पक्वं तथा मांसं देयं स्याद्राजयक्ष्मणे।
पृथ्वीधराय मांसानि कूष्माण्डानि च दापयेत्॥२३॥

शर्करापायसं दद्यादर्यम्णे पुनरेव हि। पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाक्षतमयं चरुम्॥२४॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत्।
एवं सम्पूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा॥२५॥

यम को क्षीर, आपवत्स को दही, सावित्र को लड्डू तथा मरिच के साथ कुशमिश्रित जल, सविता को गुड़ और अनूप, जय को घृत और चन्दन तथा विवस्वान् के लिए पुनर्वार लालचन्दन तथा खीर दे। इन्द्र को घृत समेत हरिताल और ओदन दे, मित्र को घृत मिश्रित ओदन तथा रुद्र को घृत और खीर दे। राजयक्ष्मा को पका हुआ तथा कच्चा मांस दे, पृथ्वीधर को मांस खण्ड तथा कुम्हड़े दे। अर्यमा के लिए पुनर्वार शक्कर और खीर, पञ्चगव्य, जव, तिल, अक्षय तथा चरु दे।

विविध प्रकार के भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थ ब्रह्मा के लिए दे। इस प्रकार से विधिपूर्वक पूजित देवगण सर्वदा शान्ति करते हैं।।२०-२५।।

सर्वेभ्यः काञ्चनं दद्याद् ब्राह्मणे गां पयस्विनीम्। राक्षसीनां बलिर्देयः अपि यादृग्यथा शृणु॥२६॥
मांसौदनं घृतं पद्मकेसरं रुधिरान्वितम्। ईशानभागमाश्रित्य चरक्यै विनिवेदयेत्॥२७॥
मांसौदनं च रुधिरं हरिद्रौदनमेव च। आग्नेयीं दिशमाश्रित्य विदार्यै विनिवेदयेत्॥२८॥
दध्योदनं सरुधिरमस्थिखण्डैश्च संयुतम्। पीतरक्तं बलिं दद्यात्पूतनायै सरक्षसे॥२९॥

अन्य उपस्थित लोगों के लिए स्वर्ण का तथा ब्राह्मण को दूध देने वाली गौ का दान करना चाहिये। राक्षसियों के लिए किस प्रकार की बलि दी जानी चाहिये, उसे सुनो! मांसयुक्त ओदन, घृत तथा रक्त समेत पद्मकेसर–इन सब वस्तुओं को ईशानकोण की ओर नामक राक्षसी को निवेदित करना चाहिये। मांस मिश्रित ओदन, रुधिर तथा हरिद्रायुक्त ओदन–इन सब वस्तुओं को आग्नेयकोण की ओर विदारी नामक राक्षसी के लिए निवेदित करना चाहिये। रक्त समेत दही, ओदन, हड्डियों के टुकड़े तथा पीतरक्त की बलि राक्षस समेत पूतना नामक राक्षसी के लिए नैर्ऋत्यकोण में देनी चाहिये।।२६-२९।।

वायव्यां पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्। पायसं चापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात्॥३०॥
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन संयुतः। ततः सर्वौषधीस्नानं यजमानस्य कारयेत्॥३१॥
द्विजान्सुपूजयेद्भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः। एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समारभेत्॥३२॥

वायव्यकोण में पापा नामक राक्षसी के लिए, मदिरा, आसव, मछली, मांस तथा खीर-को देना चाहिये। क्रमानुरूप इन वस्तुओं को देते समय अपना नाम उच्चारित कर लेना चाहिये और मन्त्र के आदि में प्रणव का उच्चारण करते हुए अन्त में प्रणाम भी करना चाहिये। तदनन्तर यजमान को सभी औषधियों से युक्त जल के द्वारा स्नान करना चाहिये। यजमान को भक्तिपूर्वक अपने गृह पर समुपस्थित लोगों की तथा शान्तिकर्म में नियुक्त ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तु की शान्ति करने के बाद कर्म प्रारम्भ करना चाहिये।।३०-३२।।

प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे विनिवर्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये॥३३॥
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्। नृत्यमङ्गलवाद्येन कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम्॥३४॥
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः।
गृहे वाऽऽयतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्॥३५॥
न च व्याधिभयं तस्य न च बन्धुनक्षयः। जीवेद्वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं च तिष्ठति॥३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुदोषोपशमनं नामाष्टषट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३३९४।।

प्रासाद, भवन एवं उद्यान प्रारम्भ करते समय अथवा उनके उद्धार के समय या पुर अथवा

गृह में प्रवेश करते समय सभी दोषों के विनाशार्थ रक्षोघ्न और पावमान सूक्तों के पाठ कराने के बाद तथा नृत्य और मांगलिक गीत-वाद्यों के साथ ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो बुद्धिमान् पुरुष प्रतिवर्ष गृह अथवा मन्दिर आदि के प्रारम्भ अथवा प्रवेश आदि के अवसरों पर करते हैं, वे दुःख नहीं झेलते, उन्हें न तो किसी व्याधि का भय होता है, न बन्धुजनों का तथा सम्पत्ति का विनाश ही होता है, प्रत्युत इसके प्रभाव से वह इस लोक में सौ वर्ष तक जीवित रहता है और स्वर्ग में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है।।३३-३६।।

।।दो सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त।।२६८।।

अथैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वास्तु के सोलह विभाग और उनके विविध निर्माण प्रकार

सूत उवाच

एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत्षोडशभागिकम्। तस्य मध्ये चतुर्भिस्तु भागैर्गर्भं तु कारयेत्।।१।।
भागद्वादशकं सार्धं ततस्तु परिकल्पयेत्। चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयं निर्गमं तु ततो बुधैः।।२।।

सूत ने कहा-इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार के वास्तु बलि करने के उपरान्त वास्तु को सोलह भागों में विभक्त करे, जिनमें से चार भागों में मध्य भाग की कल्पना करे और तदनन्तर बारह भागों में प्रासाद की कल्पना करे। बुद्धिमानों को चारों दिशाओं में बाहर निकलने का मार्ग भी जानना चाहिये।।१-२।।

चतुभार्गेन(ण) भित्तीनामुच्छ्रायःस्यात्प्रमाणतः।
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायप्रमाणतः।।३।।
शिखरार्धस्य चार्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा। गर्भसूत्रद्वयं चाग्रे विस्तारो मण्डपस्य तु।।४।।
आयतः स्यात्त्रिभिर्भागैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः। पञ्चभागेन सम्भज्य गर्भमानं विचक्षणः।।५।।

प्रमाण के चौथाई भाग जितनी भीत की ऊँचाई होनी चाहिये और भीत की ऊँचाई के प्रमाण से द्विगुणित शिखर (गुम्बद) की ऊँचाई होनी चाहिये। शिखर की ऊँचाई के चौथे भाग जितनी प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। गर्भ (मध्य भाग) के माप का द्विगुणित मण्डप के अग्रभाग का विस्तार होना चाहिये और तीन भागों से युक्त लम्बाई होगी, जो भाद्रयुक्त रहेगी। विचक्षण पुरुष को गर्भमान को पाँच भागों में विभक्त कर एक भाग में प्राग्ग्रीव की कल्पना करनी चाहिये। गर्भसूत्र के समान आगे मुखमण्डप की रचना करनी चाहिये।।३-५।।

भागमेकं गृहीत्वा तु प्राग्ग्रीवं कल्पयेद्बुधः। गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः॥६॥
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम्। तथाऽन्यं तु प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः॥७॥
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिका बुधैः।
पिण्डिकार्धेन भागः स्यात्तन्मानेन तु भित्तयः॥८॥
बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत्पुनः। भित्त्युच्छ्रायात्तु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः॥९॥

यह सामान्यतः प्रासाद का लक्षण है, जिसे मैं बतला चुका। अब अन्य प्रासाद की रचना का प्रकार बता रहा हूँ, जो लिंगमान के आधार पर निर्मित होता है। बुद्धिमान् पुरुषों को लिंग पूजा की उपयोगी पीठिका बनानी चाहिये। पिण्डिका के अर्ध भाग को विभक्त कर उक्त अर्धांश मान में भित्ति की रचना करनी चाहिये एवं बाहरी भीत के प्रमाण के अनुरूप ही ऊँचाई भी करनी चाहिये। भीत की ऊँचाई से द्विगुणित शिखर की ऊँचाई होनी चाहिये।॥७-९॥

शिखरस्य चतुर्भागात्कर्तव्या च प्रदक्षिणा।
प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत्॥१०॥
तस्य चार्धेन कर्तव्यस्त्वग्रतो मुखमण्डपः।
प्रासाददन्निर्गतौ कायौ कपोलौ गर्भमानतः॥११॥
ऊर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयात्तस्य मञ्जरीं प्रकल्पयेत्।
मञ्जर्याश्चार्थभागेन शुकनासां प्रकल्पयेत्॥१२॥
ऊर्ध्वं तथाऽर्धभागेन वेदीबन्धो भवेदिह। वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठश्चामलसारकः॥१३॥

शिखर के चतुर्थ भाग परिमित प्रदक्षिणा करनी चाहिये। प्रदक्षिणा के बराबर ही आगे का मण्डप निर्मित करना चाहिये। उसके आधे भाग में आगे की ओर मुख मण्डप बनाना चाहिये। प्रासाद से गर्भमान के अनुसार दो कपोल निकालने चाहिए। उसके ऊपर भीत की ऊँचाई से मंजरी की कल्पना करनी चाहिये। मंजरी के अर्ध भाग में शुकनासा की रचना करनी चाहिए और ऊपर वाले आधे भाग में वेदी बंध की रचना करानी चाहिये। वेदी के ऊपर जो शेष भाग रह जाता है, वह कण्ठ और अमलसारक है।॥१०-१३॥

एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद्बुधः।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम्॥१४॥

इस प्रकार विभाग करके मनोहर प्रासाद की रचना बुद्धिमानों को करनी चाहिये। अब अन्य प्रकार के प्रासाद के लक्षणों को बतला रहा हूँ।॥१४॥

गर्भमानप्रमाणेन प्रासादं शृणुत द्विजाः।
विभज्य नवधा गर्भं मध्ये स्याल्लिङ्गपीठिका॥१५॥
पादाष्टकं तु रुचिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत्। मानेन तेन विस्तारो भित्तीनां तु विधीयते॥१६॥

पादं पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनमुच्छ्रयो भवेत्।
स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात्समुच्छ्रयः॥१७॥

हे ऋषिगण! मध्य भाग के मान के अनुसार प्रासाद की रचना का प्रकार आप लोग सुनें। मध्य भाग को नव भागों में विभक्त कर मध्य में लिंग की पीठिका स्थापित करे। अगल-बगल में पादाष्टक को अतिरुचिर तथा कल्पित करे, उन्हीं के मान के अनुसार भीत का विस्तार करना चाहिये। उस पाद को पाँच गुणित करने पर जो गुणनफल हो, वह भीत की उँचाई है और उसकी द्विगुणित ऊँचाई शिखर की होगी॥१५-१७॥

चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु। शुकनाशं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता॥१८॥
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्। कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽत्र विधीयते॥१९॥
शोभनैः पत्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः।
प्रासादोऽयं तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः॥२०॥
सामान्यमपरं तद्वत्प्रासादं शृणुत द्विजाः।

शिखर को चार भागों में विभक्त कर आधे दो भागों में शुकनासा की कल्पना करनी चाहिये, तीसरे में वेदिका मानी गयी है, चतुर्थ में कण्ठ और अमलसार की कल्पना करनी चाहिये। इस प्रासाद में कपाल का मान द्विगुणित माना गया है। मनोहर पत्तियों तथा लताओं से तथा अण्डकों से विभूषित बनाना चाहिये। यह तीसरे ढङ्ग के प्रासाद का प्रकार मैं तुम्हें बता चुका। हे ऋषिवृन्द! अब साधारण रीति से एक अन्य प्रकार के प्रसाद का वर्णन सुनिये॥१८-२०.५॥

त्रिभेदं कारयेत्क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः॥२१॥
रथाङ्कस्तेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतः। नेमी पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः॥२२॥
गर्भं तु द्विगुणं कुर्यात्तस्य मानं भवेदिह। स एव भित्तेरुत्सेधा द्विगुणः शिखरो मतः॥२३॥
प्राग्ग्रीवः पञ्चभागेन निष्कासस्तस्य चोच्यते। कारयेत्सुषिरं तद्वत्प्राकारस्य त्रिभागतः॥२४॥
प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन निष्काषेण विशेषतः। कुर्याद्वा पञ्चभागेन प्राग्ग्रीवं कर्णमूलतः॥२५॥

जहाँ पर देवता स्थित होते हैं, उस क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त कर उसी परिमाण में बाहर की ओर निकला हुआ रथाङ्क बनाना चाहिये। प्रासाद के चारों ओर चतुर्थ भाग में विस्तृत नेमी बनानी चाहिये। मध्य भाग को उससे द्विगुणित करना चाहिये, वही उसका मान है और वही भीत की ऊँचाई भी है, शिखर की ऊँचाई उससे द्विगुणित मानी गयी है। उस प्रासाद का प्राग्ग्रीव पाँच भाग में होगा, उसका निष्कास बतला रहा हूँ, उसे प्राकार के तीन भाग में छिद्र युक्त बनाना चाहिये, प्राग्ग्रीव को पाँच भागों में- विशेषतया निष्कास से बनाना चाहिये। अथवा कर्णमूल से पाँच भाग में प्राग्ग्रीव की कल्पना करनी चाहिये॥२१-२५॥

स्थापयेत्कनकं तत्र गर्भान्ते द्वारमूलतः। एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम्॥२६॥

लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः। एते समासतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना॥२७॥

द्वारमूल के मध्य में सुवर्ण की स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार इसे ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ-इन तीन प्रकारों वाला बनाना चाहिये, वे चाहे लिंग के परिमाण भेद से हों अथवा रूप भेद से हों। इन प्रासादों के निर्माण की विधि मैं संक्षेप में बतला चुका, अब इनके नाम सुनिये।।२६-२७।।

मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा। विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च॥२८॥
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः। सिंहास्यो नन्दनश्चैव नन्दिवर्धनकस्तथा॥२९॥
हंसो वृषः सुवर्णेशः पद्मकोऽथ समुद्गकः।
प्रासादा नामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः॥३०॥

मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्र, नन्दन, नन्दिवर्धनक, हंस, वृष, सुवर्णेश, पद्मक और समुद्गक-ये प्रासादों के नाम हैं, ऋषिगण! अब इनके विभागों को सुनिये।।२८-३०।।

शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः। नानाविचित्रशिखरो मेरुः प्रासाद उच्च्यते॥३१॥
मन्दरो द्वादश प्रोक्तः कैलासो नवभूमिकाः। विमानच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः॥३२॥
स चाष्टभूमिकस्तद्वत्सप्तभिर्नन्दिवर्धनः। विषाणकसमायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः॥३३॥
षोडशास्रसमायुक्तो नानारूपसमन्वितः। अनेकशिखरस्तद्वत्सर्वतोभद्र उच्यते॥३४॥

सौ शृङ्ग वाले, चार द्वार वाले तथा सोलह खण्डों में ऊँचे विविध प्रकार के विचित्र शिखरों से युक्त प्रासाद को मेरु कहते हैं। मन्दर बारह खण्डों वाला कहा गया है तथा कैलास नव खण्ड का होता है। विमान और छन्दक भी उन्हीं की भाँति अनेक शिखरों और मुखों से युक्त होते हैं और आठ खण्डों वाले होते हैं। नन्दिवर्धन सात खण्डों वाला होता है। नन्दन विषाणक से संयुक्त रहता है। सोलह पहलों वाले विविध प्रकार के रूपों से सुशोभित अनेक शिखरों से संवलित प्रासाद को सर्वतोभद्र कहते हैं।।३१-३४।।

चित्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः। वलभीच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः॥३५॥
वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डलश्चास्रवर्जितः। सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेया गजो गजसमस्तथा॥३६॥

इसे चित्रशाला से संयुक्त तथा पाँच खण्डों वाला जानना चाहिये। बलभी तथा छन्दक को भी उसी प्रकार अनेक शिखरों और मुखों से युक्त जानना चाहिये। ऊँचाई में वृषभ के समान तथा मण्डल में बिना पहल के सिंहप्रासाद को सिंह की आकृति का जानना चाहिये, गज को गज के समान ही जानना चाहिये।।३५-३६।।

कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद्भूमिकानवकोच्छ्रयः। अङ्गुलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः॥३७॥
षोडशास्रः समन्ताच्च विज्ञेयः स समुद्गकः।
पार्श्वयोश्चन्द्रशालेऽस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम्॥३८॥

उसी प्रकार कुम्भ की आकृति में कुम्भ की भाँति तथा ऊँचाई में नव खण्ड वाला बनाना चाहिये। अंगुली के पुट की भाँति उपस्थित पाँच अण्डकों से विभूषित चारों ओर से सोलह पहल वाले प्रासादों को मुङ्गक जानना चाहिये, इसके दोनों पार्श्वों में चन्द्रशालाएँ होंगी तथा ऊँचाई दो खण्डों से युक्त होगी।।३७-३८।।

तथैव पद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायो भूमिकात्रयम्।
षोडशास्त्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः।।३९।।
मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालो विभूषितः।
प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासु षडुन्नतः।।४०।।

अनेकश्चन्द्रशालश्च गजः प्रासाद इष्यते। पर्यस्तगृहराजो वै गरुडो नाम नामतः।।४१।।
सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः। भूमिकाषडशीतिस्तु बाह्यतः सर्वतो भवेत्।।४२।।

उसी प्रकार की बनावट पद्मक की भी होगी, केवल ऊँचाई में यह तीन खण्डों वाला होगा। इसके शिखर विचित्र तथा सुन्दर दिखने वाले होते हैं और यह भी सोलह पहलों वाला होता है। मृगराज प्रासाद वह है, जो चन्द्रशाला से विभूषित तथा प्राग्ग्रीव से युक्त और छः खण्डों में रचा गया हो। गज प्रासाद अनेक चन्द्रशालाओं से युक्त होगा। गरुड़ नामक प्रासाद गृहराज को भी अपमानित करने वाला, तीन चन्द्रशालाओं से विभूषित तथा सात खण्डों में उच्च होता है। उसके बाहर की ओर सब छियासी खण्ड होंगे।।३९-४२।।

तथाऽन्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्रायाद्दशभूमिकः। पद्मकः षोडशास्त्रस्तु भूमिद्वयमथाधिकः।।४३।।
पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीवृक्षक इति स्मृतः। पञ्चाण्डको द्विभूमिश्च गर्भे हस्तचतुष्टयम्।।४४।।

एक अन्य प्रकार का भी गरुड़ प्रासाद है, जो ऊँचाई में दस खण्डों से युक्त है। पद्मक सोलह पहलों वाला तथा पूर्व कथित गरुड़ से दो खण्ड अधिक ऊँचा होता है। पद्म के समान ही श्री वृक्षक प्रासाद का परिमाण सुना जाता है। उसमें पाँच अण्डक, दो खण्ड, तथा मध्य भाग में चार हाथ का विस्तार होता है।।४३-४४।।

वृषो भवति नाम्नाऽयं प्रासादः सार्वकामिकः। सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा वै मयोदिताः।।४५।।

सिंहास्येन समा ज्ञेया ये चान्ये तत्प्रमाणकाः।
चन्द्रशालैः समोपेताः सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुताः।।
ऐष्टका दारवाश्चैव शैला वा स्युः सतोरणाः।।४६।।

वृष नामक यह प्रासाद नाम से ही सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। मैंने पाँच-सात प्रासादों के प्रकार वर्णित किये हैं, अतः अन्यान्य वे प्रासाद, जिनका वर्णन नहीं किया गया, उन्हें सिंहास्य के प्रमाणानुरूप जान लेना चाहिये। सभी चन्द्रशालाओं से संयुक्त तथा प्राग्ग्रीव से संवलित रहेंगे। इन्हें ईंटों से, लकड़ी अथवा पत्थर से बनाना चाहिये और तोरण समेत बनवाना चाहिये।।४५-४६।।

मेरुः पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मन्दरः पञ्चहीनकः। चत्वारिंशत्तु कैलाश्चतुस्त्रिंशद्विमानकः॥४७॥
नन्दिवर्धनकस्तद्वद्द्वात्रिंशत्समुदाहृतः। त्रिंशता नन्दनः प्रोक्तः सर्वतो भद्रकस्तथा॥४८॥
वर्तुलः पद्मकश्चैव विंशद्धस्त उदाहृतः। गजः सिंहश्च कुम्भश्च वलभीच्छन्दकस्तथा॥४९॥

एते षोडशहस्ताः स्युश्चत्वारो देववल्लभाः।
कैलासो मृगराजश्च विमानच्छन्दको मतः॥५०॥
एते द्वादशहस्ताः स्युरेतेषामिह मन्मतम्।

मेरु प्रासाद पचास हाथ के परिमाण में रहता है, मन्दर उससे पाँच हाथ न्यून अर्थात् पैंतालीस हाथ के परिमाण में। कैलाश का विस्तार चालीस हाथ तथा विमान चौंतीस हाथ का होता है। उसी प्रकार नन्दिवर्धक का परिमाण बत्तीस हाथ का, नन्दन का तथा सर्वतोभद्र का तीस हाथों का जानना चाहिये। वर्तुल और पद्मक का परिमाण बीस हाथों का, गज, सिंह, कुम्भ, वलभी तथा छन्दक को सोलह हाथों का जानना चाहिये-ये चारों देवताओं को अतिप्रिय हैं कैलास, मृगराज, तथा विमानच्छन्दक-ये बारह हाथ के माने गये हैं।।४७-५०.५।।

गरुडोऽष्टकरो ज्ञेयो हंसो दश उदाहृतः॥५१॥
एवमेते प्रमाणेन कर्तव्याः शुभलक्षणाः। यक्षराक्षसनागानां मातृहस्तात्प्रशस्यते॥५२॥

तथा मेर्वादयः सप्त ज्येष्ठलिङ्गे शुभावहाः।
श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौ मध्यमस्य प्रकीर्तिताः॥५३॥

तथा हंसादयः पञ्च कन्यसे शुभदा मताः। वलभीच्छन्दके गौरी जटामुकुटधारिणी॥५४॥

वरदाऽभयदा तद्वत्साक्षसूत्रकमण्डलुः।

गरुड़ आङ्ग हाथों का तथा हंस दस हाथों का कहा गया है, इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त शुभ लक्षण सम्पन्न इन प्रासादों की रचना करनी चाहिये। यक्ष, राक्षस और नागों के प्रासाद मातृहस्त से प्रशस्त माने गये हैं। श्री वृक्षक आदि आङ्ग मध्यम लिंग के लिये कहे गये हैं। इसी प्रकार हंसादि पाँच कनिष्ठ लिंग के लिए शुभदायक माने गये हैं। बलभी और छन्दक प्रासाद में गौरवर्ण, जटामुकूट धारण करने वाली, वरदान देने वाली, अभयदान देने वाली अक्षसूत्र और कमण्डल धारण करने वाली एवं शुभदायिनी है।।५१-५४.५।।

गृहे तु रक्तमुकुटा उत्पलाङ्कुशधारिणी। वरदाऽभयदा चापि पूजनीया सभर्तृका॥५५॥
तपोवनस्थामितरां तां तु सम्पूजयेद्बुधः। देव्या विनायकस्तद्वद्वलभीच्छन्दके शुभः॥५६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२६९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३४५०।।

—❀—

गृह में लालमुकुट धारण करने वाली, कमल एवं अंकुश विभूषित वरदान देने वाली अभयदायिनी पति समेत मातृका का पूजन करना चाहिये। तपोवन में अवस्थित उसे बुद्धिमान् पुरुष का इस प्रकार पूजित करे। देवी के लिए और विनायक के लिए वलभी और छन्दक ये दोनों शुभदायी हैं।।५५-५६।।

।।दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२६९।।

अथ सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मण्डपों के विविध लक्षण और निर्माण प्रकार

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मण्डपानां तु लक्षणम्। मण्डपप्रवरान्वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः।।१।।
विविधा मण्डपाः कार्या ज्येष्ठमध्यकनीयसः। नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः।।२।।
पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सुव्रतोऽमृतनन्दनः। कौशल्यो बुद्धिसङ्कीर्णो गजभद्रो जयावहः।।३।।
श्रीवत्सो विजयश्चैव वास्तुकीर्तिः श्रुतिञ्जयः। यज्ञभद्रो सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः।।४।।
भागपञ्चो नन्दनश्च मानवो मानभद्रकः। सुग्रीवो हरितश्चैव कर्णिकारः शतर्धिकः।।५।।
सिंहश्च श्यामभद्रश्च सुभद्रश्च तथैव च। सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः।।६।।

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! अब मैं मण्डपों का लक्षण बतला रहा हूँ और प्रासाद के अनुरूप श्रेष्ठ मण्डपों को भी बतला रहा हूँ, सुनिये। ज्येष्ठ और कनिष्ठ-इन भेदों से विविध प्रकार के मण्डपों की रचना करनी चाहिये। उन सभी का नाम मैं बता रहा हूँ। पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनन्दन कौशल्या, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिञ्जय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपञ्च, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र तथा सुभद्र-ये सताईस प्रकार के मण्डप हैं। हे द्विजगण! इनके लक्षणों को सुनिये।।१-६।।

स्तम्भा यत्र चतुःषष्टिः पुष्पकः समुदाहृतः। द्विषष्टिः पुष्पभद्रस्तु षष्टिः सुव्रत उच्यते।।७।।

जिस मण्डप में चौंसङ्ग स्तम्भ लगे हों, उसे पुष्पक कहते हैं, बासङ्ग स्तम्भों वाले को पुष्पभद्र कहते हैं। साङ्ग स्तम्भों वाले को सुव्रत कहते हैं।।७।।

अष्टपञ्चाशकस्तम्भः कथ्यतेऽमृतनन्दनः। कौशल्यः षट् च पञ्चाशच्चतुष्पञ्चाशता पुनः।।८।।
नाम्ना तु बुद्धिसङ्कीर्णो द्विहीनो गजभद्रकः। जयावहस्तु पञ्चाशच्छ्रीवत्सस्तद्विहीनकः।।९।।
विजयस्तद्विहीनः स्याद्वास्तुकीर्तिस्तथैव च। द्वाभ्यामेव प्रहीयेत ततः श्रुतिंजयोऽपरः।।१०।।

चत्वरिंशद्यज्ञभद्रस्तद्विहीनो विशालकः। षट्त्रिंशच्चैव सुश्लिष्टो द्विहीनः शत्रुमर्दनः॥११॥
द्वात्रिंद्भागपञ्चस्तु त्रिंशद्भिर्नन्दनः स्मृतः। अष्टाविंशन्मानवस्तु मानभद्रो द्विहीनकः॥१२॥

अट्ठावन स्तम्भ वाला अमृतनन्दन नामक मण्डप है, कौशल्य छप्पन स्तम्भों वाले मण्डप को कहते हैं। चौवन स्तम्भ जिस मण्डप में हों, उसका नाम संकीर्ण है, उससे दो स्तम्भ कम जिसमें हों वह गजभद्रक है। जयावह पचास स्तम्भों वाले मण्डप को कहते हैं, अड़तालीस स्तम्भों वाले मण्डप को श्रीवत्स, छियालीस स्तम्भों वाले को विजय कहा जाता है, उसी प्रकार वास्तुकीर्ति भी छियालीस स्तम्भों वाला मण्डप हैं, श्रुतिजय चौवालीस स्तम्भों का है। यज्ञभद्र मण्डप में चालीस स्तम्भ होते हैं, विशालक में उससे दो स्तम्भ न्यून रहते हैं, अर्थात् उसमें अड़तीस स्तम्भ लगते हैं। सुश्लिष्ट में छत्तीस स्तम्भ होते हैं, शत्रुमर्दन में उससे दो स्तम्भ न्यून रहते हैं अर्थात् वह चौंतीस स्तम्भों वाला है, भागपंच में बत्तीस स्तम्भ लगते हैं, तीस स्तम्भों वाले को नन्दन कहते हैं, अट्ठाइस स्तम्भ वाले मण्डप को मानव, तथा छब्बीस स्तम्भों वाले को मानभद्र मण्डप कहते हैं।।८-१२।।

चतुर्विंशस्तु सुग्रीवो द्वाविंशो हरितो मतः। विंशतिः कर्णिकारः स्यादष्टादश शतर्धिकः॥१३॥
सिंहोभवेद्विहीनश्च श्यामभद्रो द्विहीनकः। सुभद्रस्तु तथा प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः॥१४॥
मण्डपाः कथितास्तुभ्यं यथावल्लक्षणान्विताः। त्रिकोणं वृत्तमर्धेन्दुमष्टकोणं द्विरष्टकम्॥१५॥
चतुष्कोणं तु कर्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु। राज्यं च विजयश्चैव आयुर्वर्धनमेव च॥१६॥
पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद्भवेत्।
एवं तु शुभदाः प्रोक्ताश्चान्यथा त्वशुभावहाः॥१७॥

इसी प्रकार सुग्रीव चौबीस स्तम्भों वाला, हरित बीस स्तम्भों वाला, कर्णिकार बीस स्तम्भों वाला, शतर्धिक अट्ठारह स्तम्भों वाला, सिंह सोलह स्तम्भों वाला श्यामभद्र चौदह स्तम्भों वाला, सुभद्र बारह स्तम्भों वाला कहा गया है। लक्षणों समेत मण्डपों के नाम तुम्हें बतला चुका। इन मण्डपों को, तीन कोनवाला, गोलाकार, अर्धचन्द्रकार, आठ कोन वाला, दस कोनवाला, अथवा चार कोन वाला स्थापित करना चाहिये। ऐसे मण्डपों के स्थापन से राज्य की प्राप्ति होती है, विजय मिलती है और आयु की वृद्धि होती है, पुत्र लाभ होता है, लक्ष्मी की पुष्टि होती है—ये फल त्रिकोण के क्रम में जानने चाहिये। इस प्रकार के बनाये हुए मण्डप मङ्गलकारी होते हैं अन्य प्रकार के मण्डप अशुभकर हैं।।१३-१७।।

चतुः षष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं प्रकल्पयेत्। विस्तारादिद्वगुणोच्छ्रायं तत्त्रिभागः कटिर्भवेत्॥१८॥
विस्ताराथो भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः। गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं त्रिगुणमायतम्॥१९॥
तथा द्विगुणविस्तीर्णमुखस्तद्वदुदुम्बरः। विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम्॥२०॥
त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते। कनिष्ठमध्यमं ज्येष्ठं यथायोगं प्रकल्पयेत्॥२१॥

गृह के मध्य में चौसठ पदों की कल्पना कर मध्य में द्वार बनाये, चौड़ाई से ऊँचाई दुगुनी होनी चाहिये और उसके कटि भाग को तृतीयांश परिमित बनाना चाहिये। चौड़ाई का आधा मध्य भाग होना

चाहिये और उसके चारों ओर अन्य भीतें रहेंगी। मध्य भाग का चतुर्थांश जितना हो, उसका त्रिगुणित लम्बा और द्विगुणित विस्तृत, द्वार होना चाहिये, जो गूलर का बना हुआ हो। दोनों शाखाओं का विस्तार द्वार के विस्तार का चतुर्थांश हो। तीन, पाँच, सात अथवा नव शाखाओं द्वारा द्वार बनता है। ये क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ कहलाते हैं।।१८-२१।।

अङ्गुलानां शतं सार्धं चत्वारिंशत्तथोन्नतम्। त्रिंशद्विंशोत्तरं चान्यद्धन्यमुत्तममेव च।।२२।।
शतं चाशीतिसहितं वातनिर्गमने भवेत्। अधिकं दशभिस्तद्वत्तथा षोडशभिः शतम्।।२३।।
शतमानं तृतीयं च नवत्याऽशीतिभिस्तथा। दशद्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा।।२४।।

एक सौ साढ़े चालीस अंगुल ऊँचे द्वार को उत्तमद्वार कहते हैं, अन्य दो प्रकार के द्वार एक सौ तीस तथा एक सौ बीस अंगुल के होते हैं। वायु के निकलने के लिए एक सौ अस्सी अंगुल ऊँचा द्वार होना चाहिये। उसी प्रकार एक सौ दस, एक सौ सोलह, एक सौ, नब्बे तथा साठ अंगुल के ऊँचे द्वार होने चाहिये। सर्वदा उपर्युक्त दस प्रकार के द्वार कहे गये हैं।।२२-२४।।

अन्यानि वर्जनीयानि मानसोद्वेगदानि तु। द्वारवेधं प्रयत्नेन सर्ववास्तुषु वर्जयेत्।।२५।।
वृक्षकोणभ्रमिद्वारस्तम्भकूपध्वजादिभिः। कुड्यश्वभ्रेण वा विद्धं द्वारं न शुभदं भवेत्।।२६।।
क्षयश्च दुर्गतिश्चैव प्रवासः क्षुद्भयं तथा। दौर्भाग्यं बन्धनं रोगो दारिद्र्यं कलहं तथा।।२७।।
विरोधश्चार्थनाशश्च सर्वं वेधाद्भवेत्क्रमात्।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के द्वारों को वर्जित रखना चाहिये; क्योंकि वे चित्त को उद्विग्न कहने वाले कहे गये हैं। सभी वस्तुओं में द्वार के सामने वेध को वर्जित रखना चाहिये। सामने की ओर वृक्ष, कोणभ्रमिद्वार, स्तम्भ, कूप, ध्वजा, भीत और श्वभ्र इन सबों से विद्ध हुआ द्वार मङ्गलकारी नहीं होता। क्षय, दुर्गति प्रवास, क्षुधा का भय, दुर्भाग्य, बन्धन भय, रोग, दारिद्र्य, कलह विरोध, धनहानि-ये सब कुपरिणाम क्रमशः द्वार वेध से होते हैं।।२५-२७.५।।

पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीरवृक्षास्तु दक्षिणे।।२८।।
पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोत्पलविभूषितम्। उत्तरे सरलैस्तालैः शुभा स्यात्पुष्पवाटिका।।२९।।

पूर्व दिशा में फल वाले वृक्ष, दक्षिण दिशा में दुग्ध वाले वृक्ष, पश्चिम दिशा में विविध भाँति के कमलों से सुशोभित जल तथा उत्तर दिशा में शाल और ताल के वृक्षों से युक्त पुष्पवाटिका मंगलदायिनी है।।२८-२९।।

सर्वतस्तु जलं श्रेष्ठं स्थिरमस्थिरमेव च। पार्श्वतश्चापि कर्तव्यं परिवारादिकालयम्।।३०।।
याम्ये तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम्। महानसं तथाऽऽग्नेये नैर्ऋत्येऽथ विनायकम्।।३१।।
वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये गृहमालिका। उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुत्तरे।।३२।।
वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम्। पुरतो वृषभस्थानं शेषे स्यात्कुसुमायुधः।।३३।।

जल सभी दिशाओं में श्रेष्ठ है, वह चाहे चल हो अथवा अचल हो। मुख्य भवन के दोनों पार्श्वों

में परिवार वर्ग का निवास होना चाहिये, दक्षिण की ओर तपोवन अथवा तपस्या का स्थान, उत्तर में मातृकाओं का भवन, आग्नेय कोण में पाकशाला, नैर्ऋत्य कोण में गणेश का निवास, पश्चिम की ओर लक्ष्मी का निवास, वायव्य में गृहमालिका, उत्तर में यवशाला, निर्माल्य का स्थान, पश्चिम की ओर चन्द्रादि देवता का बलिदान देने का स्थान, सामने की ओर वृषभ का स्थान और शेष भाग में कुसुमायुध कामदेव का स्थान निर्दिष्ट करना चाहिये।।३०-३३।।

जलवापी तथैशाने विष्णुस्तु जलशाय्यपि। एवमायतनं कुर्यात्कुण्डमण्डपसंयुतम्।।३४।।

घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तं न्त्यिोत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम्।
यः कारयेत्सुरगृहं विविधध्वजाङ्कं श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च।।३५।।
एवं गृहार्चनविधावपि शक्तितः स्यात्संस्थापनं सकलमन्त्रविधानयुक्तम्।
गोवस्त्रकाञ्चनहिरण्यधराप्रदानं देयं गुरुद्विजवरेषु तथाऽन्नदानम्।।३६।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३४८६।।

ईशान कोण में जलयुक्त बावली रहेगी तथा वहीं जल में शयन करने वाले विष्णु भगवान् का भी स्थान रहेगा। इस प्रकार कुण्ड और मण्डप से संयुक्त आयतन का निर्माण करना चाहिये। घण्टा, वितान, तोरण तथा चित्र से सुशोभित, नित्य महोत्सव से प्रमुदित जनसमूह के साथ विविध ध्वजाओं से विभूषित देव मन्दिर को जो पुरुष बनवाता है, उसे कभी लक्ष्मी नहीं छोड़ती और स्वर्ग में उसकी पूजा होती है। इसी प्रकार सभी मन्त्रों और विधानों से युक्त स्थापन की विधि को अपनी शक्ति के अनुरूप गृहपूजन के अवसर पर भी करना चाहिये। उस समय स्थापन करने वाले को गुरु तथा ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, सुवर्ण के आभूषण, सुवर्ण तथा पृथ्वी का दान देना चाहिये और अन्नदान भी करना चाहिये।।३४-३६।।

।।दो सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७०।।

अथैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशों का वर्णन

ऋषय ऊचुः

पूरोर्वंशस्त्वया सूत सभविष्यो निवेदितः। सूर्यवंशे नृपा ये तु भविष्यन्ति हि तान्वद।।१।।
तथैव यादवे वंशे राजानः कीर्तिवर्धनाः। कलौ युगे भविष्यन्ति तानपीह वदस्व नः।।२।।

वंशान्ते ज्ञातयो याश्च राज्यं प्राप्स्यन्ति सुव्रताः।
ब्रूहि सङ्क्षेपतस्तासां यथाभाव्यमनुक्रमात्॥३॥

ऋषियों ने कहा- सूत जी! पिछली कथा के प्रसंग में आप पुरुवंशी राजाओं के वंश का भविष्य समेत वर्णन तो हम लोगों को सुना चुके हैं, अब सूर्यवंश में जो राजा होंगे, कृपया उन्हें हमें बताईये? इसी प्रकार यादव वंश में कलियुग में जो कीर्तिशाली राजा पृथ्वी पर होंगे, उन्हें भी हमें बताईये? तथा इन वंशों के अन्त हो जाने पर जो अन्य शुभ व्रत-परायण जातियाँ भविष्य में राज्य करेंगी, उन्हें भी हमें बताईये? क्रमशः हमारी इन जिज्ञासाओं को आप संक्षेप में बताईये तथा इसी के साथ यह भी बताईये कि भविष्य में कौन-सी घटनाएँ घटित होंगी।।१-३।।

सूत उवाच

बृहद्बलस्य दायादो वीरो राजा ह्युरुक्षयः। उरुक्षयसुतश्चापि वत्सद्रोहो महायशाः॥४॥
वत्सद्रोहात् प्रतिव्यामस्तस्य पुत्रो दिवाकरः। तस्यैव मध्यदेशे तु अयोध्या नगरी शुभा॥५॥
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः। सहदेवस्य भविता ध्रुवाश्वो वै महामनाः॥६॥

सूत ने कहा- राजा बृहद्बल का उत्तराधिकारी राजा उरुक्षय तथा उरुक्षय का पुत्र महायशस्वी वत्सद्रोह होगा। वत्सद्रोह का पुत्र राजा प्रतिव्योम तथा उसका पुत्र दिवाकर होगा। उसी के राज्य के मध्य देश में सुन्दर अयोध्या नामक नगरी होगी। दिवाकर का पुत्र महायशस्वी सहदेव होगा तथा सहदेव का पुत्र महानचेता ध्रुवाश्व नामक राजा होगा।।४-६।।

तस्य भाव्यो महाभागः प्रतीपश्वश्च तत्सुतः। प्रतीपाश्वसुतश्चापि सुप्रतीपो भविष्यति॥७॥
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रस्ततोऽभवत्। किन्नराश्वः सुनक्षत्राद्भविष्यति परन्तपः॥८॥

उस ध्रुवाश्व का पुत्र महाभाग भाव्य तथा भाव्य का पुत्र प्रतीपाश्व होगा। उस प्रतीपाश्व का पुत्र सुप्रतीप नामक राजा होगा। उसका पुत्र मरुदेव होगा, मरुदेव से राजा सुनक्षत्र उत्पन्न होगा। राजा सुनक्षत्र का पुत्र परम तपस्वी राजा किन्नराश्व होगा। किन्नराश्व का पुत्र महामना अन्तरिक्ष नामक राजा होगा। अन्तरिक्ष का पुत्र सुषेण तथा शत्रुओं को जीतने वाला सुमित्र नामक पुत्र होगा।।७-८।।

किन्नराश्वादन्तरिक्षो भविष्यति महामनाः। सुषेणश्चान्तरिक्षाच्च सुमित्रश्चाप्यमित्रजित्॥९॥
सुमित्रंजो बृहद्राजो बृहद्राजस्य वीर्यवान्। पुनः कृतञ्जयो नाम धार्मिकश्च भविष्यति॥१०॥
कृतञ्जयसुतो विद्वान्भविष्यति रणेजयः। भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणेजयात्॥११॥
सञ्जयस्त सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धौदनो नृपः। शुद्धौदनस्य भविता सिद्धार्थः पुष्कलः सुतः॥१२॥

उसमें सुमित्र का पुत्र बृहद्राज और बृहद्राज का पुत्र परम बलवान् तथा धार्मिक कृतंजय नामक पुत्र होगा। कृतञ्जय का पुत्र विद्वान् रणेजय नामक राजा होगा। उस रणेजय से संजय नामक राजा की उत्पत्ति होगी। संजय का पुत्र शाक्य तथा शाक्य का पुत्र शुद्धोदन होगा। शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ तथा सिद्धार्थ का पुत्र पुष्कल होगा।।१०-१२।।

प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः। क्षुद्रकात्कुलको भाव्यः कुलकात्सुरथः स्मृतः॥१३॥
सुमित्रः सुरथाज्जातो ह्यन्त्यस्तु भविता नृपः।
एते चैक्ष्वाकवः प्रोक्ता भविष्या ये कलौ युगे॥१४॥
बृहद्वलान्ववाये तु भविष्याः कुलवर्धनाः।
अत्रानुवंशश्ल्लोकोऽयं विप्रैर्गीतिः पुरातनैः॥१५॥
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति। सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥१६॥

उससे प्रसेनजित् की उत्पत्ति होगी, उससे क्षुद्रक की उत्पत्ति होगी। क्षुद्रक से कुलक और कुलक से राजा सुरथ होगा। राजा सुरथ से सुमित्र की उत्पत्ति होगी, जो अपने वंश का अन्तिम राजा होगा। ये इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, जो कलियुग में उत्पन्न होंगे और राजा बृहद्बल के वंश में होने वाले कहे जायेंगे। ये कुल की वृद्धि करने वाले राजागण हैं। प्राचीन गाथाओं के जानने वाले ब्राह्मण ने इस वंश परम्परा की सूचना देने वाला एक श्लोक इस प्रकार कहा है "ईक्ष्वाकूणामयं वंश सुमित्रान्तो भविष्यति। सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।" अर्थात् इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का यह वंश राजा सुमित्र की अवधि के बाद समाप्त हो जायेगा। कलियुग में यह वंश राजा सुमित्र को प्राप्त कर विश्राम करेगा।।१३-१६।।

इत्येवं मानवो वंशः प्रागेव समुदाहृतः। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधा ये बृहद्रथाः॥१७॥
पूर्वेण ये जरासन्धात्सहदेवान्वये नृपाः। अतीता वर्तमानाश्च भविष्यांश्च निबोधत॥१८॥
सङ्ग्रामे भारते वृत्ते सहदेवे निपातिते। सोमाधिस्तस्यदायादो राजाऽभूत्स गिरिव्रजे॥१९॥
पञ्चाशतं तथाऽष्टौ च समा राज्यमकारयत्। श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिं समास्तस्यान्वयेऽभवत्॥२०॥

इस प्रकार यह मानववंश प्राचीन काल से ही वर्णित हो रहा है। अब इसके बाद बृहद्रथ के वंशवाले मागधों का मैं वर्णन कर रहा हूँ। सहदेव के वंश में होने वाले उन भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालीन राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ सुनिये, जो जरासंघ से उत्पन्न होंगे। महाभारत के संग्राम के समाप्त हो जाने पर सहदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सोमाधि उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ, जो गिरिव्रज में अपना राज्य करता था, उसने अट्ठावन वर्षों तक राज्य किया। उसी के वंश में श्रुतश्रवा नामक राजा हुआ, जो चौंसठ वर्षों तक राज्य करता रहा।।१७-२०।।

अप्रतीपी च षट्त्रिंशत्समा राज्यमकारयत्। चत्वारिंशत्समास्तस्य निरमित्रो दिवं गतः॥२१॥
पञ्चाशतं समाः षट् च सुरक्षः प्राप्तवान्महीम्।
बृहत्कर्मा त्रयोविंशदब्दं राज्यमकारयत्॥२२॥
सेनाजित्सम्प्रयातश्च भुक्त्वा पञ्चशतं महीम्। श्रुतञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति॥२३॥

उसके बाद अप्रतीपी नामक राजा हुआ, जो छत्तीस वर्षों तक राज्य करता रहा। उसका पुत्र निरमित्र था, जो चालीस वर्षों तक राज्य कर स्वर्गवासी हुआ। उसके बाद राजा सुरथ हुआ, जिसने

छप्पन वर्षों तक राज्य किया। तदनन्तर बृहत्कर्मा ने तेईस वर्षों तक राज्य किया। उसके बाद राजा सेनाजित् ने पचास वर्षों तक पृथ्वी का पालन कर स्वर्ग यात्रा की। तदनन्तर श्रुतिञ्जय नामक राजा होगा, जो चालीस वर्षों तक राज्य करेगा।।२१-२३।।

अष्टाविंशतिवर्षाणि महीं प्राप्स्यति वै विभुः।
अष्टपञ्चाशतं षट् च राज्ये स्थास्यति वै शुचिः।।२४।।
अष्टाविंशत्समा राजा क्षेमो भोक्ष्यति वै महीम्।
अनुव्रतश्चतुःषष्टिं राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान्।।२५।।
पञ्चविंशतिवर्षाणि सुनेत्रो भोक्ष्यते महीम्। भोक्ष्यते निर्वृतिश्चेमामष्टपञ्चाशतं समाः।।२६।।

उसके बाद विधु अट्ठाईस वर्षों के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होगा। तदनन्तर राजा शुचि चौंसठ वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद क्षेम नामक राजा होगा, जो अट्ठाईस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा। तदनन्तर पराक्रमी राजा अनुव्रत होगा, जो चौंसठ वर्षों तक राज्य करेगा उसके उपरान्त राजा सुनेत्र पच्चीस वर्षो तक पृथ्वी का उपभोग करेगा। तदनन्तर राजा निवृत्ति होगा, जो अट्ठावन वर्षों तक राज्य करेगा।।२४-२६।।

अष्टाविंशत्समा राज्यं त्रिनेत्रो भोक्ष्यते ततः।
चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च द्युमत्सेनो भविष्यति।।२७।।
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि महीनेत्रः प्रकाश्यते। द्वात्रिंशत्तु समा राजा ह्यचलस्तु भविष्यति।।२८।।
रिपुञ्जयस्तु वर्षाणिं पञ्चाशत्प्राप्यस्यते महीम्।
द्वात्रिंशत्तु नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।।२९।।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तेषां राज्यं भविष्यति। जयतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलको भवेत्।।३०।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तन एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३५१६।।

उसके बाद राजा त्रिनेत्र अट्ठाईस वर्ष तक धरातल पर राज्य करेगा। तदनन्तर राजा द्युमत्सेन होगा, जो अड़तालीस वर्ष तक राज्य का कार्य करेगा। उसके बाद राजा महानेत्र का पृथ्वी पर प्रकाश होगा, जो तैंतीस वर्षों तक रहेगा। तदुपरान्त राजा अचल का बत्तीस वर्षीय राज्यकाल प्रारम्भ होगा। उसके बाद रिपुञ्जय होगा, जो पचास वर्षों तक पृथ्वी पर रहेगा। इस प्रकार के बत्तीस बृहद्रथ के वंशज राजा होंगे। उनका राज्यकाल कुल मिलाकर एक सहस्र वर्ष का होगा। विजयशील क्षत्रिय राजाओं में पुलक नामक बालक उत्पन्न होगा।।२७-३०।।

।।दौ सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७१।।

अथ द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशों का वर्णन

सूत उवाच

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु। पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति॥१॥
मिषतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलकोद्भवः। स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो न च धर्मतः॥२॥
त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः। अष्टाविंशतिवर्षाणि पालको भविता नृपः॥३॥
विशाखयूपो भविता त्रिपञ्चाशत्तथा समाः। एकविंशत्समा राजा सूर्यकस्तु भविष्यति॥४॥

सूत ने कहा—बृहद्रथ एवं अवन्ति देशीय वीतिहोत्र राजाओं के बाद पुलक अपने स्वामी राजा को मारकर राजगद्दी पर अपने पुत्र का अभिषेक करेगा। संभ्रान्त क्षत्रियों के देखते-देखते ही वह पुलक का बालक सामन्तों से वन्दनीय तो होगा; किन्तु धर्मतः नहीं, केवल शक्ति के भरोसे। वह नरोत्तम पृथ्वीतल पर तेईस वर्षों तक राज्य करेगा। अट्ठाईस वर्षों तक पालक नामक राजा होगा, उसके बाद विशाखयूप नामक राजा होगा, जो तिरपन वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद सूर्यक नामक राजा होगा, जो इक्कीस वर्षों तक राज्य करेगा॥१-४॥

भविष्यति नृपस्त्रिंशत्तत्सुतो नन्दिवर्धनः। द्विपञ्चाशत्ततो भुक्त्वा प्रनष्टाः पञ्च ते नृपाः॥५॥
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्॥
शिशुनाकस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति॥६॥

उसके बाद उसका पुत्र नन्दिवर्धन राजा होगा, जो तीस वर्षों तक राज्य करेगा—इस प्रकार बावन (?) वर्षों तक ये पाँच राजा राज्य का उपभोग कर नष्ट हो जायेंगे। (वस्तुतः इन पाँचों के राज्य-काल का योग एक सौ पचपन वर्ष होता है।) इन राजाओं के समस्त यश को अपहृत कर शिशुनाक नामक राजा होगा, जो वराणासी नगरी में अपने पुत्र का राज्यासन पर प्रतिष्ठापित कराकर गिरिव्रज का आश्रय लेगा। यह शिशुनाक चालीस वर्ष तक राजा होगा॥५-६॥

काकवर्णः सुतस्तस्य षड्विंशत्प्राप्स्यते महीम्।
षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति॥७॥
चतुर्विंशत्समाः सोऽपि क्षेमजित्प्राप्स्यते महीम्।
अष्टाविंशतिवर्षाणि विन्ध्यसेनो भविष्यति॥८॥
भविष्यति समा राजा नवकान्वायनो नृपः। भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति॥९॥
अजातशत्रुर्भविता सप्तविंशत्समा नृपः। चतुर्विंशत्समा राजा वंशकस्तु भविष्यति॥१०॥

उसका पुत्र काकवर्ण होगा, जो छब्बीस वर्षों तक पृथ्वी का राजा रहेगा, उसके बाद छत्तीस वर्षों तक क्षेमधर्मा नामक राजा होगा। तदनन्तर चौबीस वर्षों तक क्षेमजित् नामक राजा राज्य करेगा, उसके बाद फिर अट्ठाईस वर्षों तक राजा विन्ध्यसेन का राज्य होगा। फिर नव वर्ष तक कान्वायन नामक राजा होगा, तदनन्तर उसका पुत्र भूमिमित्र होगा जो चौदह वर्षों तक राज्य करेगा। फिर सताईस वर्षों तक राजा अजातशत्रु रहेगा, उसके बाद चौबीस वर्ष तक वंशज नामक राजा होगा।।७-१०।।

उदासी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः। चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा नन्दिवर्धनः।।११।।
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति। इत्येते भवितारोऽत्र वंशे वै शिशुनाकतः।।१२।।
शतानि त्रीणि पूर्वाणि षष्टिवर्षाधिकानि तु।
शिशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः।।१३।।
एतैः सार्धं भविष्यन्ति यावत्कलि नृपाः परे।
तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षितः।।१४।।

तदनन्तर तैंतीस वर्षों तक उदासी नामक राजा होगा, उसके बाद चालीस वर्ष तक राजा नन्दिवर्धन का शासन काल होगा। फिर तैंतालीस वर्ष तक महानन्दी राजा होगा- ये सब राजा शिशुनाक के उपरान्त पृथ्वीतल के राजा होंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ साठ वर्षों तक शिशुनाक वंशीय राजा राज्य करेंगे, जो क्षत्रियों में निम्नकोटि के क्षत्रिय होंगे। इन्हीं राजाओं के साथ इतने ही समय में कलियुग में अन्य राजागण भी राज्याधिकारी होंगे, जो सभी समसामयिक होंगे।।११-१४।।

चतुर्विंशत्तथैक्ष्वाकाः पाञ्चालाः सप्तविंशतिः। काशेयास्तु चतुर्विंशदष्टाविंशतिर्हैहयाः।।१५।।
कलिङ्गाश्चैव द्वात्रिंशदश्मकाः पञ्चविंशतिः। कुरवश्चापि षट्त्रिंशदष्टाविंशास्तु मैथिलाः।।१६।।
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः। एते सर्वे भविष्यन्ति एककालं महीक्षितः।।१७।।
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः। उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः।।१८।।
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः।

उनका विवरण इस प्रकार है- चौबीस इक्ष्वाकुवंशीय, सताईस पाञ्चाल के, चौबीस काशी के, अट्ठाईस हैहयवंशीय, बत्तीस कलिंग देशीय, पच्चीस, अश्मक, छत्तीस कुरुदेश के, अट्ठाईस मैथिल देश के, तेईस शूरसेन देश के तथा बीस वीतिहोत्र के-ये सभी एक समय में ही राज्य करने वाले होंगे। महानन्दि का पुत्र कलियुग के अंशरूप में उत्पन्न महापद्म नामक राजा होगा, जो शूद्र के गर्भ से समुन्नत होकर सभी क्षत्रियों का विनाशक होगा। उसके उपरान्त सभी राजा लोग शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न होंगे।।१५-१८.५।।

एकराट् स महापद्मो एकच्छत्रो भविष्यति।।१९।।

अष्टाशीतिस्तु वर्षाणि पृथिव्यां च भविष्यति। सर्वक्षत्रमथोत्साद्य भाविनाऽर्थेन चोदितः॥२०॥

सुकल्पादिसुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्॥२१॥

उद्धरिष्यति कौटिल्यः समैर्द्वादशभिः सुतान्। भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान्गमिष्यति॥२२॥

भविता शतधन्वा च तस्य पुत्रस्तु षट् समाः। बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥२३॥

षट्त्रिंशत्तु समा राजा भविता शक एव च।
सप्तानां दश वर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति॥२४॥

राजा दशरथौऽष्टौ तु तस्य पुत्रो भविष्यति। भविता नव वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥२५॥

इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम्।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान्गमिष्यति॥२६॥

पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान्। कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशत्तु समा नृपः॥२७॥

वह महापद्म नामक राजा एकच्छत्र सम्राट् होगा, जो अट्ठासी वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा और भावीवश अन्य सभी क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर निष्कण्टक राज्य करेगा। तदनन्तर उस महापद्म के वंश में सुकल्प आदि आठ राजा होंगे, जो क्रमशः केवल बारह वर्षों तक राज्य करेंगे। बारह वर्षों तक उन महापद्मवंशीय आठ राजाओं के राज्य के बाद कौटिल्य राज्य का उद्धार करेगा, तदनन्तर सौ वर्षों तक उक्त नवनन्द राजाओं के पृथ्वी का राज्य करने के बाद मौर्यवंश के अधिकार में राज्य जायेगा। इसके पश्चात् उसका पुत्र शतधन्वा होगा, जो छः वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र बृहद्रथ होगा, जो सत्तर वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर छत्तीस वर्ष तक राजा शक होगा। शक के बाद उसका नाती सत्तर वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र राजा दशरथ होगा, जो आठ वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका पुत्र सप्तति नव वर्ष राज्य करेगा। ये दस मौर्य वंशीय राजा होंगे, जो एक सौ तैंतीस वर्षों तक पृथ्वी का राज्य करेंगे। तदनन्तर उसके हाथ से शुंग वंश में अधिकार जायेगा। सेनापति पुष्पमित्र बृहद्रथ वंशज राजाओं का विनाश कर स्वयं राजा हो, छत्तीस वर्षों तक राज्य करायेगा।।१९-२७।।

भविताऽपि वसुज्येष्ठः सप्त वर्षाणि वै नृपः।
वसुंमित्रस्तथा भाव्यो दश वर्षाणि वै ततः॥२८॥
ततोऽन्तकः समे द्वे तु तस्य पुत्रो भविष्यति।
भविष्यति समास्तस्मात्त्रीण्येवं स पुलिन्दकः॥२९॥

भविता वज्रमित्रस्तु समा राजा पुनर्भवः। द्वात्रिंशत्तु समाभागः समाभागात्ततो नृपः॥३०॥

उसके बाद वसुज्येष्ठ नामक राजा होगा, जो सात वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर वसुमित्र नामक राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा, तदनन्तर अन्तक नामक राजा दो वर्ष, फिर उसका

पुत्र पुलिन्दक तीन वर्ष तक राज्य करेगा, पुलिन्दक के बाद वज्रमित्र नामक (१४ वर्ष तक) राजा होगा, उसके बाद समाभाग (भागवत) नामक राजा होगा जो बत्तीस वर्षों तक राज्य करेगा।।२८-३०।।

भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समा दश। दशैते क्षुद्रराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।।३१।।
शतं पूर्णं शते द्वे च ततः शुङ्गान्गमिष्यति। अमात्यो वसुदेवस्तु प्रसह्य ह्यवनीं नृपः।।३२।।

देवभूमिमथोत्साद्य शौङ्गस्तु भविता नृपः।
भविष्यति समा राजा नव काण्वायनो नृपः।।३३।।

समाभाग के बाद देवभूमि नामक राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा। ये दस छोटे-छोटे राजा इस वसुन्धरा का तीन सौ वर्ष तक उपभोग करेंगे। इसके बाद राज्य शुङ्गवंशियों के हाथ से चला जायेगा। राजा देवभूमि का अमात्य वसुदेव राजा को मारकर पृथ्वी शासक होगा, जो शौङ्ग नाम से विख्यात होगा, जो काण्वायन अर्थात् कण्ववंशी नाम से नव वर्ष तक राज्य करेगा।।३१-३३।।

भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति। नारायणः सुतस्तस्य भविता द्वादशैव तु।।३४।।

सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति दशैव तु।
इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः काण्वायना नृपाः।।३५।।
चत्वारिंशद्द्विजा ह्येते कण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम्।
चत्वारिंशत्पञ्च चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।।३६।।
एते प्रणतसामन्ता भविष्या धार्मिकाश्च ये।
येषां पर्यायकाले तु भूमिरान्ध्रान्गमिष्यति।।३७।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तने द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३५५३।।

उसका पुत्र भूमिमित्र होगा, जो चौदह वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र नारायण होगा, जो बारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राज्य करेगा। ये शुङ्गभृत्य राजा काण्वायन नाम से कहे गये हैं। ये कण्व नामक चालीस (चार) द्विज राजागण पैंतालीस वर्ष तक राज्य करेंगे और सामन्तों से प्रणाम किये जाने वाले राजागण परमधार्मिक होंगे। इनके बाद पृथ्वी आन्ध्रवंशीय राजाओं के हाथ चली जायेगी।।३४-३७।।

।।दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७२।।

❖❖❖

अथ त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

भविष्यकालिक राजाओं के वंश वर्णन

सूत उवाच

काण्वायनास्ततो भूपाः सुशर्माणः प्रसह्यताम्।
शुङ्गानां चैव यच्छेषं क्षपित्वा तु बलीयसः॥१॥
शिशुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम्।
त्रयोविंशसमा राजा शिशुकस्तु भविष्यति॥२॥
कृष्णभ्राता यवीयांस्तु अष्टादश भविष्यति। श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश॥
पूर्णोत्सङ्गस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु॥३॥

सूत ने कहा–तदनन्तर सुशर्मा नामक सुप्रसिद्ध काण्वायन राजा को, जोकि शुंग भृत्यों का अन्तिम राजा था, शुङ्गवंशीय शेष राजाओं को पराजित कर उन्हीं का सजातीय शिशुक नामक आन्ध्र राजा इस वसुन्धरा को प्राप्त करेगा। वह राजा शिशुक तेईस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका छोटा भाई कृष्ण अट्ठाइस वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र श्रीमल्लकर्णि दस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर पूणोत्सङ्ग नामक राजा होगा, जो अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा॥१-३॥

पञ्चाशच्च समः षट् च शान्तकर्णिर्भविष्यति।
दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः॥४॥
आपीतको दश द्वे च तस्य पुत्रो भविष्यति। दश चाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति॥५॥
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु।
स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति॥६॥
मृगेन्द्रः स्वातिकर्णस्तु भविष्यति समास्त्रयः। कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भविताऽष्टौ समा नृपः॥७॥
एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति॥८॥

उसके बाद शान्तकर्णि (शातकीर्ण) नामक राजा छप्पन वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर शान्तकर्णि का पुत्र लम्बोदर अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद आपीतक नामक उसका पुत्र बारह वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर मेघस्वाति नामक राजा होगा, जो अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद स्वाति नामक राजा होगा और वह भी अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर स्कन्दस्वाति नामक राजा होगा, जो केवल सात वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद मृगेन्द्र स्वातिकर्ण नामक राजा तीन वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर कुन्तल स्वातिकर्ण राजा होगा, जो आठ वर्ष तक राजा होगा। उसके बाद स्वातिवर्ण नामक राजा एक वर्ष तक राज्य करेगा॥४-८॥

भविता रिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशतिः। ततः संवत्सरान्पञ्च हालो राजा भविष्यति॥९॥

पञ्च मन्दुलको राजा भविष्यति समा नृपः।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्यो भविष्यति॥१०॥

तदनन्तर पच्चीस वर्ष तक रिक्तवर्ण नामक राजा होगा। उसके बाद पाँच वर्ष तक हाल नामक राजा राज्य करेगा। तदनन्तर मन्दुलक नामक राजा होगा, जो पाँच वर्ष राज्य करेगा, उसके बाद पुरीन्द्रसेन, तदनन्तर सौम्य स्वभाव सुन्दर शान्तिकर्ण नामक राजा होंगे जो एक वर्ष तक राज्य करेंगे। फिर चकोर, स्वातिकर्ण नामक राजा होगा, जो छः मास तक राज्य करेगा।।९-१०।।

सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति।
चकोरः स्वातिकर्णस्तु षणमासान्वै भविष्यति॥११॥

अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति। राजा च गौतमीपुत्रो ह्येकविंशत्यतो नृपः॥१२॥
अष्टाविंशः सुतस्तस्य पुलोमा वै भविष्यति। शिवश्रीर्वै पुलोमा तु सप्तैव भविता नृपः॥१३॥

शिवस्कन्धः शान्तिकर्णाद्भविता ह्यात्मजः समाः।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञश्रीः शान्तिकर्णिकः॥१४॥

तदनन्तर अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वाति नामक राजा राज्य करेगा। उसके बाद गौतमीपुत्र नामक राजा होगा, जो इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर गौतमीपुत्र का पुत्र प्रलोमा (पुलोमा) अट्ठाइर्स वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद शिवश्री पुलोमा नामक राजा होगा, जो सात वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर यज्ञश्री शान्तिकर्णिक नामक राजा होगा, जो उन्तीस वर्ष तक राज्य करेगा।।११-१४।।

षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समस्ततः।
चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समा दश॥१५॥
पुलोमा सप्त वर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति।
एकोनविंशतिर्ह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम्॥१६॥
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च।
आन्ध्राणां संस्थिता राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः॥१७॥
सप्तैवाऽऽन्ध्रा भविष्यन्ति दशाऽऽभीररास्तथा नृपाः।
सप्त गर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु॥१८॥

उसके बाद छः वर्ष तक विजय नामक राजा होगा, तदनन्तर उसका पुत्र चण्डश्री शान्तिकर्ण राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद दूसरा पुलोमा नामक राजा होगा, जो सात वर्ष तक राज्य करेगा। इस प्रकार से उन्तीस आन्ध्र राजागण पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उनके राज्य के वर्ष योग करने पर चार सौ साठ वर्ष होंगे। तदनन्तर उस आन्ध्रवंशीय राजाओं के सेवकों के वंशज राज्य के अधिकारी होंगे। जिनमें सात आन्ध्रवंशीय होंगे, दस आभीर (अहीर)वंश के होंगे, सात गर्दभिल तथा अट्ठारह शकवंशीय होंगे।।१५-१८।।

यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश। त्रयोदशगुरुण्डाश्च हूणा ह्येकोनविंशतिः॥१९॥

यवनाष्टौ भविष्यन्ति सप्ताशीतिं महीमिमाम्।
सप्त गर्दभिला भूयो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्॥२०॥

सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता। शतानि त्रीण्यशीतिं च शतान्यष्टादशैव तु॥२१॥

शतान्यर्धचतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश।
गुरुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः॥२२॥
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु।
आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्विपञ्चाशतं समाः॥२३॥

आठ यवन, चौदह तुषार, तेहर गुरुण्ड तथा उन्नीस हूण वंशीय राजा होंगे। आठ यवन राजागण सत्तासी वर्ष राज्य करेंगे। सात गर्दभिलवंशीय राजा इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे। सात सहस्र वर्षों तक तुषारों के अधीन यह वसुन्धरा कही गयी है। फिर सौ वर्ष, अस्सी वर्ष तथा तीन वर्ष अर्थात् १८३ वर्ष, एक सौ अट्ठारह वर्ष तथा चार सौ पचास वर्ष तक तेरह गुरुण्ड जातीय म्लेच्छ वंशज राजागण शूद्रों के साथ पृथ्वी का उपभाग करें। तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्रवंशीय राजा राज्य करेंगे, श्री पार्वतीय बावन वर्ष राज्य करेंगे॥१९-२३॥

सप्तषष्टिस्तु वर्षाणि दशाऽऽभीरास्तथैव च।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिला नृपाः॥२४॥

भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः। तैर्विमिश्राः जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वशः॥२५॥

विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः। लुब्धानृतब्रुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा॥२६॥

कल्किना तु हताः सर्वे आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः।
अधार्मिकाश्च येऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः॥२७॥

दस आभीर राजा सड़सठ वर्ष राज्य करेंगे। कालवश उनके विनष्ट हो जाने पर किलकिला नामक राजा होंगे, जो यवन जाति के होंगे। धर्म, काम, अर्थ-तीनों दृष्टियों से सभी प्रान्तों में आर्य लोग उनकी संस्कृति से विमिश्रित हो जायेंगे, सभी लोग आश्रम धर्म का विपर्यय करने लगेंगे, परिणामतः प्रजा नष्ट होने लगेगी, राजा लोग लोभी तथा झूठ बोलने वाले हो जायेंगे। कलियुग के प्रभाव से सभी आर्य तथा म्लेच्छ लोग प्रभावहत हो जायेंगे। अधार्मिकों की वृद्धि होगी, पाषण्ड बढ़ जायेगा॥२४-२७॥

प्रनष्टे नृपवंशे तु संध्याशिष्टे कलौ युगे। किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः॥२८॥

असाधवो ह्यसत्त्वाश्च व्याधिशोकेन पीडिताः। अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सवः॥२९॥

अशरण्याः परित्रस्ताः सङ्कटं घोरमाश्रिताः।
सरित्पर्वतवासिन्यो भविष्यन्त्यखिलाः प्रजाः॥३०॥

इस प्रकार सन्ध्या मात्र शेष रह जाने पर कलियुग में जब सभी राजवंश नष्ट हो जायेगा, तब थोड़े रूप में प्रजा शेष रह जायेगी, जो धर्म के विनष्ट हो जाने से विश्रृंखलित रहेगी। असत्कर्म परायण, निर्बल, व्याधि और शोक से जर्जरित, अनावृष्टि से पीड़ित, एक-दूसरे के संहार की इच्छुक वे सारी प्रजाएँ बिना किसी की शरण प्राप्त किये, अति संकट से ग्रस्त हो भयभीत भाव से नदियों तथा पर्वतों में आश्रय लेंगी।।२८-३०।।

नृपवंशेषु नष्टेषु प्रजाः सर्वगृहाणि च। नष्टस्नेहा निरापत्रास्यक्तभ्रातृसुहृद्गणाः।।३१।।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा अधर्मनिरताश्च ताः। पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः।।
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम्।।३२।।
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगान्तके।
निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु।।३३।।
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये वर्षसहस्रके। ससंध्यांशे सुनिःशेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते।।३४।।

राजवंशों के समूल नष्ट हो जाने पर सारी प्रजाएँ घर द्वार से विहीन हो स्नेह रहित, लज्जा रहित, भाई-मित्रादि को छोड़कर, वर्णाश्रम धर्म से विमुख हो, घोर पाप कर्म करती हुई, वृक्षों के पत्ते, मूल और फलों का आहार करने लगेंगी और वृक्षों के पत्तों का वस्त्र धारण करेंगी और जीविका के लिए सारी पृथ्वी का चक्कर लगाएँगी। कलियुग के अवसान के समय इस प्रकार के घोर संकट में प्रजाएँ पड़ेंगी और कलियुग के साथ ही समूल नष्ट हो जायेंगी। देवताओं के एक सहस्रवर्षात्मक कलियुग के सन्ध्या समेत बीत जाने पर सतयुग की प्रवृति होगी।।३१-३४।।

एवं वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो यो मया क्रमात्।
अतीतो वर्तमानश्च तथैवानागतश्च यः।।३५।।
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः। एवं वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्।।३६।।
पौलोमास्तु तथाऽऽन्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः।
अनन्तरं शतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा।।३७।।

इस प्रकार क्रमानुसार भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालीन राजवंश का वर्णन मैं तुमसे कर चुका, संक्षेप में इसे इस प्रकार समझिये कि महापद्म के राज्याभिषेक से लेकर परीक्षित के जन्म तक एक सहस्र पचास वर्ष का समय होता है। पुनः पौलोम आन्ध्र से लेकर महापद्म के राजत्व काल तक का समय आठ सौ छत्तीस वर्ष का होता है।।३५-३७।।

तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादा परीक्षितः।
भविष्ये ते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः।।३८।।
सप्तर्षयस्तदा प्रांशुप्रदीप्तेनाग्निना समाः।
सप्तविंशतिभाव्यानामान्ध्राणां तु यदा पुनः।।३९।।

सप्तर्षयस्तु वर्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले। सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥४०॥
सप्तर्षीणामुपर्येतत्स्मृतं वै दिव्यसंज्ञया।
समा दिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः॥४१॥

परीक्षित् के समय से लेकर आन्ध्रवंशीय राजाओं के अन्त समय तक का प्रमाण वेदों एवं पुराणों के जानने वाले ऋषियों ने भविष्यपुराण में इस प्रकार परिगणित किया है। जब पुनः सत्ताईस आन्ध्रवंशीय राजाओं का उदय होगा उस समय सप्तर्षिगण प्रदीप्त अग्निमय एवं उन्नत स्थिति में होंगे। वे सप्तर्षिगण प्रत्येक नक्षत्रमण्डल में एक सौ वर्ष तक निवास करते हैं। उन सातों ऋषियों के वर्ष प्रमाण उनके वर्ष के प्रमाणों के अनुरूप ही होते हैं। सप्तर्षियों के बारे में यह बात स्मरण की जाती है कि देवताओं का साठ वर्ष सप्तर्षियों का एक वर्ष होता है।।३८-४१।।

एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु वै।
सप्तर्षीणां च यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि॥४२॥
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि। तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ता व्योम्नि शतं समाः॥४३॥
नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम्॥४४॥

इसी परिमाण के अनुसार सप्तर्षिगण का दिव्यकाल में अन्तर बताया जाता है। रात्रि के समय सप्तर्षिगण से पूर्व दिशा में जो नक्षत्र उदित होते हैं सौ वर्ष बाद उनके साथ सप्तर्षि मण्डल का मिलन आकार में होता है। नक्षत्रों और उन सप्तर्षियों के संयोग का यही निदर्शन बताया जाता है। वह सप्तर्षि राजा परीक्षित के समय में मघा नक्षत्र में स्थित थे।।४२-४४।।

ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः।
ततः प्रभृत्ययं सर्वो लोको व्यापत्स्यते भृशम्॥४५॥
अनृतोपहता लुब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः। श्रौतस्मार्तेऽतिशिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा॥४६॥
सङ्करं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्थाः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः॥४७॥
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः।

उनके चौबीसवें नक्षत्र में आने पर सौ वर्ष राज्य करने वाले ब्राह्मण राजा होंगे। सभी से लेकर यह लोक अत्यन्त विपत्ति में पड़ जायेंगे। उस समय मिथ्या व्यवहार में लीन लोभी, धर्म, अर्थ एवं काम सभी ओर से पापाचारी वैदिक एवं स्मृतियों के कहे गये नियमों के पालन में अतत्पर, वर्णाश्रम धर्म एवं मर्यादा से विहीन सारी प्रजाएँ संकर वर्ण की हो जायेंगी। सभी दुर्बलात्मा हो अज्ञानान्धकार में डूब जायेंगी। ब्राह्मण शूद्र योनि में हो जायेंगे, शूद्र मन्त्रों के जानने वाले हो जायेंगे, उन्हीं मन्त्रों के जानने के लोभवश ब्राह्मण शूद्रों की उपासना करेंगे।।४५-४७.५।।

क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम्॥४८॥

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये। यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि॥४९॥
प्रतिपन्नं कलियुगं प्रमाणं तस्य मे शृणु। चतुःशतसहस्त्रं तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः॥५०॥
चत्वार्यष्टसहस्त्राणि संख्यातं मानुषेण तु। दिव्यं वर्षसहस्त्रं तु सदा संध्या प्रवर्तते॥५१॥

क्रमशः सभी जातियों के लोग अपने-अपने आश्रम धर्मों को छोड़कर अन्य आश्रम के लोगों का धर्म अपनाएँगे। इस प्रकार नाममात्र से शेष वे सारी प्रजाएँ युग की समाप्ति होने पर विनष्ट हो जायेंगी। जिस दिन कृष्ण स्वर्गगामी हुए उसी दिन कलियुग का प्रारम्भ हुआ, इसका प्रमाण मुझसे सुनिये। बुद्धिमान् लोग उस कलियुग का प्रमाण चार लाख बत्तीस सहस्त्र मानववर्ष कहते हैं, एक सहस्त्र दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या होती है।॥४८-५१॥

निःशेषे तु तदा तस्मिन्कृतं वै प्रतिपत्स्यते। ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्तितः॥५२॥
इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तं भविष्यति। ऐलं क्षत्रं समाक्रान्तं सोमवंशविदो विदुः॥५३॥

एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये॥५४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्यते॥५५॥

उस कलियुग के समाप्त होने पर सतयुग का प्रारम्भ होता है। ऐल और इक्ष्वाकु वंशीय दो राजा सहदेव नाम से कहे गये हैं। इक्ष्वाकु का राजवंश राजा सुमित्र के अन्त तक होगा। सोमवंश के जानने वाले ऐलवंशीय क्षत्रियों को चन्द्रवंश में सक्रान्त जानते हैं। ये विवस्वान् के कीर्तिशाली पुत्र कहे गये हैं, जो भूतकाल में, वर्तमान काल में तथा भविष्यकाल में होने वाले हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-ये सभी जातियाँ वैवस्तव मन्वन्तर में विवस्वान् मनु की सन्तान है। इस प्रकार वंश कीर्तन समाप्त किया जाता है।॥५२-५५॥

देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाको यश्च ते मतः। महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ॥५६॥
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे। सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति॥५७॥

नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्याऽऽदिर्भविष्यति।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः॥५८॥

क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्ये तु चतुर्युगे। एवं सर्वेषु विज्ञेयं सन्तानार्थं तु लक्षणम्॥५९॥

पुरुवंशीय राजा देवापि और ऐक्ष्वाक (इक्ष्वाकु वंशीय राजा) ये दोनों अपने महान् योगबल द्वारा कलाप ग्राम में निवास करते थे। उन्तीसवें चतुर्युगों में ये दोनों राजा क्षत्रिय जाति के नेता होंगे, मनु का पुत्र सुवर्चा इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं में सर्वप्रथम राजा होगा। उन्तीसवें चतुर्युग के प्रारम्भ में वह अपने वंश का मूलपुरुष होगा। देवापि का पुत्र सत्य ऐलवंशीय राजाओं में प्रमुख होगा।

भविष्यत्कालीन चतुर्युग में ये दोनों क्षात्रधर्म के प्रवर्तक होंगे। इसी प्रकार सभी वंशों में सन्तति के लक्षणों को जानना चाहिये।।५६-५९।।

क्षीणे कलियुगे चैव तिष्ठन्तीति कृते युगे। सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः।।६०।।
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुनः। एवमेवं तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च।।६१।।
सप्तर्षयो नृपैः सार्धं सन्तानार्थं युगे युगे।
एवं क्षत्रस्य चोत्सेधः सम्बन्धो वै द्विजैः स्मृतः।।६२।।

कलियुग के क्षीण हो जाने पर सतयुग के सातों ऋषिगण उन तात्कालिक राजाओं के साथ स्थित रहते हैं तथा त्रेता के मध्य भाग तक रहते हैं। वे पुनः ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के बीजार्थ उत्पन्न होंगे-इसी प्रकार सभी कलियुग एवं अन्य युगों में सन्तान के लिए वे विद्यमान रहते हैं। अर्थात् प्रत्येक युगों में राजाओं के साथ सातों ऋषिगण प्रजाओं की उत्पत्ति के लिए अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों की उत्पत्ति का सम्बन्ध कहा जाता है।।६०-६२।।

मन्वन्तराणां सन्ताने सन्तानाश्च श्रुतौ स्मृताः।
अतिक्रान्तयुगाश्चैव ब्रह्मक्षत्रस्य सम्भवाः।।६३।।
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां यथा क्षयः। सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वं क्षयोदयौ।।६४।।
एतेन क्रमयोगेन (ण) ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणाः कलौ युगे।।६५।।
अनुयान्ति युगाख्यं तु यावन्मन्वन्तरक्षयम्।

प्रत्येक मन्वन्तरों में सृष्टि के विषय में अतिक्रान्त युगधर्म ब्राह्मण क्षत्रियगण की सन्तान कही जाकर श्रुतियों में कीर्तित होते हैं। उन सन्ततियों की जिस प्रकार प्रशान्ति होती है, जिस प्रकार क्षय होता है, जिस प्रकार दीर्घायु प्राप्ति होती है, जिस प्रकार उदय एवं ह्रास होता है, उसे सप्तर्षिगण जानते हैं। इस प्रकार के क्रमयोग से ऐल और ऐक्ष्वाकुवंशीय राजगण त्रेता में उत्पन्न होकर कलियुग में विनाश को प्राप्त होते हैं, एक मन्वन्तर के विनाश तक युगसंज्ञा कही जाती है।।६३-६५.५।।

जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते।।६६।।
रिक्तेयं वसुधा सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः। द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे।।६७।।
ऐलं चैक्ष्वाकुवंशं च प्रकृतिं परिचक्षते।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथाऽन्ये क्षत्रिया भुवि।।६८।।
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः। एषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते।।६९।।
तावदेव तु भोजानां विस्ताराद्द्विगुणं स्मृतम्।

जमदग्नि के पुत्र परशुराम द्वारा क्षत्रियों के विनष्ट कर देने पर यह सारी पृथ्वी राजाओं से

विहीन होकर रिक्त हो गई थी। अब राजाओं के दो वंश की सब उत्पत्ति बता रहा हूँ, मुझसे सुनो! ऐल और ऐक्ष्वाकुवंशीय राजा प्रकृति कहे गये हैं, इन राजाओं के वंशज तथा अन्य क्षत्रियगण पृथ्वी पर प्रचुर परिमाण में अवस्थित हैं। ऐल वंशीय राजाओं का विस्तार बहुत अधिक हैं, उतना ऐक्ष्वाकु वंशियों का नहीं है, इनकी वंश संख्या में तो एक सौ राजा परिगणित हैं। इसी प्रकार भोजवंशीय राजाओं का विस्तार इनसे क्रमशः द्विगुणित है।।६६-६९.५।।

भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्धा तद्यथातथम्।।७०।।
ते ह्यतीताः सनामानो ब्रुवतस्तान्निबोध मे।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः।।७१।।

शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः। शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम्।।७२।।
ततः शतं च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः। तथाऽपरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशबिन्दवः।।७३।।

भोजवंशीय राजाओं से परिमाण में द्विगुणित अन्य क्षत्रियगण हैं। वे सभी अपने-अपने नामों के साथ व्यतीत हो चुके हैं, मैं बतला रहा हूँ सुनो। उनमें प्रतिविन्ध्य नाम वालों की संख्या १०० हैं, नागों की संख्या १०० हैं, हय की संख्या १०० है, धार्तराष्ट्र की संख्या १०० है, जनमेजय की संख्या ८० है, १०० ब्रह्मदत्तों की संख्या है, कुरुवीरों की संख्या १०० है। तदनन्तर पञ्चालों की संख्या १०० है। काशिकुशादि की संख्या १०० हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य नीच और शशिबिन्दु नामक हैं, उनकी संख्या दो सहस्र है।।७०-७३।।

इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः। एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः।।७४।।
मनोर्वैवस्वतस्याऽऽसन्वर्तमानेऽन्तरे विभोः।
तेषां तु निधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः।।७५।।
न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम्। तत्पूर्वापरयोगेण वक्तुं वर्षशतैरपि।।७६।।

वे सभी यज्ञ करने वाले तथा भूरि दक्षिणा प्रदान करने वाले थे। इस प्रकार सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में राजर्षिगण इस पृथ्वीतल पर व्यतीत हो चुके हैं। जो प्रभावशाली वैवस्वत मनु के वर्तमान अन्तर (अवधि) में जन्म ग्रहण कर चुके हैं। उनके मरण और उत्पत्ति में अब लोक की स्थिति ही प्रमाण भूत है। उनके सन्तान का विस्तार कौन पहले हुआ, कौन बाद में हुआ-इस प्रकार समय विभागकर सैकड़ों वर्षों में भी नहीं बताया जा सकता।।७४-७६।।

अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे। एते देवगणैः सार्धं शिष्टा ये तान्निबोधत।।७७।।
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मनः।
अवशिष्टा युगाख्यास्ते ततो वैवस्वतो ह्ययम्।।७८।।
एतद्वः कीर्तितं सम्यक्समासव्यासयोगतः। पुनर्वक्तुं बहुत्वात्तु न शक्यं विस्तरेण तु।।७९।।

वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में अट्ठाइस की संख्या में इन नृपतिगणों के वंश देवताओं के

साथ व्यतीत हो चुके हैं। जो शेष हैं, उन्हें सुनिये! वे वंशधर राजागण संख्या मैं तैंतालीस हैं, जो भविष्यत्काल में होने वाले हैं। उन अवशिष्ट वैवस्तव महात्माओं की संज्ञा उनके युगों के साथ है। इस प्रकार मैं कुछ वंशों को विस्तार और कुछ का संक्षेप में तुम लोगों को सुना चुका। उनकी संख्या बहुत अधिक होने के कारण मैं विस्तारपूर्वक बतलाने में असमर्थ हूँ।।७७-७९।।

उक्ता राजर्षयो ये तु अतीतास्ते युगैः सह। ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते॥८०॥
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान्धारयेन्नरः। लभते स वरान्पञ्च दुर्लभानिह लौकिकान्॥८१॥
आयुः कीर्तिं धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः॥८२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भविष्यराजानुकीर्तनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३६३५।।

हे राजन्! मैंने जिस ययातिवंशीय राजाओं के वंशधर राजर्षियों की चर्चा की है, वे सभी युगों के साथ समाप्त हो चुके हैं, वे सभी कान्तिमान् एवं यशस्वी थे। जो मनुष्य उनके नामों को याद रखता है, वह इस लोक के निम्न पाँच दुर्लभ वरदानों को प्राप्त करता है, अर्थात् उसे आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग एवं पुत्र की प्राप्ति होती है तथा इनके स्मरण एवं श्रवण करने से बुद्धिमान् को परमस्वर्ग की प्राप्ति होती है।।८०-८२।।

।।दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७३।।

अथ चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादान की विधि और माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम्। सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥१॥
कृतकृत्यो भवेत्केन मनस्वी धनवान्बुधः। महादानेन दत्तेन तन्नो विस्तरतो वद॥२॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी! अर्थ के विषय में सभी शास्त्रों में उसे न्यायपूर्वक एकत्र करना, एकत्र किये गये को बढ़ाना तथा उसकी रक्षा करना एवं सत्पात्र में दान करना, इन सबों का नियम पढ़ा जाता हैं। किन्तु मनस्वी बुद्धिमान् धनी पुरुष किस महादान के करने से कृतार्थ होता है, इसे विस्तारपूर्वक हमें बताईये।।१-२।।

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादनानुकीर्तनम्। दानधर्मेऽपि यन्नोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना॥३॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम्॥४॥
यत्तत्षोडशधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले। पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम्॥५॥

सूत ने कहा—अब इसके बाद मैं तुम लोगों को उन महादान की विधि बतला रहा हूँ, जिसे महातेजस्वी विष्णु भगवान् ने दान-धर्म को बतलाने के अवसर पर भी नहीं बतलाया है। उस सर्वश्रेष्ठ महादान को मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, वह मनुष्यों के सभी पापों को विनष्ट करने वाला तथा दुःस्वप्नों का विनाशक है। उस दान को पृथ्वीतल पर भगवान् वासुदेव ने सोलह प्रकार का बतलाया है, वे सभी अति पुण्यप्रद, दीर्घ आयु प्रदान करने वाले, सभी पापों को नष्ट करने वाले तथा मंगलकारी हैं॥३-५॥

पूजितं देवताभिश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञकम्॥६॥
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम्। कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम्॥७॥
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च। हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा॥८॥
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च। द्वादशं विश्वचक्रं तु ततः कल्पलतात्मकम्॥९॥
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च। महाभूतघटस्तद्वत्षोडशं परिकीर्तितम्॥१०॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवतागण उनकी पूजा करते हैं। उन सभी दानों में सर्वप्रथम दान तुला पुरुष दान है, तत्पश्चात् हिरण्यगर्भ दान, ब्रह्माण्ड दान, कल्पवृक्ष दान, एक सहस्र गौ-दान, सुवर्ण कामधेनु दान, हिरण्याश्व दान, हिरण्यश्वरथ दान, हेम-हस्ति-रथ दान, पंचलांगलक दान, धरादान, विश्वचक्र दान, कल्पलता दान, सप्तसागर दान, रत्नधेनु दान, तथा महाभूत घटदान-ये सोलह दान कहे गये हैं॥६-१०॥

सर्वाण्येतानि कृतवान्पुरा शम्बरसूदनः। वासुदेवस्तु भगवनम्बरीषोऽथ भार्गवः॥११॥
कार्तवीर्यार्जुनो नाम प्रह्लादः पृथुरेव च। कुर्युरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः॥१२॥
यस्माद्विघ्नसहस्रेण महादानानि सर्वदा। रक्षन्ते देवताः सर्वा एकैकमपि भूतले॥१३॥
एषामन्यतमं कुर्याद्वासुदेवप्रसादतः। न शक्यमन्यथा कर्तुमपि शक्रेण भूतले॥१४॥

प्राचीन काल में इन उपर्युक्त सभी दानों को शम्बरासुर के शत्रु भगवान् वासुदेव ने किया था, तदनन्तर अम्बरीष, भार्गव, कार्तवीर्यार्जुन, प्रह्लाद, पृथु तथा अन्यान्य भरत आदि राजाओं ने किया था। इस पृथ्वीतल पर इन सब दानों में से एक-एक दान की सर्वदा सभी देवता सहस्त्रों विघ्नों से सर्वदा रक्षा करते हैं। इनमें से भूतल पर यदि एक दान भी वासुदेव भगवान् की कृपा से विघ्नरहित सम्पन्न हो जाये तो उसके सत्फल को देवराज इन्द्र भी अन्यथा करने में समर्थ नहीं हैं॥११-१४॥

तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ। महादानमखं कुर्याद्विप्रैश्चैवानुमोदितः॥१५॥
एतदेवाऽऽह मनवे परिपृष्टो जनार्दनः। यथावदनुवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥१६॥

अतः मनुष्य को भगवान् वासुदेव, शंकर एवं विनायक की आराधना कर विप्रों का अनुमोदन प्राप्त कर यह महादान यज्ञ करना चाहिये। हे ऋषिवर्यगण! इसी बात को मनु के पूछने पर भगवान् जनार्दन ने उन्हें बतलाई थी, उसी को यथार्थ रूप में तुम लोगों को मैं बतला रहा हूँ, सुनो।।१५-१६।।

मनुरुवाच

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च। रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्युत॥१७॥

मनु ने कहा-हे अच्युत! इस पृथ्वीतल पर जितने परमपुनीत मङ्गलदायी अति गोपनीय दान कहे गये हैं, उन्हें मुझे बतलाइये।।१७।।

मत्स्य उवाच

यानि नोक्तानि गुह्यानि महादानानि षोडश। तानि ते कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥१८॥
तुलापुरुषयोगोऽयं येषामादौ विधीयते। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥१९॥
युगादिषूपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु। सङ्क्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च॥२०॥
सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च। यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने॥२१॥
द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्रद्धा वा यत्र जायते। तीर्थे वाऽऽयतने गोष्ठं कूपारामसरित्सु च॥२२॥
गृहे वाऽऽयतने वाऽपि तडागे रुचिरे तथा। महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा॥२३॥
अनित्यं जीवितं यस्माद्वसु चातीव चञ्चलम्। केशेष्वेव गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत्॥२४॥

मत्स्य भगवान् ने कहा-हे मनु! जिन सोलह महादानों को आज तक मैंने अति गोपनीय समझकर किसी से नहीं बतलाया है, उन्हीं को यथार्थ रूप मैं क्रमशः तुम्हें बतला रहा हूँ। इन सभी दानों में तुला पुरुष का दान सर्वप्रथम कहा गया है। अयन के प्रारम्भ होने के अवसर पर विषुव के अवसर पर, पुण्य दिन को, व्यतीपात, दिनक्षय, युगादि दिवसों को, सूर्य-चन्द्र के ग्रहण के अवसर पर, मन्वन्तर के प्रारम्भ के दिन, संक्रान्ति के दिन, वैधृति योग के अवसर पर, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, पर्व के दिन, द्वादशी तथा अष्टका तिथि पर, यज्ञोत्सव अथवा विवाह के अवसर पर अथवा दुःस्वप्न के देखने पर या किसी अद्‌भुत घटना के घटित होने पर, जिनकी चर्चा पूर्व के अध्ययों में आ चुकी है, यथेष्ट द्रव्य या ब्राह्मण के मिल जाने पर या जब जहाँ श्रद्धा हो जाय, किसी तीर्थ या मन्दिर में, गौओं के ठहरने के स्थान पर, कूप, बगीचा, या नदी के तट पर अथवा अपने घर या समीपवर्ती मन्दिर में अथवा पवित्र तालाब के किनारे इन उपर्युक्त महादानों को संसार के भय से भयभीत मानव को देना चाहिये। क्योंकि यह जीवन अस्थायी है, सम्पत्ति चञ्चल है, मृत्यु सर्वदा केश पकड़कर अपने पास खींच रही है-इस भावना से अनुप्राणित हो कर प्राणी को धर्माचरण करना चाहिये।।१८-२४।।

पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
षोडशारत्निमात्रं तु दश द्वादश वा करान्॥२५॥
मण्डपं कारयेद्विद्वांश्चतुर्भद्राननं बुधः। सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकरा तथा॥२६॥
तन्मध्ये तोरणं कुर्यात्सारदारुमयं बुधः। कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः॥२७॥

अतः उक्त पुण्यतिथियों के आने पर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर सोलह अरत्नि परिमित या दस अथवा बारह हाथ का मण्डप निर्मित करवाये, विद्वान् पुरुष को उस मण्डप को चार सुन्दर प्रवेश द्वारों से युक्त बनवाना चाहिये। उसके भीतर सात हाथ परिमित वेदी बनाकर मध्य में पाँच हाथ परिमित एक अन्य वेदी की रचना करनी चाहिये। उसके मध्य में बुद्धिमान् पुरुष शाल काष्ठ की बनी हुई तोरण लगवाये। विचक्षण पुरुष चारों दिशाओं में चार कुण्डों की रचना करे॥२५-२७॥

समेखलायोनियुतानि कुर्यात्सम्पूर्णकुम्भानि महासनानि।
सुताम्रपात्रद्वयसंयुतानि सुयज्ञपात्राणि सुविष्टराणि॥२८॥
हस्तप्रमाणानि तिलाज्यधूपपुष्पोपहाराणि सुशोभनानि।
पूर्वोत्तरे हस्तमिताऽथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय॥२९॥

उस कुण्ड को मेखला और योनि से युक्त बनाना चाहिये, उसके समीप भरे हुए कलशों की स्थापना करनी चाहिये, तथा उन्हें बड़े-बड़े आसन, सुन्दर ताँबे के बने हुए दो पात्र, यज्ञ के उपयोग में आने वाले सभी पात्र, सुन्दर विष्टर आदि से सुशोभित करना चाहिये। वे कुण्ड एक हाथ परिमित हो, तथा तिल, घृत, धूप, पुष्प तथा अन्य शुभ उपहारों से सुशोभित हों। पूर्व तथा उत्तर दिशा के कोण में एक हाथ परिमित जो वेदी होगी धूप, पुष्प तथा अन्य शुभ उपहारों से शुशोभित हों। पूर्व तथा उत्तर दिशा के कोण में एक हाथ परिमित जो वेदी होगी वह ग्रहादि तथा देवेश्वर के पूजन के लिए होगी॥२८-२९॥

अत्रार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां तत्रैव कार्यं फलमाल्यवस्त्रैः।
लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजाः किङ्किणिकायुतः स्यात्॥३०॥
द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम्।
द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्यं स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम्॥३१॥

उस स्थान पर ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु की पूजा विविध प्रकार के फलों, मालाओं तथा पुष्पों से करनी चाहिये। चारों ओर लोकपालों के वर्णन के अनुरूप वर्णों वाली पताकाएँ हो, ध्वजाएँ मध्य भाग में घण्टियों से युक्त हो, चारों द्वारों पर दूध वाले वनस्पतियों के बने हुए तोरण सुशोभित हों। द्वारों पर दोनों बाजुओं के पास माला, सुगन्धि, धूप, सुन्दर वस्त्र एवं रत्नों से सुशोभित दो कलश रखे हों॥३०-३१॥

शालेङ्गुदीचन्दनदेवदारुश्रीपर्णिबिल्वप्रियकाञ्चनोत्थम्।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितं च॥३२॥

तदनन्तरं हस्तचतुष्टयं स्यादथोदरङ्गश्च तदङ्गमेव।
समानजातिश्च तुलाऽवलम्ब्या हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता॥३३॥
दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात्पृथुत्वमस्यास्तु दशङ्गुलानि।
सुवर्णपट्टाभरणा तु कार्या सा लोहपाशद्वयशृङ्खलाभिः॥३४॥

तदनन्तर शाल, इङ्गुदी, चन्दन, देवदारु, श्रीपर्णी, बिल्व, अथवा प्रियकाञ्चन-इन काष्ठों में से किसी एक के बने हुए दो स्तम्भों को दो हाथ पृथ्वी में गाड़कर विधिवत् अचल करे और उन्हें पाँच हाथ ऊँचा रखे। उन दोनों स्तम्भों के भीतर चार हाथ का अन्तर रहे और फिर उन दोनों से मिला हुआ एक सजातीय काष्ठ लगावे, फिर उसी से सजातीय काष्ठ की बनी हुई तुला मध्यभाग में सुवर्ण निर्मित पुरुष से युक्त अवलम्बित करे, वह तुला लम्बाई में चार हाथ लम्बी तथा दस अंगुल मोटी हो, उसमें लोहे की बनी हुई श्रृंखलाओं को युक्त करे तथा सुवर्ण निर्मित वस्त्र से विभूषित करे।।३२-३४।।

युता सुवर्णेन तु रत्नमाला विभूषिता माल्यविलेपनाभ्याम्।
चक्रं लिखेद्वारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णम्॥३५॥
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णं संस्थापयेत्पुष्पफलोपशोभम्।
अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्याः सरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः॥३६॥
विधानदक्षाः पटवोऽनुकूला ये चाऽऽर्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः।

यह तुलादण्ड सुवर्ण रचित रत्नमाला द्वारा विभूषित तथा विविध प्रकार के पुष्प एवं चन्दनादि से अलंकृत हो। फिर पृथ्वी पर विविध रंग के रजों से पद्म के मध्य के आकार का चक्र लिखे और उसे पुष्पों द्वारा विकीर्ण करे, उसके ऊपर पाँच वर्णवाले पुष्प और फलों से सुशोभित वितान तनवाये। तदनन्तर वेदों को भली-भाँति जानने वाले, सुन्दर आकृति वाले, सद्वंश में उत्पन्न, शीलवान् पुरोहितों को नियुक्त करना चाहिये, वे पुरोहितगण प्रत्येक विधियों में दक्ष, पटु, अपने अनुकूल, आर्य देशोत्पन्न तथा द्विजेन्द्र होने चाहिये।।३५-३६.५।।

गुरुश्च वेदान्तविदार्यवंशसमुद्भवः शीलकुलाभिरूपः॥३७॥
पुराणशास्त्राभिरतोऽतिदक्षः प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः।
सिताम्बरः कुण्डलहेमसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामः॥३८॥

गुरु वेदान्त विद्या जानने वाला, आर्यवंशसमुद्भूत, शीलवान्, सत्कुलोत्पन्न, सुन्दर आकृति वाला, पुराण एवं शास्त्रों में निरत रहने वाला, अति पटु, सरल एवं गम्भीर वाणी बोलने वाला, श्वेत वस्त्रधारी, कुण्डल, सुवर्ण सूत्र, केयूर तथा कण्ठाभरण से शोभायमान हो।।३७-३८।।

पूर्वेण ऋग्वेदविदौ भवेतां यजुर्विदौ दक्षिणतश्च शस्तौ।
स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ पश्चादाथर्वणावुत्तरतस्तु कार्यौ॥३९॥
विनायकादिग्रहलोकपालवस्वष्टकादित्यमरुद्गणानाम्।
ब्रह्माच्युतेशार्कवनस्पतीनां स्वमन्त्रतो होमचतुष्टयं स्यात्॥४०॥

मण्डप में पूर्वदिशा से दो ऋग्वेद जानने वाले बैठें, दो यजुर्वेद जानने वाले दक्षिण दिशा में बैठें। दो सामवेद जानने वाले विद्वानों को पश्चिमदिशा में, दो अथर्ववेद के जानने वाले को उत्तर दिशा में नियुक्त करना चाहिये। विनायकादि ग्रह, लोकपाल, आठों वसुगण-आदित्यगण-मरुद्गण, बह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य एवं वनस्पतियों के अपने मन्त्रों द्वारा चार हवन करने चाहिये।।३९-४०।।

जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषामनुक्रमेणापि यथास्वरूपम्।
होमावसाने कृततूर्यनादो गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्पधूपम्।।
आवाहयेल्लोकपतीन्क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः।।४१।।

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरोऽमरेशः।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते।।४२।। ॐ इन्द्राय नमः

तथा इनके सूक्तों का क्रमानुरूप शुद्ध-शुद्ध जप करवाना चाहिये। हवन हो जाने के उपरान्त तुरुही आदि वाद्यों का शब्द करते हुये गुरु बलि, पुष्प, धूपों को लेकर क्रमशः, सभी लोकपालों का आवाहन यजमान समेत इन मन्त्रों द्वारा करे। देवताओं के स्वामी, वज्रधारण करने वाले, सभी अमर, सिद्ध एवं साध्यों से स्तुति किये जाने हुए, अप्सराओं के समूहों द्वारा पङ्खा डुलाये जाते हुए "भगवान् इन्द्र! यहाँ आइये, यहाँ आइये, हमारे यज्ञ की रक्षा कीजिये, आपको हमारा प्रणाम है", ऐसा कहकर 'ॐ इन्द्राय नमः' इन्द्र को प्रणाम है-ऐसा कहे।।४१-४२।।

एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टः।
तेजस्विना लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते।।४३।। ॐ अग्नये नमः
एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चितदिव्यमूर्ते।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते।।४४।। ॐ यमाय नमः

"हे सभी देवताओं के हवनीय द्रव्यों को प्राप्त करने वाले, आप यहाँ आवें, यहाँ आवें आप की चारों ओर से श्रेष्ठ मुनिगण सेवा कर रहे हैं, तेजस्वी लोकपालगण आप के साथ विराजमान हैं, आप कवि है हमारे यज्ञ की आप रक्षा करें आपको हमारा प्रणाम।" ऐसा कह 'ॐ अग्नये नमः' अग्नि को हमारा प्रणाम है।" "हे सूर्य के पुत्र धर्मराज, सभी देवताओं से पूजित दिव्यस्वरूप भगवान्! आप यहाँ आवें, यहाँ आवें, हे सभी शुभ-अशुभ आनन्द एवं शोक के स्वामी अधीश्वर! कल्याण के लिए हमारी रक्षा करें, हमारे यज्ञ की रक्षा करें, आपको हमारा प्रणाम है। ऐसा कह 'ॐ यमायनमः' यमराज को प्रणाम है' ऐसा कहे।।४३-४४।।

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः।
ममाध्वरं पाहि शुभादिनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते।।४५।। ओं निर्ऋतये नमः

हे राक्षसों के समूहों के नायक, विशाल वेताल तथा पिशाचों के समूहों को साथ ले आप यहाँ आवें और हमारे इस यज्ञ की रक्षा करें। हे मंगल कार्यों के सर्वप्रथम स्वामी, तुम लोकेश्वर हो,

हे भगवन्! आपको हमारा प्रणाम है, ऐसा कह 'ॐ निर्ऋतये नमः' निर्ऋति को हमारा प्रणाम है, ऐसा कहे।।४५।।

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यमहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते॥४६॥ ओं वरुणाय नमः
एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः।
प्राणाधिपः कालकवेः सहायो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥४७॥ ओं वायवे नमः

हे भगवान् वरुण! आप समस्त जलचरगण एवं समुद्रों के समूहों के साथ बादलों एवं अप्सराओं के विराट् समूहों को साथ लेकर हमारे यज्ञ में सम्मिलित होइये। हे विद्याधरों एवं अमरो द्वारा गीयमान भगवान्! आपको हमारा प्रणाम है। ऐसा कह 'ॐ वरुणाय नमः' वरुण को हमारा प्रणाम है-ऐसा कहे। हे कालकवि के सहायक और प्राणों के स्वामी वासुदेव! यम पर अधिरूढ़ होकर सिद्धों के समूहों के साथ आप हमारे यज्ञ में रक्षार्थ उपस्थित होइये और हमारी दी गई पूजा ग्रहण कीजिये, भगवन्! आपको हमारा प्रणाम है। ऐसा कह 'ॐ वायवे नमः' वायु को हमारा प्रणाम है- ऐसा कहे।।४६-४७।।

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥४८॥ ओं सोमाय नमः
एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम्।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥४९॥ ओं ईशानाय नमः

हे यज्ञों के स्वामी भगवन् सोमदेव! नक्षत्रगणों, सभी ओषधियों तथा पितरगणों के साथ आप हमारे यज्ञ में समुपस्थित हों, उसकी रक्षा करें और हमारे द्वारा दी गई पूजा ग्रहण करें, आपको हमारा प्रणाम है।' ऐसा कह 'ॐ सोमाय नमः' भगवान् सोमदेव को हमारा प्रणाम है-ऐसा कहे। हे विश्वेश्वर! लोकेश! यज्ञों के स्वामी ईशानदेव! त्रिशूल, कपाल, खट्वांग धारण करने वाले अपने गणों के साथ हमारे यज्ञ में सिद्धि प्रदानार्थ उपस्थित होइये और हमारी दी गई पूजा ग्रहण कीजिये-आपको हमारा प्रणाम है-ऐसा कह 'ॐ ईशानाय नमः'-ईशानदेव को हम प्रणाम करते हैं।।४८-४९।।

एह्येहि पातालधराधरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान।
यज्ञोरगेन्द्रामरलोकसार्धमनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम्॥५०॥ ओं अनन्ताय नमः
एह्येहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः।
सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभाव विशाध्वरं नो भगवन्नमस्ते॥५१॥ ओं ब्रह्मणे नमः

हे पाताल एवं पृथ्वी धारण करने वालों के स्वामी! नागाङ्गनाओं तथा किन्नरों द्वारा गीयमान! अनन्त भगवान्! यक्ष, उरगपति एवं देवगणों के साथ यहाँ आइये और हमारे यज्ञ की रक्षा कीरिये, ऐसा कहे 'ॐ अनन्ताय नमः' अनन्त को हमारा प्रणाम है-ऐसा कहे। हे विश्वाधिपति! मुनीन्द्र!

पितर, देवता एवं लोकपालों के साथ आप यहाँ आइये। हे अमित प्रभावशाली! आप समस्त जगत् के विधाता हैं, हे भगवन्! आप हमारे इस यज्ञ में प्रविष्ट हों, आपको हमारा प्रणाम है-ऐसा कह 'ॐ ब्रह्मणे नमः' ब्रह्मा को हमारा प्रणाम है-ऐसा कहे।।५०-५१।।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे।।५२।।

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयोमनवोगावो देवमातर एव च।।५३।।
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदाऽन्विताः। इत्यावाह्य सुरान्दद्यादृत्विग्भ्यो हेमभूषणम्।।५४।।

इस त्रैलोक्य में जितने स्थावर-जंगमात्मक जीवगण हैं-ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के साथ वे सभी हमारी रक्षा करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस, सर्प, ऋषिगण, कामदेव, गौएँ, देवमाताएँ-ये सभी हमारे इस यज्ञ में प्रमुदित होकर रक्षा करें। इस प्रकार देवताओं का आवाहन कर पुरोहितों को सुवर्ण का आभूषण दे।।५२-५४।।

कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च।
अङ्गुलीयपवित्राणि वासांसि शयनानि च।।५५।।
द्विगुणं गुरवे दद्याद्भूषणाच्छादनानि च।
जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम्।।५६।।

सुवर्ण निर्मित कुण्डल, सूत्र, कटक, अंगूठी, पवित्र सुन्दर वस्त्र तथा शय्या का दान करे। गुरु के लिए ये उपर्युक्त वस्तुएँ द्विगुणित रूप में दे, भूषण, आच्छादनादि वस्त्र सभी को। उस समय सभी दिशाओं में जप करने वालों को शान्तिकाध्याय का जप करते रहने चाहिये।।५५-५६।।

तत्रोषितास्तु ते सर्वे कृत्वैवमधिवासनम्।
आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्।।५७।।

ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः। त्रिप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः।।५८।।
शुक्लमाल्याम्बरो भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत्।

वे सभी जप करने वाले, पुरोहित तथा आचार्य उसी मण्डप में निवास कर उपर्युक्त प्रकार से अधिवासन कर प्रत्येक कार्यों के प्रारम्भ में, मध्य में तथा अन्त में स्वस्तिवाचन करे। तदनन्तर मांगलिक शब्दों का उच्चारण करते हुए वेदज्ञानियों द्वारा स्नान कराया हुआ यजमान तीन प्रदक्षिणा कर अञ्जलि में पुष्प ले श्वेत वस्त्र धारण कर उस तुला को अभिमन्त्रित करे।।५७-५८.५।।

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता।।५९।।
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना।
एकतः सर्वसत्यानि तथाऽनृतशतानि च।।६०।।

धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते। त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता॥६१॥
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते।
योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः॥६२॥
स एकोऽधिष्ठितो देव त्वयि तस्मान्नमो नमः। नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक॥६३॥

हे सभी देवताओं की शक्ति स्वरूप! तुम्हें हमारा प्रणाम है, तुम सत्य की आश्रयभूत हो, समस्त जगत् को धारण करने वाली हो, विश्वयोनि ने तुम्हें साक्षी रूप में निर्मित किया है, तुम्हारी एक तुला पर सभी सत्य हैं, दूसरी पर सौ असत्य हैं, हे जगत् की कल्याणकारिणी! धर्म एवं अधर्म के करने वालों के मध्य में तुम्हारी स्थापना हुई है, इस प्रकार हे तुले! तुम सभी जीवों के कार्यकलापों में प्रमाणरूप से उपस्थित कही गयी हो, मुझे तोलते हुए तुम इस संसार से उबार लो, तुम्हें हमारा प्रणाम है। जो तत्वों में पच्चीसवें माने जाने वाले पुरुष संज्ञक सभी तत्त्वों के स्वामी भगवान् हैं, वे एकमात्र तुम्हीं में अधिष्ठित हैं। हे देवि! तुम्हें हमारा प्रणाम है। हे तुला कहे जाने वाले भगवन् गोविन्द! तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।॥५९-६३॥

त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारकर्दमात्। पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवासनम्॥६४॥
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तुलामारोहयेद्बुधः। स खड्गचर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः॥६५॥
धर्मराजमथाऽऽदाय हैमं सूर्येण संयुतम्। कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन्हरेर्मुखम्॥६६॥

हे हरि! इस संसार रूप कीचड़ से तुम हमें उबार लो। इस प्रकार पुण्यकाल में अधिवासन कर पुनः प्रदक्षिणा कर तुला पर बुद्धिमान् पुरुष आरोहण करे, उस समय वह खड्ग, चर्म, कवच एवं सभी आभरणों से अलकृंत हो। फिर सुवर्ण निर्मित सूर्य समेत धर्मराज को बँधी हुई मुट्ठी वाले दोनों हाथों से पकड़कर रखे और विष्णु के मुख की ओर ताकता हुआ स्थित रहे।॥६४-६६॥

ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः। समादभ्यधिकं यावत्काञ्चनं चातिनिर्मलम्॥६७॥
पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वरः। क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत्॥६८॥
नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि। पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना॥६९॥
त्वया धृतं जगत्सर्वं तुले स्थावरजङ्गमम्। सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणी॥७०॥

तदनन्तर ब्राह्मणों को चाहिये कि तुला की दूसरी ओर यजमान को तौल से कुछ अधिक शुभ्र निर्मल चमकता हुआ सुवर्ण रखे। पुष्टि की कामना करने वाला श्रेष्ठ मनुष्य जब तक सुवर्ण की तुलाभूमि पर स्पर्श न कर ले, तब तक सुवर्ण रखता जाय। फिर क्षणमात्र चुप रहकर इस प्रकार निवेदन करे- 'हे सभी जीवों की साक्षी रूप, सर्वदा वर्तमान् रहने वाली देवि! तुम परमेष्ठी पितामह द्वारा निर्मित हुई हो, हे तुले! तुम सभी स्थावर-जंगमात्मक जगत् को धारण करने वाली हो, हे सभी जीवों को आत्मभूत करने वाली विश्वधारिणी! तुम्हें हमारा प्रणाम है।॥६७-७०॥

ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्धं निवेदयेत्। ऋत्विग्भ्योऽपरमर्धं तु दद्यादुदकपूर्वकम्॥७१॥

गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत्।
प्राप्य तेषामनुज्ञां तु तथाऽन्येभ्योऽपि दापयेत्॥७२॥
दीनानाथविशिष्टादीन्पूयेद्ब्राह्मणैः सह। न चिरं धारयेद्गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः॥७३॥
तिष्ठेद्भयावहं यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम्।
शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति मानवः॥७४॥

इस प्रकार निवेदन कर तुला से उतरकर सुवर्ण का आधा भाग गुरु को निवेदित करे एवं बचे हुए आधे भाग को आचमन कर पुरोहितों में बाँट देना चाहिये। फिर गुरु को तथा पुरोहितों को इसके अतिरिक्त ग्राम एवं रत्नादि का दान देना चाहिये और उनकी आज्ञा लेकर अन्य ब्राह्मणादि को भी दान करे, विशेषत: दीन एवं अनाथों को भी ब्राह्मणों के साथ दान दे। बुद्धिमान् पुरुष उस तौले गये सुवर्ण को अधिक देर तक अपने घर न रखे; क्योंकि यदि वह यजमान के घर में रह जाता है तो उसे भय देने वाला, शोक एवं व्याधि का बढ़ाने वाला होता है और शीघ्र ही दूसरे को देने पर श्रेय को प्राप्त कराता है।।७१-७४।।

अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत्। प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत्॥७५॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना। पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥
कल्पकोटिशतं यावत्तस्मिँल्लोके महीयते॥७६॥

इस प्रकार की विधि से जो पुरुष तुला पुरुष को दान देता है, वह प्रत्येक मन्वन्तरों में प्रतिलोकों के स्वामित्व पद पर निवास करता है। किंकिणी के जालों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर चढ़कर अप्सराओं से सुपूजित हो विष्णुपुर को जाता है एवं सौ कोटि कल्पों तक उस लोक में पूजित होता है।।७५-७६।।

कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजो भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः।
श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः॥७७॥
यो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके।
यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम्॥७८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने तुलापुरुषदानं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३७१३।।

फिर पुण्यकर्म क्षय होने पर इस पृथ्वीलोक में राजराजेश्वर होता है। अनेक राजाओं के मुकुट की मणियों से उसके पैर का आसन शोभायमान होता है और इस जन्म में भी उसी दान के माहात्म्य से वह श्रद्धा समेत सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान करता है और प्रचण्ड प्रताप से समस्त राजाओं को पराजित करता है। जो पुरुष इस तुला पुरुष के दान को दिये जाते हुए देखता है, दूसरे अवसर पर

उसका स्मरण करता है, लोक में पढ़कर उसकी विधि को सुनाता है, जो इसकी विधियों को सुनाता है, या पढ़ता है, वह भी इन्द्र के समान स्वरूप धारण कर पुरन्दर प्रभृति देवगणों से सेवित स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।।७७-७८।।

।।दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७४।।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हिरण्यगर्भ प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम्।।१।।
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत्। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।।२।।
कुर्यादुपोषितस्तद्वल्लोकेशावाहनं बुधः।

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब इसके उपरान्त मैं हिरण्यगर्भ नामक सर्वश्रेष्ठ महादान की विधि बतला रहा हूँ, जो महापातक का विनाश करने वाला है। इस हिरण्यगर्भ दान में भी तुला पुरुष के दान की भाँति पुण्य दिन को पुरोहितों द्वारा मण्डप को यज्ञ सामग्रियों तथा आभूषण आच्छादनादि से सुशोभित कर बुद्धिमान् पुरुष उपवास कर लोकपालों का आवाहन करे।।१-२.५।।

पुण्याहवाचनं कृत्वातद्वत्कृत्वाऽधिवासनम्।।३।।
ब्राह्मणैरानयेत्कुम्भं तपनीयमयं शुभम्। द्विसप्तत्यङ्गुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत्।।४।।
त्रिभागहीनविस्तारमाज्यक्षीराभिपूरितम्। दशास्त्राणि च रत्नानि दात्रसूचीं तथैव च।।५।।

तुलापुरुष की भाँति पुण्याहवाचन एवं अधिवासन करके ब्राह्मणों द्वारा सुवर्णमय मांगलिक कलश को मण्डप में मँगवाये, वह कलश बहत्तर अंगुल ऊँचा सुवर्ण कमल के गर्भ की भाँति तथा घृत एवं दुग्ध आदि से दो भागों में भरा हुआ हो, एक तिहाई भाग रिक्त हो। दस अस्त्र, रत्न, छूरिका और सूची समीप में हो, तथा सुवर्ण का नाल पिटारी समेत रखा हो। कलश के बाहर आदित्य की प्रतिमा बनी हुई हो। उसकी नाभि पर आवरण हो, तथा सुवर्ण का यज्ञोपवीत पहिनाया गया हो।।३-५।।

हेमनालं सपिटकं बहिरादित्यसंयुतम्। तथैवाऽऽवरणं नाभेरुपवीतं च काञ्चनम्।।६।।
पार्श्वतः स्थापयेत्तद्वद्धैमदण्डकमण्डलू। पद्माकारं पिधानं स्यात्समन्तादङ्गुलाधिकम्।।७।।
मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागसमन्वितम्। तिलद्रोणोपरिगतं वेदिमध्ये व्यवस्थितम्।।८।।

उसी प्रकार कलश के समीप में सुवर्ण का दण्ड तथा कमण्डलु रखा गया हो, कलश के

चारों ओर से एक अंगुल से अधिक पद्म के आकार का उसका ढकना बना हो। वह सुन्दर कलश मोतियों की लड़ियों से सुशोभित तथा पद्मरागमणि से युक्त, वेदिका के मध्य भाग में द्रोण परिमित तिल के ऊपर स्थापित हो।।७-८।।

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च। सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः।।९।।
शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः। इममुचचारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः।।१०।।
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च। सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः।।११।।

तदनन्तर मांगलिक शब्दों एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि किये जाते समय वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सभी प्रकार की ओषधियों से स्नान कराया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हो पुष्पाञ्जलि ग्रहण किये इस मन्त्र का उच्चारण करे। हे भगवन् हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, सातों लोकों तथा देवताओं के स्वामी, जगत् के विधाता, तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।।९-११।।

भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः। ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे।।१२।।
नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय। नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः।।१३।।
यतस्त्वमेव भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्।।१४।।

हे विश्व को धारण करने वाले परमात्मनेन! तुम्हारे गर्भ में भू-लोक आदि सभी लोक तथा ब्रह्मा आदि देवगप विराजमान हैं, तुम्हें हमारा प्रणाम है। हे भुवनों के आधार! भुवनों के आश्रय! हिरण्यगर्भ तुम्हारे गर्भ में पितामह का आश्रय है, तुम्हें हम प्रणाम करते हैं। हे देव! जिस करण आप भूतात्मा कहे गये हैं, तथा प्रतिभूतों में आप व्यवस्थित रहते हैं, इस कारण इस अशेष दुःख-संसार-सागर से मेरा उद्धार करें।।१२-१४।।

एवमामन्त्र्य तन्मध्यमाविश्याऽऽस्त उदङ्मुखः। मुष्टिभ्यां परिसङ्गृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ।।१५।।
जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम्। गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा।।१६।।
कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः। गीतमङ्गलघोषेण गुरुरुत्थापयेत्ततः।।१७।।
जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः।
सूच्यादिकं च गुरवे दद्यान्मन्त्रमिमं जपेत्।।१८।।

इस प्रकार आमन्त्रित कर उन सामग्रियों से समीप वेदी के मध्य भाग में प्रविष्ट हो उत्तराभिमुख बैठकर अपनी मुट्ठियों से धर्मराज तथा चतुर्मुख ब्रह्मा को भली-भाँति पकड़कर, अपने घुटनों के बीच में सिर कर पाँच श्वास खींचने के समय तक उसी प्रकार स्थित रहे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणगण हिरण्यगर्भ का गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त तथा उन्नयन संस्कार कराये, तब गीत एवं मांगलिक स्वरों के साथ आचार्य यजमान को ऊपर उठाये और जातकर्म आदि अन्य सोलहों क्रियाओं का संस्कार करावें। फिर यजमान उन सूची आदि समग्रियों को गुरु को इस मन्त्र को पढ़ते हुए दान करे।।१५-१८।।

नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः। चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥१९॥
यथाऽहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मा सुरोत्तम। त्वद्गर्भसम्भवादेष दिव्यदेहो भवाम्यहम्॥२०॥
चतुर्भिः कलशैर्भूयस्ततस्ते द्विजपुङ्गवाः। स्नापयेयुः प्रसन्नाङ्गाः सर्वाभरणभूषिताः॥२१॥
देवस्य त्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने।
अद्य जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम्॥२२॥

हिरण्यगर्भ को हमारा प्रणाम है, विश्वगर्भ को हमारा प्रणाम है, इस चराचर जगत् के गृहभूत को हमारा प्रणाम है, हे सुरोत्तम! जिस प्रकार मरणधर्मा (मरने वाला) प्राणी मैं कुछ दिन पूर्व जन्म ले चुका हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण यह मैं पुनः दिव्य शरीर वाला होऊँ। इसके बाद सभी आभूषणों से विभूषित प्रसन्न शरीर वाले वे ब्राह्मणगण चार कलशों द्वारा यजमान का स्नान करवायें। उस समय यजमान सुवर्णमय आसन पर आसीन हो। ब्राह्मणगण स्नान करवाते समय 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र का पाठ करें और कहें कि आप उत्पन्न हुए तुम्हारे इन अंगों का हम लोग अभिषेक करवा रहे हैं।।१९-२२।।

दिव्येनानेन वपुषा चिरञ्जीव सुखी भव। ततो हिरण्यगर्भं तं तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः॥२३॥
ते पूज्याः सर्वभावेन बहवो वा तदाज्ञया। तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत्॥२४॥

इस दिव्य शरीर से अब तुम चिरकाल तक जीवित रहो और आनन्द का उपभोग करो। तदनन्तर विचक्षण यजमान उस हिरण्यगर्भ को उन ब्राह्मणों को दान दे देना चाहिये। उन ब्राह्मणों को सर्वतोभावेन पूजा करनी चाहिये, तथा उनकी आज्ञा से अन्यान्य बहुत से ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिये। वहाँ की अन्य सभी सामग्रियों को गुरु को दान दे देना चाहिये।।२३-२४।।

पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम्। ग्रामं वा विषयं वाऽपि यदन्यदपि सम्भवेत्॥२५॥
अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽहनि निवेदयेत्। हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके महीयते॥२६॥

पादुका, जूता, छाता, चामर, आसन एवं पात्रादि विविध सामग्रियाँ, ग्रम, अन्य पदार्थ तथा सम्पत्ति, तथा अन्यान्य जिन किन्हीं वस्तुओं के दान करने की अभिलाषा हो गुरु को समर्पित करे। इस प्रकार की विधि से पुण्यदिन को जो इस हिरण्यगर्भ नामक महादान को करता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।।२५-२६।।

पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत्। कल्पकोटिशतं यावद्ब्रह्मलोके महीयते॥२७॥

प्रत्येक मन्वन्तर में लोकपालों के पुरों में वह निवास करता है तथा सौ कोटिकल्प पर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है।।२७।।

कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसाध्यैरमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः।
पितृन्शतमथ बन्धून्पुत्रपौत्रान्प्रपौत्रानपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेक एव॥२८॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ्मधुरिपुरिव लोके पूज्यते सोऽपि सिद्धैः।
मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं विबुधपतिजनानां नायकः स्यादमोघम्॥२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यगर्भप्रदानविधिर्नाम पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२७५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३७४२॥

कलियुग के पापों से विनिर्मुक्त वह प्राणी सिद्धों तथा साध्यों द्वारा पूजित होकर अप्सराओं द्वारा देवताओं के योग्य चामरों से बीजित (हवा किया जाता हुआ) होकर नरक में गिरे हुए सैकड़ों पितरों, बन्धुओं, पुत्रों-पौत्रों तथा प्रपौत्रों तक को अकेला तार देता है। इस प्रकार मर्त्यलोक में इस हिरण्यगर्भ दान की विधि को जो मनुष्य पढ़ता है तथा सुनता है, वह भी विष्णु भगवान् की भाँति भली प्रकार से सिद्धगणों द्वारा पूजित होता है, तथा हितैषिता की दृष्टि से इस दान को करने की जो सूझ देता है, वह देवपतियों का नायक होता है और उस पद से कभी च्युत नहीं होता है॥२८-२९॥

॥दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥२७५॥

❖❖❖

अथ षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्ड प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डविधिमुत्तमम्। यच्छ्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम्॥१॥
पुण्यं दानमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत्। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥२॥
लोकेशवाहनं कुर्यादधिवासनकं तथा।

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब इसके उपरान्त मैं सभी दानों में श्रेष्ठ महापापों का विनाश करने वाले ब्रह्माण्डदान की विधि को बतला रहा हूँ। तुला पुरुष दान के समान पुण्य दिन को प्राप्त कर पुरोहित का निश्चय, मण्डप की रचना, यज्ञ की सामग्री, भूषण तथा अच्छादनादि सामग्री को एकत्र करे तथा लोकपालों का आवाहन कर अधिवासनादि विधि सम्पन्न करे॥१-२.५॥

कुर्याद्विंशपलादुर्ध्वमा सहस्राच्च शक्तितः॥३॥
कलशद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः। दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षड्वेदाङ्ग समन्वितम्॥४॥
लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम्। शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम्॥५॥

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल बीस पल से ऊपर एक सहस्र पल तक

का दो कलशों से संयुक्त सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनवाये। वह ब्रह्माण्ड आठों दिग्गजों तथा छहों अंगों समेत वेदों से युक्त हो, आठों लोकपालगण भी साथ हों, मध्य भाग में चतुर्मुख ब्रह्मा स्थित हों, शिव, विष्णु तथा सूर्य शिखर पर अवस्थित हों, उमा तथा लक्ष्मी भी वहीं बनी हों।।३-५।।

वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम्। वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम्।।६।।
कौशेयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत्। तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत्।।७।।
पूर्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे। प्रकृतिं दक्षिणे देशे सङ्कर्षणमतः परम्।।८।।
पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतः परम्। अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम्।।९।।

वसुगण, आदित्यगण तथा मरुद्गण गर्भ में हों, महारत्नों से सुशोभित हों। वह ब्रह्माण्ड एक बीत्ते से लेकर सौ अंगुल तक मोटा तथा ऊँचा हो सकता है। उस ब्रह्माण्ड को सुन्दर रेशमी वस्त्र से चारों ओर परिवेष्टित कर एक द्रोण तिल पर स्थापित करे, उसके चारों ओर अन्य अट्ठारह प्रकार के अन्नों को लाकर सुशोभित करे। पूर्व दिशा में अनन्तशायी की, दक्षिण और पूर्व के कोण पर प्रद्युम्न की, दक्षिण दिशा में प्रकृति की, दक्षिण-पश्चिम के कोण पर संकर्षण की, पश्चिम दिशा में चारों वेदों की, उसके बाद अनिरुद्ध की, उत्तर दिशा में अग्नि की, ईशान कोण में सुवर्ण निर्मित वासुदेव की परिकल्पना करनी चाहिये।।६-९।।

समन्तादगुडपीठस्थानर्चयेत्काञ्चनान्बुधः। स्थापयेद्वस्त्रसंवीतान्पूर्णकुम्भान्दशैव तु।।१०।।
दशैव धेनवो देयाः सहेमाम्बरदोहनाः। पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः।।
भक्ष्य भोज्यान्नदीपेक्षुफलमाल्यानुलेपनैः।।११।।
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः। इमामुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वाऽथ प्रदक्षिणम्।।१२।।

बुद्धिमान् पुरुष इन सभी देवताओं की प्रतिमा सुवर्ण निर्मित कराके गुड़ के आसन पर स्थित कर पूजा करे तथा अन्य दस पूर्ण कुम्भों को वस्त्र से परिवेष्टित कर स्थापित करे। इसी के साथ सुवर्ण, वस्त्र एवं दोहन के पात्र के साथ दस गौएँ दान करनी चाहिये, उनके साथ पादुका, जूता, छत्र, चामर, आसन, दर्पण, भक्ष्य, भोज्य-सामग्रियाँ, अन्न, दीप, ईख, फल, पुष्प एवं चन्दनादि में भी हों। हवन एवं अधिवासन के समाप्त होने के बाद वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा स्नान कराये जाने के बाद यजमान तीन बार प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण करे।।१०-१२।।

नमोऽस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते।
सप्तर्षिलोकामरभूतलेश गर्भेण सार्धं वितराभिरक्षाम्।।१३।।

हे विश्वेश्वर! विश्वधाम! सातों ऋषि, लोक अमर एवं भूतल के स्वामी, जगत् के प्रसवकर्त्ता भगवन्! तुम अपने गर्भ के साथ हमारी रक्षा करो।।१३।।

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम्।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु।।१४।।

एवं प्रणम्यामरविश्वगर्भं दद्याद्द्विजेभ्यो दशधा विभज्य।
भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य समं भजेच्छेषमनुक्रमेण॥१५॥

जो दुःखी हैं, वे सुखी हों, चराचर सभी जीवों के पापपुञ्ज नष्ट हो जायँ, तुम्हारे दानरूप शस्त्र से ताड़ित पापों एवं दोषों का विनाश हो जाय। इस प्रकार उस अमरगणों एवं विश्व को गर्भ में धारण करने वाले भगवान् रूप उस ब्राह्मण को प्रणाम कर उसे दस भागों में विभक्त कर ब्राह्मणों को दान कर दे, उसमें से दो भाग गुरु को दे और शेष भागों में से समान भाग ब्राह्मणों को दे।।१४-१५।।

स्वल्पे च होमं गुरुरेक एव कुर्णदथैकाग्निविधानयुक्त्या।
स एव सम्पूज्यतमोऽल्पवित्ते यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन॥१६॥
इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्याद्ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम्।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारेरानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः॥१७॥

स्वल्प हवन में एक गुरु को ही एक अग्नि का विधान कर नियुक्त करना चाहिये और अल्पवित्त में यथोक्त वस्त्र, आभूषणादि से उसी की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार की विधि से इस लोक में से जो मनुष्य इस ब्रह्माण्ड दान की क्रिया को सम्पन्न करता है, वह महान् विमान में आरूढ़ हो, सभी कलुषों के नष्ट हो जाने के कारण अतिशुद्ध शरीर हो अप्सराओं के साथ मुरारि के आनन्द दायक पद की प्राप्ति करता है।।१६-१७।।

सन्तारयेत्पितृपितामहपुत्रपौत्रबन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं सः।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघमानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषम्॥१८॥
इति पठति शृणोति वा य एतत्सुरभवनेषु गृहेषु धार्मिकाणाम्।
मतिमपि च ददाति मोदतेऽसावमरपतेर्भवने सहाप्सरोभिः॥१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने ब्रह्माण्डप्रदानविधिर्नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३७६१।।

—※※—

इस ब्रह्माण्ड दान रूप परिधि के द्वारा जिस पुरुष ने अपने पाप समूहों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया है। उसने अपने सैकड़ों पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, बन्धु, प्रियजन, अतिथि, स्त्री को तथा अशेष मातृकुल को तार दिया तथा आनन्द किया। इस ब्रह्माण्डदान की विधि को देवताओं के मन्दिरों तथा धार्मिक के गृहों में जो पढ़ता है अथवा सुनता है, मति ही देता है, वह अमरपति के भवन में अप्सराओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है।।१८-१९।।

।।दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७६।।

❖❖❖

अथ सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कल्पपादप प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

कल्पपादप्रदानाख्यमतः परमनुत्तमम्। महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम्॥१॥
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत्। पुण्याहवाचनं कृत्वा लोकेशावाहनं तथा॥२॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। काञ्चनं कारयेद्वृक्षं नानाफलसमन्वितम्॥३॥
नानाविहगवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत्। शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्त्रं प्रकल्पयेत्॥४॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–अब इसके बाद मैं सभी पातकों के विनाश करने वाले अत्युत्तम कल्पपादक दान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। तुला पुरुष दान की भाँति उत्तम पुण्य दिन प्राप्त कर तथा ब्रह्माणों द्वारा पुण्याहवाचन तथा लोकपालों का आवाहन कर पुरोहित वरण, मण्डप रचना, यज्ञ सामग्री, आभूषण आच्छादनादि का समारम्भ करे तथा विविध प्रकार के फलों से सुशोभित सुवर्ण का वृक्ष बनवाये, उस पर विविध प्रकार के पक्षी, वस्त्र तथा आभूषण की रचना करे। इस वृक्ष को अपनी शक्ति के अनुरूप कम से कम तीन पल से लेकर एक सहस्त्र पल तक का बनवाना चाहिये।।१-४।।

अर्धक्लृप्तसुवर्णस्य कारयेत्कल्पपादपम्। गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च सितवस्त्रयुगान्वितम्॥५॥
ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम्। कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत्॥६॥

इस सुवर्ण के आधे का कल्पपादप बनवाना चाहिये और एक प्रस्थ परिमाण गुड़ के ऊपर उसे दो श्वेत वस्त्रों से संयुक्त कर स्थापित करे, यह कल्पवृक्ष ब्रह्मा-विष्णु एवं शिव से संयुक्त हो, सूर्य समेत पाँच शाखाओं वाला हो, उनके निम्नभाग में स्त्री समेत कामदेव की कल्पना करे।।५-६।।

सन्तानं पूर्वतस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत्। मन्दारं दक्षिणे भागे श्रिया सार्धं घृतोपरि॥७॥
पश्चिमे पारिभद्रं तु सावित्र्या सह जीरिके। सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम्॥८॥

उस कल्पपादक की पूर्व दिशा में चतुर्थांश से सन्तान वृक्ष की कल्पना करे, दक्षिण दिशा की ओर श्री के साथ मन्दार को घृत के ऊपर कल्पित करे, पश्चिम दिशा में जीरा के ऊपर सावित्री के साथ परिभद्र की कल्पना करे, उसी प्रकार तिलों के ऊपर गौ के साथ हरिचन्दन वृक्ष को चतुर्थांश द्वारा उत्तर दिशा फलसंयुक्त कल्पित करे।।७-८।।

तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम्। कोशेयवस्त्रसंवीतानिक्षुमाल्यफलान्वितान्॥९॥
तथाऽष्टौ पूर्णकलशान्पादुकाशनभाजनम्। दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम्॥१०॥
फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्टाद्वितानकम्। तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत्॥११॥

होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः। त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥१२॥

तथा रेशमी वस्त्र से वेष्टित, ईश, पुष्पमाला एवं फलों से संयुक्त आठ पूर्ण कलशों को स्थापित करे, तथा पादुका, आसन, पात्र, दीप, जूता, चामर एवं आसन से संयुक्त फलों एवं पुष्पों से सुशोभित वितान को ऊपर ताने। उन वृक्षों के चारों ओर अट्ठारह प्रकार के धान्य को रखे। इस प्रकार हवन और अधिवासन की समाप्ति हो जाने पर वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा स्नान कराये जाने पर यजमान तीन प्रदक्षिणा करके इस मन्त्र का उच्चारण करे॥९-१२॥

नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने। विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये॥१३॥
यस्मात्त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन॥१४॥

हे कल्पपादप! चिन्तित प्रयोजनों को पूर्ण करने वाले विश्वमूर्ति! विश्वम्भर देव! तुम्हें हमारा प्रणाम है, हे सनातन! जिस कारण से तुम्हीं विश्वात्मा हो, ब्रह्मा हो, स्थाणु (शिव) हो, दिवाकर हो एवं अमूर्त हो, इस चराचर विश्व के परम कारण रूप हो, अतः मेरी रक्षा कीजिए॥१३-१४॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः। सन्तानाद्यैरुपेतः सन्पाहि संसारसागरात्॥१५॥
एवमामन्त्र्य तं दद्याद्गुरवे कल्पपादपम्। तचुर्भ्यश्चाथ ऋत्विग्भ्यः सन्तानादीन्प्रकल्पयेत्॥१६॥
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्गुरवे चाभिपूजनम्। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत न च विस्मयर्यावान्भवेत्॥१७॥

तुम्हीं अमृत सर्वस्व हो, अनन्त हो,, अव्यय पुरुष रूप हो, सन्तान आदि दिव्य वृक्षों से संयुक्त आप इस संसार-सागर में मेरी रक्षा कीजिये। इस प्रकार आमन्त्रित कर उस कल्पवृक्ष को गुरु को समर्पित करे और अन्य चार पुरोहितों को उन अन्य सन्तानादि वृक्षों को दे। स्वल्प सामग्रियों के होने पर एकाग्नि पूजा की भाँति एक गुरु की ही पूजा करनी चाहिये, इस दान में न तो कृपणता करनी चाहिये और न विस्मय ही करना चाहिये॥१५-१७॥

अनेन विधिना यस्तु प्रदद्यात्कल्पपादपम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं भवेत्॥१८॥
अप्सरोभिः परिवृतः सिद्धचारणकिन्नरैः। भूतान्भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् गोत्रसंयुतान्॥१९॥
स्तुयमानो दिवः पृष्ठे पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति॥२०॥
दिवि कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत्ततः। नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः॥
नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत्॥२१॥
यो वा पठेत्सकलकल्पतरुप्रदानं यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा।
सोऽपीन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभिर्मन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः॥२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कल्पपादपप्रदानविधिर्नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२७७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३७८३॥

इस उपर्युक्त विधि से जो मनुष्य कल्पपादप का दान करता है, वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। सिद्ध चारण, किन्नर एवं अप्सराओं से घिरा हुआ वह मानव अपने भूत तथा भविष्यकाल में होने वाले सगोत्रीय पूर्व पर पुरुषों को तारता है, स्वर्ग के पृष्ठ पर पुत्र-पौत्र एवं प्रपौत्रों के समूहों से स्तुति किया जाता हुआ वह प्राणी सूर्य के समान तेजस्वी विमान से विष्णु लोक को जाता है और वहाँ सौ कल्पों तक निवास करता है। तदनन्तर पुनः राजाधिराज होकर जन्म ग्रहण करता है और भगवान् नारायण के पराक्रम से संयुक्त होकर उन्हीं की भक्ति में निरत रहता है, उन्हीं की कथाओं में उसकी आसक्ति होती है और पुनः इस पुण्य के प्रभाव से नारायण के पुर को प्राप्त करता है। अथवा जो मनुष्य इस कल्पपादक की दान विधि को समग्र पढ़ता है, सुनता है या जो अल्प वित्तशाली पुरुष केवल स्मरण करता है, वह भी इन्द्रलोक को प्राप्त होकर पाप निर्मुक्त शरीर से अप्सराओं के साथ मन्वन्तर पर्यन्त निवास करता है।।१८-२२।।

।।दो सौ सत्तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७७।।

अथाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सहस्र गौ प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। गोसहस्त्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम्।।१।।
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकाम्। पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा।।२।।
लोकेशावहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत्। पुण्याहवाचनं कुर्याद्धसोमः कार्यस्तथैव च।।३।।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। वृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत्।।४।।

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब इसके बाद मैं सभी पापों को दूर करने वाले अति उत्तम गोसहस्र प्रदान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। युग एवं मन्वन्तर के प्रारम्भ होने की उत्तम तिथि को प्राप्त कर अपनी शारीरिक शक्ति के अनुरूप तीन रात दुग्ध का व्रत रखे अथवा एक रात का ही रखे, तथा तुला पुरुष के दान की भाँति लोकपालों का आवाहन, पुण्याहवाचन, हवन तथा अन्यान्य कार्यों को विधिपूर्वक सम्पन्न करे और उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ समाग्रियों, आभूषण तथा आच्छादनादि को यथास्थान रखे एवं निर्दिष्ट लक्षणों से संयुक्त वृषभ को वेदी के मध्य भाग में बैठावे।।१-४।।

गोसहस्त्राद्विनिष्कृष्य गवां दशकमेव च। गोसहस्त्रं बहिः कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषितम्।।
सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितम्।।५।।

अन्तः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैश्च पूजयेत्।
सुवर्णघण्टिकायुक्तं कांस्यदोहनकान्वितम्॥६॥
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्कृतम्। कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्यगन्धसमन्वितम्॥७॥

और वेदी के बाहर एक सहस्र गौओं को वस्त्र, पुष्पादि से विभूषित कर सींगों को सुवर्ण जटित तथा पैरों को चाँदी से अलंकृत करे। फिर उन सहस्र गौओं दस गौओं को अलग कर बाहर एक सहस्र गौओं को वस्त्र, पुष्पादि से विभूषित कर सींगों को सुवर्ण जटित तथा पैरों को चाँदी से भीतर वेदी में प्रवेश कराकर पुनः वस्त्रों एवं पुष्पों से पूजा करे, उन्हें सुवर्ण की घण्टी से सुशाभित तथा काँसे से बने दोहन पात्र से संयुक्त करे, सुवर्ण की तिलक लगावे, सुनहले वस्त्र से अलंकृत करे, रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित कर मालाओं एवं सुगन्धित वस्तुओं से पूजित करे॥५-७॥

हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरैरुपशोभितम्। पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसंयुतम्॥८॥
गवां दशकमध्ये स्यात्काञ्चनो नन्दिकेश्वरः। कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाभरणभूषितः॥९॥
लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः। कुर्यात्पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः॥१०॥
शक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु। गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत्समाचरेत्॥११॥

सुवर्ण एवं रत्नमय सींगों तथा चामरों से सुशोभित कर पादुका, जूता, छत्र, भाजन एवं आसन से संयुक्त करे। उन दसों गौओं के मध्य में सुवर्ण के नन्दिकेश्वर को रखे, जो रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित तथा विविध अलंकारों से विभूषित हों। द्रोण परिमित नमक के शिखर पर पुष्पमाला, ईख तथा फलों से संयुक्त उस नन्दिकेश्वर को स्थापित करे। इन सब सामग्रियों का समारम्भ सौ पल सुवर्ण से ऊपर तीन सहस्र पल तक अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल करे। इन सबका दशम अंश सौ गौओं के दान में व्यय करे॥८-११॥

पुण्यकालं समासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः। सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः॥१२॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः। नमोऽस्तु विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च॥१३॥
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः।
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः॥१४॥

फिर पुण्यकाल को प्राप्त कर गीत एवं मांगलिक शब्दों के होते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सभी औषधियों के जल से स्नान कराया गया यजमान कुसुमयुक्त अंजलि बाँधकर इस मन्त्र का उच्चारण करे। हे रोहिणी रूप, विश्वमूर्ति, विश्व की माताओ! तुम्हें हमारा प्रणाम है, तुम सभी लोकों को धारण करने वाली हो, हे माताओ! तुम गौओं के अंगों में इक्कीसों भुवनों का निवास है॥१२-१४॥

ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः। गावो मे अग्रतः सन्तु गावः पृष्ठत एव च॥१५॥
गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम्। यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातनः॥१६॥
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन।

ब्रह्मादि देवगण तुम्हीं में निवास करते हैं, हे रोहिणीस्वरूप! तुम सबको हमारा प्रणाम है, तुम सभी हमारी रक्षा करो। हे गौ मातृगण! तुम मेरे अग्रभाग में रहो, पृष्ठभाग में रहो, नित्य मेरे सिर पर रहो, मैं गौओं के मध्य में ही निवास करूँगा। हे सन्तान! नन्दिकेश्वर देव! जिस कारण तुम सर्वदा विद्यमान रहने वाले वृषभ स्वरूप में भगवान् अष्टमूर्ति (शिव) के अधिष्ठान माने गये हो, अतः मेरी रक्षा करो।।१५-१६.५।।

इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद् गुरवे नन्दिकेश्वरम्।।१७।।
सर्वोपकरणोपेतं गोयुतं च विचक्षणः। ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेत्।।१८।।
गवां च शतमेकैकां तदर्धं वाऽथ विंशतिम्। दश पञ्चाथ वा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया।।१९।।

इस प्रकार आमंत्रित कर सभी सामग्रियों के साथ गौ और उक्त नन्दिकेश्वर को गुरु को दान करना चाहिये तथा उन दसों गौओं में से एक-एक गाय को तथा इन गौओं में से एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस, गौओं को पुरोहितों को देना चाहिये और उनकी आज्ञा से अन्य को दस, दस अथवा पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये।।१७-१९।।

नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत्।
बह्व्यश्चैकस्य दातव्या धीमताऽऽरोग्यवृद्धये।।२०।।
पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः। श्रावयेच्छृणुयाद्वाऽपि महादानानुकीर्तनम्।।२१।।

एक ही गाय बहुतों को नहीं देनी चाहिये; क्योंकि रीति दोषपूर्ण है, प्रत्युत बुद्धिमान् यजमान को आरोग्यवृद्धि के लिए एक-एक को अनेक गौएँ देनी चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार एक सहस्र गोदान करने वाला यजमान एक दिन के लिए पुनः दुग्ध का व्रत रखे और इस महादान का अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने।।२०-२१।।

तद्दिने ब्रह्मचारी स्याद्यदीच्छेद्विपुलां श्रियम्। अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत्।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः।।२२।।
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
सर्वेषां लोकपालानां लोके सम्पूज्यतेऽमरैः।।२३।।
प्रतिमन्वन्तरं तिष्ठेत्पुत्रपौत्रसमन्वितः। सप्त लोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं व्रजेत्।।२४।।

यदि विपुल समृद्धि का वह इच्छुक है तो उस दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो मनुष्य एक सहस्र गौओं का दान करता है, वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणों से सेवित होकर सूर्य के समान तेजस्वी विमान से, जिसमें घण्टियों की माला शोभायमान रहती है, सभी लोकपालों के लोकों में अमरों द्वारा पूजित होता है एवं वहाँ पुत्र-पौत्रादि समेत प्रत्येक मन्वन्तरों में निवास करता है तथा सात लोकों का अतिक्रमण कर शिवपुर को जाता है।।२२-२४।।

शतमेकोत्तरं तद्वत्पितॄणां तारयेद्बुधः। मातामहानां तद्वच्च पुत्रपौत्रसमन्वितः॥
यावत्कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत्पुनः॥२५॥
अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः। वैष्णवः योगमास्थाय ततो मुच्येत बन्धनात्॥२६॥

बुद्धिमान् दाता अपने इस महत्पुण्यकर्म के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती एक सौ एक पितरों को तथा नाना पक्ष के पुत्र पौत्रादि युक्त पितरों को साथ ले जब तक सौ कल्प नहीं बीतता, तब तक भोग करता है तथा पुनः राजाधिराज होता है। इस नवीन जन्म में भी वह शिव के ध्यान में परायण हो सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करता है तथा वैष्णव योग की उपासना कर पुनः बन्धन से मुक्त होता है।।२५-२६।।

पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्त्रप्रदं सुतम्।
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं पुत्रो दौहित्र एव वा॥
गोसहस्त्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति॥२७॥
तस्य कर्मकरो वा स्यादपि द्रष्टा तथैव च। संसारसागरादस्माद्योऽस्मान्सन्तारयिष्यति॥२८॥
इति पठति य एतद्गोसहस्त्रप्रदानं सुरभुवनमुपेयत्संस्मरेद्वाऽथ पश्येत्।
अनुभवति मुदं वा मुच्यमानो निकामं प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम्॥२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने गोसहस्त्रप्रदानविधिर्नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८१२।।

सहस्त्र गौ दान करने वाले पुत्र का पितरगण अभिनन्दन करते हैं और सर्वदा अपने हृदय में वे यह अभिकांक्षा करते रहते हैं कि क्या हमारे कुल में कोई पुत्र, नाती ऐसा होगा, जो सहस्त्र गौ दान करके हम सबों को नरक से उबारेगा अथवा इस सहस्त्र गौ के महादान में किसी कार्य में नियुक्त होगा, या देखने के लिए जायेगा, इस संसार-सागर में डूबते हुए हम लोगों को उबार लेगा। इस प्रकार इस सहस्त्र गौ के प्रदान की विधि को जो पढ़ता है, स्मरण करता है अथवा देखता है, वह देवलोक को प्राप्त होता हैं तथा भवबन्धन से मुक्ति प्राप्त कर निरन्तर आनन्द का अनुभव करते हुए सभी पापों से विनिर्मुक्त हो इन्द्रलोक को प्राप्त करता है।।२७-२९।।

।।दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।२७८।।

अथ नवसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हिरण्य कामधेनु दान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम्। सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम्॥१॥
लोकेशावहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम्। तुलापुरुषवत्कुर्यात्कुण्डमण्डपवेदिकम्॥२॥
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्गुरुरेकः समाहितः।
काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सं च कारयेत्॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–अब इसके उपरान्त मनुष्यों को सभी मनोरथों के देने वाले, महापातकनाशी कामधेनु के दान की विधि मैं बतला रहा हूँ। पूर्व कथित प्रणाली के अनुरूप लोकपालों का आवाहन तथा अधिवासन कर तुलापुरुष दान की तरह इसमें भी कुण्ड, मण्डप एवं वेदी की रचना करनी चाहिये। स्वल्पवित्त में एकाग्नि की भाँति सुस्थिर चित्त एकमात्र गुरु को ही एतदर्थ नियुक्त करे और अति विशुद्ध सुवर्ण की धेनु और वत्स बनवाये।।१-३।।

उत्तमा पलसाहस्रा तदर्धेन तु मध्यमा। कनीयसी तदर्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिता॥४॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपीह कारयेत्। वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य गुडप्रस्थसमन्वितम्॥५॥
न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलङ्कृताम्। कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम्॥६॥
तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत्। इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम्॥
भाजनं चाऽऽसनं तद्वत्ताम्रदोहनकं तथा॥७॥

इसमें उत्तमा गौ एक सहस्रपल की होती है, उससे आधे की मध्यमा तथा उससे भी आधे की कनीयसी कही गई है। यदि असमर्थ है तो वह भी तीन पल से ऊपर की ही बनवाये। तदनन्तर वेदी में काले मृगचर्म का एक प्रस्थ परिमित गुड़ के साथ बिछावे और उसके ऊपर अति मूल्यावान् रत्नों से अलंकृत उस धेनु को स्थापित करे। उस गौ के साथ आठ कुम्भ हों तथा विविध प्रकार के फल हों। वेदी के चारों ओर अट्ठारह प्रकार के अन्नों को रखे तथा उसी प्रकार आठ ईख का दण्ड एवं विविध प्रकार के फलों को रखे और उसी के पास पाँच आसन, तथा ताँबे के बने हुये दोहन पात्र भी रखे।।४-७।।

कौशेयवस्त्रद्वयसंयुतां गां दीपातपत्राभरणाभिरामाम्।
सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां सुवर्णशृङ्गीं परिरूप्यपादाम्॥८॥
रसैश्च सर्वैः परितोऽभिजुष्टां हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्करादिभिर्वितानकं चोपरि पञ्चवर्णम्॥९॥

स्नातस्ततो मङ्गलवेदघोषैः प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः।
आवाहयेत्तां गुरुणोक्तमन्त्रैर्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः॥१०॥

तदनन्तर दो रेशमी वस्त्रों से सुशोभित, घण्टी से युक्त, सुवर्ण जटित सींगों और चाँदी जटित पैरों वाली गौ को, जो चारों ओर से सभी प्रकार के रसों से, हल्दी से, जीरा से, धनिया से तथा शक्कर से लेपन की गई हो, ऊपर पाँच वर्ण के तने हुए वितान के नीचे, मांगलिक वेद ध्वनि के बीच स्नान कर यजमान सुन्दर पुष्प हाथों में लिये हुए गुरु द्वारा उच्चारित मन्त्रों से आवाहित करे और हाथ में कुश लेकर ब्राह्मण को दे।।८-१०।।

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम्।
त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपातकौघः प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि॥११॥

और प्रार्थना करे हे विश्वेश्वरि! तुम सभी देवताओं की मन्दिर स्वरूपा हो एवं त्रिपथगा (गंगा) समुद्र एवं पर्वत सभी की अंगस्वरूपा हो, तुम्हारे दान रूप शस्त्र से विचूर्णित हो गये हैं पाप समूह जिसके-ऐसा मैं परमसन्तोष का लाभ कर रहा हूँ, तुम्हें हमारा प्रणाम है।।११।।

लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भवदुःखमुपैति मर्त्यः।
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं त्वां कामधेनुमिति देवगणा वदन्ति॥१२॥
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात्।
प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टं कन्यागणैः परिवृतः पदमिन्दुमौलेः॥१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यकामधेनुप्रदानविधिर्नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२७९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८२५।।

हे जननि! इस संसार में यथाभिलषित फल एवं अर्थ की देने वाली तुम्हें प्राप्त कर भला कौन मर्त्य ऐसा है, जो संसार के दुःखों में पड़े, हे मातः! संसार के दुःखों को शान्त करने के लिये तुम निश्चय ही यत्नशील हो, इसीलिये देवगण तुम्हें कामधेनु कहते हैं। इस प्रकार सत्कुलोत्पन्न, शीलवान्, रूपवान, गुणवान् ब्राह्मण को आमन्त्रित कर जो व्यक्ति इस सुवर्णनिर्मित कामधेनु का दान करता है, वह पुरन्दर प्रभृति देवताओं से सुसेवित तथा कन्या-समूहों से घिरा हुआ शंकर के लोक को प्राप्त करता है।।१२-१३।।

।।दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त।।२७९।।

अथाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्व प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम्। यस्य प्रदानाद्भुवने चानन्तं फलमश्नुते॥१॥
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत्॥२॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्धेमवाजिमखं बुधः॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–अब इसके उपरान्त मैं परमश्रेष्ठ हिरण्याश्व के दान की विधि बता रहा हूँ, जिसके देने से मनुष्य भुवन में अनन्त फल की प्राप्ति करता है। तुला पुरुष दान की भाँति पुण्य तिथि को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि का पाठ करा लोकपालों का आवाहन करे तथा पूर्वकथित रीति से ही मण्डप निर्माण, पुरोहित वरण, भूषण, आच्छादन एवं यज्ञ सामग्रियों को एकत्र करे। बुद्धिमान् यजमान यदि स्वल्पवित्त है तो एकाग्नि की भाँति केवल गुरु द्वारा ही इस सुवर्णाश्व का यज्ञ संपादित करे।।१–३।।

स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि। कौशेयवस्त्रसंवीतं कारयेद्धेमवाजिनम्॥४॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमा सहस्रपलादबुधः। पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनैः॥५॥
पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम्। शय्यां सोपस्करां तद्वद्धेममार्तण्डसंयुताम्॥६॥

उस सुवर्ण निर्मित अश्व को वेदी के मध्य में कृष्ण मृगचर्म एवं तिल के ऊपर स्थापित तथा रेशमी वस्त्र में परिवेष्टित करे। बुद्धिमान् पुरुष इस सुवर्णाश्व को अपनी शक्ति के अनुरूप तीन पल से ऊपर एक सहस्र पल तक बनवाये तथा पादुका, जूता, छाता, चामर, आसन एवं पात्रों से संयुक्त कर परिपूर्ण आठ कलशों से युक्त माला, पुष्प, ईख एवं फल से भी संयुक्त करे। उसी प्रकार सभी सामग्रियों समेत सुन्दर शय्या भी सुवर्ण निर्मित मार्तण्ड के समेत वहाँ रखे।।४–६।।

ततः सर्वौषधिस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः। इमामामुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥७॥
नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पट। वाजिरूपेण मामस्मात्पाहि संसारसागरात्॥८॥
त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्कर। यस्माद्भासयसे लोकानतः पाहि सनातन॥९॥

फिर वेदज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा सभी औषधियों से विमिश्रित जल से स्नान कराया गया यजमान कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर इस मन्त्र का उच्चारण करे। हे सभी देवों के स्वामी! वेदों के लाने वाले देव! अश्वरूपधारी! तुम इस संसार–सागर से मेरी रक्षा करो। हे भास्कर! तुम्हीं सात भागों में विभक्त होकर छन्दोरूप धारण कर सभी लोकों को भासित करते हो, हे सनातन! इसलिये मेरी भी रक्षा करो।।७–९।।

एवमुच्चार्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत्। दत्त्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम्॥१०॥

गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजश्चापि पूजयेत्। सर्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत्॥११॥
सर्वं शय्यादिकं दत्त्वा भुञ्जीतातैलमेव हि। पुराणश्रवणं तद्वत्कारयेद्भोजनादनु॥१२॥

इस प्रकार कह कर उस अश्व को गुरु को दान करे। दान देकर पाप के नष्ट हो जाने के कारण वह मनुष्य सूर्य के अक्षयलोक को प्राप्त करता है। अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल गौओं द्वारा अन्य पुरोहितों की पूजा करे, तथा सभी प्रकार के अन्न एवं सामग्रियों की गुरु को निवेदन करे एवं सभी शैया आदि वस्तुओं को निवेदित कर तैल को छोड़कर भोजन करे और भोजन के पश्चात् पुराणों का श्रवण करे।।१०-१२।।

इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः पुण्यं समासाद्य दिनं नरेन्द्र।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन्॥१३॥
इति पठति य एतद्धेमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन युक्तः।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते योऽभिपश्येत्॥१४॥

हे नरेन्द्र! इस प्रकार पुण्य दिन को प्राप्त कर इस स्वर्णाश्व दान को विधि के अनुकूल जो मनुष्य करता है, वह पापों से विमुक्त होकर सिद्धों द्वारा पूजित होकर मुरारि के पद को प्राप्त करता है। इस सुवर्णाश्व के दान विधि को जो मनुष्य पढ़ता है तथा देखता है, वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त कर सुवर्णमय विमान द्वारा सूर्य के लोक को प्राप्त करता है तथा देवपतियों की बधुओं द्वारा पूजित होता है।।१३-१४।।

यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके।
साऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः स्थानं पुरन्दरमहेश्वरदेवजुष्टम्॥१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वप्रदानविधिर्नामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२८०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८४०।।

अथवा जो अल्पवित्त पुरुष इसकी विधि को सुनता है, स्मरण करता है तथा सुवर्णाश्व दान की विधि का लोक में अभिनन्दन करता है, वह भी सभी पापों के नष्ट हो जाने से विशुद्ध शरीर वाला हो पुरन्दर, महेश्वर प्रभृति देवेशों से सेवित परमपुनीत स्थान को प्राप्त करता है।।१५।।

।।दो सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त।।२८०।।

अथैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्वरथ प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम्॥१॥
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत्॥२॥

मत्स्य भगवान् ने कहा–अब इसके उपरान्त सर्वश्रेष्ठ पुण्यप्रद अश्वरथ नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ, जो महापापों को नष्ट करने वाला है। इस दान में भी पूर्व कथित तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन को प्राप्त कर यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यन आदि मांगलिक ध्वनि कराकर लोकपाल आदि का आवाहन करे॥१-२॥

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद्रथम्॥३॥
सप्ताश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम्। ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम्॥४॥
लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम्। चतुरः पूर्णकलशान्धान्यान्यष्टादशैव तु॥५॥

तथा पूर्व कथित रीति से पुरोहित-वरण, मण्डप निर्वाण, यज्ञ-सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि को एकत्र करे। फिर कृष्ण मृगचर्म पर तिलों के ऊपर सुवर्णमय रथ की स्थापना करे। वह रथ सात अश्वों से युक्त अथवा पाँच अश्वों से युक्त हो। चार चक्के हों, जुआ बना हो, इन्द्रनीलमणि के कलश तथा ध्वजाओं से सुशोभित हो, आठों लोकपालों से युक्त हो। पद्मराग मणि के दल बने हों, चार भरे हुए मंगल कलश तथा अट्ठारह प्रकार के धान्य भी रखे हों॥३-५॥

कौशेयवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम्। माल्येक्षुफलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम्॥६॥
यो यद्भक्तः पुमान्कुर्यात्स तन्नाम्नाऽधिवासनम्। छत्रचामरकौशेयवस्त्रोपानहपादुकम्॥७॥
गोभिर्विभवतः सार्धं दद्याच्च शयनादिकम्।
अभावात्त्रिपलादूर्ध्वं शक्तितः कारयेद्बुधः॥८॥

सुन्दर रेशमी वस्त्रों से सुशोभित हो, ऊपर चंदोआ तना हो, पुष्पमाला, ईख तथा फल से संयुक्त एवं पुरुष से समन्वित हो। जो पुरुष उस देवता का विशेष भक्त हो, उसी के नाम का उच्चारण कर उसमें अधिवासन कराये। छत्र, चामर, रेशमी वस्त्र, जूते, पादुका और गौओं के साथ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार शय्या आदि का दान करे। बुद्धिमान् पुरुष अभाव में तीन पल सुवर्ण से अधिक तौल का रथ बनवाये॥६-८॥

अश्वाष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथ वाजिभिः। द्वाभ्यामपि युतं दद्याद्धेमसिंहध्वजान्वितम्॥९॥
चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ। पुण्यकालमथावाप्य पूर्ववत्स्नापितो द्विजैः॥१०॥

आठ, चार अथवा दो ही अश्वों से युक्त रथ हो, उसी प्रकार रथ के अनुकूल सुवर्ण की ध्वजा एवं सिंह भी उसके साथ हों। उस रथ एवं अश्व के आरोही दोनों अश्विनीकुमार हैं, जो उन्हीं अश्वों पर अवस्थित रहकर चक्कों की रक्षा का कार्य करते हैं। इस प्रकार पुण्यकाल प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा पूर्वकथित मन्त्रादि एवं औषधियों के जल से स्नान कर यजमान के हाथों में पुष्पाञ्जलि लिये हुए तीन प्रदक्षिणा कर, श्वेत वस्त्र धारण कर इस निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए दान करे।।९-१०।।

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः। शुक्लमाल्याम्बरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्।।११।।

नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय।
धाम्नामधीशाय दिवाकराय पापौघदावानलदेहि शान्तिम्।।१२।।
वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम्।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमघौघनाशात्।।१३।।

"हे विश्वात्मन्! वेदतुरंगम, पापविनाशन, तेजोधिपति पापौध के दावानल! दिवाकर! तुम हमें शान्ति प्रदान करो, हमारा तुम्हें प्रणाम है। तुम आठों वसुगण, आदित्यगण एवं मरुतगणों के धाता हो, परमनिधान हो, अतः तुम्हारी कृपा से पाप-पुञ्ज के विनाश हो जाने से मेरा हृदय धर्म की एकस्वरूपता को प्राप्त करे।।११-१३।।

इति तुरगरथप्रदानमेतद्भवभयसूदनमत्र यः करोति।
स कलुषपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः।।१४।।
देदीप्यमानवपुषा विजितप्रभावमाक्रम्य मण्डलमखण्डितचण्डभानोः।
सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमानवक्त्राम्बुजोऽम्बुजभवेन चिरं सहाऽऽस्ते।।१५।।

इस प्रकार विधिपूर्वक इस लोक में जो मनुष्य भवभयनाशक इस तुरगरथ प्रदान नामक महादान को देता है, वह कलिकलुष के परदों के विनष्ट हो जाने से विमुक्त शरीर हो पिनाकपाणि के पुनीत पद की प्राप्ति करता है, तथा इसके अमोघ प्रभाव से देदीप्यमान शरीर द्वारा अखण्डित चण्डभानु के निखिल मण्डल को आक्रान्त करता है एवं समस्त देहधारियों को विजित कर सिद्धों की स्त्रियों के भ्रमररूप नेत्रों से पीत कमलमुख हो चिरकाल पर्यन्त ब्रह्मा के साथ निवास करता है।।१४-१५।।

इति पठति शृणोति वा य इत्थं कनकतुरगरथप्रदानमस्मिन्।
न स नरकपुरं व्रजेत्कदाचिन्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः।।१६।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वरथप्रदानविधिर्नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२८१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८५६।।

इस मर्त्यलोक में जो प्राणी इस सुवर्ण तुरग रथ नामक महादान की विधि को पढ़ता है, सुनता है, वह कभी नरकलोक को नहीं जाता और बारम्बार नरकासुर के शत्रु भगवान् कृष्ण (विष्णु) के लोक को प्राप्त करता है।।१६।।

।।दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त।।२८१।।

अथ द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हेम हस्तिरथ प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम्। यस्य प्रदानाद्भवनं वैष्णवं याति मानवः।।१।।

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं मंगलकारी सुवर्ण के हस्ती रथ नामक महादान का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके देने से मनुष्य विष्णु के लोक को प्राप्त करता है।।१।।

पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत्। विप्रवाचनकं कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः।।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।।२।।
अत्राप्युपोषितस्तद्वद्ब्राह्मणैः सह भोजनम्। कुर्यात्पुष्परथाकारं काञ्चनं मणिमण्डितम्।।३।।
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम्। कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद्रथम्।।४।।

पूर्व कथित तुलापुरुष दान की भाँति पुण्यप्रद तिथि प्राप्त कर बुद्धिमान् यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययानादि मांगलिक वाचन कराकर लोकपालों का आवाहन करे तथा उसी प्रकार पुरोहित-वरण मण्डप-रचना, यज्ञ-सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि का प्रबन्ध करे। इस महादान में भी उपवास रखकर ब्राह्मणों के साथ भोजन करे। मणियों से सुशोभित पुष्परथ के आकार के समान सुवर्ण का रथ बनवाये, जिसमें विचित्र बलभियाँ (छज्जे) बनी हों तथा चार चक्के हों। उस रथ को कृष्ण मृगचर्म के ऊपर रखे गये एक द्रोण परिमित तिल पर स्थापित करे।।२-४।।

लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम्। मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम्।।५।।
तथाऽष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः। दीपकोपानहच्छत्रदर्पणं पादुकान्वितम्।।६।।
ध्वजे तु गरुडं कुर्यात्कूबराग्रे विनायकम्। नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम्।।७।।
कौशेयं पञ्चवर्णं तु अम्लानकुसुमान्वितम्। चतुर्भिः कलशैः; सार्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम्।।८।।

उस रथ पर आठों लोकपालों तथा ब्रह्मा, सूर्य एवं शिव की प्रतिमाएँ भी बनी हों। मध्य भाग में लक्ष्मी के समेत विष्णु भगवान् की भी मूर्ति हो। उसमें पात्र, आसन, चन्दनादि सामग्रियाँ,

अट्ठारह प्रकार के अन्य दीपिका, जूता, छत्र, दर्पण एवं पादुकाएँ भी हों। ध्वज पर गरुड़ की तथा जूआ के अग्रभाग पर विनायक की कल्पना करे। रथ विविध प्रकार के फलों से युक्त हो तथा उसके ऊपर चँदोवा तना हुआ हो। उसके ऊपर चारों ओर से पाँच वर्णों के रेशमी वस्त्र शोभित हो रहे हों तथा सुन्दर विकसित पुष्पों से भी वह सुशोभित किया गया हो, चार मांगलिक कलश तथा आठ गौएँ भी साथ हों।।५-८।।

चतुर्भिर्हेममातङ्गैर्मुक्तादामविभूषितैः। स्वरूपतः करिभ्यां च युक्तं कृत्वा निवेदयेत्॥९॥
कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमा भारादपि शक्तितः। तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः॥१०॥
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्॥११॥

मोतियों की मालाओं से सुशोभित चार सुवर्ण के हाथी हों। स्वरूपतः इन हाथियों को रथ में संयुक्त कर दान करना चाहिये। अपनी शक्ति के अनुकूल इस दान में पाँच पल सुवर्ण की तौल से एक भार तक सुवर्ण लगाना चाहिये। इस प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक शब्दों के बीच स्नान कराया गया यजमान कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर तीन प्रदक्षिणा करे तथा निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों को दान करे।।९-११।।

नमो नमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञैस्तेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात्॥१२॥
यत्तत्पदं परमगुह्यतमं मुरारेरानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमत्र।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथाधिरूढ॥१३॥

'हे तेजोमय स्यन्दन! तुम शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोकपाल, विद्याधर एवं वासुदेव से सेवित हो, वेद पुराण एवं सभी यज्ञ तुम्हारी सेवा में निरत हैं, अतः हमारी रक्षा करो। हे रथाधिरूढ़ स्वामिन्! जिस आनन्द के कारण गुण, रूपविमुक्त, परम गोपनीय मुरारि के पद को एकमात्र योगदृष्टि द्वारा मुनिगण समाधिकाल में देखते हैं, वह तुम्हीं हो।।१२-१३।।

यस्मात्त्वमेव भवसागरसंप्लुतानामानन्दभाण्डमृतमध्वरपानपात्रम्।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं चामीकरेभरथ माधव सम्प्रदानात्॥१४॥
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं यः कारयेत्सकलपापविमुक्तदेहः।
विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः॥१५॥
कृतदुरितवितानप्रज्वलद्वह्निजालव्यतिकरकृतदाहोद्वेगभाजोऽपि बन्धून्।
नयति स पितृपुत्रान्बान्धवानप्यशेषान्कृतगजरथदानाच्छाश्वतं सद्म विष्णोः॥१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमहस्तिरथप्रदानविधिर्नामद्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२८२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८७२।।

हे माधव! तुम्हीं भवसागर में डूबने वालों को आनन्द देने वाले, अमृत स्वरूप तथा यज्ञों में पान के पात्र हो, अतः तुम इस सुवर्णमय हस्ती युक्त रथ के दान से हमारे पाप-पुञ्जों को नष्ट कर हमारे ऊपर प्रसन्न हो। इस प्रकार प्रणाम करके जो पुरुष कनक हस्तीयुक्त रथ का दान करता है, वह सभी पापों के नष्ट हो जाने से विशुद्ध देह हो, विद्याधर, देवगण, मुनीन्द्रगण द्वारा सेवित, शंकर के अदृष्ट लोक को प्राप्त करता है और पूर्वजन्म के किये गये दुष्कर्मों के समूहरूप प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं में झुलसते हुए, दुःख भोगने वाले अपने समस्त बन्धुओं, पितरों, पुत्रों, परिवार वर्गों को इस हस्तिरथ के दान से विष्णु भगवान् के शाश्वत लोक में पहुँचाता है।।१४-१६।।

।।दो सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त।।२८२।।

अथ त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चलाङ्गल प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम्।।१।।
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य युगादिग्रहणादिकाम्। भूमिदानं नरो दद्यात्पञ्चलाङ्गलकान्वितम्।।२।।
खर्वटं खेटकं वाऽपि ग्रामं वा सस्यशालिनम्।
निवर्तनशतं वाऽपि तदर्धं वाऽपि शक्तितः।।३।।

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब इसके बाद मैं महापातकनाशी अतिश्रेष्ठ पञ्चलाङ्गलक नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। युगादि की तथा ग्रहण आदि की पुण्य तिथियों को प्राप्त कर मनुष्य पाँच हलों से युक्त भूमि का दान करे। पर्वत तथा नदी से तटवर्ती ग्राम को, कृषि कर्म के योग्य ग्राम को, जो अन्नादि से युक्त हो, एक सौ निर्वतन (नीचे मूल में निर्वतन का परिमाण दिया गया है) अथवा उसके आधे को, अपनी शक्ति के अनुकूल दान करे।।१-३।।

सारदारुमयान्कृत्वा हलान्पञ्च विचक्षणः। सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान्पञ्च च काञ्चनान्।।
कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्त्रपलावधि।।४।।
वृषाल्लक्षणसंयुक्तान्दश चैव धुरन्धरान्। सुवर्णशृङ्गाभरणान्मुक्तालाङ्गुलभूषणान्।।५।।
रूप्यपादाग्रतिलकान्नक्तकौशेयभूषणान्। स्त्रग्दामचन्दनयुताञ्शलायामधिवासयेत्।।६।।

विचक्षण यजमान पाँच काष्ठमय हलों को सभी सामग्रियों से युक्त कर तथा अन्य पाँच सुवर्ण के बने हुए हलों को कम से कम पाँच पल तौल से ऊपर एक सहस्त्र पल तक बनवाये। दस

वृषभों को, जो उत्तम लक्षणों से युक्त हों, उनकी सींगें सुवर्ण से जटित हों, पूंछों पर मोती की लड़ियों का आभूषण हो, पैरों में चाँदी मढ़ी हो, सिर पर तिलक लगे हों, लाल रेशमी वस्त्र से सुशोभित हों, माला तथा चन्दन से युक्त हों, शाला में अधिवासित कराये।।४-६।।

पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम्। एकस्मिनेव कुण्डे तु गुरुस्तेभ्यो निवेदयेत्।।७।।
पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलास्तथा। तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः।।८।।

तथा पर्जन्य आदित्य एवं रुद्र को खीर की चरु निवेदित करे। एक ही कुण्ड में गुरु तथा इन सबों को निवेदित करे। इस दान के हवन कार्य में पलाश की समिधाएँ, घृत तथा काले तिल को रखना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष तुला पुरुष की भाँति लोकपालों का आवाहन करे। तदनन्तर मांगलिक शब्दों के मध्य शुक्ल वस्त्र एवं पुष्प धारण कर बुद्धिमान् पुरुष द्विज दम्पत्ति का आवाहन करे।।७-८।।

ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः। आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः।।९।।
कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत्। शय्यां सोपस्करां दद्याद्धेनुमेकां पयस्विनीम्।।१०।।
तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तादधिवासयेत्। ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः।।११।।

तदनन्तर मांगलिक शब्दों के मध्य शुक्ल वस्त्र एवं पुष्प धारण कर बुद्धिमान् पुरुष द्विज दम्पत्ति का आवाहन कर सुवर्णमय सूत्र, अंगूठी, रेशमी वस्त्र, सुवर्ण के कटक एवं मणियों द्वारा पूजा करे। सभी सामग्रियों समेत शय्या तथा एक दूध देने वाली गाय का दान करना चाहिये। चारों ओर अट्ठारह प्रकार के अन्नों को रखना चाहिये। तब हाथों में कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण कर निवेदन करे।।९-११।।

इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत्। यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च।।१२।।
धुरन्धराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे।
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।१३।।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्म एव दृढा भवेत्। दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम्।।१४।।
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः। मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः।।

यतः सभी देवगण, स्थावर एवं चर जीव भारवाही वृषभों के अंग में निवास करते हैं, अतः शिव में हमारी भक्ति हो। यतः अन्य सभी दान भूमिदान की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं करते, अतः इस दान से मेरी भक्ति धर्म में दृढ़तर हो। सात हाथ के दण्ड से तीस दण्ड नापने पर एक निवर्तन होता है और इसके तिहाई अंश से न्यून को गोचर्म कहते हैं-यह मान प्रजापति ने कहा है।।१२-१४.५।।

विधिनाऽनेन तस्याऽऽशु क्षीयते पापसंहतिः।।१५।।
तदर्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम्। भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते।।१६।।

जो बुद्धिमान् पुरुष इस मान के अनुसार एक सौ निर्वतन भूमि को इस विधि से दान करता है, उसके पापपुञ्ज शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं अथवा उसका अर्द्धभाग या गोचर्म मात्र अथवा एक भवन बनाने योग्य स्थान मात्र भूमि का दो दान करता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है।।१५-१६।।

यावन्ति लाङ्गलकमार्गमुखानि भूमेर्भासाम्पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि।
तावन्ति शङ्करपुरे स समा हि तिष्ठेद् भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः।।१७।।
गन्धर्वकिन्नरसुरासुरसिद्धसङ्घैराधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम्।
सम्पूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः शम्भोः पदं व्रजति चामरनायकः सन्।।१८।।
इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति गोभूमिलाङ्गलधुरन्धरसम्प्रदानात्।
तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमेर्दानं विधेयमिति भूतिभवोद्भवाय।।१९।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने पञ्चलाङ्गलप्रदानविधिर्नामत्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२८३।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८९१।।

जो पुरुष इस मर्त्यलोक में भूमि प्रदान करता है। उस भूमि में जितने भी लाङ्गलक के मुखमार्ग होते हैं तथा सूर्यपुत्री के अङ्ग में जितनी रोमावलि है, उतने ही वर्षों तक वह शंकरपुर में निवास करता है तथा गन्धर्व, किन्नर, सुर, असुर एवं सिद्धों के समूहों द्वारा तक वह शंकरपुर में निवास करता है तथा गन्धर्व, किन्नर, सुर, असुर एवं सिद्धों के चँवर डुलाये जाते हुए महान् विमान को प्राप्त कर पिता, पितामह एवं बन्धुवर्गों से युक्त चामर नायक होकर शम्भु के पद को प्राप्त होकर पूजित होता है। मनुष्य इस गौ, भूमि, लाङ्गल एवं वृषभों के प्रदान करने से इन्द्रत्व आदि अविनाशशील पदों को प्राप्त करता है। अत पापपुञ्ज परदे को नष्ट करने वाले भूमि के दान को भूति एवं समृद्धि के लिए मनुष्य को अवश्यमेव देना चाहिये।।१७-१९।।

।।दो सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।।२८३।।

❖❖❖

अथ चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हेम पृथ्वीदान माहात्म्य

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धरादानमनुत्तमम्। पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम्।।१।।
कारयेत्पृथिवीं हैमीं जम्बूद्वीपानुकारिणीम्। मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम्।।२।।

लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम्। नदीनदसमोपेतां सप्तसागरवेष्टिताम्॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं मनुष्यों के अमङ्गल का विनाश करने वाले सर्वश्रेष्ठ धरादान नामक दान की विधि को बतला रहा हूँ। इस दान में जम्बूद्वीप के आकार की भाँति सुवर्णमयी पृथ्वी की रचना करवाये, उसके मध्य भाग में सुमेरु हो, पर्वतों की मर्यादा बनी हो, आठों लोकपाल एवं नवों वर्षों से युक्त हो, नदी एवं नदों से समन्वित तथा सातों समुद्रों से परिवेष्टित हो॥१-३॥

महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम्। हेम्नः पलसहस्रेण तदर्धेनाथ शक्तितः॥४॥
शतत्रयेण वा कुर्याद्द्विशतेन शतेन वा। कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि विचक्षणः॥५॥
तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥६॥

उसे महारत्नों से जटित, वसु, रुद्र तथा आदित्यों से संयुक्त बनवाये। इस पृथ्वी को एक सहस्र पल सुवर्ण के तौल की बनानी चाहिये अथवा अपनी शक्ति के अनुकूल उसके आधे भाग द्वारा अथवा तीन सौ पल, दो सौ पल का बनवाये। विचक्षण पुरुष अपनी असमर्थता में पाँच पल से ऊपर की बनवाये। बुद्धिमान् पुरुष तुला पुरुष दान की भाँति लोकपालों का आवाहन करे और उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि सामग्रियों को यथास्थान रखे॥४-६॥

वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा तिलानुपरि विन्यसेत्।
तथाऽष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान्॥७॥
तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्परिकल्पयेत्। वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च॥८॥
तथांऽशुकानि रम्याणि श्रीखण्डशकलानि च। इत्येवं कारयित्वा तामधिवासनपूर्वकम्॥९॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥१०॥
पुण्यं कालमथाऽऽसाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्। नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः॥११॥
धात्री त्वं सर्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे।

वेदी पर कृष्ण मृगचर्म के ऊपर तिल रखकर उस पर पृथ्वी की प्रतिमा रखे तथा अट्ठारह प्रकार के अन्नों, रसों तथा लवणादि को रखे। सभी ओर भरे हुए आठ मांगलिक कलशों को स्थापित करे। चँदोवा, रेशमी वस्त्र तथा विविध प्रकार के फलों से सुशोभित करे तथा मनोहर रेशमी वस्त्रों, चन्दनों के टुकड़ों से अलंकृत कर अधिवासन करने के बाद शुक्ल वस्त्र तथा पुष्पमाला धारण कर श्वेतवर्ण के आभूषणों से विभूषित हो कुसुमाञ्जिलि ग्रहण कर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल में इस मन्त्र का उच्चारण करे। 'हे वसुन्धरे! तुम्हीं सभी देवताओं की भावनरूपा हो, सभी जीवों की धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो॥७-११.५॥

वसु धारयसे यस्माद्वसु चातीव निर्मलम्॥१२॥

वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम्।
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले॥१३॥
अनन्तायै नमस्तस्मात्पाहि संसारकर्दमात्।
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति चाऽऽस्थिता॥१४॥
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा।
बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता॥१५॥

अतः तुम सभी प्रकार के अति निर्मल पुष्टिकारक अन्नादि को धारण करने वाली हो, अतः वसुन्धरा तुम्हारा नाम है, अतः मेरी संसार के भय से रक्षा करो। हे अचले! यतः चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्त को नहीं प्राप्त कर सकते अतः तुम अनन्ता हो, तुम्हें हमारा प्रणाम है, इस संसार रूपी कीचड़ से मेरी रक्षा करो। तुम्हीं ने विष्णु में लक्ष्मी, शिव में गौरी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की है, ब्रह्मा के समीप तुम्हीं गायत्री हो, चन्द्रमा में तुम्हीं ज्योत्स्ना तथा रवि में तुम्हीं प्रभा हो। बृहस्पति में तुम्हीं बुद्धि नाम से प्रसिद्ध हो, मुनियों में तुम्हींमेघा नाम से विख्यात हो।।१२-१५।।

विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा स्मृता।
धृतिः स्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा॥१६॥
एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात्। एवमुच्चार्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्॥१७॥
धरार्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत्। शेषं चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥१८॥

अतः तुम समस्त विश्व में व्याप्त हो अतः विश्वम्भरा नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि है, तुम्हें ही धृति, स्थिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुमती तथा रसा नाम से लोग पुकारते हैं, हे देवि! अपनी इन विमल विभूतियों से तुम इस संसार-सागर से मेरी रक्षा करो।" इस प्रकार उच्चारण कर पृथ्वी की मूर्ति को ब्राह्मणों को निवेदित करे। धरा के आधे भाग को अथवा चौथाई भाग को गुरु को समर्पित करे। शेष बराबर भागों में पुरोहितों को प्रणतिपूर्वक समर्पित करे।।१६-१८।।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम्।
पुण्यकाले तु सम्प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम्॥१९॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना। नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथाऽऽवसेत्॥
पितृन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम्॥२०॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादपि कलुषवितानैर्मुक्तदेहः समन्तात्।
दिवममरवधूभिर्याति सम्प्रार्थ्यमानो पदममरसहस्त्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः॥२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमपृथिवीदानमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२८४।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३९१२।।

इस प्रकार उपर्युक्त विधि समेत पुण्यकाल में जो मनुष्य सुवर्णनिर्मित कल्याणी वसुन्धरा का दान करता है, वह वैष्णव पद को प्राप्त करता है तथा किंकिणी के जालों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी विमान द्वारा नारायण के पुर में प्राप्त होकर तीन कल्प पर्यन्त निवास करता है एवं संख्या में इक्कीस पितरों, पुत्रों तथा पौत्रों का उद्धार करता है। इस प्रकार इस सुवर्णनिर्मित धरादान की विधि को मनुष्य किसी प्रसंग में पढ़ता है अथवा श्रवण करता है, वह अपने सभी पाप के वितानों से मुक्त शरीर होकर अमराङ्गनाओं द्वारा प्रार्थित होकर सहस्रों देवताओं द्वारा सेवित शंकर के निर्मल लोक को प्राप्त करता है।।१९-२१।।

।।दो सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त।।२८४।।

अथ पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विश्वचक्र प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुमत्तमम्। विश्वचक्रमिति ख्यातं महापातकनाशनम्।।१।।
तपनीयस्य शुद्धस्य विश्वचक्रं तु कारयेत्। श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्धेन तु मध्ययम्।।२।।
तस्यार्धेन कनिष्ठं स्याद्विश्वचक्रमदाहृतम्। अन्यद्विंशत्पलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत्।।३।।

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब इसके उपरान्त विश्वचक्र नामक महापातकनाशी अति श्रेष्ठ महादान की विधि बतला रहा हूँ। अति शुद्ध सुवर्ण का विश्वचक्र निर्मित करवाये, यह विश्वचक्र एक सहस्र पल सुवर्ण की तौल का उत्तम होता है, उससे अर्धभाग में मध्यम होता है, उससे भी आधे का कनिष्ठ बताया गया है। अशक्त पुरुष एक अन्य प्रकार के बीस पल तौल के विश्वचक्र को निवेदित करे।।१-३।।

षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम्। नाभिपद्मे स्थितं विष्णु योगारूढं चतुर्भुजम्।।४।।
शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वे तु देव्यष्टकसमावृतम्। द्वितीयावरणे तद्वत्पूर्वतो जलशायिनम्।।५।।
अत्रिर्भृगुर्वसिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च। मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।।६।।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कीति च क्रमात्।

यह चक्र सोलह अरों वाला, घूमता हुआ तथा तथा आठ नेमि वाला हो, नाभि के पद्म में योगारूढ़ चतुर्भुज विष्णु स्थित रहें। उनके पार्श्व में शंख एवं चक्र हो, आठों देवियाँ चारों ओर से घेरे हुये हों। दूसरे आवरण में उसी प्रकार जलशायी, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन रामचन्द्र, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि-इन सबको क्रम से स्थापित करे।।४-६.५।।

तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता॥७॥
चतुर्थे द्वादशाऽऽदित्या वेदाश्चत्वार एव च। पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु॥८॥
लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातङ्गस्तथैव च। सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गलानि च कारयेत्॥९॥
अन्तरान्तरतो देवान्विन्यसेदष्टमे पुनः। तुलापुरुषवच्छेषं समन्तात्परिकल्पयेत्॥१०॥

तीसरे आवरण में मातृकाओं तथा वसुओं से युक्त गौरी हों, चतुर्थ में बारहों आदित्य तथा चारों वेद हों, पाचवें में पाँचों महाभूत तथा ग्यारहों रुद्रगण हों, छठें आवरण में आठों लोकपाल तथा दिशाओं के दिग्गज हों, सप्तम में सभी प्रकार के मांगलिक अस्त्रों को तथा अष्टम में थोड़े-थोड़े अन्तर पर देवताओं को स्थापित करे। शेष भागों में तुला पुरुष दान की भाँति अन्य देवताओं को कल्पित करे।।७-१०।।

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। विश्वचक्रं ततः कुर्यात्कृष्णाजिनतिलोपरि॥११॥
तथाऽष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान्। पूर्णकुम्भाष्टकं चैव वस्त्राणि विविधानि च॥१२॥
माल्येक्षुफलरत्नानि वितानं चापि कारयेत्।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो गृही॥
होमाधिवासनान्ते वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥१३॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणम्। नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः॥१४॥

तथा पुरोहितवरण, मण्डल-निर्माण, यज्ञ सामग्री, भूषण, आच्छादनादि को भी उसी प्रकार रखे। तब उक्त विश्वचक्र को कृष्ण मृगचर्म पर रखे गये तिल के ऊपर स्थातिप करे तथा अट्ठारह प्रकार के अन्न, रस, लवण आदि, आठ भरे हुए मांगलिक कलश, विविध प्रकार के वस्त्र, पुष्प-माला आदि, ईख, फल, रत्न वितान-इस सब को यथास्थान रखे। तदनन्तर मांगलिक शब्दों के होते हुए यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर हवन एवं अधिवासन के उपरान्त कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर तीन प्रदक्षिणा कर इस यंत्र का उच्चारण करे। 'हे विश्वमय' विश्वचक्रात्मन्! तुम्हें हमारा प्रणाम है।।११-१४।।

परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात्। तेजोमयमिदं यस्मात्सदा पश्यन्ति योगिनः॥१५॥
हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्। वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः॥१६॥
अन्योन्याधररूपेण प्रणमामि स्थिताविह। विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं परम्॥१७॥
आयुधं चापि वासश्च भवादुद्धर मामतः।

तुम परमानन्दस्वरूप हो, पाप रूप कीचड़ से हमारी रक्षा कीजिये, यतः इस तेजोमय विश्वचक्र को, जिसके गुणों की कोई सीमा नहीं है, योगीगण सदा देखते हैं, हृदय में तत्त्वरूप से धारण करते हैं, अतः उसे हमारा प्रणाम है, यह विश्वचक्र वासुदेव में अवस्थित है और इस चक्र के मध्यभाग में माधव स्थित हैं, अतः एक-दूसरे के आधार पर यहाँ अवस्थित दोनों को हमारा प्रणाम है, अतः यह विश्वचक्र सभी बड़े पातकों का विनाश करने वाला कहा गया है, भगवान् का आयुध स्वरूप है तथा उनका निवास रूप भी है, अतः इस भव से वह मेरी रक्षा करे।।१५-१७.५।।

इत्यामन्त्र्य च यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरः॥१८॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते। वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः॥१९॥

इस प्रकार आमन्त्रित कर जो मनुष्य मत्सर रहित हो इस विश्वचक्र का दान करता है, वह सभी पापों से विमुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है, तथा वैकुण्ठ लोक को प्राप्त कर चतुर्बाहुत्व एवं सनातनत्व की प्राप्ति करता है।।१८-१९।।

सेव्यतेऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत्कल्पशतत्रयम्। प्रणमेद्वाऽथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने॥
तस्याऽऽयुर्वर्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत्॥२०॥

वहाँ अप्सराओं के समूहों द्वारा सेवित होकर वह तीन सौ कल्प पर्यन्त निवास करता है। अथवा जो व्यक्ति इस विश्वचक्र का निर्माण कर प्रतिदिन प्रणाम करता है, उसकी आयु बढ़ती है तथा नित्य लक्ष्मी की वृद्धि होती है।।२०।।

इति सकलजगत्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोडशारम्।
हरिभवनमुपागतःस सिद्धैश्चिरमभिगम्य नमस्यते शिरोभिः॥२१॥
असुदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनतां च कामिनीभ्यः।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदग्धपापः॥२२॥
कृतगुरुदुरितानि षोडशारप्रवितरणे प्रवराकृतिर्मुरारेः।
अभिभवति भवोद्भवानि भित्त्वा भवममितो भवने भयानि भूयः॥२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने विश्वचक्रप्रदानविधिर्नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२८५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३९३५।।

—※※※—

इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो व्यक्ति सुवर्णनिर्मित सोलह अरों से युक्त समस्त जगत् एवं देवताओं के अधिष्ठान रूप इस चक्र को वितरित करता है, वह विष्णु भवन को प्राप्त होता है तथा उसको सिद्धगण सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। वह पुरुष सुवर्णनिर्मित सुदर्शन के दान से निष्पाप होकर शत्रुओं को विकराल रूप में तथा कामिनियों को मदन की भाँति सुन्दर कमनीय रूप में दिखाई पड़ता है तथा शुभदर्शन केशव की भाँति मनोरम स्वरूप धारण करता है। इस सोलह अरों वाले सुवर्ण निर्मित चक्र के दान करने से किये गये महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और कर्त्ता मुरारि की श्रेष्ठ आकृति प्राप्त करता है तथा भव-भय को भेदन कर बारम्बार जन्म-मरण के भय को भी दूर करता है।।२१-२३।।

।।दो सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त।।२८५।।

अथ षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
कनक-कल्पलता प्रदान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। महाकल्पलतानाम महापातकनाशनम्॥१॥
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥२॥
तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः।

मत्स्य भगवान् ने कहा–अब इसके उपरान्त मैं महापापों को नष्ट करने वाले अति उत्तम महाकल्पलता नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। पुण्य तिथि को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यनादि मांगलिक पाठ करवा कर पूर्वकथित तुला पुरुष दान की विधि के समान पुरोहित वरण, मण्डप-निर्माण, यज्ञसामग्री, आभूषण एवं आच्छादनादि का प्रबन्ध करे तथा उसी प्रकार बुद्धिमान् यजमान लोकपालों का आवाहन करे॥१-२.५॥

चामीकरमयीः कुर्याद्दश कल्पलताः समाः॥३॥
नानापुष्पफलोपेता नानांशुकविभूषिताः। विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः॥४॥
पुष्पाण्यादित्सुभिः सिद्धैः फलानि च विहङ्गमैः।
लोकपालानुकारिण्यः कर्तव्यास्तासु देवताः॥५॥

सुवर्णनिर्मित बराबर परिणाम की दस कल्पलताएँ बनवाये, जो विविध प्रकार के फलों से युक्त तथा विविध प्रकार के रेशमी वस्त्रों से विभूषित हों। वे लताएँ विद्याधरों तथा गरुड़ के दम्पत्ति से सुशोभित हों। उन कल्पलताओं को पुष्प चुनने के इच्छुक सिद्धों, फल चुनने के इच्छुक पक्षियों तथा लोकपालों के समान आकृति वाली वन देवताओं से युक्त बनाना चाहिये॥३-५॥

ब्राह्मीमनन्तशक्तिं च लवणस्योपरि न्यसेत्। अधस्ताल्लतयोर्मध्ये पद्मशङ्खकरे शुभे॥६॥
इभासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा। रजन्यजस्थिताऽग्नायी स्रुवपाणिरथानले॥७॥
याम्ये च महिषारूढागदिनी तण्डुलोपरि। घृते तु नैर्ऋती स्थाप्या सखड्गा दक्षिणापरे॥८॥

फिर लवणराशि के ऊपर ब्रह्मा एवं अनन्त (विष्णु) की शक्ति (पत्नी) को स्थापित करे। दो लताओं के निम्नभाग में उन दोनों मंगलदात्री देवियों को पद्म एवं शंख से सुशोभित हाथों वाली बनावे। पूर्व दिशा में गुड़ के ऊपर कुलिश का अस्त्र धारण किये हुए हाथी पर विराजमान इन्द्राणी को स्थापित करे। तत्पश्चात् अग्निकोण में अग्नायी को हरिद्रा से सुशोभित अजा पर अवस्थित हाथ में स्रुवा लिये हुए स्थापित करे। दक्षिण दिशा में तण्डुल पर महिषारूढ़ गदा धारण किये हुए स्थापित करे। नैर्ऋतकोण में घृत के ऊपर खड्ग समेत नैर्ऋति की स्थापना करे॥६-८॥

वारुणे वारुणी क्षीरे झषस्था नागपाशिनी। पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि॥९॥
सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता।
माहेश्वरी वृषारूढा नवनीते त्रिशूलिनी॥१०॥

पश्चिम दिशा में दुग्ध पर नागपाश धारण किये हुए मत्स्य पर आरूढ़ वारुणी को, वायुकोण में शर्करा के ऊपर मृगारूढ़ पताकिनी की स्थापना करे। उत्तर दिशा में तिल पर निधि पर सत्तारूढ़ शंखिनी की स्थापना करे। वृषभारूढ़ माहेश्वरी को नवनीत पर त्रिशूल धारण किये हुए स्थापित करे॥९-१०॥

मौलिन्यो वरदास्तद्वत्कर्तव्या बालकान्विताः।
शक्त्या पञ्चपलादूर्ध्वमा सहस्रात्प्रकल्पयेत्॥११॥
सर्वासामुपरि स्थाप्यं पञ्चवर्णं वितानकम्।
धेनवो दश कुम्भाश्च वस्त्रयुग्माणि चैव हि॥१२॥
मध्यमे द्वे तु गुरुवे ऋत्विग्भ्योऽन्यास्तथैव च।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो बुधः॥
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥१३॥

अन्य मुकुट धारण करने वाली वरदायिनी देवियों को भी बालकों के साथ स्थापित करना चाहिये। इस महाकल्पलता दान में अपनी शक्ति के अनुकूल पाँच पल के ऊपर एक सहस्र पल तक की तौल में सुवर्ण रहना चाहिये। इन सभी के ऊपर पाँच रंगों में रंगों हुए वितान को तानना चाहिये, फिर धेनु, दस कलश तथा दो वस्त्र का दान देना चाहिये। इसमें से दो मध्यम लताओं को, गुरु को तथा अन्य पुरोहितों को देना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक शब्दों के होते हुए स्नान कर श्वेतवस्त्र धारण कर तीन प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण करे॥११-१३॥

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालिनीभ्यः।
आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः॥१४॥

'हे पाप विनाशिनी मातृगण! निखिल ब्रह्माण्ड एवं लोकेश्वरों की पालना करने वाली! याचकों को आशंसा से अधिक फल प्रदान करने वाली! तुम कल्पलता वधुओं को तथा दिशाओं की वधुओं को हमारा बारम्बार प्रणाम है॥१४॥

इति सकलदिगङ्गनाप्रदानं भवभयसूदनकारि यः करोति।
अभिमतफलदे स नागलोके वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत्॥१५॥
पितृशतमथ तारयेद्भवाब्धेर्भवदुरितौघविघातशुद्धदेहः।
सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः परिवृतमम्बुजसंसदाऽभिवन्द्यः॥१६॥

इति विधानमिदं दिगङ्गनानां कनककल्पलताविनिवेदकम्।
पठति यः स्मरतीह तथेक्षते स पदमेति पुरन्दरसेवितम्॥१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कनककल्पलताप्रदानविधिर्नाम षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३९५२॥

इस प्रकार सभी दिगंगनाओं के दान को, जो भवभयहारी है, जो पुरुष करता है, वह अभिमत फलदायी नागलोक में पितामह के तीस वर्ष तक निवास करता है तथा सैकड़ों पितरों को भवसागर से तारता है, संसार के घोर पापों के विनष्ट हो जाने के कारण विशुद्ध शरीर हो सहस्रों देवांगनाओं से घिरा हुआ पद्मयोनि ब्रह्मा की सभा में अभिनन्दनीय होता है। इस प्रकार दिगंगनाओं के तथा कनक कल्पलता के दान की विधि को जो पढ़ता है, स्मरण करता है तथा देखता है, वह सुन्दर प्रभृति देवपतियों द्वारा सेवित पद को प्राप्त करता है॥१५-१७॥

॥दो सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त॥२८६॥

❖❖❖

अथ सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्त सागर दान विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः॥२॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। कारयेत्सप्त कुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त अति उत्तम सभी पापों के विनाशक सप्तसागर नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यनादि मांगलिक पाठ करवा कर बुद्धिमान् पुरुष लोकपालों का आवाहन करे तथा मण्डप निर्माण, पुरोहित वरण, यज्ञसामग्री, भूषण, आच्छादनादि का प्रबन्ध भी उसी भाँति से करे। विचक्षण पुरुष सुवर्ण निर्मित सात कुण्डों का निर्माण करे॥१-३॥

प्रादेशमात्राणि तथाऽरत्निमात्राणि वै पुनः। कुर्यात्सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः॥४॥
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि। प्रथमं पूरयेत्कुण्डं लवणेन विचक्षणः॥५॥
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः। चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च॥६॥

षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा। स्थापयेल्लवणस्थं तु ब्राह्मणं काञ्चनं शुभम्॥७॥

ये सातों कुण्ड एक प्रदेश (तर्जनी समेत फैले हुए अंगूठे की दूरी को प्रादेश कहते हैं।) मात्र तथा अरत्नि (बंधी हुई मुट्ठी समेत हाथ की लम्बाई को अरत्नि कहते हैं) मात्र के होने चाहिये और इनकी तौल सात पल से लेकर अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार एक सहस्र पल तक की हो। इन सभी कुण्डों को कृष्ण मृगचर्म पर रखे गये तिल के ऊपर स्थापित करे। विचक्षण पुरुष प्रथम कुण्ड को लवण द्वारा पूर्ण करे, द्वितीय कुण्ड को दुग्ध से, तृतीय को घृत से, चतुर्थ को गुड़ से, पञ्चम को दही से, छठें को शक्कर से तथा सातवें को तीर्थों के जल से पूर्ण करे। लवण पर सुन्दर सुवर्ण निर्मित ब्रह्मा की स्थापना करे॥४-७॥

केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम्। भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये निशाधिपम्॥८॥
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम्। सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः॥९॥
तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत्। ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवैः॥१०॥
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्। नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः॥
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः॥११॥

दुग्ध कुण्ड के मध्य में भगवान् विष्णु को, घृत में महेश्वर को, गुड़ में भास्कर को, दही में चन्द्रमा को, शक्कर में लक्ष्मी को तथा जल में पार्वती को स्थापित करे। सभी कुण्डों को सभी ओर से सभी रत्नों तथा अन्नों द्वारा अलंकृत करे। तुलापुरुष दान की भाँति अन्य विधानों को सम्पन्न करे। तदनन्तर वरुण के मन्त्र द्वारा कराये गये हवन के उपरान्त वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक स्नान कराया हुआ यजमान तीन प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण करे। 'हे सनातन सागरगण! आप सब जीवों के प्राणदायक सभी नदियों के आधारस्वरूप हैं, आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है॥८-११॥

क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेक्षुसारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्घान्।
आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्तस्तस्मान्ममाप्यघविघातमलं दिशन्तु॥१२॥
यस्मात्समस्तभुवनेषु भवन्त एव तीर्थामरासुरसुबद्धमणिप्रदानम्।
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय लोकस्य बिभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः॥१३॥
इति ददाति रसामृतसंयुताञ्छुचिरविस्मयवानिह सागरान्।
अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ पदमुपैति हरेरमरार्चितः॥१४॥
सकलपापविधौतविराजितः पितृपितामहपुत्रकलत्रकम्।
नरकलोकसमाकुलमप्ययं झटिति सोऽपि नयेच्छिवमन्दिरम्॥१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने सप्तसागरप्रदानविधिर्नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३९६७॥

आप लोग अपने दुग्ध, जल, घृत, दही, मधु, लवण, इक्षुसार (शक्कर) प्रभृति अमृत द्वारा तथा रत्नादि सम्पत्तियों द्वारा तीनों लोकों के जीव-समूहों को आनन्द देने वाले हैं, अतः हमारे पापपुञ्जों का भी विनाश करे। आप ही लोग संसार के तीर्थों, देवताओं तथा असुरगणों को पवित्रता एवं सुन्दर मणियों के प्रदान करने वाले हैं तथा लोक के पापक्षय, अमृत विलेपन एवं भूषण के लिये उन्हें धारण करते हैं, अतः मेरे गृह में भी आपकी उस लक्ष्मी का निवास हो, इस प्रकार उपर्युक्त विधियों से जो मनुष्य पवित्र तथा अविस्मित होकर रस एवं अमृतों से संयुक्त निर्मल सुवर्ण के बने हुए कुण्डों का दान करता है, वह देवताओं द्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णु का पद प्राप्त करता है एवं सभी पापों के धुल जाने से सुन्दर, निर्मल शरीर हो नरलोक में व्याकुल होते हुए पिता, पितामह, पुत्र एवं कलत्रादि को शीघ्र ही शिवलोक को पहुँचा देता है।।१२-१५।।

।।दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त।।२८७।।

अथाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नधेनु दान विधि एवं माहात्म्य

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम्।।१।।
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत्। लोकेशावाहनं कृत्वा ततो धेनुं प्रकल्पयेत्।।२।।

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब इसके उपरान्त मैं अत्युत्तम मनुष्यों को गोलोक का फल देने वाले रत्नधेनु नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। इस दान में भी तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन प्राप्त कर लोकपालों का आवाहन कर धेनु की कल्पना करे।।१-२।।

भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम्। धेनुं रत्नमयीं कुर्यात्सङ्कल्प्य विधिपूर्वकम्।।३।।
स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः। पुष्परागशतं दद्याद्घोणायां परिकल्पयेत्।।४।।
ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः। भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृते।।५।।

पृथ्वी पर द्रोण परिमित लवण समेत कृष्ण मृगचर्म बिछाकर विधिपूर्वक संकल्प के साथ रत्नमयी धेनु का निर्माण करे। बुद्धिमान् पुरुष इक्यासी पद्मराग मणियों को मुख में स्थापित करे, उसी प्रकार नासिका में एक सौ पुष्पराग, ललाट में सुवर्ण का तिलक, दोनों आँखों में सौ मुक्ताएँ, दोनों भौंहों में सौ विद्रुम, दोनों कानों में सुतुही लगावे।।३-५।।

काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम्। ग्रीवायां नेत्रपटलं गोमेदकशतान्वितम्।।६।।

इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतपार्श्वके। स्फाटिकैरुदरं तद्वत्सौगन्धिकशतैः कटिम्॥७॥

सींगे सुवर्ण की बनी हों, शिर सौ हीरों का बना हो, कण्ठ और आँखों की पलकों में सौ गोमेदक, पृष्ठभाल में सौ इन्द्रनील, दोनों पार्श्वस्थानों में सौ वैदूर्य, उसी प्रकार सौ वैदूर्यमणियों द्वारा उदर तथा सौ सौगन्धिक द्वारा कटिदेश का निर्माण करे।।६-७।।

खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम्। सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दने॥८॥
कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यनाभिं च कारयेत्। गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत्॥९॥
तथाऽन्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसन्धिषु।
कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम्॥१०॥
गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धं स्वरूपतः। पुच्छाग्रे चामरं दद्यात्समीपे ताम्रदोहनम्॥११॥

खुरों का सुवर्णमय तथा पूंछ को मुक्ता की लड़ियों से, दोनों नथुनों को सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियों से बनाकर कर्पूर और चन्दन से अर्चित करे। रोमों के स्थान पर केसर तथा नाभि को चाँदी का बनवाये। गुदाभाग में सौ गारुत्म (लाल) मणियों को लगावे, अन्य रत्नों को सन्धिभाग पर लगावें। जीभ को शक्कर से तथा गोबर से बनवाये। घृत का गोमूत्र तथा दही और दूध के स्थान पर दही और दूध ही रखे। पूंछ के अग्रभाग पर चामर दे तथा गौ के समीप में ही तांबे की बनी हुई दोहन रखे दे।।८-११।।

कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः। कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम्॥१२॥
तथा धान्यानि सर्वाणि पादाश्चेक्षुमयाः स्मृताः।
नानाफलानि सर्वाणि पञ्चवर्णं वितानकम्॥१३॥
एवं विरचनं कृत्वा तद्वद्धोमाधिवासनम्। ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुमामन्त्रयेत्ततः॥
गुडधेनुवदावाह्य इदं चोदाहरेत्ततः॥१४॥
त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति रुद्रेन्द्रसूर्यकमलासनवासुदेवाः।
तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्ता मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम्॥१५॥

अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार सुवर्णनिर्मित आभूषण पहिनावे तथा गौ के चतुर्थ अंश से उसी प्रकार उसका बछड़ा बनावे। इस प्रकार गौ एवं बछड़े की रचना के बाद सभी प्रकार के अन्न, ईख के दण्ड, विविध प्रकार के फल, पाँच प्रकार के विभिन्न रंगों वाला वितान-इन सब को भी यथा स्थान सजावे। तदनन्तर हवन एवं अधिवास करे और तब पुरोहितों को दक्षिणा देने के उपरान्त धेनु का आमंत्रण करे और पूर्वोक्त गुड़धेनु दान की भाँति आवाहन कर यह कहें- 'हे देवि! यतः रुद्र, सूर्य, ब्रह्मा एवं विष्णु ये सभी देवगण तुममें सभी देवताओं का अवस्थान मानते हैं, समस्त त्रिभुवन तुम्हारे शरीर में व्याप्त है, अतः भवसागर से पीड़ित होने वाले मुझको तुम बचाओ।।१२-१५।।

आमन्त्र्य चेत्थमभितः परिवृत्य भक्त्या दद्याद्द्विजाय गुरवे जलपूर्विकां ताम्।
यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः॥१६॥
इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम्।
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदनसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः॥१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने रत्नधेनुप्रदानविधिर्नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१३९८४॥

इस प्रकार आमन्त्रण कर भक्तिपूर्वक उस गौ को हाथ में जल लेकर ब्राह्मण गुरु को दान करे। जो व्यक्ति इस प्रकार उपवास कर पुण्यप्रद दिन को प्राप्त कर इस दान को करता है, वह पापों से रहित शरीर वाला होकर मुरारि के परमपुनीत पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार सभी विधियों को जानने वाला जो पुरुष इस कामधेनु नामक दान का वितरण करता है, वह अति तेजोमय विमान प्राप्त कर सभी पापों से विमुक्त हो, बन्धुओं, पुत्रों तथा पौत्रों समेत कामदेव के समान सुन्दर स्वरूप धारण कर शिव का स्थान प्राप्त करता है॥१६-१७॥

॥दो सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त॥२८८॥

❖❖❖

अथैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

महाभूत घट दान विधि एवं माहात्म्य

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम्॥१॥
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवचनम्। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥२॥
तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनादिकम्। कारयेत्काञ्चनं कुम्भं महारत्नाचितं बुधः॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अति उत्तम, महापापों को नष्ट करने वाले महाभूत घट नामक दान की विधि बता रहा हूँ। इस दान में भी तुलापुरुष दान की भाँति पुण्यप्रद दिन को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ कराकर पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण एवं आच्छादनादि का प्रबन्ध करना चाहिये तथा लोकपालादि का आवाहन भी उसी तरह करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष इस दान में बहुमूल्य रत्नों द्वारा जड़ित सुवर्ण का कलश निर्मित करवाये॥१-३॥

प्रादेशादङ्गुलशतं यावत्कुर्यात्प्रमाणतः। क्षीराज्यपूरितं तद्वत्कल्पवृक्षसमन्वितम्॥४॥
पद्मासनगतांस्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। लोकपालान्महेन्द्रांश्च स्वस्ववाहनमास्थितान्॥
वराहेणोद्धृतां तद्वत्कुर्यात्पृथ्वीं सपङ्कजाम्॥५॥

उसका प्रमाण एक प्रादेश से सौ अंगुल तक का होना चाहिये। उसे दुग्ध एवं घृत से पूर्ण कर कल्पवृक्ष से युक्त करे। वहीं पर पद्मासन पर अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, लोकपालगण, देवराज इन्द्रादि देवगणों को भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ बनावे। उसी प्रकार वाराह द्वारा उबारी गई कमल समेत पृथ्वी की भी रचना करनी चाहिये।।४-५।।

वरुणं चाऽऽसनगतं काञ्चनं मकरोपरि। हुताशनं मेषगतं वायुं कृष्णमृगासनम्॥६॥
तथा कोशाधिपं कुर्यान्मूषकस्थं विनायकम्। विन्यस्य घटमध्ये तान्वेदपञ्चकसंयुतान्॥७॥
ऋग्वेदस्याक्षसूत्रं स्याद्यजुर्वेदस्य पङ्कजम्। सामवेदस्य वीणा स्याद्वेणुं दक्षिणतो न्यसेत्॥८॥
अथर्ववेदस्य पुनः स्रक्स्रुवौ कमलं करे। पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः॥९॥

मकर के ऊपर आसन लगाये हुए सुवर्णनिर्मित वरुण, मेष पर आरूढ़ अग्नि, कृष्णमृग पर आरूढ़ वायु तथा कोशाधिप रूप में मूषक पर अवस्थित विनायक- वेदों समेत इस सब पाँचों को उक्त घट में स्थापित करे। वेदों में ऋग्वेद का प्रतीक अक्षसूत्र, यर्जुवेद का कमल, सामवेद की वीणा है। वेणु को दक्षिण ओर स्थापित करना चाहिये। अथर्ववेद का प्रतीक, स्रुक्, स्रुवा तथा कमल है-इन्हें हाथों में रखे। वरदायक पंचम वेद पुराण का प्रतीक अक्षसूत्र एवं कमण्डलु है।।६-९।।

परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम्। पादुकोपानहच्छत्रं दीपिकाभूषणानि च॥१०॥
शय्यां च जलकुम्भांश्च पञ्चवर्णं वितानकम्। स्नात्वाऽधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥११॥
नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे। महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम॥१२॥

उस कलश के चारों ओर सभी प्रकार के अन्न, चामर, आसन, दर्पण, पादुका, जूता, छत्र, दीपक एवं आभूषणादि को अलंकृत करे तथा सुन्दर शय्या, जलपूर्ण कलश तथा पाँच प्रकार के रंगों वाला वितान ताने। स्नान करने के उपरान्त यजमान अधिवासन हो चुकने के बाद इस मन्त्र का उच्चारण करे। 'हे सभी महाभूतों के अधिदेवगण! इस चराचर जगत् में आप लोग सभी देवताओं के आधार स्वरूप हैं, आप लोगों को हमारा प्रणाम है, हमें शान्ति एवं कल्याण दीजिये।।१०-१२।।

यस्मान्न किञ्चिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम्।
ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरक्षयाऽस्तु मे॥१३॥
इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥१४॥

यतः इस निखिल ब्रह्माण्ड के जीवों में इन महाभूतों के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं हैं, अतः इनकी कृपा से मेरी लक्ष्मी अक्षय हो'। इस प्रकार उच्चारण कर जो व्यक्ति महाभूत घट का दान करता है, वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करता है।।१३-१४।।

विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः। स्तूयमानो वरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम्॥१५॥
षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः। न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते॥१६॥
इह पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे ससुतपितृकलत्रः संशृणोतीह सम्यक्।
मुररिपुभवने वै मन्दिरे वाऽर्कलक्ष्म्या त्वमरपुरवधूभिर्मोदते सोऽपि कल्पम्॥१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तनं नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१४००१॥

तथा पितरों एवं बन्धु वर्गों के साथ सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर आरूढ़ होकर सुन्दरी स्त्रियों द्वारा प्रार्थित होकर वैष्णव लोक को प्राप्त करता है। जो मानव इस जगत् में इन उपर्युक्त सोलहों दानों का अनुष्ठान करता है, उसको इस लोक में पुनः नहीं आना पड़ता। इन दानों की विधियों को वासुदेव के समीप जो पढ़ता है तथा भली-भाँति पुत्र, पिता एवं स्त्री के साथ श्रवण करता है, वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर निश्चय ही देवाङ्गनाओं के साथ मुरारि (विष्णु) के लोक में कल्पपर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है॥१५-१७॥

॥दो सो नवासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२८९॥

❖❖❖

अथ नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कल्पों के भेद और उनकी घटनाएँ

मनुरुवाच

कल्पमानं त्वया प्रोक्तं मन्वन्तरयुगेषु च। इदानीं कल्पनामानि समासात्कथयाच्युत॥१॥

मनु ने कहा-हे अच्युत! मन्वन्तर एवं युगों का वर्णन करते समय कल्प का प्रमाण तो बताया था, अब कल्पों के नामों को संक्षेप में मुझे बताईये॥१॥

मत्स्य उवाच

कल्पानां कीर्तनं वक्ष्ये महापातकनाशनम्। यस्यानुकीर्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते॥२॥
प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः। वामदेवस्तृतीयस्तु ततो राथन्तरोऽपरः॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा-अब मैं तुम्हारे अनुरोध पर कल्पों का वर्णन कर रहा हूँ, जो महान् पातकों को नष्ट करने वाला है तथा जिसके अनुकीर्तन से वेद के अध्ययन का पुण्य प्राप्त होता है।

सभी कल्पों में प्रथम श्वेत कल्प है, दूसरा नीललोहित कल्प है, तीसरा कल्प वामदेव तथा चौथा रथन्तर नामक है।।२-३।।

रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठो देव इति स्मृतः। सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते।।४।।
सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः। तम एकादशः प्रोक्तस्तथा सारस्वतः परः।।५।।
त्रयोदश उदानस्तु गारुडोऽथ चतुर्दशः। कौर्मः पञ्चदशः प्रोक्तः पौर्णमास्यामजायत।।६।।
षोडशो नारसिंहस्तु समानस्तु ततोऽपरः। आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्तथा परः।।७।।
मानवो विंशतिः प्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः। वैकुण्ठश्चापरस्तद्वल्लक्ष्मीकल्पस्तथापरः।।८।।
चतुर्विंशतितमः प्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः। पञ्चविंशस्ततो घोरो वाराहस्तु ततोऽपरः।।९।।
सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथा परः।
माहेश्वरस्तु स प्रोक्तस्त्रिपुरं यत्र घातितम्।।१०।।

पाँचवें कल्प का नाम रौरव कहा गया है, इसी प्रकार षष्ठ देव, सप्तम बृहत्कल्प, अष्टम कन्दर्प कल्प, नवम सद्यःकल्प, दशम ईशान कल्प, ग्यारहवाँ तमःकल्प, बारहवाँ सारस्वत कल्प, तेरहवाँ उदान, चौदहवाँ गारुड तथा पन्द्रहवाँ कौर्म नामक कल्प हैं, जो पूर्णिमा को उत्पन्न हुआ था। सोलहवाँ नरसिंह, सत्रहवाँ समान कल्प, अट्ठारहवाँ आग्नेय, उन्नीसवाँ सोमकल्प, बीसवाँ मानवकल्प, इक्कीसवाँ तत्पुमान कल्प, बाईसवाँ वैकुण्ठ, तेईसवाँ लक्ष्मी कल्प, चौबीसवाँ सावित्रिकल्प, पच्चीसवाँ घोर, छब्बीसवाॅ वाराह, सत्ताईसवाँ वैराज, अट्ठाईसवाँ गौरी कल्प, उन्तीसवाँ माहेश्वर है, जिसमें त्रिपुर की हत्या हुई थी।।४-१०।।

पितृकल्पस्तथाऽन्ते तु या कुहूर्ब्रह्मणः पुरा। इत्येवं ब्रह्मणो मासः सर्वपातकनाशनः।।११।।
आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन्यस्य विधीयते।
तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा।।१२।।
सङ्कीर्णास्तामसश्चैव राजसाः सात्त्विकास्तथा। रजस्तमोमयास्तद्वदेते त्रिंशदुदाहृताः।।१३।।

तीसवाँ पितृकल्प है, जो प्राचीन काल में ब्रह्मा की अमावस्या थी। इस प्रकार ये सभी तीसों कल्प ब्रह्मा के मास हैं, जो सभी पातकों के नष्ट करने वाले हैं। प्रारम्भ में ही जिस कल्प में जिसका माहात्म्य वर्णित किया है, उसी के नाम पर उस कल्प का नाम रखा गया है। ये सभी कल्प संकीर्ण, तामस, राजस, सात्त्विक तथा रजस्तमोमय-इन भेदों से युक्त तीस कहे हैं।।११-१३।।

सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां व्युष्टिरुच्यते। अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु दिवाकरे।।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणः स्मृतम्।।१४।।
यस्मिन्कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा।
तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते।।१५।।
सात्त्विकेष्वधिकं तद्वद्विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्। तथैव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परां गतिम्।।१६।।

संकीर्ण (संयुक्त) कल्पों में सरस्वती तथा पितरों का, तामस में अग्नि का तथा शिव का, राजस (दिवाकर) में ब्रह्मा का अधिक माहात्म्य कहा गया है। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने जिस कल्प में जिस पुराण को कहा गया है, उस कल्प का माहात्म्य उस पुराण में वर्णित है। उसी प्रकार सात्त्विक कल्पों में विष्णु भगवान् का माहात्म्य उत्तम रूप से वर्णित है, योग में सिद्धि प्राप्त करने वाले लोग उनके पाठ से परमगति को प्राप्त होते हैं।।१४-१६।।

ब्राह्मं पाद्ममिमं यस्तु पठेत्पर्वणि पर्वणि। यस्य धर्मे मतिर्ब्रह्मा करोति विपुलां श्रियम्।।१७।।
यस्तु दद्यादिमान्कृत्वा हैमान्पर्वणि पर्वणि। ब्रह्मविष्णुपुरे वासं मुनिभिः पूज्यते दिवि।।१८।।

जो व्यक्ति इन ब्रह्म तथा पद्म नामक पुराणों का पाठ करता है, भगवान् ब्रह्मा धर्म में उसकी वृद्धि कर देते हैं तथा विपुल सम्पत्ति प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति पर्व-तिथियों पर सुवर्णनिर्मित कल्पों का दान करता है, वह ब्रह्मा तथा विष्णु के पुर में निवास करते हुए स्वर्ग में मुनियों द्वारा पूजित होता है।।१७-१८।।

सर्वपापक्षयकरं कल्पदानं यतो भवेत्। मुनिरूपांस्ततः कृत्वा दद्यात्कल्पान्विचक्षणः।।१९।।
पुराणसंहिता चेयं तव भूप मयोदित। सर्वपापहरा नित्यमारोग्यश्रीफलप्रदा।।२०।।
ब्रह्मसंवत्सरशतादेकाह शैवमुच्यते। शिववर्षशतादेकं निमेषं वैष्णवं विदुः।।२१।।
यदा स विष्णुर्जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्। यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति।।२२।।

क्योंकि ये कल्पों के दान सभी पापों के नष्ट करने वाले हैं। विचक्षण पुरुष मुनि के समान स्वरूप बनाकर इन कल्पों का दान करे। हे राजन्! पुराण की यह संहिता मैं तुम्हें बता चुका, यह सभी पापों को दूर करने वाली तथा नित्य आरोग्य एवं श्री प्रदान करने वाली है। ब्रह्मा के सौ वर्ष का शिव का एक दिन होता है, तथा शिव के सौ वर्ष का विष्णु का एक निमेष। (एक दृष्टि विक्षेप करने का समय) होता है-ऐसा लोग जानते हैं। जब ये विष्णु जागते हैं, तभी यह जगत् भी चेष्टावान् होता है और जब वे शान्तात्मा होकर शयन करते हैं, तब सभी जगत् शान्त हो जाता है।।१९-२२।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो मत्स्यरूपी जनार्दनः। पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत।।२३।।
वैवस्वतो हि भगवान्विसृज्य विविधाः प्रजाः।
स्वान्तरं पालयामास मार्तण्डकुलवर्धनः।।२४।।
यस्य मन्वन्तरं चैतदधुना चानुवर्तते। पुण्यं पवित्रमेतद्वः कथितं मत्स्यभाषितम्।।
पुराणं सर्वशास्त्राणां यदेतन्मूर्ध्नि संस्थितम्।।२५।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्पानुकीर्तनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२९०।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१४०२६।।
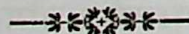
सूत ने कहा–मनु से ऐसी बातें करने के बाद मत्स्यरूपधारी भगवान् जनार्दन सभी जीवों के देखते-देखते वहीं पर अन्तर्हित हो गये और विवस्वान् के पुत्र मार्तण्ड कुलवर्द्धन भगवान् मनु ने विविध प्रजाओं की सृष्टि कर अपनी अवधि तक पालन किया, जो मन्वन्तर अभी तक चल रहा है। इस मत्स्य भगवान् द्वारा कहे गये पुण्यप्रद पवित्र पुराण को तुम लोगों को सुना चुका, यह मत्स्य पुराण सभी शास्त्रों में शिरोभूषण रूप से व्यवस्थित है।।२३-२५।।

।।दो सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त।।२९०।।

अथैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य महापुराण में वर्णित विषयों की संक्षिप्त सूची, पुराण श्रवण विधान एवं निषेध

सूत उवाच

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा। मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम्।।१।।
यत्राऽऽदौ मनुसंवादो ब्रह्माण्डकथनं तथा। सांख्यं शारीरकं प्रोक्तं चतुर्मुखमुखोद्भवम्।।२।।

सूत ने कहा–विश्वस्वरूप मत्स्य भगवान् के कहे हुए सम्पूर्ण मत्स्य पुराण को जो धर्म, काम एवं अर्थ की सिद्धि देने वाला है, तुम लोगों को बता चुका। जिसके प्रारम्भ गें मनु का संवाद, ब्रह्माण्ड का कीर्तन तथा चतुर्मुख ब्रह्मा के मुख से कहे गये शारीरिक सांख्य का वर्णन है।।१-२।।

देवासुराणामुत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च। मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम्।।३।।
मन्वन्तराणामुद्देशा दैन्यराजाभिवर्णनम्। सूर्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसङ्गमनं तथा।।४।।
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च। पितृतीर्थप्रवासश्च सोमोत्पवत्तिस्तथैव च।।५।।
कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा। कार्तवीर्यस्य माहात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्तनम्।।६।।

तदनन्तर देवताओं एवं असुरों की उत्पत्ति, मरुत् की उत्पत्ति, मदन द्वादशी वृत्तान्त, लोकपालों की पूजा, मन्वन्तरों का उद्देश्य, वैनराज का वर्णन, सूर्य और वैवश्वत की उत्पत्ति, बुध का संगम, पितरों का वंश वर्णन, श्राद्धकाल निर्णय, पितृ तीर्थों में प्रवास, सोम की उत्पत्ति, सोमवंश का कीर्तन, ययाति का चरित, कार्त्तवीर्य का माहात्म्य, वृष्णिवंश का कीर्तन।।३-६।।

भृगुशापस्तथा विष्णार्दैत्यशापस्तथैव च। कीर्तनं पुरुषेशस्य वंशो हौताशनस्तथा।।७।।
पुराणकीर्तनं तद्वत्क्रियायोगस्तथैव च। व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्तण्डशयनं तथा।।८।।
कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम्। तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च।।९।।

सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च। तथाऽनन्ततृतीया तु रसकल्याणिनी तथा॥१०॥

भृगुशाप, विष्णु का दैत्यादि के प्रति शाप, पुरुवंश का कीर्तन, हुताशन का वंश वर्णन, पुराणों का कीर्तन, क्रियायोग का कीर्तन, नक्षत्रसंज्ञक व्रत, मार्तण्ड शयन, कृष्णाष्टमी व्रत, रोहिणी चन्द्र व्रत, तड़ाग विधि माहात्म्य, पादपोत्सर्ग विधि, सौभाग्य शयन व्रत, अगस्त व्रत, अनन्त तृतीया व्रत, रसकल्याणिनी व्रत।।७-१०।।

आर्द्रानन्दकरी तद्वद्व्रतं सारस्वतं पुनः। उपरागाभिषेकश्च सप्तमीस्नपनं पुनः॥११॥
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयनं तथा। अशून्यशयनं तद्वत्तथैवाङ्गारकव्रतम्॥१२॥
सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशी तथा। मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च॥१३॥

आर्द्रानन्दकरी व्रत, सारस्वत व्रत, उपरागभिषेक व्रत, सप्तमीस्नपन व्रत, भीम द्वादशी व्रत, अनङ्गशयन व्रत, अशून्यशयन व्रत, आङ्गारक व्रत, सात सप्तमियों का व्रत, विशोक द्वादशी व्रत, दस प्रकार के मेरुओं के दान की विधि।।११-१३।।

ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी। तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा॥१४॥
सङ्क्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम्। षष्टिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः॥१५॥
प्रयागस्य तु माहात्म्यं भुवनस्यानुकीर्तनम्। ऐलाश्रमव्रतं तद्वद्द्वीपलोकानुकीर्तनम्॥१६॥
सूर्यचन्द्रगतिस्तद्वदादित्यरथवर्णनम्। तथाऽन्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च॥१७॥
भुवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुराघोषणं तथा। पितृप्रचारमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयः॥१८॥

ग्रह शान्ति, ग्रहों के स्वरूप का कथन, शिव चतुर्दशी, सभी प्रकार के फलों के त्याग का व्रत, सूर्यवार व्रत, संक्रान्ति स्नपन, विभूति द्वादशी व्रत, साठ व्रतों का माहात्म्य, स्नान विधि का क्रम, प्रयाग का माहात्म्य, समस्त भुवनों का कीर्तन, ऐलाश्रय वर्णन, द्वीपों एवं लोकों की चर्चा, सूर्य और चन्द्रमा की गति, आदित्य के रथ का वर्णन, अन्तरिक्ष में उसका गमन, ध्रुव का माहात्म्य, सुरेन्द्रों का भवन, त्रिपुर के प्रति घोषणा, पितरों के पिण्डदान का माहात्म्य, मन्वन्तरों का निर्णय।।१४-१८।।

वज्राङ्गस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च। तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुमन्त्रणम्॥१९॥
पार्वतीसम्भवस्तद्वत्तथा शिवतपोवनम्। अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च॥२०॥
गौरीतपोवनं तद्वद्विश्वनाथप्रसादनम्। पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम्॥२१॥
कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा। तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम्॥२२॥

वज्राङ्ग की उत्पत्ति, तारकासुर की उत्पत्ति, तारकासुर का महत्व वर्णन, ब्रह्मा के साथ देवों की मन्त्रणा, पार्वती की उत्पत्ति, शिव का तपोवन गमन, कामदेव के शरीर का दाह, रतिशोक, गौरी का तपोवन गमन, विश्वनाथ की प्रसन्नता, पार्वती और सप्तऋषियों का संवाद, पार्वती के विवाह अवसर पर मंगलादि का वर्णन, कुमार की उत्पत्ति, कुमार की विजय, तारका का घोर संहार, नरसिंह का वर्णन।।१९-२२।।

पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम्। वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च॥२३॥
प्रवरानुक्रमस्तद्वत्पितृगाथानुकीर्तनम्। तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च॥२४॥
तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च। यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमाङ्गल्यकीर्तनम्॥२५॥
वामनस्य तु माहात्म्यं तथैवाथ वराहजम्। क्षीरोदमथनं तद्वत्कालकूटाभिशासनम्॥२६॥

पद्मोद्भव का विसर्ग, अन्धकासुर का संहार, वाराणसी का माहात्म्य, नर्मदा का माहात्म्य, प्रवरों की अनुक्रमणिका, पितरों की गाथा, उभयमुखी दान, कृष्ण मृगचर्म का दान, सावित्री की कथा, राजधर्म, यात्रा के निमित्त कथन, स्वप्न एवं मांगलिक शुभ शकुनों एवं अपशकुनों का निरूपण, वामन का माहात्म्य, वराह का माहात्म्य, क्षीरसागर का मन्थन, कालकूट की उत्पत्ति॥२३-२६॥

देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्यास्तथैव च। प्रतिमालक्षणं तद्वद्देवताराधनं ततः॥२७॥
प्रासादलक्षणं तद्वन्मण्डपानां तु लक्षणम्। भविष्यद्राजनिर्देशो महादानानुकीर्तनम्॥
कल्पानुकीर्तनं तद्वद्ग्रन्थानुक्रमणी तथा॥२८॥
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम्। एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम्॥२९॥

देवासुर संग्राम, वास्तु विद्या का वर्णन, प्रतिमा के लक्षण, देवाराधन की सरणि, प्रासादों के लक्षण, मण्डपों के लक्षण, भविष्यत्कालीन राजाओं की चर्चा, महादानों के देने की विधि तथा माहात्म्य, कल्पों का वर्णन-यही संक्षेप में इस महान् ग्रन्थ की क्रमिक सूची है। मत्स्यपुराण की यह सब कथाएँ परमपुनीत, दीर्घायु, प्रदान करने वाली, यश की वृद्धि करने वाली, कल्याणदायिनी तथा घोर से घोर पापों को नष्ट करने वाली तथा शुभ हैं॥२७-२९॥

अस्मात्पुराणात्सुकृतं नराणां तीर्थावलीनामवगाहनानाम्।
समस्तधर्माचरणोद्भवानां सदैव लाभश्च महाफलानाम्॥३०॥
एतत्पुराणं परमं सर्वदोषविघातकम्। मत्स्यरूपेण हरिणा कथितं मनवेऽर्णवे॥३१॥
अस्मात्पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणस्याऽऽस्पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यवपुः सुखी स्यात्॥३२॥

मनुष्यों को इस पुराण से सभी तीर्थ समूहों में स्नान करने से, सभी कर्मों के विधिवत् आचरण करने से जो महान् पुण्य फल प्राप्त होते हैं, वे सभी प्राप्त होते हैं। इस परम पवित्र, सभी दोषों को नष्ट करने वाले तथा परमश्रेष्ठ मत्स्य पुराण को समुद्र में स्थित मनु के लिये मत्स्य रूपधारी भगवान् श्रीहरि ने स्वयं कहा था। इस पवित्र मत्स्य पुराण के एक चरण मात्र को जो पढ़ता है, वह भी पापरहित हो निश्चय ही इसके पुण्य के प्रभाव से कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण कर नारायण के पद को प्राप्त करता है तथा सुखी होता है॥३०-३२॥

पुराणमेतत्सकलं रहस्यं श्रद्धान्वितः पुण्यमिदं शृणोति।
स चाश्वमेधावभृथप्रभावं फलं समाप्नोति हरप्रसादात्॥३३॥

शिवं विष्णुं समभ्यर्च्य ब्रह्माणं सदिवाकरम्।
श्लोकं श्लोकार्धपादं वा श्रद्धया यः शृणोति वा॥
श्रावयेद्वाऽपि धर्मज्ञस्तत्फलं शृणुत द्विजाः॥३४॥
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो लभते महीम्।
वैश्यो धनमवाप्नोति सुखं शूद्रस्तु विन्दति॥३५॥
आयुष्मान्पुत्रवांश्चैव लक्ष्मीवान्पापवर्जितः।
श्रुत्वा पुराणमखिलं शत्रुभिश्चापराजितः॥३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनुक्रमणिका नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१४०६२॥

इस गोपनीय पुण्यप्रद समस्त मत्स्य पुराण को जो मनुष्य सुनता है, वह शिवजी की प्रसन्नता से अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति के बाद किये गये अवभृथ स्नान के समान प्रभावशाली फल की प्राप्ति करता है। हे द्विजगण! इस मत्स्य पुराण के एक श्लोक को अथवा आधे श्लोक को भी जो पुरुष श्रद्धा से सुनता है अथवा दूसरे को सुनाता है, उसका फल सुनिये। वह पुण्यशाली शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं सूर्य की विधिवत् पूजा करने का जो फल प्राप्त होता है, वह सब प्राप्त करता है। इस समस्त मत्स्य पुराण को सुनकर ब्राह्मण विद्या प्राप्त करता है, क्षत्रिय को पृथ्वी की प्राप्ति होती है, वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र को सुख की प्राप्ति होती है तथा आयु वाले, पुत्रवाले, लक्ष्मीवान् एवं पापरहित होकर शत्रुओं द्वारा पराजित भी नहीं होते॥३३-३६॥

॥दो सौ एक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त॥२९१॥

पुराणश्रवणकालीन-धर्म

(अब इसके बाद पुराणों के सुनने के समय कैसा आचरण करना चाहिये, इसकी विधि बतला रहे हैं।)

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः॥१॥
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः।
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥२॥

श्रद्धा और भक्ति से युक्त अन्य किसी भी कार्य में अभिलाषा न रख, वाणी को वश में रख, पवित्र शरीर और हृदय से निश्चिन्त मन हो पुण्यभागी श्रोताओं को पुराणों की कथा श्रवण करनी चाहिये। जो अधम, मनुष्य बिना भक्ति के पुण्य कथा को सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो कुछ होने का नहीं वे जन्म-जन्म दुःख के भागी होते हैं।।१-२।।

पुराणं ये च सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः।
शृण्वन्ति च कथां भक्त्याऽदरिद्राःस्युर्न संशयः।।३।।
कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः।।४।।
सोष्णीषमस्तका ये च कथा शृण्वन्ति पावनीम्।
ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः।।५।।
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम्।
श्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नयन्ति यमकिङ्कराः।।६।।
ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः।
अक्षय्यनरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः।।७।।
ये वै वरासनारुढा ये च मध्यासनास्थिताः। शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः।।८।।

जो मनुष्य ताम्बुल आदि पूजा सामग्रियों द्वारा पुराण की पूजा कर कथा श्रवण करते हैं, वे निश्चय ही दरिद्रता से सदा हीन रहते हैं। जो मनुष्य कथा के कहते समय उठकर कार्यान्तर से अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी स्त्री तथा सम्पत्ति दूसरे की भोग्य हो जाती है। जो अधम मनुष्य पवित्र कथा को पगड़ी बाँधकर सुनते हैं, वे पापी बगुले होते हैं। जो नीच मनुष्य पान खाते हुए पवित्र कथा को सुनते हैं, उन्हें यम के दूतगण कुत्ते का मल खिलाते हुए अपने लोक को ले जाते हैं। जो दम्भी मनुष्य उच्च आसनादि पर बैठकर कथा श्रवण करते हैं, वे अक्षय नरक का भोग करने के बाद भी कौआ होते हैं। इसी प्रकार जो व्यास की अपेक्षा श्रेष्ठ आसन पर अथवा मध्यम आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं।।३-८।।

असंप्रणम्य शृण्वन्ति विषभक्षा भवन्ति ते। तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः।।९।।
यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः। गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत्।।१०।।
ये निन्दन्ति पुराणज्ञान्कथां वै पापहारिणीम्।
ते वै जन्मशतं मर्त्याः सूकराः सम्भवन्ति हि।।११।।
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम्। ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्तथैव च।।१२।।
कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः।
ते भुक्त्वा नरकोन्घोरान्भवन्ति वनसूकराः।।१३।।

ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः।
अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम्॥१४॥
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः।
कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥१५॥
ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम्।
कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे॥१६॥

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः। कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च॥१७॥

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम्॥१८॥

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये वरासनुमत्तमम्। भोगिनो ज्ञानसम्पन्ना भवन्ति च भवे भवे॥१९॥
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये। पुराणश्रवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम्॥२०॥

जो व्यक्ति बिना प्रणाम किये कथा सुनते हैं, वे विष खाने वाले होते हैं तथा सोते हुए कथा सुनने वाले मनुष्य अजगरयोनि में जन्म लेते हैं। जो मनुष्य कथा कहने वाले व्यास के समान आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं, वे गुरु की शय्या पर गमन करने के समान घोर अपराध के भागी बनकर नरक को जाते हैं। जो मनुष्य पुराणों के जानने वाले तथा पवित्र कथाओं की निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मों में सूकर योनि जन्म धारण करते हैं कथा के कहते समय जो मनुष्य वक्ता को बुरे उत्तर देते हैं, वे गदर्भ तथा गिरगिट योनि में जन्म लेते हैं। जो मनुष्य अपने जीवन में कभी भी पुण्य कथा का श्रवण नहीं करते वे घोर नरक का भोग करने के बाद वनसूकर होते हैं। जो उत्तम मनुष्य कथा के समय बिना सुने भी अनुमोदित करते हैं, वे परम शाश्वत पद को प्राप्त करते हैं। जो शठ मनुष्य कथा के समय विघ्न पहुँचाते हैं, वे कोटि वर्षों तक नरक का भोग कर फिर ग्रामसूकर होते हैं। जो मनुष्य दूसरे लोगों को पौराणिक कथाएँ सुनाते हैं, वे सैकड़ों कोटि कल्पों तक ब्रह्म लोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य पुराणों के जानने वाले पुरुषों को आसन के लिए कम्बल, मृगचर्म या वस्त्रादि अथवा मंच या अन्य चर्मादि देते हैं, वे स्वर्गलोक प्राप्त कर यथेप्सित भोगों का उपभोग कर ब्रह्मादि देवों के बीच अवस्थित रह निरामय पद की प्राप्ति करते हैं। जो मनुष्य पुराण के लिये सुन्दर आसन प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्मों में उत्तम भोगों को भोग ज्ञानवान् भी होते हैं। जो व्यक्ति महाघोर पातकी तथा मध्यम पाप कर्म करने वाले हैं, वे पुराणों के सुनते ही परम पद को प्राप्त करह हैं।।९-२०।।

एवंविधविधानेन पुराणं शृणुयान्नरः।
भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं प्रयाति सः॥२१॥

पुस्तकं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालङ्करणादिभिरू। वाचकं विप्रसंयुक्तं पूजयीत प्रयत्नवान्॥२२॥
गोभूमिहेमवस्त्राणि वाचकाय निवेदयेत्। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्मण्डलड्डुकपायसैः॥२३॥

त्वं व्यासरूपी भगवान्बुद्ध्या चाऽऽङ्गिरसोपमः।
पुण्यवाञ्शीलसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥२४॥
प्रसन्नमानसं कुर्याद्दानमानोपचारतः। त्वत्प्रसादादिमान्धर्मान्सम्पूर्णाञ्श्रुतवानहम्॥२५॥
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः। यशस्वी च भवेन्नित्यं यः कुर्यादेवमादरात्॥२६॥
नारदोक्तानिमान्धर्मान्यः कुर्यान्नियतेन्द्रियः।
कृत्स्नं फलमवाप्नोति पुराणश्रवणस्य वै॥२७॥

इस प्रकार की विधि से जो लोग पुराण का श्रवण करते हैं, वे यथेप्सित भोग करके विष्णु लोक को प्राप्त करते हैं। कथा की समाप्ति के बाद वस्त्र एवं अलंकार आदि से पुस्तक की पूजा करनी चाहिये तथा प्रयत्न पूर्वक अन्यान्य ब्राह्मणों के साथ वाचक की पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार वाचक को गौ, भूमि एवं वस्त्रादि देना चाहिये। तत्पश्चात् मण्ड, लड्डू तथा खीर आदि से ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। 'हे वाचक! आप हमारे लिये व्यास, वसिष्ठ, भार्गव, अत्रि, अङ्गिरा प्रभृति मुनियों की भाँति पूजनीय हैं, पुण्यवान् हैं, शीलवान् हैं, सत्यवादी हैं, जितेन्द्रिय हैं।' इस प्रकार निवेदन कर पवित्र भावना एवं प्रसन्न मन से श्रद्धा एवं भक्ति समेत व्यास की पूजा करे तथा यह कहे कि 'हे महानुभाव! आपकी कृपा से मैंने इस सब धार्मिक चर्चाओं को सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर जो भगवान् के मुख कमल से विनिःसृत इस पुण्यकथा को श्रवण करते हैं एवं आदरपूर्वक उपर्युक्त व्यवहार करते हैं, वे नित्य यशस्वी होते हैं। नारद द्वारा कहे गये इन पुराणों के सुनने के नियमों का जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में रखकर पालन करते हैं, वे पुराण श्रवण के अविकल फल को प्राप्त करते हैं॥२१-२७॥

सूत उवाच

मत्स्यरूपी स भगवान्मनवे बुद्धिशालिने। अवापोद्घातसहितमुक्त्वा ह्यन्तर्दधौ तदा॥२८॥

॥इति पुराणश्रवणकालीनधर्माः॥

इति श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं मत्स्यपुराणं

॥ समाप्तम्॥

सूत ने कहा–मुनिगण! उस समय इस प्रकार पुराणों को सुनते समय पालन किये जाने वाले धर्मों के इस अवशिष्ट भाग को मत्स्य रूपधारी जनार्दन भगवान् परम बुद्धिमान् मनु जी को सुनाने के बाद अन्तर्हित हो गये॥२८॥

॥ श्री द्वैपायन मुनि रचित मत्स्य महापुराण समाप्त॥

॥श्रीरस्तु॥

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9839814784

₹ 1000.00